# संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास

पञ्चम-खण्ड

गद्य

प्रधान सम्पादक

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय

सम्पादक

प्रो. जयमन्त मिश्र

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

# संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास

पञ्चम-खण्ड

**गद्य**

*प्रधान सम्पादक*

**पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय**

सम्पादक

**प्रो. जयमन्त मिश्र**

**उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान**

**लखनऊ**

प्रकाशक :

**डॉ. सच्चिदानन्द पाठक,**

निदेशक :

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ

प्राप्ति स्थान :

**विक्रय विभाग :**

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, नया हैदराबाद,

लखनऊ-२२६ ००७

फोन : २७८०२५१, फैक्स : २७८१३५२

**ई-मेल : nideshak@upsansthanam.org**

प्रथम संस्करण :

वि.सं. २०६० (२००३ ई.)

प्रतियाँ : ११००

मूल्य : ३००.००



मुद्रक : **शिवम् आर्ट्स,** निशातगंज, लखनऊ। दूरभाष : २७८२३४८, २७८२१७२

# प्रकाशकीय

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के माध्यम से संस्कृत वाङ्मय के इतिहास के पञ्चम खण्ड को प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक पद्मभूषण आचार्य स्व. बलदेव उपाध्याय जी की भूमिका एवं आशीर्वचन से समलङ्कृत इस खण्ड में संस्कृत वाङ्मय की गद्यविधा के साथ चम्पूकाव्य, कथासाहित्य, नीत्युपदेश आदि अवशिष्ट विधाओं का समावेश किया गया है। इसे विकीर्ण पुष्पों द्वारा पुष्पगुच्छ के रूप में सुधी पाठकों एवं जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करके खण्ड के सम्पादक डॉ. जयमन्त मिश्र जी ने अनेक बाधाओं को उपेक्षित करते हुए विशिष्ट लेखकों के सत्प्रयासों को ग्रन्थाकार में प्रस्तुत करने के लिए अपनी मनीषा के साथ-साथ दृढप्रतिज्ञता का भी विपुल परिचय दिया है।

वास्तव में गद्य विधा जैसा कि इसकी मूलभूत 'गद्' धातु से ही स्पष्ट है कथन को सीधे प्रस्तुत करने की सहज विधा है। यह प्राचीन परम्परा में अल्पप्रचलित रही है क्योंकि लिपिबद्ध करने की परम्परा से कहीं पूर्व परम्परा श्रुति परम्परा रही है जिसमें स्मरणीयता के लक्ष्य से गेयता (छन्द के रूप में) कहीं अधिक प्रचलित रही है। इसलिए सभी भाषाओं के वाङ्मय के इतिहास में प्रथम पद्य या छन्द काव्य ही स्थायित्व पा सके। चाहे वैदिक साहित्य हो या संस्कृत साहित्य, काव्यग्रन्थों की स्थापना तत्कालीन प्रचलित छन्दों के माध्यम से प्रमुख स्थान पा सकी और वही स्मृति के माध्यम से जन-जन तक सस्वर उच्चारण के रूप में स्थायित्व पा सकी। इसलिए गद्य विधा को जनमानस में प्रतिष्ठित करना तथा उसे कालजयी काव्य के रूप में स्थापित करना अपने में अत्यन्त ही दुरूह कार्य था। यद्यपि रसात्मकता अथवा लोकेतर प्रस्तुति की अपनी विशिष्टता में सहज वाक्यों द्वारा अभिव्यक्ति बाधक कदापि नहीं है, लेकिन प्रभाव की दृष्टि से ऐसी रचना में रस-प्रवणता भावों का प्रवाह तथा रचना-वैचित्र्य लाना उतना सरल नहीं है क्योंकि ऐसी रचना अपने अर्थवैचित्र्य एवं भावगाम्भीर्य के द्वारा ही जनसामान्य में प्रभावोत्पादक हो सकती है। यह भी कहा गया है-'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'-गद्य ही कवि की (वास्तविक) कसौटी है।

परम्परा में अल्पप्रचलित गद्य की विधा को लेखन के युग में अधिक गौरवपूर्ण स्थान मिल सका है। यह विधा अपनी वर्णनशैली में विशिष्ट अभिव्यक्ति के कारण और प्रचलित हो सकी। यद्यपि भवाभिव्यक्ति का अकृत्रिम साधन गद्य वैदिक वाङ्मय से ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, भाष्य आदि ग्रन्थों से यात्रा करता हुआ बाणभट्ट की 'कादम्बरी' एवं 'हर्षचरित' जैसी रचनाओं को अपनी व्यञ्जना शक्ति एवं रसप्रवणता के साथ कालजयी बना गया। 'वासवदत्ता' प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्ध है जिसमें वक्रोक्ति निपुण सुबन्धु ने अपनी अद्भुत प्रस्तुति की। अपनी इसी विशेषता के कारण उनकी यह कृति बिना गुणावगुण विवेच्य के

भी रसिक श्रोताओं के कानों में रस की धारा बरबस ही उड़ेल देती है। इसी प्रकार बाणभट्ट अपनी अद्भुत कृति में महर्षि जाबालि के आश्रम वर्णन, महाश्वेता की स्वरूप प्रस्तुति जिस रूप में की है उससे उनकी 'कादम्बरी' अद्वितीय बन गयी है।

इसी प्रकार 'दशकुमारचरित' की कथावस्तु विन्यास तथा चित्रण दण्डी को प्रशस्त कवि के रूप में स्थापित कर देता है। तिलकमञ्जरी, गद्यचिन्तामणि आदि अनेक रचनाएँ जहां गद्यविधा की काव्यत्मकता को अमर बनाती हैं वहीं गद्य-पद्यमय पद्धति के रूप में न्याय काव्य की संस्कृत में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। 'विश्वनाथ प्रशस्ति-रत्नावली', 'चम्पूरामायण', 'नलचम्पू' 'यशस्तिलक चम्पू' जैसी रचनाएँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कथा-साहित्य, नीतिकाव्य, 'संस्कृत कवयित्री रचना' जैसे संस्कृत वाङ्मय के अल्पप्रचलित किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्गों को विशिष्ट लेखों के माध्यम से विवेचित किया गया है। यही नहीं संस्कृत वाङ्मय में अभिलेख साहित्य की विभिन्न अभिलेखों के माध्यम से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इनमें गुप्तकालीन अभिलेख अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसमें समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भलेख, सांचीस्तूप के प्राचीराभिलेख, मेहरौली के लौहस्तम्भलेख उल्लेखनीय हैं। मिहिरकुल का ग्वालियर दुर्ग स्थित सूर्यमन्दिर में उत्कीर्ण अभिलेख, यशोधर्मा का मन्दसौर का प्रस्तर अभिलेख साहित्यिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय की दृष्टि से प्रस्तुत खण्ड संस्कृत साहित्य के उन स्रोतों को प्रकाश में लाता है जो संस्कृत की साहित्यिक धारा की सरस्वती को अपने विशिष्ट योगदान द्वारा रसवती बनाते हैं। वस्तुतः छन्दात्मकता ही काव्य नहीं है अपितु छन्दमुक्त साहित्य भी रागात्मक तत्व के कारण काव्य है जिसमें रचनाकार अपनी लोकोत्तर प्रतिभा द्वारा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का आश्रय लेते हुए लोकेतर वर्णनाशक्ति द्वारा अकृत्रिम (सहज) अभिव्यक्ति में भी काव्यात्मकता की आत्मप्रतिष्ठा कर देता है। आख्यायिका भी वर्णन विधा की अपनी विशिष्ट विधा से घटनाओं तथा स्थानों का चित्र, पात्रों के प्रति रागात्मकता की सृष्टि करके मानस पटल पर घटना का चित्राङ्कन करते हुए अमिट प्रभाव छोड़ देता है।

संस्कृत वाङ्मय के इतिहास के इस बहुआयामी खण्ड के मनीषी सम्पादक माननीय जयमन्त मिश्र का यह भगीरथ प्रयास इस खण्ड की सुव्यवस्थित प्रस्तुति का आधारस्तम्भ है जिसके मूल में इनके प्रधान सम्पादक परम सम्माननीय आचार्य स्व. बलदेव उपाध्याय की प्रेरणा एवं दिशा निर्देश हैं। यह संस्थान इन दोनों महानुभावों की अत्यन्त ऋणी है। इस खण्ड की समयबद्ध प्रस्तुति के लिए प्रेरणाभूत सम्माननीय प्रो. नागेन्द्र पाण्डेय अध्यक्ष, उ.प्र. संस्कृत संस्थान के हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन से इस खण्ड को सुशोभित किया तथा अपनी निरन्तर प्रेरणा से संस्थान को इस प्रस्तुति के लिए सजग रखा।

अन्त में अस्वस्थता की दशा में भी संस्कृत सेवा को गुरु-ऋण मानकर इस खण्ड को शुद्ध परिमार्जित रूप प्रदान करने वाले मनीषी डॉ. रमाकान्त झा जी का सादर आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी संस्कृत संस्थान के प्रकाशनों पर कृपा बनी रहेगी। संस्थान के सहायक निदेशक डॉ. चन्द्रकान्त द्विवेदी को विशेष आभार प्रकट करते हुए मैं उन सभी सहभागियों को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने अहर्निश प्रयास करके इसे निर्धारित समय की सीमा अन्तर्गत प्रकाशित कराने में अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन सभी लेखकों का भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य जानकारी एवं विचार को लेखों के माध्यम से ही उपलब्ध कराया तथा जिन्हें इस ग्रन्थ में पुष्पों के रूप में ग्रथित किया जा सका। शिवम् आर्ट प्रेस का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुद्रण की सीमाओं के बावजूद इसे यथासम्भव शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने में अपना अमूल्य सहयोग दिया। सबसे बड़ा आभार तो उस परमनियन्ता की उस परमाशक्ति को जो हम सभी को ऐसे सत्कार्यों की ओर प्रेरित करती रहती है पग-पग पर हमें नियंत्रित तथा निर्देशित करती है जिनकी कृपा के बिना अनेक बाधाओं से संरचित इस संसार में कुछ भी सम्भव नहीं होता।

रामनवमी वि. संवत २०६०

विनयावनत

**सच्चिदानन्द पाठक**

निदेशक

# अध्यक्षीयम्

मानवानां कृते परमेश्वरस्य वरदानस्वरूपेण स्फुटा वाक् स्फुरिता, मननशीलाना-मेषामनुभूत्यभिव्यक्त्योः मणिकाञ्चनसंयोगो यदा वाचा स्फुरति तदा स वाङ्मय इति कथ्यते। एवं भूतस्य संस्कृतवाङ्मयधारा आसृष्टेरजस्रं प्रवहति। तच्च वाङ्मयं द्विविधम्-शास्त्रं काव्यञ्च।

शास्त्रं ज्ञानात्मकसाहित्यम्, काव्यं रागात्मकम्। तत्र काव्यं नित्यनूतनं स्फुरति कदापि पुरातनं न भवति। कविः लोकोत्तरवर्णना निपुणो भवति (वर्णनानिपुणः कविः) तत् कर्म काव्यम्। कविः चराचरात्मकजगन्निर्माणकुशलस्य वेधसः समानयोगक्षेमः। यथा वेधाः स्वकल्पनया नित्यनूतनं नामरूपात्मकं दृश्यं जगन्निर्माति तथा काव्यस्रष्टाऽपि नवनवोन्मेषशालिन्या प्रज्ञयाऽभिनवं प्रतिभासमानं काव्यं निर्माति। अतएव श्रुतिः कविरित्याख्यया जगद्विधातारं विधातारं निर्दिशति–

**"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः"**। (ईशावास्योपनिषद्)

तच्च काव्यं-सहृदय-हृदयाह्लादिशब्दार्थमयं भवति। तच्च त्रिविधम्-गद्यं, पद्यं च मिश्र ञ्च। तत्र गद्यं पद्यापेक्षया प्राचीनं वर्तते। यदुक्तं राजशेखरेण **अतः पूर्वं हि विद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्। गद्यं वृत्तगन्धोज्जिझतमनियताक्षरं भवति।**

तदुक्तं वृत्तगन्धोज्झितं तच्चतुर्विधम्। साहित्यदर्पणेऽप्युक्तम् - (६/१३४)-

वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्।। इति।

गद्यकाव्यस्योदाहरणानि यथा सुबन्धुदण्डिबाणभट्टादिभिर्निर्मितानि गद्यकाव्यानि यदा समालोचकैरास्वादितानि तदा तेषां लक्षणं, भेदाश्च स्फुटतया निर्दिष्टानि। तथा हि विश्वनाथः-कथाऽऽख्यायिकयोः स्वरूपं निर्दिशन् प्राह (साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे)–

"कथायां सरसं वस्तुगद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्रभवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।। (६।३३२-३३। इति।

एतदुदाहरणं कादम्बर्यादि वर्तते। आख्यायिका लक्षणं च तत्रैव (३३४-३३५ १/२)–

आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्।।

**कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।**
**आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येनकेनचित्।**
**अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।। इति**

आख्यानादयश्च कथाऽऽख्यायिकयोरेवान्तर्भाव्यान्न पृथगुक्ताः।

**तदुक्तं दण्डिना-"अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः।**
**इति। (काव्यादर्श)**

आख्यायिकाया उदाहरणं हर्षचरितादि। आख्यानं च पञ्चतन्त्रादयः। कथाख्यायिकयोरुदाहरणं बाणभट्ट एव सर्वप्रथमं स्वयं निबध्य प्रस्तुतवान्।

**स स्वयं हर्षचरितमाख्यायिकां, कादम्बरीं च कथामाह।"**
**करोम्याख्यायिकाम्भौधौ जिह्वाप्लवनचापलम्।। (हर्षचरित १/१६)**
**"धियानिबद्धेयमतीद्वयी कथा"।।** इति (कादम्बरी कविवंशवर्णनप्रस्तावे)

आख्यायिकायाः कथावस्तु इतिहासप्रसिद्धं प्रख्यातं भवति, कथायां तु कल्पितं भवति। भोजराजश्च गद्यपद्ययोर्विषयविभागमपि कृतवान्। तथाहि सरस्वतीकण्ठाभरणे-

**कश्चिद् गद्येन पद्येन कश्चिन्मिश्रेण शक्यते।**
**कवितुं कश्चन द्वाभ्यां काव्येऽर्थः कश्चन त्रिभिः।।** इति

अस्यार्थः-कश्चिदर्थ : गद्येनैव कवितुं शक्यते, यथा-अटवीवर्णनं, तद् यथा गद्येन विधातुं शक्यते न तथा पद्येन। तत्र गद्यमेव प्रगल्भते। एवं काव्यशास्त्रता निर्वाहोचितेऽर्थे यथा पद्यमुत्सहते न तथा गद्यम्। कथायामाख्यायिकायां च गद्यमेव प्रगल्भते। चम्पूकाव्यं मिश्रेणैव स्वदते। इति तु अर्थौचित्यगवेषणया निश्चीयते। स्वरूपत एव पद्यादिकं कवेः "परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्" आवेदयद् सहृदयहृदयावर्जकमवसीयते। अतएव कस्यचित् कवेः पद्यनिर्माणे -एवापरस्य गद्यबन्धे एव निर्माणकौशलं स्फुरल्लक्ष्यते। तदुक्तम् तत्रैव-

**"यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धेऽपि तादृशः।**
**गत्यां गत्यामियं देवी विचित्रा हि सरस्वती।। (२/२०)**

अतः कवेः शक्ति-व्युत्पत्ती पात्रस्यौचित्यम्, उभयोर्रुचिमाश्रित्य प्रयोगव्यवस्था क्रियते-

**"यथामतिर्यथाशक्तिर्यथौचित्यं यथारुचिः।**
**कवेः पात्रस्य चैतस्याः प्रयोग उपपद्यते। (तत्रैव २/२१)**

गद्यकाव्यमतीव प्रशंसितमालोचकैः -**"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।"**
इत्यादिभिः सूक्तिभिः।

## गद्यकाव्यस्य वैशिष्ट्यम्-

ये भावा अभिप्राया वा वाक्यबाहुल्ये नान्यत्र वर्णयितुं शक्यास्त एव लघुना समस्तेन पदेन प्रकाशयितुं शक्यन्ते। 'समसनं समासः' स च बहुनांपदानामेकपदविधाने समर्थः। गद्यमपि अतिरुचिरं श्रुतिमधुरं सहृदयावर्जकं भवति। यथा मुक्तकं गद्यं समासरहितं भवति। **यथा-यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, रूपे मनसिजेन; सवित्रा च बसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्व-रूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य। (कादम्बरी कथामुखे)**

**वृत्तगन्धि**-अत्र वृत्तानां गन्धो भवति। यथा- "**अम्बिकाकरतलमिव रुद्राक्षग्रहणनिपुणम्, शिशिरसमयसूर्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्, बडवानलमिव सततपयोभज्यम्.....जाबालिम्।**" (कदाम्बरी पूर्वार्ध जाबालिवर्णनम्)।

**उत्कलिका**-प्रायः दीर्घसमासं भवति। यथा- "**उद्दामकेकारवानुमीयमानमरकत-कुट्टिमस्थित शिखण्डिमण्डलम्, अतिशिशिरचन्दनविटपिच्छायानिषण्ण-निद्रायमाण-गृहसारसम्-।**" (कादम्बरी राजकुलवर्णनम्)। **चूर्णकम्**-एतदल्पसमासकं भवति। यथा-

"**सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजो विकारैरासन्नवर्तिनां शिरः शूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव -इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति। उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते। कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते**" (कादम्बरीपूर्वार्धे शुकनासोपदेशे !)। इत्थं यैः कविभिः सरसं गद्यं निर्मितं त एव कवयः कथ्यन्ते। गद्यमधुरतायै यावान् शब्दानां तारतम्य-भावोऽपेक्षितस्तावानेव पद्यमाधुर्ये, तथा कोमलकान्तपदावली पद्यादपि समधिका गद्येऽपेक्षिताऽस्ति।

## पूर्वे कवयो गद्यमेव ददृशुः

ऐतरेय ब्राह्मणे-"अग्निर्वैदेवानायवयो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता। अग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति"....(१/१)।

छान्दोग्ये-"यत्र नान्यत् श्रृणोति नान्यद् विजानाति तद्भूमा। अथ यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।।"

पुराणेषु गद्यपद्ययोः मिश्रणं क्वचिल्लक्ष्यते। यथा श्रीमद्भागवते-

(पञ्चमस्कन्धे)

"सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हति इति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत-इत्यादि।" इत्थमतिरुचिरं गद्यकाव्यं वर्तते तल्लेखकेषु सुबन्धुरेव प्रथमः। स हि वासवदत्तां कथां निवबन्ध इति।

**अथ पद्यम्**-पद्यं च छन्दोबद्धं नियताक्षरं भवति। ''तच्च एकद्वित्रिश्चतुश्छन्दोभिर्मुक्तक-सान्दानितक- विशेषककलापकानि इति मुक्तकभेदाश्चत्वार, इति हेमचन्द्रः

(काव्यानुशासनम् ८/११)

क्वचित् पञ्चविधमप्युक्तम्। प्रबन्धकाव्यं-खण्डकाव्यं महाकाव्यभेदाद् द्विविधम्। तत्र गद्यकाव्यं लोके सुबन्धु-दण्डि-वाणभट्टादिभिर्निबद्धम्। अनयोर्गद्य-पद्यमुभयोः काव्ययोः पृथक् पृथक् विलक्षणमास्वादमास्वाद्योभयात्मक-रचनानन्दानुभुतिमेकत्र सम्पादियतुं चम्पूकाव्यं कवन्ते कवयः। तदुक्तं हरिचन्द्रेण-गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्। हर्ष-प्रकर्षं तनुते मिलित्वाद्राग्बाल्यतारुण्यवतीव कन्या।। । जीवनन्धरचम्पू : १/६।

नृपत्वकवित्वोभयसम्पादिकाभ्यां युगपदेव लक्ष्मी - सारस्वतीभ्यां समालिङ्गितो नन्दित बुधसमाजो भोजराजश्चाह -**''गद्यानुबन्ध रसमिश्रित पद्य सूक्ति हृदया हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।**

**तस्माद् दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया।।**
(चम्पूरामायणम् बालकाण्ड ३)
वैंकटाध्वारिरपि विश्वगुणादर्शचम्वां (१/४) निगदति -
**पद्यं यद्यपि विद्यते बहु सतां हृद्यं विगद्यं न तत्**
**गद्यं च प्रतिपद्यते न विजहत् पद्यं बुधा स्वाद्यताम्।**
**आदत्ते हि तयोः प्रयोग उभयोरामोदभूमोदयं**
**सङ्गः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीकमृद्वीकयोः।। इति**
शरभोजिराजः कुमारसम्भवचम्वां (१/६) प्राह -
**पद्यं हृद्यमपीह गद्यरहितं धत्ते न हृद्यास्पदं**
**गद्यं पद्यविवर्जितं च भजते नास्वाद्यतां मानसे।**
**साहित्यं हि तयोर्द्वयोरपिसुधामाध्वीकयोयोगिवत्**
**सन्तोषं हृदयाम्बुजे वितनुते साहित्यविद्याविदान्।। इति च।**

आधुनिका कथयन्ति चम्पूकाव्यं गद्यकाव्यस्यैव प्रकारान्तरेणोपबृंहणं प्रतीयते परमिदं न रोचते साधु समीक्षकेभ्यो विदग्धेभ्यः। नलचम्पू - वरदाम्बिका - परिणयादिचम्पूषु सत्सपि गद्यबाहुल्येषु चम्पूरामायणं-महाभारतचम्वादिषु पद्यस्यैव बाहुल्यं दृश्यते। वीरभद्रचम्वां नीलकण्ठविजयचम्वां चोभयो-र्गद्य पद्ययोः साम्यं दृग्गोचरीभवति। चम्पूकाव्यस्य तादृशान्यपि वैशिष्ट्यान्युपलभन्ते यानि गद्यपद्यकाव्येषु नोपलभ्यन्ते।

वेदोऽप्यपौरुषेयात्मकं काव्यं वर्तते। तत्र ऋग्वेदः पद्यमयम्, यजुर्गद्यमयम्। विभागात् पूर्वं गद्यपद्यमयं वेद आसीत् चम्पूरूपम्। इत्थं संस्कृतसाहित्ये मिश्ररचनाया मूलं वेद स्वोपलभ्यते। कृष्णयजुर्वेदस्य तैतिरीयमैत्रायिणी, - कठशाखासु गद्यपद्यात्मिका मिश्ररचना बहुत्रोपलभ्यते।

ब्राह्मणग्रन्थेषु मिश्ररचना पद्धतिः दृश्यते। ऐतरेय ब्राह्मणे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं तन्निदर्शनम्। यद्यपि ब्राह्मणे प्रोक्तानि उपाख्यानानि - अलङ्कृतानि न सन्ति।

उपनिषत्स्वपि यद्यपि संख्यावैषम्यं गद्यपद्ययोरस्ति तथापि मिश्रारचनातूपलभ्यत एव। केनोपनिषदः द्वितीयः खण्डः गद्येनोपक्रान्तः पद्येनोपसंहृतश्च दृश्यते। श्वेताश्वतरोपनिषत् कठोपनिषच्च प्रश्नमुण्डकोपनिषच्च गद्यपद्यमयी दृश्यते। वस्तूपमा-रूपक-विरोधाभास -दृष्टान्तादयोऽलङ्काराअपि उपलभ्यन्ते जातकमाला आर्यसूरिकृता मिश्ररचनाया निदर्शनम्।

पञ्चतन्त्रादीनि मिश्ररचनाया उदाहरणानि।

पुराणानि बाहुल्येन पद्यात्मकान्येव सन्ति, तथापि बहुन्युपाख्यानानि गद्यैः पद्यैश्च निर्वद्धानि सन्ति। प्रशस्तयो जातकमालाख्यमिश्ररचना-निदर्शनभूता उपलभ्यन्ते। इत्थं दृश्यते वैदिकसाहित्ये मिश्ररचनाया बीजं, ब्राह्मणेऽङ्कुरितमुपनिषत्युकन्दलितं, पुराणेषु पल्लवितं, प्रशस्तिषु जातकेषु च पुष्पितं, चम्पूकाव्यरूपेण च फलितम्। तत्र चम्पूकाव्यस्य प्रथमं निदर्शनं नलचम्पूकाव्यं त्रिविक्रमभट्टस्य रचनारूपं दशमशताब्द्यां प्रादुर्भूतम्।

**चम्पूलक्षणम्** - चम्पूकाव्यं भामहेन न निर्दिष्टं परं दण्डिना "गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते" इति लक्षणं काव्यादर्शे १/३१) दर्शितम्। परमिदं लक्षणम् अविवेचित निदर्शनमिव भाति। हेमचन्द्रश्चाह-"गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासाचम्पूः (काव्यानुशासने ४/९)

परं बहुषु चम्पूकाव्येषु स्तबका भवन्ति, नोच्छ्वासाः। यथा- भागवत भारत विजय-आनन्दवृन्दावनादिषु। यशस्तिलकचम्पू,-नीलकण्ठविजय- द्रौपदी परिणयादिषु आश्वासाः सन्ति। यतिराजविजय,-काकुत्स्थविजय,-शिवविलासादिषु परिच्छेदका उल्लासाः सन्ति। रामायणाचम्वादिषु तरङ्गा उपलभ्यन्ते। अतः साङ्का सोच्छ्वासा इति यल्लक्षणे विन्यस्तं तत् लक्ष्यताऽवच्छेदकं न व्याप्नोति।

डॉ. सूयकान्तोऽपि सिंह चम्पूकाव्यस्य भूमिकायां केनचित् कृतं चम्पूलक्षणमुदाहृतवान् - "गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छासा कविगुम्फिता।

उक्ति प्रत्युक्ति - विष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता ।। इति

परमिदमपि लक्षणं विश्वगुणादर्श-, वीरभद्रविजयादिषु उक्ति- प्रत्युक्ति- युक्तेषु अव्याप्तमेव भवति।

विश्वनाथश्च - "गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते" (साहित्यदर्पणे ६/३)

लक्षणमिदं श्रव्यकाव्यप्रस्तावे उक्तमतो दृश्ये नातिव्याप्तिः। श्रव्यकाव्यं च रसान्वितमलङ्कृतं भवत्येवेति विवेचनं बहुभिरिदं लक्षणं स्वीकृतम्।

इदं चम्पूकाव्यं ख्यातं प्रकीर्णमिति भेदाद् द्विधाभवतीत्यग्नि पुराणे उक्तम्। विश्वनाथस्तु मिश्ररचनायां राजस्तुतिः विरुदमुक्तवान्। विविधाभि-र्भाषाभिर्निवद्ल करम्भकमुक्तवान्।

"गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। करम्भकंतु भाषाभिर्विविधामि-र्विनिर्मितम्।। इति (साहित्यदर्पणे ६/३६ - ३७)

चम्पूकाव्यस्य महत्वं सूरिभिर्बहुधा वर्णितम्।

गद्यरचना तु "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" इत्यादिभिरुक्तिभिर्बहुप्रशंसिता। पद्यरचनाऽपि रसनिर्भराऽलङ्कृता छन्दोबद्धागेया भवतीति-उच्छलितयौवना सरोजनयना विधुवदना पिकवचना तरूणी रमणीव पदविन्यासमात्रेण युवजनमनोहरति। परं मिश्रकाव्ये गद्यपद्यभययोरुभयोर्वैशिष्ट्यात् माधीकमृद्वीकयोर्योगवत्। किं बहुना मुक्ताफल - पद्मराग - हीरक - नीलमणिसगुम्फिता कनकसाग्रिवाति निर्मला विदग्धजनमनोहारिणी कामपि कमनीयतां धत्ते।

उक्तं हि पद्मराजेन बालभागवते (१/३) --

पद्यैरनवद्यैरपि गद्यैर्ललितास्तु यैः कृतिभिरियं हृदया।

तुलसी-प्रबालविचकिलकलिता मालेव भगवतः शौरेः।। इति।

साहित्यविधाविदां तु मिश्ररचना सुधामाध्वीकयोगवत् हृदि सन्तोषं विधत्ते।

**चम्पूकाव्यम्** - दशमशताब्द्यां त्रिविक्रमदेवविरचितं नलचम्पूकाव्यमतिरमणीयं रसनिर्भरं श्लेषोपनिबद्धमलङ्कृतं गुणगुम्फितं चम्पूगगने गगनमणिरिवो-दितमद्यापि चञ्चच्चमत्कृति मनिशं, विदधद् विद्योतते। तदनु बह्व्यश्चम्प्वः रामायण-महाभारत-पुराण-जैनसाहित्य-देशमहत्त्व-चरित - कल्पनाप्रसूत-अध्यात्मनिष्ठ - यात्रा - दर्शन - समाजादिविषयानुपजीव्य रचिताः सञ्जनमनोहराश्चमत्कृतिं विदधाना प्रादुरभूवन्।

अन्तिमं च अनिरुद्धचम्पूकाव्यम्; पुराण-महाभारत - हरिवंशादिषु वर्णितम् ब्रह्मवैवर्तपुराणे च वर्णितम् (श्रीकृष्णजन्मखण्डे ११४ अध्याये)

अनिरुद्धोपाख्यानमाश्रित्यं विरचितमति रमणीयं रसनिर्भरं सचेतसां मनोहरति। अस्यरचयिता महाकविर्देवराजः गोरक्षपुरमण्डलान्तर्गत रुद्रपुर राज्यवास्तव्य आसीत्। अस्य पूर्वजाः शैर्णेतनरेन्द्र पूजिताः कण्ठस्थीकृतसर्ववाङ्मयाः विश्वविश्रुतकीर्तयः शाण्डिल्यमहर्षिवंशोद्भवाः दयाक्षमादिगुणगरिष्ठाः भगवता रामचन्द्रेण पूजिताः प्रख्यातयशसः सरयूवारेनिवसन्त आसन्। तेषु वाग्देव्याः हवच्छन्दवासभूमिः ज्ञानगाम्भीर्यसीमा गौरीकान्त आसीत्। तस्मात् श्रुतशीलसिन्धु उदारगुणौध-धामाभिरामकीर्ती रघुपतिः सुतोऽजायत। तस्य पुत्रोदेवराज आसीत्। मातुर्नाम गोदावरी आसीत्। अस्याश्रय प्रदाता श्रीशिवलालपादः शीर्णेत नरेन्द्र, आसीत्। अस्य राज्यं प्रसिद्धमासीत्। अयं गोविन्दयशो वर्णियितारं कृष्णं कविं स्मरति।

"सुगन्धिगोविन्दयशः करम्बिता जयन्ति कृष्णस्य सरस्वती सुधा।।" (अनिरुद्धचम्पूकाव्यम् १/५।)

अयं कृष्णकविः षोडशशताब्दयां जातोऽतस्तदनन्तरभावी देवराज इति निश्चीयते। इदमपि चम्पूकाव्यं श्री देवराजनिर्मित नवचम्पूकर्तारं विक्रमं स्पर्धते।

परं खेदास्पदमद्यावधि सरस्वतीभवनेऽप्रकाशितैव वर्तते। अस्योपरि डॉ. वायुनन्दनपाण्डेयस्य निर्देशकत्वे श्रीमती उर्मिला देवी शोधकार्यमपि कृतवती।

इत्थं चम्पूकाव्यानां विवरणमत्र समीचीनमुट्टङ्कितम्। यैर्विद्वद्भिः स्वनिबन्धेनापूरितोऽयं भागस्ते सर्वे विशिष्टाविद्वांसो धन्यवादार्हा सन्ति। तेषां समेषामाधमर्ण्यं वहामि।

यैरत्र साहाय्यं विहितं तेभ्योऽपि धन्यवादान् व्याहरामः।

अस्य खण्डस्य सम्पादकं श्रीजयमन्तमिश्राचार्यं विद्यावरिष्ठं लेखनकलाकुशलं स्वकीय-श्रद्धासुमनोभिः समर्च्य सम्भावयामि। खण्डेऽस्मिन् प्रशस्त - लेखकानां साहित्यशास्त्रमर्मज्ञानां श्रीमती डां. शिवशंकर उपाध्याय-त्रिलोकनाथझा-काशीनाथमिश्र-श्रीमती शारदा मिश्र-किशोरनाथझा- शिवशंकर प्रसाद महानुभानां कृते कृतज्ञतां ज्ञापयामि येषामालेखैर्ग्रन्थस्यास्य संपूर्तिः संजाता।

गद्यखण्डस्यास्य सम्पादने प्रकाशने च डॉ. रमाकान्त झा पर्याप्तं साहाय्यमकार्षीदतः डॉ. झा महोदयमपि साधुवादेन सभाजयामि।

अस्य सफलप्रकाशने संस्थानस्य निदेशकः डॉ. सच्चिदानन्द पाठकः, सहायक निदेशकः डॉ. चन्द्रकान्त द्विवेदी तथान्ये च विद्यारसिकाः सहयोगं कृतवन्तः एते सर्वेऽपि साधुवादार्हाः।

मन्ये गद्यकाव्यस्य चम्पूकाव्यस्य च वैशिष्ट्यसम्पादकोऽयं खण्डो विदुषामाम्मोदाय महते उपकाराय च सम्पत्स्यते।

वि.सं. २०६०
वर्षप्रतिपदा

नागेन्द्रपाण्डेयः
अध्यक्षः
उ.प्र. संस्कृत संस्थानस्य
लक्ष्मणपुरस्थस्य

# पुरोवाक्

## गद्य-साहित्यम्

अस्ति संस्कृत वाङ्मये गद्यकाव्यस्य स्वीयं वैशिष्ट्यम्। प्रथमतो वैदिकसंहितासु भवति गद्यस्य दर्शनम्। प्राचीनतमगद्यस्योदाहरणं कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीय संहितायां समुपलभ्यते। अस्यैव वेदस्य काठकमैत्रायणीसंहितयोरपि विद्यते गद्यस्यास्तित्वम्। अथर्ववेदस्य षष्ठो भागो वर्तते गद्यात्मक एव। समग्रोऽपि मन्त्रयज्ञव्याख्यापरो ब्राह्मणग्रन्थो गद्य एवोपनिबद्धः परिदृश्यते। प्राचीनोपनिषत्सु गद्यस्य प्राचुर्यं सुस्पष्टं परिलक्ष्यते। सिद्धान्तविवेचनप्रधानेषु दार्शनिक ग्रन्थेषु प्राप्यत एव गद्यस्य बहुलः प्रयोगः किन्तु ज्योतिषायुर्वेदसदृशवैज्ञानिकग्रन्थेषु नोपलभ्यते गद्यप्रयोग इति चिन्तनीया स्थितिः।

संस्कृतगद्यस्य वरीवर्ति विलक्षणता-लघुता। समासरीत्या स्वल्पैरेव शब्दैरधि-कार्थप्रकटनक्षमत्वमस्त्येव गद्यविधायाम्। "ओजो गुणः-समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्"। शास्त्रप्रदिपादक ग्रन्थेषु गद्यस्य भूयस्त्वं विद्यत एव। वस्तुतः संस्कृत गद्ये कोमलभावाभिव्यञ्जनसामर्थ्यं यथा वर्तते तथैव दार्शनिकगूढतत्त्वस्य प्रकटनक्षमत्वमपि विद्यते। संस्कृतभारत्या गद्यं प्राचीनता-प्रौढता-उपादेयता-भावाभिव्यञ्जनादीनां दृष्ट्या भारतीय साहित्यस्य वर्तते गौरवमयमङ्गम्।

अस्ति वैदिक कालतो मध्ययुगपर्यन्तं गद्यविकास्येतिहासोऽतीव रोचकः। संस्कृत गद्यस्योपलभ्येते द्वौ प्रकारौ-(१) वैदिककालिकः सरलो गद्यप्रकारः। (२) लौकिक संस्कृतस्य प्रौढः समासबहुलो गद्यप्रकारः। आस्तामुभयोरपि गद्यप्रकारयोः सौन्दर्यं मोहकत्वञ्च। वैदिक-लौकिक संस्कृतगद्ययोर्मध्ये पौराणिकगद्यस्यालङ्कारिक प्रासादिकस्वरूपत्वमपि वैशिष्ट्यं भजते। अभिलेखेषु समुपलब्धानि गद्यान्यपि प्रौढानि प्राञ्जलानि च दृश्यन्त एव।

दार्शनिकगूढतथ्यानां समाधानाय धार्मिक विचाराणां सम्यगवबोधाय च बहुभिराचार्यै-र्गद्यप्रयोगो भूरिशः कृत इति जानन्त्येव गुणैकपक्षपातिनो विद्वान्सः। एवं विधेष्वाचार्येषु सन्ति चत्वार आचार्याः प्रथिताः-

पतञ्जलि-शबरस्वामि-शंकराचार्यजयन्तभट्टाः।

महर्षिः पतञ्जलिः पाणिनेरष्टाध्यायाः सूत्राणां विशदं व्याख्यारूपं महाभाष्यं विलिलेख। समस्तमपि महाभाष्यं विद्यते गद्यात्मकम्। व्याकरणसदृशं दुर्बोधं शुष्कं च विषयं सरलकथोपकथनशैल्यां बोधगम्यं विधातुं सफलं प्रयासं चकार पतञ्जलिः। प्रौढमीमांसकश्शबर स्वामी कर्ममीमांसासूत्राणां भाष्यं विरचयामास। तस्य गद्यभाषाऽपि सुबोधा वर्तते। शंकरा चार्यस्य गद्य-सुषमा तु विलक्षणैव। आचार्यस्य वाक्यं वरीवर्ति सारगर्भं प्राञ्जलञ्च। शंकरा-चार्येण प्रमुखप्राचीनोपनिषदां, ब्रह्मसूत्रस्य भगवद्गीतायाश्च प्रवाहमय्यां गद्यशैल्यां प्रशस्तं भाष्यं

विलिख्य स्वरचनाकौशलस्य परिचयोऽदायि। दर्शनशास्त्रमर्मज्ञो मनीषी वाचस्पतिमिश्रः शङ्कराचार्यप्रणीतं भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं जगाद। प्रसन्नगम्भीरं शाङ्कर भाष्यं देववाण्या अनुपममस्ति सौन्दर्यम्।

"न हि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति" इत्येकेनैव सारगर्भेण वाक्येन शंकराचार्यः सम्पूर्णस्यापि लौकिकसत्यस्यैतिह्यं लिलेख। अस्ति जयन्त भट्टो न्यायशास्त्रस्य निष्णातो विद्वान्। अस्य 'न्यायमञ्जरी' न्यायदर्शनस्य प्रामाणिको ग्रन्थो विद्वत्सु नितरामस्ति प्रसिद्धः। जयन्तभट्टस्य व्यंग्योक्तिबहुला गद्य-गंगा वर्तते सरला प्राञ्जला च।

भगवान् बुद्धो लोकभाषायां पाल्यां स्वानुपदेशान् कथयामास। लोका जनभाषामाध्यमेन ममोपदेशरहस्यं सम्यग् जानन्तु इति लक्ष्यीकृत्यैव संस्कृतापेक्षया लोकभाषां पालिं स्वीचकार तथागतः। पालिगद्यस्यास्ति रूपद्वयम्-(१) जातकग्रन्थेषु समुपलब्धं सरलं गद्यरूपम्, (२) शास्त्रीय ग्रन्थेषूपलब्धं प्रौढं गद्यरूपम्। त्रिपिटकानां पालिगद्यमतीव सुबोधं वर्तते।

संस्कृतवाङ्मये गद्यात्मक कथानामुदयो विक्रमादपि प्रागभूत्। कात्यायनेन ४/२/६० सूत्रस्य स्ववार्तिके (आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यः) आख्यानस्य आख्यायिकायाश्च पृथगुल्लेखः कृतः। बृहत्कथायां पञ्चतन्त्रे तन्त्राख्यायिकायाञ्च कथाख्यायिकयोर्य उल्लेखः प्राप्यते तेन स्पष्टं प्रतीयते यद् गद्यकाव्यस्योद्भवो लोककथामाध्यमेनाप्यभूत्। कतिपयेषूपलब्धेष्वभिलेखेषु गद्यकाव्यस्य विकसितालंकृतरूपस्य परिज्ञानं जायते। अभिलेखेष्वेषु महाक्षत्रपस्य रुद्रदाम्नो जूनागढाभिलेखः समुद्रगुप्तस्य प्रयागप्रशस्तिलेखश्च प्रामुख्यं भजेते। रुद्रदाम्नोऽभिलेखकालः १५० ई. मन्यते। हरिषेणविरचितः प्रयागस्तम्भलेख ओजोगुणविशिष्टस्य गद्यकाव्यस्योदाहरणं विद्यते।

लौकिक संस्कृत गद्यकाव्यस्य चरमोत्कर्षो मध्यकालिकगद्यकवीनां सुबन्धु-बाण-दण्डिनां गद्यरचनासु प्राप्यते। तदानीमेव गद्यकाव्यस्य कथाख्यायिकाभेदयोः पृथगुदाहरणग्रन्थोऽपि निर्मितः। गद्यकविषु सुबन्धुरेव प्रथमः कविर्यस्य काव्यमलङ्कृतशैल्यां निबद्धमुत्कृष्टं विद्यते विरचनम्। बाणभट्टेन प्रशंसितः सुबन्धुर्निश्चितरूपेण बाणात् पूर्वकालिकः सिध्यति।

न्यायवार्तिककारस्योद्योतकरस्य (षष्ठशतकस्य) स्पष्टोल्लेखं "न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपामि" ति वाक्ये सुबन्धुः करोति अतः स उद्योतकरस्य पश्चाद्वर्ती स्वीक्रियते समालोचकैः। फलतः सुबन्धोराविर्भावकालः षष्ठशताब्द्या अवसाने सिद्ध्यति।

सुबन्धोरेकैव रचना विद्यते 'वासवदत्ता'। इयं 'वासवदत्ता' प्राक्तनाया उदयन-वासवदत्ताप्रणयकथायाः सर्वथा भिन्नैवास्ति। वर्ततेऽस्याः समग्रमपि कथावस्तु सुबन्धो मौलिकं कल्पनम्। अत्र कन्दर्पकेतु-वासवदत्तयोः प्रेमकथा श्लेषमय्यां गद्यशैल्यां चित्रिता विद्यते। 'वासवदत्ता' कथावस्तुनः स्वल्पतायां वर्णनप्राचुर्यस्य निदर्शनं प्रस्तौति। कविकौशलेन कथानके चत्कृतिप्रदानमेव कवेरुद्देश्यं परिलक्ष्यते। सुबन्धुर्वक्रोक्तिमार्गस्य निपुणः कविर्भण्यते-"सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।

वक्रोक्तिमार्गनिपुणाः चतुर्थो विद्यते न वा।।"

सुरभारत्यां बाणभट्ट एवेदृशः कविर्यस्य जीवनचरितं नास्ति तिमिराच्छन्नम्। स्थाण्वीश्वरस्य सम्राजो हर्षवर्धनस्यासीद्बाणः सभाकविः, अतोऽस्याविर्भावकालो निर्विवाद एव। हर्षचरितवर्णनानुसारेण बाणभट्टस्य कालः सप्तमशताब्द्याः पूर्वार्धो यतो हि बाणः हर्षवर्धनराज्यस्योत्तरकालिकः सम्मानितः सभापण्डितोऽवर्तत। बाणभट्टविरचितेषु नैकेषु ग्रन्थरत्नेषु 'हर्षचरितम्' 'कादम्बरी' इति ग्रन्थद्वयमेव बाणभट्टस्य महाकवित्वं प्रमाणयति।

अस्ति 'हर्षचरितम्' बाणभट्टस्यैतिहासिकं गद्यकाव्यम्। "करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवन-चापलम्" इत्युक्त्वा बाणभट्टो हर्षचरितमाख्यायिकां कथयति। अष्टसूच्छ्वासेषु विभक्तायामस्यामाख्यायिकायां स्थाण्वीश्वस्य हर्षवर्धनस्य जीवनचरितं सविस्तरमवर्णयद् बाणः। तत्र महाकविना बाणेन प्रारंभिकेषु त्रिषु उच्छवासेषु स्वजीवनवृत्तं शेषेसु पञ्चसु उच्छ्वासेषु सम्राजो हर्षवर्धनस्योदात्तं चरितवर्णनमकारि।

हर्षचरिते ऐतिहासिकविषयमवलम्ब्य गद्यकाव्यविरचनस्य प्रथमः प्रयासो वर्तते बाणभट्टस्य। हर्षचरितं शुष्कघटनाबहुलेतिहासापेक्षया विद्यते विशुद्धकाव्यशैल्यामुपन्यस्तं वर्णनप्रधानं काव्यम्। गद्यकाव्येऽस्मिन् वर्तते वीररसस्य प्राधान्यम् यथास्थानं करुणोऽपि रसः सन्निविष्टः सहृदयान् चमत्करोति। काव्यमिदमैतिहासिकं सदपि काव्यसौन्दर्यादभुतवर्णनचातुर्यात् च परां प्रसिद्धिं भजति।

अस्ति 'कादम्बरी' न केवलं बाणभट्टस्य अपि तु संस्कृतवाङ्मस्य अनुपमा गद्यरचना। कादम्बर्याः कथा नैकजननसम्बद्धा प्रत्युत नायकोपनायकयोश्चन्द्रापीडपुण्डरीकयोर्जन्मत्रय सम्बद्धा वर्तते। अत्रास्ति बाणस्य विलक्षणा कल्पना-नायिकाद्वारा नायकाप्राणरक्षणेन सह पुनर्मिलनप्रतीक्षा। वस्तुतः कादम्बरी विद्यते कालिदास्य आशाबन्ध-जननान्तरसौहृदयोरवतारणा। क्रान्तद्रष्टुः कवेः काव्यं मानवजीवनस्य परमोद्देशं निर्दिशति। काव्यस्यात्मा रसः रस आनन्दस्वरूपः। आनन्दानुभूतिरेव काव्यस्य चरमं प्रयोजनम्। लौकिकवासनात्मकप्रेमापेक्षया तपसा अलौकिकस्नेह प्राप्तिरेव मानवजीवनस्य शोभनं लक्ष्यमिति संदिशति कादम्बरी। गद्यकाव्यप्रणेतृषु पदलालित्ये प्रसिद्धिंगतस्य दण्डिनो नाम केषां न विदितम् ! अवन्तिसुन्दर्यां प्राप्यते महाकवेर्दण्डिनः स्वल्पपरिचयः। तदनुसारेणासीद् दण्डी महाकवेर्भारवेः प्रपौत्रः सनातनधर्मावलम्बिनामार्याणां पवित्रा नगरी काञ्ची आसीद् दण्डिनो जन्मभूमिः। शैवधर्मप्रवर्तकस्य पल्लवराज नरसिंह वर्मणो राज्यकालः ६६०–७१५ मन्यते। अतः काञ्च्याः पल्लवनरेशस्य सभाकवेर्दण्डिनोऽपि समयो बाणस्य पश्चात् अष्टमशताब्द्याः पूर्वार्धः स्वीक्रियते।

राजशेखरेण-त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः त्रयोदण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः" ।।

इति पद्ये दण्डिनः प्रबन्धत्रयस्य निर्देशः कृतः। दण्डिनः त्रिषु प्रबन्धेषु काव्यादर्शः अलङ्कारशास्त्रस्य मान्यो ग्रन्थो यस्मिन् काव्यतत्त्वानां सारगर्भं संक्षिप्तं वर्प्नं विद्यते। दण्डिनो

द्वितीयं दशकुमारचरितं रोचकाख्यानयुतं नितरां प्रसिद्धं गद्यकाव्यं सहृदयानां मनांसि रञ्जयति। सन्त्यस्य दशकुमारचरितस्य त्रयो भागाः-(१) भूमिका, (२) मूलग्रन्थः (३) पूरकभागः तत्र भूमिकाभागः पूर्वपीठिका नाम्ना प्रसिद्धः। पूरकभागश्चोत्तरपीठिका नाम्ना ख्यातः। एवं हि प्रारंभे पूर्वपीठिकया अन्ते च उत्तरपीठिकया सम्पुटितः समग्रोऽपि ग्रन्थो दशकुमारचरितमिति नाम्ना विख्यातः काव्यतत्त्वविदां समाजे। काव्येऽस्मिन् कुसुमपुरनगरस्य दशकुमाराणां कौतूहल-वर्धकं चरितं ललितपदविन्यासपूर्वकं वर्णितमस्ति। अवन्तिसुन्दरीकथा 'दण्डिनो विद्यते मौलिकरचना यस्यां दशकुमारचरितस्य पूर्वपीठिकावर्णितमितिवृत्तं वर्तते। दण्डिनः तृतीयं काव्यं वर्तते द्विसन्धानकाव्यं यस्मिन् श्लेषद्वारा रामायण-महाभारतयोः कथा उपनिबद्धाऽस्ति।

सुबन्धु-बाण-दण्डिभिः प्रवर्तितमार्गमनुसरन्तः परवर्तिनः कवयोऽपि कतिपयानि शोभनानि गद्यकाव्यानि विरचितवन्तः। तेषु धनपालस्य 'तिलकमञ्जरी', वादीभसिंहस्य गद्यचिन्तामणिः वामनभट्टबाणस्य 'वेमभूपालचरितम्', विश्वेश्वरस्य 'मन्दारमञ्जरी', अम्बिकादत्तस्य शिवराजविजय इति प्रामुख्यं भजन्ति। सुरभारत्यां गद्य-पद्यकाव्यव्यतिरिक्ता चम्पूः इतिनाम्नी वर्तते अपरापि काव्य-विधा। "गद्य-पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते" गद्य-पद्ययोर्विशिष्टमिश्रणेन निर्मितं काव्यमेव चम्पू उच्यते-गद्यकाव्यस्य वैशिष्ट्यमर्थगौरवात् पद्यकाव्यस्य च सुललितरागेण सह रमणीयार्थप्रतिपादनात् किन्तु अनयोरेकत्र समन्वयात् चम्पूकाव्यं सुतरामेव गद्य-पद्य काव्यापेक्षया मनोहरि इति आमनन्ति भावुकाः। प्रथमं महाकविना दण्डिनैव स्वलक्षणग्रन्थे काव्यादर्शे (११३१) चम्पूकाव्यस्य लक्षणं निर्दिष्टम्-"गद्य-पद्यमयी काचित् चम्पूरित्यपि विद्यते" अनेन प्रतीयत एव यत् तदानीमासीत् चम्पूकाव्यस्य सत्ता। वस्तुतो गद्य-पद्ययोर्मिश्रितरूपस्यैकत्र विन्यासो नितरां रुचिरो हृदयावर्जकश्चेति सुस्पष्टमेव।

चम्पूकाव्यं गद्यकाव्यस्यैव प्रकारान्तरेणोपबृंहणमतोऽस्योदयविकासौ गद्यकाव्यस्य स्वर्णयुगात् पश्चाद्वर्तिनौ। यद्यपि गद्यपद्ययोर्मिश्रित शैल्याः प्रयोग प्राचीनकालादेव दृश्यते। वैदिकयुगादारभ्य पौराणिक कालं यावत् मिश्रशैल्या उदाहरणानि प्राप्यन्ते किन्तु तानि चम्पूकाव्यकोटौ नायान्ति। चमत्कारिणी शैली, मनोहारिणी कल्पना, समस्तपदानां प्राचुर्यम्, विशेषणबाहुल्यम् अलङ्कार विन्यासश्चेति सन्तीमानि चम्पूकाव्यस्य वैशिष्ट्यानि। एभिर्वैशिष्ट्यैः समलंकृतं चम्पूकाव्यं पाषाणयुगादारभ्य अद्यावधि संस्कृतवाङ्मये पृथक् काव्यविधारूपेण समाद्रियते।

संस्कृते कथानां विषयेऽस्त्येकं विपुलं कथासाहित्यं यस्य न केवलं भारते, प्रत्युत विदेशेऽपि प्रभावोऽवलोक्यते। भारतवर्षस्य त्रिषु धार्मिकसम्प्रदायेषु कथाख्यानयोरूपयोगः स्वसिद्धान्तप्रचाराय बहुशः कृतः। वैदिकसाहित्यस्य ब्राह्मणेषु उपनिषत्सु च प्राप्ताख्यानानां संकेतः ऋग्वेदस्य सम्वादसूक्तेषु मिलत्येव। जैनसाहित्ये प्राकृत-संस्कृतापभ्रंशभाषासु कथानां विस्तरः समुपलभ्यते। बौद्धेषु पालिभाषायां निबद्धाः कथा जातक नाम्ना विख्याताः। सन्त्यासु जातककथासु भगवतो बुद्धस्य पूर्वजन्मनां कथा उपनिबद्धाः। जातककथासु

ऐतिहासिक-भौगोलिकसामाजिकविषयाणां साम्ग्यः प्राचुर्येण समुपलभ्यन्ते यासां सामग्रीणां परिशीलनेन बुद्धादपि प्राक्तनकालिकेतिहाससमाजयोः स्वरूपं सम्यग् ज्ञायते।

भारतीय साहित्ये प्राचीनकाले कथायाः चक्रद्वयमुपलभ्यते-(१) बृहत्कथा, (२) पञ्चतन्त्रम्। अनयोः बृहत्कथा प्राचीनतरा। पैशाची भाषायामुपनिबद्धा बृहत्कथा सम्प्रति मूलरूपे नोपलभ्यते किन्तु संस्कृते निबद्धं पञ्चतन्त्रमद्यापि तस्यामेव भाषायां सुरक्षितं विद्यते। उपयुर्क्तयोरुभयोरपि कथाग्रन्थयो-रनुशीलनं भारतीय कथासाहित्य स्वरूप-विकासज्ञानाय अतीवाश्वयकं विद्यते।

'बृहत्कथा' अद्भुतयात्राविवरणस्य प्रणयप्रसंगस्य च ईदृशो गभीरः सागरः यस्यैकेन बिन्दुना विविधाः कथा विरचिताः। तथाहि-

सत्यंबृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृताः
तेनेतरकथाः कन्थाः प्रतिभान्ति तदग्रतः।। (तिलकमञ्जरी)

बृहत्कथायाः चत्वारि संस्करणानि प्राप्यन्ते-बृहत्कथाश्लोकसंग्रहः, वसुदेवहिण्डी बृहत्कथामञ्जरी-कथासरित्सागरः इति पंचतंत्रे यासां कथानां संग्रहः ताः कथा भारते प्राचीना विभिन्नासु शताब्दीषु प्रान्तेषु च पंचतन्त्रस्य बहुनि संस्करणानि जातानि तेषु प्राचीनतमं संस्करणं 'तन्त्राख्यायिका इति नाम्ना प्रसिद्धम्। हितोपदेशः पञ्चतत्रमाधारीकृत्य विरचितः लोकप्रियः कथाग्रन्थः विद्वत्सु नितरां ख्यातिंगतोऽस्ति। वस्तुतः पञ्चतन्त्रं समग्रस्यापि विश्व-साहित्यस्य एको दिव्यो निधिः यस्मिन् कथामाध्यमेन नीतेरुपयोगिनी शिक्षा प्राप्यत एव। संस्कृतवाङ्मयेतिहासस्य पञ्चमोऽयं गद्यखण्डः सप्तसु प्रकरणेषु विभाजितो यस्मिन् गद्यसाहित्यस्य साङ्गोपाङ्ग विवेचनं विद्यते। तत्र सन्ति इमानि प्रकरणानि-

(१) गद्यकाव्यम्, (२) चम्पूकाव्यम्, (३) कथासाहित्यम्, (४) लौकिक संस्कृत कवयित्रीनां-रचनाः, (५) परिशिष्टांशः (थेरीगाथा) (६) नीतिशास्त्रस्येतिहासः, (७) अभिलेख-साहित्यम्।

उपर्युक्तेषु सप्तसु प्रकरणेषु गद्यकाव्यविवेचनक्रमे प्राचीनकालत इदानीं यावत् गद्यकाव्यलेखकानां तेषाञ्च कृतीनां विशदं विश्लेषणं विदुषो लेखकस्य काव्याकलनक्षमतां द्योतयति। चम्पूकाव्यस्य वर्गीकृतं समीक्षणं काव्यस्यास्य विषयव्यापकत्वमभिव्यनक्ति। कथावस्तुदृष्ट्या समुपलब्धचम्पूकाव्यानां वर्गीकरणं नवसु शीर्षकेषु निर्दिष्टं विद्यते-(१) रामायणकथाश्रितं चम्पूकाव्यम्, (२) महाभारतकथाश्रितं चम्पूकाव्यम्, (३) पुराणाश्रितं चम्पूकाव्यम्, (४) जैनग्रन्थाश्रितं चम्पूकाव्यम्, (५) महापुरुषजीवनचरिताश्रितं चम्पूकाव्यम्, (६)यात्राप्रबन्धात्मकं चम्पूकाव्यम्, (७) देवमहोत्सवाश्रितं चम्पूकाव्यम्, (८) दार्शनिकं चम्पूकाव्यम्, (६) काल्पनिकं चम्पूकाव्यम्। इमानि चम्पूकाव्यानि मूलग्रन्थे खण्डसम्पादकस्य संस्कृतभूमिकायाञ्च सविस्तरं वर्णितानि तानि तत्रैव द्रष्टव्यानि गुणैकपक्षपातिभिः सुधीभिः।

अस्ति कथासाहित्यस्य क्षेत्रमत्यन्तं व्यापकम्। सन्दर्भेऽस्मिन् विद्वान् लेखको वेदब्राह्मणोप-

निषत्सु प्राप्ताख्यानानां च पर्यवेक्षणं प्राञ्जलया भाषया कृतवान्। बौद्ध-जैनसाहित्येषु च समुपलब्धकथावैभवस्य विस्तृतोल्लेखो नितरामुपादेयः। उपदेशप्रदनीतिमूलककथासु पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-पुरुषपरीक्षाणां सर्वेक्षणं लेखकस्य सूक्ष्मविवेचनसामर्थ्यं प्रकटयति। मनोरंजककथासु बृहत्कथा-कथामञ्जरी-कथासरित्सागर-वेतालपञ्चविंशति- शुकसप्तति-सिंहासनद्वात्रिंशिकाप्रभृतयः कथाग्रन्थाः विवेचनविषयकोटौ समागताः सन्ति। अस्मिन्नेव प्रकरणे आधूनिक-कथा-साहित्य सूचनाऽपि प्रकरणस्यास्य महत्त्वं व्यनक्ति। संस्कृतसाहित्य कवयित्रीनामृषिकानां च रचनानां चर्चाऽपि महत्त्वपूर्णा विद्यते। परिशिष्टांशे बौद्धभिक्षुणीनां गीतान्यपि निर्दिष्टानि सन्ति। 'नीतिशास्त्रस्येतिहासः' इति प्रकरणे मुख्यतः चाणक्यनीतिदर्पण-भर्तृहरिशतक-भामिनीविलास-शतकावली-कुट्टनीमत-आर्यासप्तशती-कविकण्ठाभरण- देशोपदेश-नीतिरत्नादयो प्रमुखा ग्रन्थाः सम्यग् विवेचिताः सन्ति। अत्रैव विदग्धमुखमण्डनमिति प्रहेलिकाकाव्यमपि चर्चितं विद्यते। अभिलेखसाहित्ये पालि-प्राकृत-संस्कृताभिलेखैः सह बृहत्तर- भारतस्याभिलेखानां सविस्तरः परिचयोऽभिलेखानां माहात्म्यं द्योतयति लेखकस्य वैदुष्यमपि सम्यग् व्यनक्ति।

खण्डस्यास्य सम्पादकः प्रो. जयमन्त मिश्रः साहित्यशास्त्रस्य लोकविश्रुतोऽस्ति मर्मज्ञो मनीषी। अस्य महानुभावस्य वैदुष्यपूर्णे सम्पादकत्वे प्रस्तुत ग्रन्थस्य प्रकाशनं सुतरां प्राशस्त्यं भजति। मिश्रमहाभागस्य विस्तृते संस्कृतसम्पादकीये समग्रस्य गद्यसाहित्यवैभवस्याकलनमस्य सारस्वतसाधनाया द्योतकम्।

अहं प्रो. जयमन्त मिश्र महोदयाय हार्दिकं साधुवादं ददामि। खण्डस्यास्य समेऽपि लेखकाः स्व-स्वविषयाणां निष्णाता विद्वान्सस्तेऽपि साधुवादार्हाः येषामालेखैः ग्रन्थस्यास्य उपयोगिता संवृद्धा। येषां विदुषां साहित्यसम्पद्भिः प्रत्यक्षपरोक्षतया गद्यखण्डस्य सम्पूर्तिः संजाता तान् प्रति कृतज्ञतां ज्ञापयामि।

खण्डस्यास्य प्रकाशन सन्दर्भे उत्तर-प्रदेशस्य शासन-विभागाधिकारिणः संस्कृत-संस्थानस्य कार्यकारिण्याः सदस्याश्च धन्यवादार्हा येषां सार्थकसहयोगेनोत्साहवर्धनेन च पुस्तकस्य प्रकाशनं यथासमयमभूत्।

संस्थानस्य निदेशकसहायक निदेशक महोदयावपि साधुवादार्हौ, ययोः सक्रियः सहयोगः संस्थानप्रवतिर्तस्य कार्यक्रमस्य साफल्येऽपूर्वां भूमिकां सम्पादयति।

गद्यखण्डस्य सम्पादन-प्रकाशनक्रमे ममान्तेवासी डॉ. रमाकान्त झा पर्याप्तं साहाय्यमकरोदतः तमपि स्वाशीर्वचोभिः संयोजयामि।

अन्ते च शिवम् आर्टस्य व्यवस्थापकान् द्विवेदिबन्धून् प्रति शुभकामनां प्रकटयामि येषां सक्रियः सहयोगो गद्यखण्डस्य निर्विघ्नमुद्रणे उपयोगी अभूदिति शम्।

महाशिवरात्रि
विक्रमसम्वत् २०५५

**बलदेवोपाध्यायः**
शारदा निकेतन
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी-५

# भूमिका

## गद्य-साहित्य

संस्कृत वाङ्मय के गद्य-साहित्य की अपनी विशिष्टता है। वैदिक संहिताओं में सर्वप्रथम गद्य का दर्शन होता है। वैदिक साहित्य में गद्य भारती की झलक हमें यजुर्वेद में मिलती है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होता है। इसी वेद की अन्य काठक, मैत्रायणी संहिताओं में भी गद्य की सत्ता विद्यमान है। अथर्ववेद में भी गद्य का उदाहरण मिलता है। अथर्ववेद का षष्ठ भाग गद्य में ही निबद्ध है। वैदिक मन्त्रों और यज्ञों का व्याख्यापरक समग्र ब्राह्मणग्रन्थ गद्य में ही लिखित है। वेद के अन्तिम भाग आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों में गद्य का प्राचुर्यस्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

दार्शनिक ग्रन्थों में जहाँ किसी सिद्धान्त का विवेचन ही मुख्य विषय है, गद्य का प्रचुर प्रयोग मिलता है, परन्तु ज्योतिष तथा आयुर्वेद जैसे वैज्ञानिक विषयों के ग्रन्थों में गद्य का दर्शन नहीं होता। पद्य रचना के प्रति विशेष पक्षपात का मुख्य कारण है-पद्य की छन्दोबद्ध संगीतमयता। गद्य की अपेक्षा पद्य शीघ्र याद होता है और वह स्मृतिपटल अमिट रूप से अङ्कित रहता है। संस्कृत गद्य की प्रथम- विशेषता है-लघुता। समासपद्धति से अधिकाधि ाक अर्थ को कम से कम शब्दों में अभिव्यक्त करने की क्षमता गद्य विधा में है। ओज गुण अर्थात् समास का बाहुल्य गद्य का प्राण तत्त्व है-"ओजः समासभूयस्त्वमेतद्‌गद्यस्य जीवितम्"। समास बहुल गद्यबन्ध का सद्‌भाव प्रथम तथा द्वितीय शतक के शिलालेखों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। क्षत्रप रुद्रदामन् के शिलालेख और हरिषेण की प्रयाग-प्रशस्ति के गद्य प्रौढ़, समास बहुल तथा उदात्त हैं।

शास्त्रीय ग्रन्थों में भी गद्य का प्राचुर्य है। विचार-विनिमय तथा शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन का उचित माध्यम गद्य ही है। वस्तुतः संस्कृत गद्य में कोमल भावों को प्रकट करने की जितनी शक्ति है, उतनी ही दर्शन के दुरूह तथ्यों को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी उसमें है। संस्कृत साहित्य का गद्य प्राचीनता, प्रौढ़ता, उपादेयता तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भारतीय साहित्य का गौरवमय अङ्ग है।

वैदिक काल से मध्ययुग तक गद्य के विकसन का इतिहास बड़ा ही रोचक है। संस्कृत में गद्य के दो प्रकार के रूप मिलते हैं-वैदिक काल का सरल बोल-चाल का गद्य तथा लौकिक संस्कृत का प्रौढ़, समास बहुल, गाढ़ बन्ध वाला गद्य। दोनों प्रकार के गद्यों में सौन्दर्य तथा मोहकता है। वैदिक तथा लौकिक संस्कृत गद्य के मध्य पौराणिक गद्य भी आलंकारिक तथा प्रासादिक है।

अभिलेखों में उपलब्ध गद्य भी प्रौढ़, आलंकारिक तथा प्राञ्जल हैं।

दार्शनिक गुत्थिओं को सुलझाने तथा शास्त्रीय विचारों को सरलता से समझाने के लिए धार्मिक आचार्यों ने पर्याप्त मात्रा में गद्य को प्रश्रय दिया है। अपने मनोगत भावों को प्रकट करने की ओर विशेष ध्यान देने के कारण आचार्यों ने शब्द सौन्दर्य के मोह का संवरण किया है, किन्तु इनमें कुछ ऐसे भी आचार्य हैं जिनकी गद्य-गंगा विषय के अनुकूल ही रसपेशल प्राञ्जलता को लिए प्रवाहित दीख पड़ती है। ऐसे आचार्यों में मुख्यतः चार आचार्य उल्लेखनीय हैं-पतञ्जलि, शबरस्वामी, शंकराचार्य और जयन्त भट्ट महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों की विशद व्याख्या के रूप में महाभाष्य की रचना की है। समस्त महाभाष्य गद्यात्मक है। पतञ्जलि ने व्याकरण जैसे कठिन और शुष्क विषय को भी सरल तथा कथोपकथन शैली में प्रस्तुत कर सुगम बनाने का सफल प्रयास किया है। शबर स्वामी प्रौढ़ मीमांसक हैं। उन्होंने कर्ममीमांसा-सूत्रों पर प्रसिद्ध भाष्य लिखा है। उनकी गद्य-भाषा सरल और सुबोध है। शंकराचार्य की गद्य सुषमा निराली है। उनके वाक्य सारगर्भ तथा प्राञ्जल हैं। आचार्य शंकर ने प्रमुख उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता पर प्रवाहमयी गद्यशैली में भाष्य लिखकर अपने रचना कौशल का परिचय दिया है। दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ मनीषी वाचस्पति मिश्र ने आचार्य शङ्कर के भाष्य को प्रसन्न गम्भीर कहा है। शंकराचार्य का प्रसन्न गम्भीर गद्य संस्कृत भारती का अनुपम सौन्दर्य है।

"न हि पदभ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति" अर्थात् पैरों से भागने में समर्थ व्यक्ति के लिए घुटनों के बल रेंगना शोभा नहीं देता, इस एक ही सारगर्भ वाक्य में आचार्य ने समस्त लौकिक सत्य का इतिहास लिख दिया है।

जयन्त भट्ट न्याय शास्त्र के निष्णात आचार्य हैं। इनकी 'न्यायमञ्जरी' न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ है। जयन्त का व्यंग्योक्ति प्रधान गद्य सरस तथा प्राञ्जल है।

भगवान् बुद्ध ने लोक भाषा पाली में अपने उपदेशों का कथन किया। जनमानस तक अपने उपदेशों को पहुँचाना उनका लक्ष्य था अतः उन्होंने संस्कृत की अपेक्षा लोकभाषा पालि का सहारा लिया। पालिगद्य के दो रूप हैं-(१) जातक ग्रन्थों में उपलब्ध सरल तथा (२) शास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध प्रौढ गद्य। त्रिपिटकों का पालि गद्य बड़ा ही सरल और सुबोध है।

संस्कृत वाङ्मय में गद्यात्मक कथाओं का उदय विक्रम से लगभग चार सौ वर्ष पहले हुआ था। कात्यायन ने ४।२।६० सूत्र के अपने वार्तिक-(आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च) में आख्यान और आख्यायिका का उल्लेख अलग-अलग किया है। पतञ्जलि ने 'यवक्रीत' 'प्रियङ्गु', तथा 'ययाति' का आख्यान के उदाहरण में तथा 'वासवदत्ता' 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' का आख्यायिका के उदाहरण में नाम निर्देश किया है। काशिका में भी इन्हीं नामों का उल्लेख सूत्र की व्याख्या में मिलता है। इसके अतिरिक्त बृहत्कथा, पञ्चतन्त्र तथा तन्त्राख्यायिका में कथा और आख्यायिका का जो उल्लेख मिलता है, उससे यह स्पष्ट प्रतीत

होता है कि गद्यकाव्य का उद्भव लोककथाओं के माध्यम से भी हुआ है। कुछ अकाट्य साक्ष्यों से विक्रम सं. के आस-पास और ईस्वी सन् ४०० के लगभग भी गद्यकाव्य के विकसित होने का उदाहरण मिलता है। कुछ उपलब्ध अभिलेखों से गद्यकाव्य के विकसित-अलंकृत रूप का परिज्ञान होता है। इन अभिलेखों में महाक्षत्रप रुद्रदामन् का जूनागढ़ अभिलेख और समुद्रगुप्त का प्रयागप्रशस्ति-लेख प्रमुख हैं। रुद्रदामन् के अभिलेख का समय १५० ई. माना जाता है। हरिषेण विरचित समुद्रगुप्त (४०० ई.) प्रयागस्तम्भलेख भी ओजोगुण विशिष्ट अलंकृत गद्यकाव्य का उदाहरण है। इस अभिलेख के लम्बे वाक्य और अलङ्कृत शैली का तुलना बाण की गद्यशैली से की जा सकती है।

लौकिक संस्कृत गद्यकाव्य का चरम उत्कर्ष मध्यकालीन् गद्यकवि सुबन्धु, बाण और दण्डी की गद्यरचनाओं में मिलता है। उसी समय गद्यकाव्य के कथा और आख्यायिका भेदों के अलग-अलग उदाहरण ग्रन्थ भी लिखे गये। गद्यकाव्य के कवियों में सुबन्धु ही सर्वप्रथम कवि हैं जिनका काव्य अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। बाणभट्ट से प्रशंसित सुबन्धु निश्चित रूप से बाण से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। न्यायवर्तिककार उद्योतकर (षष्ठशती) का स्पष्ट संकेत "न्यायस्थितिमिवोद्योतकस्वरूपाम्" होने से सुबन्धु उद्योतकर के पश्चाद्वर्ती प्रतीत होते हैं। परिणमतः सुबन्धु का समय षष्ठशती का अन्त सिद्ध होता है।

सुबन्धु का एक ही ग्रन्थ हैं-'वासवदत्ता'। सुबन्धु की 'वासवदत्ता' उदयन-वासवदत्ता की प्राचीन प्रणय-कथा से सर्वथा भिन्न हैं। वासवदत्ता की पूरी कथावस्तु सुबन्धु की मौलिक कल्पना है। इसमें राजकुमार कन्दर्पकेतु और पाटलिपुत्रराजकन्या वासवदत्ता की प्रेमकथा श्लेषमय गद्य में सजीव चित्रित है। 'वासवदत्ता' उन गद्यकाव्यों का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें कथावस्तु की स्वल्पता और वर्णन की प्रचुरता रहती है। कथानक को कविकौशल से विशेष अलङ्कृत तथा चमत्कृत करना ही कवि का उद्देश्य है।

सुबन्धु प्रत्यक्षर श्लेषमय काव्य रचना की प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हैं। उनका काव्य श्लेष और विरोधाभास का ऐसा गहन कानन है जिसमें स्वाभाविक काव्य-सौन्दर्य अदृश्य सा हो जाता है। सुबन्धु वक्रोक्तिमार्ग के निपुण कवि मानते जाते हैं -

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाः चतुर्थो विद्यते न वा।।

संस्कृत साहित्य में बाणभट्ट ही एक ऐसे महाकवि हैं जिनके जीवन चरित के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। कन्नौज और स्थान्वीश्वर के प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट् हर्षवर्धन के समसायिक सभापण्डित होने के कारण इनका समय निर्विवाद है। १२वीं शती के आलंकारिक रुय्यक से लेकर आठवीं शती के वामन ने अपने-अपने ग्रन्थों में बाण तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है अतः अन्तः बाह्य साक्ष्यों के आधार पर बाणभट्ट

का समय सप्तशती पूर्वार्ध तथा थोड़ा सा उत्तरार्ध सिद्ध होता है। हर्षचरित-वर्णन के आधार पर बाण हर्षवर्धन (६०६-६४८ ई.) के राज्य के उत्तरकाल में उनके सभाकवि सिद्ध होते हैं, क्योंकि उन्होंने हर्ष के प्रारंभिक दिग्विजय का उल्लेख नहीं किया है।

यद्यपि बाणभट्ट की लेखनी से अनेक ग्रन्थ रत्नों का लेखन हुआ है किन्तु बाण का महाकवित्व केवल 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' पर प्रधानतया आश्रित है। इन दोनों गद्यकाव्यों के अतिरिक्त मुकुटताडितक, चण्डीशतक और पार्वती-परिणय भी बाण की रचनाओं में परिगणित हैं। इनमें 'पार्वतीपरिणय' को ए.बी. कीथ ने बाण की रचना न मानकर उसे वामनभट्टबाण (१७वीं शती) नामक किसी दाक्षिणात्य वत्सगोत्रीय ब्राह्मण की रचना माना है।

'हर्षचरित' बाणभट्ट का ऐतिहासिक महाकाव्य है। बाण ने इसे आख्यायिका कहा है- ''करोम्याख्यायिम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्''। आठ उच्छवासों में विभक्त इस आख्यायिका में बाणभट्ट ने स्थाण्वीश्वर के महाराज हर्षवर्धन के जीवन-चरित का वर्णन किया है। आरंभिक तीन उच्छवासों में बाण ने अपने वंश तथा अपने जीवनवृत्त सविस्तार वर्णित किया है। हर्षचरित की वास्तविक कथा चतुर्थ उच्छवास से आरम्भ होती है। इसमें हर्षवर्धन के वंश प्रवर्तक पुष्पभूति से लेकर सम्राट् हर्षवर्धन के ऊर्जस्व चरित्र का उदात्त वर्णन किया गया है।

'हर्षचरित' में ऐतिहासिक विषय पर गद्यकाव्य लिखने का प्रथम प्रयास है। इस ऐतिहासिक काव्य की भाषा पूर्णतः कवित्वमय है। 'हर्षचरित' शुष्क घटना प्रधान इतिहास नहीं, प्रत्युत विशुद्ध काव्यशैली में उपन्यस्त वर्णनप्रधान काव्य है। बाण ने ओज गुण और अलंकारों का सन्निवेश कर एक प्रौढ़ गद्यकाव्य का स्वरूप प्रदान किया है। इसमें वीररस ही प्रधान है। करुणरस का भी यथास्थान सन्निवेश किया गया है। 'हर्षचरित' तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों, सांस्कृतिक परिवेशों और धार्मिक मान्यताओं पर प्रकाश डालता है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह महनीय ग्रन्थरत्न काव्य सौन्दर्य, अद्भुत वर्णन चातुर्य के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध कृति है।

'कादम्बरी' बाणभट्ट की अमर कृति है। यह उनकी ही नहीं समस्त संस्कृत वाङ्मय की अनूठी गद्य-रचना है। कादम्बरी की कथा एक जन्म से सम्बद्ध न होकर चन्द्रापीड तथा पुण्डीक के तीन जन्मों से सम्बद्ध है। कादम्बरी की कथा दो भागों में विभक्त है-पूर्वभाग तथा उत्तरभाग। पूर्वभाग बाणभट्ट की रचना है और उत्तरभाग उनके पुत्र भूषणभट्ट (पुलिन्द भट्ट) की। कादम्बरी 'कथा' है। बाण ने स्वयं प्रस्तावना के अन्त में-''धिया निवद्धेयमतिद्वयी कथा'' कहकर इसे 'कथा' के रूप में स्पष्ट स्वीकार किया है। तीन जन्मों से सम्बद्ध कादम्बरी की कहानी रोचक शैली में लिखी गई है।

बाण को कादम्बरी-कथा लिखने की प्रेरणा गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से प्राप्त हुई है। पैशाची भाषा में निबद्ध 'बृहत्कथा' का संस्कृत रूपान्तर 'कथा सरित्सागर' में आई हुई राजा

सुमना की कथा और कादम्बरी की कथा में बहुत कुछ समानता मिलती है। अतः बाण ने कादम्बरी की मूल घटनाओं को बृहत्कथा से लिया हो और अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से बृहत्कथा के निष्प्राण घटनाचक्रों और पात्रों में सजीवता लाकर उन्हें नवीन कलेवर दिया हो। कादम्बरी में बाण की सबसे अनूठी कल्पना जो प्रेम के अलौकिक स्वरूप और रहस्य का प्रतीक है-वह है नायिका द्वारा नायक की शरीर रक्षा करते हुए पुनर्मिलन की प्रतीक्षा करना। कादम्बरी कालिदास के आशाबन्ध और जननान्तर सौहृद के आदर्श की सजीव अवतारणा है।

कविक्रान्त द्रष्टा होता है। उसका काव्य मानव जीवन के परम लक्ष्य की ओर संकेत करता है। काव्य आत्मा रस है। रस स्वरूप आनन्द है। आनन्द की अनुभूति ही काव्य का परम प्रयोजन है। बाणभट्ट 'कादम्बरी' के नायक और नायिका के प्रारंभिक लौकिक प्रेम को शापवश जन्मान्तर में समाप्त कर पुनः अलौकिक विशुद्ध प्रेमप्राप्ति द्वारा मानव के लिए आदर्श प्रेम का दिव्य संदेश देते हैं।

गद्यकाव्य के प्रणेताओं में दण्डी का नाम आदर से लिया जाता है। 'अवन्तिसुन्दरी' के आधार पर दण्डी का स्वल्प परिचय प्राप्त होता है। महाकवि भारवि के तीन पुत्र हुए जिनमें मनोरथ मध्यम पुत्र था। मनोरथ के चार पुत्रों में 'वीरदत्त' कनिष्ठ होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक थे। 'वीरदत्त' की धर्मपत्नी का नाम 'गौरी' था। इन्हीं से कविवर दण्डी का जन्म हुआ था। बचपन में ही दण्डी के माता-पिता दिवंगत हो गये थे। ये काञ्ची में निराश्रय ही रहने लगे। हिन्दुओं की पवित्र नगरी काञ्ची दण्डी की जन्मभूमि थी। पश्चात् काञ्ची के पल्लव-नरेशों की छत्रछाया में सुखमय जीवन व्यतीत हुआ।

नवम शती के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख होने से निश्चित है कि दण्डी नवमशती से पूर्ववर्ती थे। सिंघली भाषा के अलंकार ग्रन्थ 'सियबस लकर' (स्वभाषालंकार) तथा कन्नड़ भाषा का अलंकार ग्रन्थ 'कविराज मार्ग' में दण्डी के 'काव्यादर्श' की छाया स्पष्टतः दिखायी देती है। उपर्युक्त दोनों अलंकार ग्रन्थ नवीं शती की रचना है अतः काव्यादर्श के लेखक दण्डी उससे पूर्ववर्ती हैं। प्रो. आर. नरसिंहाचार्य तथा डाक्टर बेलवल्कर ने भी दण्डी का समय सातवीं शती का उत्तरार्ध बतलाया है। शैव धर्म के प्रवर्तक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय ६९०-७१५ ई. माना जाता है। अतः इनके सभाकवि दण्डी का भी समय बाण के पश्चात् अष्टम शती का पूर्वार्ध सिद्ध होता है।

राजशेखर ने निम्न पद्य में दण्डी के तीन ग्रन्थों का स्पष्ट निर्देश किया है-

**त्रयोऽग्नस्त्रयो देवात्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।**
**त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।**

दण्डी की उपर्युक्त प्रबन्धत्रयी में 'काव्यादर्श' उनकी निःसंदिग्ध रचना है। यह अलंकार शास्त्र का मान्य ग्रन्थ है जिसमें काव्यशास्त्र के तत्त्वों का सारगर्भ संक्षिप्त वर्णन किया गया है। दण्डी के द्वितीय ग्रन्थ के रूप में 'दशकुमार चरित' नामक रोमाञ्चक आख्यानों तथा कौतूहलपूर्ण ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। दशकुमार चरित के विभिन्न पाठ संस्करणों के परीक्षण से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं-भूमिका, मूल ग्रन्थ तथा पूरक भाग, जिनमें क्रमशः ५, ८ तथा १ उच्छास हैं। भूमिका भाग पूर्वपीठिका के नाम से प्रसिद्ध है तथा पूरक भाग उत्तरपीठिका के नाम से और मध्यवर्ती मूल ग्रन्थ दशकुमार चरित के नाम से विख्यात है। इस प्रकार आरम्भ में पूर्वपीठिका से और अन्त में उत्तर पुस्तिका से संपुटित समग्र ग्रन्थ ही दश कुमार चरित के नाम से विख्यात है जिसमें कुसुमपुर नगर के दस कुमारों के विचित्र चरित्र का वर्णन है। 'अवन्ति सुन्दरी कथा' दण्डी की मौलिक रचना है जिसमें दशकुमार चरित की पूर्वपीठिका में वर्णित वृत्त है। दण्डी की तीसरी रचना द्विसन्धान काव्य है जिसमें श्लेष द्वारा रामायण एवं महाभारत की कथा वर्णित है।

## परवर्ती गद्यकाव्य

सुबन्धु, बाण एवं दण्डी इन तीनों मूर्धन्य गद्य कवियों के द्वारा प्रवर्तित मार्ग का अनुसरण परवर्ती गद्य कवियों ने भी किया है जिनमें मुख्यतः अधोलिखित रचनायें प्रसिद्ध हैं -

१. **तिलक मञ्जरी**-कविवर धनपाल (दशम शती) की 'तिलकमञ्जरी' बाणभट्ट की गद्यशैली के अनुकरण पर लिखी गयी एक श्लाघनीय रचना है। धनपाल धारानरेश राजा मुञ्ज तथा उनके उत्तराधिकारी राजा भोज के सभा पण्डित थे। मुञ्ज राजा ने धनपाल की काव्य प्रतिभा से प्रसन्न होकर इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि से सम्मानित किया था। धनपाल ने भोजराज के जिनगमोक्त कथा सुनने के कुतूहल निवृत्ति हेतु तिलकमञ्जरी का प्रणयन किया था। इसमें राजकुमार हरिवाहन और दैवी राजकुमारी तिलकमंजरी तथा राजकुमार समरकेतु और अर्धदेवी राजकुमारी मलयसुन्दरी-इन दो युग्मों की प्रणय-कथा वर्णित है। बाणभट्ट की कादम्बरी और तिलकमञ्जरी की कथावस्तु में पर्याप्त साम्य है। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में बाण की पाञ्चाली रीति का अनुसरण किया है।

२. **गद्य चिन्तामणि**-वादीम सिंह-विरचित 'गद्यचिन्तामणि' अलंकृत शैली में लिखा गया एक रोचक गद्य काव्य है। इसमें जिनसेन के महापुराण (८९७ ई.) में वर्णित जीवन्धर की कथा का वर्णन ११ लम्बों में किया गया है। वादीम ने इसी कथा को अनुष्टुप् छन्द में लिखकर 'क्षत्र चूडामणि' का निर्माण किया है। वादीम सिंह का समय ११वीं शती माना जाता है। हरिचन्द्र लिखित 'जीवन्धर चम्पू' का उपजीव्य वादीम के उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ हैं। गद्य चिन्तामणि की गद्यशैली अत्यन्त रोचक तथा हृदयावर्जक है।

३. **वेमभूपाल चरित**-वामन भट्ट बाण विरचित 'वेमभूमिपाल चरित' एक स्तुत्य गद्य रचना है जिसमें त्रिलिंग के शासक 'काम' नामक राजवंश में उत्पन्न वेमभूपाल के उदात्त चरित्र का वर्णन है। बाण के हर्षचरित से प्रेरित होकर वामनभट्ट ने इस मनोरम गद्यकाव्य का प्रणयन किया है। वेमभूपाल चरित का पदविन्यास मधुर है, अलंकार-योजना सरस है तथा अर्थ का प्रकटन सुन्दर है।

४. **मन्दार मञ्जरी**-विश्वेशर पाण्डेय विरचित 'मन्दारमञ्जरी' कादम्बरी की शैली में उपनिबद्ध गद्यकाव्य का मनोरम रूप प्रस्तुत करती है। विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिले के पाटिया ग्राम के निवासी भारद्वाज गोत्रीय पर्वतीय ब्राह्मण थे। इनके पिता लक्ष्मीधर वृद्धावस्था में काशी आये और आशुतोष शिव की कृपा से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जो उन्हीं के नाम पर 'विश्वेश्वर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्री विश्वेश्वर विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे जिनकी सारस्वत कृतियाँ विविध शास्त्रों से सम्बद्ध होकर तत्तत् शास्त्रों के वैदुष्य की परिचायिका हैं। विश्वेश्वर पाण्डेय की रचनाओं में वैयाकरणसिद्धान्त सुधानिधि, तर्ककुतूहल, श्रृंगारमञ्जरी, अलंकार-कौस्तुभ, रसचन्द्रिका, अलंकार मुक्तावली, कवीन्द्रकण्ठाभरण, रोमावशीशतक और आर्यासप्तशती इनके व्याकरण, न्याय, अलंकारशास्त्रादि विषयों में अगाध पाण्डित्य के सशक्त उदाहरण हैं।

इन्हीं की गद्य काव्यमयी प्रौढ़ रचना है 'मन्दारमञ्जरी' इस गद्यकाव्य के दो भाग हैं-पूर्वभाग तथा उत्तरभाग। पूर्वभाग विश्वेश्वर की निःसंदिग्ध रचना है, किन्तु उत्तरभाग उनके किसी योग्य शिष्य की रचना मानी जाती है। मन्दारमञ्जरी में पल्लवराज राजशेखर के पुत्र चित्रभानु और विद्याधरेन्द्र चन्द्रकेतु की राजपुत्र मन्दारमञ्जरी की प्रेम कथा वर्णित है। इसमें कादम्बरी का प्रभाव होने पर भी कवि ने सर्वत्र नवीनता लाने का सफल प्रयास किया है।

### शिवराजविजय

बींसवींशताब्दी में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित यह गद्यकाव्य नवीनता से विभूषित है। इसमें छत्रपति शिवाजी के चरित तथा विजय का वर्णन है। ऐतिहासिक विषय के सम्यक् निर्वाह हेतु घटनाचक्रों का वर्णन नितान्त मनोरम है। यह घटनाप्रधान काव्य है जिसमें कवि का आग्रह विशेष वर्णन पर न होकर घटना की विविधता पर है। इसमें देशभक्ति के उदात्त भावों का सशक्त चित्रण है। 'शिवराजविजय' की कथा १२ निःश्वासों में विभक्त हैं। शिवाजी के वीरचरित्र के ऐतिहासिक विवरण से मण्डित इस काव्य की भाषा सरल-सुबोध तथा प्राञ्जल है। इसकी घटनायें अधिकतर वास्तविक है। नवीन शैली में निबद्ध यह लोकप्रिय काव्य संस्कृत वाङ्मय में ऐतिहासिक उपन्यास की पूर्ण योग्यता रखता है।

**गद्यमञ्जरी**-यह पं. हृषीकेश शास्त्री की गद्यकृति है जिसमें सामयिक निबन्धों का संग्रह है। यद्यपि यह निबन्धों का संग्रह है किन्तु गद्य-साहित्य की निधि है।

## चम्पूकाव्य

संस्कृत वाङ्मय में पद्यकाव्य और गद्यकाव्य से अतिरिक्त 'चम्पू' नामक काव्य का विपुल भण्डार है। चम्पूकाव्य अपने साहित्यिक सौन्दर्य, मधुरविन्यास तथा रसपेशलता की दृष्टि से अन्य साहित्य से न्यून महत्व का नहीं है। गद्य और पद्य के विशिष्ट समिश्रण से निर्मित काव्य चम्पू कहलाता है-गद्य-पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते। गद्यकाव्य का वैशिष्ट्य अर्थगौरव और विन्यास के कारण है और पद्यकाव्य का महत्व सुललित राग-लय के साथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादन के कारण है। इन दोनों के एकत्र समन्वय से चम्पूकाव्य अधिक चमत्कारी बन जाता है। चम्पूकाव्य का दण्डी ने सर्वप्रथम लक्षण निर्दिष्ट किया है-गद्यपद्यमयी काचित् चम्पूरित्यपि विद्यते (काव्यादर्श १।३१) दण्डी के इस कथन से स्पष्ट है कि उस समय चम्पूकाव्य का अस्तित्व था। गद्य-पद्य-मिश्रित शैली में निबद्ध चम्पूकाव्य का निष्कर्ष लक्षण है -

**गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्।**
**सालङ्कृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्।।**[1]

वस्तुतः गद्य-पद्य के मिश्रित रूप का एकत्र विन्यास अवश्य ही रुचिर तथा हृदयावर्जक होता है।

चम्पूकाव्य गद्यकाव्य का ही प्रकारान्तर से उपबृंहण है। अतएव इसका उदयकाल गद्यकाव्य के स्वर्णयुग से पश्चाद्वर्ती है। गद्यपद्य की मिश्रित शैली का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक युग से पौराणिक युग तक मिश्रशैली के उदाहरण तो मिलते हैं किन्तु वे चम्पूकाव्य की कोटि में नहीं आते। चमत्कृत शैली, मनोरम कल्पना, समस्तपदों की प्रचुरता विशेषणों की बहुलता, अलंकार विन्यास-ये मुख्यतया चम्पूकाव्य के वैशिष्ट्य हैं। इस विशिष्टता से युक्त चम्पूकाव्य की रचना का आरम्भ पाषाण की गोद से निकलकर साहित्य के चिकने धरातल पर आ चमका और तब से २०वीं शती तक साहित्य के इस विलक्षण विधा के रूप में समादृत हुआ है।

## चम्पू ग्रन्थ

त्रिविक्रम भट्ट की अमर कृति 'नल चम्पू' चम्पू साहित्य का प्रथम ग्रन्थ है। त्रिविक्रम भट्ट राष्ट्रकूट वंशोद्भव इन्द्रराज तृतीय के आश्रित कवि थे। इन्द्रराज के समकालिक होने

१. डा. छविनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृ. ४८ में उद्धृत।

के कारण त्रिविक्रमभट्ट का समय दशम शती का पूर्वार्ध है और ये विख्यात नाटककार राजशेखर के समसामयिक थे।

'नलचम्पू' में राजा नल की कथा वर्णित है जो महाभारत के 'नलोपाख्यान' में वर्णित है। सात उच्छ्वासों में विभक्त इस चम्पू में दमयन्ती का वृत्तान्त जानकर इन्द्रादि देवताओं तक उनके सन्देश पहुँचाने तक की कथा है। नलचम्पू में सरल-पेशल-प्रसन्न सभङ्ग श्लेष का प्रयोग अत्यन्त रोचक है। इसमें परिसंख्या का भी सफल प्रयोग बाणभट्ट की समता रखता है।

त्रिविक्रम भट्ट की दूसरी चम्पू रचना है 'मदालसाचम्पू'। यह एक प्रणय-कथा है। राजा कुवलयाश्व और उनकी रानी मदालता का चरित 'मार्कण्डेयपुराण' (अ. १८-२२ तक) सविस्तर वर्णित है। इस चम्पू काव्य का आधार मार्कण्डेयपुराण कथा है। यद्यपि इसमें नलचम्पू के समान रमणीयता नहीं है तथापि कथा-विकास तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह लोकप्रिय रचना है।

सोमदेव सूरि रचित 'यशस्तिलक चम्पू' जैनपुराण में विश्रुत यशोधर के चरित का वर्णन प्रौढ़ आलंकारिक शैली में किया गया है। इस चम्पू में आठ उच्छ्वास हैं जिनके आदिम पाँच उच्छ्वासों में यशोधर के आठ जन्मों की कथा वर्णित है। शेष तीन उच्छ्वासों में जैन धर्म के तथ्यों का सविस्तर वर्णन किया गया है। 'यशस्तिलक' की भाषा प्राञ्जल और शैली प्रौढ़ तथा आकर्षक है। सोमदेव प्रधानतः सात्त्विक जीवन के उपासक सन्त पुरुष थे अतः उनके काव्य में धर्म तथा नीति सम्बन्धी सूक्तियों का बाहुल्य स्वाभाविक है।

हरिचन्द्र विरचित 'जीवन्धर चम्पू' में 'उत्तरपुराण' में वर्णित जैनसाहित्य में प्रसिद्ध जीवन्धर की कथा का रोचक वर्णन है। इसमें जैनधर्म के सिद्धान्तों का रोचक शैली में कथानक के माध्यम से प्रकट करना अभीष्ट प्रतीत होता है।

सोड्ढल की रचना 'उदयसुन्दरी कथा' कविकल्पित आख्यान का चम्पूरूप है। इसमें प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन का नागराज शिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी की कथा आठ उच्छ्वासों में उपन्यस्त है। गुजरात के शासक चालुक्यनरेश वत्सराज के समकालिक सोड्ढल का समय ११वीं शती है।

उपर्युक्त प्रसिद्ध चम्पूकाव्यों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, कृष्ण कथा, पुराण, ऐतिहासिक तथा जीवन-चरित्र विषय बहुसंख्यक चम्पूकाव्य भी उपलब्ध हैं।

रामायण के आधार पर अनेक चम्पूकाव्यों की रचना हुई है जिनमें सर्वविश्रुत 'रामायण चम्पू' भोजराज की अमर कृति है। भोज का यह चम्पूकाव्य कलापक्ष के सौन्दर्य पूर्ण वर्णन का अनूठा उदाहरण है। प्रसादमयी शैली में नूतन भावों का समावेश चमत्कारजनक है।

महाभारत पर आश्रित चम्पू काव्यों में अनन्त भट्ट रचित 'भारत चम्पू' श्रेष्ठ एवं विश्रुत चम्पू है। महाभारत के विविध प्रसंगों के वर्णन में चमत्कार आधान कवि की काव्य रचना चातुरी का निदर्शन है।

कृष्णकथापरक चम्पुओं में अभिनव कालिदास रचित 'भागवत चम्पू' संभवतः प्राचीन है। अभिनव कालिदास संभवतः आन्ध्र के निवासी थे और इनका समय अनुमानतः ११ शतक है[1]। दूसरी रचना कवि कर्णपूर की (१६वीं शती) का 'आनन्दवृन्दावन चम्पू' है। यह चम्पू चम्पूसाहित्य का शिरोमणि है काव्यकला के विशद विद्योतन में। इसके २२ स्तवकों में १७-२० स्तवकों में रासलीला का विस्तृत रसपेशल वर्णन कवि के भक्तहृदय का साक्षी है। इसके अतिरिक्त जीवस्वामिकृत 'गोपाल चम्पू' मित्रमिश्रकृत 'आनन्दकन्द चम्पू', रघुनाथदासकृत' 'मुक्ताचरित्र' और शेषश्रीकृष्ण रचित पारिजातहरण चम्पू प्रमुख चम्पूकाव्य हैं।

पौराणिक चम्पुओं में प्रहलाद चरित पर आधृत 'नृसिंहचम्पू' दैवज्ञ सूर्यकवि की प्रसिद्ध रचना है। केरल के नारायणभट्ट विरचित मत्स्यावतारप्रबन्ध' उनकी चौदह चम्पूकाव्यों में प्रमुख है।

द्रविड़ कवि नीलकण्ठ दीक्षित का 'नीलकण्ठविजय चम्पू' १६३६ ई. की रचना मानी जाती है।

भारतीय इतिहास के मध्ययुग से सम्बद्ध अनेक चम्पुओं में दो प्रमुख हैं-'वरदाम्बिका परिणय चम्पू' तथा 'आनन्दरंगविजय चम्पू' इनमें प्रथम चम्पू की लेखिका तिरुमलाम्बा और द्वितीय चम्पू के लेखक श्रीनिवास कवि हैं।

विख्यात धार्मिक आचार्यों का जीवन चरित भी चम्पूकाव्यों का श्लाघनीय स्रोत रहा है।

आचार्य शङ्कर के दिग्विजय पर वल्लीसहायकवि विरचित 'आचार्यदिग्विजयचम्पू', श्रीकण्ठशास्त्री विरचित 'जगद्गुरुविजय', लक्ष्मीपति रचित 'शङ्कर चम्पू', नीलकण्ठकृत 'शङ्करमन्दारसौरभ, तथा बालगोदावरी रचित 'शङ्कराचार्यचम्पूकाव्य' प्रसिद्ध हैं। वैष्णव आचार्यों के जीवन चरित चम्पुओं में रामानुजदास रचित 'नाथमुनिविजय चम्पू', रामानुजाचार्य विरचित 'रामानुजचम्पू' अहोबलसूरि रचित 'यतिराजविजय चम्पू' 'विरूपाक्षमहोत्सव चम्पू', वेदान्ताचार्यरचित 'आचार्यविजय' आदि विख्यात हैं।

ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चरित से सम्बद्ध चम्पुओं की बहुलता भी पायी जाती है। पद्मनाभरचित 'वीरभद्रदेव चम्पू' ऐतिहासिक-चम्पुओं में प्रमुख है। बालकवि कृष्णदत्त रचित इसके अतिरिक्त जानराजचम्पू भी ऐतिहासिक चम्पुओं में अन्य है। इसके अतिरिक्त

---

१. कृष्णमाचारी, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ. ५०६

वेङ्कटाध्वरी रचित पाँच चम्पू काव्यों का विवरण मिलता है। ये पाँच चम्पूकाव्य हैं- १. विश्वगुणादर्श चम्पू, लक्ष्मीसहस्र, वरदाभ्युदय (हस्तिगिरि चम्पू), उत्तररामचरित चम्पू तथा यादवराघवीयम्। इनमें 'विश्वगुणादर्श चम्पू' में विषयवर्णन तथा कल्पना में नवीनता है।

समरपुंगवदीक्षित रचित 'यात्रा प्रबन्ध' तीर्थयात्रा वर्णनपरक चम्पूकाव्य है। इनकी दूसरी रचना 'आनन्दकन्द चम्पू' शैव सन्तों की जीवनी प्रस्तुत करता है। 'मन्दारमरन्द चम्पू' उपर्युक्त चम्पुओं से विषय में अत्यन्त भिन्न है। इसके रचयिता कृष्णकवि ने इसमें दो सौ छन्दों के लक्षण और उदाहरण के साथ अलंकार, गुण-दोष आदि काव्य तत्त्वों का विवेचन किया है। वस्तुतः यह चम्पू एक लक्षण ग्रन्थ है। इसी परम्परा में चिरंजीव भट्टाचार्य की 'विद्वन्मोदतरङ्गिणी' भी है। इसके आठ तरंगों में भारतवर्ष के दार्शनिक एवं धार्मिक मतों की नाट्यशैली में आलोचना की गई है। इनकी दूसरी रचना 'माधव चम्पू' कवि के कवित्वपक्ष को उजागर करती है। अध्यात्मविषयक चम्पुओं के अन्तर्गत ही वाणेश्वरविद्यालंकार रचित 'चित्र चम्पू' भी परिगणित है। वर्दवान के राजा चित्रसेन के नाम पर रचित यह चम्पू एक काल्पनिक कथा पर आधृत है।

दाक्षिणात्य कवियों ने काव्य की इस चम्पू विधा को अपनी रसमयी रचनाओं से समृद्ध किया है। अब तक ज्ञात चम्पुओं की संख्या २५० के आसपास है।[1] उनमें से प्रमुख चम्पुओं का यह दिग्दर्शन उनके उदय तथा विकास का संक्षिप्त परिचायक है।

**कथा साहित्य**-संस्कृत वाङ्मय में कथाओं के विषय में एक विशाल साहित्य है जिसका न केवल भारतीय साहित्य पर, अपितु भारत से भिन्न साहित्य पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष के तीनों धार्मिक सम्प्रदायों ने कथा तथा आख्यान का उपयोग अपने सिद्धान्तों के विशद प्रचार-प्रसार के लिए किया है। वैदिक, बौद्ध तथा जैन-ये तीनों ही कथा-कहानियों के धनी हैं जिनका उद्‌देश्य धार्मिक तथ्यों के विवेचन के साथ ही व्यावहारिक उपदेश देना भी है। वैदिक साहित्य के ब्राह्मणों और उपनिषदों में विस्तार से प्राप्त आख्यानों का संकेत ऋग्वेद के सम्वाद सूक्तों में मिलता है। सम्वाद सूक्तों में प्राप्त आख्यानों का विस्तृत विवरण यास्क के निरुक्त में, शौनक के बृहद्‌देवता में, कात्यायन सर्वानुक्रमणी व्याख्या वेदार्थ दीपिका में तथा तदनुसार सायण के वेद भाष्यों में उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् गुजराती विद्वान् द्याद्विवेद की 'नीतिमञ्जरी' में वैदिक कहानियों का संकलन किया गया है।[2]

१. विशेष द्रष्टव्य, डॉ. छविनाथ त्रिपाठी का ग्रन्थ-चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, चौखम्बा, वाराणसी १९६५ ई.

२. नीतिमञ्जरी का एक विमर्शात्मक संस्करण पं. सीताराम जयराम जोशी ने सम्पादित किया है। यह ग्रन्थ चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से १९४२ ई. में प्रकाशित हुआ है।

जैनसाहित्य में प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश में कथाओं का विस्तार उपलब्ध होता है। जैनमुनि धार्मिक देशना के लिए जिन कथाओं का उपयोग करते थे, उनका मूल रूप अंगों में तथा विस्तार उनके व्याख्यापरक चूर्णि, निर्युक्ति आदि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।[1] जैनमतावलम्बिओं में 'कथाकोश' स्वयं विस्तृत साहित्य है जिसका अपना वैशिट्य है।

बौद्धों में पालिभाषा में निबद्ध मनोरञ्जक कथायें 'जातक' नाम से विख्यात हैं। इसमें भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथायें उपनिबद्ध हैं। जातक कथाओं की संख्या साढ़े पांच सौ है। इनमें ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सामजिक सामग्री विपुल मात्रा में मिलती है, जिनके परिशीलन से बुद्ध से भी प्राचीन काल के भारतीय इतिहास तथा समाज के मनोरम चित्र मिलते हैं।

भारतीय साहित्य में प्राचीन काल में दो कथाचक्र उपलब्ध होते हैं-बृहत्कथा तथा पंचतंत्र। इनमें बृहत्कथा प्राचीन है। पैशाची भाषा में निबद्ध बृहत्कथा आज अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है, परन्तु संस्कृत में निबद्ध पञ्चतन्त्र आज भी उसी भाषा में उपलब्ध है। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों का अनुशीलन भारतीय कथा-साहित्य के स्वरूप तथा विस्तार के ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बृहत्कथा अत्यन्त अद्‌भुत यात्रा विवरणों तथा प्रणय-प्रसंगों का अगाध समुद्र है जिसकी एक-एक बूंद से अन्य कितनी ही विचित्र कथाओं की रचना हुई -

**सत्यं बृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृताः**
**तेनेतरकथाः कन्याः प्रतिभान्ति तदग्रतः** (१, धनपालः तिलक मञ्जरी)

'बृहत्कथा' के अमर रचयिता गुणाढ्य सातवाहन राज्यसभा से सम्बद्ध कवि थे जिनका आविर्भाव काल प्रथम-द्वितीय ईस्वी था। मूलरूप में पैशाची भाषा में निबद्ध किन्तु सम्प्रति अनुपलब्ध बृहत्कथा में नरवाहनदत्त का चरित्र वर्णित है तथा उसके परिच्छेदों का नाम 'लम्भक' है।

बृहत्कथा की तीन वाचनायें सम्प्रति उपलब्ध हैं। मूलरूप में पैशाची भाषा में लिखी इसकी चमत्कारिता और सुन्दरता से प्रभावित अनेक विद्वानों ने विभिन्न शताब्दियों में इसका रूपान्तर संस्कृत में किया। संस्कृत साहित्य के कवि और नाटककार 'बृहत्कथा' से अपनी कथावस्तु की रूपरेखा ग्रहण करते थे। नाटकों, काव्यों और गद्यकाव्यों के उपजीव्य ग्रन्थों के लिए बृहत्कथा का नाम्ना निर्देश मिलता है।

मूलतः पैशाची भाषा में निबद्ध अधुना संस्कृत एवं प्राकृत में अनूदित 'बृहत्कथा' की तीन वाचनायें उपलब्ध हैं -

---

३. द्रष्टव्य, हरिषेण : बृहत्कथाकोश की अंग्रेजी भूमिका, डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये रचित (भारतीय विद्याभवन, मुम्बई १९४३ ई.)

(१) नेपाली वाचना-बुध स्वामी का 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' बृहत्कथा की नेपाली वाचना कहलाती है। इसके २८ सर्गों में ४५३९ श्लोक हैं। बुधस्वामी ने इस ग्रन्थ की रचना पांचवी शताब्दी में की। इस काव्य का उदय गुप्तसम्राटों के स्वर्णिम युग में हुआ।

(२) प्राकृत वाचना-बुध स्वामी के अनन्तर संघदासगणि कृत 'वसुदेव हिण्डी' की प्राकृत वाचना उपलब्ध हुई। 'वसुदेव हिण्डी' में २६ लम्बक हैं और यह महाराष्ट्री-प्राकृत में गद्यशैली में निबद्ध है। यह सम्प्रति प्रथम खण्ड और मध्यम खण्ड नाम से दो रूप में उपलब्ध है। 'वसुदेव हिण्डी' 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' से मिलता-जुलता है अतः इन दोनों के तुलनात्मक अनुशीलन से मूल 'बृहत्कथा' का पर्याप्त परिचय मिलता है।

(३) काश्मीरी वाचना - कश्मीर के दो कवियों - क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव ने बृहत्कथा का संस्कृत में अनुवाद किया; यही काश्मीरी वाचना के नाम से सुविख्यात है। दोनों कवियों ने एक ही शताब्दी ११वीं में तथा एक ही प्रान्त कश्मीर में एक ही ग्रन्थ के दो भिन्न-भिन्न अनुवाद प्रस्तुत किए, जो शैली और कथानक दोनों दृष्टियों से पार्थक्य रखते हैं।

'बृहत्कथामञ्जरी' में क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा का रूपान्तर प्रस्तुत किया है। क्षेमेन्द्र का उद्देश्य कथानक में अलंकृत शैली में प्रस्तुत करना है। इस ग्रन्थ में १८ लम्बक हैं जिनमें प्रधान कथा के साथ-साथ अवान्तर कथायें भी कही गई हैं। कथा का नायक है वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त। वह अपने पराक्रम से गन्धर्वों का चक्रवर्तित्व प्राप्त करता है और अनेक गन्धर्व सुन्दरियों से विवाह करता है। उसकी पटरानी है मदनमञ्चुका। इसकी मुख्य कथा की परिपुष्टि में अनेकं अवान्तर कथायें भी जोड़ी गयी हैं जिनमें 'वेतालपंचविंशति' (वेताल पचीसी) इसी के अर्न्तगत वर्णित है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' के विलक्षण कथाओं से संस्कृतज्ञों को परिचित करना ही इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य है। बृहत्कथामञ्जरी संस्कृत के कथा-साहित्य में भारतीय जीवनदर्शन को अभिव्यक्त करने वाला एक नितान्त रोचक, सरस तथा उपदेशप्रद रचना है।

'कथासरित्सागर' संस्कृतवाङ्मय के कथासाहित्य का शिरोमणि ग्रन्थ है। इसे कश्मीर के मूर्धन्य मनीषी सोमदेव ने त्रिगर्त (कुल्लूकांगडा) की राजपुत्री, कश्मीरनरेश अनन्त की रानी सूर्यमती के मनोविनोद के लिए ११वीं शती (१०६३ ई.-१०८१ ई.) में लिखा था। यह ग्रन्थ १८ लम्बकों तथा १२ तरङ्गों में विभक्त है। इसमें श्लोकों की संख्या २१६८८ है। 'बृहत्कथा' का यही सबसे अर्वाचीन अनुवाद और सभी अनुवादों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। सोमदेव ने ग्रन्थ के आरंभ में ही बड़ी ईमानदारी से मूल कथा को यथावत् प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा की है। सोमदेव ने तत्कालीन समाज के यथार्थस्वरूप का चित्रण अपनी प्रसादमयी

वाणी में कर रसिकजनों के मनोरञ्जन तथा ज्ञानवर्धन की अद्‌भुत सामग्री एकत्रित की जिसकी समता नितान्त असम्भव है।

सोमदेव की संस्कृतवाणी भगवती भागीरथी की विमल धारा के समान प्रवाहित होकर सहृदय पाठकों के चित्त को आकृष्ट करती है। संस्कृत पद्यों में कहानी कहने की कला में सोमदेव पारंगत कलाकार हैं। अपने युग की प्रचलित समासबहुलाशैली को न अपनाकर सोमदेव ने समासरहित नैसर्गिक प्रसादमयी शैली से अपनी कविता को सजाया है। सोमदेव की भाषा शैली, सरस, सुन्दर, प्रसादमयी तथा वस्तुप्रधान है। सोमदेव ने कथासरितत्सागर[1] में वस्तुवर्णन के मध्य मनोरम नीतिमयी सूक्तियों का भी सन्निवेश किया है जिससे वर्णन का आस्वाद बढ़ जाता है।

पञ्चतन्त्र में जिन कथाओं का संग्रह है वे भारत में नितान्त प्राचीन हैं। पञ्चतन्त्र के विभिन्न शताब्दियों और प्रान्तों में अनेक संस्करण हुए हैं। इनमें सबसे प्राचीन संस्करण 'तन्त्राख्यायिका' नाम से सुप्रसिद्ध है। पञ्चतन्त्र के भिन्न-भिन्न चार संस्करण उपलब्ध हैं-

(१) पञ्चतन्त्र का पहलवी अनुवाद, सम्प्रति अनुपलब्ध।
(२) गुणाढ्य की बृहत्कथा में सन्निविष्ट
(३) तन्त्राख्यायिका तथा उससे सम्बद्ध जैनकथा।
(४) दक्षिणी पञ्चतन्त्र। नेपाली पंचतंत्र तथा हितोपदेश इस संस्करण के प्रतिनिधि हैं।

पञ्चतन्त्र में पांच तन्त्र हैं-मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धिविग्रह, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षितकारक। प्रत्येक तन्त्र में मुख्य कथा एक ही है जिसके अंग को पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथायें कहीं गयी हैं। ग्रंथकार का लक्ष्य आरंभ से ही सदाचार तथा नीति की शिक्षा देना रहा है। दक्षिण के महिलारोप्य नामक नगर के राजा अमरकीर्ति के मूर्खपुत्रों को विद्वान तथा नीति निपुण बनाने के उद्देश्य से विष्णुशर्मा ने पञ्चतंत्र की रचना की। विष्णु शर्मा लोक तथा शास्त्र दोनों विषयों के पारंगत पण्डित थे इसीलिए उन्होंने स्वल्प समय में राजपुत्रों को व्यवहारकुशल, सदाचार-सम्पन्न तथा नीतिनिपुण बना दिया। पञ्चतन्त्र की भाषा मुहावरेदार सीधी-सादी है। वाक्यविन्यास में कहीं भी दुरूहता नहीं है। भाव-बोध में सुगममता है। कथानक का वर्णन गद्य में है किन्तु उपदेशप्रद सूक्तियाँ पद्य में निहित हैं। ये सूक्तिपद्य रामायण, महाभारत तथा प्राचीन नीतिग्रन्थों से संगृहीत हैं। पञ्चतन्त्र राजनीति तथा लोकनीति का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है अतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र के उद्धरणों से बहुशः अलंकृत है।

---

१. कथासरित्सागर का हिन्दी अनुवाद पण्डित केदारनाथ शर्मा सारस्वत ने किया है, जिसे विहारराष्ट्र भाषापरिषद् पटना ने तीन खण्डों में प्रकाशित किया है।

डॉ. हर्टेल 'तन्त्राख्यायिका' को पञ्चतन्त्र की प्राचीनतम वाचना मानते हैं। उनके अनुसार पञ्चतन्त्र के मूलरूप का निदर्शन 'तन्त्राख्यायिका' के द्वारा होता है। इसका उद्देश्य राजनीति की शिक्षा देना है अतः यह राजनीति का शिक्षण-ग्रन्थ माना जाता है। परिणामतः राजनीति के प्राचीन ग्रन्थों से इसमें गद्य और पद्य के लम्बे उद्धरण पाये जाते हैं। राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग यहाँ बहुतायत में मिलता है। 'तन्त्राख्यायिका' चाणक्य के अर्थशास्त्र से परिचित है अतः इसका समय चाणक्य (तृतीयशती विक्रम) से पश्चाद्वर्ती है।

दक्षिण भारतीय पंचतंत्र में ६६ कथायें हैं। इसमें तमिल देश की भी कथाएँ भी जोड़ी गई हैं।

'तन्त्राख्यान' नेपाल में प्रचलित है। इसका सर्वाधिक प्राचीन हस्तलेख १४८४ ईस्वी में उपलब्ध होता है जिससे स्पष्ट है १४शती में किसी विद्वान ने इसका संकलन किया था।

'तन्त्रोपाख्यान' में पञ्चतन्त्र का ही एक विशिष्ट पाठ विवरण उपलब्ध होता है। पञ्चतन्त्र की अपेक्षा इसमें केवल तीन ही प्रकरण मिलते हैं-(१) नन्दक-प्रकरण, (२) पक्षिप्रकरण (३) मण्डूक प्रकरण। इसके आरम्भ में कथामुख का अभाव है। प्रत्येक प्रकरण के अन्तर्गत पंचतन्त्र की शैली में ही मुख्यकथा तथा अवान्तर कथा का सम्मिलित रूप उपलब्ध होता है। अर्थज्ञान से नीति का ज्ञान होता है और कथा सुनने से सुख मिलता है अतः ज्ञान तथा सुख-दोनों की प्राप्ति के लिए तन्त्रोपाख्यान की रचना हुई है -

**अर्थे भवेन्नयज्ञानमाख्यानश्रवणे सुखम्।**
**ज्ञानार्थं च सुखार्थं च तन्त्रोपाख्यानमुच्यते।।**

'हितोपदेश' पञ्चतन्त्र पर आधारित नितान्त लोकप्रिय कथा-ग्रन्थ है। ग्रन्थ के अन्तिम पद्यों में इसके रचयिता नारायण तथा उनके आश्रयदाता राजा धवलचन्द्र का निर्देश मिलता है। ग्रन्थकार ने स्पष्ट रूप से इसका आधार पंचतन्त्र को माना है। इसमें चार भाग हैं- मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह तथा सन्धि। इनमें प्रकारान्तर से पञ्चतन्त्र के पाँचों तन्त्र समाविष्ट हैं। बालकों को कथा-व्याज से नीति की शिक्षा देना ही हितोपदेश का उद्देश्य है-कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते। १।८। 'हितोपदेश' संस्कृतशिक्षण की प्रथम सफल पुस्तक है और यूरोप की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद इसकी लोकप्रियता का साक्षी है। हितोपदेश का नेपाली हस्तलेख १३७३ ई. का है अतः यह ग्रन्थ उससे प्राचीन सिद्ध होता है। डॉ. फ्लीट के अनुसार हितोपदेश की रचना नवमशती के अनन्तर और १२वीं शती से पूर्व अर्थात् ११वीं शती में होनी चाहिए।

पञ्चतन्त्र के गम्भीर तथा विपुल शोध के श्रेय जर्मनी के दो विद्वानों को दिया जाता है जिनमें एक हैं डॉ. बेनफी तथा दूसरे हैं डॉ. हर्टेल। डॉ. बेनफी पूर्वी तथा पश्चिमी भाषाओं के प्रतिभाशाली वेत्ता थे। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका जैसे तीन महादेशों के कथासाहित्य पर भारतीय कथा साहित्य के विस्तृत प्रभाव को प्रदर्शित किया है। इस सन्दर्भ में पञ्चतन्त्र की कथाओं के विश्वभ्रमण की प्रामाणिक कहानी डॉ. बेनफी का महनीय अवदान है। डॉ. हर्टेल ने पञ्चतन्त्र के साहित्यिक रूप, उसकी विविध वाचनाओं तथा उससे आविर्भूत कथासाहित्य का बड़ा ही विशद तथा गम्भीर अनुशीलन किया है। उन दोनों विद्वानों ने युक्तिपूर्वक यह सिद्ध किया है कि पञ्चतन्त्र भारतीय साहित्य का ही नहीं प्रत्युत विश्व साहित्य का भी एक उदात्त तथा श्लाघनीय अंग है[1]। विश्वसाहित्य के लिए पञ्चतन्त्र निःसंदेह एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

वस्तुतः पञ्चतन्त्र समग्र विश्व-साहित्य की एक दिव्यविभूति है। कथा के साथ नीति की उपयोगी शिक्षा प्रदान करने की सुन्दर भारतीय योजना को स्वीकार कर विश्वसाहित्य ने अपने को उदात्त, लोकप्रिय और हृदयावर्जक बनाया है। 'वेतालपञ्चविंशतिका' रोचक लोककथाओं का सुव्यवस्थित संग्रह है। ये पचीस कहानियाँ मूल 'बृहत्कथा' में विद्यमान थीं, यह कथन संदिग्ध है, क्योंकि इनका अस्तित्व बृहत्कथामञ्जरी तथा कथासरित्सागर में तो अवश्य है, किन्तु बुधस्वामी की नेपाली वाचना 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' में उपलब्ध नहीं होता। इन कहानियों का एकादश शतक में प्रचलित सर्वप्राचीन रूप क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव के ग्रन्थों में मिलता है। इन कथाओं के अनेक गद्यात्मक संस्करण भी हैं जिनमें शिवदास की रचना है, जिसमें बीच-बीच में श्लोक भी दिये गये हैं। जम्भलदत्त की 'वेतालपञ्चविंशति' बिल्कुल गद्यात्मक है। डॉ. हर्टेल की सम्मति है कि शिवदास ने १४८७ ई. से पूर्व ही वेतालपंचविंशति की रचना की थी, क्योंकि उसी समय इसका सबसे प्राचीन हस्तलेख मिलता है।

'वेतालपञ्चविंशति' की कथाएँ बड़ी ही रोचक, बुद्धिवर्धक तथा कुतूहल भरी हैं। कोई साधक राजा विक्रमसेन (विक्रमादित्य) को रत्नगर्भितफल देता था जिसकी सिद्धि में सहायतार्थ राजा एक वृक्ष पर लटकते हुए शव को लाना चाहता है, परन्तु वह शव किसी वेताल से आविष्ट है जो राजा को चुप रहने पर ही वह शव देना चाहता है, परन्तु वह इतनी विचित्र कथा सुनाता है कि राजा को मौन भंग करना ही पड़ता है। कहानियाँ रोचक एवं पेचीदी हैं। वेताल के प्रश्न विषम हैं किन्तु राजा के उत्तर भी मनोहारी हैं। विषम प्रश्नों के समुचित उत्तर विक्रम की चातुरी के परिचायक हैं। शिवदास का यह अद्भुत कथाग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर, रोचक तथा आकर्षक है।

---

१. इस सिद्धान्त के विस्तृत प्रामाणिक प्रतिपादन के लिए द्रष्टव्य डा. विण्टरनित्ज : हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर खण्ड ३, भाग १, पृ. ३२९-३४६ (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६३ ई.)

'विक्रमचरित' या 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' भी एक रोचक कथा ग्रन्थ है। राजा भोज जमीन में गड़े हुए विक्रमादित्य के सिंहासन को उखाड़ता है तथा उस पर बैठने का उपक्रम करता है किन्तु उसमें जड़ी हुई बत्तीसों पुतलियाँ विक्रम के पराक्रम का वर्णन कर राजा को उस पर बैठने से रोकती हैं। इसकी दो वाचनिकायें-उत्तरी तथा दक्षिणी परस्पर भिन्न हैं। दक्षिण भारत में यह विक्रमचरित के नाम से विख्यात है जिसके पद्यबद्ध और गद्यबद्ध दो रूप हैं। दोनों वाचनाओं में हेमाद्रि के 'दानखण्ड' का स्पष्ट निर्देश है अतः यह ग्रन्थ १३ शती से प्राचीनतर नहीं हो सकता।

कथाग्रन्थों में 'शुकसप्तति' कहानियों का रोचक संग्रहग्रन्थ है जिसमें एक तोता अपने स्वामी के परदेश जाने पर अन्य पुरुषों पर आकृष्ट अपनी स्वामिनी को ७० कहानियां सुनाकर पथभ्रष्ट होने से बचाता है। इसकी दो वाचनायें मिलती हैं-एक विस्तृत और एक संक्षिप्त। विस्तृत वाचनिका के लेखक चिन्तामणिभट्ट हैं और संक्षिप्त वाचनिका के लेखक कोई जैनकवि। कहानियाँ बड़ी रोचक एवं आकर्षक हैं।

मैथिलकोकिल विद्यापति (१४वीं शती) की 'पुरुषपरीक्षा' साहित्यिक सौन्दर्य से विभूषित है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका महत्त्व कम नहीं है।

कथासाहित्य में जैन लेखकों की रचनायें भी महत्त्वपूर्ण हैं। लोक में प्रचलित धूर्त, विट, मूर्ख तथा स्त्रियों की कहानियों को लिखने में जैनलेखकों की प्रतिभा विशेष द्रष्टव्य है। हेमविजयमणि विरचित 'कथारत्नाकर' में २५६ छोटी-छोटी कथाओं का संग्रह है जिसका निर्माण १७वीं शती में किया गया है। जैन संस्कृत-प्राकृत साहित्य में कथाओं के अनेक महनीय संग्रह उपलब्ध होते हैं, जो 'कथाकोश' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कथाकोशों में हरिसेणाचार्य रचित 'कथाकोश' जो 'बृहत्कथाकोश' के नाम से विख्यात है, अपनी विपुल कलेवरता के कारण विशेष महत्वपूर्ण है। गद्य में रचित जैन प्रबन्धों की भावना कथाशिल्प से भिन्न है। इसमें अर्ध-ऐतिहासिक प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनी रोचक शैली में लिखी गई है। ऐसे प्रबन्धों में दो विशेष प्रसिद्ध हैं-(१) प्रबन्धचिन्तामणि (२) प्रबन्धकोश। प्रबन्ध चिन्तामणि मेरुतुङ्गाचार्य (१४वीं शती) की रचना है और प्रबन्धकोश राजशेखर की। जैनकवि सिद्धर्षि की एक रचना है 'उपमितिभवप्रपञ्चकथा'। डॉ. याकोबी के अनुसार सिद्धर्षि की यह कृति भारतीय साहित्य में पूर्ण तथा विशुद्ध रूपात्मक आख्यान है। यह कथा रूपक शैली में लिखित एक बृहत् संस्कृत काव्य है जिसे काव्यात्मक उपन्यास कहा जा सकता है। रूपात्मक प्रबन्धों में जयशेखरसूरिकृत 'प्रबोधचिन्तामणि' तथा नागदेवरचित 'मदनपराजय' विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार जैनकथाओं में दोनों रूप उपलब्ध होते हैं-शुद्ध विवरणात्मक कथा, कोश आदि तथा शुद्ध रूपात्मक उपमिति भवप्रपञ्चकथा, मदन पराजय आदि।

संस्कृत में बौद्ध कथाओं का समावेश करने वाले 'अवदान-साहित्य' का पृथक अस्तित्व है। अवदान का अर्थ है-महनीय कार्य की कहानी। 'अवदान' जातकों के ढंग पर संस्कृत में विरचित नीतिप्रधान साहित्य है। पालिजातक की भांति अवदान भी भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म के शोभन गुणों का वर्णन करते हैं। ऐसे ग्रन्थों में 'अवदानशतक' प्राचीनतम संग्रह है। इसमें उन विशिष्ट गुणों का वर्णन तथा तत्संबद्ध कहानियां हैं जिनमें बुद्धत्व-प्राप्ति का संकेत है। इसका रचनाकाल द्वितीय शती माना जाता है। अवदानशतक में साहित्यिक सौन्दर्य की अपेक्षा नीति का प्रतिपादन प्रमुख है।

साहित्यिक दृष्टि से 'दिव्यावदान' भी विशेष आर्कषक नहीं है। यह हीनयान सम्प्रदाय का अनुयायी ग्रन्थ है। इसकी भाषा सामान्यतया विशुद्ध संस्कृत है, किन्तु स्थान-स्थान पर पाली के संपर्क से मिश्रित सी हो गई है।

भारतवर्ष विश्व के प्राचीन देशों में अन्यतम है। ऋषियों का यह निर्देश "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" के गम्भीर उद्घोष से संसार के ज्ञानगुरु पद को सुशोभित करता था। इस पावन देवभूमि के उद्बुद्ध दार्शनिकों की ज्ञानज्योति से समस्त भूमण्डल का अज्ञान-तिमिर तिरोहित होता था। परन्तु सर्वप्रथम विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाने वाला यह भारत एक दिन विधि के क्रूर अट्टहास का लक्ष्य बना। सदियों तक यह देश विदेशी लौह शृंखला में जकड़ा रहा। हमारे देश, समाज और संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाले सत्साहित्य और इतिहास पर पर्दा डालकर उसके स्थान पर मनगढन्त पिछड़ेपन का तथाकथित इतिहास रचाया गया। आधुनिक ऐतिहासिक किसी देश की राजनैतिक उथल-पुथल की क्रमबद्ध तिथियों और घटनाओं के सूचीमात्र को ही इतिहास कहते हैं। परन्तु भारतीय आदर्श के अनुसार इतिहास का उद्देश्य मानव जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को जीवन में घटाते हुए राष्ट्र के सांस्कृतिक अभ्युदय में अपूर्वयोगदान करना भी था। हमारे यहां इस उद्देश्य के पूर्तिस्वरूप रामायण, महाभारत तथा पुराण सच्चे इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं।

स्वतन्त्र भारत में परतन्त्रताकालीन मिथ्यारोपों का निराकरण आवश्यक हुआ और अपनी भूली सांस्कृतिक परम्परा का अन्वेषण-मूल्याङ्कन होने लगा। इसी प्रसंग में विदेशियों द्वारा कल्पित इतिहास के स्थान पर सच्चे राष्ट्रिय इतिहास-निर्माण की योजना बनी। इस महत्त्वपूर्ण कार्य की सफलताप्राप्ति के साधनों में अभिलेखों की उपलब्धि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सदियों से मूक अभिलेखों ने अपना हृदय खोल दिया और तब पुरातत्वविदों ने इस अक्षयनिधि से इतिहास को महनीय बनाने का भगीरथ प्रयास किया।

वस्तुतः इतिहास के दो पक्ष हैं-बाह्य तथा आन्तरिक। इतिहास के बाह्यपक्ष से तात्पर्य किसी देश विशेष की भौगोलिक स्थिति से है और आंतरिक पक्ष से राजवंश, शासनप्रबन्ध, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक स्थिति से। शक क्षत्रप

रुद्रदामन् की ख्याति उनके जूनागढ़ शिलालेख में वर्णित है। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजय यात्रा का सुन्दर वर्णन है। मध्ययुग में कन्नौज पर अधिकार करने के लिए प्रतिहार, राष्ट्रकूट तथा पाल नरेशों में परस्पर युद्ध की स्थिति बनी रहती थी जिसकी पुष्टि भोर संग्रहालय लेख, खालिसपुर प्रशस्ति तथा ग्वालियर प्रशस्ति से होती है। ऐहोल शिलालेख में पुलकेशी द्वितीय की जीवनकथा उसके द्वारा सम्राट् हर्षवर्धन को भी पराजित करने की बात सिद्ध होती है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से मूल किन्तु सजीव अभिलेखों का विशेष महत्व है।

संस्कृत वाङ्मय के बृहद् इतिहास के इस पञ्चम गद्यखण्ड में मुख्य रूप से सात प्रकरण हैं जिनमें गद्यसाहित्य का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। ये सात प्रकरण हैं- (१) गद्यकाव्य, (२) चम्पूकाव्य, (३) कथा साहित्य (वैदिक, बौद्ध-जैन, उपदेशात्मक, मनोरञ्जक कथायें) (४) लौकिक संस्कृत साहित्य की कवयित्रयाँ (५) परिशिष्ट-अंश (बौद्ध भिक्षुणियों के गीत-थेरीगाथा), (६) नीतिशास्त्र का इतिहास, (७) अभिलेखीय साहित्य।

उपर्युक्त सातों प्रकरणों के वर्ण्यविषय के अन्तर्गत गद्यकाव्य के सन्दर्भ में प्राचीनकाल से लेकर २०वीं शती के गद्यलेखकों और उनकी रचनाओं का विस्तृत विवेचन लेखक के साहित्यिक मूल्याङ्कन क्षमता का परिचायक है। चम्पूकाव्य का वर्गीकृत विश्लेषण उस काव्य की विषयव्यापकता का द्योतक है। कथावस्तु की दृष्टि से उपलब्ध चम्पू-काव्यों का वर्गीकरण नौ शीर्षकों में किया गया है-(१) रामायण पर आधारित चम्पू, (२) महाभारत पर आधारित चम्पू, (३) पुराणों पर आधारित चम्पू, (४) जैन ग्रन्थों पर आधारित चम्पू, (५) महापुरुष-जीवन पर आधारित चम्पू, (६) यात्रा प्रबन्धात्मक चम्पू, (७) देवताओं एवं महोत्सवों पर आधारित चम्पू, (८) दार्शनिक चम्पू, (९) काल्पनिक चम्पू।

कथासाहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें विद्वान लेखक ने वैदिक सूक्त सन्निविष्ट आख्यान, यजुर्वेदगत आख्यान, ब्राह्मण ग्रन्थ में उपलब्ध आख्यान तथा उपनिषदों में प्राप्त आख्यानों का विश्लेषण प्राञ्जल भाषा में किया है। साथ ही बौद्ध एवं जैन साहित्य में उपलब्ध कथा-वैभव का विस्तृत उल्लेख अत्यन्त उपादेय है।

उपदेशात्मक एवं नीतिमूलक कथाओं में पञ्चतन्त्र हितोपदेश तथा पुरुषपरीक्षा का सर्वेक्षण भी लेखक की सूक्ष्म विवेचन शक्ति का साथी है। मनोरञ्जक कथाओं में बृहत्कथा, बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर, वेतालपंचविंशति, शुकसप्तति और सिंहासनद्वात्रिंशिका प्रमुख हैं। इसी प्रकार में आधुनिक कथा साहित्य की सूचना भी इसकी उपादेयता सिद्ध करती है। परिशिष्ट अंश में बौद्धभिक्षुणियों के गीत-थेरीगाथा का भी समावेश किया गया है। संस्कृत साहित्य की कवयित्रयों में लौकिक कवयित्रियों के साथ ही कुछ वैदिक-ऋषिकाओं का भी वर्णन किया गया है। नीतिशास्त्र का इतिहास के अन्तर्गत चाणक्यनीतिदर्पण, भर्तृहरिशतक, भामिनी विलास, शतकावली कुट्टनीमत, आर्यासप्तशती, कविकण्ठाभरण,

देशोपदेश, नीतिरत्न आदि प्रमुख ग्रन्थों का परिचय दिया गया है। इसी सन्दर्भ में प्रहेलिका ग्रन्थ विदग्धमुखमण्डल की भी चर्चा है।

अभिलेखीय साहित्य में पालि, प्राकृत, संस्कृत, नेपाली, अभिलेखों के साथ ही बृहत्तर भारतीय अभिलेखों का सविस्तर वर्णन नितान्त महनीय है।

इस खण्ड के सम्पादक प्रो. जयमन्त मिश्र साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ मनीषी हैं। इनके वैदुष्यपूर्ण सम्पादकत्व में प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन विशेष महनीय है। इनकी विस्तृत संस्कृत भूमिका में सम्पूर्ण गद्यसाहित्य का आकलन इनकी सारस्वत साधना का द्योतक है। मैं डा. जयमन्त मिश्र को हृदय से साधुवाद देता हूँ। इस खण्ड के सभी विद्वान् लेखक अपने-अपने विषय के निष्णात पण्डित हैं। उन्होंने अपने वैदुष्यपूर्ण आलेखों से इस खण्ड की उपादेयता में विशेष योगदान किया है अतः वे सभी लेखक बधाई के पात्र हैं। साथ ही मैं उन समस्त साहित्य सेवी विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी साहित्य-सम्पत्ति के प्रत्यक्ष या परोक्ष उपयोग से ग्रन्थ की सम्पूर्ति संभव हो सकी है।

संस्कृत वाङ्मय के बृहद इतिहास के इस पञ्चम खण्ड के प्रकाशन के संदर्भ में उत्तर प्रदेश शासन (भाषा विभाग) के अधिकारियों तथा संस्कृत संस्थान की कार्यकारिणी समिति के सदस्यों एवं अध्यक्ष को भी हृदय से साधुवाद देता हूँ जिनके सार्थक सहयोग एवं उत्साहवर्धन से प्रस्तुत खण्ड का प्रकाशन यथासमय हो सका है। संस्कृत संस्थान के निदेशक, सहायक निदेशक तथा संस्थान के अन्य सहयोगी सदस्य भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनकी सतत सक्रियता संस्थान द्वारा प्रवर्तित कार्यक्रमों की सफलता में विशेष भूमिका निभाती है।

इस पञ्चम गद्य-खण्ड के संपादन प्रकाशन में मेरे स्नेहभाजन शिष्य डॉ. रमाकान्त झा का अपेक्षित सहयोग महत्त्वपूर्ण है अतः डॉ. झा को मैं हार्दिक आर्शीवाद देता हूँ।

अन्त में मैं 'शिवम् आर्ट' के व्यवस्थापक द्विवेदी बन्धुओं के प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त करता हूँ जिनका सक्रिय सहयोग इस खण्ड के निर्विघ्न मुद्रण में सहायक सिद्ध हुआ है। इति शम्।

महाशिवरात्रि<br>विक्रम संवत् २०५५

**बलदेव उपाध्याय**<br>शारदा निकेतन<br>रवीन्द्रपुरी (दुर्गाकुण्ड)<br>वाराणसी-५

## प्रथमोऽध्यायः

# गद्यसाहित्यम्

लोकोत्तर-वर्णना-निपुण-कवि-कर्म-काव्यम् दृश्य[1] श्रव्यत्व[2]-भेदेन द्विविधम्[3] प्रकारान्तरेण गद्य-पद्य-मिश्र-भेदेन त्रिविधम्[4]। तत्र गद्यम् गद्यते सुव्यक्तं प्रतिपाद्यते यदिति व्युत्पत्त्या अनुपसर्गात् 'गद व्यक्तायांवाचि' इतिधातोः कर्मणि यत् प्रत्यये[5] निष्पन्नं रचना-विशेषरूपमर्थम-भिधत्ते। एतदेव गद्यम् आचार्यदण्डिमते 'अपादः पद सन्तानो गद्यम्' इति पाद रहित-पदसमूह-रूपम्, आचार्य विश्वनाथोऽनुसारञ्च वृत्तबन्धोज्झितरूपम्' भवति।

आचार्य वामनः वृत्तगन्धि, चूर्णम्, उत्कलिकाप्रायञ्चेति त्रिविधं गद्यं स्वीकुर्वाणः गद्ये वृत्तस्य गन्धे सत्यपि गद्यत्वं मनुते। विश्वनाथोऽपि तथा स्वीकुरुते।[6]

(१) तत्र 'पद्य-भागवद्वृत्तगन्धि' इति लक्षणेन छन्दोगन्धसमन्वितं गद्यं 'वृत्तगन्धि' भवति। यथा पातालतालुतलवासिषु दानवेषु इति गद्यांशे वसन्ततिलकावृत्तस्य भागः प्रत्यभिज्ञायते।

(२) अनाविद्ध-ललितपदं गद्यं चूर्णं भवति। अर्थात् यस्मिन् गद्ये अदीर्घसमासानि ललितानि पदानि भवन्ति तद् गद्यं चूर्णम्। यथा-'अभ्यासो हि कर्मणां कौशलमावहति इत्यादि।

(३) उत्कलिकाप्रायं गद्यं तद् यस्मिन् दीर्घसमासानि उद्धतानि पदानि भवन्ति।

(४) चतुर्थं प्रभेदम्[7] 'मुक्तक'रूपमपि मन्यते। तदनुसारं समास-रहितं गद्यं मुक्तकम्। यथा 'गुरुर्वचसि पृथु रुरसि' इत्यादि।

एतस्यैव[8] गद्यस्य आर्चार्यदण्डिमते कथा आख्यायिका चेति प्रमुखं भेदद्वयं भवति, यदस्मिन् अध्याये साङ्गोपाङ्गं प्रतिपाद्यते।

---

१. दृश्यं तत्राभिनेयम्-तद्रूपारोपात्तुरूपकम्। **साहित्यदर्पणे** ६।१।

२. श्रव्यं तत् काव्यमाहुः यन्नेक्ष्यते नाभिनीयते।
श्रोत्रयोरेव सुखदं भवेत् तदपि षड्विधम्।।
**सरस्वतीकण्ठाभरणे** २।१४०।

३. दृश्य-श्रव्यत्व-भेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। **सा.द.** ६।१।

४. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्। **काव्यादर्शे** १।११।
गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यं तत् त्रिविधं स्मृतम्। **अग्निपुराणे** ३३७।८।
गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यं यत् सा गतिः स्मृता। **सर. कण्ठा.** २।१८।

५. गद मद चर यमश्चानुपसर्गे (पा. सू. ३।१।१००) इति यत्।

६. **काव्यादर्शे** १।२३।

७. वृत्तबन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
भवेदुत्कलिकप्रायं चूर्णकञ्च चतुर्विधम्।। **सा.द.**

८. आद्यं समास-रहितं वृत्तभागयुतं परम्।
अन्यद् दीर्घ-समासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम्।।
तत्रैव ६।३१०।

## कथाख्यायिका-साहित्यम्

स्फुरत् कलालाप-विलास-कोमला
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव[1]।।

वाक्यप्रबन्धरूपेयं रमणीया रसमन्दाकिनी कथा प्राचीन कालादेव सहृदय- हृदय-रसायनता-मादधाना निरन्तरं प्रवहन्ती काव्य-जगति विभिन्नानि रूपाणि समाश्रयन्ती सचेतसां चित्तेषु कमप्यपूर्वं चमत्कारमादधाति।

वैदिक-वाङ्मय-निहित-बीजात् प्ररोहन्ती आख्यानोपाख्यानादि-विभिन्नानि रूपाणि धारयन्ती अनेकान् प्रभेदान् प्रदर्शयन्ती क्रमशो विकसन्ती कथा कथा-साहित्यप्रसङ्गे विस्तरेण प्रतिपादिता। तस्याः कथासरितः प्रवाहश्च प्रदर्शितः।

वाक्यप्रबन्धरूपायाः कथाया अपरं यत् कथाख्यायिकात्मकं स्वरूपम् विलक्षणो यश्च प्रवाहः तत्प्रतिपादनं प्रकृते अभीष्टं वर्तते।

तत्र कोशानुसारं कथा-प्रबन्ध कल्पना तथा आख्यायिका-उपलब्धार्था।[2] आख्यायिका शब्दस्य व्युत्पत्तिलभ्यार्थेनापि अयमर्थः समर्थ्यते।[3]

तदनुसारेण 'वासवदत्ता' 'कादम्बरी', 'अवन्तिसुन्दरी' प्रभृति रचना कथा तथा हर्षचरितादि रचना आख्यायिकेति आख्यायते।

किन्तु कथाख्यायिकयोः स्वरूपार्थ-रचनाशैलीविषयक-पारस्परिकभेदे आलंकारिकाचार्या भिन्नमता अवलोक्यन्ते। तत्र-आचार्य भामहः एतयोः स्वरूपगर्भं भेदं मन्वानः प्रतिपादयति-

"संस्कृतानाकुलश्रव्य-शब्दार्थ-पद-वृत्तिना।
गद्येन युक्तो दत्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता।।
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थ-शंसि च।।
कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता।

---

१. कादम्बरी श्लोक संख्या-८
२. अमरकोश : १-६-६। एवमेव - प्रबन्धकल्पनां स्तोक सत्यां प्राज्ञाः कथां विदुः।
परम्पराश्रया या स्यात् सा मताख्यायिका क्वचित्।।
इति कोलाहलाचार्यः। द्र. हलायुधकोशः।
३. आसमन्तात् ख्याति प्रकटयतीति आख्यातेः 'ण्वुल तृचौ' (पा.सू. ३।४।१३३) इति कर्तरि ण्वुलि, टापि आख्यायिकेति रूपम्।

कन्याहरण-संग्राम-विप्रलम्भोदयान्विता।।
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृता संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक् तथा।।
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः[1]।।" इति

अर्थात् संस्कृतभाषा-निबद्धेन सरल-मधुर-शब्दार्थ-मय-गद्येन गुम्फिता रचना आख्यायिका, यस्याम्-

१. उच्छ्वासेन कथांशानां विभागः,
२. नायकद्वारा स्वघटित-वृत्तान्त-कथनम्,
३. वक्त्रापरवक्त्राभ्यां भावि-कथा-सूचनम्,
४. कवेः साभिप्राय-कथनेन चिह्नितत्वम्,
५. कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भादिवर्णनञ्च भवन्ति।

कथा तु-

१. वक्त्रापरवक्त्राभ्यां रहिता,
२. उच्छ्वासशून्या,
३. संस्कृत-प्राकृतापभ्रंशान्यतम-भाषा निबद्धा,
४. नायकेतर-जन-प्रतिपादित- चरिता च गद्यमयी रचना भवति।

भामहमतमाक्षिपन् आचार्य दण्डी प्रतिपादयति -

"अपादः पद-सन्तानो गद्यमाख्यायिका-कथे।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल।।
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः।।
अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग् वा भेदकारणम्।।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासं चापि भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसङ्गेन कथास्वपि।।
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्चदृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः।।
तत् कथाख्यायिकत्येका जातिः संज्ञा द्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः[2]।।" इति।

---

१. भामहालंकारः, १।२५।२९।
२. काव्यादर्शः, १।२३-२८।

एवञ्चासौ न केवलं कथाख्यायिकयोरेव वास्तविकभेदमस्वीकरोति, अपितु कथायामेव आख्यानोपाख्यानानि सर्वाणि अन्तर्भावयति।

आचार्यविश्वनाथेन एतद्विषयकं प्राचीनमतं हृदि निधाय आख्यायिकाया आदर्श-निदर्शनं 'हर्षचरितं' कथायाश्च 'कादम्बरी' रूपं मन्वानेन प्रतिपादितम्-

**कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।**
**क्वचिदत्रभवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके।।**
**आदौ पद्यै र्नमस्कारः खलादेर्वृत्त-कीर्तनम्।।**
**यथा कादम्बर्यादिः।**
**आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम्।**
**अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्।**
**कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।**
**आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केन चित्।।**
**अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थ-सूचनम्'[1]।। यथा हर्षचरितादिरिति।**

एवञ्च विषय-वस्तु दृष्ट्या भेदेऽपि रचनाविधान-शैली-दृष्ट्या कथाख्यायिकयो र्वास्तविकभेदो न तथा प्रतीयते।

काव्य-प्रभेदान् प्रदर्शयता आनन्दवर्धनेन मुक्तक-कुलकादि-प्रभेदैः सह परिकथा, सकलकथा, खण्डकथा, आख्यायिका, कथारूपाः प्रभेदा अपि प्रतिपादयाञ्चक्रिरे।[2]

तत्र 'एकं धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकार-वैचित्र्येण अनन्त-वृत्तान्त-वर्णन-प्रकारा परिकथा', 'एकदेश-वर्णना खण्डकथा' 'समस्त फलान्तेतिवृत्त-वर्णना सकलकथा' 'उच्छ्वासादिना वक्त्रापर-वक्त्रादिना च युक्ता' आख्याथिका 'तद्रहिता कथा' इति अभिनवगुप्ताचार्येण व्याख्यातम्[3]।

वाक्य-प्रबन्धरूपाया रचनाया उपर्युक्त-प्रभेदेभ्यो व्यतिरिक्तः 'संकथा'-रूप प्रभेदोऽपि विद्यते। सम्यक् कथा संकथेत्यत्र अन्योन्यकथनस्य प्राधान्यं भवति[4]।

एवं हि कथा-काव्ये कथा-वर्णने रसानुकूल समुचित-सुललित-विविधालंकार-समन्वितशब्दार्थ-गुम्फनं सुकवेः काम्यं भवति। अतएव कविता-कामिनी-पञ्चवाणो महाकवि र्बाणः-

नूतनार्थस्य, अग्राम्याया जातेः, अक्लिष्ट-श्लेषस्य, स्फुटरसस्य, विकटाक्षर-बन्धस्य च एकत्र विधानेनैव कवेः किमप्यपूर्वं महत्त्वं मनुते।[5]

---

१. **साहित्यदर्पणे** ६।३११, ३१२।
२. विषयाश्रयमप्यन्यदित्यादिकारिकायांवृत्तिः। **ध्वन्यालोके** ३।७।
३. तत्रैव **ध्वन्यालोकलोचने**।
४. उल्लापः काकुवागन्योन्योक्तिः संलाप-संकथे। इति हेमचन्द्रः।
५. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षर-बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् (दुष्करम्)।। **हर्षचरिते** १।

उपर्युक्त-काव्यशास्त्रीय लक्षणानुसारेण वासवदत्ता, कादम्बरी, अवन्तिसुन्दरी, तिलकमञ्जरीत्यादयः कथाः सन्ति, हर्षचरितादिश्च आख्यायिका विद्यते।

सुबन्धु-विरचित-वासवदत्तातः पूर्वमपि कथा-ख्यायिका-ग्रन्था आसन्निति तेषां नाम्नां निर्देशाद् विज्ञायते। पाणिनेः 'अधिकृत्य कृतेग्रन्थे' (४।३।८७) इतिसूत्र प्रकरणे 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' इतिवार्तिकोदाहरणे वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका 'वासवदत्ता' इति प्रयोगात्, 'क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्' (४।२।६०) इति सूत्रस्थ वार्तिके 'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' पातञ्जलमहाभाष्ये (४।३।८) 'अधिकृत्यकृते ग्रन्थे' बहुलं लुग् वक्तव्यः। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, नच भवति भैमरथी इति तिसृणाम् आख्यायिकानाम् निर्देशात्, दण्डिना 'धवल प्रभवा रागं सा वितनोति मनोवती' इति मनोवती नामोल्लेखात् तथैव भोजेन 'शृंगार-प्रकाशे' मनोवती-शातकर्णीहरण' कथानामनिर्देशात्, वररुचिना 'चारुमती' कथा तथा हालस्य राजकविना श्रीपालितेन 'तरङ्गवती' कथा लिखिता[1] इति प्रसिध्या, रामिल-सोमिलाभ्याम् रचितायाः, शूद्रक कथायाः[2] उल्लेखात्, भट्टार हरिश्चन्द्रेण विरचितस्य विशिष्ट गद्य-ग्रन्थस्य बाणभट्टकृत गुण-कीर्तनात्[3] एतेषां कथाख्यायिकारूपगद्य-ग्रन्थानां पूर्वमस्तित्वं निश्चीयते। कालान्धकारे विलीना इमे कदाचित् कुत्रचित् प्रकाशमेष्यन्तीति कामये।

अलंकृतगद्यस्य प्राचीनोपलब्ध रचना रुद्रदाम्नः (१५०) गिरिनार-शिलालेखे, समुद्रगुप्तस्य (३५०) प्रयागस्तम्भलेखे च दृश्यते। एतस्य सोदाहरणं विवरणम् शिलालेखीयसाहित्य-प्रसङ्गेऽवलोकनीयम्। उपर्युक्त विवरणेन कथाख्यायिकारूपगद्यबन्धस्य पूर्वपरम्परावगति र्जायते।

**(१) सुबन्धु-निबद्धा वासवदत्ता**-वक्रोक्तिमार्ग-निपुणेषु प्राथम्येन निर्दिष्टः[4] कथाकारः सुबन्धुः एकां 'वासवदत्ता' कथां विरच्यअमरकीर्तिः विद्वज्जनबन्धुरभवत्। सुबन्धुः व्याकरण-न्यायमीमांसा-बौद्धादिदर्शनशास्त्रमर्मज्ञः, रामायण-महाभारत-पुराण-परिशीलन-पटुः, काव्यशास्त्र-सिद्धान्तनिष्णातः, प्रत्यक्षर-श्लेषमय-प्रपञ्च-विन्यास-वैदग्ध्यनिधिः महायशस्वी कथाकार आसीत्।

एतादृश-विशिष्ट-रचनाकारस्यापि स्थान-स्थिति-कालादि प्रतिपादनं निश्चयेन कर्तुं न प्रभवन्ति इतिहासकारा इति परमाश्चर्याय कल्पते। वासवदत्ताया अन्तःसाक्ष्येण न्यायस्थितिमिवो-द्योतकर-स्वरूपाम्' इति निर्देशात् उद्योतकरात् षष्ठ शतककालीनात् परवर्तित्वं सिद्ध्यति। ''कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।

---

१. पुण्या पुनीता गङ्गेव सा तरङ्गवती कथा। **तिलकमञ्जरी।**

२. तौ शूद्रक-कथाकारौ वन्द्यौ रामिल-सौमिलौ।
काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्द्धनारीश्वरोपमम्।। **जल्हणः।**

३. पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्ण-क्रम-स्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्य-बन्धो नृपायते।।
**हर्षचरिते** प्रारम्भे श्लोक. सं. १२।

४. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।।
**राघवपाण्डवीये** १, ४१।

शक्त्येन पाणुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्'' इति बाणभट्टेन कृतात् वासवदत्तायाः संकेतात् बाणभट्टात्पूर्ववर्तित्वमनुमीयते। एतेन षष्ठशतकान्ते सुबन्धुना वासवदत्ता रचितेति प्रतिपादयितुं शक्यते।

वासवदत्तायां पदे पदे सभङ्गाभङ्ग-श्लेष-विच्छित्तिः, उपमोत्प्रेक्षाद्यलंकार-चमत्कारः, वक्रोक्ति-वैचित्र्यञ्च परिलक्ष्यन्ते। वस्तुतः सुबन्धुमते तदेव सत्काव्यम्, यस्मिन् श्लेष वक्रोक्त्यलंकाराणां साम्राज्यं वरीवर्ति। सुश्लेष-वक्र घटना पटु सत्काव्यविरचनमिवेति स्पष्ट प्रतिपादनात्। एतद् विषयकाणि उदाहरणानि मूलभागे प्रदर्शितानि सन्तीति तानि तत्र द्रष्टव्यानि।

### (२) हर्षचरितम्

सकलशास्त्र-पारङ्गतेन गद्यरचनाकलाकुशलेन वक्रोक्तिमार्ग-निपुणेन कविताकामिनी-पञ्चबाणेन बाणभट्टेन हषचरितरूपामाख्यायिकां समाख्याय जगति महती ख्याति लब्धेति विदन्ति विपश्चितो विश्वस्मिन्।

सप्तमशतकपूवार्द्धे राज्यशासनं कुर्वाणस्य महाराज-हर्षवर्धनस्य सभा-रत्न-प्रमुखस्य कवीश्वर-बाणभट्टस्य सप्तमशतककालिकत्वं निर्विवादम्। हर्षचरित-प्रारिम्भक-कथा-प्रामाण्येन वत्सगोत्रीय वात्स्यायनसद्वंशमुक्तामणिः महाकविर्बाणः महाराजहर्षवर्धन-सम्मानःभाजनः सन् हर्षचरिताभिधानां परमोत्कृष्टामाख्यायिकामरीरचत्। यत्र महाराजहर्षवर्धनजीवनसम्बद्धां सकलां महत्त्वपूर्णां घटनां कविकर्मकौशलेन समवर्णयत्। अत्र श्लेषोपमा-रूपक-दीपक-परिसंख्या-न्तरन्यास-विरोधाभासादयः सर्वेऽपि चमत्कृतिजनका अलंकाराः, माधुर्यौजः प्रसादाख्यागुणाः, शृंङ्गारवीरादयो रसाः परमौचित्येन वर्णिताः महाकवेः साक्षाद् वाणीस्वरूपतां प्रकाशयन्ति।[1] किं बहुना अधोनिर्दिष्टा एकैवेयं प्रशस्तिः बाणस्य वैशिष्ट्यं सामस्त्येन अभिव्यनक्ति-

**श्लेषे केचन शब्दगुम्फ-विषये केचिद् रसे चापरेऽलंकारे कतिचित् सदर्थ-विषये चान्ये कथावर्णने। आ सर्वत्र गभीर-धीर-कविता-विन्ध्याटवी-चातुरी-संचारी कवि-कुम्भि-कुम्भ-भिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।** चन्द्रदेवः।

अष्टसु उच्छ्वासेषु विभक्तस्य हर्षचरितस्य कथायाः सारः, वैशिष्ट्यम्, वर्णने बाणस्य चमत्कारः इत्यादयो विषया विस्तरेण मूलभागे प्रदर्शिताः सन्ति।

### (३) कादम्बरी

महाकवि बाणभट्टस्य परमोत्कृष्टा कृतिः कादम्बरी कथा अतिद्वयी बृहत्कथां वासवदत्तां चातिक्रान्तेति निम्नपद्येन विजानते विद्वांसः-

---

१. जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवह।। **गोवर्धनाचार्यः**

**द्विजेन तेनाक्षतकण्ठ-कौण्ठ्यया महामनोमोहमलीयसान्धया।**
**अलब्ध-वैदग्ध्य-विलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयीकथा।**[1]

अतएव कादम्बरीरसं पायं पायं विदग्धा मत्ता भवन्ति। बाणेन कादम्बरी-पूर्वभाग एव प्रणीतः। कथायाः परिपूरणार्थं तत्तनूजेन पुलिन्द भट्टेन उत्तरभागो विरचित इति उत्तरभागस्य आरम्भे तेनैवं निवेदितम्-

**"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्द्धं**
**विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथा-प्रबन्धः।**
**दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य**
**प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्"।।**[2]

पुनश्च सविनय-पितृ-भक्तिं प्रदर्शयतातेन तत्रैव निवेदितम्-

**"कादम्बरी-रस-भरेण समस्त एव**
**मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।**
**भीतोऽस्मि यन्न रस-वर्ण-विवर्जितेन**
**तच्छेषमात्मवचसाऽप्यनुसन्दधानः"।।७।।**

कादम्बरी कथा-साहित्यस्य चूडान्तनिदर्शनीभूता, यत्र नूतनार्थस्य, अग्राम्याया जातेः, स्पष्टश्लेषस्य स्फुटरसस्य, विकटाक्षर-बन्धस्य च एकत्र दुर्लभसमावेशात् कापि अपूर्वा विच्छित्ति र्विलसति।

अत्र कलापक्ष-भावपक्षयोर्यादृश मनोरमसंगमो वरीवर्ति सोऽन्यत्र दुर्लभायते। एतच्च वैशिष्ट्यं यथा स्वयं महाकविना-

**"हरन्ति कं नोज्जवलदीपकोपमै-**
**र्नवैः पदार्थैरुपादिताः कथाः।**
**निरन्तर-श्लेषघनाः सुजातयो-**
**महास्रजश्चम्पक - कुड्मलैरिव।।"**[3]

इत्यादिना निर्दिष्टं तत् सर्वथा तथ्यम्।

अलंकाराणां रसानुकूलं संयोजनम, गुणानां रसाभिव्यञ्जनम् च कथायां सहृदयहृदि कौतुकाधिकं रागं जनयतः। आस्वाद्यताम् रसनोपमाया अत्र चारुता-क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

---

१. पूर्वभागे श्लो. सं. २०।
२. उत्तरभागे श्लो. सं. ४।
३. पूर्वभागे श्लो. सं. ६।

जाबालिमुनेराश्रमं वर्णयतो बाणस्यायं परिसंख्यालंकारमनोहर-विन्यासः कस्य विद्ग्धस्य मानसं नाकर्षति ?

"यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायु-प्रलपितम्, वयः परिणामे द्विजपतनम्, उपवन-चन्दनेषु जाड्यम् अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः"।

अस्याम् शुकनासोपदेशः, अच्छोदसरोवर-वर्णनम्, विन्ध्याटवीचित्रणम्, पात्राणां निरूपणम्, इत्यादीनि यथा बाणेन कृतानि तानि कथासाहित्यस्य निदर्शनानि सन्ति। अतः कादम्बरी वस्तुतः अतिद्वयी कथा वरीवर्ति।

(४) **अवन्तिसुन्दरीकथा**

(५) **दशकुमारचरितम्**

काव्यादर्शच्छन्दोविचिति ग्रन्थप्रणेत्रा कविवर दण्डिना विरचितं 'दशकुमारचरितम्' संस्कृतकथासाहित्ये महिमानं प्रथिमानं च आदधाति। काञ्चीपुर निवासिना दाक्षिणात्येन एनेन सप्तमशतकान्तभागे दशकुमारचरितं विरचितमिति ऐतिहासिका मन्यन्ते। एतस्य पूर्वपीठिकायाः पञ्चसु उच्छ्वासेषु अवन्तिसुन्दरीकथा, मध्यपीठिकायाअष्टसु उच्छ्वासेषु अष्टानां कुमाराणां कथाः वर्णिताः सन्ति। प्रायः दशकुमारचरितमिति नामार्थस्य सिद्धौ पूर्वभागे कथाद्वयसंयोजने उत्तरपीठिकया च विषयवस्तु प्रपूरणेन सामस्त्येन दशकुमारचरितमिति नाम प्रसिद्ध्यति। पृथग्रूपेण प्राप्ताया अवन्तिसुन्दरीकथा या, अत्रैव समाहरणात् दशकुमारचरितमेवाद्य प्रसिद्धिमेति।

महाकाव्येषु बृहत्त्रयीव कथासाहित्ये या कथात्रयी विद्यते तत्र तृतीयस्थानं भजमाना दशकुमारचरितकथा गौरवेणातिशेते। अस्याः कथावस्तु-विन्यासः कथावर्णनवैचित्र्यं पात्र-चरित-चित्रणं च तथामनोहराणि सन्ति येन दण्डी वाल्मीकिव्यासाभ्यामनन्तरं कविषु तृतीयं स्थानं लभते इति निगदन्ति दण्डिप्रशंसकाः। तथाहि-

**"जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।**
**कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि"॥**

दशकुमारचरितस्य वैशिष्ट्यं मूलभागे द्रष्टव्यम्।

(५) **तिलकमञ्जरी**

अस्यामेव कथा-साहित्य परम्परायां तिलकमञ्जरी राराजते। उज्जयिनीस्य काश्यपगोत्रीय विप्रस्य पण्डितसर्वदेवस्य ज्येष्ठतनयः धनपालः धाराधीश-मुञ्ज-भोजराजयो राज्याश्रितः एकादशशतकपूर्वार्द्धे तिलकमञ्जरीकथां प्रणिनाय। एतस्य वैदुष्येण काव्यकौशलेन च प्रभावितो मुञ्जराजः धनपालं सरस्वतीति सम्मानोपाधिना विभूषयामासेति तिलकमञ्जरी कथाया उपोद्घाते स निर्दिशति-

तज्जन्या जनकाङ्घ्रि-पङ्कजरजः सेवाप्त-विद्यालवो-
विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात् कथाम्।
अक्षुण्णोऽपि विविक्त सूक्ति रचने यः सर्वविद्याब्धिना
श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः।।

तिलकमञ्जरी धनपालस्य काव्य-कलायाः चरमं निदर्शनम्। सुबन्धु-बाणादिभिः प्रदर्शितां कथाकाव्यशैलीमनुसरन् शक्ति-व्युत्पत्ति-शाली धनपालः तिलकमञ्जरी-रचनया विश्रुतां ख्यातिमर्जयत्। अधस्तनं संक्षिप्तमप्येतदुदाहरणं तद्वैशिष्ट्य-निदर्शकम्-

''अस्मिन् राजनि अनुवर्तितशास्त्रमार्गे प्रशासति वसुमतीम्, धातूनां सोपसर्गत्वम्, इक्षूणां पीडनम्, पदानां विग्रहः, तिमीनाः गलग्रहः, कुकविकाव्येषु यतिभ्रंशदर्शनम्, उदधीनामपवृद्धिः, द्विजाति-क्रियाणां शाखोद्धरणम्, सारीणामक्ष-प्रसर-दोषेण परस्परं बन्ध-वध-मारणानि बभूवुः।''

अन्यान्यपि विभिन्नप्रसङ्गसम्बद्धानि उदाहरणानि मूलभागे उद्धृतानि सन्ति यानि धनपालस्य विशिष्टं कवि-कर्म-कौशलं प्रकाशयन्ति।

(६) **गद्यचिन्तामणिः-**

श्रीमद्वादीभसिंह सूरिणा एकादशशतके चिन्तामणिरिव अपरः गद्यचिन्तामणि र्विरचितः। एकादशसु लम्भेषु विभक्तस्यास्य गद्यं रोचकं प्रभावोत्पादकञ्च वरीवर्ति। गद्यचिन्तामणेः पुष्पिकावाक्यैः अस्य जन्मना नाम ओडयदेव आसीत् वादीवसिंहः उपाधिरासीत्।

जिनसेनस्य महापुराणे वर्णिताम् जीवन्धरकथामाधृत्य वादीभसिंहेन अलंकृतगद्यशैल्याम् तत्कथा अत्र वर्णिता। आदौ जिनमुनीनां प्रशस्तिम् जैनसिद्धान्तनिर्देशम् च विधाय मुख्यकथा प्रवाहिता।

कथासारः, कथावैशिष्ट्यम्, लेखनशैली, वादीभसिंहस्य अन्यानि रचनानि च मूलभागे प्रतिपादितानि सन्ति।

(७) **मन्दारमञ्जरी**

मन्दारमञ्जरीकथा-काव्य-रचयितापण्डितप्रवर-विश्वेश्वरः व्याकरणन्यायादिशास्त्रमर्मज्ञः काव्यशास्त्रनिष्णातः वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधिनव्यन्यायदीधिति-तर्क कुतूहल-दीधति प्रवेशालंकार-कौस्तुभ-रसचन्द्रिकाऽलंकार-प्रदीप-काव्यतिलकालंकार-मुक्तावली-काव्यरत्नाद्यनेक ग्रन्थानां प्रणेता आसीत्। अस्य पिता भारद्वाजगोत्रीय पर्वतीय विप्रप्रवर लक्ष्मीधरः सकलशास्त्रपारङ्गतः आसीत्। अयं हि पश्चिमे वयसि वाराणसीमागत्य श्रीविश्वनानाथमाराध्यविश्वेश्वर सदृशं पुत्ररत्नमलभत। विश्वेश्वरः पितृमुखादेव सर्वशास्त्राणांश्रवणं कृत्वा मननं च विधाय तादृशः शास्त्रमर्मज्ञोऽभूत्।

मन्दारमञ्जरी भागद्वये विभक्ता वर्तते। प्रस्तावनाभागे गौरी-शंकर-गणेश-लक्ष्मी-सरस्वत्यादीनां वन्दनम्, वाल्मीकिव्यास-कालिदास-भवभूत्यादीनां पूर्वकवीनां प्रशस्तिः,

सुबन्धु-बाणादीनां कथाकाराणां प्रशंसा च वर्तन्ते। एतेन 'आदौ पद्यैर्नमस्कारः' इति कथालक्षणानुसरणं भवति।

एतस्याः मनोरम कथा-विषयः दिव्यादिव्यरूपः कौतुकाधायकः विस्तरेण मूलभागे प्रतिपादितो वर्तते।

अस्यां श्लेषोपमारूपक-परिसंख्यादयोऽलंकाराः परमौचित्येन योजिता अपूर्वं चमत्कारं जनयन्ति। परिसंख्यालंकारप्रयोगसौन्दर्यमत्रावलोकनीयम्-

''यस्मिन् सर्वोत्तर पुण्यचरित रत्नाकरे शासति महीं गुणच्छेदो मृणालेषु, अङ्कप्रचारो गणितागमेषु, वर्णव्यत्ययः सात्त्विकभावेषु, सङ्करोऽलङ्कारेषु, वैषम्यं छन्दः प्रभेदेषु..... श्रुतिलङ्घनं वधूनां कटाक्षेषु न जनेषु समभवन्।''

अन्यानि च मनोहराणि उदाहरणानि मूलभागेऽवलोकनीयानि। अष्टादशशतके विरचितेयं 'मन्दारमञ्जरी' कथासाहित्ये विशिष्टं स्थानमाश्रयति।

(८) **शिवराजविजयः**

कथाख्यायिका-काव्यरचनायाः या शृंङ्खला प्राचीनकालात् प्रचलिता क्रमशः प्रवर्धमानासीत् सा वैदेशिकशासनकाले शैथिल्यमवाप। किन्तु संस्कृतसाहित्यरचना-प्रवाहो यथा अन्यविधासु अवरुद्धो नाभवत् तथैव एतत्कथा-विधायामपि सर्वथाऽवरुद्धो नाभूत्। अस्यामेव रचनापरम्परायां पं. अम्बिकादत्तव्यासस्य 'शिवराज-विजयः' विजयतेतराम्।

व्यासमहोदयस्य पितामहः पं. राजाराममहाशयः जयपुरनिकटस्थ पूर्वज ग्रामादागत्य काशीमध्युवास। राजारामस्य ज्येष्ठतनयाद् दुर्गादत्तमहोदयात् ख्रैष्टे १८५८ तमे वर्षे लब्धजन्मा अम्बिकादत्तव्यासः जन्मजातप्रतिभासम्पन्नः बाल्यादेव कविकर्मकुशलोऽभवत्। काश्यामेव व्याकरण-न्याय-सांख्य-काव्यशास्त्रायुर्वेदादिविषयान् सम्यगधीत्य विविधशास्त्रनिष्णातः व्यासमहाभागः काव्यरचनाकौशलेन परां प्रसिद्धिं प्राप्नोत्। संस्कृत-हिन्दी-वङ्गभाषासु प्रवीणः कृत-विविध भाषाविशिष्ट-रचनः परममेधावी व्यासोऽम्बिकादत्तः दैवदुर्विपाकेन,

> **''योऽसावत्यन्मेधावी चतुर्णामेकको भवेत्।**
> **स्वल्पायुर्वानपत्यो वा दरिद्रो वा रुजान्वितः।।'' इति**

विधि-विधानेन च द्विचत्वारिंशे स्वल्पे वयसि पटनास्थ राजकीय संस्कृत महाविद्यालये प्राध्यापकपदे कार्यं कुर्वाणः १९०० तमेवर्षे इमं लोकंपरित्यज्य दिवमगमत्।

भारतीय महापुरुषेषु अन्यमतस्य परमपराक्रम-शालिनः शिवाजीमहाराजस्य वीर-गाथामाधृत्य विरचितः 'शिवराजविजयः' कथाप्रवाहेण भाषासारल्येन, शैलीवैशिष्ट्येन च लोक-प्रियतामादधानः व्यासमहोदयस्य प्रसृत्वरामनश्वरां कीर्तिं ख्यापयति।

कथा-प्रबन्धस्य वैशिष्ट्यसूचका अनेके मनोरमाः प्रसङ्गाः मूलभागे सोदाहरणाः प्रदर्शिताः सन्ति ये नूनं सहृदयपाठकमनांसि समाकर्षयन्तः प्रमोदयन्ति।

विश्वसिमि प्रकरणद्वये विस्तरेण वैशद्येन प्रदर्शितानि कथा-साहित्य विवरणानि जिज्ञासूनां समाधानानि कुर्वन्ति तान् जूनमासोदयिष्यतीति शम्।

## द्वितीयोऽध्यायः

# चम्पू-काव्यम्

शब्दार्थ-संयोजनरूपं लोकोत्तर-वर्णनानिपुण-कविकर्म काव्यम् दृश्यश्रव्य-भेदेन प्रथमतो द्विविधम्।

तत्र श्रव्यम्-गद्यं पद्यं मिश्रञ्चेति त्रिविधरूपम्।
एतेषु वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्, छन्दोबद्धपदं पद्यम्,

गद्य-पद्यमयं मिश्रञ्चेति श्रव्यकाव्य-प्रभेदानां त्रीणि रूपाणि काव्य-शास्त्रे निर्दिष्टानि, यानि पूर्वाध्याये विस्तेरण प्रतिपादितानि सन्ति। गद्य-पद्योभयात्मकस्य मिश्रकाव्यस्य चम्पूः, करम्भकम्, विरुदम्[1] जयघोषणाचेति अनेक-प्रभेदाः सन्ति, यत्र सर्वत्र गद्य-पद्ययोर्मिश्रणं प्राप्यते।[2] एतेषु "करम्भकं तु विविधाभि र्भाषाभिर्विनिर्मितम्" इतिलक्षणात् 'विश्वनाथप्रशस्तिरत्नावली' करम्भकम् विद्यते।

**"गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते"**

इत्येत द्विरुद-स्वरूप-निरूपणात् तदुदाहरणतया रघुदेवकृता-'विरुदावली', कल्याण-रचिता 'विरुदावली' च प्रसिद्धा।

अन्वर्थनामिकायां जयघोषणायामपि गद्यपद्यात्मकं वर्णनं भवति। यथा 'सुमतीन्द्र जयघोषणा' इत्यादि। ताम्रपत्र-शिलापट्टादौ उत्कीर्णं गद्यपद्यमयं दानपत्रम्, आज्ञापत्रञ्च मिश्रकाव्य रूपात्मकं विद्यते। अतो मिश्रकाव्यम् द्विविधम्-(१) ख्यातम्-प्रबन्धात्मकं चम्पूरूपम्' (२) प्रकीर्णम्-विरुद-करम्भकादिरूपम्।

यथाहि प्रतिपाद्यते अग्निपुराणे[२]

"मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा।"

### (क) चम्पूकाव्य-निर्माण-निदानम्-

छन्दोबद्धं रागलयात्मकं पद्यं रसगुण-रीत्यलंकारातिरिक्तया गेयधर्मितयापि सहृदय-हृदयमाकर्षति। गद्यकाव्यञ्च स्वकीयेन अर्थगौरवेण रस-गुणालंकारसहितेन पाठकान् समाह्लादयति। गेयधर्मस्य अर्थगौरवस्य च उभयोरेकत्र समावेशाय चमत्कृतचम्पूकाव्यस्य सृष्टिः प्रादुरभवत्। यथाहि संकेतयति भोजदेवः स्वीये 'चम्पूरामायणे'-

---

१. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्। **काव्यादर्शे** १/११ अग्नि पु. ३३७/८/ तच्च गद्य-पद्य-मिश्र भेदैस्त्रिधा/वाग्भटालंकारे। श्रव्यं तु त्रिविधं ज्ञेयं गद्य-पद्योभयात्मना। **मन्दारमरन्द.**

२. **साहित्यदर्पणे** ६/३३७

**गद्यानुबन्ध-रस मिश्रित-पद्य-सूक्ति-**
**र्हृद्याहि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।**
**तस्माद् दधातु कविमार्गजुषां सुखाय**
**चम्पू-प्रबन्ध-रचनां रसना मदीया।।३।।**

यथा वीणा-वाद्येन सहितं गानं श्रोतृणामधिक-प्रमोदाय जायते तथैव गद्य-सम्बन्धेन मनोहरं पद्यम् अतीव हृदयाह्लादकं भवति। अतएव कविमार्गानुगामिनां जनानां परम-प्रमोदाय चम्पू-प्रबन्ध-काव्य-रचना-प्रयासो विधीयते कविना। तत्र भावात्मक-विषयाणां वर्णनं पद्यैः, वर्णनात्मक-वस्तूनाञ्च विवरणम् गद्येन सामान्यतो विधीयते चम्पूकारेण। यदि कुत्रापि एतस्यानुपालनं नावलोक्यते तत्र चम्पूकारस्य अनवधानमेव तन्निदानम्।

(ख) **चम्पूशब्दार्थः-**

गत्यर्थकात् चौरादिक चपि धातोः औणादिके ऊ प्रत्यये सति निष्पन्नः चम्पूशब्दः गतेः अनेकार्थकत्वात् तादृशं रचना-विशेषं बोधयति, येन परमानन्दसहोदरः आनदोऽनुभूयते।

हरिदास भट्टाचार्यस्तु चम्पूशब्दम् "चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मितीकृत्य प्रसादयतीति चम्पूः" इत्येवंरूपेण व्युत्पादयति। चमत्पूर्वकात् पूञ् पवने इत्यस्मात् पृषोदरादित्वात् निष्पन्नः चम्पूशब्दः चमत्कार-प्रधानं स्वनिहितमर्थं प्रतिपादयति। उभयथापि योगरूढोऽयं चम्पूशब्दः काव्यविशेषं लक्षयति।

(ग) **चम्पू-लक्षणम्-**

सप्तशतकोत्तरार्द्धे विद्यमान आचार्यदण्डी

"गद्यपद्यमयी वाणी (काचित्) चम्पूरित्यभिधीयते[1]" इत्येवं चम्पूं परिभाषमाणः चम्पूकाव्ये गद्य-पद्ययोः मिश्रणमेव अपेक्षते। एतल्लक्षणेन निश्चीयते यद्दण्डिनः समये चम्पूकाव्यं लक्ष्यतया अस्तित्वे आसीत्। हेमचन्द्राचार्यः (१०८८-११७२) स्वकीये 'काव्यानुशासने'-

"गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पूः[2]" इत्येवं लक्षयन् चम्पूकाव्ये साङ्कत्वं सोच्छ्वासत्वं चापि तत् स्वरूपाधायकं तत्त्वं मनुते।

डा. सूर्यकान्तेन सम्पादितस्य 'नृसिंहचम्पू'-काव्यस्य भूमिकायाम् अज्ञात-कर्तृकमेकं-चम्पू-काव्य-लक्षणमुपलभ्यते, यत्र गद्यपद्य-मिश्रणम्, साङ्कत्वम्, सोच्छ्वासत्वमित्येतैः सह उक्ति-प्रत्युक्ति-विष्कम्भशून्यत्वमपि समपेक्षितम्, यच्च-

**"गद्य-पद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा कवि-गुम्फिता।**
**उक्ति-प्रत्युक्ति-विष्कम्भ-शून्या चम्पूरुदाहृता"**

---

१. **काव्यादर्श** १/३१
२. **काव्यानुशासने** ८/६

इत्येतल्लक्षणेन विज्ञायते। एतल्लक्षणोदाहरणन्तु त्रिविक्रमभट्टविरचिता 'नलचम्पूः', या हि गद्यपद्यमयी, साङ्का, सोच्छ्वासा, उक्ति-प्रत्युक्ति-विष्कम्भकरहिता च विद्यते। किन्तु लक्षणमिदम् अव्याप्ति-दोष-ग्रस्तम्, यतोहि बहुषु चम्पूकाव्येषु लक्षणमिदं न घटते। भागवत-चम्पूः, भारतचम्पूः, पुरुदेवचम्पूः, आनन्दवृन्दावनचम्पूः, रामानुजचम्पूः एवंविधा अन्याश्च स्तवकेषु विभक्ता नोच्छ्वासेषु यशस्तिलकचम्पूः, वसुचरितचम्पूः, नीलकण्ठविजयचम्पू, यात्राप्रबन्धचम्पूश्च आश्वासेषु विभक्ता नोच्छ्वासेषु। आनन्दकन्दचम्पू-यतिराजविजयचम्पू-नाथमुनि-विजयचम्पू-कुवलयाश्वविलासचम्पूप्रभृतयः उल्लासेषु विभक्ताः। रामायणचम्पू-विरूपाक्ष-वसन्तोत्सवचम्पू-प्रभृतयः काण्डेषु विभक्ताः शंकरमन्दार-सौरभचम्पू-विद्वन्मोदतरङ्गिणी-चम्पू प्रभृतयः तरङ्गेषु विभक्ताः। बालभागवतचम्पू-भरतेश्वराभ्युदयचम्पू-प्रभृतयः सर्गेषु विभक्ताः रघुनाथविजयचम्पू-वरदाभ्युदयचम्पू-प्रभृतयः विलासेषु विभक्ताः। जीवन्धरचम्पूः लम्भकेषु विभक्ता।

आचार्यदिग्विजयचम्पूः कल्लोलेषु विभक्ता। मन्दारमन्दचम्पूः मनोरथेषु विभक्ता। रामचन्द्रचम्पूः परिच्छेदेषु विभक्ता।

एवं हि चम्पूकाव्ये सोच्छ्वासत्वस्य नियामकत्वं नास्ति। एवमेव उक्ति-प्रत्युक्ति-शून्यत्वं चम्पूकाव्ये अनिवार्यं नास्ति, विश्वगुणादर्शचम्पू-वीरभद्रविजयचम्पू-तत्त्वगुणादर्शचम्पू विद्वन्मोदतरङ्गिणीचम्पू-प्रभृतयः उक्ति-प्रत्युक्ति-सहिताः सन्ति।

एवमेव विस्कम्भकशून्यत्वमपि चम्पूलक्षणे निरर्थकम्, चम्पूकात्यस्य श्रव्यकाव्यत्वात्। विष्कम्भकस्य विधानं दृश्यकाव्ये एव भवति। अतः उपर्युक्तेषु चम्पू-लक्षणेषु किमपि लक्षणं निर्दुष्टं नास्ति।

यथा हि महाकाव्ये सर्गबन्धत्वमनिवार्यम् तथा चम्पूकाव्ये उच्छ्वासादि- बन्धत्वमनिवार्यं नास्ति। चम्पूकाराः स्वेच्छया तद्विभाजनं कुर्वते। गद्य-पद्यमयत्वमेव सर्वत्र एकरूपतया प्राप्यते। किन्तु गद्य-पद्यमयत्वं जातकमालायाम्, पञ्चतन्त्रादौ चापि अवाप्यते। अतः एतादृशेन चम्पू-लक्षणेन भाव्यं येन अन्यस्मिन् मिश्रकाव्ये विरुद-करम्भक-पञ्चतन्त्रादौ एतल्लक्षणं नातिव्याप्तं भवेत्। एतत् प्रसङ्गे डा. कैलासपति त्रिपाठिना व्याख्यातस्य नलचम्पूकाव्यस्य भूमिकायाम्, निर्दिष्टं निम्नोक्तं लक्षणं समुपयुक्तं प्रतिभाति-"गद्यपद्यमयं श्रव्यं सम्बद्धं बहुवर्णितम्।

सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्।।" अत्र श्रव्यकथनेन गद्य-पद्य-मिश्रित-नाटकादे र्व्यावर्तनम्।

सम्बद्धप्रबन्ध-कथनात् गद्यपद्यमिश्रितस्य पञ्चतन्त्रादेः, मुक्तकरूपस्य विरुद-दानपत्रादेश्च व्यावृत्तिः, यतो हि एतेषु सम्बद्धप्रबन्धकता नास्ति। एवं हि उपर्युक्त लक्षणेन चम्पूकाव्यम्-गद्य-पद्य-मिश्रितं भवति, श्रव्यं भवति, प्रबन्धरूपं भवति, वर्णन-प्रधानं भवति, सालंकारं रसाभिव्यञ्जकञ्च भवति। एतत् सर्व प्रख्यातचम्पूकाव्ये एव एकत्र प्राप्यते नान्यत्र मिश्रकाव्येषु।

(घ) **चम्पूकाव्यस्य उद्भवोविकासश्च**-पद्यात्मक काव्यस्य गद्यात्मक काव्यस्य च प्रणयनं यथा आदि कालदेव दृश्यते तथैव गद्य-पद्योभयात्मक मिश्रकाव्यस्यापि रचनारम्भः आदि काले एवाभूत्। ऐतरेयब्राह्मणस्य हरिश्चन्द्रोपाख्याने मिश्रकाव्यस्य मूलरूपं प्राप्यते यत्र वर्णनात्मकविषयस्य गद्येन भावनात्मकविषयस्य च पद्येन प्रतिपादनं दृश्यते-"हरिश्चन्द्रोह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्यह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्यह पर्वत-नारदौ गृह ऊषतुः। सह नारदं पप्रच्छेति।

**यंन्विदं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये चन।**
**किंस्वित् पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष्व नारद।। इति।।**

इयंहि मिश्रशैली प्रश्न-मुण्डक-कठ केनाद्युपनिषत्सु चापि प्राप्यते। ब्राह्मणानामुपनिषदाञ्च मिश्रशैली सर्वथा स्वाभाविकी अकृत्रिमा वर्तते।

चम्पूकाव्यस्य कृत्रिमताया मूलरूपं समुद्रगुप्तस्य दिग्विजय-प्रशस्ति-वर्णने (३५० ख्रिष्टाब्दे) स्पष्टमवलोक्यते, यत्र कविवर हरिषेणः गद्य-पद्यमयस्वकीये प्रशस्तिकाव्ये रस-भाव-गुणालंकार-कला-चातुरीं सञ्चारयन् सहृदयान् चमत्करोति। नूनमियं प्रशस्तिः चम्पूकाव्यस्य पूर्वपीठिका। एतत् परम् कविता-कामिनीपञ्चबाणेन, महादण्डधारिणा दण्डिना वा, न जाने किमर्थम्, चम्पूलतां तिरस्कृत्य कल्पतरुरिव गद्यतरुरेव समादृतः। उपलब्धासु चम्पूरचनासु महाकवि त्रिविक्रमभट्टस्य नलचम्पूरेव प्रथमा कृतिरिति मन्यते ऐतिहासिकैः। त्रिविक्रमभट्टः-विदर्भाभिजनः शाण्डिल्यगोत्रीयः श्रीधर-पौत्रः देवादित्य-तनूजः कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमभट्टः खिस्टीयदशमशतक पूर्वार्द्धे प्रायः, ९१५ खिष्टाब्दे, जायमानः गद्यपद्यमयीं सरसां सालंकारां महाभारतीय नल-दमयन्ती-कथाश्रितां हरचरणसरोजाङ्कां सप्तोच्छ्वासां मनोहरां नलचम्पूं व्यरचयाञ्चकार।

यथा छत्रस्य विशिष्टवर्णनेन भारविः 'छत्रभारविः', घण्टायाश्चमत्कृतवर्णनया माघः 'घण्टामाघः', दण्डस्य' वर्णनाद् 'दण्डी', तालस्य अपूर्ववर्णनात् तालरत्नाकरः, तथैव यमुनाया विशिष्टवर्णनात् त्रिविक्रमः 'यमुनात्रिविक्रम' इति नाम्ना प्रसिद्धिं प्राप। यथाहि-

**उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभा पाण्डुराया-**
**मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य।**
**जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योम-मध्ये**
**सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनञ्च।। ६/१/**

दमयन्त्या वयोवचनयोर्वर्णन-प्रसङ्गे त्रिविक्रमेण स्वाभिप्रेतं काव्यस्वरूपं यथा व्यञ्जनया प्रकाशितं तत् तस्य रचना-चमत्कृतिं जनयति। तथाहि-'प्रसन्नम् उदारं सत्कान्ति श्लिष्टं सुकुमारम् अनेकालङ्कार-भाजनं वयोवचनंच। ६/२१/। अयमाशयः-यथाहि दमयन्त्या

वयः वचनञ्च प्रसन्नम्, उदारम्, कान्तम्, सुश्लिष्टम्, सुकुमारम् अनेकालङ्कारभाजनं सत् मनोहरं विद्यते, तथैव कवेरेतत्काव्यमपि एभि र्गुणालङ्कारैः समन्वितं मनोहरं वर्तते।

नलचम्पूकाव्यस्य कथाया अवसानम् अकाण्डे एव जायते। लोकपालानां दूत्यं कुर्वन् नलः तेषां सम्वादेन दमयन्तीम् अवगतां विदधदेव विरमति। श्वोभावि-स्वयम्वरस्य दमयन्ती-परिणयस्य च मुख्य-विषयस्य वर्णनात् पूर्वमेव अपूर्णं काव्यं समाप्तिमवाप्नोति। एतत् कारणन्तु किमपि निश्चितं न विज्ञायते।

**त्रिविक्रम भट्टस्य काव्य-विषयक-धारणा**-गद्य-पद्यमय-रचना-चातुरीचणः त्रिविक्रमभट्टः मनुते यत् कुशलधानुष्कस्य धनुष्काण्डं परस्य हृदये लग्नं सत् यथा तस्य वेदनया शिरोघूर्णयति, तथैव कवेस्तदेव काव्यं वस्तुतः काव्यं यत् परस्य हृदये लग्नं सत् आनन्दानुभूत्या तस्य शिरो घूर्णयति। तथाहि-

**किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता।**
**परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः।।१/५**

एतस्मिन्नेव प्रसङ्गे स स्पष्टं निर्दिशति यत् पद-विन्यास-कौशलेनैव कश्चित् कविः कवि-पुङ्गवत्वं लभते अन्यथा स निरर्थकालापमेव कुरुते :-

**अप्रगल्भा पदन्यासे जननी-राग-हेतवः।**
**सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव।। १/६**

विविधालंकार-योजनायां विख्यात-विक्रमस्य त्रिविक्रमभट्टस्य श्लेष-परिसंख्यालंकार-प्रयोगे विशिष्टमेव कौशलं दृश्यते।अवलोक्यताम् श्लेष-प्रयोग-कौशलम्-

**नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा।**
**दृश्यते न च यत्र स्त्री नवा पीनपयोधरा १/२६**
**नमिताः फल-भारेण न मिताः शालमञ्जरीः।**
**केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनिःस्पृहाः।। २/२**

एवमेव परिसंख्यालंकारचमत्कारो दर्शनीयो निम्नस्थले-

अव्ययीभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां कुलेषु, दान-विच्छित्तिरुन्मद्यत् करिकपोलमण्डलेषु, न त्यागि-गृहेषु, भोग-भङ्गो भुजङ्गेषु, न विलासिलोकेषु'[1]। प्रथमोच्छ्वासे।

१. अन्ये अनेके विशिष्टप्रयोगा मूलभागे समुद्धृतास्तत्रैव द्रष्टव्याः।

त्रिविक्रमस्य अपूर्वकल्पनाचमत्कारोऽपि परां कोटिमालम्बते। अस्तं गच्छतः सूर्यस्य अर्द्धं रक्ताभमण्डलं सागरान्तर्गतं विलोकयतः कवेःसमुत्प्रेक्षात्र प्रेक्षणीयाः-

> **रक्तेनाक्तं विनिहितमधोवस्त्रमेतत् कपालं**
> **तारामुद्राः किमु कलयता काल-कापालिकेन।**
> **सन्ध्या-वध्वाः किमु विलुठिता कौङ्कमीशुक्तिरेवं**
> **शङ्कां कुर्वञ्जयति जलधावर्द्धमग्नार्कबिम्बम्।। ५/७६**

२. **मदालसाचम्पूः**[1]-अस्यैव कविवरस्य द्वितीया विशिष्टा रचना विद्यते- 'मदालसाचम्पूः' इयंहि मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतेषु अष्टादशात् एकविंशपर्यन्तेषु अध्यायेषु वर्णितम् मदालसा-कुवलयाश्वोपाख्यानमवलम्ब्य रचितास्ति, याहि 'मुदितमदालसा'-मुदित कुवलयाश्वादि' नाट्यकृतीनामुपजीव्यरूपा विद्यते। अत्रहि नायक-कुवलयाश्वस्य, नायिका मदालसायाश्च मनोरम चरित्रचित्रणेन सह पातालकेतोर्वधः, मदालसाया विवाहः, तस्या-वियोगः, नागराज-सदने कुवलयाश्व-गमनम्, मदालसा-कुवलयाश्वयोः पुनर्मिलनञ्च सम्यग् वर्णितानि सन्ति।

**यशस्तिलकचम्पूः**[2] सुप्रसिद्ध जैन कवेः सोमप्रभसूरेः 'यशस्तिलकचम्पूः' चम्पूकाव्य-क्षेत्रे विशिष्टं स्थानमादधाति। चालुक्यराजद्वितीयस्य अरिकेसरिणो ज्येष्ठतनयस्य वागुराजस्य (कूट-राज) आश्रितोऽयम् सोमप्रभसूरिः राष्ट्रकूटराजस्थ कृष्णराजदेवतृतीयस्य समकालिक आसीत्। अतः एतच्चम्पूकाव्यस्य रचनाकालः ९५९ इति खिष्टीय-वर्षस्य पार्श्वे स्वीक्रियते।

गुणभद्ररचितं जैनानामुत्तरपुराणमुपजीव्य रचितेऽस्मिन् चम्पूकाव्ये अवन्तिराज यशोधरस्य जीवनलीलामवलम्ब्य जैनधर्मस्य सिद्धान्ता वर्णिताः सन्ति। अष्टसु आश्वासेषु विभक्तस्य प्रकृतचम्पूकाव्यस्य प्रारम्भिकेषु पञ्चसु आश्वासेषु यशोधरस्य अष्टानां जन्मनां कथा वर्णिताः सन्ति। ततः त्रिषुआश्वासेषु जैनधर्म-सिद्धान्तस्य वर्णनं वरीवर्ति, यत्र यशोधरस्य समुज्ज्वलचरित्रम्, तत्पत्न्या धूर्तत्वम्, यशोधरस्य जैनधर्म-दीक्षा-ग्रहणम्, तस्य-शरीरावसानञ्च सम्यग् वर्णितानि सन्ति। जैन धर्म-सिद्धान्तनिरूपणमेतत् काव्यस्य मुख्यं प्रयोजनं विद्यते।

एतच्चम्पूकाव्यस्य सरसा सालंकारा शैली बाणभट्टस्य 'कादम्बरी'मनुकरोति। अत्र चम्पूकारस्य प्रतिभा, विविधशास्त्राध्ययनजन्य-निपुणता च पदे पदे परिलक्ष्येते। जैनधर्म-दीक्षितस्याप्यस्य अनेकानि सरसानि पद्यानि रमणीयतामुद्वमन्ति। दम्पत्योः परस्परानुरागं वर्णयतो निम्नपद्यस्य विच्छित्तिरवलोकनीया-

> **एषा हिमांशु-मणि-निर्मित-देहयष्टिः त्वं चन्द्रचूर्ण-रचितावयवश्च साक्षात्।**
> **एवं न चेत् कथमियं तव सङ्गमेन प्रत्यङ्गनिर्गतजला सुतनुश्चकास्ति।।**
> **२/२१६**

---

१. जे. बी. मोदकेन सम्पादिता ४४२ खिष्टी वर्षे पूनातः प्रकाशिता।

२. शिवदत्त-वासुदेवशास्त्रिभ्यां सम्पादिता निर्णयसागरात् १६१६ वर्षे प्रकाशिता।

प्रकृत चम्पूकाव्ये गुम्फिता विविधाः सूक्तयः अस्य महिमानं मण्डयन्ति।

३. **जीवन्धरचम्पूः**[1]- हरिश्चन्द्रेण विरचिते 'जीवन्धरचम्पू' काव्ये जैनधर्मोत्तरपुराणे वर्णितयोः विजया-सत्यन्धरयोः तनूजस्य राजकुमारजीवन्धरस्य जीवन-चरितं काव्य- कौशलेन वर्णितमस्ति। पञ्चदश-तीर्थङ्करस्य धर्मनाथस्य एव चरितमाधारीकृत्य विरचितस्य 'धर्मराजाभ्युदय' काव्यस्य प्रणेत्रा हरिश्चन्द्रेण सह जीवन्धरचम्पूप्रणेतु र्हरिश्चन्द्रस्य तादात्म्यं मनुते कीथमहाभागः। अनयोरेकत्वेऽङ्गीकृते हरिश्चन्द्रः नोमक-वंशसमुद्भवः कायस्थ आसीत्, यस्य पितुर्नाम आसीत् आर्द्रदेवः मातुश्च रथ्यादवी। समयश्चास्य खिस्टीय दशमैकादश शतकयोरन्तराले स्वीक्रियते ऐतिहासिकैः। 'हर्षचरिते' निर्दिष्टः भट्टार-हरिचन्द्रः एतस्माद् भिन्न इति निश्चितम्।

बाणभट्ट-रचनां निदर्शनीयकृत्य एकादशसु लम्भकेषु विभक्ते प्रकृत-चम्पूकाव्ये जीवन्धरस्य चरितचित्रणमाधिकारिकं वस्तु विद्यते। प्रासङ्किकतया जैनधर्मोपदेशः कौशलेन समाविष्टोऽस्ति। चम्पूकाव्ये गद्य-पद्ययोर्मञ्जुलसमन्वयेन कोऽप्यपूर्वश्चमत्कारः समुदेतीति मनुतेऽयं चम्पूकारः।

(५) **रामायणचम्पूः**[2]- परमारवंशोद्भवेन धाराधीशेन सरस्वतीकण्ठाभरण-शृङ्गार-प्रकाशादिग्रन्थ-प्रणेत्रा भोजराजेन विरचिता 'रामायण-चम्पूः' चम्पूकाव्ये विशिष्टं स्थानं दधाति। वाल्मीकि रामायणमाधारीकृत्य विरचितास्य चम्पूकाव्यस्य प्रारम्भिकाणि पञ्चकाण्डानि भोजकृतानि सन्ति।

अन्तिमञ्च षष्ठं युद्धकाण्डं लक्ष्मणसूरिणा प्रणीतमिति अन्तिमश्लोकेन[3] ज्ञायते। लघु-दीर्घ-समासाञ्चितपदजातरचितकलेवरा, श्लेषोपमादिविविधालंकारविभूषिता, सूर्योदयास्त-हेमन्तवर्षर्तुवर्णन-मनोहरा रामायण-चम्पूः विषयवस्तुवैभव-वैशिष्ट्येन अपूर्व चमत्कृतिं जनयति।

(६) **उदयसुन्दरीकथाचम्पूः**[4]- कोङ्कणाधिपति मम्मुणिराजाश्रितः दक्षिण-गुर्जर लाटदेश-वास्तव्यः शैव कायस्थः कविवर सोड्ढलः एकादशशतके उदयसुन्दरीकथा-चम्पूं रचयाञ्चकार। प्रतिष्ठानपुराधिपति-मलयवाहनस्य नागलोकाधिराज-शिखण्डतिलक-कन्यया उदयसुन्दरी नामिकया सह विवाहवर्णने चम्पूकारः चमत्कारजनकं रचनाकौशलम् अत्र अष्टसु उच्छ्वासेषु प्रदर्शयामास।

---

१. टी.एस. कुप्पूस्वामिशास्त्रिणा सम्पादिता, तञ्जौरस्थ सरस्वती विलास-ग्रन्थमालायां १६०५ वर्षे-प्रकाशिता।
२. चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसीतः १६५६ वर्षे १६७६ वर्षे प्रकाशिता
३. साहित्यादिकलावता सनगर-ग्रामावतंसान्वित श्रीगङ्गाधरधीर-सिन्धु-विधुना गङ्गाम्बिका सूनुना।
प्रागुभोजोदित पञ्चकाण्ड-विहितानन्दे प्रबन्धे पुनः काण्डे लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि
जीयाच्चिरम्।।
४. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज सं. ११/१६२० वर्षे प्रकाशिता

(७) **भागवतचम्पूः**[1] -कृष्णकथात्मकचम्पूकाव्येषु प्रायः प्राचीनतमेयं भागवतचम्पूः याश्रीमद्भागवतीय दशमस्कन्ध-कथाश्रिता विद्यते।

अभिनवकालिदासोपाधि-धारिणा अज्ञात जन्मनाम्ना एकादशशतके भागवतचम्पू विरचितेति मन्यते कृष्णामाचार्यः। षट्सु स्तवकेषु विभक्तेऽस्मिन् चम्पूकाव्ये राधाकृष्णयोर्मिलनम् शृङ्गाररसाभिव्यञ्जनेन मुख्यतया वर्णितम् चम्पूकारेण।

(८) **अभिनवभारतचम्पूः**[2]-उपर्युक्तस्यैव अभिनव कालिदासस्य महाभारतकथायाः संक्षिप्तरूपा अप्रकाशिता अभिनवभारतचम्पूः, यस्या उल्लेखः डा. छविनाथत्रिपठिना स्व. शोधप्रबन्धे कृतः

(९) **भारतचम्पूः**[3]-अनन्तभट्टेन एकादश-द्वादश-शतकमध्ये महाभारतकथामाधृत्य विरचिता भारतचम्पूः चम्पूकाव्ये विशिष्टं स्थानं दधाति। अत्र द्वादश स्तवकानि सन्ति, येषु पद्यानामेवाधिक्यम् वर्तते। साकल्येन १०४१ पद्यानां तथा शतद्वयमित गद्य-खण्डनां संख्या विद्यते।

वीररस-प्रधानेऽस्मिन् चम्पूकाव्ये ओजोगुण विशिष्टा रीतिः कवे रचना कौशलं प्रकाशयति।

(१०) **भरतेश्वराभ्युदयचम्पूः** - जिनसेनविरचिते आदिपुराणे वर्णितम् ऋषभतनयभरतस्य चरितमाधारीकृत्य दिगम्बरजैनेन आशाधरेण त्रयोदशशतके भरतेश्वराभ्युदयचम्पूः विरचिता।

जैनपुराणेषु जैनप्रमुख पुरुदेवस्य चरितं विस्तरेण चित्रितं वर्तते। तदेव पुरुदेवचरितमाधृत्य आशापरशिष्येण अर्हता अर्हद्दासेन प्राञ्जलभाषायां विशिष्टशैल्याम्

(११) पुरुदेवचम्पूः त्रयोदशशतकान्ते विरचिता। उपर्युक्त चम्पूकाव्य-ग्रन्थेभ्यो भिन्ना

(१२) अमोघराधवचम्पूः

(१३) यतिराजविजयचम्पूः,

(१४) विरूपाक्षवसन्तोत्सववचम्पूः,

(१५) रुक्मिणी-परिणयचम्पूः,

(१६) आचार्यविजयचम्पूः, इति पञ्च चम्पू-ग्रन्थाः मूलभागे विवरण-सहिताः प्रदर्शिताः सन्ति। नैते किमपि तादृशं वैशिष्ट्यं दधति।

(१७) **आनन्दवृन्दावनचम्पूः**[4]।

---

१. गोपाल नारायण कम्पनी, कालका देवी, मुम्बई १९२१ वर्षे प्रकाशिता

२. द्र. **लेविसराइस कैटलौग** सं. २४६ द्र. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक इतिहास

३. चौखम्बा विद्याभवन वाराणसीतः १९५७ वर्षे प्रकाशिता।

४. वृन्दावनाद् वङ्गलिप्याम् वाराणसीतः देवाक्षरे च प्रकाशिता

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवप्रसादाधिगतचेतनेन विविधशास्त्रपारङ्गतेन अलंकारकौस्तुभ-चैतन्य- चन्द्रोदयाद्यनेक-वैदुष्यपूर्णग्रन्थ-विरचन-विश्रुतेन कविकर्णपूरेण षोडशशतके प्रणीतं श्रीमद्-भागवत-दशमस्कन्धीय श्रीकृष्णलीलाश्रितम् द्वाविंशतिस्तवकात्मकविशालकलेवरं गुणालंकार-विभूषितम् मधुररस-पेशलम् 'आनन्दवृन्दावनचम्पू'काव्यम् चम्पूकाव्ये विशिष्टं स्थानमाश्रयति। कविकर्म-कौशलविजृम्भिताश्चमत्कारजनकप्रसङ्गा मूलभागे प्रदर्शिताः सहृदयैरास्वाद्याः।

(१८) **गोपालचम्पूः**[१] - महाराष्ट्र-प्रदेश-जातेन भारद्वाज गोत्रीयेण व्रजराज-कविराज तनूजेन श्रीचैतन्य महाप्रभु समसामयिकेन जीवराजेन भागवतीय कथामाधृत्य विरचिता गोपालचम्पूः विषयमाधुर्येणं स्वमहिमान् प्रकटयति।

(१९) वल्लीसयायकविना विरचिता शङ्कराचार्य विजययात्राकथाश्रिता 'आचार्य दिग्विजयचम्पूः'।

(२०) तेनैव प्रणीता 'काकुत्स्थ विजय-चम्पू'श्च विशेष परिचयार्थं मूलभागे द्रष्टव्ये।

(२१) **वरदाम्बिकापरिणयचम्पूः**[२]

विजयनगर-महाराजाच्युतराय राजमहिषी तिरुमलाम्बा षोडशशतकमध्यभागे वरदाम्बिका-परिणयं चम्पूं प्रणीय महतीं ख्यातिमलभत। शृङ्गार-वीर-रसप्रधानस्यास्य चम्पूकाव्यस्य विषय-वस्तु-वर्णन-कौशलम् काव्यजगति अति विशिष्टं स्थानं भजते।

(२२) **कुमारभार्गवीयचम्पूः**[३]-मैथिल श्रोत्रियवंश-प्रसिद्ध-सोदरपुर-सरिसब मूलकेन महामहोपाध्याय-गणपति मिश्र तनूजेन रसमञ्जरी-रसतरङ्गिणी-गीतगौरीपति-रस पारिजातालंकारतिलक चित्रचन्द्रिकाद्यनेक ग्रन्थानां प्रणेत्रा कविवर भानुदत्त-मिश्रेण षोडश-शतक-पूर्वभागे रसगुणालंकार-विशिष्ट द्वादशोच्छ्वासात्मिका कुमारभार्गवीयचम्पू र्विरचिता। पार्वती-परमेश्वर-परिणयादारभ्य तारकासुरवधपर्यन्तं शिवपुराण-कुमारखण्डे स्कन्दपुराण माहेश्वर खण्डे च वर्णितवृत्तमाधारीकृत्य निर्मितमिदं चम्पूकाव्यं कविकर्मकौशलमहिम्ना कामपि विशिष्टां विच्छित्तिमभिव्यनक्ति। निदर्शनीभूताः प्रसङ्गाः सौदाहरणा मूलभागे प्रदर्शिताः सन्ति।

मूलभागे २३ क्रमसंख्यातः ८३ क्रमाङ्कं यावत् निर्दिष्टानां प्रकाशितानाम् अप्रकाशितानाम्, सामान्य-विशेष-कोटिकानां, चम्पूकाव्य-ग्रन्थनां सामान्य-विशेषरूपेण परिचयः उल्लिखितोऽस्ति, योहि जिज्ञासुभिस्तत्रैव द्रष्टव्यः।

(२३) **जानराजचम्पू**[४]

---

१. वृन्दावनाद् वङ्गलिप्याम् प्रकाशिता।
२. लक्ष्मणस्वरूपेण सम्पादिता लाहौरतः प्रकाशिता
३. कविराज-**भानुदत्तग्रन्थावली**, मिथिला संस्कृत विद्यापीठ १९८८ वर्ष प्रकाशिता।
४. डा. जगन्नाथ पाठकेन सम्पादिता गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठात् प्रकाशिता

मिथिलामहीमध्य-दरभङ्गा-प्रमण्डलान्तर्गत प्रसिद्धे उजान ग्रामे श्रोत्रिय- सोदरपुर-कन्हौली मूलकं सद्वंशे जायमानः भगवती-भवेश-तनूजः कृष्णदत्त उपाध्यायः 'जानराजचम्पूं' प्रणीय काव्यजगति महतीं ख्यातिमलभत। बाल्ये एव वयसि काव्य-कर्म- कौशलेन ख्यातोऽयं बालकविकृष्णदत्तनाम्ना प्रथिमानमवाप। एतस्यान्यरचनासु (१) पुरञ्जनचरितनाटकम् (२) कुवलयाश्वीयनाटकम् (३) गीतगोपीपतिकाव्यम् (४) लक्ष्मीगुणमणिमाला, (५) चण्डिकाचरितचन्द्रिका, (६) कृष्णलीला (७) गीतगोविन्द-व्याख्यादयः प्रसिद्धिं प्राप्नुवन्ति। अस्य भव्य-गद्य-पद्यमये चम्पूकाव्ये-

पद्यानां संख्या ३०५ तथा गद्यखण्डानि ३७ मितानि। अत्र साहित्यिक-कला-सौन्दर्येण ऐतिहासिक कथामहत्त्वमादधति।

नागपुरस्थ भोसल वंशीय राजानां विशेषतः रघुजीमहाराजस्य तत्तनय जानूजी महाराजस्य जीवन-वृत्तमाधृत्य कविकर्मकौशलेन निर्मितमिदे जानराजचम्पूकाव्यं स्ववैशिष्ट्येन कवेर्यशः पल्लवयति, मूलभागे समुद्धृतानि गद्यपद्यानि अदसीयं वैशिष्ट्यं प्रकाशयन्ति।

इतो भिन्नानामतिसंक्षिप्रपरिचयानाम् डा.वर्णेकर डा. छविनाथ त्रिपाठिभ्यां निर्दिष्टानाम् १७५ मित चम्पूग्रन्थानां नामानि प्राप्तपरिचयसहितानि मूलभागे उल्लिखितानि सन्ति। एतेन संस्कृतवाङ्मये चम्पूकाव्य-साम्राज्यं विज्ञातुं शक्यते।

(२४) **सुलोचनामाधवचम्पूः**[1] जानकीजननभूमि-मिथिलामध्य-मधुबनी मण्डलान्तर्गत नवानीग्रामवास्तव्यः ललितमणिदेवी-बाबूलालझा तनुजन्मा सर्वतन्त्रस्वतंत्रः धर्मदत्त झा प्रसिद्ध बच्चा झा (१८६०-१९१८) व्याप्तिपञ्चक-विवृति-व्युत्पत्तिवादगूढार्थतत्त्वालोक-सिद्धान्त-लक्षण-विवृति खण्डनखाद्य-टिप्पण शक्तिवादटिप्पणाद्यनेक दर्शनग्रन्थविरचनविख्यात वैदुषीकः विशाल-कलेवरां सुलोचनामाधवचम्पूं निरमात्। एतेन स न केवलं न्यायादि दर्शन कान्तार-पञ्चाननः, अपितु सुकुमारविषयककाव्य-रचना-चतुरोऽपि।

पद्मपुराणस्य क्रियायोगसारखण्डे पञ्चमे षष्ठे च अध्याये सुलोचनामाधवकथा वर्णितास्ति। तामेव कथामाधृत्य विरचिता षट्त्रिंशति उच्छ्वासेषु विभक्ता चम्पूरियं स्वकीय-काव्य-सौन्दर्येण चम्पूक्षेत्रे विशिष्टं स्थानं धत्ते।

बाणभट्टस्य विशिष्टां शैलीमनुसरतोऽस्य चम्पूकारस्य गद्यांशे शब्दार्थालङ्काराणां प्राचुर्यं विद्यते। पद्यभागे विशेषतः अन्त्यानुप्रास-छेकानुप्रासोपमोत्प्रेक्षा-प्रतीपार्थान्तरन्यास-दीपका-पह्नुति, समासोक्तिप्रभृतयोविविधालंकारा अपरिमितानि पद्यनि विभूषयन्ति। कवेः श्रृङ्गारसाभिव्यञ्जन-कौशलंजगद्रसमयं करोति।

---

१. दरभंगास्य मिथिलाविद्यापीठात् प्रकाशितः।

चमत्कारजनकानि गद्य-पद्यानि मूले उद्धृतानि काव्यवैशिष्ट्यं प्रकाशयन्ति।

(२५) **गुणेश्वरचरितचम्पूः**[1]-मिथिलामध्य-मधुबनी-मणलान्तर्गत ग्रामरत्न सरिसब-वास्तव्यः श्रोत्रिय-खौआल-वंशावतंसः, १८६३ खिष्टीय जनवरीमासीय द्वादशे दिवसे लब्धजन्मा-राधापरिणयमहाकाव्य-,साहित्यमीमांसान्योक्तिसाहस्री-काव्यकल्लोलिनी-भागवतप्रदीप-शोकश्लोकशतकादि-ग्रन्थ प्रणेता, रसमञ्जरीसुरभि-ध्वन्यालोकदीधिति-रसगङ्गाधरचन्द्रिकादि-विशिष्ट टीकाकारः कविशेखर-वदरीनाथ झा 'गुणेश्वरचरितचम्पूं' निर्माय विशिष्टचम्पूकाव्य-विरचन-कलाकौशलमपि प्रदर्शयत्।

मिथिलेश-नरेश-रुद्रसिंहस्य द्वितीय तनुज-महाराज कुमार गुणेश्वर सिंहस्य चरितमाधृत्य विरचिते चतुर्षु उच्छ्वासेषु विभक्तेऽस्मिन् चम्पूकाव्ये मिथिलास्थः विशिष्ट नदी-तीर्थस्थान-देवालयाश्रम प्रसिद्ध-सत्-प्रकाण्ड पण्डितानां पुराणेतिहास-विख्यातविशिष्ट कथानाञ्च विशिष्टकाव्य-कौशलेन चारु चमत्कृत-वर्णनं राराजते।

रस-रीति-गुणालंकार-निदर्शकानि अनेकानि मनोहराणि उद्धरणनि मूलभागे-चकासति। स्वातन्त्र्योत्तरकाले विरचितानाम् किशोरचन्द्राननचम्पू-श्रीशरन्नवरात्रचम्पू-प्रभृतीनाम् काव्यानाम् संक्षितप्तपरिचयसहित-समुल्लेखो मूलभागान्ते द्रष्टव्यः। मूलभागे यानि २६७ मितानि चम्पूकाव्यानि सामान्य-विशिष्ट परिचयसहितानि डा. त्रिलोकनाथ झा महोदयेन समुल्लिखितानि ततोभिन्नान्यपि विशालेऽस्मिन् देशे विरचितानि प्रकाशितानि अप्रकाशितानि च भवेयुरिति निश्चिनोमि। कालक्रमेण तान्यपि विद्वद् दृष्टिगोचरतां प्रयास्यन्तीति मन्ये।

**या राका शशिशोभना गतघना सा यामिनी यामिनी,**<br>**या सौन्दर्य- गुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी।**<br>**या गोविन्द-रसप्रमोदमधुरा सा माधुरी माधुरी,**<br>**या लोकद्वय-साधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी।**

विवेकिजन-स्वीकृता, लोक-प्रसिद्धा, मानवजीवनसाफल्याय कल्पिता येयं चातुरी तामेवाधारीकृत्य मत्कृता 'महामानवचम्पूः', या स्वप्रकाशनं कामयमाना कालं प्रतीक्षते। अत्र प्रेयोनिःश्रेयसयोः सन्तुलनात्मकेन समन्वयात्मकेन च सदाचरणेन मानवो जीवनसाफल्यं लभते ऐहिकमामुष्मिकं च समभीष्टं समश्नुते इत्याधिकारिक-विषयवस्तु आनुषङ्गिक-विषय-संयोजितंसत्काव्य-कलाकौशलेन वर्णितं विद्यते।

जडभरत-दौष्यन्ति-भरतद्वय-नाम व्यपदिष्टे विख्यातेऽस्मिन् भारते वर्षे जायन्तां विश्वकल्याण-भाजो महामानवाः, कल्पतां सर्वत्र योग-क्षेमः इति कवेः मङ्गल्य-मनोहरा कामना चम्पूकाव्येऽस्मिन् विजृंभते इति शम्।

---

१. राजप्रेसदरभङ्गातः १६५२ खिष्टाब्दे-प्रकाशिता।

## तृतीयोऽध्यायः

# कथा-साहित्यम्

**कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।**[1]

कथाहि खलु वाक्य-विन्यासरूपा रमणीया रस-मन्दाकिनी।।

या हि आदिकालादेव आपामर-नर-चित्तेषु कमपि अपूर्वं चमत्कारमादधाना निरन्तरं प्रवहमाना विविधानि रूपाणि स्वीकुर्वाणा सहृदय-हृदय-रसायनतामादधाति। 'कथ वाक्य-प्रबन्धे' इति चौरादिक कथ धातोरङि[2] प्रत्यये टापि कथा शब्दो निष्पद्यते, यश्च वार्ता'गणना'/[3] विवरणम्,[4] कल्पितकथा,[5] प्रबन्धकल्पना,[6] वृत्तान्तवर्णनम्,[7] समाचारवाक्यसन्दर्भ इत्याद्यनेकान् अर्थान् प्रतिपादयति।

पुराकिल कथाशब्देन आख्यानस्य उपाख्यानस्य चापि आकलनं भवतिस्म।[8] तत्र स्वयं दृष्ट-वृतान्तस्य कथनमाख्यानम्, श्रुतस्य च वृत्तान्तस्य वर्णनमुपाख्यानमिति न्यरूपयत् श्रीधराचार्यः।[9] महर्षिपाणिनि-मते तु प्रश्नस्योत्तरमाख्यानम्।[10]

---

१. **हितोपदेशः** १/८

२. चिति पूजि कथि कुम्बि चर्चिश्च। उणादि, ३/३/१०५

३. अभिमतसमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु। **रघुवंशम्**, कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः। ८/४३ **शिशुपालवधम्** २/४० का कथा बाण-सन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुंकारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ।। अ. **शकुन्तलम्**, ३/१
कथा-प्रसङ्गेन जनैरुदाहृता **किरातार्जुनीयम्**, १/२४

४. सनत्कुमारो भगवान् पुरा कथितवान् कथाम्।
भविष्यं विदुषां मध्ये तव पुत्र समुद्भवम्।। **रामायणे** १/८/६

५. प्रबन्धेन कल्पना प्रबन्धस्य अभिधेयस्य कल्पना स्वयं रचना इति सारसुन्दरी-**शब्दकल्पद्रुमे**।

६. प्रबन्ध-कल्पना कथा-इति **अमरकोशः**, १/६/६
प्रबन्ध कल्पनां स्तोक-सत्यां प्राज्ञाः कथां विदुः।

७. कोलाहलाचार्यः **शब्दकल्पद्रुमे**।
यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत् तद् दद्यादमत्सरः।
ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात् पितृणामेतदीप्सितम्।। **मनुः** ३/२३१

८. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराण-संहितां चक्रे पुराणार्थ-विशारदः।। **विष्णु पु.** ३/६/१५

९. स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।। **तत्रैवश्रीधरी**।

१०. अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः **पा.सू.** ८/२/१०५

'आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः'[1] इति साहित्यदर्पणानुसारम् दृष्टस्य श्रुतस्य वा पूर्ववृत्तान्तस्य कथनमाख्यानम्। एतेन आख्यानोपाख्यानयो र्नास्ति कोऽपिभेदः। ब्रह्मवैवर्तपुराणानुसोरणापि एतयो र्भेदो नास्तीति निम्नवचनेन विज्ञायते-

**कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्रः यथागमम्।**
**देवी मङ्गलचण्डी या तदाख्यानं निशामय।।**
**सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्! अतीव परमाद्भुतम्।**
**अधुना श्रोतुमिच्छमि दुर्गोपख्यानमुत्तमम्।।**[2]

महाभारते तु न केवलम् आख्यानोपाख्यानयोरेकस्मिन्नर्थे प्रयोगो दृश्यते, अपितु आख्यानार्थे इतिहासस्य इतिहासार्थे आख्यानशब्दस्य च व्यवहारोऽवलोक्यते। तथाहि-

**चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।**
**उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।।**[3]
**जयनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।।**[4]
**इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।।**[5]

स्कन्दपुराणानुसारम् पुराणस्य यानि सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरितानि पञ्चाङ्गानि विद्यन्ते तेभ्यो भिन्नं यत् किञ्चदपि वर्तते तत् सर्वमाख्यानमित्यभिधीयते। यथाहि-

**पञ्चाङ्गानि पुराणस्य चाख्यानमितरत् स्मृतम्।। किन्तु महर्षिमनुः-**
**"स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।**
**आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च।।"**
इत्येवं प्रतिपादयन् इतिहासादेराख्यानं भिन्नमिति मनुते।

एवञ्च आख्यानोपाख्यानयोः कथायाः पूर्वरूपता विद्यतेतरामिति विजानते विज्ञाः। तत्र पुराणादि-प्रतिपादितेषु आख्यानोपाख्यानेषु-

१) विश्वामित्र-त्रिशङ्क्वाख्यानादीनि कतिपयानि ज्योतिषविषयकाणि,

२) श्रीमद्भागवतीय पुरञ्जनोपाख्यानादीनि कानिचित् प्रतीकात्मकानि,

३) उर्वशी-पुरूरवसादीनि कानिचित् वैदिकानि,

---

१. **साहित्यदर्पणे**, ६/२३७
२. **ब्रह्मवैवर्ते** प्रकृतिखण्डे, ४१/४४
३. **महाभा.** १/१/१०१
४. तत्रैव १/६/१८
५. तत्रैव १/२/३८६

४) हरिश्चन्द्र-राम-कृष्णादिसम्बन्धीनि ऐतिहासिकानि,

५) विष्णु-शिव-दुर्गा-देवी-देवतात्मकानि कानिचन इष्टदेवता-विषयकाणि,

६) मदालसा-रन्तिदेवादि-सम्बन्धीनि कानिचित् उपदेशात्मकानि, तथा

७) कतिपयानि लोक-विश्वास-मूलकानि उपाख्यानानि सन्ति। इमे एव आख्यानोपाख्यान-विषयाः परवर्तिषु कथाप्रभेदेषु समुपलभ्यन्ते।

एतेषामेव आख्यानोपाख्यानेतिहासानामजस्रप्रवाहात् एका विशिष्टा कथासरित् स्व-सहोदरया आख्यायिकया सह प्रवाहिताभवत्। एनयोः स्वरूपादि-वैशिष्ट्य-निरूपणम् तत्प्रसङ्गे एव द्रष्टव्यम्।

काव्य-प्रभेदान् प्रदर्शयता आनन्दवर्धनाचार्येण आख्यायिकाकथाभ्यां सह परिकथा सकल-कथा, खण्डकथा रूपाः प्रभेदाअपि प्रतिपाद्याञ्चक्रिरे।[1]

तत्र 'एकं धर्मादि पुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकार-वैचित्र्येण अनन्तवत्तान्त-वर्णन-प्रकारा परिकथा', 'उच्छ्वासादिना वक्त्रापरवक्त्रादिना च युक्ता आख्यायिका' 'तद्रहिता कथा' इति अभिनवगुप्त-पादाचार्येण व्याचचक्षे।'[2]

वाक्य-प्रबन्धरूपाया रचनाया उपर्युक्तप्रभेदेभ्योतिरिक्तः संकथा रूप-प्रभेदोऽप्यस्ति। सम्यक् कथा सङ्कथा इत्यत्र अन्योन्य-कथनस्य प्रामुख्यं भवति।[3]

विषय-पात्र शैली-भाषाणामाधारेण कथाया वर्गीकरणं निम्नप्रकारेण क्रियते-

क) विषयमाधारीकृत्य कथा चतुर्धा-

१) धर्मकथा, २) अर्थकथा, ३) कामकथा, ४) मिश्रकथा च।

धर्मकथापि आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी, निर्वेदिनीति प्रभेदेन चतुर्विधा।

अर्थकथायामर्थस्य, कामकथायां कामस्य च प्रामुख्येन वर्णनं भवति। मिश्रकथायां कथानके मनोरञ्जनस्य कौतुकाधानस्य च मिश्रणं भवति।

ख) पात्रमाश्रित्य कथायाः दिव्यकथा, मानुष्यकथा, मिश्रकथेति त्रयः प्रभेदा भवन्ति।

ग) भाषादृष्ट्या संस्कृतभाषामयी, प्राकृतभाषामयी, मिश्रभाषामयीच कथा त्रिविधा भवति।

घ) शैलीमाधारीकृत्य कथा- सकलकथा, खण्डकथा, परिकथा, परिहासकथा, उल्लापकथा, संकथा, संकीर्णकथेत्यादि-विविध रूपतामाश्रयति।[4]

---

१. विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्यं तां नियच्छति।
काव्य-प्रभेदाश्रयतः स्थिता भेदवती हि सा।। **ध्वन्या.** ३/७

२. तत्रैव **ध्वन्यालोक-लोचने।**

३. उल्लापः काकुवागन्योन्योक्तिः संलाप-संकथे।। **हेमचन्द्रः।**

४. **संस्कृत-वाङ्मयकोशः**, प्रथमखण्डे पृ. २४३।

ङ) कथानकस्याधारेण प्राचीनकथासु पुरातनकथा, दैवतकथा, नीतिकथा, लोककथा, दृष्टान्तकथा, कल्पितकथेत्येवमादयो विविधाः कथाः सन्ति, यासां वर्णनमितिहास-पुराणादौ समुपलभ्यते।

कथानां विकासक्रमं समवलोकयन्तः प्रज्ञावन्तः वैदिककथानां संग्रहः पुरा महर्षिशौनकेन 'बृहद्देवता' ग्रन्थे व्यधायि। अत्र अष्टचत्वारिंशत् कथा उपलभ्यन्ते। ततः परं कालक्रमेण रामायण-महाभारत-पुराणोपपुराणत्रिपिटकजैनपुराण-बौद्धजातक-पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-कथा-सरित्सागरादिषु सहस्रशः धर्म-नीत्युपदेशात्मिकाः कथा निबद्धा अभूवन्, यासां प्रचारः प्रसारश्च न केवलं भारते, अपितु विश्वस्मिन् कथा-साहित्ये अभूताम्।

वैदिक वाङ्मयात् समुदभूतासु नीत्यादि-कथासु जन्तुकथानां समुद्भवः महाभारत-पञ्चतन्त्रादौ समभवत्। वैष्णव-शैव-शाक्त-बौद्ध- जैन-सम्प्रदायेषु च धर्म-नीति-तीर्थ-व्रतादि-कथानां विकासोऽभवत्। एताभिः कथाभिः तत्तत् सम्प्रदायस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादितमभूत्।

चीन-विश्वकोशे अनेक भारतीय कथानामनुवादस्य विद्यमानतया ख्रिष्टीय षष्ठशतकात् प्रागेव भारतीय कथानां प्रचारः चीनदेशेऽभवदिति निश्चप्रचं कथयितुं शक्यते।

इटली देशीय विख्यात कवेः पेत्रार्कस्य 'डिकेमेरान' इतिनामके कथा-संग्रहे अनेकाः प्राचीन भारतीय-कथा उपलभ्यन्ते। अरबी कथा-संग्रहेऽपि भारतीयाः कथा विलसन्ति। एतेन भारतीय कथानां विशेषता, उपादेयता, देशान्तर-यात्रा च प्रमाणिता भवन्ति।

संस्कृत वाङ्मये भारतीय कथानां संग्रहात्मकाः जातकमाला-पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-बृहत्कथामञ्जरी-कथासरित्सागर-वेतालपञ्चविंशति-पञ्चाख्यानक-तन्त्रोपाख्यान-सिंहासनद्वात्रिंशिकाशुकसप्तति-प्रबन्धचिन्तामणि-प्रबन्धकोश-भोजप्रबन्ध-पञ्चशती-प्रबोधसम्बन्धान्तरकथा संग्रह-कथामहोदधि-कथानक-कोशकथार्णवादि ग्रन्था अनेकाः समुपलभ्यन्ते।[1]

अधुनापि पुरातनीनां नवीनानाञ्चकथानाम् अनेके संग्रहाः प्रकाशिता अभूवन् येषु त्रयोदशाधिकशतसंख्याकवैदिकोपाख्यान-संग्रहः वेदाख्यानः-कल्पद्रुमः',[2] शुनःशेपकथा-वामनावतारकथा-गौतमकथा-वामदेवकथा-श्यावाश्वकथा-सप्तवधिककथा-दाशराजयुद्धकथा-नमुचिवधकथा-नाभानेदिष्टकथादिसम्बद्धानां-सूक्तानां संग्रहात्मकं 'कथासूक्तम्'[3] द्वादशानां कथानां संग्रहात्मिका 'कथावल्लरी'[4] षण्णां कथानां संकलनात्मिका 'उपाख्यानमञ्जरी',[5]

---

१. द्र. संस्कृतवाङ्मयकोशः।

२. डॉ. विद्यानिवासमिश्रेण सम्पादितः, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

३. सस्कृतवाङ्मयकोशः पृ. ४६

४. श्रीधर भास्कर वर्णेकररचिता, संस्कृतभवनम्, नागपुरम्

५. श्रीवटुकनाथशास्त्रि खिस्ते-सम्पादिता, चौखम्बा सं.सी. प्रकाशिता १९४६

पञ्चाशतः कथानां संग्रहात्मिका 'दिशा विदिशा',[1] एकादशानां बालकथानां संग्रहः 'महान्', एकादशानां कथानां संग्रहात्मिका 'कथाकौमुदी'[2] सप्तानां कथानाम् 'बृहत्सप्तपदी',[3] अभिराज राजेन्द्रमिश्रस्य 'इक्षुगन्धा', 'राङ्गडा', चतुष्षष्टि लघु कथानाम् संकलनात्मकः 'लघुकथा-संग्रहः'[4] त्रिंशतः नवीनानांपुरातनीनाञ्च कथानां संकलनात्मिका 'संस्कृतकथाकौमुदी'[5] इत्येवमादयः कथा-संग्रहाः प्रकाशयन्ति आदिकालतः अद्यपर्यन्तंसंस्कृतकथासरितः अविच्छिन्न-प्रवहमानताम्, जनजीवन-सम्बद्धताम्, परमप्रमोदजनकताञ्च। आधुनिक-संस्कृतकथासु न केवलमुपरि निर्दिष्टा विषया उपलभ्यन्ते, अपितु अद्यतनी सामाजिक-सम-विषम-परिस्थितिरपि दर्पणायमाना सती सम्यगवलोक्यते।

उपर्युक्त-कथा-संग्रहेभ्योऽतिरिक्ताअपि विश्वेश्वर पाण्डेयस्य 'मन्दारमञ्जरी', भारद्वाज ऋषीकेश शास्त्रिणः 'पर्यटकत्रिंशत्', हरिदाससिद्धान्तवागीशस्य 'सरला', राधावल्लभत्रिपाठिनः 'महाकविकण्टकः', पं. क्षमाराव महाशयायाः 'कथामुक्तावली', महालिङ्गशास्त्रिणः 'कथानक-कोशः', 'सङ्कथासन्दोहः', अरिभट्टनारायणदासस्य 'हरिकथामृतम्', रङ्गनाथाचार्यस्य 'कथासङ्ग्रहः', रमेशचन्द्रशुक्लस्य 'चारुचरितचर्चा', शिवप्रसाद भट्टाचार्यस्य 'उत्तराखण्डयात्रा', विजयलक्ष्मीदेव्याः 'उपदेशप्रसादः'[6] इत्येवमादयः संग्रहाः कथासाहित्यस्य समृद्धिं प्रकाशयन्ति।

भाषान्तरेभ्यः संस्कृते अनूदितानां कथानामपि सङ्ग्रहा अनल्पाःसन्ति, येषु-

१) गोविन्दकृष्ण मोडकस्य 'अरेबियननाइट्स' इत्येतदनुवादरूपा 'चोरचत्वारिंशी कथा'

२) कृष्णसोमयाजिनः 'अ स्पार्कनेग्लेक्टेड वर्न्स द हाउस' इत्याख्यस्य टाल्स्टायमहोदयस्य नाटकस्य अनुवादस्वरूपा 'कणोलुप्तोगृहंदहति' इतिकथा',

३) हरिचरणभट्टाचार्यस्य 'कपालकुण्डला',

४) एस. वेङ्कटरामशास्त्रिणः भारतीय प्रादेशिक भाषानिबद्धानाम् शतमितानाम् कथानाम् अनुवादात्मकम् 'कथाशतकम्',

५) जगन्नाथस्य- पाण्डिचेरीस्थस्य अरविन्दाश्रमस्य श्रीमात्रा फ्रेञ्चभाषानिबद्धानां नीति-कथानाम् अनुवादात्मिका 'कथामञ्जरी',

६) एम. अहमदस्य 'जामे उल्लिकायान' नामकस्य फारसीकथासंग्रहस्य रूपान्तरम् 'दुःखोत्तरं सुखम्',

---

१. डॉ. केशवदाशेनविरचितः लोकभाषा प्रचारसमितिः पुरी १९९१
२. डॉ. प्रभुनाथद्विवेदिना विरचिता, देववाणीप्रेस, वाराणसी, १९८८
३. दुर्गादत्तशास्त्रिणा प्रणीता, गुलाब प्रिंटिंग प्रेस, अम्बाला छावनी हरियाणा, १९९१
४. आचार्य डॉ. जयमन्तमिश्रेण संकलितः सम्पादितश्च, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९९७
५. नरोत्तमदासस्वामिना संपादिता, रामपसाद एण्ड सन्स, आगरा, १९६५
६. कथाया मूलभागे एतद्विवरणं द्रष्टव्यम्

७) श्रीधरस्य 'यूसूफ तथा जुलेखा' नामक फारसी कथायाः अनुवादरूपम् 'कथाकौतुकम्',
८) एन. गोपाल पिल्लई महाशयस्य मलयालम भाषाकथानुवादात्मिका 'सीताविचारलहरी' इत्यादयः ज्ञानगोचरीभूताः कथासाहित्यवैभवं सूचयन्ति

एवं विधा बहवः कथा-सङ्ग्रहा विशाले ह्यस्मिनूदेशे विद्यन्ते, ये प्रकाशं दिदृक्षवः पाण्डुलिपि-मुखान्तरालाद् बहिरागन्तु कामयन्ते।

कथा-साहित्यस्य सुलभतया कालक्रमेण परिचयार्थं यथा मूलभागे (१) वैदिककथा, (२) रामायण-महाभारत पुराणादिप्रतिपादितकथा, (३) बौद्ध-जैनकथा, (४) नीत्युपदेशात्मककथा, (५) मनोरञ्जनकथा इति पञ्चसु वर्गेषु कथा विभज्य तद् वर्णनं-प्रस्तुतम्, तथैव सौलभ्येनात्रापि प्रदर्श्यते-

१) वैदिककथा-पुण्यसलिलानां सरस्वत्यादिनदीनां पावन-पुलिनेषु, पुण्यमयेषु तीर्थक्षेत्रेषु यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्तो महर्षयस्तत्प्रसङ्गे रोचनार्थाः कथाअपि कथयन्त आसन्।[1] श्रोत्र-रसायनायमानास्ताआकर्णयन्तो यजमानादयोऽमन्दमानन्दमनुभवन्ति स्म। अमितासु तासु कथासु निम्नलिखिताः प्रामुख्यमादधाना आख्यानोपाख्यानशब्देन व्यवह्रियमाणा अत्र निर्दिश्यन्ते-

१) सरमा-पण्पुपाख्यानम्,
२) शुनः शेपोपाख्यानम्,
३) कक्षीवत्स्वनयाख्यानम्,
४) दीर्घतमसआख्यानम्,
५) लोपामुद्रागस्त्योपाख्यानम्,
६) गृत्समदाख्यानम्,
७) वसिष्ठविश्वामित्राख्यानम्,
८) सोमावतरणाख्यानम्,
९) वामदेवोपाख्यानम्,
१०) त्र्यरुणाख्यानम्
११) अग्नि-जन्मोपाख्यानम्,
१२) श्यावाश्वाख्यानम्,
१३) सप्तवध्रुपाख्यानम्,
१४) बृबु-भारद्वाजोपाख्यानम्,
१५) ऋजिश्वातियाजाख्यानम्,
१६) सरस्वत्युपाख्यानम्,
१७) विष्णु-त्रिपदक्रमोपाख्यानम्,
१८) बृहस्पतिजन्माख्यानम्,
१९) नृपसुदासोपाख्यानम्,
२०) नहुषोपाख्यानम्,
२१) आसङ्गाख्यानम्,
२२) अपालाख्यानम्,
२३) कुत्साख्यानम्,
२४) असमाति नृपस्य चतुर्णा-मृत्विजाञ्चोपाख्यानम्,
२५) नाभिनेदिष्टाख्यानम्,
२६) वृषाकप्युपाख्यानम्,
२७) उर्वशीपुरूवसोरुपाख्यानम्,
२८) देवापि-शन्तनूपाख्यानम्
२९) यमनचिकेतसोरुपाख्यानम्।

---

१. वाराणस्यां निरुक्ताध्यापनावसरे श्रीगुरुचरणाः प्रतिमन्त्रव्याख्याने एकमुपाख्यानं कथयन्त आसन् इति मयापि प्रत्यक्षीकृतम्

एतेषु कतिपयानामतिरोचकानाम् दैवततत्त्वप्रधानानामपि लोकप्रचलितकथाबीज-स्वरूपाणामाख्यानानां सरलानि मनोहराणि विवरणानि मूलभागे प्रदर्शितानि सन्ति, यानि तत्रैवावलोकनीयानि ब्राह्मण-भागेषु शतशः आख्यानोपाख्यानि सन्ति येषु प्रधानानि कानिचिदत्र निर्दिश्यन्ते-

१) मनोवाणीकलहाख्यानम्,
२) सूर्य-स्वर्भानूपाख्यानम्,
३) अश्वरूपेण यज्ञस्य पलायनम् कुशप्रलोभनात् प्रत्यागमनञ्च,
४) देवासुर-संग्रामाख्यानम्,
५) उर्वशीपुरूरवसोराख्यानम्,
६) जलप्लावनाख्यानम्,
७) पुरुषात् चातुर्वर्ण्योत्पच्युपाख्यानम्,
८) शुनःशेपाख्यानम्,
९) कमलनालचौरोपख्यानम्
१०) कवषैलूषोपाख्यानम्,
११) सौपर्णाख्यानम्,
१२) यज्ञपशूपाख्यानम्,
१३) विश्वन्तर ब्राह्मणाख्यानम् च।

ब्राह्मणग्रन्थस्य अर्थवाद-भागेषु प्रवृत्ति-निवृत्त्युयदेशकानि इमान्याख्यानि विशिष्ट-महत्त्वशालीनि सन्ति।

एवमेव आध्यात्मिक चिन्तनपरे ज्ञानकाण्डे वेदान्तोपनिषद् भागे अनेकानि उपाख्यानानि सन्ति, यानि ब्रह्मविधा-रहस्यमुद्घाटयन्ति। एतेषु-

१. यम-नचिकेतसोराख्यानम्,
२. सत्यकाम-जाबालोपाख्यानम्,
३. आरुणि-श्वेतकेतूपाख्यानम्,
४. सनत्कुमार-नारदोपाख्यानम्,
५. इन्द्रविरोचनोपाख्यानम्,
६. मैत्रेयी-याज्ञवल्क्योपाख्यानम्,
७. आरुणेय श्वेतकेतु-प्रवाहणजैबल्युपाख्यानम्,
८. इन्द्र-प्रतर्दनाख्यानम्,
९. देवासुर-संग्रामाख्यानम्,
१०. जानश्रुति-मौत्रायणाख्यानम्,
११. रैक्वाख्यानम्,
१२. शुनामाख्यानम्,
१३. उमाहैमवत्युपाख्यानम् च प्रशस्तानि सन्ति।

एतेषामाख्यान-स्वरूपाणि मूलभागे प्रदर्शितानि सन्ति तानि तत्रैव द्रष्टव्यानि।

डॉ. विधानिवासमिश्रेण सम्पादिते 'वेदाख्यानकल्पद्रुमे'[1] त्रयोदशाधिकशत-मितान्याख्यानानि संकलितानि सन्ति, येषु कानिचिदुपर्युक्त-स्वरूपाणि कानिचिच्च तद्भिन्नानि सन्ति। अतः समस्त वैदिकवाङ्मये उपलब्धानामाख्यानानां संख्याख्यानं महता प्रयत्नेनैव साध्यम्। रामायण-महाभारत पुराणोपलब्धा कथा-हिमाचलान्निष्यन्दमाना क्रमेण विविधरूपैः प्रवर्धमाना सरिदिव मन्त्र-ब्राह्मणात्मकात् कर्मज्ञाननयाद् वेदाचलात् प्रवहमाना कथासरित् विविधरूपाणि धारयन्ती अग्रे-प्रावर्धत। अन्तर्भाव-माधुर्यंदधानापि स्वकीयकलेवरपारुष्येण वेद-कथा न तथा हृद्यतामधात् यथा रामायणादि-कथा।

---

१. साहित्य अकादेमी नूतनदेहलीतः १९९२ इतिवर्षे प्रकाशितः।

प्राचेतसेन आदिकविना महर्षिवाल्मीकिना लौकिकसंस्कृते लौकिकच्छन्दस्सु विरचितम् मनोऽभिरामरामणीयकस्य निधानं परिधृत-हृद्यानवद्यपद्य परिधानं गुण-विभूषितमलंकार-समलंकृतम् नवरसरुचिरं मनोहरमादिकाव्यं रामायणम्, यच्च सकलं सुसम्बद्धमेकलं रामकथामयमापि अमितै रमणीयैः कथानकगुम्फितं विभ्राजतेतराम्। एतस्य कथानकानि विविध-ज्ञान-विलासोल्लसितानि, पुरुषार्थ-साधन-मार्ग-प्रदर्शकानि, पथ-विपथ-विद्यमान जन-सन्मार्गोपदेशकानि, धृति-क्षमेत्यादि निखिलधर्म-निर्देशकानि, हितवचनान्यपि मनोहराणि च सन्ति।

एतस्मिन्हि चतुर्विंशति-सहस्र-पद्यात्मके आदिकाव्ये प्रसङ्गानुकूल-विविध-पुरातन-कथानामपि समावेशो मनोहरतामादधाति। एतासु निम्नकथा- या विशेषत उल्लेखनीया, नामग्राहं निर्दिश्यन्ते-

१. ऋष्यशृङ्गकथा,
२. नृपकुशनाभ-कन्या-कथा,
३. गाधिराजोत्पत्तिकथा,
४. पार्वती-गङ्गा-जन्मकथा,
५. कार्तिकेय-जन्मकथा,
६. महाराज-सगरस्य तत्पुत्राणां च कथा,
७. गङ्गावतरण-कथा,
८. समुद्रमन्थन-कथा,
९. कश्यप पत्नी-दिति-कथा,
१०. अहल्योद्धार-कथा,
११. वसिष्ठ-विश्वामित्र-वैमनस्य-कथा,
१२. त्रिशङ्कु-विश्वामित्र-कथा,
१३. शुनःशेप-कथा,
१४. विश्वामित्रतपः कथा,
१५. अन्धतापस-शाप-कथा,
१६. जाबालिकथा,
१७. शबरीकथा,
१८. पञ्चाप्सरस्तीर्थ-वासि-माण्डुकर्णिमुनिकथा,
१९. सम्पाति-जटायु-जन्मकथा,
२०. स्वयम्प्रभातापसी-कथा,
२१. जयन्त-कथा,
२२. रावण-पूर्वजन्म-कथा,
२३. महाराज नृगकथा,
२४. महाराजनिमि-कथा,
२५. महाराज-नुहष-कथा इत्यादयः।

**वाल्मीकीय रामायणस्य लोक-प्रियता-**

काव्यानन्दसुधारस-निष्यन्दिनी, पुरुर्षाथचतुष्टय-साधनीयं मधुर-राम-कथा-मन्दाकिनी विश्व-मानव-मानसमाप्याययतिस्म। अतएवोच्यते-

**वाल्मीकि-गिरि-संभूता राम-सागर-गामिनी।**
**पुनाति भुवनं पुण्या रामायण-महानदी।। इति।**

इमाम् रामायणीं कथां समुपजीव्य अगस्त्यरामायणम्, अग्निवेषरामायणम्, अत्रिरामायणम्, अद्भुतरामायणम्, अध्यात्मरामायणम्, आनन्दरामायनम्, स्वायाम्भुवरामायणम्, गरुडरामायणम्, वसिष्ठ रामायणम्, सुब्रह्मरामायणम् इत्यादीनि अनेकानि रामायणानि; कालिदासविरचितरघुवंशम्,

भट्टिकृत-भट्टिकाव्यम्, कुमारदास-निर्मित-जानकीहरणम्, अभिनन्द-रचित-रामचरितम्, क्षेमेन्द्रकृत-रामायणमञ्जरीकाव्यम्, साकल्यमल्लकृतमुदारराघवम्, वामनभट्टबाण-रचित-रघुनाथचरितम्, चन्द्रकविकृत-जानकीपरिणयम्, अद्वैतकविकृत-रामलिङ्गामृतम्, रामचन्द्रमिश्र-विरचित-वैदेहीचरितम् इत्यादीनि विविधानि महाकाव्यानि; भासकृते प्रतिमाभिषेकनाटके भवभूति-विरचिते महावीरचरितोत्तररामचरिते, मायुराजकृतमुदात्तराघवम्, दिङ्नाग-निर्मित-कुन्दमाला, मुरारिरचितमनर्घराघवम्, राजशेखरकृत- बालरामायणम्, दामोदरमिश्रकृत-हनुमन्नाटकम्, शक्तिभद्रकृताशचर्यचूडामणिनाटकम्, जयदेवविरचित-प्रसन्नराघवम्, सोमेश्वरकृत-मुल्लास-राघवम्, इत्यादीनि प्रभूतानि नाटकानि, भोजकृता रामायणचम्पूः, दिवाकर-विरचिताअमो-घराघवचम्पूः वेङ्कटाध्वरि-रचितोत्तरराम चरितचम्पूः, इत्यादीनि चम्पूकाव्यानि च रचितानि कविपुङ्गवैः।

लोकप्रियरामकथायाः प्रचार-प्रसारौ न केवलं कविभिः संस्कृत-गिरा सोल्लासं व्यधासिषाताम्, अपितु बौद्ध-जैनादि कविभिरपि तथैवाकारिषाताम्।

बौद्धसाहित्ये रामकथा-सम्बद्धकृतिषु 'दशरथजातकम्', 'टव्वण्यन्तजातकम्', 'अनामक-जातकम्' इत्यादिषु किञ्चित् स्वधर्मसम्प्रदायानुकूल-परिवर्तनेन सह तदेव वस्तु विजृम्भते।

जैनपरम्परायामपि प्राकृतभाषानिबद्धासु 'पउम चरियं', 'रामलक्खण चरियं' 'सीया चरियं' इत्यादिषु, संस्कृतभाषागुम्फितासु 'रविषेण पद्मचरितम्', जिनदासकृत-'रामदेवपुराणम्' पद्मदेव विजयगणिकृत 'रामचरितम्' इत्यादिषु च रचनासु यत्किञ्चित् परिवर्तनेन सह तदेव वस्तु विलसति।[1]

संस्कृततेराधुनिक-प्रमुखभाषासु रामकथावर्णनस्य प्रवहमाना अजस्रधारा अद्यापि जनमानसमाप्याययति। तत्र-

१. असमिया-भाषायाम् माधवकन्दली-रचितं 'माधवकन्दलीरामायणम्',
२. उड़िया भाषायाम् बलरामदास विरचितं जगमोहनरामायणम्,
३. कन्नड़ भाषायाम् नरहरि-कृतम् 'तोरवैरामायणम्'
४. कश्मीर भाषायाम् 'दिवाकरप्रसादभट्टनिर्मितम्' 'रामावतारचरितम्'
५. गुजराती भाषायाम् 'गिरिधरदासप्रणीतम्' 'रामायणम्'
६. तमिल भाषायाम् कम्बन-रचितम् 'कम्बरामायणम्'
७. तेलुगुभाषायाम् रङ्गनाथ-विरचितम् 'द्विपदरामायणम्'
८. बंगलाभाषायाम् 'कृत्तिवासरामायणम्',
९. मराठी भाषायाम् एकनाथनिर्मितम् 'भावार्थरामायणम्',
१०. मलयालम भाषायां एज्युतच्चनकृतम् 'अध्यात्मरामायणम्',

---

१. चीनीभाषानुवादेन ज्ञातम्। द्र. मूलभागः।

११. मैथिली भाषायाम् 'चन्दाझारचितम् 'मिथिलाभाषारामायणम्',
१२. लालदासकृतम् 'मैथिलीरामायणम्'
१३. रामलोचनशरण-रचितम् 'मैथिलीरामचरितमानसम्',
१४. हिन्दी भाषायाम्-गोस्वामि-तुलसीदासरचितम् 'रामचरितमानसम्',
१५. छेदीझाद्विजवर-विरचितम् 'सीतायनम्' इत्यादीनि
अनेकानि भावपूर्णानि रामकाव्यानि विशालेऽस्मिन् देशे विलसन्ति।

उर्दू-फारसी-वैदेशिक-भाषासु रामकथा वर्णनमेतत्कथाया लोकप्रियतां विशेषतोऽभिव्यनक्ति। तत्र निम्नलिखिताः कृतयो हृद्यतया वैशिष्ट्यमादधाना उल्लेखनीयाः सन्ति-

१. मुगलशासकस्य अकबरस्य आदेशात् अलबदायूनी द्वारा फारसी भाषायां कृतः वाल्मीकि-रामायणस्य छन्दोबद्धानुवादः,
२. जहाँगीर-शासन-कालिकेन गिरिधरदासेन प्रस्तुतः वाल्मीकिरामायणस्य संक्षिप्त-पद्यानुवादः,
३. मुल्लामसीहेन 'मुल्लामसीहीतिंनाम्ना' तदानीमेव कृतः रामायणानुवादः,
४. शाहजहाँ कालीना 'रामायण फैजी',
५. खिष्टीय सप्तदशशतके एकेन गोपालनामकेन कविना 'तर्जुमा-इ-रामायणे' ति नाम्ना प्रस्तुतोऽनुवादः,
६. खिष्टीय एकोनविंशे शतके जगन्नाथ 'खुश्तर' द्वारा उर्दूभाषायाम् 'रामायण खुश्तरे'-ति नाम्ना विहितः प्रसिद्धानुवादः,
७. 'रामायण मंजूम',
८. 'रामायण बहार',
९. 'रामायणमेह' इत्याद्यभिधानैरन्यैर्विद्वद्भिः कृता रामायणस्यानुवादाः रामकथाया लोकप्रियतां प्रदर्शयन्ति।

आदिकाव्य रामायणस्य जनमानस-विलासिनी रामकथा भारतसीमामतिक्रम्य तिब्बत-पूर्वतुर्किस्तान-चीन-हिन्देशिया-श्याम-ब्रह्मदेश-यवद्वीपादिषु प्रविश्य तत्रत्यान् जनान् स्वमाधुर्येण, गौरवेण च मुग्धानकरोत्।

'अनामक जातक, 'दशरथजातकादेः तिब्बती-भाषानुवादेन सम्यगृज्ञायते यत् खिष्टीयाष्टम-नवमशतक-समये एव राम-कथा तिब्बत- चीनादिदेशेषु लोकप्रिया प्रसिद्धाचाभवत्। हिन्देशियान्तर्गत यवद्वीपीय प्रम्बनननामके स्थाने खिष्टीय नवमे शतके निर्मितस्यैकस्य शिवालयस्य भित्तिषु समुत्कीर्णा रामकथा-विविध-प्रसङ्गास्तत्र रामकथा-प्रियतायाः साक्ष्यं निर्दिशन्ति। अत्रत्या 'रामायण काकाविन' इति नाम्ना प्रसिद्धा प्राचीना रामकथा खिष्टीय दशमशतके विरचिता, या भट्टिकाव्येन प्रभाविताऽस्ति, अतीव लोकप्रियतामादधाति।

मलयदेशीया 'हिकायत सेरीराम' इतिनाम्ना प्रख्याता रामकथा प्राचीनापि स्वमाधुर्येण नवीनायते। एवमेव तत्रत्या 'रामकियेन' इति नाम्ना प्रसिद्धा रामकथा या सप्तदशशतके

विरचिता, रामकथा-परम्परां प्रदर्शयति'। इमामेव कृतिमाधारीकृत्य 'वेयुक रोंग' इति नाम्ना अभिनेय काव्यस्य परम्परा प्रचलिताभवत्। परवर्तिनोऽनेके कवयः 'रामकियेन' इति काव्यं रचयाञ्चक्रुः। एतेषु योनबुरीफुत्तायोत्फा नामक-कविना रचितम् 'रामकियेन' इति काव्यम् स्ववैपुल्येन वैशद्येन च विशिष्टस्थानमाश्रयति। एवमेव लाओस देशे प्राप्ता रामकथा-मूलक-रचना 'पोम्मचका' (ब्रह्मचक्र) नामिकापि प्रकृते उल्लेख्या वर्तते।

'यूतो' नामकेन वर्मदेशीयेन एकेन कविना 'रामयागन' इति नाम्ना विरचिता रामकथा खिष्टीय-अष्टादशशतके तद्देशीयान् विशेषतः समाकृष्टा। इमामेव कृतिमाधृत्य श्यामदेशस्य 'रामकियेन' रामकथा वर्तते। वर्मदेशे 'याम प्वे' इतिनाम्ना प्रसिद्धं रामकथाश्रितं नाटकमपि अतीव लोकप्रियमस्ति।

आधुनिक-यूरोपीय-भाषासु वाल्मीकिरामायणस्य कतिपयानि अनूदितानि संस्करणानि उपलब्धानि सन्ति। एतेषु ग्रिफिथ महोदयेन विहित आङ्गलभाषानुवादः हृद्येन पद्यबन्धेन समधिकरामणीयकः। वर्तमानसम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य पूर्व कालिकस्य क्वीन्सकॉलेज इत्याख्यस्य प्रधानाचार्यपदमलंकुर्वाणेन एनेन तस्यैव परिसरे एकस्मिन् प्रशस्ते स्थाने समुपविशता एष पद्यानुवादः सश्रद्धं सकौशलं कृत इति सूचयति तत्रत्य शिलापट्टकमधस्तनेन सुललित पद्येन-

> "तमसातटकोकिलेन यच्चरितं कूजितमूर्जितं हरेः।
> तदिहैव निषीदता मया ग्रिथिफेनात्मगिराप्यगीयत।।"

वाल्मीकिरामयणाय जर्मन भाषायाम् एफ.रुकर्ट महोदयस्य पद्यबद्धानुवादः, फ्रेन्च भाषायाम् डे. पोलिये द्वारा रचिता 'मिथोलॉजि डेस इण्ड' नामिका कृतिः, तथा 'रत्नासियो डेस एरयर' नाम्नी संक्षिप्त रचना; इतालवीभाषायाम् जी. गोरेसी द्वारा चतुर्षु खण्डेषु प्रस्तुता रामायणकथा च आदिकाव्यस्य विश्वभ्रमणं विश्वस्मिन् जनमानस-विलसनञ्च संसूचयन्ति।

एवंहि आदिकाव्येन सीताया महच्चरितम्, रामभद्रस्य प्रजानुरञ्जनम्, भ्रातृ-प्रेम, दशरथस्य सत्य-पालनम्, जनन्याः स्नेहः इत्यादिरूपै र्भारतीय-संस्कृतेः योहि समुज्जवलसन्देशः सर्वत्र प्रसारितः स हि देश-काल-सीमा-बन्धनं परिहाय आदिकालात् अद्य पर्यन्तं विश्वस्मिन् जनमानसं समाह्लादयतितराम् अतएवोच्यते-

> "यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
> तावद्रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।" इति।

### (३) महाभारतकथा

संस्कृत-कथा-साहित्यस्य विकासक्रमे वाल्मीकि-रामायणात् परं द्वितीय स्थानमाश्रयदपि महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासेन विरचितं महाभारतम् स्वविपुलकलेवरेण, पुरुषार्थ-वैभवेन,

समस्त-रस-सम्पत्त्या च अद्वितीयं स्थानं दधाति। एतद् गौरवेण अमुष्य सम्बन्धे उद्घोष्यते-

**धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।**

जगतो वास्तविकताम्, कुरु-पाण्डव-महायुद्ध-परिणामम्, पाण्डवानां स्वर्गारोहणादि-करुण-दृश्यं दर्शं दर्शम् वैराग्यमापन्नो महर्षिव्यासः पावने नर-नारायणाश्रमे परम शान्तवातावरणे तपस्तपस्यन् शान्तरसप्रधानम्, क्षराक्षरातीत-भगवद्-वासुदेव श्रीकृष्णस्य परम-महिम-वर्णन परम्-[1]

**"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।**
**तत्र श्रीर्विजयो भूति र्ध्रुवानीतिर्मति र्मम।।"[2] इति**

परम सत्योपदेशकरम् महाभारतं व्यरीरचत्। महाभारतस्य स्वरूप-विकासः 'जय'-'भारत'-'महाभारते'ति क्रमत्रयेण सम्पन्नोऽभवदित्येतस्य साक्ष्येणैव ज्ञायते। कुरु-पाण्डव-युद्ध समाप्त्यनन्तरम् पाण्डवानां विजयपरम् 'जय' इति नामकं प्रथम रूपमभूत्-

"जयनामेतिहासोऽयंश्रोतव्यो विजिगीषुणा।"[3] इत्यादिना अवलोक्यते। एतस्य आख्यानं महर्षिव्यासेन स्वशिष्य-वैशम्पायनस्य समक्षं कृतम्। पश्चात् वैशम्पायनेन जनमेजयस्य नागयज्ञावसरे 'भारत'स्य उपाख्यानादिरहितस्य आख्यानं कृतम्, यच्च चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं चक्रे भारत-संहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावत् भारतं प्रोच्यते बुधैः।।[4] इति निर्देशेनावगम्यते। ततःपरम् नैमिषारण्ये द्वादश वर्षीय महासत्रावसरे शौनकादीनामृषीणामनुरोधेन सौतिः आख्यानोपाख्यान-सहितां महाभारत शत-साहस्त्री-संहितां श्रावयामास।

हरिवंश-सहिता विविधकथागुम्फिता पुरुषार्थ-कथा महाभारत-संहिता अष्टादशसु पर्वसु विभक्ता विश्वकोश-रूपा राजतेतराम्। महाभारतमूल-विषय-वस्तु-वर्णनक्रमे प्रासङ्गिक मूलकथाभागे च विस्तरेण कथारूप-प्रतिपादनात् अत्रातिसंक्षेपेणैव तन्निर्देशोऽपेक्ष्यते।

(क) **प्रेमाख्यान-मूलककथासु**-सत्यवती-शान्तनुकथा, दुष्यन्त-शकुन्तलाकथा, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-कथा, उषानिरुद्धकथा, कच-देवयानीकथा, उर्वशी पुरूरवसोः कथेत्येवमादयः कथाः प्रसिद्धिं भजन्ते।

---

१. भगवान् वासुदेवोऽत्र कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
२. गीता १८/७८
३. महाभारतम् उद्योग. १/६/१८
४. तत्रैव १/१/१०१

(ख) **प्राचीनाख्यानमूलककथासु**- गङ्गावतरण-कथा, श्रीरामकथा, नहुषकथा, ययाति-कथा, मनु-जलप्लावनकथा, सावित्रीसत्यवत्कथा, विश्वामित्रकथेत्यादयः कथाः प्रख्याताः सन्ति,

(ग) **नीतिमूलकजन्तुकथासु**-छद्मव्रति-बिडालकथा, जम्बुक-कथा, गृध्रगोमायुकथा, अलसमत्स्यकथा, कपोत-व्याध-कथा, व्याघ्र-शृगालकथा, मत्स्य-धीवरकथा, शृगाल-वानरकथेत्यादयः कथाः अतीव विख्याताः सन्ति। एवंहि पुरुषार्थ-चतुष्टय-सिद्धि-साधनीभूताभिः विविधाभिः कथाभिः समन्वितम् महाभारतमनारतं मानवमानसं सुधाः सन्तर्पयतितमम्।

महर्षि-वेदव्यासेन महाभारतीये महति चित्रपटे विविधचरितानां पुरुषाणां महिलानाञ्च विविध-रङ्गमय-विष्पस्टचित्राणि द्रष्टुम् तानि समवगन्तुञ्च वस्तुतो महाभारतरूपोऽयं ज्ञानमयः प्रदीपः प्रज्वालितः, येन विपथं विहाय सुपथेन जना गच्छेयुः।

महाभारतरत्नाकरात् कथारत्नान्याघृत्य परवर्तिनः कवयः अनेकानि महाकाव्यानि, नाटकानि, चम्पूरूपाणि काव्यानि च विरचयाञ्चक्रिरे अद्यापिच विरचयन्ति। एतेनास्य गौरवं महत्त्वं व्यापकत्वञ्च प्रकटितानि भवन्ति।

(४) **पौराणिक-कथा**

**आख्यानैश्चाप्युपाख्यानै र्गाथाभिः कल्प-शुद्धिभिः।**
**पुराण-संहितां चक्रे पुराणार्थ-विशारदः।।**

इति विष्णुपुराण-वचनात् सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरितरूप-पञ्चाङ्ग-पुराणस्य कलेवरम् भगवान् वेदव्यासः आख्यानोपाख्यानादिनैव निर्ममे। अतः सर्वाणि पुराणानि पुराकथानकैः समन्वितानि सन्ति। तत्र अनेकानि आख्यानानि सर्वेषु पुराणेषु वर्णितानि सन्ति। श्रीरामोपाख्यानम् श्रीकृष्णोपाख्यानम्, उर्वशीपुरूरवसोरुपाख्यानञ्च प्रायेण सर्वेषु पुराणेषु उपलभ्यन्ते।

भारतीयास्तिकपरम्परानुसारम् वेदादिरिव पुराणान्यपि भगवता विश्वरूपस्य निःश्वसितरूपाणि सन्ति। अतः प्राचीनकालादेव पुराण-कथानामपि अजस्रधारा अत्र प्रवहन्ति, या विविधैरूपैर्मानवजीवनं रसयन्ति। अतएव पुराणकथा वाचन-श्रवण-परम्परा, या प्राचीन-काले प्रचलिता, अद्यापि प्रचलति।

सन्मामार्गोपदेशिकाः पुरुषार्थचतुष्टय-साधिकाः, या कथा अष्टादशसु पुराणेषु वर्णिताः सन्ति तासां नामग्राहं समुल्लेखो मूलभागे एतत् प्रसङ्गे कृतोऽस्ति अतस्तास्तत्रैव द्रष्टव्याः।

एतासु पुराण-कथासु काश्चित् श्रीमद्भागवतीयाः त्रिपुर-कथा-पुरञ्जन-कथादयः प्रतीकात्मिकाः सन्ति, अतस्तास्तद् रूपेणैवावगन्तव्याः।

---

१. द्र. मूलकथाभागः

कासुचित् कथासु आधिभौतिकम्, कुत्रचिदाधिदैविकम् क्वापिचाध्यात्मिकं तत्त्वप्रतिपादितं वर्तते। विविधरत्नैर्विविधकुसुमैर्विविध-हृदय-पलाशकैर्विरचितेयं पुराण-कथामाला-मङ्गल्या मनोहरा सती जगदानन्दाय कल्पते। श्रद्धया निष्ठया भक्त्या श्रुताधीता अनुष्ठिता चेयं पुराण-कथा आधुनिकीं सामाजिकीमशान्तिं निराकृत्य समाजे शान्तिं स्थापयेदिति विश्वसन्ति विवेकिनः।

**(५) बौद्ध-साहित्य-कथा**

संस्कृतवाङ्मये धर्म-नीत्युपदेशात्मककथानां या परम्परा प्रचलितासीत् तामनुसृत्य बौद्ध-जैन-साहित्येऽपि स्वस्थ-सम्प्रदाय-मान्यतानुसारम् धर्म-नीत्युपदेशात्मक-कथानां विशिष्टा लेखनपद्धतिः प्रादुरभूत्।

बौद्ध-साहित्ये धर्मोपदेशमूलककथानां रचना-विन्यासे जातकमालाऽवदानशतक-दिव्यावदानावदानकल्पलतानाम् महत्त्वपूर्णं स्थानं वरीवर्ति। तत्रापि आर्यशूर-रचित-जातक-माला भाषासौष्ठवेन, कथा-शिल्प-सौन्दर्येण, बौद्ध-सिद्धान्त-प्रतिपादनेन च विद्वत्समाजे किमप्यपूर्वं वैशिष्ट्यं दधाति। भगवतो बुद्धस्य पूर्वजन्मनां विविधाः कथा बोधिसत्त्व-जीवन-सम्बद्धा दान-दया-दाक्षिण्यादि- रूपा जातक-मालायां संग्रथिताः सन्ति। पूर्वजन्मसु प्रज्ञादि-परिमितानां निरन्तराभ्यास एव तस्य बोधिसत्त्वावस्था, यत् सुपरिणामः सिद्धार्थ-स्वरूपेण बुद्धत्व-प्राप्तिः। एवंहि जातकमालायां बौद्धधर्मस्य तत्त्वम्, महत्त्वम्, निर्वाण-प्राप्त्युपायाँश्च सम्यक् प्रकारेण आर्यशूरः प्रदर्शयामास। तथा-''बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।''[1] इति

गीतोक्त-सिद्धान्तं बोधिसत्त्वस्य खग-मृग-मनुजदेवादियोनिषु जन्म-ग्रहणात्परं बुद्धत्व-प्राप्ति-वर्णनेन निरूपयामास। एतत् सर्वं कथोद्देश्यं जातकमालायाः निम्नलिखित-प्रारम्भिक-श्लोकेन स्पष्टतां याति-

> **श्रीमन्ति सद्गुण-परिग्रह-मङ्गलानि**
> **कीर्त्यास्पदान्यनवगीत-मनोहराणि।**
> **पूर्व-प्रजन्मसु मुनेश्चरिताद्भुतानि**
> **भक्त्या स्वकाव्यकुसुमाञ्जलिनार्चयिष्ये।।**

जातकमालायाः भाषा-शैली-कथा शिल्पादि-विषये मूलभागे अनेकानि मनोरमाणि उदाहरणानि प्रदर्शितानि सन्ति तानि तत्रैव द्रष्टव्यानि।

**२ अवदान-कथा-**

अवदानं नाम लोक-विश्रुत महनीयकृत्यम्। अवदानानां कथा-अवदान कथा। भगवतो बुद्धस्य पुरातन-वर्तमान-जीवन-सम्बद्धाः कथाः बौद्धसाहित्ये अवदान कथेति नाम्ना प्रसिद्धिं भजन्ते। एताभिः कथाभिः कर्म-फल-भोगस्य अनिवार्यत्वम्, नैतिक-नियम-पालनस्य

---

१. गीता ७/१९

आवश्यकत्वम्, सांसारिक-वैभवानां नश्वरत्वम्, बुद्धभक्तेः श्रेष्ठत्वम्, पञ्चशील-परिपालनम्, सुचरिताचरणम्, शुभ-कर्मणः संसेव्यत्वम्, अशुभकर्मणोहेयत्वम्-इत्यादीनि अवदान-कथोपदेश-सारतत्त्वानि सन्ति।

अवदानकथासु 'अवदानशतकम्' प्राचीनतमम्। अत्रोपदेशस्य प्राधान्यात् कथाशिल्प-सौष्ठवमप्रधानं वर्तते। पालि-प्राकृत भाषा-प्राधान्यात् संस्कृतशब्दा यत्रतत्र विकृतिमाश्रयन्ति।

'दिव्यावदानम्' द्वितीयस्थाने वर्तते। किन्तु कथाकाव्य-सौन्दर्यदृष्ट्या अधिकं महत्त्व-मादधाति। अत्र अष्टाविंशति प्रकरणेषु दानस्य महत्त्वम्, अशोकोपगुप्तयोः जीवनचरितम्, कुणालस्य नेत्रोत्पाटनम्, चाण्डालकन्याया आनन्दे आसक्तिः, ब्राह्मण-पुष्कर सारिणः मातङ्गराज शार्दूलकर्णद्वारा शास्त्रार्थे पराजयः एवंविधा विविधा आकर्षक-कथा राजन्ते।

पुष्यमित्रसहितानां गुप्तवंशीयराजानां नामोल्लेखात्, दीनार शब्द प्रयोगाच्च दिव्यावदाने संकलितानामवदानानां रचना ख्रिष्टपूर्वद्वितीयशतकादारभ्य ख्रिष्टीय चतुर्थशतकपर्यन्त- कालान्तराले सम्पन्नाभूदिति मन्यन्ते मनीषिणः। क्रैस्ते २६५ इति वर्षे शार्दूलकर्णावदानस्य चीनीभाषायामनुवादेन एतदवदानस्य विदेशेष्वपि समादरोऽभवदिति निश्चीयते।

ई.पी. कौवेलेन आर.ए. नीलेन च सम्पादितम् दिव्यावदानम् कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयेन प्रथमतः प्रकाशितमभूत्। ततः डॉ. पी.एल. वैद्येन सम्पादितस्य दिव्यावदानस्य दरभंगास्थ-मिथिलाशोध-संस्थोनन १९५८ इति क्रैस्तवर्षे द्वितीय संस्करणं प्रकाशितम्। दिव्यावदानस्य भाषा-शैली-विषय-सौष्ठव-निदर्शकाः कियन्तो मनोहराः प्रसङ्गा मूलभागे समुद्धृताः सन्ति। ते तत्र द्रष्टव्याः।

**(६) जैन साहित्ये कथावैभवम्-**

जैनाचार्या जैनवाङ्मये निवृत्ति परक धार्मिकोपदेशान् समाजे प्रचारयितुं प्रसारयितुञ्च कथा-शैलीमवलम्ब्य प्राकृत भाषायां विविधाः कथाः-विरचयाञ्चक्रुः। संस्कृत-कथा साहित्येन सह एतत्कथा-साहित्यस्यापि प्रभावः समाजे समभवत्। उभयोरादान-प्रदाने उभयत्राभूतामिति विजानते एव विज्ञाः अवलोकयन्ति च संस्कृत काव्य-शास्त्रीय-ग्रन्थेषु।

अर्द्धमागधभाषायां निबद्धे आगमग्रन्थे जैनकथा-साहित्य-बीजानि उपलब्धानि भवन्ति। कालक्रमेण एतेषां विकासः निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-टीकाग्रन्थेषु समजायत। दशवैकालिकसूत्रे प्रस्तुत-वर्गीकरणानुसारम् जैनकथानां त्रिधा विभाजनं क्रियते-१. अकथा, २. सत्कथा, ३. विकथा। यत्र मिथ्यात्व-भावनाया उद्दीपनपूर्ण-वर्णनात् मोहात्मिका मिथ्यादृष्टिर्जायते सा कथा 'अकथा'।

यत्र ज्ञान-साधनीभूतानां तपः संयम-दान-शीलादि-सद्गुणानां प्रशस्ति-वर्णनात् सज्ज्ञानं समुत्पद्यते सा कथा 'सत्कथा'।

यत्र च कथायां प्रमाद-कषाय-रागद्वेषादि-लोक-विकृति-कारकाणां विषयाणां वर्णनात्-मनोविकारः प्रजायते सा कथा 'विकथा' इत्युच्यते। एवंहि सत्कथाया उपादेयत्वं तदितरयोर्हेयत्वं निश्चीयते।

आगम-प्रतिपादिताः कथा अतिसंक्षिप्ता अपि मनोरमैरुपमादृष्टान्तादि-प्रदर्शनैः, लौकिकोपलब्धि-व्यर्थता-प्रतिपादनपुरस्सरम् वैराग्य-प्रशस्ति-वर्णनैरति महत्त्वपूर्णाः सन्ति। एतत् कथासु सार्थवाहधन्य-तत्पुत्रवधूकथा, जिनपालित-जिनरक्षित-कथा, सरोवरस्थमण्डूक-समुद्रस्थ-मण्डूककथा, वीतराग-भिक्षु-द्वारा श्वेत कमलाहरणकथादयः जैन कथा- साहित्यस्य प्राचीन विभूतयः सन्ति, यासु शील-संयम-विवेक-शिक्षा निहिताः सन्ति। एतत् सन्दर्भे भगवतीसूत्र-विपाकसूत्र-व्यवहार-भाष्य-बृहत्कल्प भाष्य-सूत्र कृताङ्गोत्तराध्ययन-सूत्राचाराङ्गसूत्रादिग्रन्था महिमशालितया समुल्लेख्यतामर्हन्ति।

आगमेतरकथा-साहित्यम् वस्तु-विन्यासेन अभिव्यञ्जनसामर्थ्येन च मनोहरं वैविध्यपूर्णञ्च वरीवर्ति। अत्र प्रेयः श्रेयसोर्विलक्षण-समन्वयः, भव्य-भावः, वाग्विन्यास-प्रसादः, कमनीय-कल्पना-वैभवम्, संघटना-सौन्दर्यम्, हृदय-संवाद-भाजनत्वम् इत्यादि रूपाणाम् काव्योचितगुणानां समुपलब्ध्या कथासौन्दर्यं समुज्जृम्भते। एतच्च कथा-चारुत्वम्-

१. तरङ्गवती,

२. वसुदेवहिण्डी,

३. समराइच्चकहा (समरादित्यकथा),

४. धुत्ताक्खान (धूर्ताख्यानम्),

५. कुवलयमाला-कथा,

६. कुमारपाल-प्रतिबोधः,

७. श्रीश्रीपालकथा इत्यादि जैनकथासंग्रहेषु

जैनधर्म-सिद्धान्त-जीवनपद्धत्यादि विविध-विषय-प्रतिपादिकाः शतशोमनोहराःकथा विलसन्ति, याः संस्कृत-कथानामपि अध्ययने, विवेचने च सहायिकाः सन्ति।

जैनाचार्यैः संस्कृत भाषा-निबद्धा अपि अनेके कथा-ग्रन्थाः सन्ति, येषु निर्वाणलीलावतीकथा-कथा-कोष प्रकरण-बृहत्कथा-कोष- कथा रत्नाकर-प्रभृतीनाम् अष्टादशानां नामानि रचयितृ-नाम सहितानि मूलभागे समुल्लिखितानि सन्ति, यानि जिज्ञासुभिस्तत्रैवावलोकनीयानि।

पूर्वनिर्दिष्ट-कथाग्रन्थेभ्योऽतिरिक्तम् मेरुतुङ्गाचार्य-विरचितम् प्रबन्धचिन्तामणि-प्रबन्धकोषेतिनामकं कथा-संकलनद्वयम् अतिमहत्त्वपूर्णं वर्तते। अत्र विक्रमादित्य-मूलराज-मुञ्जदेव-भोज-सिद्धराज जयसिंह-कुमारपाल-वीर धवल-वस्तुपाल-तेजःपाल-लक्ष्मणसेन-जयचन्द्र-प्रभृतीनामैतिहासिकपुरुषाणाम् प्रख्यात-चरितानि गुम्फितानि सन्ति।

इतो भिन्नेषु कथाग्रन्थेषु सिद्धर्षिनामकेन जैन कविना विरचिता अष्टसु प्रस्तावेषु विभक्ता उपमितिभवप्रपञ्चकथा महत्त्वपूर्णा वरीवर्ति, यत्र सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चरित्ररूपाणि जैनधर्म-त्रिरत्नानि सम्यगाख्यातानि सन्ति।

जयशेखरसूरिप्रणीत प्रबन्धचिन्तामणिरपि कथाजगति ख्यातिं प्रसारयति, यत्र रूपकात्मकशैल्यां परमात्मतत्त्व-साक्षात्कारोपायाः सम्यग् वर्णिताः सन्ति।

एवंहि कथा-साहित्य-श्रीवृद्धौ जैनाचार्याणाम् महत्त्वपूर्णं योगदानं चिरस्मरणीयतामादधाति।

**(७) नीत्युपदेशकथा-साहित्यम्**

नीत्युपदेश-कथा-ग्रन्थेषु खग-मृग-पात्रप्रधानम् पञ्चतन्त्रं विश्व-विश्रुतं वर्तते। एतृतकथा-विकास-बीजं, यथा प्रकृत-प्रकरण-प्रारम्भे निर्दिष्टम्, वैदिक वाङ्मये एव आरोपितमभूत्, यत् क्रमशो- रामायण-महाभारत-पुराणादिषु अङ्कुरितं, प्रस्फुरितं, प्रवर्द्धितं, पल्लवितञ्च सत् पञ्चतन्त्रे पूर्णतो विकसितमभूत्। पञ्चतन्त्रस्य रचयिता नीतिशास्त्रविशारदः कर्मकाण्डनिष्णातो विष्णुशर्मा महानाचार्योऽप्यासीत्, योहि अध्ययनात् पराङ्मुखान् राजकुमारान् षण्मासाभ्यन्तरे एव स्वाध्यापनकौशलेन नीतिशास्त्रनिपुणानकरोत्।

मित्रभेद-मित्रसम्प्राप्ति-काकोलूकीय-लब्धप्रणाशा-परीक्षित-नामकैः पञ्चभिस्तन्त्रैः परिच्छिन्नस्य पञ्चतन्त्रस्य प्रथमतन्त्रे मित्रभेदे पिङ्गलक-सञ्जीवक-दमनककथादयः द्वाविंशतिः कथाः सन्ति। मित्रसम्प्राप्तिरूपे द्वितीये तन्त्रे कपोतराज-चित्रग्रीव-मूषिकराज-हिरणयक-लघुपतन नामक काक-चित्राङ्गाभिध-हरिण-मन्थरकनाम कच्छप-कथाप्रधानाः सप्त कथा विलसन्ति। तृतीयतन्त्रे काकोलूकीये काकोलूकीयकलहकथाप्रमुखा एकोनविंशतिः कथा विद्यन्ते। लब्धप्रणाशनामके चतुर्थतन्त्रे रक्तमुखनामक वानर-करालमुख नामक-मकर- कथाप्रधाना द्वादश कथा वर्तन्ते। अन्तिमे अपरीक्षितकारके मणिभद्रनामक-श्रेष्ठिनः तथा एकनापितस्य कथया सह अन्यास्त्रयोदश कथा विलसन्ति। एतासु कथासु व्यावहारिकजीवनोपयोगिनीनां नीतीनां पुमर्थोपयोगिनां विषयाणाञ्च विशिष्टं महिमशालि निरूपणं वरीवर्ति।

पञ्चतन्त्रस्य अतीव लोकप्रियतया, देश-विदेशेषु प्रचारेण, प्रसारेण, विभिन्न भाषासु विभिन्नानुवादेन च एतस्य विभिन्न-वाचनानि संजातानि येषु कानिचिद् विनष्टानि अभूवन्। यानि च उपलब्धानि सन्ति तेषां मूलरूपम् तृतीयशतककालीन-गुणाढ्य-कृत-बृहत्कथायां सुरक्षितमासीत्। पैशाची-भाषा-निबद्धा बृहत्कथा विन्ध्याटवी-परिसरे भ्रमन्ती विलुप्ताभवत्। अस्या अद्भुतार्थ-बृहत्कथायाः कथानां संस्कृत रूपान्तरण-स्वरूपा क्षेमेन्द्रस्य बृहत्कथामञ्जरी विराजते, यस्या आरम्भ-श्लोक-द्वयेन एतद्रहस्यं समुद्घाटितं भवति-

**सेयं हरमुखोद्गीर्णा कथाऽनुग्रहकारिणा।**<br>
**पिशाचवाचिपतिता संजाता विघ्नदायिनी।।**<br>
**अतः सुख-निषेव्यासौ कृता संस्कृतया गिरा।**<br>
**समां भुवमिवानीता गङ्गा श्वभ्रावलम्बिनी।।**

बृहत्कथास्थितं मूलरूपमाधारीकृत्य पञ्चतन्त्रस्य विभिन्नानि वाचनानि अद्योपलभ्यन्ते। पञ्चतन्त्रस्य विशिष्टानुसन्धाता जर्मन विद्वान डॉ. एजर्टन् महोदयः डॉ. हर्टेल महोदय सहयोगेन महता परिश्रमेण एतत् सामग्रीं संगृह्य अस्य निम्नलिखितानि अष्ट वाचनानि निरदिशत्।

१. **तन्त्राख्यायिका**-कश्मीरोपलब्ध-पञ्चतन्त्र-वाचनमाधारीकृत्य जैनपण्डितेन पूर्णभद्रसूरिणा पञ्चतन्त्रस्य संशोधितरूपम्[1] तन्त्राख्यायिकेतिनाम्ना प्रकाशे आनीतम्। इयमेव कृतिः पञ्चतन्त्रस्य सर्वाधिकं मौलिकं रूपं प्रकाशयति।[2]

२. **दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्रम्**-तमिलभाषानिबद्धेऽस्मिनूपञ्चतन्त्रे डॉ. एजर्टन महोदयानुसारम् मूलपञ्चतन्त्रस्य गद्यस्य भागत्रयम् पद्यस्य च भागद्वयं सुरक्षितं वर्तते।

३. **नेपालीयपञ्चतन्त्रम्**-अस्मिन् पञ्चतन्त्रे केनापि सम्पादकेन पद्यभागः मूलग्रन्थात् पृथक् कृतः। गद्यभागश्च् नष्टप्रायः। पद्यभागे दक्षिण भारतीय-पञ्चतन्त्रेण साम्यं वर्तते।

४. **पञ्चतन्त्रस्य हितोपदेशात्मक-संस्करणम्**-मित्रलाभ-सुहृद्भेद-विग्रह-सन्धिरूपात्मकेषु चतुर्ष्वेव भागेषु सरलसंस्कृतगिरा नारायणपण्डितेन संग्रथितः पञ्चतन्त्रस्य संक्षिप्तरूपः हितोपदेशः कथासाहित्ये अतीव लोकप्रियतामादधाति।

५. **बृहत्कथामञ्जरीसमाविष्टं पञ्चतन्त्रम्**-क्षेमेन्द्र-प्रणीतायां बृहत्कथामञ्जर्यां शक्तियशोनामकलम्बके पञ्चतन्त्रस्य संक्षिप्तरूपमुपलभ्यते। पञ्चतन्त्रस्य संक्षिप्तेऽस्मिन् क्षेमेन्द्रेण संग्रथिते स्वरूपे मूलपञ्चतन्त्रे अनुपलब्धाः तन्त्राख्यायिकायां समुपलब्धाः पञ्च कथाः प्राप्यन्ते एतेन मनीषिणोऽनुमिन्वन्ति यत् क्षेमेन्द्रस्य पञ्चतन्त्रकथास्रोतः तन्त्राख्यायिका-रव्यानं वरीवर्ति।

६. **कथासरित्सागरान्तर्गत-विन्यस्तं पञ्चतन्त्रम्**-सोमदेव-विरचिते कथासरित्सागरे शक्तियशसः कथा-सम्बद्ध-लम्बके पञ्चतन्त्रस्य संक्षिप्तं पद्यात्मकं कथानकं समुपलभ्यते।

७. **पश्चिम भारतीय पञ्चतन्त्रम्**-निर्णयसागरमुद्रणालयात् मुम्बई संस्कृत-सीरीज प्रकाशनाच्च प्रकाशितपञ्चतन्त्रे मूलपञ्चतन्त्रस्य स्वरूपं सुरक्षितं वर्तते इत्यामनन्ति मनीषिणः।

८. **पञ्चाख्यानरूपं पञ्चतन्त्रम्**-पूर्णभद्रनामकेन जैनमुनिना खिष्टीय द्वादशे शतके पञ्चाख्याननाम्ना पञ्चतन्त्रस्य संस्करणं कृतम् यच्च सरलपञ्चतन्त्रमित्यपि अभिधानं भजते। एतदेवाधारीकृत्य सप्तदशशतकोत्तरार्धे मेघविजयनामकेन जैनलेखकेन रचितः 'पञ्चाख्यानोद्धारनामकः नीतिकथामूलको ग्रन्थः उपलभ्यते।

---

१. प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।
श्रीपूर्णभद्रसूरि र्विशोधयामास शास्त्रमिदम्।। **तन्त्राख्या**

२. डॉ. हर्टेल महोदयेन सम्पादितम् हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज इत्यत्र (सं. १३) प्रकाशितम्

९. **डॉ. एजर्टनमहोदयेन सम्पादितम् पञ्चतन्त्रम्** पञ्चतन्त्रकथानां विशिष्टानुसन्धाता डॉ. एजर्टन महोदयः विभिन्नानि वाचनानि आलोच्य उपलब्धतथ्याधारेण पञ्चतन्त्रस्य पुनर्निर्मित संस्करणं व्यधात्। इदं च संस्करणम् पूर्णपरिष्कृतं सत् अतीव महत्त्वपूर्णं वर्तते इति मन्यन्ते मनीषिणः।

**पञ्चतन्त्रस्य विश्वपरिभ्रमणम्**-पञ्चतन्त्रस्य विश्वभ्रमण-वृत्तान्तः अतीवरोचकतामादधानः जिज्ञासु-जन-मानसे कौतूहलं जनयति। एतत् प्रसङ्गे पाश्चात्त्य-विदुषा डॉ. बेनफीमहोदयेन डॉ. हर्टेलमहोदयेन च कृतमनुसन्धानमतीवमहत्त्वपूर्णं वर्तते। एतस्मिन्नेव सन्दर्भे डॉ. एजर्टन महाशयेन कृतम् पञ्चतन्त्रस्य देशान्तर-यात्रावर्णनं किमप्यपूर्वं वैशिष्ट्यं प्रदर्शयति। इदमेव विवरणमाधृत्य डॉ. काशीनाथमिश्रेण एतस्य मूलभागे विस्तरेण पञ्चतन्त्रस्य अनुवादद्वारा देशाद्-देशान्तरे गमनं निर्दिष्टम् तत् तत्रैव द्रष्टव्यम्।

एतद्विवरणेन विज्ञायते यत् पञ्चतन्त्रस्य पञ्चाशतोऽप्यधिकासु भाषासु अनुवादाः अभूवन् तथा शतद्वयादप्यधिकानि संस्करणानि इदानीं यावत् समभवन्। एतेन विश्वस्मिन् समस्तनीतिकथामूलकसाहित्यस्य उद्गमस्थानम् पञ्चतन्त्रमेवेति निश्चीयते।

पञ्चतन्त्रस्य भाषा-शैली-सौष्ठवम्, कथाशिल्प-सौन्दर्यम्, सदूक्तिरत्नम् इत्यादीनि सर्वाणि विस्तरेण मूलभागे प्रतिपादितानि निर्दिष्टनि च सन्ति।

हितोपदेशः भाषासारल्येन, नीत्युपदेश-सौष्ठवेन, सुकुमार-मति-हृद्यत्वेन, लोकप्रियत्वेन, सूक्तिवैभवेन च सर्वान् नीतिकथा-ग्रन्थानतिशेते। एतच्च सम्यक्तया सविवरणं सोद्धरणं प्रतिपादनं मूलभागे द्रष्टव्यम्।

**पुरुष-परीक्षा**-उपदेशात्मक-नीतिकथा-शृङ्खलायाम् मैथिलकविकोकिलेन अभिनवजयदेवेन महाकविना विद्यापतिना विरचिता 'पुरुषपरीक्षा'[1] अन्वर्थनामिका नीतिकथाकृतिर्वर्तते। अत्र मानवेतर-खगमृगादि-पात्रस्थाने कालयुगीय-प्राचीन-नवीनपुरुषाः पात्रत्वं निर्वहन्ति।

चतुर्दशतक-मध्यभागे महाराजशिवसिंह निदेशमासाद्य कथात्नमिदम् विद्यापतिर्व्यरीरचत्।

> **शिशूनां सिद्ध्यर्थं नय-परिचितेर्नूतनधियां**
> **मुदे पौरस्त्रीणां मनसिजकला-कौतुकजुषाम्।**
> **निदेशान्निश्शङ्कं सपदि शिवसिंहस्य नृपतेः**
> **कथानां प्रस्तावं विरचयति विद्यापति-कविः।।**[2]

---

१. प्रो. रमानाथ झा-सम्पादिता पटना विश्वविद्यालयात् प्रकाशिता अन्यान्यपि अनेकानि एतदीय संस्करणानि संन्ति। १९६०

२. प्रारम्भे श्लोक ३

इति सूचयति तत्रत्यं पद्यमिदम्।

**वीरः सुधीः सविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।**
**तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः।।'**

चतुर्षु परिच्छेदेषु विभक्तायाः पुरुष-परीक्षायाः प्रथमे परिच्छेदे-दानवीर-दयावीर-युद्धवीर-सत्यवीर-चौर-भीरु-कृपणालसेति संज्ञा अष्टौ कथाः सन्ति। द्वितीयपरिच्छेदे सप्रतिभ-मेधावि-सुबुद्धि-वञ्चक-पिशुन-जन्म-बर्बर-संसर्ग-बर्बर-नामिकाः सप्तकथा विद्यन्ते। तृतीये शस्त्रविद्य-शास्त्र-विद्य-वेदविद्य-लोकविद्योभयविद्य-चित्रविद्य-गीतविद्य-नृत्यविद्येन्द्रजाल विद्य-पूजितविद्यावसन्नविद्याविद्य-खण्डितविद्य-हासविद्यरूपाः चतुर्दश कथाः विलसन्ति। चतुर्थे च परिच्छेदे धर्मकथासु तिस्रः तात्त्विक-तामसानुशयि कथाः, अर्थकथासु चतस्रः-महेच्छ-मूढ-बह्वाश-सावधान कथाः, कामकथासु पञ्च-अनुकूल दक्षिण-विदग्ध-धूर्त-घस्मर-कथाः, मोक्षकथासु तिस्रः निर्बन्धि-निःस्पृह-लब्धसिद्धिकथाश्च विद्यन्ते। एवंहि साकल्येन चतुश्चत्वारिंशत्कथाः दण्डनीति-राजधर्म-पुरुषार्थचतुष्टय सम्बद्धान् विषयान् प्रतिपादयन्त्यः संस्कृत-कथा-काव्य-परम्परायां कामप्यपूर्वां विच्छित्तिं समुन्मीलयन्ति। एतन्निदर्शनीभूतानि उद्धरणानि सदुक्तिवाक्यामृतानि च मूलभागे विराजन्ते तानि तत्रास्वाद्यानि।

**(८) मनोरञ्जक-कथा**

बृहत्कथा-महाराज हालस्य सभापतिना अन्वर्थनामकेन गुणाढ्येन पैशाच भाषायां विरचिता अद्भुतार्था बृहत्कथा मूलरूपतोऽनुपलब्धापि संस्कृत-रूपान्तरेण समुपलब्धा विस्मयावहमपूर्वं चमत्कारं जनयन्ती विश्वमानवमनोरञ्जनं विदधाति। अतएव कविताकामिनी पञ्चबाणो बाणो निगदति-

**समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।**
**हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।**

पैशाच-भाषा-निबद्धं बृहत्कथा-कलेवरमद्य क्वापि दौर्भाग्याद् दृश्यमानं नास्ति। अधुना बृहत्कथायाः संस्कृतानुवादेषु-

१. अष्टम-नवमशतककालिकेन नेपालवासिना बुध-स्वामिना कृतः 'बृहत्कथाश्लोक-संग्रहः' प्राचीनतमः।
२. कश्मीरराजस्य अनन्तस्य आश्रितेन एकादश शतक-कालीनेन पण्डितवरेण क्षेमेन्द्रेण कृता ७५०० मित-श्लोकात्मिका 'बृहत्कथामञ्जरी' द्वितीयस्थानं भजते।
३. तत्समकालिकेन सोमदेवेन विरचितः चतुर्विंशति-सहस्रात्मकः 'कथासरित्सागरः' प्रसिद्धतमः। एतेषु संस्कृतानुवादेषु मूलकथानां कियानंशः सुरक्षितो वर्तते इति निर्णेतुं

१. तत्रैव प्रथम-परिच्छेदे।

न कोपि प्रभवति। एतानेवानुवादानाधारीकृत्य 'बहत्कथाया' विस्मयावहं महत्त्वमधुना विजानाना विज्ञाः तत्प्राशस्त्यं समुद्गिरन्ति।

अष्टादश-लम्बकावलाम्बिताया बृहत्कथा-मञ्जर्या विषय-वस्तु-सौन्दर्य-प्रदर्शन-पुरस्सरं-कवि-कर्म-कौशलस्य विशदं सोदाहरणं विवरणम् एतन्मूलभागेऽवलोकनीयम्।

एवमेव अष्टादशसु लम्बकेषु विभक्तस्य अन्वर्थनामकस्य 'कथासरित्सागरस्य' समपेक्षितविवरणं विस्तरेण यन्मूलभागे प्रदत्तमस्ति तज् जिज्ञासूनां ज्ञानपिपासाशान्तये सर्वथा पर्याप्तं वर्तते। न किमपि ततोऽधिकमत्र समपेक्षते।

अस्य सकल-श्लोक-संख्या-भेदः प्रायेण संस्करण-भेदमूलक इति मन्ये।

**वेतालपञ्चविंशतिका**-अतीव रोचकानां कुतूहलपूर्णानां ज्ञान-विवर्धकानां पञ्चविंशतेः कथानां संग्रहात्मिका वेताल-पञ्चविंशतिका गद्य-पद्यमयी कथा कृति-र्विद्यते। अत्र शव-शरीराधिष्ठित एको वेतालः राजानं त्रिविक्रमसेनं, पश्चाद् विक्रमादित्येति नाम्नाख्यातमुपगम्य एकैकं गूढं प्रश्नं पृच्छति, तत्प्रश्नस्य समुचितमुत्तरंश्रुत्वा पुनस्तत्रैवाश्रयेऽवलम्बते। एवंहि प्रश्नोत्तर-सम्बद्धाः पञ्चविंशतिः कथा अत्र विलसन्ति।

बृहत्कथामञ्जरी-कथासरित्सागरयोरेताः सर्वाः कथाः समुपलब्धाः सन्ति, अत आसाम् कथानां मूलरूपाणि गुणाढ्य-कृतायां बृहत्कथायामासन्निति बहवो विद्वांस आमनन्ति। बुध-स्वामि-कृते बृहत्कथासंग्रहे वेतालकथानामनुपलब्ध्या केचन मनीषिणः एतासां बृहत्कथामूलकत्वे संशेरते।

एतद्वेतालकथाग्रन्थस्य अनेक संस्करणेषु शिवदासकृत संस्करणे गद्य-पद्ययोः सम्मिश्रणेन डॉ. हर्टेलमहोदयानुसारम् चतुर्दशशतकात् पूर्वमेव शिवदासेन कथाग्रन्थोऽयं प्रणीतः।[1]

जम्भलदत्तेन लिखिता वेतालपञ्चविंशतिका[2] गद्यमयी विद्यते। इदानीं प्रचलिता वेतालकथा विशेषतः वल्लभदास-रचितमेतुकथाग्रन्थमनुसरति। एतद्रूपान्तरं मङ्गोल भाषायामपि समुपलभ्यते। आधुनिक भारतीय भाषासु एतदीयानुवादाः एतत्कथानां लोकप्रियतां प्रकाशयन्ति।

प्रसङ्गनिर्देशपूर्वकम् वेतालकथानां विशदं रोचकं विवरणं मूलभागे प्रदत्तं विद्यते। जिज्ञासुभिस्तदवलोकनीयम्।

**शुकसप्ततिः**-शृङ्गार-प्रधानानां मनोहराणां सप्ततेः कथानां संग्रहात्मकोऽयं शुकसप्तति-कथाग्रन्थः वाचनद्वये समुपलभ्यते। संक्षिप्तापरिष्कृतप्रथम[3]वाचनापक्षेया अस्य

---

१. जर्मनविदुषा हाइनरिशऊले महोदयेन सम्पादितः प्रकाशितश्च लाइप जिंग, १८८४

२. डॉ. एमेनाड महोदयेन आङ्गलभाषानुवादसहितं रोमनाक्षरे लिखितम्, अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी द्वारा प्रकाशितम्-१९३४

३. डॉ. स्मिथ महोदयेन जर्मनभाषानुवादसहितम् लाइपजिंगनगरात् १८९३ वर्षे प्रकाशितम्।

द्वितीयं वाचनं[1] विशदं परिष्कृतं वर्तते। डॉ. स्मिथ महोदयेन जर्मन रूपान्तरेण सह उभयोः प्रकाशनं कृतम्।

प्रवत्स्यत्पतिकां विरहविधुरां कामार्तमिकां युवतिम् अभिसर्तुकामामालोक्य ताम् तदाचरणान्निवर्तयितुमना एकः पालितशुकः सप्ततिं कथाः क्रमशः श्रावयित्वा ताम् असदाचारान्निवारयति इति विषयमाधृत्य एताः कथा अत्र मनोरञ्जनार्थं गुम्फिताः सन्ति।

कथानां सप्रसङ्गं विशदवर्णनं मूलभागेऽवलोकनीयम्।

**सिंहासनद्वात्रिंशिका**-महाराज विक्रमादित्यस्य परमोज्ज्वलं यशस्करम् अत्यद्भुतम् परमोत्कर्षावहं सुचरितमाधृत्य वर्णिता मनोहरा द्वात्रिंशत् कथा अत्र संग्रहे विलसन्ति। प्रायेण सर्वासु समृद्ध भारतीय भाषासु एतत्कथासंग्रहस्य अनुवादा उपलभ्यन्ते, येनास्य लोकप्रियता प्रकाशिता भवति।

विक्रमादित्यस्य दिव्यसिंहासनमिदं भूगर्भस्थितं यदा धाराधीशेन भोजराजेन एकादशशतके प्राप्तम् तदा महता संरम्भेण तदारोढुकामं भोजराजं प्रथमसोपानस्थिता पुत्तलिका विक्रमादित्य-जन्म-कृत्यादिप्रतापं श्रावयित्वा तं तथाकर्तुं न्यवारयत्। एवं क्रमेण अपरा अपि एकविंशतिः पुत्तलिका क्रमशः विक्रमादित्यस्य परमोज्जवलकृत्यानि श्रावयामासुः। एवंहि विक्रम-पराक्रम-वर्णनं कथा-ग्रन्थस्यास्य प्रयोजनम्, यच्च मनोरञ्जक-कथाव्याजेन सम्यक् कथाकारेण सम्पादितम्।

भारतीय-मनोरञ्जक-कथा-परम्परा, या प्राचीन-कालादेवात्र प्रवहमाना परिदृश्यते तस्यां भारतीय कथा-वैभवस्य महत्त्वम्, सार्वभौमिकत्वम्, लोकप्रियत्वं तत्रनिहित कवि-कर्म-कुशलत्वञ्च विश्वजनमनांसि यथा पूर्वं रञ्जयन्तिस्म, तथाद्यापि रञ्जयन्ति, सचेतसां चेतांसि च चमत्कुर्वन्ति इत्येतत् प्रकरणारम्भे निदिष्टैराधुनिककथा-संग्रहैर्विज्ञायते इति शम्।

---

१. तत्रैव १९९६ वर्षे प्रकाशितम्।

## चतुर्थोऽध्यायः

# नीत्युपदेशः

**(क) नीतिः**-नीयन्ते प्राप्यन्ते संलभ्यन्ते उपायादयः लौकिकाः पारलौकिका वा अर्था अनया अस्यां वा इति नीतिः। प्रापणार्थकान्नी धातोः करणे अधिकरणे चार्थे क्तिन्-प्रत्यये नीतिशब्दो निष्पद्यते। अतो नीति शब्दस्य व्यापकेऽर्थे ऐहिकानामामुष्मिकाणाञ्च समेषामुपायानां समस्तानि साधनानि समायान्ति। अत एव नीतिशब्दस्य विविधेष्वर्थेषु प्रयोगः प्राप्यते।

मुख्यतः नीतेः वर्गद्वयं स्वीक्रियते-१. राजनीतिः, २. धर्मनीतिश्च। राजनीतेरेव अपर नाम दण्डनीतिः, यत्र साम-दाम-भेद-दण्ड रूपाणामुपायानाम् अन्येषाञ्च लौकिक-व्यवहाराणां विधानस्य वचनानि निर्दिश्यन्ते। अर्थ-कामरूपस्य पुरुषार्थद्वयस्य विधिरत्र प्रदर्श्यते। धर्म-मोक्षरूपस्य पुरुषार्थद्वयस्य च विषये वचनानि धर्मनीतौ निर्दिश्यन्ते।

**(ख) उपदेशः**-उपपूर्वकात् अतिसर्जनार्थक दिश धातोः भावे घञि निष्पन्नस्य उपदेश शब्दस्य शिक्षणम्,[1] मन्त्रकथनम्,[2] हितकथनम्,[3] परामर्शदानम्,[4], व्यावहारिक[5] शिक्षेत्यादि, विविधा अर्था भवन्ति।

काव्यस्य विविधेषु प्रयोजनेषु कान्तासम्मितोपदेशः एव मुख्यं प्रयोजनं विद्यते। संस्कृत-कवय आदि कालादेव मनोरञ्जनेन सह शिक्षणस्य, हृदयावर्जनेन सह तत्त्वबोधस्य च अद्वितीयं साधनं काव्यं मन्यमानाः उपदेशात्मकं काव्यं विरचयन्तो दरीदृश्यन्ते। ते च क्वचित् स्वभावोक्त्या क्वचिच्च वक्रोक्त्या हितवचनं समुपदिशन्ति। क्वचित् प्रत्यक्षरूपेण क्वचिच्च परोक्षरूपेण शिक्षयन्ति। अस्मिन् उपदेशात्मके काव्ये नीतेरपि प्रतिपादनं भवत्येव। तत्र नीतेः प्रत्यक्षतः प्रतिपादनं यत्र भवति तत् उपदेशात्मकं नीतकाव्यं प्रथम नीतिवर्गे आगच्छति। यत्र परोक्षरूपेण कर्तव्याकर्तव्य-विषयकं हितम् कमनीयकाव्यद्वारा निर्दिश्यते तत् उपदेशात्मकं काव्यं द्वितीये उपदेशवर्गे आगच्छति। यद्यपि अनेकत्र एवं विधाया विभाजक-रेखाया अङ्कनं कठिनं भवति तथापि साधारणतया वर्गद्वये पूर्वोक्तरीत्या विभाजनं क्रियते।

**(क) नीतिकाव्यम्**-यत्र काव्ये स्वच्छाचरणस्य, आदर्शचरित्रस्य, जीवन-समाजोपयोगि-कर्तव्याकर्तव्य-निर्देशकस्य च हितवचनं प्रतिपाद्यते तन्नीति-काव्यम्। भारतीया मनीषिणः स्वानुभवमाधारीकृत्य जनानां कृते शान्तिमयं सुखमयं भव्यं जीवनं यापयितुं समुचितमार्गं

---

१. उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तः...... **निरुक्तम्**।

२. चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रप्रकथनममुपदेशः स उच्यते।। **शब्दकल्पद्रुमः**।

३. उपदेशो हि मूर्खाणां-प्रकोपाय न शान्तये।। **हितोपदेशे विग्रहे** उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने। तत्रैव।

४. सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशेन निपुणो भवति। **मालविकाग्निमित्रम्**।

५. अयोपदिश्यते मधुरेण श्लेष्माभिवर्धते। **शब्दकल्पद्रुमः**।

निरदिशन् अद्यापि च निर्दिशन्ति। ते मानव-प्रकृते र्दुलबतां विज्ञाय तां दुर्बलतां विजेतुं जीवनस्य जटिल-परिस्थितौ धैर्यपूर्वकं सदाचार-परिपालनाय महत्त्वपूर्णं सत्यं शिवं सुन्दरञ्च निर्देशमकुर्वन्। भारतीय-चिन्तकानां दृढो ऽयं विश्वासः यत् मानवस्य वर्तमानजीवनं तस्य पूर्वार्जित शुभाशुभ-कर्मणः फलम् तथा वर्तमानमपि कर्म तस्य भावि जन्मनो निर्माणे असाधारणं कारणं भविष्यति। अतश्च भावि-जीवने शुभफलमवाप्तुं वर्तमानजीवने नीतिपूर्वकं सदाचरणं परमावश्यकम् यथामधुरफलमास्वादयितुं तत्फलदायकतरोरेव रोपणमावश्यकं भवति। एतदर्थमेव सदाचरणाय नीतिशास्त्रं प्रादुरभूत्। तत्र क्वचित् प्रभुसम्मितवाक्येन क्वचिच्च कान्तासम्मितवाक्येन नीतिवचनानि निर्दिष्टानि, समुपदिष्टानि च सन्ति। तान्येव वचनानि सूक्ति-सदुक्ति'-लोकोक्ति-छन्दोबद्धनीति-वाक्यानि विविधानि रूपाणि परिगृह्य विकसितानि।

एतेषु कानिचन नीति-वाक्यानि व्यवहार-कोविदानां कण्ठेषु सुरक्षितानि आसन्, यानि मानव-जीवनस्य उत्कर्षापकर्षप्रसङ्गेषु प्रकटितानि अभूवन्। कानिचित् रामायण-महाभारत-पुराण मन्वादि स्मृतिग्रन्थेषु महर्षिभिः प्रतिपादितानि। कतिपयानि नीति- वचनानि कविभिः स्वतन्त्ररूपेण विरचितानि। दशम शताब्दीं यावत् नीति-वचनानां विकासस्य इयमेव स्थितिरासीत्। पश्चात् पूर्वस्मिन् काले प्रतिपादितानां नीति-वाक्यानां संकलनं विधाय तेषां विविधाः संग्रहा विद्वद्भि-र्विहिताः। संग्रहात्मकमिदं कार्यमतीव महत्त्वपूर्णमभूत्, यतः अनेकेषाम् नीति-वचनानामध्ययन-पूर्वकं यतस्ततः संकलनमतीव दुष्करमासीत्। महता परिश्रमेण साध्यमिदं संकलनात्मकं कार्यं यत् तदानीं प्रादुरभवत् तदग्रेऽपि प्रवर्धमानमभूत्।

दशम शताब्द्याः परं संग्रहात्मककार्येण सह एतस्मिन् क्षेत्रे स्वतन्त्रग्रन्थलेखन-कार्यमपि न कदापि अवरुद्धमभूत्। अनेके नीत्युपदेशात्मकग्रन्थाः कवि-कोविदैर्नीति-निपुणैर्विरचिताः। नीत्युपदेशद्वारा समाजे सदाचार-शिक्षणमित्येव एतद्रचनाया मुख्यं प्रयोजन-मासीत्।

नीत्युपदेशात्मक-ग्रन्थानां रचनासु कविभिः विविधाः शैल्यः अनुसृताः। क्वचिद् दम्पत्योः परस्परसम्वादे नीत्युपदेशा वर्णिताः सन्ति, यथा रामचन्द्रागामिनः सिद्धान्तसुधातटिन्याम्, क्वचिद् द्वयोः प्रेमासक्तयोः परस्परालापे, यथा, चोरकवेः विद्यासुन्दरे, रम्भाशुकसम्वादे च, क्वचिद् युवत्या सह परिव्राजकस्य वार्तालापे, यथा मदनमुखचपेटिकायाम्, कुत्रचित् द्वयोः पश्वोः सम्वादे, यथा घटखर्परस्य नीतिसारे सिंहशूकरयोः सम्वादे,' क्वचिच्च पार्वती-परमेश्वरयोः परिसम्वादे नीत्युपदेशात्मिका रचना विलसन्ति। उपर्युक्ताभ्यः शैलीभ्यो भिन्नायामपि अन्योक्तिरूपायां प्रहेलिकारूपायाञ्च पद्धत्याम् नीत्युपदेशात्मकं वर्णनं समुपलभ्यते।

अतिप्राचीनकालादेव इयमुक्तिः प्रचलितास्ति यत् "परोक्षप्रियाहि देवाः प्रत्यक्षद्विषः"। परोक्षरूपेण वर्णनं देवानामपि प्रियङ्करं भवति। कस्यापि विषयस्य प्रत्यक्षतः अभिधया

१. पञ्चतन्त्र-हितोपदेशादौ तु एतत् सुप्रसिद्धमेव।

प्रतिपादनात् तस्य परोक्षरूपेण व्यञ्जनया प्रतिपादनं कमपि अपूर्वं विशिष्टं चमत्कारमादधतीति अनुभवन्ति भावुका विपश्चितः। अतएव आनन्दवर्धनाभिनवगुप्त-मम्मटादयः काव्ये-प्रतीयमानमर्थं सर्वातिशयिरूपं मन्यन्ते। सहृदयाश्च तथैवानुमोदन्ते। एवमेव नीत्युपदेशो यत्रान्योक्तिसरण्या, प्रहेलिका-पद्धत्या वा प्रतिपाद्यते तत्र नीत्युपदेशात्मकः सोऽर्थः स्वप्रयोजनसिद्धौ अधिकं साफल्यं भजते। अतएव अनेके कवयः एतया पद्धत्या स्वाभीष्टं प्रतिपादयन्ति। पण्डितराज जगन्नाथस्य अन्योक्तेः प्रभावो विद्वद्भिरनुभूयते एव।

अन्योक्तिसरण्या नीत्युपदेशात्मकवर्णने-एकनाथ-काश्यपि-गणपतिशास्त्रि-गीर्वाणेन्द्र धनश्याम-जगन्नाथ प्रभृतीनाम् अन्यापदेश शतकानि, आच्चान दीक्षित लक्ष्मीनृसिंहादीनाम् अन्योक्तिमाला, हरिकृष्ण-प्रणीतः अन्योक्तिसहाध्यायः, भट्टवीर दर्शन विजयमणिसोमनानाथादि विरचितानि अनादि अन्योक्तिशतकानि, अज्ञात नामक कविकृता अन्यायदेशपद्धतिः एवं विधा अनेका अन्याश्च रचना नीत्युपदेशं विदधति। इतो भिन्नानामपि कृतीनां सूचना लुडविक स्टर्नबारव महोदयेन महासुभाषितसंग्रहग्रन्थस्य भूमिकायां प्रदत्ता, यत्र कविमयूरकृतं मयूराष्टकम्, पुरुषोत्तमविरचिता विष्णुभक्तिकल्पलता, उत्प्रेक्षावल्लभ-शिवदास प्रणीतम् चत्वारिंशत् पद्धत्यात्मकम् भिक्षाटनकाव्यञ्चात्र उल्लेखनीयतां भजन्ते।

प्रहेलिकारुपायां पद्धत्यामपि नीत्युपदेशात्मककृतीनां संख्या अनल्पा विद्यते। यद्यपि संस्कृत-काव्यशास्त्रे प्रहेलिकारूपं काव्यं रसानुभूतौ बाधकं सत् अधमायते, प्रहेलिकारूपोऽलंकारश्चापि रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारकोटौ परिगण्यते,[1] तथापि विवेचन-विचक्षणैः समालाचकैः नीत्युपदेशात्मक-काव्यकोटौ प्रहेलिका सादरं स्वीक्रियते, यतोहि एतया सरण्या प्रतिपादितो नीत्युपदेशः कमपि चमत्कारमादधाति। अतएव चतुष्षष्टि-रूपासु कलासु प्रहेलिकापि अन्यतमत्वेन परिगृह्यते।

धर्मदासः स्वकीये "विदग्ध मुखमण्डने" निम्नलिखितप्रकारेण प्रहेलिकां परिभाषते-

**"व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात्।**
**यत्र बाह्यान्तरावर्थौ कथ्येते सा प्रहेलिका।।"**

अत्र प्रतिपाद्यमानमर्थं विधाय कोऽप्यन्योऽर्थः प्रतिपाद्यते। आर्थीशाब्दीति भेदेन एषा द्विविधा। दण्डिनां काव्यादर्शे एतस्या अनेके भेद-प्रभेदाः प्रदर्शिताः।

वस्तुतो वैदिक वाङ्मयेऽपि ब्रह्मविषये अध्यात्मविषये च रहस्यात्मकं कूटात्मकञ्च वर्णनं, बलोद्याः कथाश्च प्राचुर्येण उपलभ्यन्ते। ऋग्वेदे, यजुर्वेदे, अथर्ववेदे, ऐतरेय-

---

१. रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका।

कौषितकि-तैत्तिरीय-शतपथ- ब्राह्मणेषु, बृहदारण्यकोपनिषदि, आपस्तम्बाश्वलायन-कात्यायन-लाट्यायन-सांख्यायन-वैतानसूत्रेषु च रहस्यात्मकः कूटात्मकश्च उपदेशः उपलभ्यते। रामायण-महाभारतादौ, बौद्ध-जैन-साहित्ये च उपदेशात्मकानि वचनानि प्राप्यन्ते। सुभाषितसंग्रहेषु अनेके कूटात्मका उपदेशाः संगृहीताः सन्ति।

प्रहेलिकानामनेकानि संकलनानि मिलन्ति येषु धर्मदासस्य विदग्धमुखमण्डनम् अतीव प्रसिद्धम्। एतस्य अनेकानि पद्यानि शार्ङ्गधरपद्धतौ जल्हणस्य सूक्तिमुक्तावल्याञ्च संगृहीतानि सन्ति।

आलापान्तरालापरूपेण विरचिता प्रहेलिका विदग्धमुखमण्डनकारस्य धर्मदासस्य कवि-कर्म-कौशलं निर्दिशति। चतुर्षु अध्यायेषु विभक्तं विंशत्यधिक-शतद्वय-श्लोकात्मकं विदग्धमुखमण्डनम् वस्तुतः अन्वर्थनामकं विद्यते।

प्रहेलिकात्मकरचनासु नागराजस्य भावशतकम् अज्ञातकर्तृकम् समस्यादीपकम्, अज्ञात कर्तृकमेव सीताविनोद काव्यम्, कविकाशीनाथ विरचितः "दृष्टकूटाणवः", हिमकर शर्मणा लिखितम् "संसार-विहारकाव्यम्", "प्रहेलिकापह्नुति कूटाख्यानञ्च," लक्ष्मीनारायणेन प्रणीता समस्या पूर्तिः एवं विधानि अन्यानि च उपदेशात्मकप्रहेलिकारूपाणि काव्यानि कवि-कर्म-कौशल-निदर्शनानि विद्यन्तेतराम्।

सूचीकटाहन्यायेन अन्योक्ति- प्रहेलिकारूपस्य नीत्युपदेशात्मक काव्यस्य उपर्युक्तमेतद् विवरणम्। नीत्युपदेशात्मकानि काव्यानि यानि मुख्यधारायां विलसन्ति तेषां विवरणमितः परं प्रस्तूयते।

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।"

इति महाभारतीय वचनेन विज्ञायते यत् धर्मार्थकाममोक्षविषयानधिकृत्य यत् किमपि निरूपणीयं तत् सर्वं महाभारते निरूपितं वर्तते। अतः च मानव- जीवनोपयोगि नीत्युपदेशात्मकं वचनमपि तत्र प्राचुर्येण समुल्लिखितं वर्तते। नीतिवचनानां खनि-स्वरूपादस्मादेव महाभारतात् समुद्भूता अतिप्रसिद्धा विदुरनीतिः, या प्रज्ञावादान् प्रभाषते, लोकप्रियतां जीवनोपयोगिताञ्च समादधाति।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन। सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः।। इत्यस्मिन्नुपदेशात्मके वचने निहिता नीतिरपि सम्यक् प्रकाशते। एवमेव रामायण-पुराणादौ, स्मृति-ग्रन्थेषु, बौद्ध-जैन-साहित्ये च नीत्युपदेशात्मकानि वचनानि प्रतिपादितानि सन्ति, यानि पूर्वमेव चर्चितानि।

परस्तात् चन्द्रगुप्तमौर्य-राज्य-संस्थापकस्य कौटिल्यापरनामधेयस्य चाणक्यस्य सारगर्भितानि कालजयीनि सूत्ररूपाणि पद्यरूपाणि च नीत्युपदेशवचनानि समाजस्य सम्मुखमागतानि। यद्यपि

चाणक्यनीति-दर्पणे महाभारत-पुराण-मन्वादिस्मृति-ग्रन्थानामपि कतिपयानि वचनानि दृश्यन्ते, तथापि बाहुल्येन चाणक्येन प्रणीतत्वात् प्रधानव्यपदेशन्यायेन चाणक्यनीतेरेव तानि वचनानि व्यपदिश्यन्ते। यानि नीत्युपदेशवाक्यानि तेन सूत्ररूपेण प्रतिपादितानि तानि चाणक्य-सूत्राणि निगद्यन्ते।

महतः कालस्यान्तराले विशालेऽस्मिन् देशे चाणक्य-नीतिवचनानि कानिचित् प्रकाशितानि, कानिचित् पाण्डुलिपिषु सुरक्षितानि। यानि च जन-कण्ठेषु रक्षितानि तानि समये समये लिपिबद्धानि भवन्त्यपि विभिन्नरूपतां गतानि।

वर्तमानशताब्द्याः प्रारम्भे क्रेस्लरमहाशयः चाणक्यनीति-वचनेषु गवेषणं विधाय शोध-निबन्धं च प्रस्तूय विपश्चितां ध्यानमाकर्षत्। अयं हि सप्तदश हस्तलेखान् समधीत्य तदाधारेण प्रामाणिकं संस्करणमपि प्रस्तोतुं प्रयासमकरोत्।

शताब्द्याश्चतुर्थचरणे लुडविक स्टर्नबारव-महोदयः शतत्रय-मितां मातृकां संगृह्य सम्यक् परीक्ष्य च क्रेस्लर महाशय-संस्करण-साहाय्येन षट्सु भागेषु विभज्य चाणक्यनीति-संग्रहस्य प्रामाणिक-संस्करणम् होशियारपुरस्थ-विश्वेश्वरानन्दवैदिक शोधसंस्थान द्वारा प्रकाशितमकार्षीत्। प्रो. स्टर्नबारव महोदयस्य श्लाघनीयोऽयं प्रयासः चिरस्मरणीयतां समधिगच्छति। एतस्य षट्सु पाठेषु प्रथमे पाठे चाणक्यनीतिदर्पणः प्रकाशते। सप्तदशसु अध्यायेषु विभक्तेऽस्मिन् ३४२ श्लोकाः संकलिताः सन्ति।

द्वितीयपाठे, प्रथम पाठस्य संक्षिप्तरूपे, अष्टौ अध्यायाः (१०६ तः १७३) चतुष्षष्टिमितानि पद्यानि च सन्ति।

अस्य तृतीयः पाठः चाणक्यनीतिशास्त्रम् चाणक्यशतकम् इति नामान्तरेण परिचितं वर्तते। एतस्य प्रारम्भिकं पद्यद्वयम् सूचयति यदिदं नानाशास्त्रोद्भवं राजनीति-समुच्चय- रूपं समग्रशास्त्रबीजरूपञ्च वर्तते। एतज्ज्ञानेन मूर्खोपि पण्डितो भवति।

तथाहि-

**नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति-समुच्चयम्।**
**सर्वबीजमिदं शास्त्रं चाणक्यं सार-संग्रहम्।।**
**मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम्।**
**यस्य विज्ञानमात्रेण मूर्खो भवति पण्डितः।।**

अनुष्टुप् छन्दसि निबद्धः अष्टोत्तरशतमिताः श्लोकाः अत्र विद्यन्ते। अयमेव पाठः प्रायः चाणक्यनीतिमूलपाठः।

चतुर्थपाठः चाणक्यसार-संग्रह-नाम्ना प्रसिद्धः। अत्र अनुष्टुभि निबद्धाः शतत्रय-श्लोकाः विलसन्ति। अस्मिन् लोकनीत्या सह राजनीतेरपि विस्तरेण उपदेशाः वर्तन्ते। अत्र शुभाशुभ-

कर्मणोः, कर्तव्याकर्तव्ययोः, धर्माधर्मयोः, विनयाविनययो र्निरूपकाः सदुपदेशा-विलसन्ति। असारेऽस्मिन् संसारे सारचतुष्टय-निर्देशकम् अदसीयं निम्नोक्तं हितवचनं नितरां समीचीनम्-

**"असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।**
**काश्यां वासः सतां सङ्गःगङ्गाम्भः शम्भु-पूजनम्।।"**

पञ्चमपाठस्तु लघुचाणक्य-नाम्ना ख्यातिं भजते। अयं पाठः न केवलं भारते, अपितु युरोपादि-देशेष्वपि-प्रसिद्धिं गतोऽस्ति। गेलेनोस नामा युनान देशीयः संस्कृत-विज्ञः स्वभाषायामेतस्यानुवादं विधाय गत शताब्दी-प्रारम्भे एव तत् प्रकाशनं व्यधात्। लघुचाणक्यास्यास्य संग्रहः परमोपयोगितामादधाति।

चाणक्यराजनीतिशास्त्रनामकः एतस्य षष्ठः पाठः सर्वाधिकविशाल-संग्रहोऽस्ति। अष्टसु अध्यायेषु विभक्तेऽस्मिन् संग्रहे ५३४ श्लोकाः सन्ति। एतेषु ३६७ पद्यानि अस्मिन्नेव संग्रहे उपलब्धानि सन्ति नान्यत्र। एतस्य चतुर्थपञ्चमाध्याययोर्वर्णिता विषया मुख्यतो राजनीत्या सम्बद्धाः सन्ति, अतः एतस्य राजनीतिशास्त्रमिति नामकरणं सर्वथा समीचीनम्। चतुर्थाध्याये राज्ञस्तद्व्यवहारस्य च उपदेशोऽस्ति । पञ्चमाध्याये राज्ञः सेवकस्य, मन्त्रिणः, पुरोहितस्य, सेनापतेश्च कर्तव्यानां समुपदेशा विद्यन्ते। खिष्टीय नवमे एव शतके एतस्यानुवादः तिब्बतदेशीयतञ्जूरभाषायामभूत्। सुभाषितसंग्रहेषु एतस्मादेव पाठात् बाहुल्येन पद्यानि संकलितानि सन्ति, अतश्च एतत् पाठस्य महत्त्वमतिशेते। लुडविक स्टर्नबारव महोदयानुसारेण चाणक्यनीते मूलग्रन्थे साकल्येन ११९६ श्लोकाः सन्ति। किन्तु सुभाषितसंग्रहेषु चाणक्य नाम्ना संकलितानां विकीर्ण-पद्यानां संख्या सहस्रद्वयादप्यधिका वरीवर्तीति मनुते पद्मभूषण आचार्य बलदेवोपाध्यायः।

द्वीपान्तरेषु भारतीय-संस्कृतेः प्रचार-प्रसार-समयादेव नीत्युपदेश-वचनानां, सुभाषितानाञ्च तत्र प्रचारोऽभवत्। बृहत्तरभारतदेशेषु इमानि नीति-वचनानि, सुभाषितानि च अतीव लोक-प्रियाणि अभूवन्। जीवनं सुखमयं विधातुं तत्रत्या जना एतानि आत्मसात् अकुर्वन्। तिब्बत-मङ्गोल-मञ्चूरिया-नेपाल-सिंहल-वर्म-श्याम-जाबा-वालीसुमात्रादि देशेषु एतेषां नीत्युपदेश-वचनानां व्यापकप्रचारोऽभूत्। तत्रत्यासु भाषासु एषां विभिन्ना अनुवादा अभूवन्। मयूराक्षस्य नीतिशास्त्रम् चाणक्यराजनीतिशास्त्रस्यैव रूपान्तरम् विद्यते। एवंहि एतेभ्यो देशेभ्यः युरोपादि देशेषु एतेषां भ्रमणमभूत्। एतेन भारतीयानामेतासां कृतीनां लोकप्रियता, उपादेयता, व्यावहारिकता च विदेशेष्वपि परिज्ञायन्ते। पञ्चतन्त्रस्येव चाणक्यनीतिशास्त्रस्य विश्वस्मिन् भ्रमणमेतस्य महत्त्वं संसूचयतितमाम्।

नीत्युपदेशात्मक-रचना-कारेषु चाणक्यात् परं द्वितीयं स्थानं भजते भर्तृहरिः, यस्य नीति-शृङ्गार-वैराग्यात्मकं शतकत्रयम् अतीव जन-प्रियमभूत्। एतस्मिन् शतकत्रये नीत्या

सह सदुपदेशस्य मनोहर-समन्वयः एतस्य महत्त्वं प्रवर्धयति। शतद्वयादप्यधिक-संस्करणानि एतस्य लोकप्रियतां महत्ताञ्च प्रमाणयन्ति। प्रो. डी.डी. कोशाम्बि महोदयेन ३६६ मातृका आधारीकृत्य शतकत्रयस्य सामीक्षिकं संस्करणं महता परिश्रमेण विहितम्। एतच्च विद्वत्सु अतीव समादृतं वर्तते। ऐतिहासिक-प्रामाण्येन परिज्ञायते यन्महावैयाकरण-पद्मनाभमिश्रः अब्राहमरोजरमहोदयम् शतकत्रयस्य नीति-वचनानि शिक्षयाञ्चकार। एतत् शतकत्रयमपि युरोपादिदेशेषु सप्तदशशतके एव प्रसिद्धिमगात्, विद्वद्भिश्च समादृतमभूत्।

भर्तृहरि नाम्ना निर्दिष्टानि विटवृत्त्-विज्ञानशतक-राहतकाव्य-रामायणरूपाणि नीत्युपदेशात्मकानि काव्यानि मिलन्ति, किन्तु एषां भर्तृहरेः कर्तृत्वे विवेचकाः संशेरते।

भर्तृहरेः शतकत्रयस्य आदर्शे पश्चात् अनेकानि नीत्युपदेशात्मकानि काव्यानि कविभि र्विरचितानि, येषु महाकवि शिल्हणस्य शान्तिशतकम्, भर्तृहरे-वैराग्यशतकमनुहरति। एवमेव धनदराजस्य शृङ्गार-नीति-वैराग्यात्मकं शतकत्रयम् भर्तृहरेः शतकत्रयमनुसरति। जनार्दनभट्टस्य शृङ्गारशतकम, वैराग्यशतकञ्च', कविनरहरेः शृङ्गारशतकम्, अप्पयदीक्षितस्य वैराग्यशतकम् एवंविधानि अन्यान्यपि शत-कानि भर्तृहरेः शतकत्रयस्यैव प्रतिरूपाणि सन्ति। पण्डितराज जगन्नाथस्य "भामिनीविलासः" भर्तृहरि-शतकत्रयस्य छायायामेव विश्रान्तिं लभते।

सुभाषितसंग्रहाणां तालिकायामेका शतकावली विद्यते, यस्याम्-अमरुशतक-शान्तिशतक-सूर्यशतक-भर्तृहरि-शतकत्रयादीनां श्लोकाः संकलिताः सन्ति। नीत्युपदेशात्मक-पद्य-प्रसङ्गे अमरुशतकस्यापि पद्यानि संगृहीतानि विद्यन्ते, एतावता शृङ्गारप्रधानमपि अमरुशतकम् नीत्युपदेशात्मक-काव्येषु परिगणितं वर्तते, यच्च समीचीनमेवेति मन्यन्ते विवेकिनः।

जयापीडस्य (७७६-८१३खि.) प्रधानामात्य-कविवरदामोदरगुप्तस्य कुट्टनीमतम् तदानीन्तनीं सामाजिकीं दुरवस्थां प्रदर्शयत् समाजम्, विशेषतः राजपरिवारं, सामन्तं, विलासिनं परिष्कर्तुं, परिमार्जयितुम्, तेषां जीवनं सफलयितुञ्च अतीव सरसवर्णनेन विविधानुपदेशान् निर्दिशति। २०५६ मितासु मनोहरासु आर्यासु निबद्धं काव्यमिदं संस्कृत-जगति अतीव प्रसिद्धिमवाप। एतेन विरचितानामार्याणां सम्बन्धे समालोचक-विचक्षणः समुद्गिरति-

"मसृण-पद-रीति-गतयः सज्जन-हृदयाभिसारिकाः सुरसाः।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा दामोदरस्यार्याः।।"

कुट्टनीमतस्य सरसानि पद्यानि काव्यशास्त्रीयग्रन्थेषु उदाहरणरूपेण, सुभाषितसंग्रहेषु च विशिष्टोपदेशरूपेण च परिगृहीतानि, यानि एतस्य साहित्यिकम् औपदेशिकञ्च महत्त्वं संसूचयन्ति।

औचित्यविचारचर्चाचुञ्चुः व्यङ्ग्यात्मक काव्य-रचनापटुः आचार्य क्षेमेन्द्रः नीत्युपदेशात्मक काव्यप्रणयन-क्षेत्रेऽपि अविस्मरणीयं योगदानं विदधाति। काव्यकलामुपदेष्टुं, कविकण्ठं भूषयितुञ्च क्षेमेन्द्रः 'कविकण्ठाभरणं' विवरचयाञ्चकार। एतच्च स्वप्रयोजनसिद्धौ सर्वथा

सफलमभूत्। समाजे प्रसृत्वरं दुराचारम्, विभिन्न वर्गीयं दोषजातञ्च दूरीकर्तुं कान्तासंमितोपदेशद्वारा समुपदेशात्मकं व्यङ्ग्यनिष्ठोपदेशात्मकञ्च अनेकं काव्यं विरचय्य वस्तुतः स समाजस्य कृते क्षेमेन्द्रोऽजायत। एतस्य रचनासु 'चारुचर्याशतकम्' 'चतुर्वर्गसंग्रहः', आंशिकरूपेण 'कविकण्ठाभरणञ्च' उपदेशत्मकान्येव वर्तन्ते। 'कलाविलासः', 'दर्पदलनम्', 'देशोपदेशः', 'नर्ममाला', 'सेव्यसेवकोपदेशः', 'समयमातृका' च व्यङ्ग्यात्मना उपदेशं कुर्वन्ति। एतासु कृतिषु दर्पणायमानासु तत्कालीना सामाजिक-परिस्थितिः स्पष्टमवलोक्यते। तत्र कवेः हास्य-प्रयोगः व्यङ्ग्य-बाण-प्रहारश्च अतीव कौशलेन विहितः परिलक्ष्यते।

''कूटलेख-प्रयोगे कुशलः कायस्थः सर्वकार्य-सिद्धिप्रदां भगवतीं मसीम् कमलाश्रय-प्रबलं कलमञ्च प्रणमति'' इत्यत्र हृदयस्पर्शी व्यङ्ग्यार्थः कमपि अपूर्वमेव चमत्कारं जनयति। स्वोद्देश्यं सफलयितुं कविर्यत् निगदति तत् सर्वथा समीचीनम्-

**"अपि सृजन-विनोदायो स्मिताहास्य सिद्ध्यौ।**
**कथयति फलभूतं सर्वलोकोपदेशम्।।"**

पञ्चत्रिंशदधिकशत-मित-मुक्तक श्लोकात्मिकायाम् भोजराजस्य 'चारुचर्यायाम्' दैनिकाचार-सदाचाराह्निककृत्यानां सम्यङ्निर्देशः, तदाचरितुं, समुपदेशश्च वर्तेते।

विभिन्नच्छन्दस्सु निबद्धासु षट्सु पद्धतिषु विभक्ता दक्षिणामूर्तेः 'लोकोक्तिमुक्तावली' नीत्युपदेशात्मिका सफला कृतिर्विद्यते।

एवमेव घटकर्परस्य 'नीतिसारः', लक्ष्मणसेनसभासदः वङ्गीयकवेः गोवर्धनाचार्यस्य 'आर्यासप्तशती' च शृङ्गाररसप्रधानापि मार्मिकोपदेशे महत् साफल्यं भजतः।

हलायुधस्य 'धर्मविवेकः', जल्हणस्य 'मुग्धोपदेशः', कल्यलक्ष्मीनृसिंहस्य 'कविकौमुदी', कृष्णकान्तवल्लभस्य 'काव्यभूषणशतकम्', कुसुमदेवस्य 'दृष्टान्तशतकम्', पद्मनाभ-सुभद्रा-तनूजन्मनो मिथिलाभिजनस्य मधुसूदनमिश्रस्य 'अन्यापदेशशतकम्', शंकराचार्यस्य विश्वविश्रुतः 'मोहमुद्गरः', अज्ञातकर्तृकम् 'मूर्खशतकम्', नीलकण्ठदीक्षितस्य 'अन्यापदेशशतकम्', 'कलिविडम्बनम्', 'सभारञ्जनशतकम्', 'शान्तिविलासः', ''वैराग्यशतक''ञ्च नीत्युपदेशात्मक काव्येषु महतीं प्रसिद्धिं स्वाभीष्टसिद्धौ सफलताञ्च आदधति।

काव्यशास्त्रे कविकर्म-कौशले च परम विश्रुतः रससिद्धकविः पण्डितराजजगन्नाथः नीत्युपदेशक्षेत्रेऽपि 'अश्वघाटी' रचनया परां-प्रसिद्धिं प्राप। एतस्य मत्तेभच्छन्दसि निबद्धानि मुक्तकपद्यानि नीति-भक्त्योः संगम-स्थानानि सन्ति।

अज्ञातकर्तृकानि पञ्चरत्न-षड्रत्न-सप्तरत्नाष्टरत्न-नवरत्नानि नामानुरूप-संख्याक पद्यात्मकानि सम्यग्रूपेण नीत्युपदेशौ वर्णयन्ति।

अज्ञातकर्तृकमेव 'पूर्वचातकाष्टकम्' 'उत्तरचातकाष्टकञ्च' उपदेशात्मकं लघुकाव्यं वर्तते। एतस्य आङ्ग्ल-जर्मनादि-भाषासु विहितोऽनुवादः अस्य महत्त्वमभिव्यनक्ति।

राक्षसकवेः 'कविराक्षसायः', कविरामचन्द्रस्य द्व्यर्थकम् 'रसिकरञ्जनम्', शम्भुकवेः द्व्यर्थिका 'अन्योक्तिमुक्तालता', शंकरकविकृता 'शतश्लोकी', कुरुनारायणप्रणीतम् 'सुदर्शनशतकम्' अज्ञातकर्तृकः रम्भाशुकसम्वादात्मकः 'शृङ्गारज्ञाननिर्णयः', अज्ञातकर्तृकम् 'वानराष्टकम्', 'वानर्यष्टकञ्च' वञ्चनाथस्य 'महिषशतकम्' 'वञ्चेश्वरमहिषशतकञ्च', वररुचिरचितम् 'नीतिरत्नम्', गर्व-सेवा-दया-शान्त्यादि-विषय-सम्बद्धा द्वादशसु पद्धतिषु विभक्ता वेदान्तदेशिकविरचिता 'सुभाषितनीवी', एतस्यैव पञ्चपद्यात्मकं द्व्यर्थकम् 'वैराग्यपञ्चकम्', वेतालभट्टस्य षोडशपद्यात्मकं 'नीतिप्रदीपलघुकाव्यम्', विश्वेश्वरस्य 'अन्योक्तिशतकम्', गुमानीपन्तस्य 'गुमानीनीतिः', 'उपदेशशतकञ्च' नीत्युपदेशक्षेत्रे भव्यानि काव्यानि सन्ति।

उपर्युक्ता एता नीत्युपदेशात्मिका विशिष्टा रचना वर्तन्ते, यासां चर्चात्र कृता। एतत् क्षेत्रीया अन्या अपि अनेका रचना विद्यन्ते, याः पाण्डुलिपिष्वेव सुरक्षिता अरक्षिता वा सन्ति। एतासु चक्रकविकृतः 'चित्ररत्नाकरः', माधव-रचितम् 'जडवृत्तम्', अज्ञात कर्तृकम् 'कुचशतकम्', अज्ञातकर्तृक एव 'कुशोपदेशनीतिसारः', 'लक्ष्मी-सरस्वती-विवादः', अज्ञात-कर्तृका 'मदनमुखचपेटिका', कविकङ्कन-प्रणीतम् 'मृगाङ्कशतकम्', अज्ञातकर्तृका 'नीतिदीपिका', कृष्णमोहनस्य 'नीतिशतकम्' अज्ञातकर्तृकम् 'परनारी-रति-निषेध-पञ्चकम्', कामराजदीक्षिततनूजेन व्रजराजदीक्षितेन विरचितम् 'रसिकजन-रञ्जनम्', अज्ञात-कर्तृकम् 'स्तनपञ्चकम्', रामचन्द्रगमिकृता 'सिद्धान्तसुधातटिनी, पेद्दिभट्ट-संगृहीतः 'सूक्तिवारिधिः', वीरेश्वर-विरचिता 'विद्यामंजरी', चोरकवि-प्रणीतम् 'विद्यासुन्दरम्', अज्ञातकर्तृकः 'विबुधोपदेशः', लक्ष्मीधरतनुजन्मना विश्वेश्वरेण विरचितम् "विश्वेश्वरार्याशतकञ्च नीत्युपदेशात्मकवर्णनि सफलानि रचनानि सन्ति।

उपर्युक्ताभ्यो नीत्युपदेशात्मक रचनाभ्यो भिन्नाः काश्चित् उपदेशात्मिकाः निम्नलिखिता कृतयः स्टर्नबारव महाशयेन निदिष्टाः सन्ति। यथाहि-देवराजस्य 'आर्यामञ्जरी', रामचन्द्र-सीताराम विश्वनाथानाम् 'आर्याविज्ञप्ति' नामिकाः तिस्रःकृतयः, साहिब्रामस्य 'नीतिकलालता', 'कविकण्ठाभरणञ्च', शम्भुराजस्य 'नीतिमञ्जरी', सदानन्दस्य 'नीतिमाला', 'नीतिस्सारः' 'नीतिशास्त्र-समुच्चयः', एकेन अज्ञातकर्तृक 'नीतिशतकेन' सह श्रीनिवासाचार्य-सुन्दराचार्य वेङ्कट रामायणम् त्रीणि 'नीतिशतकानि', अप्पावाजपेयिनः 'नीतिसुमावली', हरिदास-सुब्रह्मण्ययोः 'शान्तिविलासो' पद्मानन्द-शंकराचार्य-सोमनाथानाम् 'वैराग्यशतकानि' व्रजराज शुक्लस्य 'नीतिविलासः' पञ्चतन्त्रसंग्रहश्च'।

नीत्युपदेशात्मक-काव्येषु विभिन्न शैली-रचितेषु नीतिपूर्वकसदाचारद्वारा मानवजीवनं सफलीकर्तुं, सामाजिक सुव्यवस्थां विधातुं, धर्मार्थकाममोक्षरूपान् पुरुषार्थानवाप्तुञ्च विपश्चिदपश्चिमै र्मनीषिभिः सर्वजनहिताय जगन्मङ्गलाय-

"सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेदिति मङ्गलकामनया विविधाः सरसा मनोहरा नीत्युपदेशाः संस्कृतवाङ्मये सुगुम्फिता इति शम्।

पञ्चमोऽध्यायः

# संस्कृत-कवयित्री-रचना

## संस्कृतकवयित्रीणां रचना

संस्कृतवाङ्मय-परिशीलन-परायणा विपश्चितो विजानते यत् यथादिकालादेव कवयो विविधाभिः काव्य-रचनाभिः संस्कृत-काव्यं समृद्धमकार्षुः तथैव कवयित्र्योऽपि वैदिक कालादेव विभिन्नैः काव्य-प्रणयनैः संस्कृत-काव्य-समृद्धिं व्यदधुः। तत्र वैदिक कालीनानां तदुत्तर-कालीनानाञ्च कवयित्रीणां रचनानां क्रमशो विवेचनं समपेक्ष्यते।

## (क) वैदिक कालीनाः कवयित्र्यः-

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः[1]। ते यदा तपस्तप्यमाना आसन् तदा स्वयम्भु ब्रह्म-मन्त्रात्मको वेदः तान् प्राप। ते च ऋषयो मन्त्रान् ददृशुः। यश्च यस्य सूक्तस्य द्रष्टाभूत् स एव तस्य सूक्तस्य ऋषिरभवत्। एवमेव या ऋषिका यत् सूक्तं ददर्श सा तस्य सूक्तस्य ऋषिका अभूत्। ऋषीणामपेक्षया ऋषिकाणां संख्यायाः स्वल्पत्वेऽपि महत्त्वे नास्ति अल्पता। इमा एव ऋषिका वैदिक कालीनाः कवयित्र्यः, यासां योगदानं संस्कृत-साहित्यस्य विकासे अतीव महत्त्वमादधाति। एताभि र्ब्रह्मवादिनीभिः ऋषिकाभिर्दृष्टेषु तासां भावोद्‌गारः, सुखमय-दाम्पत्य-जीवनम्, पारिवारिक सुव्यवस्था, जीवनस्य चरमलक्ष्यमवाप्तुम् उपायः एवं विधाश्च अन्ये जीवनोपयोगिनो भावाः अभिव्यक्ताः सन्ति।

वैदिक-काव्य-संवर्धिनीनामासाम् ऋषिकाणां नामानि महर्षिशौनकस्य बृहद्देवतायां समुपलभ्यन्ते। तदनुसारेण नव संख्याका ऋषिकाः स्वदृष्टेषु सूक्तेषु स्वेष्टदेवतां स्तुवन्ति। नव संख्याका ऋषिकाः स्वदृष्टसूक्तेषु ऋषिणा, तत्सूक्तस्य देवता-विशेषेण च साकं वार्तालापं विदधति। नव-संख्याकाश्च ऋषिकाः स्वकीय सूक्तेषु देवतास्वरूपमात्मानं स्तुवन्ति। एवं हि वर्गत्रये विभक्तानां तासां संख्या सप्तविंशति विद्यते।

एताभि र्दृष्टेषु सूक्तेषु दाम्पत्य-जीवनस्य महत्त्वम्, पति-पत्न्योः पारस्परिक प्रणयस्य सर्वातिशायित्वम्, भौतिक सुख-प्राप्तये अभिरूपपते र्निश्छलं प्रेम, दम्पत्योः सदाचरणम्, स्त्रीणां सौभाग्यम्, सौन्दर्य-सम्वर्धनाभिलाषः एवं विधाः जीवनसम्बद्धा विषयाः सभिलाषं, प्रार्थिताः सन्ति।

एकस्मिन् सूक्ते नवोढ़ा विश्ववारा ऋषिका दाम्पत्य-सुखार्थम्, जीवनसुखार्थञ्च अग्निदेवतां-प्रार्थयते। ऋषि-कक्षीवतस्तनूजा ऋषिका घोषा स्वसूक्ते अश्विनीकुमारौ प्रसाद्य नैरुज्यं, तारुण्यम्, अभिरूपपतिञ्च प्राप्नोति।

---

१. निरुक्ते १

अत्रिमहर्षेः पुत्री अपाला चर्मरोगाक्रान्ता सती स्वपतिना परित्यक्ता तपस्तप्यमाना ऋषिका भूत्वा स्वसाक्षात्कृते सूक्ते इन्द्रदेवं संस्तुत्य तं प्रसाद्य तद्वर-प्रभावेण नैरुज्यं, कमनीयां कान्तिं, पति-प्रेम सौख्यञ्च प्राप्नोत्। एतस्मिन् सूक्ते पत्या परित्यक्तायाः स्त्रियाः हृदय-वेदनाया मार्मिकं वर्णनं हृदयं दुनोति।

सुदीर्घकालपर्यन्तं तपोमग्नस्य महर्षेरगस्त्यस्य धर्मपत्नी लोपामुद्रा वार्धक्याक्रमणेन तनुशोभां शीर्यमाणामभिलक्ष्य खिन्ना सती दाम्पत्यसुखावाप्तये रतिदैवते स्वसूक्ते पतिं सम्बोधयति। अत्र विरहातुराया ललनाया हृदयाभिलाषः साकारो जायतेतराम्। बृहस्पतेस्तनूजा रोमशा ऋषिका, या अल्पवयस्कतया स्वपतिना उपेक्षितासीत्, स्वदृष्टमन्त्रप्रभावेण कमनीय तारुण्यमवाप्य दाम्पत्य सौख्यार्थं स्वपतिमामन्त्रयति। अत्र प्रौढाया रोमशाया उद्दाम-यौवनम्, कमनीय कलेवर-कान्तिश्च सम्यग् वर्णिते स्तः।

एकस्मिन् सूक्ते ऋषिका इन्द्राणी स्वपतिं वशीकर्तुं स्वसौन्दर्यं कामकला-कौशलञ्च स्पष्टं वर्णयति। अपरस्मिन् सूक्ते सा स्वपतिं स्वाधीनीकर्तुकामा सपत्नीं प्रति द्वेषभावनया ओषधि-प्रयोगं करोति, समस्त बन्धु-बान्धवेभ्यः पतिं विमुखीकृत्य स्वायत्तीकर्तुं यौवनं काम-कला-वैदग्ध्यञ्च प्रदर्शयति।

महर्षेराङ्गिरसस्तनया शरवती ऋषिका आदर्शपत्नीरूपा सती स्त्रीत्वाभिग्रस्तपतेः पुंस्त्व-प्राप्तये तपस्यन्ती अभीष्टं फलमवाप्नोति। पत्युः पुंस्त्वप्राप्त्यनन्तरं तस्या हार्दिकोल्लास आनन्दातिरेकश्च तत् सूक्ते स्पष्टं परिदृश्येते।

सवितुस्तनूजा सूर्या-ऋषिका यत् सूक्तं साक्षात्करोति तत्र विवाह-संस्कारस्य माङ्गलिक विधि-विधानं वर्णितं विद्यते। रूपयौवनसम्पन्नां वस्त्रालंकारभूषिताम् लावण्यमयीं तनयां सूर्यां सविता वैवाहिक विधिना अश्वनीकुमाराभ्यां सम्प्रददाति। परिणयानन्तरम् पिता समवेत परिजनश्च वधू-वरौ शुभाशीर्वचोभिः सभाजयतः-इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रै र्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वेगृहे।।[1] पतिसदने वधूः साम्राज्ञी भवतु। वधू-वरयोः सर्वदा सौमनस्यं सामञ्जस्यञ्च जायतामिति मङ्गलकामनया सूक्तं समाप्तिं गच्छति। अत्र वैवाहिक सम्बन्धस्य आदर्शरूपं प्रदर्शितं वर्तते।

यमयमी-सम्वादसूक्ते यमीद्वारा साक्षात्कृतेषु मन्त्रेषु यमी भ्रातरं यमं पाणि-ग्रहणाय अनुरुणद्धि। सामाजिकादर्श-विरुद्धं प्रस्तावमिममस्वीकृत्य यमः अन्यं परिणेतारमङ्गीकर्तुमादिशति। भविष्यत् काले ईदृशं धर्म-विरुद्धं पाणिग्रहणं शक्य संभवम् नैदानीमिति संकेतयति-

"आघाताऽ गच्छानुत्तरायुग्वानि<br>यत्र जामयः कृणवन्न जामि।

---

१. ऋ. सं.

उपबर्षृहि वृषभायबाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्।[1] अत्र यम्या अनियन्त्रितकाम वासनाया यमस्य नैतिकादर्शस्य च दर्शनं भवति।

इन्द्रस्य मात्रा अगस्त्यस्य स्वस्रा दृष्टे सूक्ते पुत्रं प्रति वात्सल्यम्, पुत्रस्य शौर्यातिशय-गुणोत्कर्षश्च अवलोक्येते।

उर्वशी-पुरूरवसोः सम्वादसूक्ते उर्वश्या दृष्टेषु मन्त्रेषु वामाया एकं भिन्नरूपमपि वर्णितं दृश्यते। अप्सरा उर्वशी अप्सरसां सख्यं पुरुषैः सह काल्पनिकं मनुते। यथार्थजीवने तत् सख्यस्य वास्तविकता नास्ति। अतो यदि कठोरा उर्वशी पुरूरवसं परित्यज्य स्वर्वेश्यात्वं स्वीकरोति तर्हि पुरूरवसा तदङ्गीकर्तव्यमेव। अत्र कामिनीनां चित्तचाञ्चल्यं प्रदर्शितं विद्यते।

महर्षेः अम्भृणस्य तनया-ऋषिका वाक् यत् सूक्तं साक्षात्करोति तस्मिन् अमुष्या ऐश्वर्यं माहात्म्यञ्च सुप्रकटिते स्तः। राष्ट्रस्य अधिष्ठात्री वागाम्भृणी प्रोच्चैरुद्घोषयति-"अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनाञ्चिकितुषो प्रथमा यज्ञियानाम्। ताम्मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रा-म्भूर्य्याविशयन्तीम्।। मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्। अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत ऋद्धिवन्ते वदामि। अहमेव स्वयमिदंवदामि जुष्टन्देवेभिरुत मानुषेभिः। यङ्कामये तन्तमुग्रङ्कृणोमि तम् ब्रह्माणं तमृषिंतं सुमेधाम्।। अहं रुद्राय धनु-रातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाउ। अहञ्जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश[2]।"

अर्थात् इयमेव आम्भृणी वागूदेवी समस्तजगताम् अधीश्वरी, उपासकान् धनानि प्रापयित्री, स्वात्मतया परंब्रह्म ज्ञातवती अतएव एषा मुख्यास्ति। सैव प्रपञ्चरूपेण अनेक भावेषु स्थिता समस्त-भूतेषु प्रविष्टा वर्तते। विभिन्न स्थानेषु अवतिष्ठमाना देवा यत् किमपि कुत्रापि विदधति तत् सर्वं वागर्थमेव कुर्वन्ति। यः अन्नं भुङ्क्ते, यः पश्यति, यः श्वासोच्छ्वासादिव्यापारं करोति, यश्च शृणोति स सर्वोऽपि शक्तिमत्या वाग्देव्याः सामर्थ्येनैव तथा करोति। तादृशी-मन्तर्यामितया स्थितां वाग्देवीं ये अमन्यमानाः सन्ति ते संसारक्लेशमनुभवन्तो दीनदशां प्राप्नुवन्ति अतो वाग्देवी स्वयमेव श्रद्धया प्राप्तुं ब्रह्मतत्त्वं, यच्च देवैर्मनीषिभि मनुष्यैः सेवितं वर्तते तत् बहुश्रुतं जनं समुपदिशति। वाग्देवी यम् यम् त्रातुमिच्छति तन्तम् पूर्ण शक्तिमन्तं करोति, तमेव ब्रह्माणं विदधाति, तमेव त्रिकालज्ञम् ऋषिम् तथा मेधाशक्तिसम्पन्नं करोति। सैव ब्रह्मद्वेषिणं हिंसकमसुरं हन्तुं धनुः अधिज्यं कृत्वा रुद्राय ददाति, शरणापन्नं त्रातुं शत्रुभि र्युद्धं करोति। अन्तर्यामितया दिवं पृथिवीं च प्रविशति। देवीमाहात्म्यसूचकं सूक्तमिदमति प्रसिद्धं वर्तते।

---

१. ऋ. सं. ७/६/७

२. ऋग्वेदे दशममण्डले दशमाध्याये १२५ संख्याके देवीसूक्ते एवं विधा अष्टौ मन्त्राः सन्ति।

उपर्युक्ताभ्यः विश्ववारा, अपाला, लोपामुद्रा, रोमशा, इन्द्राणी, शश्वती, सूर्या, यमी, अगस्त्यस्वसा, उर्वशी, आम्भृणीवाक् इत्येताभ्य एकादशभ्यः अतिरिक्ता घोषा, गोधा, उपनिषत्, निषत्, ब्रह्मजाया जूहूः, अदितिः, इन्द्रमाता, सरमा, नदी, श्रीः, लाक्षा,सार्पराज्ञी, मेधा, श्रद्धा, दक्षिणा, रात्री, इत्येताः षोडश ऋषिकाः सन्ति याभि र्दृष्टेषु सूक्तेषु तद्युगीनानां ब्रह्मवादिनीनां भास्वरकाव्यात्मकं सारस्वतं वैभवं परिदृश्यते। एतासां दिव्ये अलौकिके महिमान्विते मन्त्रजाते यत् शिवं सुन्दरञ्च भावात्मकं तत्त्वं वर्तते तत् लौकिक संस्कृत-साहित्य-कवयित्रीणां काव्यसम्पदां नितरां प्रेरणाप्रदं निदानभूतं वरीवर्ति।

## (ख) लौकिक संस्कृत-साहित्य-कवयित्र्यः

संस्कृत-साहित्येतिहास-पर्यालोचनेन परिज्ञायते यत् प्राचीनकाले मध्यकाले च श्रीसम्पन्नपरिवारे आभिजात्य-वर्गीय परिवारेच समुत्पन्नानां नारीणां कृते समुचित शास्त्राध्ययन-व्यवस्या आसीत्। नार्यः शास्त्राण्यधीयानाः काव्यकलासहित विविधासु ललित-कलासु निष्णाता भवन्तिस्म। वात्स्यायन-कामसूत्रस्य राजशेखर-कृत-काव्यमीमांसायाश्च साक्ष्येण निश्चितं ज्ञायते यत् पुरुषा इव महिला अपि कवित्वशक्ति-सम्पन्नाः कवि-कर्म-निपुणा भवन्तिस्म। राजकन्यानां, महामात्य-दुहितॄणां गणिकानाञ्च काव्यकौशलं सुप्रसिद्धमेवास्ति। एवंहि महिला-कवयित्रीणामपि सुदीर्घपरम्परा अत्र विद्यते। मञ्जुलकाव्य-रचनया संस्कृत-साहित्यसमृद्धि-कर्त्रीणां कवयित्रीणां यानि नामानि काव्य-शास्त्रीय लक्षण-ग्रन्थेषु विभिन्न-सुभाषित-संग्रहेषु च समपलभ्यन्ते तानि पञ्चाशतोऽप्यधिकानि सन्ति। एतदतिरिक्तानि आधुनिक संस्कृत-कवयित्रीणामपि कतिपयानि नामानि सुप्रसिद्धानि सन्ति। प्राचीनासु अधोलिखितानि नामधेयानि विशेषतः समुल्लेख्यानि विद्यन्तेः-

१. भावदेवी, २. चाण्डालविद्या, ३. चन्द्रकान्ताभिक्षुणी, ४. चिन्नम्मा, ५. गन्ध-दीपिका, ६. गौरी, ७. इन्दुलेखा, ८. जघनचपला, ९. केरली, १०. कुटला, ११. लक्ष्मीः १२. लखिमादेवी, १३. मदालसा, १४. मधुरवाणी, १५. मदिरेक्षणा, १६. मारुला, १७. मोरिका, १८. नागम्मा, १९. पद्मावती २०. फल्गुहस्तिनी, २१. लखिमादेवी, २२. रसवती प्रियम्वदा, २३. सरस्वती, २४. शीला भट्टारिका २५. सीता २६. सुभद्रा, २७. त्रिभुवन सरस्वती, २८. विद्यावती, २९. विज्जा/विज्जका, ३०. विकटनितम्बा, ३१. प्रभुदेवी, ३२. वैजयन्ती, ३३. विजयाङ्का ३४. कामलीला, ३५. कनकवल्ली, ३६. ललिताङ्गी, ३७. मधुराङ्गी, ३८.सुनन्दा, ३९.विमलाङ्गी ४०. देवकुमारिका, ४१. गङ्गादेवी ४२. लक्ष्मीराज्ञी, ४३. मधुरवाणी, ४४. रामभद्राया ४५. तिरुमलाम्बा, ४६. सुन्दरवल्ली, ४७. बालाम्बिका ४८. हनुमाम्बा, ४९. ज्ञानसुन्दरी, ५० राधाप्रिया, ५१. त्रिवेणी ५२. अनसूया ५३. वामाक्षी ५४. श्रीदेवी तथा आधुनिक संस्कृत कवयित्री ५५. सौ. क्षमाराव ५६. श्रीमती रमाबाई, ५७. श्रीमती रमा चौधरी तथा अन्याः मिथिलेश कुमारी मिश्रा, पुष्पा दीक्षितादयः।

एतासां प्राचीन कवयित्रीणां विविधासु रचनासु वर्ण्यमान-विषयेषु विशेषतः देवस्तुतिः यत्र सूर्य-सरस्वती मीनाक्षी-श्रीकृष्ण-श्रीहरि-शिव-महाभैरवाणाम् हृद्यं स्तवनं विद्यते; राजस्तुतिः यस्यां राज्ञः शौर्यदीप्तस्वरूपम्, प्रतापोत्कर्षः, संग्रामः, पराजितशत्रु-दैन्यम्, विजितरिपु-वनिता-विलापः विजयि-नृप धर्म परायणतेत्यादीनि वर्णितानि सन्ति। वर्ण्यमानरसेषु शृंङ्गार-वीर-बीभत्स-जुगुप्सादयः प्राधान्यमादधति। तत्र श्रृङ्गारप्रसङ्गे प्रथम समागम प्रणयकलह-विप्रलम्भ-सपत्नीमानमर्दन-मान-दूती-सम्प्रेषण दूतीकर्तृक नायकानुनय-नायक नायिका सम्वाद नायिकाकृत क्षमायाचना-पुनर्मिलनादीनां मनोहरं चित्रणं राजते। नायिका प्रभेदक्रमे अभिसारिका नववधू-मानिनी-विरहिणी-गाम्य-वामादीनां साक्षात्कारो भवति। नारीसौन्दर्यवर्णने मुख-नयन नासिका-भ्रूलता-कटाक्षाधर-कम्बुग्रीव-वक्षोज भुजलता-नितम्ब-कटिभाग-त्रिवली-चरण-कर चरणनखादीनां मञ्जुलं चमत्कृतरूपमवलोक्यते।

पुरुषपात्रेषु कवि-नृपति-लुब्ध-कृपण-शठादीनाम् शोभनं चित्रणं विद्यते। प्रकृति-वर्णने उषः सूर्योदय-सूर्यास्त-चन्द्रोदय-राकाविभावरी-नक्षत्रराशि वारिधि-वारिवाहादयो-विराजन्ते। ॠतूनाम्, कल्पवृक्षादिपादपानाम्, विविधकुसुमानाञ्च मनोरमं वर्णनं वर्तते।

अन्योक्तिषु भ्रमर-काक-पिक-सहकार-सागर-केतकी-चम्पकादीनि एवं विधानि अन्यान्यपि चमत्कारजनकानि वस्तूनि एताभिः कवयित्रीभिर्विषयीकृतानि। आसां काव्यानि ललितानि, विविधालङ्कारभूषितानि, भावोच्छ्वाससंभृतानि, सहृदय-हृदय-संवेद्यानि, सद्यः प्रीतिकराणि च विद्यन्ते।

अधोलिखित कवयित्रीणां निम्नविन्यस्तानि कानिचित् पद्यानि एतासां काव्य-कौशलं प्रकाशयन्ति।

१. **त्रिभुवन सरस्वती** राजशेखरेण कर्पूरमञ्जरी-सट्टके एतस्या नाम समुल्लिखितम् तथा सदुक्तिकर्णामृते अदसीयं पद्ययुगलं समुद्धृतं वर्तते। एतत् पद्यम् अस्याः कवयित्र्याः-रचना-कौशलमभिव्यनक्ति-

**पातु त्रिलोकीं हरिरम्बुराशौ प्रमथ्यमाने कमलां समीक्ष्य।**
**अज्ञात-हस्तच्युत-भोगिनेत्रः कुर्वन् वृथा बाहुगतागतानि।।**

अत्र समुद्रमन्थनादविर्भूताया महालाक्ष्म्या अपूर्व सौन्दर्य समवलोकयतो हरे भावातिरेका-भिव्यञ्जनं कमपि विशिष्ट चमत्कारं जनयति।

२. **वङ्गप्रदेशवासिनी रसवतीप्रियम्वदा**-अनया विरचितम् श्यामारहस्यम् स्वकीयेन सारल्येन, लालित्येन, माधुर्येण च उत्कृष्टकाव्यकोटौ गण्यते। वैष्णव-भक्ति-भावना-सम्भृत-मधोलिखित पद्यम् एतस्याः कविकर्मकौशलमभिव्यनक्ति-

**कालिन्दीपुलिनेषु केलि-कलनं कंसादिदैत्यद्विषं गोपालीभिरभिष्टुतं व्रजवधूनेत्रोत्पलैरर्चितम्।**
**बर्हालंकृतमस्तकं सुललितैरङ्गैस्त्रिभङ्गं भजे गोविन्दं व्रजसुन्दरं भवहरं वंशीधरं श्यामलम्।।**

चित्रात्मकं प्रस्तुतपद्यम् विविधवैशिष्ट्य विभूषितस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य रूपम् सद्यः सहृदय-हृदये समवतारयति।

३. **केरलवासिनी केरली**-वेणीदत्तस्य सुभाषितसंग्रहात्मिकायां पद्यवेण्यां कवयित्री केरली प्रणीतं पद्यमेकं समुद्धृतमस्ति। सरस्वती स्तुतिपरकमेतत् पद्यमेतस्याः कवित्वं सूचयति-"यस्याः 'स्वरूपमखिलं ज्ञातुं ब्रह्मादयोऽपि नहि शक्ताः। कामगवी सुकवीनां सा जयति सरस्वती देवी।

ब्रह्मादिभिरपि ज्ञातुं या वाग्देवी अशक्या सैव कामधेनुरिव सुकवीनां सर्वान् मनोरथान् प्रपूरयतीति प्रसादगुणसमन्वितः वाग्देवी-विषयको भावोऽत्र समुल्लसति।

४. **मधुरा (मदुरै) वास्तव्या विद्यावती**-मधुरायां सुप्रतिष्ठिताया मीनाक्षीदेव्याः अनुष्टुभि रचितं त्रयोदशश्लोकात्मकं 'मीनाक्षीस्तोत्रम् अस्याः कवयित्र्याः मीनाक्षी-माहात्म्य-संभृतं भक्तिभावं प्रकाशयति।

५. **दाक्षिणात्या चिन्नमा**-सरस्वतीकण्ठाभरणे शार्ङ्गधरपद्धतौ समुद्धृतम् ओजोगुण-समन्वितमधस्तनपद्यम् अस्याः पुराणपरायणतां कविकर्मकुशलताञ्च सूचयति-

**कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्काल-दण्डः**
**स्फुर-च्छेषस्यूत-नृसिंहपाणि-नखर-प्रोतादि-कोला मिषः।**
**विश्वैकार्णवता-नितान्तमुदितौ तौ मत्स्य-कूर्मावुभौ**
**कर्षन् धीवरतां गतोऽस्यतु महामोहं महाभैरवः।।**

महाभैरवः-योहि कल्पान्तकाले शमितत्रिविक्रमविष्णोः कङ्कालरूपं दण्डं धारयति, शेषनागरूपरज्ज्वा नरसिंहपाणी आबध्य प्रखर-नख-च्छेदैः आदिवाराहस्य मांसलकायं विक्षतं विदधाति, जगतः एकार्णवतया परम-प्रमुदितौ मत्स्य-कच्छपौ आकर्षन् धीवरायमाणः (मम) महामोहं दूरीकरोतु।

शार्दूलविक्रीडितवृत्ते गुम्फितम् ओजोगुणसमन्वितम् अर्थगौरवपूर्णं पद्यमिदं महाभैरव-विषयकं रतिभावं प्रकाशयत् कवयित्र्याः रचनाकौशलं निर्दिशति।

६. **भिक्षुणी चन्द्रकान्ता**-भिक्षुणीत्युपनामिकायाः चन्द्रकान्तायाः अष्टश्लोकात्मकम् 'अवलोकितेश्वरस्तोत्रम्' भगवतोऽवलोकितेश्वरस्य मनोहररूपम् विविधाभूषणं परमैश्वर्यं च वर्णयति, यच्च कवयित्र्या अगाधश्रद्धां प्रकाशयति। तथाहि-

**कुटिलामल पिङ्गल धूम्रजटं शशि-बिम्ब-समुज्ज्वलपूर्णमुखम्।**
**कमलायतलोचनचारुकरं हिमखण्डविमण्डलपुण्डपुटम्।।**

७. **इन्दुलेखा**-वल्लभदेवस्य 'सुभाषितावल्याम्' सुरक्षितम् एकमेव शार्दूलविक्रीडित-वृत्ते निबद्धं पद्यम् अस्याः काव्यकौशलनिदर्शनं वर्तते तद्यथा-

एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनं
केचित् पावकयोगितां निजगदुः क्षीणेऽह्नि चण्डार्चिषः।
मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि ! प्रत्यक्षतीव्रतापं
मन्येऽहं पुनरध्वनीनरमणीचेतोऽधिशेते रविः।।

अत्र अस्तंगत-सूर्यस्य निशायामदर्शनस्य प्रसिद्धानि लौकिककारणानि निरस्य उत्प्रेक्षया स्वाभिमत-प्रकाशनं कवयित्र्याः काव्य-कौशलस्य किमपि अपूर्वं विच्छित्तिजनकं वैशिष्ट्यं सूचयति।

८. **चण्डालविद्या**-'सदुक्तिकर्णामृते' समुद्धृतम् एतस्या एकं शार्दूलविक्रीडिते निगुम्फितं पद्यं समुपलभ्यते। कथ्यते, यदियं विक्रमादित्य-सभायां लब्ध-प्रतिष्ठा कवयित्री आसीत्। अधस्तनपद्यमस्याः कविकर्म प्रावीण्यं प्रकाशयति-

क्षीरोदाम्भसि मज्जतीव दिवस-व्यापारखिन्नं जगत्
तत्क्षोभाज्जल बुद्बुदा इवभवन्त्यालोहितास्तारकाः।
चन्द्रः क्षीरमिवक्षरत्यविरतं धारासहस्रोत्करै-
रुद्ग्रीवैस्तृषितैरिवाद्य कुमुदै र्ज्योत्स्नापयः पीयते।।

अत्र दिवस-व्यापारेण श्रान्तस्य समस्य संसारस्य क्षीरोदार्णवे निमज्जनम्, तत् क्षोभात् जलबुद्बुदायमानानां तारकाणां सान्ध्य-रागेण आलोहितीभवनम्, चन्द्रस्य स्वसहस्ररश्मि-धाराभिः दुग्धवर्षणम्, पिपासातुरस्य उद्ग्रीवकुमुदराशेः ज्योत्स्ना-पयः पानञ्च यथा समुत्प्रेक्षितं तत् कवयित्र्याः कल्पनाकलाकलितं प्रकृतिनिरीक्षण-कौशलं सुव्यनक्ति।

९. **फल्गुहस्तिनी**-शार्ङ्गधरपद्धति-सुभाषितरत्न भाण्डागारयोः संगृहीतमेतन्निम्नलिखितं हरिणीवृत्ते विरचितम् पद्यमस्याः कल्पना-कौशलं निर्दिशति-

त्रिभुवनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितम्
ग्रहकिसलयं सन्ध्यानारी-नितम्बक्षतम्।
तिमिर-भिदुरं व्योम्नः शृङ्गं मनोभव-कार्मुकं
प्रतिपदि नवस्येन्दो र्बिम्बं सुखोदयमस्तुनः।

अत्र शुक्लपक्षीय नवोदित प्रतिपच्चद्रबिम्बं पुष्प-स्मित-किसलय-नरवक्षत-शृङ्ग-कार्मुक-रूपेण निरूपितम्, येन अर्थसम्पदां समुद्भावनया प्रतिपाद्यस्य चित्रीकरणे काचिदपूर्वा शोभा विराजते।

१०. **मदिरेक्षणा**-सुभाषितसारसमुच्चये समुद्धृतम् अमुष्या मालभारणीच्छन्दसि निबद्धमध-स्तन पद्यम् अर्थवैमल्येन सह शब्दसौष्ठवस्य निदर्शनमस्ति-

अनुभूतचरेषु दीर्घिकाणामुपकण्ठेषु गतागतैकतानाः।
मधुपाः कथयन्ति पद्मिनीनां सलिलैरन्तरितानि कोरकाणि।।

११. **मोरिका**-सूक्तिमुक्तवली-शार्ङ्गधरपद्धति-सुभाषितावली प्रभृतिषु संकलितानि एतदीयानि पद्यानि अस्याः प्रसृत्वरीं ख्यातिं प्रमाणयन्ति। धनदेवेन कवीनां प्रथमकोटौ प्रतिष्ठापिता एषा कवयित्री, यस्या रचनासु सरलपद-विन्यासः, शृङ्गारस्य विविधा अवस्थाः वैदग्ध्येन उपन्यस्ताः सन्ति। प्रवासोद्यत नायकस्य मर्मस्पर्शि चित्रम् अधस्तन पद्ये कस्य सहृदयस्य हृदयं नाकर्षति-

यामीत्यध्यवसाय एव हृदये बध्नातु नामास्पदं
वक्तुं प्राणसमा-समक्षमघृणेनेत्थं कथं पार्यते।
उक्तं नाम तथापि, निर्भरगलद् बाष्पं प्रियाया मुखं
दृष्ट्वापि प्रवसन्त्यहो धनलवप्राप्तिस्पृहा मादृशाम्।।

१२. **मारुला**-अस्याः कवयित्र्या एकं पद्यं सूक्तिमुक्तावल्याम् अपरञ्च शार्ङ्गधरपद्धतौ संगृहीतं वर्तते। एतत् पद्यद्वयम् अदसीयां काव्यप्रतिभां प्रख्यापयति। अत्र नारी-हृदयस्य कोमला वृत्तिः स्वाभाविकरूपेण मनोहरशैल्या वर्णिता विद्यते, या च अधस्तन पद्ययोर्माधुर्यमभिव्यनक्ति। गुरुजनसमक्षं स्वप्रियतमविरहजन्यमनोव्यथां निगूहयन्त्या नायिकाया वर्णनपरे पद्येऽस्मिन् अवलोक्यतां चमत्कारचारुता-

गोपायन्ती विरहजनितं दुःखमग्रे गुरूणां
किंत्वं मुग्धे! नयनविसृतं बाष्पपूरं रुणत्सि।
नक्तं नक्तं नयनसलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते
शय्योपान्तः कथयति दशामातपे शोष्यमाणः।।

एवमेव प्रवासादागतस्य नायकस्य तद्विरहजन्यदैन्यमसहमानाया नायिकायाश्च प्रश्नाख्यानयोवर्णितमनोभावः कस्य न हृदयं द्रवीकरोति-

कृशा केनासित्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे
मला धूम्रा कस्माद् गुरुजनगृहे पाचकतया।
स्मरस्यस्मान् कच्चिन् नहि नहि नहीत्येवमवदत्
स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता।।

१३. **भावकदेवी**-कवीन्द्रवचनसमुच्चये सदुक्तिकर्णामृते च एतदीयानि पद्यानि संकलितानि सन्ति। अस्याः पद्येषु मनोवैज्ञानिक भावः, मानिन्या नायकं प्रति क्षमाशीलस्वभावश्च सरलेन मधुरेण पदजातेन वैदर्भरीतौ अभिव्यक्तौ स्तः। अधस्तनपद्ये कवयित्र्या वर्णन-कौशलं समवलोक्यताम्-

**तथाभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं ततोऽनु त्वं प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम्।।**

विवाहोत्तरकालिक जीवने दम्पत्योः पूर्वानुभूतप्रणयस्य क्रमशः हासोन्मुखताया मार्मिकं वर्णनमत्र वरीवर्ति। प्रारम्भे उभयोस्तनुलता अभिन्नासीत्। कतिपय दिनानन्तरं पतिः प्रियतमः पत्नी च प्रियतमा इत्येवं रूपेण द्वैधमभूत्। ततो गच्छत्सु दिवसेषु पतिः भर्ता पालयिता जाया च भार्या भरणीया अभूताम्। एवंहि जाया साम्प्रतं वज्रायमाण-प्राणानां विषमं-फलमनुभवति। शिखरिणीवृत्तेनिबद्धं पद्यमिदं दैन्यविषादयोः मूर्तस्वरूपं सहृदय-हृदये कामपि अपूर्वामनुभूतिं जनयति।

१४. **गौरी**-'सूक्तिसुन्दरे' 'पद्यवेण्याञ्च' संगृहीतानि मुख्याः कवयित्र्याः सुललित पद्यानि एतदीयां कवि-कर्म-कुशलतामभिव्यञ्जन्ति।

नारी-सौन्दर्य-वर्णने, वसन्तग्रीष्मदीनाम् ऋतूनां जनमानसेषु जायमान प्रभावस्य प्रदर्शने, जय-पराजयशीलयोर्नृपयो र्यथावच्चित्रणे, विविधालंकार-संयोजने च कवयित्र्या गौरीदेव्याश्चारु चमत्कारः सम्यक् परिलक्ष्यते। अधस्तन पद्ये सद्यः स्नाताया अपूर्व सौन्दर्य -वर्णनं विदधानापि सा सद्यः स्नातां तां कमनीयां कामिनीं वरुणेन वन्दनीयां जलाधिदेवीमिव पूज्यां मनुते इति तस्या नारीं प्रति पूज्यत्वभावं प्रकटयति। तथाहि-

**विनिस्सरन्ती रतिजित्वराङ्गी नीरात् सरागाम्बुजलोचनश्रीः।
आलोकिलोकैः स्वरुचा स्फुरन्ती जलाधिदेवी व जलेश वन्द्या।।**

१५. **पद्मावती**-कवयित्री पदमावती, यस्याः कतिपयानि पद्यानि 'पद्यामृततरङ्गिणी' 'पद्यवेणी' प्रभृतिषु सुभाषितसंग्रहेषु सुरक्षितानि सन्ति, प्रायः गुर्जरदेश-वासिनी आसीत् यतोहि अस्याः पद्यद्वय गुर्जरललनायाः स्वाभाविकं चित्रणं दृश्यते।

अमुष्याः पद्यानि खग-मृग-मनुजानाम्, ग्रहनक्षत्राणाम्, प्राकृतिक वस्तूनाम्, ऋतूनाम्, शृङ्गार-वीर-रौद्र-बीभत्सादिरसानाम्, विशिष्ट शब्दार्थालंकाराणाम् मनोरमं वर्णनं विदधति येन एतस्या विषय-भावानुगतमनुभवं परिपश्यन्ति सचेतसः सहृदयाः।

गुर्जरललनावर्णनात्मकमधस्तनपद्यमेतदीयां काव्यकलां निर्दिशति-

**किं चारु चन्दनलताकलिता भुजङ्ग्यः?
किं फुल्लपद्ममधुसंवलितानु भृङ्ग्यः?
किं वाननेन्दुजित राहुरुचो विषाल्यः?
किं भान्ति गुर्जर-वर-प्रमदा-कचाल्यः?**

एवमेव पद्यरत्नमदस्तस्या रचनानैपुण्यं प्रकाशयति-

**किं शृङ्गार-समुद्र कल्पलतिके किं वा मृणालीलते ?
किं वक्षोजमहीध्रचन्दनलते किं मारपाशीलते ?**

**किं लावण्यसुधाब्धिविद्रुमलते पत्राङ्गुली संयुते ?**
**भ्रातः! किं वरगुर्जरीसुललिते बाहूलते मन्मते।।**

अलंकार-विशेषस्य निदर्शनमस्या अधस्तनपद्यमवलोक्यताम्-

**नायं गर्जः किमुत मदन-प्रौढ निस्साण शब्दो**
**नैते मेघाः किमुत मदनस्योद्धुराः सिन्धुरास्ते।**
**नैषा विद्युत् किमुत जयिनी तत्करे कापि शक्तिः**
**नैन्द्रश्चापः किमुत जगतां मोहनास्त्रं स्मरस्य।।**

मिथिलामहीमध्यवर्ति-मधुबनी मण्डलानतर्गत-सौराठग्रामवास्तव्यः वर्तमानशतक प्रथमचरणे विद्यमानः स्ववैदुष्यवैशिष्ट्येन विख्यातः महामहोपाध्यायराजनाथ (प्रसिद्धराजे) मिश्रः मुक्तककाव्यरचनायां परम विश्रुत आसीत्। एतस्य अधस्तनपद्ये पद्मावत्या उपर्युक्त पद्येन सह भावसाम्यं परमाश्चर्यं जनयति-

**नेयं शम्या, नहि घनघटा, नापि नीपस्य पुष्पं**
**नायं शब्दों जलधरभवे। राजनाथो व्यनक्ति। मध्या-लज्जां, पथिकदृढतां, प्रौढकान्ताभिमानं**
**दृष्टा क्रुद्धे मनसिजनृपे योजिताभूच्छतघ्नी।।**

कवयित्र्याः पद्मावत्या एवं विधान्यन्यान्यपि पद्यानि विलसन्ति।

१६. **सरस्वती**-कवयित्री सरस्वती-विरचितानि पद्यानि सरस्वतीकण्ठाभरणे, शार्ङ्गधरपद्धतौ, सदुक्तिकर्णामृते च संकलितानि सन्ति। वसन्ततिलकावृत्तनिबद्धमेतदीयम् अन्योक्तिपरकमधस्तनपद्यमस्या रचना-चमत्कारं प्रकाशयति-

**पत्राणि कंटकसहस्रदुरासदानि वार्तापि नास्ति मधुनो रजसान्धकारः।**
**आमोदमात्ररसिकेन मधुव्रतेन आलोकितानि तव केतकि! दूषणानि।।**

केतकी-दलानि कण्टकाकीर्णानि सन्ति दुरासदानि भवन्ति। तत्र मधुनस्तु सर्वथा अभावः परागस्य प्राचुर्यादन्धकारः। एवंहि दलानां कण्टकाकीर्णत्वम्, मधुनः अभावत्वम्, परागप्राचुर्यादन्धकारत्वमिति केतक्या दूषणानि अनालोक्य मधुपः तदामोदमाघ्रातुं तत्र गच्छ-तीति अप्रस्तुतेन महापुरुषः दोषानविगणय्य गुणमेव गृह्णातीति प्रस्तुतमत्र व्यज्यते।

१७ **सीता**-कचयित्र्याः सीताया एकं पद्यं वामनस्य काव्यालंकारसूत्रवृत्तौ, राजशेखरस्य काव्यमीमांसायाञ्च सौभाग्येन सुरक्षितं वर्तते। एकश्चन्द्र इव एकोऽयं श्लोकः तस्या यशश्चन्द्रिकां प्रकाशयति। श्रृङ्गार-वासनावासिते अधस्तनपद्ये दर्शनीयेयं चमत्कार-चन्द्रिका-

**मा भैः शशाङ्क ! मम सीधुनि नास्ति राहुः**
**खे रोहिणी वसति कातर ! किं बिभेषि ?**

प्रायो विदग्धवनिता नव सङ्गमेषु
पुंसां मनः प्रचलतीति किमत्र चित्रम्।।

१८ **लखिमादेवी**-ओइनवार-वंशोद्भवस्य मिथिलाधिपतेर्महाराजाधिराजशिवसिंहस्य (१३५०-१४०६ खि.) पट्टमहिषी महारानी लखिमादेवी परम विदुषी विश्रुता कवयित्री चासीत्। अमुष्या अनेकानि मुक्तकानि विविधग्रन्थेषु समुद्धृतानि जनकण्ठेषु च सुरक्षितानि सन्ति, यानि एतस्याः कवि-कर्म-कौशलं प्रकाशयन्ति। तथाहि-

**भङ्क्त्वा भोक्तुं न भुङ्क्ते कुटिल-बिसलता कोटिमिन्दोर्वितर्कात्**
**ताराकारास्तृषार्त्तः पिबति न पयसां विप्रुषः पत्र संस्थाः।**
**छायामम्भोरुहाणा-मलिकुलशबलां वीक्ष्य सन्ध्यामसन्ध्याम्**
**कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः।।**

कान्ता-विश्लेषभीरुः चक्रवाकः कुटिलश्वेताभंमृणालाग्रभागं भोक्तुं भङ्गत्वापि चन्द्रकला-भ्रमात् न भुङ्क्ते, नलिनीदले विद्यमानान् जलबिन्दून् ताराकारतया तृषार्न्तोऽपि न पिबति, भ्रमर-शबलितां कमल-दलच्छायामवलोक्य असन्ध्यायामपि सन्ध्या-भ्रमात् दिनमपि रजनीं मनुते। अत्र चक्रवाक्या वियोगभयात् विहलस्य चक्रवाकस्य मनोदशावर्णनं कामपि अपूर्वां विच्छित्तिं व्यनक्ति।

अधस्तनपद्यम् प्रोषितपतिकाया एकस्या नवोढाया मनोदशां स्मर-वेदनाञ्च प्रकाशयत् कवयित्र्या ज्यौतिषशास्त्रपरिज्ञानं निर्दिशति-

**सन्तप्ता दशमध्वजातिगतिभिस्संमूर्च्छिता निर्जले**
**तूर्य द्वादशवद् द्वितीय मतिमन्! एकदिशाभ स्तनी।**
**सा षष्ठी कटिपञ्चमी नवभ्रुवा सा सप्तमी वर्जिता**
**प्राप्ता चाष्टम वेदनां प्रथम हे तूर्णं तृतीये भव।।**

नवोढायाः परिस्थितिं तत्सखी अनभिज्ञं तत्पतिमवगमयन्ती निगदति-सिंहकटिका कुम्भस्तनी धनुर्भ्रूः अतुला सा कन्या साम्प्रतम् मकरध्वजस्य तापेन वृश्चिकदंशवेदनामनुभवन्ती निर्जले बालुकामये तटे मीन- कर्कटवत् मूर्च्छिता सती कथं कथमपि प्राणान् धारयति। अतो हे वृषमते मेष ! त्वं न चिरेण मिथुनराशिगतो भव।

अत्र द्वादशानामपि राशीनां सङ्केतद्वारा नवोढाया अङ्गसौन्दर्यम्, मनोभावम्, पत्युरनभिज्ञत्वञ्च चारुतयाभित्यक्तानि सन्ति।

१९. **शीला भट्टारिका**-कवयित्री शीला भट्टारिका संस्कृतजगति बहुचर्चिता वर्तते। अस्याः पद्यानि 'कवीन्द्रवचनसमुच्चये', 'शार्ङ्गधरपद्धतौ' 'अलंकारसर्वस्वे' च समुद्धृतानि काव्यशास्त्रग्रन्थेषु उदाहृतानि च सन्ति।

पाञ्चालीरीत्या वर्णने शब्दार्थयोः समानरूपेणागुम्फने बाणभट्ट इव इयमपि प्रसिद्धा बभूवेति प्रमाणयति राजशेखरः-

**"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।**

**शीलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।"**

धनददेवमते अस्यां वैदग्ध्य-वैदुष्ययोरपूर्वं समन्वयनम्, अस्याः पद्येषु प्रसादगुण-सम्भृतं सूक्ष्ममनोवृत्तिवर्णनं च विलोक्यते सहृदयैः।

अधस्तनपद्ये विरहविधुराया वामाया मनोव्यथायाश्चित्रणमतीवमार्मिकमस्ति-

**विरह-विषमो वामः कामः करोति तनुं तनुं**

**दिवसगणनादक्षश्चायं व्यपेत घृणो यमः।**

**त्वमपि वशगो मानव्याधे र्विचिन्तय नाथ हे!**

**किसलय मृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदाजनः।।**

**दूति ! त्वं तरुणी, युवा स चपलः, श्यामस्तमोभिर्दिशः,**

**श्वासः किं त्वरितागता, पुलकिता कस्मात् प्रसादः कृतः,**

"यः कौमारहरः स एवहि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः"[1] इत्यादीनि अमुष्याः पद्यानि बहुचर्चितानि सन्तीति विस्तरभयान्नेह तानि वितन्यन्ते।

२० **विज्जका**-सुप्रसिद्धेयं कवयित्री खिष्टीयाष्टमशतके विद्यमानस्य सत्याश्रय पुलकेशि-द्वितीयस्य ज्येष्ठ तनय-चन्द्रादित्यस्य पट्टमहिषी आसीत्। एतस्याः पद्यानि न केवलम्-सदुक्तिकर्णामृत-शार्ङ्गधरपद्धति-सूक्तिमुक्तावली-सुभाषितहारावली सुभाषितरत्नभाण्डागारेषु संगृहीतानि सन्ति, अपितु काव्यशास्त्रीय ग्रन्थेष्वपि समुद्धृतानि सन्ति। अस्या गर्वोक्तिस्तु संस्कृतजगति अति प्रसिद्धेति विजानते विपश्चितः।

आचार्यदण्डी स्वकीये काव्यादर्शे मङ्गलमाचरन्-**"चतुर्मुखमुखाम्भोज-वनहंस-वधूर्मम। मानसे रमतां नित्यं सर्वशुल्का सरस्वती।।"** इत्येवं रूपेण सर्वशुक्लां सरस्वतीं स्तौति। नीलोत्पलदलश्यामा विज्जका तदसहमाना अधिक्षिपन्ती प्राह-**"नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता। वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुल्का सरस्वती।।"** इति। ततः कश्चन कवेर्दण्डिनो भक्तः वाल्मीकिव्यासाभ्यामनन्तरं दण्डिनमेव तृतीयं कविं मन्यमानः प्रत्युवाच **"जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि"** इति।

इमां प्रसृत्वरीमुक्तिं समाकर्ण्य कर्णाटराजप्रिया विज्जका सगर्वं प्राह**"एकोऽभून्नलिनात् ततश्च पुलिनाद् वल्मीकतश्चापरे ते सर्वे कवयो भवन्ति गुरवस्तेभ्यो नमस्कुर्महे। अर्वाञ्चो यदि गद्यपद्यरचनैश्चेतश्चमत्कुर्वते तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाटराजप्रिया।।"**

---

१. सम्पूर्णपद्यानि मूलभागे द्रष्टव्यानि।

स्वकीयं कवित्वाभिमानं समुद्घोषयन्ती कवयित्री उच्चैर्गर्जतियदेषा नलिनोद्भवं ब्रह्माणम्, पुलिनोद्भवं द्वैपायनं व्यासं, वल्मीकप्रभवं वाल्मीकिं त्रीनेव कवीन् गुरून् मत्वा नमस्करोति, तदन्ये यदि केचन कविंमन्यमाना गद्यपद्यरचनया चेतश्चमत्कुर्वते तर्हि तेषां मूर्ध्नि वाम पादप्रहारं करोति।

अस्या विशिष्ट रचनायाः प्रभावादेव समालोचक-विचक्षणाः समुद्घोषयन्-

**"सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्सौ।**
**या विदर्भगिरांवासः कालिदासादनन्तरम्।।"**

एतस्याः कतिपयानि हृद्यानि पद्यानि एतत् परिचयप्रसङ्गे मूलभागे उद्धृतानि सन्ति तेषां सौन्दर्यं भावगाम्भीर्यं, माधुर्यञ्च तत्र समास्वादनीयानि।

२०. **विकटनितम्बा**-कवयित्री विकटनितम्बाऽपि संस्कृतजगति अति प्रसिद्धा विद्यते । एतया विरचितानि बहूनि पद्यानि सुभाषितसंग्रहेषु अलंकारशास्त्र-ग्रन्थेषु च संगृहीतानि सन्ति।

प्रायो नामानुरूपशारीरिकसंरचनात् परम विदुषी उत्कृष्ट कवयित्री अप्येषा न केनापि योग्यवरेण परिणीता। दौर्भाग्यात् सा एकस्मै महामूर्खाय दत्ता, योहि-सस्ये मासं मासे माशं वदति सकाशे तथा शकाशम्। उष्ट्रे लुम्पति रम्वाषम्वा, तस्मै दत्ता विकटनितम्बा।। अस्यां परिस्थितावपि मानस-स्थितिमनुकलयन्त्या एनया यानि-प्रसादमधुराणि विविधालंकार-भूषितानि विविधविषयकाणि रसमयानि हृद्यानि पद्यानि विरचितानि तानि सर्वाणि सहृदयरसिकैरास्वादनीयानि सन्ति। अस्या अन्योक्तिपरकाणि पद्यानि तु विशेषतः हृदय-स्पर्शीनि सन्ति। एतस्याः काव्यकौशल-निदर्शकानि कतिपयानि पद्यानि परिचय प्रसङ्गे मूलभागे समुद्धृतानि तानि जिज्ञासुभिः तत्रैव द्रष्टव्यानि।

२१. **गङ्गादेवी**-वर्तमान-वारङ्गल मण्डलान्तर्गतायाम् एकशिलानगर्याम् काकतीय वंशे समुत्पन्ना गङ्गादेवी विजयनगर-साम्राज्य-संस्थापकस्य महाराजबुक्कराजस्य प्रथम तनयस्य वीर-कम्पनरायस्य पट्टमहिषी आसीत्। खिष्टीय चतुर्दश शतक मध्यभागे वीर कम्पनरायः अस्याः पाणिमग्रहीत्।

विविध-शास्त्रेषु निपुणा परम विदुषी महाकवयित्री गङ्गादेवी "मधुराविजय" महाकाव्यं निर्माय चिरस्थायिनीं महतीं ख्यातिमलभत। मधुरा (वर्तमान मदुरै) नगर्या अत्याचारपरायणं सुल्तानशाहं पराजित्य प्राप्तविजयश्रीकस्य पराक्रमशालिनो युवराज कम्पनरायस्य प्रजानु-रञ्जनस्य विजयोत्कर्षरूपमाधिकारिकं विषयवस्तु समधिकृत्य प्रणीतेऽस्मिन् नवसर्गात्मके महाकाव्ये महाकाव्योचितानि सर्वाणि तत्त्वानि सन्निहितानि सन्ति।

अङ्गिनो वीररस्य परिपोषकाः श्रृङ्गार-हास्य-रौद्र-भयानकादयोऽन्येऽपि रसा अत्राङ्गरूपेण विलसन्ति। माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयोऽपि तदन्तर्भूता श्लेष-प्रसाद-समता-समाधि-सौकुमार्यादयो वामनोक्ताः सर्वेऽपि दशगुणास्तत्र काव्य-सौन्दर्यं प्रकाशयन्ति। अपृथग्यत्न-

निर्वर्त्यश्लेषेण सह उपमारूपकोत्प्रेक्षादयो विविधालङ्काराः महाकाव्यमिदं विभूषयन्ति। अनुष्टुप्, उपजातिः, मालिनी, हरिणी, शिखरिणी, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा, वंशस्थम्, द्रुतविलम्बितम्, शार्दूलविक्रीडितम्, औपच्छन्दसिकम् इत्यादीनां रसानुकूलच्छन्दसाम् विन्यासः काव्य-सौष्ठवं वर्धयति।

एतन्महाकाव्यस्य विविध-वैशिष्ट्येषु-

(क) कवयित्री-जीवन कालिक-तत्साक्षात्कृत- कथावस्तुनः आधिकारिकतया प्रतिपादनम्

(ख) कवयित्रीपतेरेव नायकत्वम्,

(ग) कवयित्र्या नायिकात्वञ्च मुख्यवैशिष्ट्यानि सन्ति।

धीरोद्धतप्रतिनायकस्य मधुरापुरी शासकस्य तुलुष्कनृपतेरत्याचार-नृशंस-शासनमुन्मूलयितुं कम्परायेण धर्म-युद्धं कृतमिति तस्य युद्धवीरत्वं धर्मवीरत्वञ्च प्रकटितं भवति।

यद्यपि कवयित्र्या विशिष्टप्रतिभा-निपुणताभ्यास-हेतुकं सम्पूर्णं महाकाव्यं सामान्येन अस्याः कविकर्म-कौशलमभित्यनक्ति, तथापि सामान्य-विशेष-न्यायेन कानिचिद् विशिष्टान्युदाहरणानि अत्रोपन्यस्तानि। प्रथमसर्गे-**आसीत् समस्त सामन्त-मस्तक-न्यस्त-शासनः। बुक्काराज इति ख्यातो राजा हरिहरानुजः।।**

**यश्शेष इव नागानां नगानां हिमवानिव।**
**दैत्यारिरिव देवानां प्रथमः पृथिवीभुजाम्।।**
**कलि-काल-महाधर्मप्लुष्टो धर्ममहीरुहः।**
**यस्य दानाम्बुसेकेन पुनरङ्कुरितोऽभवत्।।**

इत्यादयो बुक्क राज-प्रशस्तौ निर्मिताः श्लोकाः अपूर्वं काव्य-सौष्ठवं सूचयन्ति।

तत्रैव राजधानी-वर्णने-

**तस्यासीद् विजया नाम विजयार्जितसम्पदः।**
**राजधानी बुधैश्श्लाघ्या शक्रस्येवामरावती।।**

**सन्ध्यासु यत्र निर्यान्ति जालेभ्यो धूमराजयः।**
**अन्तः प्रदीपिकालोक-चकित ध्वान्त- सन्निभाः।।**
**यदङ्गनामुखाम्भोज-लावण्यालाभ लज्जितः।**
**कलङ्कच्छद्मना चन्द्रो व्यनक्ति हृदयव्यथाम्।।**

युवराज कम्पनरायस्य पराक्रम-वर्णने-

**इत्थं सङ्गरमूर्ध्नि चम्पनृपतिं नीत्वा कथाशेषतां**
**श्रीमान् कम्पनृपेश्वरो जनयितुः सम्प्राप्तवान् शासनम्।**

काञ्चीन्यस्तजयप्रशस्तिरमिथस्सङ्कीर्णवर्णाश्रमं
नीत्या नित्य निरत्ययर्द्धिरशिषत् तुण्डीरभूमण्डलम्।।

राज्यसिंहासनासीनस्य कम्पनरायस्य चारुचर्या-वर्णने-

चतुर चङ्क्रमचारु सरस्वती-
चरणनूपुरसिञ्जितमञ्जुलैः।
भृशमरज्यत कम्पमहीपति-
स्सदसि सत्कविसूक्तिसुधारसैः।।

शृङ्गाररस-वर्णने-

सरस-चन्दन-धारिषु मौक्तिक-
त्रिसर-निर्झर-धारिषु सुभ्रुवाम्।
कुचतटेषु निदाध निपीडितो-
धृतिमगात् कुसुमायुधकुञ्जरः।।

एवं विधानि शतशो मनोहराणि पद्यानि कवयित्रया गङ्गादेव्या रचना-चमत्कारं प्रकाशयन्ति।

२३ **तिरुमलाम्बा**-१५२१ ख्रिष्टाब्दात् १५४२ ख्रिष्टाब्दं यावत् विजयनगर-साम्राज्यं शासतो महाराजाच्युतरायस्य पट्टमहिषी तिरुमलाम्बा वरदाम्बिकापरिणयचम्पूकाव्यं प्रणीय चम्पूकाव्य-क्षेत्रे महती ख्यातिमलभत। राजकुमारेण अच्युतरायेण सह अनुपम सौन्दर्यशालिन्या वरदाम्बिकायाः परिणय रूपं कथानकमाधारीकृत्य विरचितम् शृङ्गार वीर-रौद्र-बीभत्स-भयानकेति रस-पञ्चकमिश्रितम् समपेक्षित सकलगुण-गणसंभृतम् सन्तुलित गद्यपद्यमयम् प्रकृत चम्पूकाव्यम्-गद्यानुबन्ध-रस-मिश्रित-पद्यसूक्ति-हृद्यं सत् कविमार्गजुषां सुखाय कल्पते इत्यत्र नास्ति संशीतिः। अधस्तन पद्ये अर्थानुकूलपदयोजनामञ्जुलरूपां कामपि विच्छित्तिं जनयति-

नासीरवीरतरवारि-विदारितारि-
धाराल-घोर-रुधिरौघ-तरङ्गिणीभिः।
दृप्यद् द्विपेन्द्रकर-शीकर-सान्द्रदान-
पाथोभरैरपि परागभरः शशाम।।

सैनिकानां पराघातेन सघनधूलिराशिना समरभूमिः समाच्छादिता बभूव। किन्तु सेनाग्र-भागस्थ-वीर-सैनिकानां शरीर-रुधिरौघतरङ्गिणीभिः करि-राज कर-शीकरैः, करिकपोल-निःसृत-मदधाराभिश्च स धूलराशिः शशामेति समरभूमि-वर्णनं कस्मै सचेतसे चमत्काराय न कथ्येत?

२४. **पण्डिता क्षमारावमहाशया**-महाराष्ट्र प्रदेशान्तर्गत पुण्यपत्तने (पुणे नगरे) ४-७-१८६० खिष्टाब्दे क्षमा पण्डिता जनिमलभत। अस्याः जनकः शङ्करपण्डितः संस्कृतशास्त्रमर्मज्ञ मनीषी आसीत्। क्षमायाः स्वल्पे एव वयसि पितुः स्वर्गमनात् अस्याः प्रारम्भिक शिक्षा पितृव्यस्याभिभावकत्वेऽभवत्। स्नातकपरीक्षां समुत्तीर्य एषा उच्चशिक्षार्थम् आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमगच्छत्। तत्र अधीयानाया एव एतस्याः पाणिम् मुम्बईस्थः डा. राघवेन्द्रः अग्रहीत् एवमाजीवनममरभारत्याः समुपासनां विदधती पं. क्षमारावमहाशया २२.४. १६५४ खिष्टाब्दे अमरपुरातिथिरभूत्।

अमुष्या दुहिता लीलाराव महोदया, या आइ.सी.एस. हरीश्वर दयालस्य प्रेम-परिणय-सूत्रे निबद्धाऽभवत्, यदा नेपाले भारतीय राजदूतेन स्वपतिना दयालमहोदयेन सह काठमाण्डु नगरे समागता तदा मातु र्विभिन्नरचनानां नाटकरूपान्तरं विधाय प्रतिमासं राजदूतावासे, भारतीय सहयोगनियोगान्तर्गत् कार्यरतानामस्माकं सक्रिय सहयोगेन, तदभिनयं कुर्वती आसीत्। तदवसरेषु महाराज महेन्द्रवीरविक्रमशाहदेवः सपरिवारः तत्र अभिनयं द्रष्टुमागच्छन्नासीत्। लीलाराव दयाल महोदयाया एतेन सत्प्रयासेन तदानीं संस्कृतस्य प्रचारेण सह राजपरिवारेण साकं मधुर-सम्बन्धः प्रवर्द्धमान् आसीत्।

लीलाराव महोदया मातु र्विविधानि रचनानि आधृत्य रङ्मञ्चोपयोगीनि नाटकानि व्यलेखीत्।

उपर्युक्ताभ्योऽतिरिक्तानां कतिपयानां संस्कृत-कवयित्रीणां नामानि रचनानि च उपलभ्यन्ते। तासु देवकुमारिका-लक्ष्मीदेवी-मधुरवाणी त्रिवेणी-श्रीमती रमा चतुर्धुरीणा-श्रीमती वनमाला प्रभृतीनाम् सप्तदशानां कवयित्रीणां रचनादिसहित-परिचयो मूलभागे प्रदत्तोऽस्ति। जिज्ञासुभिः तत्र द्रष्टव्यः।

मूलभागस्य परिशिष्टे अनेकाभि बौद्ध भिक्षुणीभि र्विरचितानि पालि भाषा-निबद्धानि जीवन-सार-तत्त्व-निदर्शकानि हृदय-स्पर्शीनि मधुराणि गीतानि निर्दिष्टानि सन्ति। बुद्धोपदेश-प्रभावात् सांसारिक भोग-विलासाद् विरक्ताभिर्बुद्धमार्गानुगामिनीभिक्षुणीभिः विरचितेषु थेरीगाथे तिनाम्ना प्रसिद्धेषु गीतेषु मुक्तिमार्गस्यामरसन्देशा निर्दिष्टाः सन्ति। एतत् प्रसङ्गेग मुक्ताऽम्बपाली-सुमेधा प्रभृतीनाम् एकषष्टे र्भिक्षुणीनां नामानि, कासाञ्चित् परिचय-सहितानि, मूलभागे समुल्लिखितानि सन्ति। आधुनिक संस्कृत कवायित्रीणां कृतीनां परिचयः प्रकरणान्तरे प्रदर्शतस्तस्मात्तद्विवरणमत्र नेह वितन्यते।

उपर्युक्त -विवरणेन विस्पष्टं भवति यत् वैदिक काले संस्कृत-कवयित्रीणां रचनाया या धाराप्रवाहिताऽ भवत् साऽनवरतं प्रवहमाना अद्यापि प्रवहति, संस्कृत-साहित्यं संवर्धयति तथा सहृदयहृदयानि सन्तर्पयतितरामिति शम्।

## षष्ठोऽध्यायः

# अभिलेखीयसंस्कृत-साहित्यम्

ताम्र-राजत मृत्पात्र-शिला-मुद्रा-गुहादिषु।
स्तम्भे लिप्यङ्कितोलेखोऽभिलेखः परिकीर्त्यते।।
अद्याप्येवंविधोलेखस्त्वभिलेखायते यतः।
पुरालेखोऽभिलेखो वै कथनं नाति साम्प्रतम्।।

अतोहि अभिलेखशब्दः उत्कीर्णात्मकं सर्वलेखमात्मसात्करोति, योहि मृत्-पाषाण-शिला-स्तम्भ-ताम्र-राजतादिपट्टेषु उत्कीर्णः सन् कमपि घटनाविशेषम् ऐतिहासिकं विधातुं समये समये निर्मितो भवति। एतेन अभिलेखोपादानेन प्रामाणिकः इतिहासो विलिख्यते। अभिलेख्य पुरुषस्य घटना-विशेषस्य च महत्त्वं मुख्यतश्चिरस्थायि विधीयते। आनुषङ्गिकतया कविकौशलेन विरचितस्य अभिलेखस्य वैशिष्ट्येन विच्छित्ति-जनकं गद्य-पद्यात्मकमपूर्वं काव्यमपि सृज्यते।

पुरातात्त्विक दृष्ट्या, प्राक्कालीनकला-संस्कृति-समाज-राजनीति-धर्मादि-विभिन्न-भाषासु निबद्धानां समस्तानामभिलेखानां विशिष्टं महत्त्वमस्त्येव, किन्तु संस्कृत-भाषाविरचिताना-मभिलेखानां साहित्यिकमपि अपूर्वं महत्त्वं वरीवर्ति। माधुर्यौजः प्रसादगुणैः, शब्दार्थालङ्कारैः, वैदर्भी-गौडी-पाञ्चाल्यादि-रीतिभिः, रत्यादि भावाभिव्यञ्जकैर्विधानैश्च संस्कृताभिलेखाः यामपूर्वां सहृदय-हृदयाह्लादिनीं विच्छितिं प्रकाशयन्ति सा अन्यभाषानिबद्धाभिलेखेषु दुर्लभायते। अतः संस्कृताभिलेखानामध्ययनम् पुरातात्विक-दृष्ट्या साहित्यिक-दृष्ट्या च काम्यते विद्वद्भिश्च विधीयते।

श्रुति-स्मृति-पुराण-रामायण-महाभारत-कालपर्यन्तम् त्रिकालज्ञानाम्, प्रत्यक्षीकृत-समस्त-घटनानां, साक्षात्कृतधर्मणाम्,ऋषीणाम् मुनीनाम् तच्छिष्योपशिष्याणाञ्च सर्वत्र विद्यमानत्वात् उत्कीर्णाभिलेखानामावश्यकता नासीत्। नन्दसाम्राज्योत्तरकाले पूर्वपरिस्थितेरभावात् घटना-विशेषं चिरजीविनं कर्तुं जनैः उत्कीर्णाभिलेखस्य आवश्यकता अनुभूता। अतश्च ततः परम् उत्कीर्णाभिलेख-परम्परा प्रचलिता।

अपरञ्च तदानीन्तना महर्षयः अविच्छिन्न-प्रवाहस्य ज्ञानात्मकस्य नित्यमहाकालस्य कुक्षौ विशिष्टा अविशिष्टा वा सर्वा घटनाः स्वेच्छया अवलोकयन्त आसन्, सति प्रयोजने अनायासेन ता घटनाः प्रचारयन्त आसन्, याश्च आख्यानोपाख्यानरूपेण वैदिकसाहित्यादारभ्य पौराणिक साहित्यपर्यन्तं समुपलभ्यन्ते। श्रुति-स्मृति पुराणानां वेदाङ्ग-रामायण-महाभारतानाञ्च सम्यक् प्रचारात् प्रसाराच्च तदानीम् समुत्कार्णाभिलेखा अनपेक्षिता-आसन्।

संस्कृत वाग्धारा आदिकालात् प्रवहमाना भारते न कदापि अवरुद्धाभवत्, किन्तु बौद्ध धर्मप्रचारस्य माध्यमेन अङ्गीकृतायाःपालिभाषाया जनसमाजे सहज-बोधगम्यतया बौद्ध धर्मावलम्बी सम्राट् अशोकः स्वशासनकाले पालिभाषायां लिखितान् अभिलेखान् लौह-पाषाण-स्तम्भेषु शिलापट्टेषु च समुत्कीर्णयामास। भारते समुपलब्धेषु अभिलेखेषु इमे एव अशोककालीना अभिलेखाः प्राचीनतमा इति निगदन्ति ऐतिहासिकाः। उत्कलादारम्य काठियावाडंयावत्, हिमलयाच्च उत्कल-प्रदेशंयावत् विशालभूभागे संस्थापिता लघुदीर्घकलेवरा अशोकस्याभिलेखाः शतद्वयादप्यधिकाः उपलब्धाः सन्ति। एते हि अभिलेखाः शिलालेख-स्तम्भलेख-गुहालेखात्मकेषु त्रिषु वर्गेषु विभाजिताः सन्ति, येषु चतुर्दश शिलालेखाः, सप्त स्तम्भलेखाश्च दीर्घाः प्रसिद्धाश्च सन्ति। अन्ये च स्फुटाभिलेखाः, शिलालेखाः, स्तम्भलेखाः, गुहालेखाश्च स्वकाया अनति प्रसिद्धाश्च सन्ति।

**(क) चतुर्दश शिलालेखा निम्नलिखितेषु अधुनातनेषु अष्टसु स्थानेषूपलभ्यन्ते-**

१. गुर्जरराज्ये जूनागढनिकटे गिरिनारनामके,

२. उत्तरप्रदेशे देहरादूनमण्डले कालसीनामके,

३. उत्कले पुरीमण्डले धौलीत्याख्ये,

४. उत्कले गंजाममण्डले नौगढे

५. पाकिस्तानस्थ-पेशावरे शाहबाजगढी नामके,

६. पाकिस्ताने हजारामण्डले मनसेहरानामके,

७. महाराष्ट्रे ठाणामण्डले सोपारानामके,

८. आन्ध्रप्रदेशे कुरनूलमण्डले एरर्गुण्डिनामके च।

**(ख) सप्तस्तम्भाभिलेखाः अधोलिखितेषु षट्सु स्थानेषु प्राप्यन्ते-**

१. देहल्याम्, २. मेरठे, ३. प्रयागे, ४. लौरिया-अरेराजे, ५. लौरिया नन्दनगढे, ६. रामपुरवा नामके च।

अन्येषाञ्च स्फुट-लघुशिलालेखानां विवरणम् मूलभागे द्रष्टव्यम्। खिष्टपूर्वतृतीयशतक-कालिका इमे पालिभाषाभिलेखाः पालिभाषायाः, बौद्धधर्मस्य, तत्कालीन प्रशासनस्य च सम्यक् परिज्ञाने परमोपयोगिनः सन्ति। तत्परिवर्तिनां प्रशासकानामपि पालि-प्राकृत-भाषा-निबद्धा अभिलेखाः पुरातात्विक दृष्ट्या महत्त्वमादधति। एतेषु सारनाथस्य कनिष्क कालिक-खिष्टप्रथमशतकस्य पालिभाषाभिलेखः महत्त्वपूर्णः, यस्मिन् बुद्धदेवेन वाराणस्यां प्रतिपादितानां चतुर्णाम् आर्यसत्यानाम् "चत्तारि मानि भिक्खवे अरिय सच्चानि" अर्थात् चत्वारि मान्यानि भिक्षुभिरार्यसत्यानि-इत्युल्लेखो वरीवर्ति। एतादृशोऽभिलेखो भारताद् बहिर्देशेष्वपि समुपलभ्यते।

अशोकोत्तर मौर्य कालीन-प्राकृताभिलेखेषु गोरखपुर मण्डलान्तर्गत-वांसगाँव सोहगौराग्रामस्य अभिलेखः, योहि साम्प्रतम् कालिकाता एशियाटिक सोसाइटी-कक्षे संरक्षितोऽस्ति, ताम्रपत्रे

समुत्कीर्णोऽस्ति। एतेन तदानीन्तने काले दुर्भिक्षादौ प्रशासनद्वारा प्रजाकल्याणाय क्रियमाण-कार्यजातस्य परिचयः प्राप्यते।

मध्यप्रदेशे प्राचीन विदिशामण्डले शुङ्गवंशीय-राजस्य नागभद्रस्य शासनकाले यवन-नरेशस्य अन्तलिकितस्य राजदूतः होलियोदोरेसनामकः वेसनगर नाम्नि ग्रामे गरुडस्तम्भे एकं प्राकृताभिलेखं समुत्कीर्णयामास। एतेनाभिलेखेन ज्ञायते यत् तदा भारतीयनरेशेन सह यवननृपतेर्दूतावासीय सम्बन्ध आसीत्। भाषात्मकमादान-प्रदानञ्चासीत्।

मध्यप्रदेशे पूर्वकालीन नागौदराज्ये भरहुतनामके प्रसिद्ध बौद्धस्थले प्राकृत भाषानिबद्धः शुङ्गकालिकस्तूपाभिलेखः संसूचयति यत् खिष्टपूर्व-प्रथम-द्वितीय शतक-समये विदिशायां शुङ्गराज्य प्रशासनमासीत्।

एतस्मिन्नेव कालान्तराले धनदेवस्य अयोध्यापाषाणाभिलेखः, प्रयागसमीपस्थ कौशाम्बीनिकटे प्रभोसानामकपाषाणगुहायाम् खिष्टपूर्वद्वितीय-शतकस्य उदाकनाम्नो नृपतेः प्रभोसागुहाभिलेखश्च तदानीन्तनं घटना-विशेषं संसूचयतः।

पाकिस्ताने पश्चिमोत्तरसीमान्तप्रदेशे शिनकोट-बजौर नामक स्थाने यवन नरेश-मिलिन्दस्य (मिनेण्डरस्य) शासनकाले मञ्जूषोपरि उल्लिखितोऽभिलेखः शाक्यमुनेर्बुद्धदेवस्य पार्थिवावशेषम् मञ्जूषान्तर्गतं सूचयति।

खिष्टपूर्व द्वितीय शतकादारभ्य खिष्टीय प्रथमशतकं यावत् ताम्र-रजत-शिलापट्टादिषु उत्कीर्णानां प्राकृताभिलेखानामनतिप्रसिद्धानां स्थान-विशेषेषु समुपलब्धानामभिलेखानां विवरणानि मूलभागे प्रदर्शितानि तत्र द्रष्टव्यानि।

प्रथमकनिष्कस्य शासनकाले (८१ खि.) सारनाथे बोधिसत्त्व-मूर्ति-छत्र-स्तम्भे उत्कीर्णः प्राकृताभिलेखः एतस्यैव (८९ खि.) पाकिस्तान-बहाबलपुरस्य दक्षिण-पश्चिमभागे सुई विहार-ताम्रपत्राभिलेखः, एतस्मिन्नेव वर्षे अस्यैव पाकिस्तान-रावलपिण्डीमण्डले जेडाग्रामे उपलब्धोऽभिलेखः, अमुष्यैव सेतमहेत[1] -प्रतिमाभिलेखः, हुविष्कस्य (१०६ खि. २८ शकाब्दे) मथुरा प्रस्तराभिलेखश्च बुद्धदेव सम्बन्धि घटनाविशेषं, बौद्धधर्मं प्रति समादरभावञ्च प्रकाशयतः।

एवमेव मौखरि-महासेनापति-बलस्य पुत्रत्रयस्य वडवा-पाषाण-यूपाभिलेखाः,[2] नहयान कालीन कार्लेगुहाभिलेखश्च[3] मौखरिराजवंशस्य घटना-विशेषान्निर्दिशन्ति।

खारवेलस्य हस्तिगुम्फाभिलेखः[4] मौर्योत्तर कालीनाभिलेखेषु किमपि विशिष्टं महत्त्वमादधाति।

---

१. उत्तरप्रदेश गोण्डाबहराइच सीमायाम् प्राचीन श्रावस्त्याम् वर्तते

२. राजस्थाने पूर्वकोटाराज्यान्तर्गत वडवा ग्रामे थम्बतोरण नामके स्थाने, कृत सं. २९५=२३८ ए.डी.

३. पुणे मण्डले कार्ले चैत्यगुहामध्य द्वारे उत्कीर्णः, तिथिरहितः।

४. उत्कलप्रदेशे पुरीमण्डले भुवनेश्वरमन्दिरादनतिदूरे पश्चिमे प्रसिद्धयोरुदयागिरि-खण्डगिरि नामक पर्वत-भागयोरवस्थितेयं ख्याता हस्तिगुम्फागुहा।

जैनधर्मावलम्बिनः कलिङ्गनरेश-खारवेलस्य शासनकालिकानां त्रयोदशानां वर्षाणां क्रियाकलापस्य प्रामाणिकं चित्रणमभिलेखेऽस्मिन् अवलोक्यते। एष च क्षहरातवंशीय शकनरेशैः सह पश्चिम भारतस्य पश्चिम दक्षिणापथस्य च ऐतिहासिकं महत्त्वमभिव्यनक्ति।

कार्दमवंशीय-महाक्षत्रप चष्टनस्य अन्धौ पाषाणयष्टिलेखः[1] शक-कुषाणवंशयोरैतिहासिकं महत्त्वं प्रकाशयति।

महाराष्ट्रे पुणे-निकटे कोङ्कण-जुन्नाराभिमुखे नानाघाटगुहाभिलेखः सातवाहन वंशीय नरेशस्य प्रारम्भिकेतिहासं प्रकाशयति। एतद्वंशीयः प्रायः प्रथमो नरेशः आसीत् शातकर्णिः। अस्यैव राजमहिषी आसीत् नागन्निका, या पत्युर्निधनात्परं राज्यशासनं कुर्वती सातवाहन-साम्राज्यं विस्तारयामास, अनेकानि धर्मानुष्ठानानिच कारयामास। अस्या वेदश्री-शक्तिश्रीनामिके द्वे तनये स्वपतिभ्यां सह यज्ञं समपादयताम्। अस्यैव घटना-विशेषस्य समुल्लेखः नानाघाट-गुहालेखे विशेषतो वर्तते। अयमभिलेखो भारतीय-सनातनधर्मं, पौराणिक चतुर्व्यूहवादं, लोकपाल-कल्पनञ्च विशदयति। एष च प्राकृतगद्यस्य निदर्शनतामप्यादधाति।

गौतमी-पुत्र-शातकर्णि नरेशस्य नासिकगुहाभिलेखः[2] तत्कालीन राज्यशासन-व्यवस्थाम्, भूमि-व्यवस्थाम्, बौद्ध-सङ्घेभ्यो भूमिदानञ्च वर्णयति।

एवमेव गौतमीपुत्र शातकर्णिनरेशस्य, वासिष्ठीपुत्र-पुलुभाविनरेशस्य च नासिकगुहाभिलेखः तच्छासन-कालीन वैशिष्ट्येन सह सातवाहननेरशस्य वंशादिवर्णनं-करोति, येन ज्ञायते यत् सद्ब्राह्मणवंशे जायमानः गौतमीपुत्रशातकर्णिः सातवाहनवंश-यशः प्रतिष्ठापकः, शक-यवन-पह्लव-निषूदनः, क्षहरात-कुल-समूल-विनाशकश्चाभूत्। एतस्य राज्यम् उत्तरेण मालवप्रदेशम् यावत्, कठियावाडतः दक्षिणेन कृष्णानदीं यावत्, पश्चिमे कोङ्कणतः पूर्वे वरारंयावत् विस्तीर्णमासीत्। एतेनाभिलेखेन वासिष्ठीपुत्र-पुलुभावि-नरेशस्य व्यक्तित्वं, कार्यकलापम्, प्रशासनञ्च प्रकाश्यन्ते। गुणालंकारादिसमन्वितः प्रस्तुताभिलेखः काव्यशास्त्रीय-दृष्ट्यापि महत्त्वपूर्णोऽस्ति।

खिष्टपूर्व-तृतीय शतकादारभ्य खिष्टीयद्वितीय-शतकमध्यभागं यावत् उपलब्धा अभिलेखा बाहुल्येन पालि-प्राकृत-भाषा-निबद्धाः सन्ति। सातवाहन नरेशा यज्ञाद्यनुष्ठान-परायणा अपि प्राकृतभाषानुरागिण आसन्निति सरसमधुरसुललितप्राकृत,काव्येन 'गाहा सत्तसई गाथा सप्तशती'-ति नामधेयेन प्रमाणीक्रियते। एतद्वंशीयः कविवत्सलः कवीनां कल्पतरुः हालेतिनाम्ना प्रसिद्धः महाराज शालिवाहनः प्राकृतगाथाच्छन्दसि स्वनिर्मितानाम् अन्यकविरचितानाञ्च हृद्यानां पद्यनां संकलनात्मकम् 'बगथासप्तशतीति प्राकृतपद्यरत्नम् प्रख्यापयामास।

एतच्च तदानीन्तन-समाज प्राकृतभाषायाः प्रियतांपुष्णाति। यद्यपि एतस्मिन्नपि कालखण्डे भास-सौमिल्लकविपुत्र-कालिदासाश्वघोषादीनां महाकवीनां विविधानि दृश्य-श्रव्य-काव्यानि

१. गुर्जर प्रान्तीय कच्छप्रदेशीयरवावड़ातः २४ कि.मी. दूरे पूर्व-दक्षिणभागे अवस्थिते अन्धौ नामके ग्रामे।

२. महाराष्ट्रे नासिकनगराद्दक्षिणपश्चिमभागे पाण्डुलेपातृतीय गुहा-प्रवेशद्वारे समुत्कीर्णः।

मधुर-ललितानि भारते प्रसिद्धानि जातानि, यानि संस्कृत-वाग्धाराया नैरन्तर्येण प्रवहमानतां प्रमाणयन्ति। बौद्धधर्मावलम्बिनाम् संस्कृतभाषां प्रति असहिष्णुतया पालि-प्राकृतयोः आपामर जन-बोधगम्यतया च अनादिनिधना संस्कृत-भारती तैः अभिलेखभाषात्वेन अङ्गीकृता नाभूत्।

खिष्टीय द्वितीय शतकमध्यभागे कार्दमवंशीय-शकराजस्य महाक्षत्रप-प्रथम रुद्रदाम्नः सुललितगद्यात्मकः संस्कृत भाषा-निबद्ध गिरिनार-[1] शिलालेखः समुपलभ्यते। एतस्मिन्नेव शिलापट्टके प्रियदर्शिनः अशोकस्य चतुर्दश प्रज्ञापनानि समुत्कीर्णानि सन्ति। अत्रैव गुप्त-सम्राजः स्कन्दगुप्तस्यापि अभिलेखद्वयमुत्कीर्णमस्ति।

विंशति-पङ्क्त्यात्मकस्यास्य अभिलेखस्य कतिपयाः पङ्क्तयः क्षतिग्रस्ताः सन्ति। अक्षताः सुपाठ्याः पङ्क्तयः एव सूचयन्ति यत् मौर्यनरेन्द्र चन्द्रगुप्तस्य राज्यपालः पुष्यगुप्तः गिरिनारसमीपे सुदर्शननामकमेकं सरोवरं खानयामास। अशोकस्य राज्यकाले तुमाष्कनामा यवनराजः तस्मादेव सरोवरात् अनेकानि स्रोतांसि निःसारयामास। रुद्रदाम्नः द्विसप्ततितमे वयसि अतिशय जल-प्लावनात् सरोवरस्य सेतु-बन्धो-भग्नोऽभवत्। ततश्च प्रायस्तस्मिन्नेव वर्षे जनहितकृद् राजा रुद्रदामा महता प्रयासेन सेतु-बन्धं कारयामास। पह्लव-राज्यपालः सुविशाखः सेतु-बन्ध-पुनर्निर्माणे दायित्वं स्वीचकार। तदुपलक्ष्ये एव खिष्टीये १५० तमे वर्षे इममभिलेखं गिरिनार-शिलापट्टे उत्कीर्णयाञ्चकार।

रुद्रदामा यथैव महान् योद्धा पराक्रमी शूरवीरो विजेता आसीत् तथैव धार्मिकः कविः काव्यशास्त्र-मर्मज्ञ-इति तस्याभिलेखेन विज्ञायते। यतोहि उपलब्ध संस्कृताभिलेखेषु एतदीयाभिलेखः प्रथमः अतोऽत्र कश्चिदभिलेखांशो निदर्शनीक्रियते- "प्रमाण-मानोन्मान- स्वर-गति-वर्ण-सार-सत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनै रूपेतैः कान्तमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्या-स्वयंवरानेक-माल्य-प्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"

काव्यदृष्ट्यापि गद्यमिदं महद्वैशिष्ट्यमादधाति। 'ओजः समास-भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' इति काव्यादर्शीय सिद्धान्तस्याधारमुपस्थापयति।

**गुप्तकालिक-संस्कृताभिलेखाः**-गुप्त कालीन-संस्कृताभिलेखेषु समुद्रगुप्तस्य प्रयाग-स्तम्भाभिलेखः-[2] ऐतिहासिक दृष्ट्या काव्यकौशल-दृष्ट्या च महत्त्वमादधाति। परम यौधेयः समुद्रगुप्तः यौवनारम्भे एव अनेकेष्वाहवेषु शत्रून् विजित्य युद्ध-कौशलं दर्शयामास। येन नवे वयस्येवास्य शौर्य-पराक्रममवलोक्य पिता एनं यौवराज्ये नियुज्य आशीर्वचोभिः

---

१. गुर्जरप्रान्ते जूनागढात् पूर्वस्मिन् अनतिदूरे एवं गिरिनार नामक पर्वत शिला पश्चिममुखे अभिलेखोऽयमङ्कितो विद्यते।

२. उत्तरप्रदेशे प्रयागदुर्गस्य प्रस्तर-स्तम्भे कविवर हरिषेण-विरचित गद्यात्मकोऽयमभिलेखः खिष्टीय चतुर्थशतकमध्यभागे समुत्कीर्णः।

सभाजयामास। अमरपुरातिथौ सति पितरि सः अनेकानि महायुद्धानि कृत्वा उत्तर-पश्चिम-दक्षिण-भागेषु बहून् प्रशासकान् आत्मसात्कृत्य स्वसाम्राज्यं विस्तारयन् सम्राट् संबभूव।

अभिलेखस्यास्य रचयिता समुद्रगुप्तस्य सान्धिविग्रहिकः कविकर्मकुशलो हरिषेणो गद्यपद्यात्मकेऽस्मिन्नभिलेखे वैदर्भी-गौडी रीति-रचना-नैपुण्यं प्रमाणयति। अभिलेखस्य कतिचिदंशा विखण्डिताः सन्ति। खण्डितोऽपि निम्नांशः-"सुर्वण-सिकता-पलाशिनी प्रभृतीनाम्... गिरि-शिखर-तरु-तटाट्टालकोपतल्प-द्वार-शरणोच्छ्रय-विध्वंसिना युगनिधन-सदृश-परमघोर-वेगेन वायुना" इति रचयितुरखण्डं यशो विस्तारयति।

"स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्त-शब्द-समयोदारालंकृत-गद्य-पद्य-प्रवीणेने" ति राज्ञः समुद्रगुप्तस्य काव्य-निर्मिति-वैशिष्ट्यं प्रदर्शयता हरिषेणेन गद्य-पद्यात्मकस्योत्तमकाव्यस्य कृते समस्तानाम् नाट्यशास्त्रोक्तगुणानां गुम्फनम्, शब्दार्थालङ्कारैरलंकरणञ्च समपेक्षितमिति महता कौशलेन निर्दिष्टम्। एतेन काव्यनिर्माणस्य कृते निर्धारितमानदण्डः कविभिरनुसरणीय इत्यपि संसूच्यते।

अभिलेखेऽस्मिन् विविधभेदै र्विशिष्टः अनुप्रासः श्लेषश्च शब्दालंकारौ उपमा-रूपकोत्प्रेक्षादयोऽर्थालङ्काराश्च चकासति। नवसु पद्येषु स्रग्धराशार्दूलविक्रीडित-मन्दाक्रान्ता-पृथिवीरूपाणि बृहन्ति छन्दांसि प्रयुक्तानि कवेः छन्दो विचितिं विशदयन्ति। अभिलेखोऽयम् परवर्तिनां गद्य-पद्य-रचनाकृतां कृते निश्चयं निदर्शनायते।

समुद्रगुप्तस्य प्रशंसापरकः वसन्ततिलकाच्छन्दसि गुम्फितः सप्तश्लोकात्मकः एरण-[1] स्तम्भाभिलेखः भगवद् वराह-मन्दिर-निर्माणावसरे केनचिदधिकारिणा उत्कीर्णयाञ्चक्रे। बहुधा विखण्डितोऽयमभिलेखः किमपि काव्य-वैशिष्ट्यं दर्शयितुं न क्षमते।

चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन-मथुरास्तम्भाभिलेखे[2] सप्तदश पङ्क्त्यात्मके पाशुपताचार्येण उदितेन स्वगुरुवर्ययोः उपमितेश्वर-कपिलेश्वरयोः प्रतिमे स्थापिते इत्यस्य वर्णनं वरीवर्ति।

चन्द्रगुप्त द्वितीयकालीन एव पञ्चवाक्यात्मकः उदयगिरिगुहाभिलेखः[3] प्राप्यते। पाटलिपुत्रवास्तव्यः शब्दार्थन्याय-कोविदः वीरसेनः महाराज चन्द्रगुप्तद्वितीयस्य सकलपृथ्वी-जयार्थाभियानयात्रायाम् उदयगिरि-गुहायाम् भगवतः शम्भोः गुहानिर्माणं कारयित्वा इम-मभिलेखं समुत्कीर्णयाञ्चकार।

एवमेव चन्द्रगुप्त द्वितीयकालिकश्चतुर्वाक्यात्मकः साँचीस्तूप-प्राचीराभिलेखः[4] राज्ञोऽधिकारिणा आर्मकार्द्दवेन काकनाद वोट महाविहारस्य आर्य-सङ्घाय ईश्वर वासक-नामा ग्रामः पञ्चविंशतिदीनारैः सह प्रदत्त इति घटनां वर्णयति।

---

१. मध्यप्रदेशे सागरमण्डले एरण (एरिकिण) ग्रामे प्रसिद्ध-वराहमन्दिर-समीपे एकस्मिन् चतुर्भुजस्तम्भखण्डे समुत्कीर्णः।

२. उत्तरप्रदेशे मथुरापुरीस्थ-चण्डूल-मण्डूल वाटिकावस्थितस्तम्भे समुत्कीर्णः गुप्त सम्वत् ६१=३७० ए.डी.

३. मध्यप्रदेशे विदिशा-समीपे उदयगिरिगुहायाम् समुत्कीर्णः (४०१ ख्रि.)

४. मध्यप्रदेशे प्रसिद्धे साँचीस्तूपस्य पूर्वद्वारे भित्तौ समुत्कीर्णः (गुप्त सम्वत् ९३ = ४१२ ख्रि.)

महाराज चन्द्रस्य (प्रायः चन्द्रगुप्तद्वितीयस्य) मेहरौली-लौह[1] स्तम्भाभिलेखः श्लोकत्रयात्मकः लघुकलेवरोऽपि काव्यदृष्ट्या अतिशय महत्त्वमादधाति।

केवल चन्द्रनाम्नो निर्देशेऽपि अयमभिलेखो महाप्रतापिनश्चनद्रगुप्त द्वितीयस्यैवेति मन्यन्ते ऐतिहासिकाः। शार्दूलविक्रीडितच्छन्दसि रचितः श्लोकत्रयात्मकोऽयमभिलेखः महाराज चन्द्रस्य महान्तं पराक्रमं महतीं ख्यातिञ्च वर्णयति। चन्द्रनृपः वक्षःस्थलेनैव वङ्गीय शत्रुं पराङ्मुखीचक्रे। सिन्धुनदी-सप्तधाराः पारयित्वा बाह्लिकान् वशीभूतान् विदधे। स्वभुजबल-पराक्रमेंण पृथिव्या-मैकाधिपत्यं संस्थाप्य अनेक वर्षपर्यन्तं महीं बुभुजे।

विष्णुपदपर्वते विष्णुमन्दिर-निर्माणात्परं तदग्रध्वजस्तम्भे समुत्कीर्णोऽयमधस्तन-लेखः काव्यदृष्ट्या महत्त्वपूर्णोऽस्ति। अज्ञातनामकेनैकेन कविवरेण लघुन्यभिलेखेऽस्मिन् सवैदुष्यं कवि-कर्म-कौशलं प्रदर्शयाञ्चके। तथाहि-

**यस्योद्धर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्**
**वेङ्गष्वाहव-वर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्ति भुजे।**
**तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धो र्जिता वाह्लिका**
**यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलै र्दक्षिणैः।।**
**खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपते र्गामाश्रितस्येतरां**
**मूर्त्या कर्मजितावनिं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।**
**शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्**
**नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम्।।**
**प्राप्तेन स्व भुजार्जितं सुचरितञ्चैकाधिराज्यं क्षितौ**
**चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।**
**प्रान्शु र्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णो र्ध्वजः स्थापितः।।**

अयमाशयः-प्रतापी चन्द्रनृपः योहि वङ्गप्रदेशे युद्धेषु सङ्घीभूय समागतान् प्रतिपक्षिणः स्ववक्षस्थलेन पराभूय पराङ्मुखान् चकार, यश्च सिन्धुनद्याः सप्तमुखानि पारयित्वा वाह्लिकान् समरे जिगाय; यस्य च पराक्रमरूपमलयानिलेन दक्षिण महासागरः अद्यापि अधिवास्यते, तस्य भुजे खड्गेन कीर्तिरङ्किताभवत्।

प्रथम कुमारगुप्तकालिकः त्रयोदश पङ्क्त्यात्मक गद्यपद्यमयः बिलसड्स्तम्भाभिलेखः[2] ध्रुवशर्मनामकेन महोदारेण भगवत्कार्तिकेय मन्दिरमभितः प्रतोली-धर्मसत्रयो र्निर्माणं तदग्रे उत्कीर्णाभिलेखस्तम्भस्थापनञ्च कृते इति वृत्तान्तं वर्णयति।

---

१. दिल्लीमहानगरस्य दक्षिणे मेहरौलीनामकग्रामे कुतुबमीनार-निकटे लौहस्तम्भे तिथिरहितः अभिलेखोऽयं समुत्कीर्णोऽस्ति।

२. मध्यप्रदेशे पूर्व ग्वालियरराज्यान्तर्गत मन्दसौर नगरे शिवनानदी तट-मन्दिर-संलग्न प्रस्तर-खण्डे समुत्कीर्णः

प्रथम कुमारगुप्तकालीनचतुश्चत्वारिंशत् पद्यात्मकः विविध वृत-विगुम्फितः मन्दसोरशिलालेखः ऐतिहासिकमहत्त्वेन सह कविवर-वत्सभट्टेः वैदुष्यं विशिष्टं कवि-कर्म-कौशलञ्च प्रदर्शयति।

महाराज-प्रथम कुमारगुप्तेन राजा विश्वकर्मा राज्यपालरूपेण नियुक्तोऽभवत्। तस्य तनयो बन्धुवर्मा पश्चाद्राजा बभूव। अयंहि स्व-शासनसमये (मालवसम्वत् ४८३-५२९= ख्रि. ४२६-४७३) लाटप्रदेशात् पट्टवाय-श्रेणी तत्र एकं भव्यं सूर्य-मन्दिरं निरमात्। अमुमेव वृत्तान्तं कविवरो-वत्सभट्टिः विविधगुणविशिष्टैः शब्दार्थालङ्कार-विभूषितैः हृद्यैः पद्यैर्वर्णयति। तथाहि-

**चतलुपताकान्यबला सनाथान्यत्यर्थशुक्कान्यधिकोन्नतानि।**
**तडिल्लता चित्र सिताभ्रकूट तुल्योपमानि गृहाणि यत्र ।।१०।।**

अत्र दशपुर-गृह-वर्णने उपमाचारुत्वं चमत्कारं जनयति।

**चतुःसमुद्रान्त विलोल मेखलां**
**सुमेरु-कैलास-बृहत्पयोधराम्।**
**वनान्त वान्त स्फुटपुष्पहासिनीं**
**कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति ।।२३।।**

अत्रत्या रूपाकालंकार-विच्छित्तिः हृदयमावर्जयति।

**एवमेव-**

**अत्युन्नतमवदातं नभः स्पृशन्निव मनोहरैः शिखरैः।**
**शशिभान्वोरभ्युदयेष्वमलमयूरवायतनमभूत् ।।३८।।**

इत्यत्र मनोहरोत्प्रेक्षा सहृदयैः प्रेक्षणीया।

कुमारगुप्तात्मज-स्कन्दगुप्तस्य विविधच्छन्दोनिबद्धः गुणालंकार-विभूषितः ऊनचत्वारिंशत्पद्यात्मकः जूनागढ-प्रस्तराभिलेखः[1] तस्मिन्नेव शिलापट्टे विराजते, यत्र अशोकस्य चतुर्दशाभिलेखाः रुद्रदाम्नोऽभिलेखश्च समुत्कीर्णाः सन्ति।

स्कन्दगुप्तेन सुराष्ट्रस्य संरक्षणार्थं पर्णदत्तो नियुक्तः। एतस्य सुयोग्यस्तनयश्चक्रपालितः सुदर्शनसरोवरस्य भग्नसेतोः संस्कारं विधाय तत्रभव्यं विष्णुमन्दिरं निर्मितवान्। एतद्वृत्तान्त-वर्णन-पुरस्सरम् अभिलेखेऽस्मिन् महाराजस्कन्दगुप्तस्य परमपराक्रमस्य चित्रणं समुपलभ्यते। राजाधिराजोऽयं दर्पाहंकारयुक्तान् दुर्दम्यान् नरपतीन् वशीकृत्य चतुःसमुद्रमेखलाया-वसुन्धराया एकाधिपतिर्बभूव। अस्याप्रतिमगुणगणाकृष्टा राज्यलक्ष्मीः अन्यान् विहाय एनमेव वरयांचकार। अयंहि सुचारु राज्यशासन-व्यवस्थायै सर्वेषु प्रदेशेषु राज्यपालान् नियोजयामास। सुराष्ट्रे च कुशलिनं पर्णदत्तं नियुज्य निश्चिन्ततामन्वभवत्।[2]

---

१. गुर्जरप्रदेशान्तर्गते जूनागढपर्वते शिलोत्कीर्णः गुप्त स. १३६-१३८ कालिकः।

२. नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्याम् स्वस्था यथा नोन्मनसो बभूवुः। पूर्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत्।। १३।।

अज्ञातनाम्नः कविवरस्य काव्यकौशलमभिलेखेऽस्मिन् दरीदृश्यते। विविधवृत्तविगुम्फितं विविधगुणालंकारसमन्वितं पद्य-कदम्बमस्य काव्यनिर्माण-नैपुण्यं प्रकाशयति।

**तदनुजयतिशश्वत् श्रीपरिक्षिप्तवक्षाः**
**स्वभुजजनितवीर्यो राजराजाधिराजः।**
**नरपतिभुजगानां मानदर्पोत्फणानां,**
**प्रतिकृति गरुडाज्ञां निर्विषां चावकर्ता।।२।।**

राजाधिराजः स्कन्दगुप्तः स्वभुजबलपराक्रमेण राज्यलक्ष्मीम् परमानुरक्तां वशवर्तिनीमकरोत्। विषवमनं कुर्वद् भयानकफणरूप-मानदर्पशालिनां भयावह-प्रतिपक्षिणां भुजगायमानानां नरपतीनामुपरि गरुडरूपं निदेशं विधाय तान् निर्विषान् भग्नन्दर्पान् व्यधात्। अर्थात् गरुडो यथा सर्पान् निष्प्रभावान् करोति, तथैव स्कन्दगुप्तः प्रतिपक्षिणः प्रभावहीनानकरोत्। अत्र प्रतिपक्षि-नरपतौ भुजगस्य, तन्मान-दर्पयोः उत्फणस्य, प्रतिकारे गरुडादेशस्य च आरोपात् रूपकालंकारो हृद्यतामादधाति। एवंविधानि अन्यान्यपि अलंकृतानि मनोहराणि पद्यानिअभिलेखेऽस्मिन् विलसन्ति।

स्कन्दगुप्तस्य गद्यपद्यात्मके भितरी प्रस्तर[1]स्तम्भाभिलेखे तेन विष्णुमन्दिरे प्रतिष्ठापितस्य भगवतः शार्ङ्गिणः स्तवनम्, स्तम्भ-स्थापनम्, गुप्त वंशीय-नृपाणां वर्णनञ्च अङ्कितानि सन्ति।

महाराजस्कन्दगुप्तः परमवैष्णवः सन्नपि वैष्णवेतर जैनादि धर्मस्यापि समादरं कुर्वन्नासीदिति तस्य (कहाँव) कहौम प्रस्तर-स्तम्भाभिलेखेन[2] स्पष्टं विज्ञायते।

शक्रकोपमस्य महाराज स्कन्दगुप्तस्य शान्ते प्रशासनकाले[3] प्रख्यातेऽस्मिन् ककुभ (कहौम) इति नामके ग्रामे सोमिलस्य प्रौत्रेण, भट्टिसोमस्य पौत्रेण, रुद्रसोमस्य पुत्रेण द्विज-गुरु-साधु-जन-प्रियेण स्तम्भोऽयं स्थापितः-"**पुण्यस्कन्धं स चक्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्यभीतः श्रेयोऽर्थं भूतभूत्यै पथि नियमवता मर्हतामादि कर्तॄन् पञ्चेन्द्रान् स्थापयित्वा धरणिधरमयान् सन्निखातस्ततोऽयम् शैलस्तम्भः सुचारुर्गिरिवर-शिखराग्रोपमः कीर्तिकर्ता।।**"[4]

कुमारगुप्तद्वितीयस्य[5] भितरी-मुद्रालेखः अष्टपङ्क्त्यात्मकः गुप्तवंशीयराजानाम्-श्रीगुप्त-घटोत्कच-प्रथमचन्द्रगुप्त-समुद्रगुप्त-द्वितीय चन्द्रगुप्त-कुमारगुप्त (स्कन्दगुप्त)-पुरुगुप्त-

---

१. उत्तरप्रदेशे गाजीपुरमण्डले सयीदपुर-निकटे भितरीनामे ग्रामे स्थापितेऽस्मिन् प्रस्तर-स्तम्भेऽभिलेखोऽयं समुत्कीर्णः।

२. उत्तरप्रदेशे गोरखपुरमण्डलान्तर्गत देवरिया तहसीलमध्ये सलमपुरमझौलीतः क्रोशद्वयसमीपे प्राचीन ककुभ (वर्तमान कहाँव) नामके स्थापिते प्रस्तर-स्तम्भेऽभिलेखोऽयं समुत्कीर्णः।

३. गुप्तसंवत् १४१ = ४६० ई.

४. अभिलेखस्यान्तिमं पद्यम्

५. उत्तरप्रदेशे गाजीपुरमण्डले भितरीग्रामे प्राप्तोऽयं मुद्रालेखः ४७३ खिष्टाब्दस्य वर्तते।

नरसिंहगुप्त-परमभागवतद्वितीयकुमारगुप्तानां क्रमशः उल्लेखं करोति। मुद्रात्मकत्वादस्याभिलेखस्य विशिष्टमैतिहासिकं महत्त्वं वर्तते।

बुद्धगुप्त कालीन[1]-सारनाथ-बौद्ध प्रतिमाभिलेखः,[2] अनुष्टुप् छन्दोनिबद्धः चतुश्श्लोकात्मकः प्रथमकुमारगुप्तपौत्रेण पुरुगुप्त-पुत्रेण बुद्धगुप्तेन बुद्धमूर्तेरधोभागे समुत्कीर्णीकृतः, बुद्धदेवस्य भव्यां मूर्तिं वर्णयति।

गुप्तशासकानामुपलब्धा बहवोऽभिलेखा ये जॉबफेथफुल-फ्लीट महाशयेन संकलिताः सम्पादिताश्च, गिरिजाशंकरप्रसाद मिश्रकृत-हिन्दीभाषानुवादसहिते 'भारतीयाभिलेखसंग्रहे'[3] प्रकाशिताः सन्ति। एतस्मिन् संग्रहे पूर्णविवरणेन सह एकाशीतिरभिलेखाः संगृहीता विद्यन्ते। जिज्ञासुभिस्ते तत्रैव द्रष्टव्याः।

मौर्य साम्राज्यस्य पतनात्परम्, वस्तुतः अशोकस्य निधनात् (ख्रि.पू २३२) पश्चादेव सातवाहनराज्यस्य प्राबल्यम् भारते प्रारब्धमभूत्। तदानीमेव एशियामध्यभागात् शकजातीया आक्रान्तारः भारते प्रविश्य आक्रमणं प्रारभन्त। ते गान्धारमधिकृत्य सातवाहननृपैः युद्धमकुर्वत। उभयोः जय-पराजययोः कारणात् परस्पर-संघर्ष-मूलकमशान्तं वातावरणं गुप्तसाम्राज्यात्पूर्वं सर्वत्रनासीत्। गुप्तसाम्राज्यकालेऽपि विशेषतः कुमारगुप्त-स्कन्दगुप्तसमये एशियामध्यभागात् हूणजातीया वर्वराः पह्लवा, यवनाश्च भारते विभिन्न स्थाने आक्रमणमकुर्वत। स्कन्दगुप्तस्य पराक्रमेण पराजिता वशीभूतास्ते यत्र-तत्र स्वावस्थानं व्यधुः। क्रमशस्ते भारतीय धर्मं संस्कृतिञ्चान्वसरन्। द्वितीयशतकमध्यभागे शकराजस्य रुद्रदाम्नोऽभिलेखः तथ्यमिदं प्रमाणयति। एवमेव गुप्तसाम्राज्यकालीना वैदेशिका अपि हूणादिजातीया भारतीयाः सन्तः समसामयिकान् घटना-विशेषान् संस्कृताभिलेखेषु अङ्कितानकुर्वन्। एतादृशेष्वेवाभिलेखेषु हूणराज तोरमाणपुत्रस्य मिहिरकुलस्य शासनस्य पञ्चदशे वर्षे ५१५ ख्रिष्टाब्दे मध्यप्रदेश-ग्वालियरदुर्गे सूर्यमन्दिरभित्तौ समुत्कीर्णः विभिन्नवृत्तेषु विरचितः त्रयोदश पद्यात्मकः मिहिरकुलस्य शिलालेखो वरीवर्ति।

एवमेव महाराज संक्षोभस्य गद्यपद्यात्मकः खोह-ताम्रपट्टद्वयाभिलेखः[4] उत्तरक्षेत्रीय परिव्राजकवंशीय महाराजसंक्षोभस्य वंश-वर्णनपुरस्सरम् तद्द्वारा कृतस्य औपाणि-नामक ग्रामदानस्य विवरणं प्रस्तौति। छोडगोमिनामकेन एकेन समाज-सेवकेन निवेदितो महाराज-संक्षोभः आपाणि ग्रामे स्थितस्य देवी मन्दिरस्य संरक्षणाय देवीपूजाकार्य-संचालनाय च तद् ग्रामार्द्धभागम् प्रादात्। एतत् प्रसङ्गे दानमाहात्म्यस्य दत्तधनपरिरक्षणस्य च वैशिष्ट्यं सुमुल्लिखितं वर्ततेऽस्मिन्नभिलेखद्वये।

---

१. गुप्तसम्वत्सरे १५७ = ४७६ ख्रिष्टाब्दे।

२. उत्तरप्रदेशे वारणसीनिकटे प्रसिद्ध बौद्धस्थले सारनाथे बुद्धमूर्तेरधोभागे समुत्कीर्णः।

३. भारतीय अभिलेख संग्रह (खण्ड ३) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थअकादमी, जयपुर, १९७४

४. मध्यप्रदेशे सतनामण्डले खोहनामक ग्रामसमीपे समुपलब्धः ताम्रपट्टद्वयाभिलेखः।

एतेन विज्ञायते यन्न केवलं राजाधिराजाः, अपितु क्षेत्रीयाधिपतयोऽपि अभिलेखनमहत्त्वं जानाना घटनाविशेषं चिरंजीवयितुमभिलेखान् समुत्कीर्णयामासुः।

विष्णुवर्धनापरनामकस्य महाराज यशोधर्मणो मन्दसोर प्रस्तर-स्तम्भाभिलेखः[1] न केवलमैतिहासिकदृष्ट्या अपितु साहित्यिकदृष्ट्यापि वैशिष्ट्यमावहति। कक्कस्य सूनुना वासुलेन स्रग्धराच्छन्दोगुम्फिते नवपद्यात्मकेऽस्मिन्नभिलेखे यशोधर्मणः साम्राज्यस्य लौहित्य- ब्रह्मपुत्रालिङ्गित प्रदेशात् कामरूपादारभ्य महेन्द्रपर्वतं यावत्, हिमलयात् पश्चिम समुद्रं यावत्-विस्तारः, मिहिरकुल-सहित-समस्त-सामन्तैः प्रदत्तः तस्मै चूडारत्नोपहारश्च सम्यग् वर्णयाञ्चक्राते। तथाहि-

**वेपन्ते यस्य भीमस्तनित-भय-समुद्भ्रान्त दैत्या दिगन्ताः**
**शृङ्गाघातैः सुमेरोर्विघटितदृषदः कन्दरा यः करोति।**
**उत्क्षाणं तं दधानः क्षितिधर-तनया-दत्तपञ्चाङ्गुकलाङ्क-**
**द्राघिष्ठः शूलपाणेः क्षपयतु भवतां शत्रु-तेजांसि केतुः।।१।।**
**आलौहित्योपकण्ठात् तलवनगहनोपत्यका दामहेन्द्रा-**
**दागङ्गाश्लिष्टसानोस्तुहिनशिरवरिणः पश्चिमादापयोधेः।**
**सामन्तैर्यस्य बाहुद्रविण-हृत-मदैः पादयोरानमद्भि-**
**श्चूडारत्नांशु राजिव्यतिकर-शवला भूमिभागाः क्रियन्ते।।५।।**

अस्यैव महाराज यशोधर्मणः अपरस्मिन् मन्दसोर-प्रस्तर-स्तम्भाभिलेखे[2] आर्या- पुष्पिताग्रा-मालिनी-शिखरिणी-स्रग्धरोपजाति-शार्दूलविक्रीडित-वसन्ततिलकादि वृत्त-रचितेषु पञ्चविंशतिमित-पद्येषु दक्षद्वारा निर्दोषनामककूपस्य निर्मितेः, तत्पितृव्यस्य अभयदत्तस्य स्मृतौ तत्र अभिलेखाङ्कित-प्रस्तर-स्तम्भस्थापनस्य च विस्तरेण वर्णनं विद्यते।

महाराज यशोधर्मणः प्रतिनिधिरूपेण शासनं कुर्वन् अभयदत्तः पश्चिमे वयसि स्वभातृजस्य दोषकुम्भस्य तनयाय धर्मदोषाय राज्यभारं प्रादात्। अस्यैव धर्मदोषस्य अनुज आसीद् दक्षः, योहि स्वर्गतस्य पितृव्यस्य अभयदत्तस्य पुण्यस्मृतौ ५८९ मालवसम्वत्सरे प्रस्तर- स्तम्भाभिलेखमिमं संस्थापयामास।

मौखरि-नृपस्य ईशानवर्मणः सुललितानाम् त्रयोविंशतेः पद्यानां हडाहाभिलेखः[3] मौखरि-वंश-प्रसूतानां नरपतीनां संक्षिप्तमितिहासं प्रस्तौति। अस्याभिलेखस्य महत्त्वम् काव्य दृष्ट्यापि अतिशेते। मङ्गलश्लोके त्रिपुरान्तकस्य अधोनिर्दिष्टवर्णनं हृदयावर्जकं वर्तते-

---

१. मध्यप्रदेशे मन्दसोर दुर्गस्य पूर्वद्वार समीपस्थ कूपसंलग्नप्रस्तरस्तम्भे ५८९ मालव सम्वत्सरे ५३२ खि. समुत्कीर्णः।

२. तत्रैव गन्दसोरदुर्गसमीपे।

३. उत्तरप्रदेशे वाराबंकीमण्डले हडाहा समीपे एकस्मिन् ग्रामे समुपलब्धः शिलाभिलेखः ६११ विक्रमाब्दे (५५४ खिष्टाब्दे) समुत्कीर्णः।)

**लोकाविष्कृति-संक्षय-स्थितिकृतां यः कारणं वेधसाम्**
**ध्वस्तध्वान्तचयाः परस्तरजसो ध्यायन्ति यं योगिनः।**
**यस्यार्द्धस्थित-योषितोऽपि हृदये नास्थायि चेतो भुवा**
**भूतात्मा त्रिपुरान्तकः स जयति श्रेयः प्रसूति र्भवः।।१।।**

अन्यान्यपि विविधालङ्कारविभूषितानि पद्यानि कवेः काव्य-निर्माण-कौशलं प्रकाशयन्ति। एवमेव शर्ववर्मणः असीरगढ मुद्राभिलेखः,[1] अनन्तवर्मणः वरावर-गुहाभिलेखः,[2] हर्षवर्धनस्य मधुवन-ताम्रपट्टाभिलेखः,[3] शशाङ्ककालीन-मिदनापुर-ताम्रपट्टाभिलेखश्च[4] ह्रस्वकलेवरा अपि ऐतिहासिकं साहित्यिकं च वैशिष्ट्यं प्रदर्शयन्ति।

चालुक्यवंश-तिलकस्य सत्याश्रयापरनामकस्य पुलकेशि-द्वितीयस्य ऐहोलाभिलेखः[5] राज्याश्रितस्य कविवर-रविकीर्तेः काव्यकीर्तिं संकीर्तयति। सत्याश्रयःस्वसाम्राज्यं विस्तारयन् तत्कालीनानेकान् नरपतीन् विजित्य तान् वशवर्तिनः अकरोत्। विजययात्रा-प्रसङ्गे वर्णितेन स्थानेन तथ्येन च भौगोलिकम् ऐतिहासिकञ्च ज्ञानं सुतरांजायते।

विविध सप्तदश वृत्त-विलसितम्, गुणालंकार-समन्वितम्, सप्तत्रिंशत् पद्यात्मकं काव्यमिदं महाकवि कालिदास भारवेश्च काव्यं स्पर्द्धते, यच्च स्वयमेव कविः "सविजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदास-भारविकीर्तिः[6] इत्यादिनाभिमन्यते।

पुलकेशिद्वितीयस्य पराक्रमवर्णने कवेः काव्यकौशलं शक्यते द्रष्टुम्-

**अपरिमित-विभूति-स्फीत-सामन्त-सेना-**
**मुकुट-मणि-मयूखाक्रान्त-पादारविन्दः।**
**युधि पतित-गजेन्द्रानीक-बीभत्स-भूतो-**
**भय-विगलित-हर्षो येन चाकारि हर्षः।।२३।।**

एवमेव सत्याश्रयस्य शक्तित्रयसम्पन्नसुशासकस्य शौर्यवर्णने चमत्कार-विशेषः समवलोक्यते-

**उत्साह-प्रभु-मन्त्र-शक्ति-सहिते यस्मिन् समस्ता दिशो-**
**जित्वा भूमिपतीन् विसृज्य महितानाराध्य देवद्विजान्।**

---

१. मध्यप्रदेशे बरहानपुरतः १७ कि. मी. दूरे पूर्वोत्तर दिग्विभागे असीरगढदुर्गे सिन्धिया महाराजस्य पेटिकायामुपलऽभूदयं मुद्राभिलेखः।

२. विहारप्रदेशे गयातः २२ कि.मी. दूरे पूर्वोत्तरभागे पनारीग्राम समीपे प्राचीन प्रवरगिरिनामके आधुनिक बराबरस्थाने लोमश ऋषिगुहाप्रवेशद्वारे समुत्कीर्णः।

३. उत्तरप्रदेशे आजमगढस्य मधुवनग्रामे समुपलब्धः ताम्रपट्टे समुत्कीर्णः।

४. वङ्गप्रदेशे मिदनापुर मण्डले उपलब्धः ताम्रपट्टे समुत्कीर्णः प्रायः ६१९ खिष्टाब्दे

५. कर्णाटप्रदेशे बीजापुर मण्डले ऐहोल ग्रामे मेगुटिमन्दिरस्यपूर्व भित्तौ अङ्कितः। ५५६ शकाब्दे ६३४ खिष्टाब्दे लिखितः।

६. येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म। इति पद्यस्य पूर्वार्द्धम्।

**वातापीं नगरीं प्रविश्य नगरीमेकामिवोर्वीमिमां-**
**चञ्चन्नीरधि-नील-नीर-परिखां सत्याश्रये शासति।।३२।।**

एवं विधान्यनेकानि पद्यानि अभिलेखेऽस्मिन् विलसन्ति। अतएव भारतीय विभिन्न विश्वविद्यालयेषु पाठ्यक्रमे निर्धारितेयं प्रशस्तिः स्वप्राशस्त्यमद्यापि तनुतेतमाम्।

तोमर-वंशीय-नरेन्द्र-महेन्द्रपालस्य सप्तविंशति-पद्यात्मकः पेहवा प्रस्तर खण्डाभिलेखः[1] काव्यदृष्ट्यापि कामपि विच्छत्तिमभिव्यनक्ति। मङ्गलाचरणं विदधत् कविः शाङ्गर्पाणे-र्भगवतो विष्णोः युगान्तकालीनं जलधि-शयनं वर्णयन् काव्य-कौशलं प्रदर्शयति-

**याते यामवतीपतौ शिखरिषु क्षामेषु सर्वात्मना**
**ध्वस्ते ध्वान्त-रिपौ जने विघटिते स्रस्ते च तारागणे।**
**भ्रष्टे भूवलये गतेषु च तथा रत्नाकरेष्वेकतामेको**
**यस्स्वपिति प्रधानपुरुषःपायात् स वः शाङ्गर्भृत्।।१।।**

सम्राजो हर्षवर्धनात् परम् उत्तरभारते प्रसिद्धस्य चौहान वंशीय नरेन्द्रस्य विग्रहराजस्य देहली-स्तम्भाभिलेखः[2] पद्य-चतुष्टयात्मकोऽपि ऐतिहासिक दृष्ट्या काव्य-दृष्ट्या च महत्त्वाधायको वरीवर्ति।

**लीलामन्दिर-सोदरेषु भवतु स्वान्तेषु वामभ्रुणाम्**
**शत्रूणां तनुविग्रहक्षितिपते! न्याय्योऽत्र वासस्तव।**
**शङ्का वा पुरुषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारांनिधे-**
**र्निमथ्यापहृतश्रियः किमु भवान् क्रोडे न निद्रायितः।।२।।**

अत्र अर्थापत्त्यलंकारेण 'किमु भवान् क्रोडे न निद्रायितः' इत्यस्य क्रोडे निद्रायित एवेत्यर्थोऽवगम्यते, येन भव्यं भावाभिव्यञ्जनं भवति।

पूर्वमध्यकालीनाभिलेखेषु महाराज विजयसेन कारित देवापाड-देवपाराग्रामस्थ श्रीप्रद्युम्नेश्वर-मन्दिर-शिलाभिलेखः[3] अतिप्राशस्त्यं भजते।

पद-पदार्थ-विचार-शुद्ध-बुद्धि-शालिना कविना उमापतिधरेण विरचिते षट्त्रिंशत्-पध्पधात्मकेऽस्मिन्नभिलेखे प्रद्युम्नेश्वरशिव-मन्दिर-निर्माणस्य सेनानाकयस्य च मनोरमं वर्णनं परीवर्ति। आदौ शिव-स्तुतिं विधाय अद्वैतरूपयोर्हरिहरयोराधेष्ठानं प्रद्युम्नेश्वरमन्दिरं नमस्कृत्य कविः लक्ष्मी-शैलजासहितयोस्तद्दयितयोरर्धनारीश्वररूपतया अतीव हृदयं वर्णनं व्यधात्।

---

१. हरियाणाप्रदेशे कुरुक्षेत्र मण्डले पेहवानगरे एकस्य भवनस्य भित्तौ संलग्नप्रस्तरखण्डे समुत्कीर्णः।

२. हिमालयोपत्यकायाम् हरियाणा-टोपरा-नामक स्थाने स्थिते अशोकस्तम्भे वीसल देवापर नामक चाहमानतिलक विग्रहराजस्यायमभिलेखः समुत्कीर्ण आसीत्। समयः १२२० विक्रमाब्दः = ११६३ ख्रिष्टाब्दः। पञ्चदशशतके फिरोजखानः स्तम्भमिमं स्थानान्तरित चकार अधुना फिरोजशाहतुगलकस्य कोटला नामके स्थाने वर्तते।

३. वङ्गप्रदेशवर्ति-राजशाही-मड्णलान्तर्गत-देवपाडग्रामे, देवपारेति प्रसिद्धे, श्रीप्रद्युम्नेश्वर नामके मन्दिरे शिलोत्कीर्णः द्वादशशतकपूर्वार्द्धकालिकः।

तथाहि-

**लक्ष्मीवल्लभ-शैलजा दयितयोरद्वैतलीलागृहं-**
**प्रद्युम्नेश्वरशब्दलाञ्छनमधिष्ठानं नमस्कुर्महे।**
**यत्रालिङ्गनभङ्गकातरतया स्थित्वान्तरे कान्तयो-**
**देवीभ्यां कथमप्यभिन्नतनुताशिल्पेऽन्तरायः कृतः।।२।।**

दक्षिणभारते कर्णाटप्रदेशे चन्द्रवंशे वीरसेनोनाम राजा बभूव। तस्मिन् ब्रह्मक्षत्रिय-सेनवंशे कुलभूषणो-महाप्रतापः सामन्तसेनोऽजायत, योहि पराक्रमिणं स्वतनयं हेमन्तसेनं राज्याधिकारिणं विधाय पश्चिमे वयसि गङ्गातटाश्रममध्युवास। हेमन्तसेनः स्वराज्यं विस्तारयितुकामः वङ्गदेशं स्वाधीनीकृत्य तत्रत्याधिपतिर्बभूव। अयंहि क्रमेणात्र महाराजाधिराज-विरुदेन स्वात्मानं विभूषयाञ्चकार। अस्यासीर्म्महिषी अनिन्द्यसुन्दरी यशोदेवी, यां वर्णयति कविः अधस्तनपद्येन-

**महाराज्ञीयस्य स्वपर-निखिलान्तःपुर-वधू-**
**शिरोरत्नश्रेणी किरण-सरणि-स्मेरचरणा।**
**निधिः कान्तेः साध्वी व्रत-विततनित्योज्ज्वलयशा-**
**यशोदेवी नाम त्रिभुवनमनोज्ञाकृतिरभूत्।।१४।।**

यशोदेवी-गर्भाज्जायमानोऽन्वर्थनामा हैमन्तसेनि-विजयसेनः स्वभुज-बल-पराक्रमेण गौड-कामरूप कलिङ्गादि-नृपतीन् विजित्य तदाश्रितां राज्यलक्ष्मीं स्ववशवर्तिनीं व्यधात्।

महाराज विजयसेनस्य विजयप्रतापमसहमानः सूर्यवंशीयो राजा नान्यदेवः ससैनिकबलः महता संरम्भेण कर्णाट-प्रदेशादागस्य विजयसेनमभिषेषयति स्म। परन्तु ततः पराजितः सन् पलायमानो मिथिलामशिश्रियत्।

घटनामिमां निर्दिशन् कविः विच्छित्तिपुरस्सरं वर्णयति-

**त्वं जान्यवीर-विजयीति गिरः कवीनां**
**श्रुत्वान्ययागननरूढनिगूढ-रोषः।**
**गौडेन्द्रमद्रवदपाकृत कामरूप-**
**भूपं कलिङ्गमपि यस्तरसा जिगाय।।२०।।**

शौर्य-वीर्य-दर्पितो विजयसेनः 'अहं केवलं नान्यवीर-विजयी, न-अन्यवीर-विजयीति' गूढार्थं विज्ञाय रोषाविष्ट गौड-कामरूप कलिङ्गभूपानपि बलेन जिगाय।

अस्य जयश्रियं संकेतयन् कविः कीर्तयति-

**गणयतु गणशः को भूपतींस्ताननेन, प्रतिदिनरणभाजा ये जिता वा हता वा।**
**इस जगति विषेहे स्वस्य वंशस्य पूर्वः, पुरुष इति सुधांशौ केवलं राजशब्दः।।१६।।**

षट्त्रिंशत्पद्य-कलेवरेऽभिलेखेऽस्मिन् सग्धरा-शार्दूलविक्रीडित-वसन्ततिलका-पृथ्वी-

मन्दाक्रान्तोपजाति-शिखरिणी-मालिनीन्द्रवज्रा-वृत्तानि प्रयुञ्जानः कविः छन्दोज्ञानवैशिष्ट्यमभिव्यनक्ति। विविधालंकारप्रयोगेण गुण-भावाभिव्यञ्जनेन च सकलकाव्य-कौशलं प्रकाशयति।

कविवर उमापतिधरः विजयसेन-पौत्रस्य, वल्लालसेन-पुत्रस्य लक्ष्मणसेनस्याधिराज्य-काले तत्कविरत्न-रूपेण विभासमान आसीदिति प्रमाणयति गीतगोविन्दकारो महाकवि जयदेवः-

**गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।**
**कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च।।**

प्रशस्तिमिमामुपसंहरन् कविः कवयति

**निर्णिक्त-सेन-कुल-भूपति-मौक्तिकाना-**
**मग्रन्थिल-ग्रथन-पक्ष्मल सूत्रवल्लिः।**
**एषा कवेः पद-पदार्थ विचार-गूहा**
**बुद्धेरुमापतिधरस्य कृति-प्रशस्तिः।।३५।।**

प्रशस्तेरस्याः खानकआसीद्वारेन्द्रक शिल्पि-गोष्ठी-चूडामणिः राणक शूलपाणिरिति परिचाययति अन्तिमं पद्यम्।[1]

काव्यमालायाः प्राचीनलेखमालायाम्[2] द्वितीयभागे दानपत्र-शासनपत्र-प्रशस्ति-रूपाः १२४ अभिलेखाः (विजयसेनप्रशस्तिसहिताः) लघुदीर्घकलेवराः प्रकाशिताः सन्ति।

एतेषु प्रशान्तरागापरनामधेयश्रीदद्दमहाराजानां दानपत्रम्[3] गद्यात्मकं बाण-दण्डिगद्यं स्पर्धते। तथाहि....यस्य प्रकाश्यते सत्कुलं शीलेन, प्रभुत्वमाज्ञया, शास्त्रमरति-प्रणिपातेन, कोपो निग्रहेण, प्रसादः प्रदानैः, धर्मो देवद्विजाति-गुरुजन-सपर्ययेति।[4]

तस्य सूनुः....सततमृतुगणस्येव वसन्तसमयः, वसन्तसमयस्येव प्रविकसित-निविड-चूततरु-वनाभोगः, सरस इव कमल-निवहः, कमल-निवहस्येव प्रबोधः इत्यादि।[5]

एवमेव अनेके पद्यात्मकाभिलेखा कवेः काव्य-कौशल-निदर्शनीभूता अस्यां प्राचीनलेखमालायां सुशोभन्ते।

विशालस्यास्य भारतदेशस्य विभिन्नप्रदेशेषु अद्यापि प्राचीना मध्यकालीना नवीनाश्च

---

१. धर्म-प्रणप्ता मनदास-नप्ता बृहस्पतेः सूनुरिमां प्रशस्तिम्।
चरवान वारेन्द्रक शिल्पिगोठी चूडामणीराणकशूपाणिः।। ३६।।

२. मुम्बईस्थ निर्णयसागर-यन्त्रालयात् १८९१ ख्रिष्टाब्दे प्रकाशिता म.म. पण्डित शिवदत्तेन सम्पादिता।

३. प्राचीनलेखमालायाम् नवसप्ततितमम् अशीतितमं च दानपत्रम्।

४. अशीतितमेदानपत्रे पृ. ४५

५. अशीतितमेदानपत्रे पृ. ४५

अनेकेऽभिलेखा गवेषकैः समुपलब्धाः प्रकाशं प्राप्नुवन्ति, प्राप्स्यन्ति च। अतः अभिलेखीय साहित्यस्य शृङ्खला इतिश्रियं नावाप्स्यति।

डॉ. मुकुन्दमाधवशर्मणो निबन्धात्[1] असम प्रदेशीय प्राचीनाभिलेखाः, पञ्चमशतकात् द्वादशशतकं यावत् ये प्रस्तरशिला-ताम्रपत्र-मृत्खण्ड-धातु-मुद्रा-मन्दिर-प्रतिमाभागेषु समुत्कीर्णा आसन्, दृष्टिपथमायाताः। एतेषु नगाजरी खनिकग्राम-शिलालेखः, सुरेन्द्रवर्मणः उमाचल शिलालेखः, हर्जर वर्मणः तेजपुर प्रस्तराभिलेखः, भास्कर-वर्म-वनमालवर्म-हर्जर-वर्म-रत्नपाल-प्रभृतीनाम् एकोनविंशतिः ताम्रपत्राभिलेखाः, मुद्राभिलेखाश्च महत्त्वपूर्णाः सन्ति, ये तदानीन्तनानि ऐतिहासिकतथ्यानि, नृपाणां धर्मानुष्ठानानि तेषां विविधशास्त्रज्ञानञ्च प्रकाशयन्ति। यथाहि भास्कर-वर्मणः दुवि-ताम्र-पत्राभिलेखः षष्ठशतककालिकनृपस्य सुस्थिर-वर्मणो विविध-शास्त्र-विशिष्ट-ज्ञानं सम्यग् वर्णयति-

**येन व्याकरणोदकोनयतिमिः सांख्योरु नक्रो महान्**
**मीमांसा बहुसारसानुरसित स्तर्कानिलावीजितः।**
**व्याख्यानोर्म्मि-परम्परातिगहनो न्यायार्थ फेनाकुल-**
**स्तीर्णो ज्ञेय सरित्पति-प्रकरणः स्रोतो विशालाङ्कुलः।।**

पद्य संख्या ५५ एवंविधानि पद्यानि तेष्वभिलेखेषु विलसन्ति।

अस्माकं प्रतिवेशि-राष्ट्रे नेपाले लिच्छविवंशीय-राजानां राज्यकाले-प्रथममानदेवस्य समयात् ४६३-६४ खिष्टाब्दात् जयकामदेवस्य समयं १०४६ खिष्टाब्दं यावत् शतशः अभिलेखाः समुत्कीर्णा उपलब्धाः सन्ति, ये भारत-नेपालयोर्मधुर-सम्बन्धं सूचयन्ति।

एतेषु स्तम्भ-शिला-ताम्रपत्राभिलेखेषु साहित्यिक-सौन्दर्यमतीव मनोहरं विद्यते। राज्ञो मानदेवस्य ४६४ खिष्टाब्दे समुत्कीर्णः शार्दूलविक्रीडितच्छन्दोनिबद्धः एकोनविंशति-पद्यात्मकः प्रशस्ति स्तम्भाभिलेखः अपूर्वं कवि-कर्म-कौशलं प्रकाशयति। मानदेवस्य पतिपरायणा माता स्वपतौ दिवङ्गते तच्चितामारोढुकामा शोकाकुल-चित्तेन वत्सलेन तनयेन अनुरुध्यमाना पाशवशगा विहगीव तनुजस्नेह निबद्धाभवतीतिवर्णयति सुकविः-

**किं भोगैर्म्मम किंहि जीवितसुखैस्त्वद् विप्रयोगे सति**
**प्राणान्पूर्वमहं जहामि परतस्त्वं यास्यसीतो दिवम्।**
**इत्येवं मुख-पङ्कजान्तरगतै र्नेत्राम्बुमिश्रै र्दृढम्**
**वाक्पाशै र्विहगीव पाशवशगा बद्धाततस्तस्थुषी।।१०।।**

मानदेवं वर्णयन् समुल्लिखति सत्कविः-

---

१. Sanskrit Inscriptions of Ancient Assam अखिल भारतीय संस्कृतपरिषद्, लखनऊ, Volume X, Insriptions of Ancient-Assam, Gauhati University, B.K. Barua, A cultural History of Assam 1969. .

पुत्रोऽप्यूर्जित-सत्त्व-विक्रम-धृतिः क्षान्तः प्रजावत्सलः
कर्ता नैव विकत्थनः स्मितकथेऽपूर्वाभिभाषी सदा।
तेजस्वी नच गर्वितो नचपरां लोकज्ञतान्नाश्रितः
दीनानाथ-सुहृत् प्रियातिथि-जनः प्रत्यर्थिनां माननुत्।।१२।।

एवंविधानि बहूनि विशिष्टानि पद्यानि लिच्छविराजानामभिलेखेषु[1] विलसन्ति।

खिष्टीय चतुर्दशशतक कालिकानां जुमला-प्रदेशीय-सेञ्जा-प्रशासकानाम् पृथ्वीमल्ल-रिपुमल्लादीनाम् शिला-ताम्र-रजत-सुवर्ण पत्राभिलेखा न केवलमैतिहासिकमपितु साहित्यिक-मपि वैशिष्ट्यं दधाति।

कर्णाटवंशीय नृप नान्यदेवस्य (खि १०९७) षष्ठोवंशधरः महाराज हरिसिंहदेवः वाङ्गालैर्यवनैरुपद्रुतः १३२६ खिष्टाब्दे[2] मिथिलामहीं विहाय नेपालमभ्यागत्य भक्तपुरे राजधानीं निर्माय तत्रत्यो राजाधिराजो बभूव।[3] एतत् कर्णाटवंश-सम्बद्धः जयस्थितिमल्लः १३७२ खिष्टाब्दे नेपाले मल्ल-शासनं सामन्तरूपेण संस्थाप्य क्रमशः महासामन्तः राजा चाभवत्। क्रमशः मल्लराजानां शासनानि विभक्तानि सन्ति भक्तपुरे, ललितपुरे, वसन्तपुरे कीर्तिपुरे च १७१८ खिष्टाब्दं यावत् धर्म-संस्कृति-शिक्षा-साहित्य-विकासकानि अभूवन्। अमीषु दिवसेषु साहित्य-संगीत-कलानुरागिभिर्मल्लवंशीयै-राजाभिः शतशः संस्कृताभिलेखाः, काव्य-कौशल-निदर्शनी-भूताः, स्वस्वराजधान्यां मन्दिरेषु स्तम्भेषु, शिलापट्टेषु च अङ्किताः संस्थापिताश्च। एतदभिलेखीय काव्यसौन्दर्यं समवलोक्य सहृदय काव्य-रसिकाः प्रहृष्यन्तीति कानिचित् पद्यानि उदाह्रियन्तेः-ललितपुर पाटनस्थः सिद्धनरसिंहमल्लः हरिसिंहदेवं वर्णयन् अभिलेखयति-

संजातो हरसिंहदेव नृपतिः प्रोद्यत्प्रतापोन्नतिः
वंशे चण्डरुचेरचिन्त्यमहिमा श्रीमैथिलक्ष्माहरिः।
ज्ञात्वा दुर्यवनात् कलेरिव निजे राज्ये स्वधर्म-क्षतिं
नेपालावनि पीठमेत्य सुचिरं राज्यं चकार प्रभुः।।[4]

---

१. **नेपालीयाभिलेख-संग्रहः।**

२. वस्वन्धि-बाह-शशि-सम्मित-शाकवर्षे (१२४८) पोषस्य शुक्ल-दशमी--क्षिति-सूनुवारे।
व्यक्त्वा स्वपत्तनपुरीं हरिसिंहदेवो-दुर्दैव-देशितपथो गिरिमाविवेश।।
**मिथिलातत्त्वविमर्श** पूर्वार्द्धपृष्ठे १४३।

३. वाङ्गालै र्यवनैः क्रुधा विधिवशाद् राज्यं सद्रव्यं हृतम्
दुर्गं सीमर नामकं च सहसा नेपालमभ्यागतः।
सोऽयं भूमिपतिश्चकार-वसतिं भक्ताख्यपूर्यां रिपून्
हत्वा सम्प्रति शक्तिभक्तिसुदृढो राजाधिराजो महान्।।
द्र. आचार्य जयमन्तमिश्र विरचित **महाकविविद्यापति**- पृष्ठ २६

४. **अभिलेखगीतमाला**, मैथिली अकादेमी, पटना-१९७७ पृ. ८/समय १६२ खि.

प्रावीण्य-प्रथित-प्रताप-मथित-प्रत्यर्थि-पृथ्वीपति-
प्रोद्याम-प्रमदौघ-लोचन पयः प्रारब्ध-वारांनिधिः।
जातः श्रीहरिसिंहदेव नृपतिर्दाता वदातान्वये
संप्राप्तः पृथुना परेण समतां यो वृत्ति-दाता सताम्।।[1]

काठमाण्डू-तुलजाभवानी मन्दिर-भित्ति-समुत्कीर्ण प्रतापमल्लस्याभिलेखो वृत्तान्तमिमं निम्नप्रकारेण पल्लवयति-

आसीच्छ्री हरसिंहदेव-नृपतिर्दातावदाताशयः
श्रीकर्णाट-वसुन्धराधिप-महावंशोद्भवो भावुकः।
उन्मीलन् मिथिलापुरीं निरुपमां नीत्या प्रशासद् द्विषाम्
हन्ता शोभियशोऽपरामरसरित् स्रोतोविधायी गुणी।।
अन्तवल्लित-विद्युदम्बुदसमाः स्तम्बेरमा दुर्दमा-
दाहोत्तीर्ण-सुवर्ण-शृङ्खलयुता ग्रैवेय घण्टोद्यताः।
यस्यावासगृहं मदजलै र्जम्बालितं चक्रिरे
वल्गद् वाजि-पतत्पदाति-निचयं प्रल्हादवृन्दं परम्।।
आक्रान्तं यवनैर्भृशं विधिवशात् सोपद्रवं बान्धवैः
सार्द्धं तत्परिहाय चाश्मनगरं[2] नेपालमभ्यागतः।
सोऽनाधिष्ठित-मेदिनी-परिवृढान् निर्धूय दिव्यास्पदं
तेने भक्तपुरास्वयं च कलितं हृष्टैश्च पुष्टै र्जनैः।।[3]

प्रतापमल्लस्य पशुपति-शिलालेखेऽपि साहित्यिक भाषायाम् हरिसिंहदेवस्येदंमनोरमं वर्णनं विद्यते-

जातः श्रीहरिसिंहदेवनृपतिः प्रौढप्रतापोदयः
तद्वंशे विमले महारिपुहरे गाम्भीर्य-रत्नाकरः।
कर्ता यः सरसामुपेत्य मिथिलां संलक्ष्य लक्षप्रियो-
नेपाले पुनराढ्य-वैभवयुते स्थैर्यं विधत्ते चिरम्।।[4]

एवंहि मल्लकालीनराजानां काष्ठमण्डपोपत्यकायाम् स्तम्भ-शिलोत्कीर्णा विविधाभिलेखाः सरसकाव्य-माध्यमेन तदानीन्तनानि ऐतिहासिक तथ्यानि विशदयन्ति।

---

१. तत्रैव पृ. ८ समयः १६३७ खि.
२. अश्मनगरम् अधुना पनौतीति नाम्ना प्रसिद्धम्।
३. काठमाण्डूस्य तुलजा मन्दिर-शिलालेखः ने.स. ७६२ = १६४२ ए.डी. द्र. **मैथिली अभिलेख-गीतमाला** पृ. ६
४. पशुपतिप्राङ्गणस्य शिलालेखः। ने.स. ७७८ = १६५८

पुरा किल भारत-बृहत्तरभारतस्य प्रतिवेशिदेशेषु आधिपत्यम्, धार्मिक-सांस्कृतिक-सम्बन्धश्च अनुद्वेगकरं प्रमोदावहञ्चास्ताम्। तदनीन्तनं पारिवारिक माधुर्येण, स्थैर्येण, अभिव्यक्तिसामर्थ्येन च समाकृष्टा यवद्वीप-सुवर्णद्वीप वालि-द्वीप-मलय-हिन्दचीन- कम्बोजादि-देशेषु तदानीन्तनाः प्रशासकाः स्वकीयानैतिहासिकाभिलेखानुसंस्कृत-निबद्धानेव स्तम्भ-शिलापट्टादिषु अङ्कितानकार्षुः। तत्रत्याभिलेखेषु ये केचन इदानीं यावत् समुपलब्धास्ते साहित्यिक दृष्ट्यापि महत्त्वशालिनः सन्ति।

कम्बोज-भूभागे समुपलब्धेषु १४८ मित संस्कृताभिलेखेषु निर्दिष्टै र्विवरणैः संस्कृत भाषायाः तन्निहित ज्ञानराशेश्च प्रचार-प्रसार-व्यवहार-परिज्ञानानां समुत्कर्षो विज्ञायते। कम्बोजनृपेण यशोवर्मणा महाभाष्यस्य एका टीका विरचितेत्येकनाभिलेखेन सूच्यते।

कम्बोजस्य 'मेवोन' शिलालेखे संस्कृतनिबद्धानि २१८ मित पद्यानि सन्ति, येषु कानिचित् क्षति-ग्रस्तानि विद्यन्ते। ८७४ शकाब्दे = ९५२ खिष्टाब्दे लिखितेऽस्मिन्नभिलेखे राज्ञो राजेन्द्रवर्मणः प्रशस्तिः, सिद्धशिवपुरस्थ-सिद्धेश्वर-शिवलिङ्गस्य स्थापनम्, ततुसमीपे गौरी-शंकर-ब्रह्म-विष्णुसहितानाम् अष्ट शिवलिङ्गानां स्थापनञ्च विशेषतः वर्णितानि सन्ति। लघुकाव्यात्मकेऽस्मिन् अनेकानि पद्यानि कवेः कवि-कर्म-कौशलं निर्दिशन्ति।

अलंकृते निम्नपद्ये प्रसाद-माधुर्ये सहृदयैरास्वादनीये-

**आसाद्य शक्तिं विबुधोपनीतां माहेश्वरीं ज्ञानमयीममोघाम्।**
**कुमारभावे विजितारि-वर्गो यो दीपयामास महेन्द्रलक्ष्मीम्।।२०।।**

अत्रैकेनकुमारपदेन कार्तिकेयस्य महेन्द्रवर्म-पुत्रस्य राजेन्द्रवर्मणश्च बोधो विच्छित्तिं जनयति।

क्षीरसागरात् सुधांशुरिव दिवाकरात् अग्निरिव ब्रह्म-क्षत्रियवंशात् अखिल भूपालवन्दनीयो महेन्द्रवर्मा प्रादुर्बभूवेति वर्णयति कविः-

**दुग्धाम्बुराशेरिव पूर्णचन्द्र चण्डांशुरत्नादिव चित्रभानुः।**
**शुद्धान्नयाद् यो नितरां विशुद्धः प्रादुर्बभूवाखिलभूपवन्द्यः।।१४।।**

अभिलेखस्य पर्यालोचनाद् विज्ञायते यदस्य कवौ शक्ति-निपुणता-भ्यास-समवायः-विद्यमान आसीत्।

संस्कृतभाषायाः क्षेत्रं भारते एव सीमितं नास्ति। भारताद्बहि र्देशेष्वपि एतत् क्षेत्रं प्रसृतं विद्यते। अत एतेषु विशालक्षेत्रेषु उपलब्धानाम् संस्कताभिलेखानां विवरणं प्रस्तोतुं यदि नशक्यो तर्हि का कथानुपलभ्यमानाम्। इदानीं सर्वत्र यादृशः प्रयासो ता विधीयते तेन भविष्यत्यपि संस्कृताभिलेखा उपलप्स्यमना भवेयुः। एतेन निश्चीयते यत् संस्कृताभिलेखीय साहित्यरसः क्रमशः प्रवर्धमान एव भविष्यति।

उपरि चर्चितानां संस्कृताभिलेखानां पर्यालोचनया विज्ञायते यदेतेसां न केवलमैतिहासिकदृष्ट्या महत्त्वं विद्यते, अपितु काव्य-दृष्ट्यापिअतीव वैशिष्ट्यं वरीवर्ति। श्रव्यकाव्यस्य यावन्तो गद्य-पद्य-चम्पू-रूपाःप्रभेदाः सन्ति तेषां समेषां रूपाणि एष्वभिलेखेषु समुपलभ्यन्ते।

सुप्रयुक्तानां छन्दसां वैविध्येन, अलंकाराणां वैचित्र्येण, गुणानां-चमत्कारेण, रस-भावानामभिव्यञ्जने च एकत्र काव्य-रसिकामोदमान-मानसा जायन्ते, अपरत्र ऐतहासिकाः अत्र स्थितानां तथ्यरत्नानां सम्प्राप्त्या प्राचीन कालीनाम् आर्थिक-सामाजिक-धार्मिक सांस्कृतिक परिस्थितिं विज्ञाय तथ्यपरकेतिहासलेखने समर्था भवन्ति। अतोऽभिलेखीय साहित्यस्य गवेषणं परिशीलनञ्च समेषां कृते प्रमोदाय ज्ञानवर्धनाय च कल्पेते।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थानस्य बृहदितिहासलेखन योजनायां निर्मितानां विभिन्नखण्डानां पाण्डुलिपीनां परिमार्जने, प्रथममुद्रणसंशोधने, सूच्यादि निर्माणे च प्रधानसम्पादकस्य निर्देशानुसारं सर्वं दायित्वं डॉ. रमाकान्त झा साधु निरवहत्। झामहोदस्य वैदुष्यं कार्यकौशलञ्च विभावयता संस्थानेन अद्यापि तत्कार्यं सम्पादयितुं मनीषिवर्योऽयं समनुरुध्यते।

मम सम्पादितस्य पञ्चमखण्डस्यापि प्रूफ संशोधनादि कार्ये डॉ. झामहोदयः सर्वथा दत्तचित्तो वरीवर्तीति कार्तज्ञेन साधुवादेन च एनं समाजयमीति शम्।

वसन्त पञ्चमी
ई. २००१

विद्वज्जन-वशंवदो
जयमन्त मिश्रः

# सम्पादकीय

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी (सम्प्रति संस्थान) के तत्कालीन अध्यक्ष सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डा. करुणापति त्रिपाठी जी के सत्प्रयास से (संस्कृत वाङ्मय के बृहद् इतिहास के लेखन/प्रकाशन की एक योजना १९८७ ई. में बनाई गई। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इस मद में अनुदान की राशि भी स्वीकृत की गई। अकादमी के तात्कालिक निदेशक श्रीरमेशचन्द्र रस्तोगी जी ने अपने १४ अगस्त ८९ दिवसीय पत्र के द्वारा मुझे इस योजना की सविस्तर सूचना दी। आरम्भ में सोलह खण्डों में इसे प्रकाशित करने का विचार था। इसके त्रयोदश खण्ड में गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य आदि का समावेश किया गया था और इस खण्ड का सम्पादक मुझे मनोनीत किया गया था। इस खण्ड के विभिन्न विषयों के अनुसार अध्यायों का प्रस्तावित विभाजन और प्रत्येक अध्याय के लिए प्रस्तावित लेखकों के नाम के साथ अपनी स्वीकृति यथाशीघ्र भेजने का अनुरोध किया गया था। मेरे सविवरण स्वीकृति-पत्र की प्राप्ति के बाद १९ नवम्बर, ८९ दिवसीय पत्र द्वारा प्राप्त सूचनानुसार ५ जनवरी, १९९० को सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति डा. राजदेव मिश्र के आवास पर पं. करुणापति त्रिपाठी की अध्यक्षता में सम्पादकों की प्रथम बैठक हुई। इसमें लेखन-कार्य की एक निश्चित योजना बनाई गई।

बाद में इस कार्य में एकरूपता लाने के लिए पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय जी को प्रधान सम्पादक रूप में सुप्रतिष्ठित किया गया। उनके परामर्श से १८ खण्डों में इसके प्रकाशन की नई योजना बनी और मेरा पूर्व का तेरहवाँ खण्ड अब पञ्चम खण्ड के रूप में निर्धारित किया गया और इस खण्ड में १. गद्यसाहित्य, २. चम्पूकाव्य, ३. कथासाहित्य, ४. नीत्युपदेश, ५. संस्कृत कवयित्री-रचना तथा ६. अभिलेखीय साहित्य इन छह विषयों को छह अध्यायों में विभक्त किया गया। निर्धारित पृष्ठों को ध्यान में रखकर मनोनीत विशेषज्ञ लेखकों ने निश्चित समय के भीतर अपने-अपने आलेख को तैयार कर लिया। बीच में अनुदान राशि की प्रतीक्षा में प्रकाशन कार्य शिथिल पड़ गया। इसी बीच प्रधान सम्पादक आचार्य उपाध्याय जी के वैकुण्ठवास हो जाने के कारण उनके आवास से इस खण्ड की सामग्री को उपलब्ध करने में बहुत समय लग गया। भगवत् कृपा से अब सभी विघ्न बाधाओं से निर्मुक्त यह पञ्चम खण्ड संस्कृत और हिन्दी सम्पादकीय के साथ प्रकाश में आ गया है। विश्वास है, विशिष्ट लेखकों के सत् प्रयास से निर्मित यह खण्ड अपने विषय-माधुर्य को व्यक्त करते हुए सुधी सहृदय पाठक वृन्दको परितुष्ट करने में सफल होगा।

## १. गद्य-काव्य

मानव के भावों की भाषिक अभिव्यक्ति का प्रकाश जिस सहज सरल व्यक्तवाणी के द्वारा होता है उसे गद्य कहा जाता है। यही मानव के भावाभिव्यञ्जन का अकृत्रिम साधन होता है। जब वह काव्य में भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनता है तो गद्य-काव्य कहलाता है। भारत को ही इसका गौरव प्राप्त है कि विश्व की प्राचीनतम भाषा वैदिक संस्कृत के रूप में ही गद्य का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है। यजुर्वेद से आविर्भूत ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण, सूत्र, भाष्य आदि के सरल, स्वच्छन्द मार्ग से यात्रा करता हुआ गद्य आगे चलकर कवि-कोविदों के बन्धन में आकर गुण, रीति, रस और अलंकारों से सुसज्जित होकर सहृदयों के आकर्षण का केन्द्र बनने लगा। गद्य का यह अलंकृत आकर्षक रूप रुद्रदामन् (१५० ई.) के गिरिनार शिलालेख तथा समुद्रगुप्त (३५० ई.) के प्रयाग-स्तम्भ अभिलेख में दृष्टिगोचर होता है।

गद्य-काव्य के कथा, आख्यायिका आदि भेदों के उदाहरण रूप में 'वासवदत्ता' 'सुमनोत्तरा', 'भैमरथी' आदि कृतियों का उल्लेख, जो पूर्व में अष्टाध्यायी, वार्तिक, महाभाष्य आदि में हुआ था, उनके पारिभाषिक स्वरूपों का सविस्तर निरूपण भामह, दण्डी आदि आचार्यों की काव्यशास्त्रीय कृतियों में होने लगा। उन लक्षणों के लक्ष्य रूप में सुबन्धु की प्रत्यक्षर-श्लेषमय-प्रबन्ध रूप कथा 'वासवदत्ता' तथा बाणभट्ट की आख्यायिका 'हर्ष-चरित' एवं कालजयी कथा 'कादम्बरी' जैसी गद्य रचनाएँ सहृदय सुधी समाज को मदमत्त करने लगी।

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्"[1] आचार्य भामह का यह डिण्डिमनाद तथा "काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान्-प्रचक्षते[2]" आचार्य दण्डी का यह उद्घोष प्रमाणित करते हैं कि उस समय अलंकृत शैलीमूलक कलापक्ष को काव्य में अधिक प्रश्रय दिया जाता था। तत्कालीन सुधी-समाज में कवीश्वर की प्रतिष्ठा पाने के लिए सुबन्धु तथा बाणभट्ट ने अलंकृत शैली में अपनी-अपनी गद्य रचना की। वक्रोक्ति मार्ग-निपुण[3] (क) सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में पद-पद पर सभङ्ग और अभङ्गमूलक श्लेषालंकार का चमत्कार है तथा प्रभात, सन्ध्या, रात्रि, शरद्, वसन्त आदि ऋतु, वन, गिरि, नदी आदि के वर्णनों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोध, परिसंख्या आदि विभिन्न अलंकारों का दर्शन है जो अलंकारमर्मज्ञ सुधी पाठकों को मुग्ध करते हैं। बाण ने भी अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में "कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया" ऐसा कहकर 'वासवदत्ता', की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

---

१. भामहालंकार १, १३।

२. काव्यादर्श २, १।

३. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्ग-निपुणाश्चतुर्थो विद्यते नवा।। राघवपाण्डवीय १, ४१

"अविदितगुणापि सत्कवि-भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्। अनधिगत परिमलापि हि दृशं हरति मालतीमाला।" जैसे परिमल का घ्राणज आनन्द न मिलने पर भी मालतीमाला बरबस नेत्रों को खीचती है, वैसे ही गुण को न जानकर भी सत्कवि की वाणी श्रोताओं के कानों में मधु की धारा उड़ेल देती है। सुबन्धु की यह उक्ति उनकी अपनी 'वासवदत्ता' को ही ध्यान में रखकर कही गयी प्रतीत होती है। 'वासवदत्ता' की संरचना कहीं अत्युद्धत अर्थ-सन्दर्भ से भरपूर आरभटी वृत्ति में तो कहीं कोमल अर्थ के व्यञ्जक मध्यम कैशिकी वृत्ति में हुई है। रीति की दृष्टि से आचार्य वामन की ओजः और कान्ति गुणों से युक्त गौडीया रीति में उसकी निर्मिति हुई है।

इन सब कारणों से गद्य-काव्य की उपलब्ध कथा-कृतियों में विभिन्न दृष्टियों से सुबन्धु की 'वासवदत्ता' प्रथम स्थान पर परिगणित होती है।

(ख) महाराज हर्षवर्धन के सभारत्न महाकवि बाणभट्ट का आठ उच्छ्वासों में निबद्ध ऐतिहासिक 'हर्षचरित' प्रथम उपलब्ध आख्यायिका है जिसकी रचनाकर बाणभट्ट सुधी-समाज में वन्दनीय कवीश्वर के रूप में प्रख्यात हुए हैं।[1]

स्थाण्वीश्वर हर्षवर्धन (६०६-६४८) के चरित का वर्णन करते हुए उन्होंने अपने विविध शास्त्रों के अध्ययन-जन्य नैपुण्य का प्रदर्शन कर आख्यायिकाकारों में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। काव्य में दीर्घ समास बहुल पद-विन्यास से ओज गुण आता है। यही ओज उस समय गघ का जीवन माना जाता था।[2] बाणभट्ट ने अपने गद्य-काव्य में इस आदर्श का पूर्णतः अनुपालन किया है। 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में उन्होंने आदर्श गद्य-रचना के लिए नवीन अर्थ' अग्राम्य जाति, अर्थात् सहृदय हृदयाह्लादक स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, स्फुटरस, तथा विकटाक्षर-बन्ध[3] इन पाँचों को वाञ्छनीय माना है। विकटाक्षर-बन्ध का तात्पर्य है औदार्यगुण विशिष्ट पद-विन्यास, जिससे अभिप्रेत भाव अनायास अभिव्यक्त होता है। यद्यपि इन पाँचों का एकत्र समावेश दुष्कर है, फिर भी गद्यकार को अपनी पूर्ण सफलता के लिए इनके विधान का प्रयास करना चाहिए। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' में अपने उपर्युक्त आदर्शों के विधान का सफल प्रयास किया है। अतएव धर्मदास ने अपने 'विदग्ध-मुखमण्डन' में कहा है: "रुचिर-स्वर-वर्ण-पदा रसभाववती जगन्मनोहरति। सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुर-शीलस्य"।

'कादम्बरी' की रचना में बाणभट्ट ने अपनी विशिष्ट कला का उपयोग किया है। 'कादम्बरी' की कथा चन्द्रापीड और पुण्डरीक के तीन जन्मों के वृत्तान्तों पर आधारित है।

---

१. कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः। **हर्षचरित**

२. ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।

३. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षर-बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।। **हर्षचरित** प्र. ६

इसमें बाणभट्ट के कवि-कर्म-कौशल की विविध विशिष्ट छटाएँ देखने को मिलती हैं। विशाल विन्ध्य की विकट अटवी तथा साहसी शबर-सैन्य के रोमाञ्चकारी वर्णन एक ओर रौंगटे खड़ा करता है, तो दूसरी ओर धर्म के साक्षात् विग्रह, दयालुताके अद्वितीय अवतार, आध्यात्मिकता के देदीप्यमान रूप महर्षि जावालि और उनके पावन आश्रम का वर्णन सात्त्विक भावों से मानस पटलं को ओतप्रोत करता है। कहीं शैशव में गन्धर्वों की गोद में खेलने वाली मधुर-स्वर-शालिनी शिञ्जिनी की तरह मञ्जुभाषिणी अनिन्द्य सुन्दरी विरह विधुरा महाश्वेताका अपूर्व दर्शन होता है, तो कहीं अलौकिक सुख का उपभोग करने वाली गन्धर्वराज की कन्या कमनीय कलेवरा सहृदया कादम्बरी के वर्णन में उसके अपूर्व रूप का प्रत्यक्ष होता है। विषयानुकूल वर्णन करने की अपूर्व क्षमता को देख कर ही विज्ञ आलोचकों ने बाण को बाणी का पुरुषावतार माना है।[1] काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'कादम्बरी' वस्तुतः अतिद्वयी कथा है। बाण से पूर्व या पश्चात् ऐसी गद्य-रचना नहीं हुई।

'कादम्बरी' के पूर्वभाग की रचना के बाद बाण असमय में ही वाणी के रूप में अन्तर्हित हो गए। पश्चात् उनके परम विनीत तनय पुलिन्द (या पुलिन्ध्र) भट्ट ने कादम्बरी कथा को पूर्ण करने की लालसा से उत्तरार्द्ध की रचना की जैसा कि उन्होंने उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में बड़ी विनम्रता से अपने भाव को व्यक्त किया है :

**याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्द्धं**
**विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथा-प्रबन्धः।**
**दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य**
**प्रारब्ध एष च मया न कवित्व-दर्पात्।।**

बाण के उत्तराधिकारी ने कादम्बरी के उत्तरार्द्ध को अत्यन्त कवि कौशल से पूरा किया है।

(ग) काञ्ची के पल्लवनरेश नरसिंह वर्मा (६९०-७५०) के सभासद कविवर दण्डी काञ्ची के ही निवासी थे। इनके काव्यशास्त्रविषयक 'काव्यादर्श', छन्दविषयक 'छन्दोविचिति' तथा कथाविषयक गद्य-काव्य 'दशकुमारचरित' विद्वत्समाज में सुप्रसिद्ध हैं। महाकाव्यों में बृहत्त्रयी की तरह कथा साहित्य में प्रसिद्ध कथात्रयी में तृतीय स्थान प्राप्त करने का गौरव 'दशकुमार-चरित' को ही मिलता है।

'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका के पाँच उच्छ्वासों में अवन्तिसुन्दरीकथा के साथ दो कुमारों की कथा तथा उत्तर पीठिका में आठ कुमारों की कथाओं को मिलाकर 'दशकुमार-चरित' यह अन्वर्थ नाम सिद्ध होता है।

---

१. प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवह, गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती।

'दशकुमारचरित' के कथा-वस्तु-विन्यास, वर्णन-वैचित्र्य तथा कौतूहल पूर्ण चरित्र-चित्रण को देखकर ही दण्डी के प्रशंसकों ने वाल्मीकि और व्यास के बाद कविरूप में दण्डी को ही तीसरा स्थान दिया है।

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवत्।
कवी इति ततोव्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

(घ) **तिलकमञ्जरी**-उज्जयिनी के निवासी काश्यप गोत्रीय विप्रवर पं. सर्वदेवके ज्येष्ठपुत्र धनपाल धाराधीश मुञ्ज तथा भोज के राज्याश्रित थे। इन्होंने ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में 'तिलकमञ्जरी' कथा की रचना की थी। इसके उपोद्धात से ज्ञात होता है कि महाराज मुञ्ज ने धनपाल के वैदुष्य और काव्य-कौशल से अति प्रसन्न होकर इन्हें 'सरस्वती' की सम्मानोपाधि से विभूषित किया था।[1]

'तिलकमञ्जरी' कविवर धनपाल की काव्य-कला का चूडान्त निदर्शन है। सुबन्धु, बाण आदि के द्वारा निर्दिष्ट कथा-काव्य की विशिष्ट शैली का अनुसरण करते हुए इन्होंने अपनी प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति का अच्छा प्रदर्शन किया है, जिसमें परिसंख्या, विरोधाभास, आदि अलंकारों का चमत्कार सहृदय पाठकों को विमुग्ध कर देता है।

(ङ) **गद्यचिन्तामणि**-गद्यसाहित्य की कथा-परम्परा में वादीभसिंह विरचित 'गद्य-चिन्तामणि' ग्यारहवीं शताब्दी की एक उत्कृष्ट रचना है। यह ग्यारह लम्भों में विभक्त है। जिनसेन के महापुराण में वर्णित जीवन्धर-कथा के आधार पर लिखित 'गद्यचिन्तामणि' के आरम्भ में जिन मुनियों की प्रशस्ति, जैन धर्म और जैनदर्शन का वर्णन है। पश्चात् गद्य शैली में कथा का मनोरम वर्णन किया गया है।

(च) **मन्दारमञ्जरी**-भारद्वाज गोत्रीय पर्वतीय विप्रप्रवर शास्त्रमर्मज्ञ पं. लक्ष्मीधर के सुपुत्र, न्याय, व्याकरण, काव्य-शास्त्र के पारङ्गत 'वैयाकरणसिद्धान्तसूधानिधि', 'नव्यन्याय-दीधिति', 'अलंकारकौस्तुभ' 'रसचन्द्रिका' 'अलंकारप्रदीप' आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता पण्डित प्रवर विश्वेश्वर की प्रसिद्ध रचना 'मन्दारमञ्जरी' का कथा-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसके प्रस्तावना भाग में गौरी, शंकर, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की वन्दना, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि प्राक्तन कवियों की प्रशंसा तथा सुबन्धु, बाण आदि कथाकारों की प्रशस्ति है। दिव्य, अदिव्य धरातलों पर आधारित कौतूहलमय इसकी कथावस्तु कथाकार के वर्णन-कौशल से अत्यन्त मनोरम है एवं श्लेष, उपमा, परिसंख्या, विरोधादि अलंकारों के भव्य-विन्यास से सुसज्जित है।

---

१. तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपङ्कजरजः सेवाप्तविद्यालवो विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात् कथाम्।
अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तरचने यः सर्वविद्याब्धिना श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभूता व्याहृतः।।

(छ) **शिवराजविजय**-कथा-आख्यायिका की शृङ्खला जो प्राचीन काल से बनती आरही थी, वह वैदेशिक शासन काल में कुछ शिथिल होने पर भी सर्वथा अवरुद्ध नहीं हुई थी। इसी परम्परा में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पं. अम्बिकादत्त व्यास (१८५८-१९००) की कृति 'शिवराजविजय' विद्वत् समाज में विशेष रूप से आदृत हुई। शिवाजी महाराज की वीर गाथा पर आधृत इस कथा की रोचकता, भाषा की सरलता, शैली की विशिष्टता आदि कारणों से आज भी यह अत्यन्त लोकप्रिय है।

**चम्पूकाव्य**-शब्दार्थसंयोजनरूप कवि-कर्म-कौशल से निष्पन्न काव्य के दृश्य और श्रव्य द्विविध भेदों में श्रव्यकाव्य के गद्य, पद्य तथा मिश्र तीन प्रभेद होते हैं। इनमें गद्य एवं पद्य के विशिष्ट मिश्रण से निष्पन्न मिश्रकाव्य के चम्पू, करम्भक, विरुद, जयघोषणा आदि अनेक प्रभेद हैं। इनमें अनेक भाषाओं में विरचित गद्यपद्यमय मिश्रित काव्य को करम्भक[1] कहते हैं। 'विश्वनाथप्रशस्ति-रत्नावली' इसका प्रसिद्ध उदाहरण है।

गद्य-पद्यमय राजस्तुति को विरुद[2] कहते हैं। इसके रघुदेवकृत विरुदावली, कल्याण-विरचित विरुदावली आदि उदाहरण मिलते हैं।

गद्य-पद्यमय देव, नृप आदि विषयक जयघोषणात्मक मिश्रकाव्य को जयघोषणा कहा जाता है। इसके लक्ष्यरूप में 'सुमतीन्द्रजयघोषणा' प्रसिद्ध है।

ताम्रपत्र, शिलापट्ट, स्तम्भ आदि पर उत्कीर्ण गद्य-पद्यात्मक काव्य भी मिश्रकाव्य की कोटि में आते हैं। इस तरह मिश्रकाव्य के ख्यात और प्रकीर्ण दो प्रभेद किए जाते हैं। इनमें ख्यात-प्रबन्धात्मक मिश्रकाव्य को चम्पू तथा विरुद, करम्भक, उत्कीर्णात्मक आदि मिश्रकाव्य को प्रकीर्ण कहते हैं।[3]

## १. चम्पूकाव्य-निर्माण का निदान-

पद्य छन्दोबद्ध रागलयात्मक होता है। यह रस, गुण, अलंकार आदि के साथ-साथ गेय-धर्मिता के कारण सहृदय-हृदय को आकृष्ट करता है। गद्य रस, गुण आदि के साथ-साथ अपने अर्थगौरव को लेकर सहृदयों को आह्लादित करता है। गेय-धर्म और अर्थ-गौरव इन दोनों को एकत्र समाविष्ट करने के लिए कवियों ने चमत्कृत चम्पूकाव्य का निर्माण किया है।

---

१. करम्भकं तु विविधाभि र्भाषाभि र्विनिर्मितम्। **साहित्यदर्पण** ६, ३३७

२. गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। वहीं।

३. मिश्रं वपुरितिख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा। **अग्निपुराण** ३३७।३८

भोजदेव ने अपने 'चम्पूरामायण' काव्य में इस वैशिष्ट्य की ओर संकेत किया है:

> **गद्यानुबन्ध-रस-मिश्रित-पद्य-सूक्ति-**
> **र्हृद्याहि वाद्य-कलया कलितेव गीतिः।**
> **तस्माद् दधातु कवि-मार्ग-जुषां सुखाय**
> **चम्पू-प्रबन्ध-रचनां रसना मदीया।।**

जैसे वीणा वाद्य के साथ गान श्रोताओं को अधिक आनन्द देता है, वैसे ही गद्य के मिश्रण से मनोहर पद्य अत्यन्त हृदयाह्लादक हो जाता है। इसलिए कवि-मार्ग के अनुसरण करने वाले लोगों के परमप्रमोद के लिए गद्य-पद्योभयात्मक चम्पूकाव्य की रचना कवि-कोविद करते हैं। इनमें भावात्मक विषयों का वर्णन पद्य के द्वारा तथा वर्णनात्मक वस्तुओं का विवरण गद्य के द्वारा प्रस्तुत होता है।

## २. चम्पूशब्दार्थ-

गत्यर्थक-ज्ञानार्थक-चौरादिक चपि धातु से औणादिक 'ऊ' प्रत्यय से निष्पन्न योगरूढ चम्पू शब्द परमानन्द देने वाले काव्य-विशेष के लिए प्रयुक्त होता है।

हरिदास भट्टाचार्य "चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मितीकृत्य प्रसादयतीति चम्पूः" ऐसी व्युत्पत्तिकर चमत्पूर्वक पूञ्पवने धातुसे "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" इस पाणिनिसूत्र के बल पर चम्पू शब्द को निष्पन्न मानते हैं जिससे चम्पू में चमत्कार की प्रधानता द्योतित होती है। दोनों प्रकारों से चम्पू योगरूढशब्द है, जिससे काव्य-विशेष का बोध होता है।

## ३. चम्पूकाव्य का लक्षण-

दण्डी के 'काव्यादर्श' के अनुसार गद्य-पद्यमयी रचना को चम्पू[1] कहते हैं।

हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन[2] में गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पूः' ऐसा लक्षण कर गद्य पद्य के साथ साङ्कत्व और सोच्छ्वासत्व को भी चम्पू का स्वरूपाधायक तत्त्व माना है।

डा. सूर्यकान्त ने 'नृसिंहचम्पू' की भूमिका में एक अज्ञात कर्तृक चम्पू-लक्षण[3] उद्धृत किया है। तदनुसार चम्पूकाव्य में गद्य-पद्य के मिश्रण, साङ्कत्व और सोच्छ्वासत्व के साथ उक्ति-प्रत्युक्ति तथा विष्कम्भक का राहित्य (नहीं रहना) भी आवश्यक है। चम्पू की इस

---

१. गद्यपद्यमयी वाणी (काचित्) चम्पूरित्यभिधीयते। **काव्यादर्श** १।३१

२. **काव्यानु.** ८।६

३. गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
उक्ति-प्रत्युक्ति-विष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता।।

कसौटी पर त्रिविक्रमभट्ट की 'नलचम्पू' ही खरी उतरती है, जिसमें लक्षण घटक सभी विषय उपलब्ध हैं। किन्तु अव्याप्ति दोष-ग्रस्त इस लक्षण के अनुसार अनेक चम्पुओं को चम्पू की लक्ष्यता/मान्यता नहीं मिलेगी; क्योंकि भागवतचम्पू, पुरुदेवचम्पू, आनन्दवृन्दावनचम्पू, रामानुज-चम्पू आदि स्तबकों में; यशस्तिलकचम्पू, वसुचरितचम्पू आदि आश्वासों में; आनन्दकन्दचम्पू, यतिराजविजयचम्पू आदि उल्लासों में; रामायणचम्पू, विरूपाक्ष वसन्तोत्सव-चम्पू आदि काण्डों में; शंकर मन्दारसौरभचम्पू, विद्वन्मोदतरङ्गिणीचम्पू आदि तरङ्गों में; बालभागवत-चम्पू, भरतेश्वराभ्युदयचम्पू आदि सर्गों में; रघुनाथविजयचम्पू, वरदाभ्युदयचम्पू प्रभृति विलासों में; जीवन्धरचम्पू लम्भकों में; आचार्यदिग्विजयचम्पू कल्लोलों में; मन्दारमन्दचम्पू मनोरथों में; रामचन्द्रचम्पू परिच्छेदों में विभक्त हैं। अतः साङ्कत्व और सोच्छ्वासत्व चम्पू के स्वरूप-विधायक तत्त्व नहीं हो सकते। ऐसे ही उक्ति-प्रत्युक्ति शून्यत्व और विष्कम्भक राहित्य भी चम्पू के लक्षणोमें नहीं आ सकते क्योंकि अनेक मान्य प्रसिद्ध चम्पू उक्ति-प्रत्युक्तियों से युक्त हैं और विष्कम्भक का विधान केवल दृश्य काव्य में होता है, अतः चम्पू में उसकी संभावना ही नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि महाकाव्य में सर्ग-बन्धता की तरह चम्पू में साङ्कता और सोच्छ्वासता अनिवार्य नहीं है। गद्य और पद्य का मिश्रण ही अनिवार्य है। किन्तु गद्य, पद्य का मिश्रित विधान पञ्चतन्त्र, जातकमाला आदि में भी देखा जाता है, अतः 'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते' यह पूर्वोक्त लक्षण भी अति-व्याप्ति-दोष से ग्रस्त होने के कारण चम्पू का निर्दुष्ट लक्षण नहीं बनता।

ऐसी स्थिति में विवेचन करने पर डा. कैलासपति त्रिपाठी लिखित 'नलचम्पू' की भूमिका में निर्दिष्ट चम्पू का निम्न लक्षण ही उपयुक्त प्रतीत होता है :

**"गद्य-पद्यमयं श्रव्यं सम्बद्धं बहुवर्णितम्।**
**सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्।।"**

यहाँ श्रव्य कहने से गद्य-पद्य-मिश्रित नाटकादि दृश्यकाव्य का व्यावर्तन होता है। सम्बद्ध प्रबन्ध कहने से जातकमाला, पञ्चतन्त्र, विरुद, दानपत्र, उत्कीर्णलेख आदि की व्यावृत्ति हो जाती है। निष्कर्षतः चम्पूकाव्य में १. गद्य-पद्य का मिश्रण, २. श्रव्यत्व, ३. प्रबन्धरूपता, ४. वर्णन की प्रधानता, ५. रस गुणालंकारों की अभिव्यञ्जकता-ये सभी आवश्यक माने जाते हैं, जो सभी प्रख्यात चम्पू कृतियों में मिलते हैं।

## ४. चम्पूकाव्य का उद्भव और विकास

गद्य तथा गद्यात्मक काव्य का उद्भव जैसे अतिप्राचीन काल में ही देखा जाता है, वैसे ही गद्य-पद्यमय चम्पूकाव्य का भी प्रकाश प्राचीन समय में ही हुआ था। ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान में गद्य-पद्य का मिश्रण मिलता है। वहाँ भी वर्णनात्मक विषय गद्य के

द्वारा और भावनात्मक विषय पद्य के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह मिश्र शैली प्रश्न, कठ, केन, मुण्डक आदि उपनिषदों में भी देखी जाती है जो सर्वथा स्वाभाविक/अकृत्रिम है।

चम्पू की मिश्र शैली में कृत्रिमता समुद्रगुप्त की दिग्विजय-प्रशस्ति (३५० ई.) में पायी जाती है, जहाँ हरिषेण ने रस, भाव, गुण, अलंकार, कला-चातुर्य आदि के विधान से सहृदयों को चमत्कृत करने का प्रयास किया है। अतएव यह प्रशस्ति चम्पूकाव्य की पूर्वपीठिका मानी जाती है।

हरिषेण के बाद और त्रिविक्रमभट्ट से पूर्व सुबन्धु, बाण, दण्डी, भारवि, माघ, कुमारदास, रत्नाकर आदि महाकवियों ने प्रायः इस मिश्र शैली में काव्य-सृष्टि नहीं की। इसका कारण मृग्य है।

## ५. (क) त्रिविक्रमभट्टविरचित नलचम्पू

विदर्भके निवासी शाण्डिल्य गोत्रीय श्रीधर के पौत्र देवादित्य के पुत्र कवि चक्रवर्ती त्रिविक्रमभट्ट ने ख्रिष्टीय दशवीं शती के पूर्वार्द्ध में 'नलचम्पू' की रचना की जो उपलब्ध चम्पूकाव्य में प्रथम स्थान रखती हैं। उसके बाद से आज तक चम्पू की अजस्र धारा वहती चली आ रही है।

'छत्र' के अपूर्व चमत्कृतवर्णन के कारण भारवि जैसे 'छत्र भारवि', दण्ड के वर्णन से दण्डी, घण्टा के वर्णन से 'घण्टामाघ', ताल के वर्णन से 'तालरत्नाकर', वैसे ही यमुना के वर्णन से 'त्रिविक्रमभट्ट' यमुनात्रिविक्रम' उपाधि से प्रसिद्ध हुए'[1]।

दमयन्ती के वय और वचन का मनोरम वर्णन करते हुए त्रिविक्रमने अपने चम्पू काव्य का विशिष्ट मनोहर रूप बड़ी वारीकी से अभिव्यक्त किया है। दमयन्ती के प्रसन्न, उदार, कान्त, सुश्लिष्ट, सुकुमार, अनेकालंकार विभूषित वय और वचन की तरह इनका नलचम्पू काव्य मनोहर है[2]।

कवि-कर्म-कला-कौशल के प्रदर्शन में परम निपुण कवि कोविद त्रिविकम का मानना है कि जैसे धानुष्क के द्वारा प्रयुक्त धनुष्काण्ड पर (शत्रु) के हृदय में लगकर यदि उसे मूर्च्छित नहीं कर देता तो वह व्यर्थ है, वैसे ही कवि-निर्मितकाव्य दूसरे के हृदय में जाकर यदि उसे आनन्दानुभूति में विभोर नहीं कर देता तो वह काव्य निरर्थक है[3]।

---

१. उदय-गिरि-गतायां प्राक्प्रभा-पाण्डुरायाम्, अनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योम-मध्ये, सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च।। ६/१

२. प्रसन्नमुदारं सत्कान्ति श्लिष्टं सुकुमारमनेकालंकार-भाजनम् वयो वचनंच। ६/२१

३. किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः।। १/५

रस, गुण, अलंकार, विशेषतः श्लेष, परिसंख्या आदि के विधान में नलचम्पूकार का स्थान काव्य-निर्माताओं में महत्त्वपूर्ण है। इनके मार्मिक उदाहरण संस्कृत सम्पादकीय भाग में द्रष्टव्य है।

नलचम्पूकाव्य-कथा का अवसान अकाण्ड में ही हो जाता है। लोकपालों के दूत्यकर्म करते हुए नल दमयन्ती को उनके सम्वादों से ज्योंही अवगत कराते हैं, कथानक समाप्त हो जाता है। दूसरे दिन होने वाले दमयन्ती-स्वयंवर की मुख्य घटना को जानने के लिए पाठक उत्सुक ही रह जाते हैं। अकाण्ड में ही कथानक के अवसान का कारण ज्ञात नहीं होता।

**(ख) मदालसाचम्पू**-त्रिविक्रमभट्ट की द्वितीय विशिष्ट रचना है 'मदालसाचम्पू'। मार्कण्डेयपुराण के १८ से २१ इन चार अध्यायों में वर्णित मदालसा और कुवलयाश्व के उपाख्यान पर आधारित मदालसाचम्पू काव्य 'मुदितमदालसा', 'मुदितकुवलयाश्व' आदि नाट्य कृतियों का उपजीव्य है। चम्पू के सभी तत्त्व एवं गुणों से मण्डित 'मदालसाचम्पू' त्रिविक्रम के काव्य-कौशल का निदर्शन है।

**(ग) यशस्तिलकचम्पू**-सुप्रसिद्ध जैन कवि सोमप्रभसूरि-विरचित 'यशस्तिलकचम्पू' का चम्पूकाव्य में विशिष्ट स्थान है। चालुक्यराज द्वितीय, अरिकेसरी के ज्येष्ठ पुत्र वामराज के आश्रित सोमप्रभसूरि राष्ट्रकूट के राजा कृष्णराजदेव तृतीय के समकालीन थे। अतः इस चम्पूकाव्य का रचना-काल ६५६ ई. के आसपास है।

गुणभद्रविरचित जैनों के उत्तरपुराण पर आधारित इस चम्पू-काव्य में अवन्तिराज यशोधर की जीवन-लीला से सम्बद्ध जैन धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। आठ आश्वासों में विभक्त प्रकृत चम्पू के प्रारम्भिक पाँच आश्वासों में यशोधर के आठ जन्मों की कथा गुम्फित है। अवशिष्ट तीन आश्वासों में यशोधर के समुज्ज्वल जीवन-चरित के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धान्त वर्णित हैं। इसमें जैन धर्म का निरूपण करना चम्पूकार का यद्यपि मुख्य उद्देश्य रहा है, तो भी चम्पूकार ने अपने काव्यकर्म-कौशल की छटा जहाँ-तहाँ दिखलाई है। जैन धर्म में दीक्षित होकर भी उन्होंने अपने सरस कवि-भाव को प्रकट किया है। नवदम्पती के परस्पर अनुराग का निम्न वर्णन द्रष्टव्य है :

> **एषा हिमांशु-मणि-निर्मित-देह-यष्टिः**
> **त्वं चन्द्रचूर्ण-रचितावयवश्च साक्षात्।**
> **एवं न चेत् कथमियं तव सङ्गमेन**
> **प्रत्यङ्ग-निर्गतजला सुतनुश्चकास्ति।। २/२१६**

इसमें गुम्फित अनेक सूक्तियाँ भी इस चम्पू के महत्त्व को प्रकट करती हैं। संस्कृत में चम्पू का अपना विशाल साहित्य है। इनमें हरिश्चन्द्र-विरचित 'जीवन्धरचम्पू', भोजराज-विरचित

रामायणचम्पू, सोड्ढल लिखित उदयसुन्दरीकथाचम्पू, अभिनव कालिदास-निर्मित भागवतचम्पू, अभिनवभारतचम्पू, अनन्तभट्टप्रणीत भारतचम्पू, आशाधर-विरचित भरतेश्वराभ्युदय- चम्पू, अर्हदास-लिखित पुरुदेवचम्पू, कविकर्णपूरप्रणीत आनन्दवृन्दावनचम्पू, जीवराज-रचित गोपालचम्पू, वल्ली सहायविरचित आचार्य दिग्विजयचम्पू काकुत्स्थ विजयचम्पू।

तिरुमलाम्बा-प्रणीत वरदाम्बिकापरिणयचम्पू, कविवर भानुदत्त मिश्र निर्मित कुमार-भार्गवीयचम्पू, कृष्णदत्त उपाध्याय-लिखित जानराजचम्पू, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र धर्मदत्त प्रसिद्ध बच्चा झा विरचित सुलोचनामाधवचम्पू, कविशेखर बदरीनाथझा प्रणीत गुणेश्वरचरितचम्पू, आदि विशिष्ट कोटिक चम्पूकाव्यों का सविस्तर विवरण इस भाग के इतिहास में डा. त्रिलोकनाथ झा ने पूर्ण मनोयोग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने जिन २६७ चम्पू काव्यों का सामान्य और विशेष परिचय मूलभाग में दिया है उनके अतिरिक्त भी अनेक प्रकाशित अप्रकाशित चम्पूकाव्य, जो स्वातन्त्र्योत्तर काल में, विशाल भारत देश में, लिखे गए हैं, प्रकृत खण्ड में अनिर्दिष्ट हो सकते हैं। काल-क्रम से वे भी सुधी समाज के दृष्टि-गोचर होंगे।

मनीषियों ने लोकद्वय साधनी चातुरी को वास्तविक चातुरी कहा है। इसी प्रेयः श्रेयः साधनीभूत चातुरी को केन्द्रबिन्दु बनाकर इन पङ्क्तियों के लेखक ने कविकर्म कौशल से दश आश्वासों में विभक्त 'महामानवचम्पू' काव्य की रचना की है, जो प्रकाश देखने के लिए अभी प्रयासरत है।

## कथा-साहित्य

कथा वाक्य-विन्यासरूप एक रमणीय रस-मन्दाकिनी है, जो आदिकाल से आपामरजनों के मानस में अपूर्व चमत्कार का संचार करती हुई निरन्तर प्रवहमान है। कथा के माध्यम से आबाल वृद्धों में नीति का ज्ञान आसानी से कराया जाता है। इसलिए वैदिक वाङ्मय से लेकर आज तक सभी भाषाओं में कथा का प्रकाश, विकास होता आ रहा है। प्राचीन काल में आख्यान, उपाख्यान आदि नामों से भी इसका व्यवहार किया जाता था, जो वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि में अनेक रूपों में वर्णित हैं।

पूर्वोक्ति गद्य-साहित्य के प्रसङ्ग में कथा और आख्यायिका का विवरण दिया गया है। वे कथा, आख्ययिका भी इसी कथास्रोत के समृद्ध विकसित काव्यात्मक रूप हैं। आचार्य आनन्दवर्धन ने इन्हीं कथा और आख्यायिका के साथ परिकथा, सकलकथा, खण्डकथा इन और तीन प्रभेदों को बतलाया है। इनमें जहाँ एक ही पुरुषार्थ को आधार बनाकर अनेक वृत्तान्तों का चमत्कृत वर्णन होता है उसे परिकथा कहते हैं।

वृत्तान्त के एक भाग का जहाँ वर्णन किया जाता है, उसे खण्डकथा और सम्पूर्ण फल के प्रतिपादक वृत्तान्त का जहाँ वर्णन होता है, उसे सकलकथा[1] कहते हैं।

इनके अतिरिक्त हेमचन्द्र ने अन्योन्य कथनों से युक्त सम्यक् प्रतिपादित कथारूप संकथा नामक एक और प्रभेद की चर्चा[2] की है।

विषय, पात्र, शैली तथा भाषा के आधार पर भी कथा के भेद किए जाते हैं।

(क) विषय के आधार पर १. धर्मकथा, २. अर्थकथा, ३.कामकथा और ४. मिश्रकथा ये चार प्रभेद होते हैं।

(ख) पात्र के आधार पर १. दिव्यकथा, २. मानुष्यकथा, तथा ३. मिश्रकथा रूप तीन प्रभेद किए जाते हैं।

(ग) विषयोपन्यास शैली की दृष्टि से १. सकलकथा, २. खण्डकथा ३. परिकथा, ४. परिहासकथा, ५. उल्लासकथा,

६. संकथा, ७. संकीर्ण कथा आदि प्रभेद माने जाते हैं।

(घ) भाषा के आधार पर १. संस्कृत भाषामयी, २. प्राकृत भाषामयी, ३. मिश्रभाषामयी प्रभेद किए जाते हैं।

(ङ.) कथानक पर आधृत १. पुरातनकथा, २. दैवतकथा, ३. नीतिकथा, ४. लोककथा, ५. दृष्टान्तकथा, ६. कल्पित कथा आदि विभिन्न प्रभेद होते हैं। इन सभी कथाओं के उदाहरण इतिहास, पुराण से लेकर आधुनिक कथाओं में मिलते हैं।

महर्षि शौनक द्वारा 'बृहद्देवता' में संगृहीत ४८ कथाओं से कथा का मूलस्रोत वैदिक वाङ्मय प्रमाणित होता है। कालक्रम से रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण, त्रिपिटक, जैनपुराण, बौद्धजातक, पञ्चतन्त्र, हितोपदेशः कथासरित्सागर, पुरुषपरीक्षा आदि में सहस्रशः धर्म, नीति, उपदेशात्मक कथाएँ निबद्ध हुईं, जिनका प्रचार-प्रसार न केवल भारत में, अपितु विश्व के कथा-साहित्य में आदर के साथ हुआ है।

धर्म, नीति-विषयक इन कथाओं से प्रादुर्भूत जन्तु-कथाओं का रामायण, महाभारत, पञ्चतन्त्र आदि में पूर्णतः विकास हुआ है। साथ ही वैष्णव शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों में धर्म, नीति, तीर्थ, व्रत आदि कथाएँ विकसित हुई हैं।

चीन विश्वकोश में अनेक भारतीय कथाओं का अनुवाद प्राप्त होने से खिष्टीय छठी शताब्दी से पूर्व ही भारतीय कथाओं का चीन देश में भ्रमण प्रमाणित होता है। इटली के विख्यात कवि पेत्रार्क के 'डिकेमेरान' नामक कथा-संग्रह में अनेक भारतीय प्राचीन कथाएँ मिलती हैं। इसी तरह अरबी-कथा संग्रह में भी भारतीय कथाओं का विकास देखा जाता

---

१. ध्वन्यालोक ३/६ कारिका की वृत्ति।

२. उल्लापः काकुवागन्योन्योक्तिः संलाप-संकथे। हेमचन्द्र-काव्यानुशासन।

है। इससे भारतीय कथाओं की विशेषता, उपादेयता, महत्ता तथा देशान्तर-यात्रा प्रमाणित होती हैं।

संस्कृत वाङ्मय में भारतीय कथाओं के संग्रहात्मक ग्रन्थों में जातकमाला, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर, वेतालपञ्चविंशति, पञ्चाख्यानक, तन्त्रोपाख्यान, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रबन्धकोश, भोजप्रबन्ध, पञ्चशती, कथा-संग्रह, कथामहोदधि, कथानककोश, कथार्णव आदि उपलब्ध होते हैं।

आज भी प्राचीन और नवीन कथाओं के अनेक संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें वेदाख्यानकल्पद्रुम, कथासूक्त, कथावल्लरी, दिशाविदिशा, महान, कथाकौमुदी बृहत्सप्तपदी, इक्षुगन्धा, राङ्गडा, लघुकथा-संग्रह, संस्कृतकथा-कौमुदी आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त २० से भी अधिक कथा-संग्रहों का विवरण संस्कृत सम्पादकीय भाग में दिया गया है, जिसे जिज्ञासु जन वहीं देखना चाहेंगे।

इन संग्रहों को देखने से निश्चित होता है कि वैदिक वाङ्मय से निःसृत कथा-धारा अविच्छिन्न रूपसे आज भी प्रवहमान है, जिसके अवगाहन से सभी प्रकार के लोग आनन्दानुभव करते हैं।

वेद, ब्राह्मण, उपनिषदों के प्रसिद्ध अध्यात्म-प्रधान शतशः कथानकों का विवरण मूलभाग तथा संस्कृत संपादकीय भाग में दिया गया है। ऐसे ही रामायण की अतिप्रसिद्ध कथाएँ तथा उन पर आधारित भारतीय भाषाओं में निबद्ध कथाएँ, जिनकी एक लम्बी सूची है, वहीं द्रष्टव्य है।

**"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।"**

महाभारत के इस प्रसिद्ध समुद्घोष के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय से सम्बद्ध जीवन-यात्रा के साधक, नीतिमार्ग-दर्शक शतशः आख्यान, उपाख्यान, कथाएँ, जो वहाँ वर्णित हैं, उनका दिग्दर्शन भी उन्हीं भागों में किया जा सकता है। ऐसे ही पौराणिक कथा, बौद्धावदानकथा, जैनकथा आदि का विवरण भी वहीं दर्शनीय है।

कथा-साहित्य की नीत्युपदेशात्मक कथाओं में खग, मृग-पात्र-प्रधान 'पञ्चतन्त्र' की सर्वाधिक प्रियता तथा विश्वजनीनता है। यह मित्र-भेद, मित्र-संप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्ध-प्रणाश तथा अपरीक्षितकारक नामक पाँच तन्त्रों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः २२+६+२१+१२+१४ कथाओं में व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी नीतिओं का मनोरम वर्णन है। इसके विभिन्न ९ संस्करण हैं। अपनी विश्वजनीनता और महनीयता के कारण पञ्चतन्त्र ने विश्व में भ्रमण करते हुए अत्यन्त आदर प्राप्त किया है। पचास से भी अधिक भाषाओं में इसके अनुवाद हुए है। देश-विदेश में इसके दो सौ से भी अधिक संस्करण उपलब्ध हैं।

पञ्चतन्त्र की परम्परा में नारायण पण्डित का 'हितोपदेश' और महाकवि विद्यापति की 'पुरुषपरीक्षा' अपनी लोकप्रियता के कारण प्रसिद्ध है।

मनोरञ्जक कथा-साहित्य में गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' के संस्कृत रूपान्तरों में बुध स्वामिकृत 'बृहत्कथाश्लोक-संग्रह', क्षेमेन्द्रकृत 'बृहत्-कथा-मञ्जरी', सोमदेवकृत, 'कथा-सरित्सागर', 'वेतालपञ्चविंशतिका', 'शुकसप्तति', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' आदि सुधी समाज में अत्यन्त श्लाघनीय हैं।

IV **नीत्युपदेश**-लौकिक तथा पारलौकिक अर्थों के उपाय जिसके द्वारा ज्ञात हो अथवा जिसमें प्रतिपादित हो उसे नीति कहते हैं।[1] अपने व्यापक अर्थ को व्यक्त करने के कारण नीति शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है।

(क) नीति के मुख्यतः दो भेद होते हैं-राजनीति और धर्मनीति। राजनीति में अर्थ तथा काम से सम्बद्ध, साम, दाम, भेद, दण्ड आदि के प्रतिपादक वचन संगृहीत होते हैं। और धर्म-नीति में धर्म और मोक्ष विषयक उपायों का प्रतिपादन होता है। ऐसे नीति-वचनों का निदर्शक काव्य नीतिकाव्य कहलाता है।

(ख) उपदेश के शिक्षण, मन्त्र-कथन, हितकथन, परामर्श-दान, व्यावहारिकज्ञान-प्रदान आदि अनेक अर्थ होते हैं। काव्य के अनेक प्रयोजनों में कान्तासम्मित उपदेश भी एक प्रमुख प्रयोजन है। संस्कृत के मनीषी कवियों ने मनोविनोद के साथ शिक्षण तथा आह्लाद के साथ तत्त्व-बोध को काव्य का अद्वितीय उद्देश्य माना है। कवियों ने उपदेशात्मक काव्य में इन चारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सफल समावेश किया है। कहीं-कहीं इस उपदेशात्मक काव्य में नीति का भी समावेश हुआ है। यद्यपि इनके बीच विभाजक रेखा को खींचना कठिन है, फिर भी जहाँ-प्रत्यक्षतः नीति का प्रतिपादन हुआ है उसे उपदेशात्मक नीतिकाव्य और जहाँ परोक्षरूप से कर्तव्याकर्तव्य हित का कमनीय काव्य के द्वारा निर्देश हुआ है, उसे उपदेशात्मक काव्य मानते हैं।

१. **नीतिकाव्य**-जहाँ सदाचरण, आदर्शचरित्र, जीवन और समाजोपयोगी कर्तव्याकर्तव्य का निर्देशक हितवचन का प्रतिपादन होता है उसे नीति-काव्य कहते हैं। हमारे मनीषियों की धारणा है कि वर्तमान जीवन पूर्वजन्मार्जित कर्मों का परिणाम है और वर्तमान जीवन का कर्म-कलाप भावी जीवन के निर्माण का असाधारण कारण है। अतः भविष्य में मधुर फल खाने के लिए वर्तमान में तदनुरूप बीजारोपण परमावश्यक है।

इन नीति-वचनों का प्रतिपादन कहीं प्रभुसम्मित वाक्य से और कहीं कान्तासम्मित वाक्य से हुआ है, जो सूक्ति, सदुक्ति, लोकोक्ति, सुभाषित, छन्दोबद्ध नीति-वाक्य के रूप में प्रचलित है। इनमें कुछ नीति-वचन श्रुति-परम्परा से लोक-कण्ठ में ही सुरक्षित हैं और

---

१. नीयन्ते प्राप्यन्ते लभ्यन्ते उपायाः लौकिकाः पारलौकिका वा अर्था अनया अस्यां वा सा नीतिः।

बहुशः विदुरनीति, चाणक्यनीति, नीतिशतक, तथा सूक्ति-सदुक्ति-सुभाषत-संग्रहों में निबद्ध हैं। रामायण, महाभारत, पुराण, मन्वादि स्मृतियों में प्रतिपादित नीति-वचनों का संकलन-कार्य अत्यन्त दुष्कर होने पर भी मनीषियों ने उनके संग्रह प्रकाशित किए हैं।

२. **नीत्युपदेशात्मक काव्य**-नीति-वचनों के संग्रहात्मक कार्यों के साथ-साथ नीति निपुण कवि-कोविदों द्वारा नीत्युपदेशात्मक काव्यों का नवनिर्माण-कार्य भी चलता रहा। इन नीत्युपदेशात्मक काव्यों की रचना विभिन्न शैलियों में होने लगी। कहीं दम्पती के परिसम्वाद में, जैसे रामचन्द्रागमी की 'सिद्धान्तसुधातटिनी' में, कहीं दो प्रेमियों के परस्परालाप में, जैसे चोर कवि के 'विद्यासुन्दर' और 'रम्भाशुकसम्वाद' में, कहीं युवती के साथ परिव्राजक के वार्तालाप में, जैसे 'मदनमुखचपेटिका' में, कहीं दो पशुओं के आलाप में, जैसे घटखर्पर के 'नीतिसार' में, कहीं पार्वती-परमेश्वर के परिसम्वाद में नीत्युपदेश का विलास देखा जाता है। इनके अतिरिक्त अन्योक्ति, प्रहेलिका आदि के रूप में भी नीत्युपदेश की रचना हुई है।

कहते हैं-'परोक्ष-प्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः'। देखा जाता है कि किसी बात को प्रत्यक्ष अभिधा वृत्ति से कहने पर जो प्रभाव होता है, उससे कहीं अधिक परोक्ष व्यञ्जनावृत्ति से अभिव्यक्त करने पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिए कवि कोविदों ने अन्योक्ति, प्रहेलिका आदि के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय को सूचित किया है।

अन्योक्ति शैली की रचनाओं में 'अन्योक्तिशतकम्' 'अन्योक्तिमाला', 'अन्यापदेश-शतक' आदि विशिष्ट कृतियों का परिचय तथा प्रहेलिका की पद्धति में विरचित नीत्युपदेशात्मक काव्यों में 'विदग्धमुखमण्डन', 'भावशतक', 'समस्यादीपक', 'दृष्टकूटार्णव', आदि अनेक विशिष्ट कृतियों का विवरण संस्कृत सम्पादकीय भाग और मूलभाग में जिज्ञासुजन देखना चाहेंगे।

वैदिक वाङ्मय से प्रादुर्भूत, रामायण, महाभारत, चाणक्यनीतिदर्पण, भर्तृहरि-नीतिशतक, कुट्टनीमत, कविकण्ठाभरण, कलाविलास, नर्ममाला, देशोपदेश, सेव्य-सेवकोपदेश, धर्मविवेक, मुग्धोपदेश, चारुचर्या, लोकोक्ति-मुक्तावली, नीतिसार, अश्वघाटी, पूर्वचातकाष्टक, उत्तरचातकाष्टक आदि शतशः शाखा-प्रशाखाओं में विकसित, पल्लवित, पुष्पित, फलित यह नीत्युपदेशात्मक काव्य-पारिजात न केवल भारतीय विद्वत्समाज को अपितु विश्वके सुधी समाज को इच्छानुरूप फल देता आ रहा है।[1]

पूर्व शताब्दी के अन्तिम चरण में डा. लुडविक स्टर्नबाख महोदय ने अत्यन्त परिश्रम से गवेषणा कर नीत्युपदेशात्मक काव्य का सविस्तर प्रामाणिक परिचय विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर से प्रकाशित किया है। इस स्तुत्य कार्य के लिए वे सर्वथा अभिनन्दनीय हैं।

---

१. विशेष विवरण मूलभाग तथा संस्कृत सम्पादकीय भाग में देखें।

सामाजिक गुण-दोषों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से व्यक्त करते हुए कवि-कोविदों ने नीत्युपदेशात्मक काव्य द्वारा सबों के हित और मङ्गल के लिए-

**"सर्वेषां मङ्गलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्[1] ।।"**

इस सार्वजनीन उदात्त भावना से इस काव्य-विधा का प्रकाश और विकास किया है।

**V-संस्कृत कवयित्री-रचना**-संस्कृत वाङ्मय से सुपरिचित प्रज्ञावान् इस तथ्य को जानते हैं कि जैसे कविवृन्द आदिकाल से संस्कृत काव्य-भण्डार को समृद्ध करते आ रहे हैं, वैसे ही कवयित्रियाँ भी वैदिक काल से ही इसकी समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान करती आ रही हैं। प्रस्तुत संक्षिप्त विवरण से वैदिक कालीन तथा तदुत्तर कालीन कवयित्रियों के अवदान का परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(क) जैसे साक्षात् कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा वैदिक मन्त्रों के दर्शन उनके सूक्तों में प्रत्यक्ष होते हैं। वैसे ही तपःपूत उन वैदिक ऋषिकाओं के मन्त्र-दर्शन उनके सूक्तों में उपलब्ध होते हैं। इन ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं के दृष्ट सूक्तों में दातपत्य-जीवन के सनातन भावोद्गार, पारिवारिक जीवन का सुखमय दिव्यरूप, जीवन के चरमलक्ष्य-प्राप्ति के सुन्दर साधन आदि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं।

महर्षि शौनक के 'बृहद्देवता' ग्रन्थों में जिन *ऋषिकाओं के नाम उल्लिखित हैं, उनमें नौ*-ऋषिकाओं के एकवर्ग द्वारा स्वदृष्ट सूक्तों में स्वेष्ट देवता की स्तुति मिलती है। उतनी ही संख्या की ऋषिकाओं के दूसरे वर्ग के सूक्तों में ऋषियों और देवताओं के साथ उनका वार्तालाप सुनने को मिलता है। वैसे ही तीसरे वर्ग के सूक्तों में ऋषिकाएँ परमात्म-स्वरूप आत्मा की स्तुति में संलग्न दीखतीं हैं।

इन ऋषिकाओं के सूक्तों में वर्णित दाम्पत्य जीवन में महान् आदर्श है। पारस्परिक प्रणय में पवित्रता, ऐहलौकिक प्रेम में पति का निर्व्याज प्रेम तथा दम्पतियों में सदाचरण की प्रधानता। पत्नी अपने सौभाग्य और सौन्दर्य की अभिवृद्धि की कामना करती है। ये सब विषय मानव के व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं।

महर्षि अम्भृणी की पुत्री वागाम्भृणी का राष्ट्र की अधिष्ठात्री रूप में जो महान् उद्घोष देवीसूक्त[2] में उपलब्ध होता है वह राष्ट्रिय भावना से ओत-प्रोत है।

---

१. गरुडपुराण २/३५/५१
२. ऋग्वेद दशमाध्याय, सूक्त १२५/ विशेष विवरण मूलभाग में द्रष्टव्य

(ख) **लौकिक संस्कृत साहित्य की कवयित्रियाँ**-संस्कृत वाङ्मय के इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल और मध्यकाल में आभिजात्य तथा राजपरिवारों में स्त्रियों को भलीभाँति संस्कृत शिक्षा दी जाती थी। विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त निपुणता के बल पर उनकी प्रतिभा से उत्कृष्ट काव्य का निर्माण होता था। काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में उनके काव्यों से उद्धृत पद्य उनके काव्य-कौशल को अभिव्यक्त करते हैं। संस्कृत कवयित्रियों की सुदीर्घ परम्परा में शतशः नाम अति प्रसिद्ध हैं, जिनके आदर्श पद्य अलंकार-शास्त्र में उदाहृत हैं। इनमें लगभग साठ कवयित्रियों का विशेष परिचय मूलभाग की लेखिका ने यहाँ प्रस्तुत किया है। वर्तमान कालीन अनेक कवयित्रियों का परिचय आधुनिक खण्ड के लिए छोड़ दिया गया है। संस्कृत सम्पादकीय भाग में जिनके संक्षिप्त परिचय दिये गए हैं, यहाँ निर्धारित पृष्ठों की सीमा के कारण, उनमें भी संक्षेप करना पड़ा है।

यहाँ इतना उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राचीन कवयित्रियों की रचनाओं में वर्ण्यमान विषय बहुत ही व्यापक है। देवस्तुति में सूर्य, चन्द्र, सरस्वती, लक्ष्मी, मीनाक्षी, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, महाभैरव आदि देवों की प्रशस्ति है। राजस्तुति में राजाओं के शौर्य, पराक्रम, संग्राम, पराजित शत्रु का दैन्य, विजित प्रतिपक्षि-वनिताओं का विलाप, विजयश्रीमण्डित नृपों की धर्म-परायणता आदि की प्रमुखता है। रसों में श्रृङ्गार, वीर, बीभत्स, जुगुप्सा आदि की प्रधानता देखी जाती है। श्रृङ्गार में सम्भोग, विप्रलम्भ, प्रणय, कलह, मान, सपत्नीमान-मर्दन, दूती-सम्प्रेषण आदि का मनोरम चित्रण हैं। नायिका के भेद-प्रभेद, नायिका के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के वर्णनक्रम में षोडश श्रृङ्गारभी समुचित स्थान रखते हैं। प्रकृति-वर्णन में उषा, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, राका-विभावरी, वारिधि, वारिवाह आदि प्रमुख है। अन्योक्तिपरक वर्णन में भ्रमर, काक, पिक, सहकार, सागर, केतकी, चम्पक आदि का प्रधान स्थान है। तात्पर्य यह है कि कवियों के वर्ण्य-विषयों की तरह इन कवयित्रियों के भी वर्ण्यमान विषय हैं, जिन्हें नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा से प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृत कवयित्रियों में शीलाभट्टारिका, विज्जका, विकटनितम्बा, विजयाङ्का, गङ्गा देवी, तिरुमलाम्बा, मोरिका, भावक देवी, गौरी, पद्मिनी, सरस्वती आदि जिनके सरस-सुललित पद्य सदुक्तिकर्णामृत, सूक्तिमुक्तावली, शार्ङ्गधरपद्धति, सुभाषितसार-समुच्चय आदि में संकलित है, इनमें शीलाभट्टारिका अपनी वक्रोक्ति के लिए, विज्जका गर्वोक्ति के लिए, विकट-नितम्बा हास्योक्ति के लिए, विजयाङ्का अपनी वैदर्भी शैली के लिए संस्कृत साहित्य में अतिप्रसिद्ध हैं।

वामन, आनन्दवर्धन, राजशेखर, मम्मट आदि आचार्यों के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में सीता, त्रिभुवनसरस्वती आदि के कतिपय पद्य उदाहरण हैं, जिनसे उनके विशिष्ट कवित्व का परिचय मिलता है। इनके अतिरिक्त भारती, लखिमा देवी आदि के कुछ पद्य

श्रुति-परम्परा से प्राप्त हैं। संकलित नहीं होने के कारण ये पद्य जनकण्ठ में ही जहाँ कहीं सुरक्षित हैं।

आधुनिक कवयित्रियों में पण्डिता क्षमाराव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके सत्याग्रहगीता, शंकराख्यान, उत्तरसत्याग्रहगीता, मीरालहरी, श्रीतुकारामचरित, कथा-मुक्तावली आदि गद्य, पद्यात्मक अनेक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थों से संस्कृत जगत् सुपरिचित हैं।

'सुभाषित सुमनोऽञ्जलिः', 'व्यासशतकम्' लघुकाव्य, 'जिगीषा' उपन्यास, 'आम्रपाली', 'तुलसीदास', नाटक तथा 'चन्द्रचरितम्', महाकाव्य की लेखिका बिहारप्रदेश की डा. मिथिलेश कुमारी मिश्रा ने वर्तमान संस्कृत कवयित्रियों में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है और वे सहृदय सुधी पाठकों के बीच प्रशंसा के पात्र हैं।

वर्तमान कालीन संस्कृत कवयित्रियों में श्रीमती रमा चौधरी, डा. वेदकुमारी घई, डा. पुष्पा दीक्षित आदि की कृतियों से संस्कृत समाज परिचित है। विशेष विवरण आधुनिक खण्ड में द्रष्टव्य है।

प्रकृत संक्षिप्त परिचय से भी यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल से आजतक संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं की धारा प्रवाहमान है।

**VI-अभिलेखीय संस्कृत साहित्य**-ताम्र, रजत, मृत्पात्र, शिला, मुद्रा,[1] गुहा, स्तम्भ आदि पर अक्षराङ्कित लेख को अभिलेख कहते हैं। इस तरह के लेख आज भी उत्कीर्ण कराए जाते हैं, अतः ऐसे पुरालेख को ही अभिलेख न मान कर किसी समय के ऐसे लेख को अभिलेख कहा जाता है।

इन अभिलेखों से केवल प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री का ही ज्ञान नहीं होता, अपितु इन संस्कृत अभिलेखों से संस्कृत साहित्य का भी विशिष्ट परिज्ञान होता है।

वैदिक काल से लेकर महाभारत-काल पर्यन्त साक्षात्कृतधर्मा, त्रिकालदर्शी ऋषि, महर्षियों के समक्ष भूत, वर्तमान एवं भविष्य कालीन सभी घटनाएँ हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष थीं। इसलिए उस समय किसी घटना को, काल में विलीन हो जाने के भय से, अभिलेख के रूप में सुरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं थी। दूसरी बात, उस समय उन महर्षियों के 'ज्ञानात्मक अखण्ड महाकाल' में घटित सभी घटनाएँ स्मृति-पटल पर विद्यमान रहती थीं, जिनका आख्यान/उपाख्यान स्वेच्छया वे अनायास समय-समय पर करते थे, जिससे उत्कीर्णात्मक अभिलेख अपेक्षित नहीं था। बाद में स्मृति-शक्ति के ह्रास[2] होने पर प्रमुख घटनाओं को शिला, स्तम्भादि पर उत्कीर्ण कर सुरक्षित रखने की आवश्यकता हुई और यह प्रक्रिया चल पड़ी।

---

१. ताम्र-राजत-मृत्पात्र-शिला-मुद्रा-गुहादिषु। स्तम्भे लिप्यङ्कितो लेखोऽभिलेखः परिकीर्त्यते।। स्वोपज्ञ

२. द्र. निरुक्त प्रथमाध्याय

१. (क) भारत में प्रथम उपलब्ध अभिलेख-आदिकाल से संस्कृत धारा की अविच्छिन्न प्रवाहमानता रहने पर भी बौद्ध काल में, जनभाषा पाली में बुद्ध के धर्मोपदेश होने के कारण, बौद्ध धर्मावलम्बियों ने पाली में ही उनके उपदेशों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। फलतः सम्राट् अशोक ने, बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद, विशिष्ट घटनाओं को बुद्धोपदेश के साथ शिला, स्तम्भ, पाषाण आदि पर उत्कीर्ण करवाया। इन उपलब्ध अभिलेखों में १४ शिलालेख, और सात स्तम्भाभिलेख हैं। ये सभी अशोक कालीन लगभग ३०० ई. पूर्व के हैं।

(ख) अशोक के बाद रुद्रदामा (१५०ई.) के पूर्व उपलब्ध अभिलेख पाली तथा प्राकृत भाषाओं में उत्कीर्ण है। इनका सविस्तर विवरण मूलभाग तथा संस्कृत सम्पादकीय भाग में द्रष्टव्य है।

(ग) संस्कृत भाषा में प्रथम उपलब्ध अभिलेख शकराजरुद्रदामा का गिरिनार शिलालेख है, जो साहित्यिक दृष्टि से भी उच्चकोटि का है।

गुप्त कालीन अभिलेखों में समुद्रगुप्त का प्रयागस्थ स्तम्भाभिलेख ऐतिहासिक और साहित्यिक उभय दृष्टियों से अतिमहत्त्वपूर्ण है। ऐसे ही इनका मध्यप्रदेश का सरण-स्तम्भाभिलेख अपनी विशिष्टता के कारण सुख्यात हैं।

चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन अभिलेखों में मथुरा-स्तम्भाभिलेख, उदयगिरि-गुहभिलेख, साँची-स्तूप-प्राचीराभिलेख, मेहरौली-लौहस्तम्भाभिलेख भी अतिशय महत्त्वपूर्ण हैं।

ऐसे ही कुमारगुप्त प्रथम कालीन मध्यप्रदेश का मन्दसौर-प्रस्तर स्तम्भाभिलेख और स्कन्दगुप्त कालिक गुजरात के जूनागढ़ का शिलालेख अपनी महनीयता के कारण सर्वत्र विख्यात है। गुप्तकालीन सभी अभिलेखों का विवरण मूलभाग तथा संस्कृत सम्पादकीय भाग में अवलोकनीय है।

मौर्य-साम्राज्य के पतन के बाद, वस्तुतः अशोक के (२३२ ई.पू.) निधन के समय से ही भारत में सातवाहन राजाओं का प्रभाव बढ़ने लगा। मध्य एशिया से बढ़ते हुए शक आक्रमणकारी गान्धार को अपने अधीन में लेकर सातवाहन राजाओं से भी जूझने लगे। उन दोनों के जय-पराजय में देश अशान्त हो गया। गुप्त साम्राज्य काल में भी कुमार- गुप्त और समुद्रगुप्त के समय में हूणों के अनेक आक्रमण हुए। सम्राट् समुद्रगुप्त के पराक्रम से पराजित होकर वे गुप्त साम्राज्य में ही गुप्त होकर रहने लगे और भारतीय संस्कृति में घुलमिल गए। इस बीच की सभी, विशिष्ट घटनाएँ सुललित संस्कृत अभिलेखों में निर्दिष्ट हैं। इन्हीं अभिलेखों में हूणराज तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल का वह अभिलेख भी है, जो उसने अपने शासन के पन्द्रहवें वर्ष (५१५ ई.) में मध्यप्रदेश के ग्वालियर दुर्ग में सूर्यमन्दिर की दीवार पर उत्कीर्ण करवाया था। विभिन्न छन्दों में विरचित तेरह संस्कृत पद्यों का यह अभिलेख साहित्यिक दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है।

ऐसे ही महाराज यशोवधर्मा का मन्दसौर के दुर्ग का प्रस्तर-स्तम्भभिलेख, जो मालव सम्वत् ५८६ = ५३२ ई.) में उत्कीर्ण कराया गया था, कविवर वासुल के विशिष्ट कवित्व को अभिव्यक्त करता है। स्रग्धरा छन्द में गुम्फित नव-पद्यात्मक इस अभिलेख में यशोधर्मा के विस्तृत साम्राज्य तथा समस्त सामन्तों के द्वारा दिए गए चूड़ारत्नोपहार का मनोरम वर्णन है। इसी प्रकार यशोधर्मा के अन्य अभिलेखों में छन्द और अलंकारों का सौन्दर्य देखा जा सकता है। मौखरि-नृपति ईशानवर्मा का (५५४ ई.) हडाहा शिलालेख, शर्ववर्मा के असीरगढ़ का मुद्राभिलेख, अनन्तवर्मा के बरावर का गुहाभिलेख, आदि भी साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

गुप्त-शासन-कालीन उपलब्ध समस्त अभिलेखों को संकलित तथा सम्पादित कर फ्लीट महोदय ने प्रकाशित किया था। गिरिजाशंकर प्रसाद मिश्रकृत हिन्दी अनुवाद के साथ यह 'भारतीय अभिलेख संग्रह' नाम से राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर से १६७४ ई. में प्रकाशित है। इसके तृतीय खण्ड में ८१ अभिलेख विवरणसहित प्रकाशित है। इनसे तत्कालीन इतिहास के साथ इनकी साहित्यिक विशिष्टता का परिज्ञान होता है।

चालुक्य-कुल-भूषण सत्याश्रय पुलकेशी द्वितीय (६३४ ई.) का प्रशस्ति-परक ऐहोल-अभिलेख कविवर रविकीर्ति की काव्य-कीर्ति का मनोहर संकीर्तन करता है।

तोमर-वंशीय नरेन्द्र महेन्द्रपाल के पेहवा-प्रस्तर-खण्डाभिलेख में, चौहान-वंशीय नरेन्द्र विग्रहराज (११६३ ई.) के देहली-स्तम्भाभिलेख में, महाराज विजयसेन के देवपारा ग्रामस्थ श्रीप्रद्युम्नेश्वर मन्दिर के शिलाभिलेख में वर्णित ऐतिहासिक तथ्य समन्वित काव्यात्मक सौन्दर्य सहृदय सुधीवर्ग को-चमत्कृत करता है। देवपारा अभिलेख के लेखक कविकोविद उमापति-धर इस प्रशस्ति-काव्य की रचना कर स्वयम् अमर हो गए हैं। विजयसेन के पौत्र, वल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के सभारत्नों में उमापतिधर एक देदीप्यमान रत्न थे जो-

"गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य वै।।"

इस कथम से प्रमाणित होता है।

विशाल भारत देश के विभिन्न प्रान्तों में आज भी अनेक प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक अभिलेख प्रकाश में आ रहे हैं, अतः अभिलेखीय सामग्री का 'अथ से इति' तक उल्लेख संभव नहीं है। इस विषय में गवेषणा चलती रहेगी और विषय प्रकाश में आते रहेंगे।

डा. मुकुन्दमाधव शर्मा के निबन्ध "Sanskrit Inscriptions of Ancient Assam से आसाम प्रान्त के अभिलेख, जो पाँचवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शती तक शिला, ताम्रपत्र, मृत्खण्ड, धातु, मुद्रा, मन्दिर आदि में उत्कीर्णित हुए थे, प्रकाश में आए हैं। इनमें

सुरेन्द्रवर्मा, हजरवर्मा, भास्करवर्मा, वनमालवर्मा, रत्नपाल आदि के २१ अभिलेख ऐतिहासिक तथा साहित्यिक उभय दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।[1]

यहाँ यह संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारे पड़ोसी राष्ट्र नेपाल में लिच्छवि-राजाओं के राज्य-कालिक-प्रथम मानदेव (४६३ ई.) से लेकर जयकामदेव (१०४६ ई.) के समय तक प्राप्त शतशः शिला, स्तम्भादि अभिलेख न केवल भारत नेपाल के पारस्परिक मधुर सम्बन्ध को अङ्कित करते हैं, अपितु अपने विशिष्ट काव्यात्मक स्वरूप को भी रेखाङ्कित करते हैं।

जुमला प्रदेश के सेञ्जा प्रशासकों के चतुर्दश शतक कालिक पृथ्वीमल्ल, रिपुमल्ल आदि के शिला, ताम्रादि अभिलेख भी साहित्यिक वैशिष्ट्य रखते हैं।

कर्णाटवंशीय राजा नान्यदेव (१०९७ ई.) के षष्ठ वंशधर महाराज हरिसिंहदेव बङ्गाल के गयासुद्दीन तुगलक से पराजित होकर १३२६ ई. में मिथिला की अपनी राजधानी सिमरौनगढ़ से निकल कर नेपाल के भक्तपुर में अपनी राजधानी बनाकर वहाँ राजाधिराज[2] के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। इसी कर्णाटवंश से सम्बद्ध जयस्थितिमल्ल (१३७२ ई.) वहाँ सामन्त से महासामन्त बन कर बाद में राजा हो गए। तब से लेकर १७७८ ई. तक नेपाल में मल्ल राजाओं का शासन रहा। इन चार सौ वर्षे में वहाँ, संस्कृति, कला, संस्कृत विद्या की काफी उन्नति हुई। इन सभी विषयों का उल्लेख वहाँ के तत्कालीन शतशः अभिलेखों में मिलता है, जिनका अभिलेख संग्रहों में प्रकाशन हुआ है।[3] नेपाल के वर्तमान शाहवंश के २२५ वर्षों के शासनकाल में भी अनेक महत्त्वपूर्ण अभिलेख अङ्कित हैं।

भारत के पड़ोसी देश, जो प्राचीन काल में भारत के ही अङ्ग थे, धार्मिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों के माध्यम रूप में संस्कृत का ही व्यवहार करते थे। संस्कृत के माधुर्य, स्थैर्य, और अभिव्यक्ति-सामर्थ्य से आकृष्ट होकर जावा, सुमात्रा, वालिद्वीप, मलय, हिन्दचीन, कम्बोज आदि देशों के प्रशासकों ने संस्कृत में ही अपने अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाया था। इनमें जितने अभिलेख अभी तक उपलब्ध हुए हैं, वे साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्व रखते हैं। इनमें कतिपय अभिलेखों का विवरण संस्कृत सम्पादकीय भाग में दिया गया है, जो वहीं दृष्टव्य है।

संस्कृत भाषा का क्षेत्र भारत से बाहर भी फैला हुआ है। इस विशाल क्षेत्र में जब सभी उपलब्ध अभिलेखों का ही विवरण देना संभव नहीं है, तो प्रकाश्यमान और

---

१. विशेष-विवरण के लिए द्रष्टव्य संस्कृत सम्पादकीय भाग।

२. वाङ्गाले र्यवनैः क्रुधा विधिवशाद् राज्यं सद्रव्यं हृतम्, दुर्गं सीमरनामकं च सहसा नेपालमभ्यागतः। सोऽयं भूमिपतिश्चकार-वसतिं भक्ताख्यपुर्यां रिपून् हत्वा सम्प्रति शक्ति-भक्ति-सुदृढो राजाधिराजो महान्।। **अभिलेखगीतमाला**, मैथिली अकादमी, पटना, पृ. ८

३. द्रष्टव्य-संस्कृत सम्पादकीय भाग।

प्रकाशयिष्यमाग अभिलेखों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है। पर इतना तो निश्चित है कि अभिलेखीय संस्कृत साहित्य क्रमशः अभिवर्द्धमान है और इसकी अभिवृद्धि क्रमशः होती ही रहेगी।

उपर्युक्त संस्कृत अभिलेखों के पर्यालोचन से स्पष्ट होता है कि इन अभिलेखों का न केवल ऐतिहासिक महत्त्व है, अपितु साहित्यिक महत्त्व भी सराहनीय है। श्रव्य-काव्य के गद्य, पद्य, चम्पू रूप जितने प्रभेद हैं, उनके सभी स्वरूप इन अभिलेखों में मिलते हैं। इनमें प्रयुक्त छन्दों की विविधता, अलंकारों की चमत्कारिता, गुणों की विशिष्टता, रस-भावों की रमणीयता काव्य-रसिकों को आह्लादित करती है और इन अभिलेखों में निहित ऐतिहासिक तथ्य-रत्नों का आलोक विशुद्ध इतिहास लिखने का मार्ग प्रकाशित करता है।

उत्तर प्रदेश-संस्कृत-संस्थानस्य अस्यां योजनायाम् प्रारम्भेएव-प्रधान सम्पादकेन पद्मभूषण बलदेवोपाध्यायमहाभागेन सम्यक् परीक्षितः सन् नियोजितः डारमाकान्तझा-महोदयः संलग्नोऽभवत्। बृहदितिहास लेखन-योजनायाम् निर्मितानां विभिन्न-खण्डानां पाण्डुलिपीनां परिमार्जने, प्रथममुद्रण-संशोधने, सूच्यादि निर्माणेव प्रधान सम्पादकस्य निर्देशानुसारं सर्वदायित्वं साधु निरवहत्। झामहोदयस्य वैदुष्यं कार्य-कौशलञ्च विभावयता संस्थानेन अद्यापि तत्कार्य-जातं सम्पादयितुं मनीषि वयोडियं समनुरुद्यते।

मया सम्पादितस्य पञ्चम खण्डस्यापि प्रूफ-संशोधनादिकार्ये डा. झामहोदयः सर्वथा दत्तचित्तोवरीवतति कार्तज्ञ्येन साधुवादेन च एनं समाजयामि।

मेरे द्वारा सम्पादित इस पञ्चम खण्ड के प्रकाशन में भी डा. रमाकान्त झा पूर्ण मनोयोग से सहयोग कर रहे हैं, जिसके लिए ये धन्यवाद और साधुवाद के अधिकारी हैं। इति शम्।

वसन्त पञ्चमी
ई. २००१

विद्वज्जन-वशंवद
**जयमन्त मिश्र**
आनन्द निकेतन, हनुमानगंज
मिश्रटोला, दरभंगा

# संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास

## विषय-सूची

### पञ्चम-खण्ड

### गद्य

# विषय एवं लेखक सङ्केत

| क्र.सं. | विषय | लेखक |
|---|---|---|
| १. | गद्य काव्य | **डॉ. शिवशङ्कर उपाध्याय**<br>पूर्व-प्राध्यापक, संस्कृत विभाग,<br>बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर<br>(छित्तूपुर पैराडाइज स्कूल के पास<br>काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५) |
| २. | चम्पूकाव्य | **प्रो. त्रिलोकनाथ झा**<br>पूर्व-प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, ललित<br>नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा<br>(ग्राम-पो. सरिसब, जिला-मधुबनी, बिहार) |
| ३. | कथा-साहित्य<br>(वैदिक आख्यान,<br>बौद्ध-जैन कथा वैभव,<br>उपदेशात्मक तथा<br>मनोरञ्जक कथायें) | **प्रो. काशीनाथ मिश्र**<br>पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह<br>दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा<br>(ग्राम- पो. चैनपुर, सहरसा, बिहार) |
| ४. | संस्कृत कवयित्रियाँ | **श्रीमती शारदा मिश्र**<br>रीडर, आर. जे. महिला<br>महाविद्यालय, सहरसा (बिहार) |
| ५. | परिशिष्ट-अंश<br>(बौद्ध भिक्षुणियों के गीत<br>थेरीगाथा) | **श्रीमती शारदा मिश्र** |
| ६. | नीतिशास्त्र का इतिहास | **प्रो. जयमन्त मिश्र**<br>पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह<br>दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा<br>(प्रस्तुत खण्ड सम्पादक, हनुमानगंज,<br>मिश्र टोला दरभंगा)<br>तथा **डॉ. किशोरनाथ झा**<br>पूर्व उपाचार्य गंगानाथ झा<br>केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, आजाद पार्क, इलाहाबाद<br>(ग्रा-पो. विट्टो, दरभंगा, बिहार) |
| ७. | अभिलेखीय साहित्य | **डॉ. शिवशङ्कर प्रसाद**<br>पूर्व रीडर, बिहार विश्वविद्यालय,<br>मुजफ्फरपुर, छपरा सारण, (बिहार) |

# गद्य-काव्य

मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने के लिए जब छन्दों से मुक्त व्यक्तवाणी में शब्दों का प्रयोग होता है तब वह शब्द-समूह गद्य कहलाता है। यह गद्य विषय-प्रतिपादन का एक ऐसा सरल मार्ग होता है, जिसमें पद्य की तरह छन्दों का बन्धन और यतियों का नियन्त्रण नहीं होता। यह सभी बन्धनों से उन्मुक्त होकर कल-कल निनादों के साथ भावना की धारा को प्रवाहित करता है। गद्य में अर्थावगति के लिए पाठक पद्य-सदृश नतो दण्डान्वय/खण्डान्वय के चक्कर में पड़ता है और न लेखक छन्द के बन्धन तथा यति की यन्त्रणा में आबद्ध होकर अभिप्रेत भावों को व्यक्त करने में असमर्थ होता है।

आरम्भ में भावाभित्यक्ति की सुगमता, पद-प्रयोग की सरलता तथा लेखक और पाठक के बीच अभिलक्षित संप्रेषणीयता की जो प्रवृत्ति थी, उसमें क्रमशः कई प्रकार की कृत्रिमता का प्रवेश हो जाने के कारण गद्य के भी अनेक भेद-प्रभेद हो गए, जिनसे गद्य का भी वर्गीकरण होने लगा।

भेद-प्रभेद के साथ गद्य-काव्य के विविध वैशिष्ट्यों का निरूपण इस अध्याय में अभीष्ट है।

## गद्य-काव्य

श्रव्यकाव्य के पद्य तथा गद्य दो भेद हैं, जिनमें छन्दों के बन्ध से रहित पदसमूह को गद्य अभिहित किया गया है। गद्य के मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक-चार प्रभेद होते हैं। समासरहित पदों में निबद्ध गद्यबन्ध को मुक्तक, पद्यांशों से युक्त गद्यरचना को वृत्तगन्धि, रसयुक्त, दीर्घसमासों में विरचित गद्यप्रबन्ध को उत्कलिकाप्राय एवं थोड़े अर्थात् दो या तीन पदों में उपनिबद्ध गद्यसंरचना को चूर्णक के अभिधान से अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में अभिहित किया गया है।[1]

सर्वप्रथम अष्टादशपुराणों में प्राचीनतम 'अग्निपुराण' में विषय और शैली के आधार पर गद्य-काव्य के आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा और कथानक-इन पांच भेदों में विभाजन की चर्चा उपलब्ध होती है।[2] इन उपर्युक्त भेदों के सम्बन्ध में आचार्य दण्डी की मान्यता है कि खण्डकथा, परिकथा तथा कथानक प्रभृति आख्यान जातियाँ कथा और

---

१. द्रष्टव्यः अथ गद्यकाव्यानि। तत्र गद्यम्.....वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तिगन्धि च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकञ्च चतुर्विधम्।।
आद्यं समासरहितं, वृत्तभागयुतं परम्। अन्यद्दीर्घसमासाख्यं तूर्यं चाल्पसमासकम्।।
**साहित्यदर्पण-षष्ठपरिच्छेद** ३३०-३१

२. द्रष्टव्यः **अग्निपुराण** ३६६/१२-१७

आख्यायिका में ही अन्तर्भूत हो जाती हैं। "अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः"[1] इति। आचार्य विश्वनाथ भी सिद्धान्ततः इसी पक्ष का अनुसरण करते हैं।

अतएव विश्वनाथ ने भामह, दण्डी, रुद्रट आदि की तरह कथा और आख्यायिका दो प्रभेदों का वर्णन किया है। यद्यपि हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' में गद्य-काव्य का विभाजन अनेक प्रकार से किया है, तथापि ये भेद अप्रचलित तथा मान्यताप्राप्त नहीं हैं।[2] संस्कृत वाङ्मय में गद्यकाव्य कथा और आख्यायिका-दो ही रूप से विशेषतः उपलब्ध है। अतः यहाँ इन दोनों के लक्षणों की चर्चा प्रासङ्गिक है।

कथा और आख्यायिका के भेदक तत्त्व के सम्बन्ध में समीक्षकों में मतभेद है। 'अमरकोष' के अनुसार कथा की कथावस्तु कविकल्पित होती है और आख्यायिका का इतिवृत्त ऐतिहासिक, अथवा ऐतिह्य पर आधृत होता है।[3] संस्कृत आलंकारिकों में सर्वप्रथम भामह ने इस भेद को प्रकाश में लाया है। भामह के अनुसार आख्यायिका का इतिवृत्त वास्तविक होता है। नायक उसका वक्ता होता है। आख्यायिका कई उच्छ्वासों में विभक्त होती है, जिनके आदि-अन्त में भावी घटनाओं की सूचना वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्दों के द्वारा दी जाती है। कन्याहरण, युद्ध, वियोग इत्यादि कई विषयों से सम्बद्ध, कवि अपनी कल्पना का भी समावेश करता है। आख्यायिका का समापन नायक की विजय से होता है। इसकी भाषा संस्कृत होती है। इसके विपरीत कथा की कथावस्तु कविकल्पित होती है। इसका वक्ता नायक से भिन्न इतर व्यक्ति होता है। इसमें नतो उच्छ्वासों के द्वारा विभाजन होता है और न वक्त्र-अपरवक्त्र छन्दों की योजना की जाती है। कथा की भाषा संस्कृत या प्राकृत कोई भी हो सकती है।[4] आचार्य दण्डी का कथन है कि कोई निश्चित नियम

---

१. द्रष्टव्यः तत् कथाख्यायिकेत्येकाजातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः।। **काव्यादर्श** १-२८

२. द्रष्टव्यः **काव्यानुशासन** पृष्ठ ४०६-७

३. द्रष्टव्यः आख्यायिकोपलब्धार्था, प्रबन्धकल्पना कथा। **अमरकोष** १५/५६

४. द्रष्टव्यः प्राकृतानाकुलश्रव्य-शब्दार्थपदवृत्तिना।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता।।
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च।।
कवेरभिप्रायकृतैरङ्कनैः कैश्चिदङ्किता।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोऽदयान्विता।।
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोऽच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथाऽपभ्रंशभाक् तथा।।
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनाः।। **काव्यालंकार** १.२५-२६

नहीं है कि नायक, कथा का वक्ता हो तथा वक्त्र-अपरवक्त्रादि छन्दों का प्रयोग हो और कथानक के लम्भक अथवा उच्छ्वास आदि में विभाजित होना भी विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। कथा और आख्यायिका के मध्य इन उपर्युक्त तथ्यों को विभाजक रेखा के रूप में स्वीकारोक्ति का कोई औचित्य नहीं है। वस्तुतः दोनों-कथा और आख्यायिका दो संज्ञाओं से युक्त एक ही जाति हैं। शेष आख्यानों की जातियों का समावेश इन्हीं दोनों में हो जाता है।[1] रुद्रट ने मध्यमार्ग का अनुसरण किया है तथा उनके अनुसार कथा का प्रारम्भ पद्य में गुरु और देवता की वन्दना से होता है। कवि को अपने वंश के परिचय के साथ गद्य में कथा का प्रारम्भ करना चाहिए। प्रधान कथा में अवान्तरीय कथानकों का समावेश हो जिनका अभीष्ट प्रतिपाद्य कन्याप्राप्ति हो। कथा की भाषा संस्कृत हो तो गद्य में और इतर भाषा हो, तो कथा पद्य में निबद्ध होनी चाहिए। संस्कृत वाङ्मय के विज्ञ समीक्षकों की मान्यता है कि आचार्य रुद्रट ने कथा और आख्यायिका के लक्षणों की जो चर्चा प्रस्तुत की उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके सम्मुख बाणभट्ट की अतिद्वयी 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' निदर्शन स्वरूप लक्ष्यग्रन्थों के रूप में विद्यमान थे; क्योंकि उनके निर्धारित लक्षण-विशिष्ट रूप से उनमें घटते हैं। यद्यपि दण्डी ने उच्चस्वर से उद्घोषणा कर दी थी कि ओजगुण समन्वित समास की बहुलता ही गद्य का जीवन है। अतः समास का आधिक्य ही संस्कृत गद्यकाव्य के दो प्रकारों-कथा और आख्यायिका का उल्लेखनीय लक्षण बन गया था, तथापि आनन्दवर्धनाचार्य की मान्यता है कि आख्यायिका में मध्यम तथा अदीर्घसमासों की योजना होनी चाहिए। विशेषरूप से विप्रलम्भ श्रृङ्गार तथा करुणरसों की

---

१. द्रष्टव्यः अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल।।
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः।।
अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरयात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदलक्षणम्।।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासं चापि भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसङ्गेन कथास्वपि।।
आर्यादिवत्प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः।।
तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यति शेषाश्चाख्यानजातयः।। **काव्यादर्श** १.२३-२८

२. द्रष्टव्यः "आख्यायिकायां तु भूम्ना मध्यमसमासदीर्घसमासे एव संघटने। गद्यस्य विकटनिबन्धाश्रयेणच्छायावत्त्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्टमायत्वात्। कथायां तु विकटबन्धप्राचुर्येऽपि गद्यस्य रसबन्धोक्तमौचित्यमनुसर्तव्यम्....गद्यबन्धेऽपि अतिदीर्घसमासरचना न विप्रलम्भशृङ्गारकरुणयोराख्यायिकायामपि शोभते।" **ध्वन्यालोक**, पृष्ठ १४३

अभिव्यञ्जना में आख्यायिका के गद्यबन्ध में अतिदीर्घ-समासरचना नहीं ही होनी चाहिए।[?] अभिनवगुप्तपादाचार्य ने तो आख्यायिका और कथा में एतावन्मात्र भेदक माना है कि आख्यायिका, उच्छ्वासों में विभक्त होती है तथा उसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है, परन्तु कथा इन सब से रहित होती है।[१] साहित्यदर्पणकार की मान्यता है कि कथा गद्य की सुसज्जा से समन्वित होती है, जिसमें आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द यत्र-तत्र प्रयुक्त होते हैं। कथा का प्रारम्भ नमस्कारात्मक पद्य से होता है तथा दुष्टों के आचरण का प्रकाशन भी उसमें रहता है।[२] आख्यायिका कथा के सदृश होती है, जिसमें कवि अपने वंश का वर्णन करता है। कहीं-कहीं अन्य कवियों के वृत्त का वर्णन भी पद्यों में उपलब्ध होता है। आख्यायिका के विभाजक आश्वास होते हैं तथा प्रत्येक आश्वास के आदि में अन्यापदेश से भावी इतिवृत्त की सूचना दी जाती है।

संस्कृत वाङ्मय के मूर्धन्य इन काव्यशास्त्रीय आचार्यों की विचारित लक्षणों की विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि आख्यायिका की कथावस्तु जहाँ अवश्यमेव इतिहास-प्रसिद्ध तथा भूतकालिक घटना पर होना चाहिए, वहाँ कथा की सर्वथा कविकल्पना प्रसूत। समन्वितरूप से आलंकारिकों के द्वारा निर्धारित लक्षण कवि बाण की आख्यायिका 'हर्षचरित' और कथा 'कादम्बरी' में पूर्णरूप से चरितार्थ होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य रुद्रट की परिभाषा तो इन्हीं दो उपर्युक्त ग्रन्थों को लक्ष्य बनाकर निर्धारित की गई है। विशिष्ट लक्ष्यग्रन्थों के अभाव में वस्तुस्थिति भी यही है कि बाणभट्ट ने अपनी प्रतिभा-सम्पन्न लेखनी से उभयविध गद्य-प्रकार का प्रथमतः दृष्टान्त प्रस्तुत किया जो अन्य कवियों के लिए अनुकरणीय निदर्शन बन गया। उन्होंने स्वयं 'हर्षचरित' की प्रस्तावना में 'करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिस्वाप्लवनचापलम्' का उल्लेख कर आदर्श आख्यायिका के स्वरूप की अवतारणा की है[३] तथा 'बृहत्कथा' तथा 'वासवदत्ता' का अतिक्रमण करने वाली

---

१. द्रष्टव्यः "आख्यायिकोच्छ्वासादिना वक्त्रापरववक्त्रादिना च युक्ता। कथाविरहिता।" **लोचन** पृष्ठ १४३

२. द्रष्टव्यः "कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्। क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापरवक्त्रके। आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्।।" **साहित्यदर्पण** षष्ठ परिच्छेद Dr. Peterson read "पद्यैरेव विनिर्मितम्" and translated 'A Katha ...... is a narrative in prose of matter already existing in a metrical form' कादम्बरी भूमिका पृ. ६९ 'आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्। अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्। कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति कथ्यते। आर्यावक्त्रापरवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्। अन्यापदेशाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।

३. द्रष्टव्यः "सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः। शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादिकैः।।" **हर्षचरित**-प्रस्तावना श्लोक २०

'अतिद्वयी' 'कादम्बरी' के द्वारा आदर्श कथा को प्रस्तुत कर गद्य-काव्य को गौरवान्वित किया है।

पद्य तथा गद्य दोनों विधाओं के सुलभ होते हुए भी संस्कृत वाङ्मय के विविध शास्त्रकारों ने पद्य को ही गद्य की अपेक्षा अत्यधिक प्रश्रय प्रदान किया और यहाँ तक कि ज्योतिष, वैद्यक आदि वैज्ञानिक विषयों के शास्त्रीय ग्रन्थ छन्दोबद्ध ही हैं। यह संस्कृत साहित्य के इतिहास का एक विचारणीय विषय है कि पद्य विधा में छन्दों के लघु-गुरु के विन्यास तथा ऊपर से यति के नियम के अंकुश के होते हुए भी साहित्य-निर्माताओं ने पद्य के माध्यम से समस्त वाङ्मय की विपुलराशि का प्रणयन किया, जब कि गद्य-विधा में निबद्ध ग्रन्थों की संख्या अंगुलीपरिगणनीय है। समीक्षकों ने इस उपर्युक्त प्रश्न के समाधानार्थ पद्य की श्रुति-मधुरता, गेयता, स्मृति-पटल पर संरक्षणार्थ क्षमता इत्यादि को उत्तर में प्रस्तुत किया है, पर इसका बौद्धिक विश्लेषणात्मक हल ग्राह्य नहीं होता। संस्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप यजुर्वेद में मिलता है। यद्यपि जर्मन संस्कृत विद्वान् ओल्डनवर्ग का कथन है कि ऋग्वेद के सम्वादसूक्त प्रथमतः पद्य-गद्य-मिश्रित थे, जिनका पद्य-भाग स्मरणीय होने के कारण अवशिष्ट रह गया लेकिन गद्यांश समय के प्रवाह में लुप्त हो गया, किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। शुक्ल-यजुर्वेद में कतियय गद्यात्मक मन्त्र हैं, जिन्हें 'यजूंषि' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय, काठक मैत्रायणी आदि संहिताओं में मन्त्रों के विनियोग, यज्ञीय क्रियाओं की व्याख्या एवं संस्तुतिपरक भाग सभी गद्य में ही है जो प्रायः मात्रा में अधिक है। अथर्ववेद के १५वें तथा १६वें काण्डों में गद्यांश उपलब्ध है। ब्राह्मणसाहित्य का प्रधान प्रतिपाद्य कर्मकाण्ड की व्याख्या गद्य में है। यज्ञ-अनुष्ठान की विधियों, मन्त्रों की व्याख्या, यज्ञ-क्रिया से सम्बद्ध क्लिष्ट शब्दों की व्युत्पत्तियों के साथ-साथ ब्राह्मण-ग्रन्थों में लघु तथा बृहत् अनेक आख्यानों का भी गद्य में वर्णन है। अतः यह समस्त उपर्युक्त ब्राह्मण-ग्रन्थों का गद्य वर्णनात्मक है। भाषा बोल-चाल की है। 'ह', 'वाव', 'वै', 'खलु' इत्यादि अव्ययों के प्रयोग की बहुलता है। इनकी शैली समास-रहित तथा सरल है। वाक्य छोटे-छोटे हैं। इनकी भाषा पाणिनीय व्याकरण का अनुसरण नहीं करती जिससे इनकी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मणों के अनन्तर आरण्यक साहित्य का विवेच्य वैदिक यज्ञों की ज्ञान-प्रधान रहस्यात्मक व्याख्या-भाषा भी सरल गद्यमय है। उपनिषदों में आरण्यक साहित्य के ज्ञान-मार्ग का विकास जो चरमोत्कर्ष पर पहुँचा है, 'बृहदारण्यक', छान्दोग्य', 'तैत्तिरीय', 'कौषतकि' प्रभृति उपनिषदें गद्य में ही हैं। इनकी और ब्राह्मण-ग्रन्थों की भाषा में बड़ा सामीप्य है। उसकी तुलनामें 'प्रश्न', मैत्रायणी, 'माण्डूक्य' आदि उपनिषदों का गद्य अधिक परिष्कृत है और लौकिक संस्कृत गद्य से बहुत मिलता-जुलता है। वेदाङ्ग के अन्तर्गत कल्प-साहित्य के श्रौतसूत्रों और गृह्यसूत्रों में सर्वप्रथम संस्कृत गद्य की संक्षिप्त शैली दृष्टिगत होती है जिसके विकास

का उत्कर्ष पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में उपलब्ध होता है। सम्भवतः इसी संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति ने लौकिक संस्कृत गद्य की समास-बहुला शैली को जन्म दिया है।

संस्कृत वाङ्मय का विपुल भण्डार अधिकांशतः पद्यमय ही है। गद्य साहित्य का विशेषतः अलंकृत साहित्य अपेक्षाकृत अत्यन्त न्यून है। समस्त संस्कृत गद्य साहित्य-अनलंकृत और अलंकृत-दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। लौकिक अनलंकृत शैली के गद्य का प्राचीनतम रूप महर्षि पतञ्जलि के 'महाभाष्य' में उपलब्ध होता है, जिसकी उल्लेखनीय विशेषता है कि इसके माध्यम से व्याकरणशास्त्र के सदृश जटिल विषय की कथोपकथन शैली के द्वारा व्याख्या सुगम तथा आकर्षक ढ़ंग से प्रस्तुत की गई है। इस गद्य की सरसता, सरलता एवं रमणीयता दर्शनीय है :-

"ये पुनः कार्याभाषा निर्वृत्तौ तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह-कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामीति। न तद्वच्छब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाह-कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्य इति। तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुज्यते।" (पस्पशाह्निक)

अनलंकृत शैली के गद्य का स्वरूप महाभाष्य के अतिरिक्त षड्दर्शनों के सूत्र-ग्रन्थों पर विरचित भाष्यों में दृष्टिगत होता है। दार्शनिक गद्य के महत्त्वपूर्ण उदाहरण मीमांसासूत्रों पर प्रणीत शबर-स्वामी का भाष्य, न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन-भाष्य, वेदान्तसूत्रों पर आचार्य शंकर के भाष्य और योगसूत्रों पर व्यास के भाष्य हैं। इन भाष्यों के गद्य प्रौढ़, प्राञ्जल एवं सारगर्भित हैं। आयुर्वेद, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अलंकार प्रभृति शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण भी गद्यात्मक सूत्र-शैली में हुआ है जिनमें पारिभाषिक शब्दों और समासों की बहुलता है।

अलंकृत शैली का गद्य संस्कृत वाङ्मय के नाट्य-ग्रन्थों, चम्पू-काव्यों एवं गद्य-काव्यों में पाया जाता है। इस प्रकार के गद्य का उद्भव और विकास कब तथा कैसे हुआ ? यह अज्ञात है। इस गद्य का सद्भाव ईसा की प्रथम तथा द्वितीय शती के शिलालेखों में प्रथमतः दृष्टिगोचर हुआ-जिनमें पश्चिमी भारत के विख्यात क्षत्रप रुद्रदामन् तथा ईसा के चतुर्थ शताब्दी के गुप्तनरेशों के प्रशस्तिपरक शिलालेख उल्लेखनीय हैं। यह गद्य विकसित रूप से अकस्मात् महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी की रचनाओं में उपलब्ध होता है। पूर्व का इतिहास अन्धकार से आवृत है, लेकिन इन उपर्युक्त कवियों की कृतियों के सिंहावलोकन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे गद्यकाव्यों का आविर्भाव आकस्मिक घटना नहीं है, प्रत्युत शताब्दियों की साहित्यिक साधना का प्रतिफल है। सुबन्धु, बाण और दण्डी के पूर्व गद्य-काव्यों की संरचना हो रही थी, जिनके संकेत प्राप्त होते हैं। कात्यायन ने 'वार्तिक' में आख्यायिका का उल्लेख किया है।[1] पतञ्जलिकृत 'महाभाष्य' में 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' इन आख्यायिकाओं का निर्देश किया गया है।[2] भोज ने अपने 'शृङ्गार-प्रकाश'

---

१. द्रष्टव्यः "लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्", "आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च" वार्तिक

२. द्रष्टव्यः "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' बहुलं लुग्वक्तव्यः। वासवदत्ता सुमनोत्तरा। न च भवति। भैमरथी"। महाभाष्य ४.३.८७

में 'मनोवती' और 'सातकर्णीहरण' नामक कृतियों की ओर संकेत किया है। दण्डी भी 'मनोवती' की ओर संकेत करते हुए प्रतीत होते हैं।[1] वररुचि ने 'चारुमती' तथा हाल के राजकवि श्रीपालित ने 'तरङ्गवती' कथा लिखी थी।[2] रामिल-सोमिल ने 'शूद्रक-कथा' की रचना की थी।[3] स्वयं बाणभट्ट ने अपनी आख्यायिका 'हर्षचरित' में भट्टारहरिचन्द्र नामक उच्च कोटि के गद्य-लेखक के हृदयहारी गद्य की संस्तुति की है।[4] इन कवियों के और इनकी रचनाओं के आज केवल नाममात्र ही शेष हैं, किन्तु इनसे गद्य-काव्यों की विस्तृत परम्परा की ओर संकेत अवश्य मिलता है।

अलंकृत गद्य की प्राचीनतम रचना-महाक्षत्रप रुद्रदामन् (१५० ई.) के गिरिनार-शिलालेख तथा प्रयाग के किले में अवस्थित स्तम्भ उत्कीर्ण समुद्रगुप्त की प्रशस्ति (३५० ई.) में-उपलब्ध है। इन शिलालेखों की गद्य-शैली की उल्लेखनीय विशेषता है कि इसमें दीर्घ समासयुक्त पदों की योजना तथा अनुप्रास-श्लेषादि अलंकारों का समावेश हृदयावर्जक तथा दर्शनीय है :-

"प्रमाणमानोन्मान-स्वरगतिवर्ण-सारसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनैरुपेतैःकान्तमूर्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"

इन उपर्युक्त शिलालेखों की अलंकृत गद्य-विधा को उजागर तथा अग्रसारित करने वाली गद्यात्मक कृतियों के अभाव में ऐतिहासिक गवेषणा इसी निष्कर्ष पर पहुँची है कि यह परम्परा शताब्दियों तक लुप्त थी जिसके प्रकाशित करने का श्रेय महाकवि सुबन्धु, बाण एवं दण्डी की रचनाओं को ही है। फलतः गद्यकाव्यों के इन महनीय निर्माताओं की त्रयी का समयक्रम से विवेचन ही समीचीन प्रतीत होता है।

## सुबन्धु

संस्कृत वाङ्मय के अलंकृत शैली में निबद्ध गद्यात्मक कृति 'वासवदत्ता' के रचयिता सुबन्धु वक्रोक्ति-मार्ग के लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। कविराज ने अपने 'राघवपाण्डवीय' काव्य में उल्लेख किया है कि सुबन्धु, बाणभट्ट एवं कविराज (मैं स्वयं) ये तीन ही वक्रोक्तिमार्ग में

---

१. द्रष्टव्यः "धवलप्रभवा रागं सा वितनोति मनोवती।" अवन्तिसुन्दरीकथा
२. द्रष्टव्यः "पुण्या पुनीता गङ्गेव सा तरङ्गवती कथा।" -तिलकमञ्जरी
३. द्रष्टव्यः "तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिलसौमिलौ।
काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम्।।"- जल्हण
४. द्रष्टव्यः पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते।।" हर्षचरित-प्रथम उच्छ्वास श्लोक १२
५. द्रष्टव्यः सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाः चतुर्थो विद्यते न वा।। प्रथम सर्ग ४१वाँ श्लोक

निपुण हैं चौथा अन्य कोई नहीं।"[१] संस्कृत साहित्य के अन्य कवियों की भाँति सुबन्धु का जीवनवृत्त भी अज्ञात है। कुछ विद्वान् इन्हें कश्मीरदेशीय मानते हैं तो कतिपय मध्यदेशीय, लेकिन इनकी एकमात्र रचना 'वासवदत्ता' के अन्तः साक्ष्य के आधार से ऐसा प्रतीत होता है कि सुबन्धु दाक्षिणात्य थे। 'वासवदत्ता' के विन्ध्य-वर्णन-प्रसङ्ग में उल्लेख मिलता है कि मलयाचल से आता हुआ पवन कामकेलि में दक्ष, कर्णाटक देश की रमणियों के स्तनकलशों पर लगे कुंकुमचूर्णों की सुगन्ध को लेकर बह रहा था, तथा केरल देश की युवतियों के कपोल-फलक पर पत्रावली-रचना करने में चतुर था। मालव देश की रमणियों के नितम्बबिम्ब का संवहन करने में चतुर था। सुरतश्रम के कारण क्लान्त आन्ध्रदेश की कामिनियों के निबिड़ वा पुष्ट स्तनों की निदाघकालीन पसीने की बूँदों के सम्पर्क से शीतल था। इत्यादि। दक्षिण भारत का इतना व्यापक परिचय उपर्युक्त कथन हेतु विचारणीय है।

**स्थिति-कालः**-सुबन्धु के स्थिति-काल के विषय में भी समीक्षकों में मतैक्य नहीं है। विशेषकर यह निश्चित करने में कि वे बाणभट्ट के पूर्ववर्ती हैं या परवर्ती। इसका प्रधान कारण है कि बाण ने अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में उल्लेख किया है कि 'वासवदत्ता' ने कवियों के दर्प को चूर कर दिया-'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया'। अतः सुबन्धु, बाणभट्ट के पूर्ववर्ती हैं। यह पूर्णतः स्वीकार करने योग्य नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः बाण ने 'वासवदत्ता' नामक आख्यायिका का उल्लेख किया है जो सुबन्धु विरचित कथा-ग्रन्थ 'वासवदत्ता' से सर्वथा भिन्न है। गद्य-काव्यों में आख्यायिका और कथा दोनों पृथक्-पृथक् श्रेणी की विधाएँ हैं। "कथमाख्यायिकाकाराः न ते वन्द्याः कवीश्वराः" इस हर्षचरित के अव्यवहितपूर्व पद्य के उत्तरार्द्ध के द्वारा पूर्वसंदर्भ की पर्यालोचना से प्रतीत होता है कि हर्ष-चरित में 'वासवदत्तया' इस पद से बाणभट्ट का उद्देश्य किसी 'वासवदत्ता' नामक आख्यायिका ग्रन्थ से था; क्योकि परमवैयाकरण भगवान् पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में उसका उल्लेख किया है, जिसका प्रणयन प्रद्योतसुता उदयनपत्नी वासवदत्ता को आधार मानकर किया गया होगा तथा जो आज अनुपलब्ध है। उस 'वासवदत्ता' की कथा, 'बृहत्कथा', संस्कृत साहित्य के अन्य दृश्यकाव्यों एवं श्रव्यकाव्यों में मिलती है।[१] इस संदर्भ में दूसरा विचारणीय तथ्य यह है कि 'हर्षचरित' में भट्टारहरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास एवं कालिदास की तरह सुबन्धु के नामोल्लेख के अभाव में 'वासवदत्ता' पदमात्र के प्रयोग से भी यह सिद्ध हो जाता है कि बाणभट्ट, सुबन्धु के पूर्ववर्ती हैं। बाणभट्ट सदृश रसभावसिद्ध तथा नितान्त वाग्वैदग्ध्यनिपुण कोई महामति कवि अत्यन्त कष्टकर कल्पनारचना में प्रवीण अविशालबुद्धि सुबन्धु को अपने समकक्ष कवि मानकर उसकी परिशंसना करेगा? ऐसी श्रद्धा नहीं होती। बाण की 'किं बहुना', 'देवः प्रमाणम्', 'अचिन्तयच्च' और

---

१. द्रष्टव्य-दृश्यकाव्य-स्वप्नवासवदत्त, तापसवत्सराज, उदयनचरित, रत्नावली, प्रियदर्शिका इत्यादि। श्रव्यकाव्य-शक्तिभद्रकृत-**उन्मादवासवदत्ता**।

'आसीच्चास्य मनसि' पदसन्ततियों का सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' में ज्यों का त्यों उल्लेख मिलता है।

सुबन्धु की 'वासवदत्ता' के "वज्रेणेन्द्रायुधेन मनोजवनाम्ना तुरगेण सह नगरान्निर्जगाम" वाक्य में इन्द्रायुध शब्द का प्रयोग 'कादम्बरी' के चन्द्रापीड के इसी नाम के घोड़े की ओर संकेत है। कादम्बरी की महाश्वेता और कादम्बरी अपने प्रेमियों के मरणोपरान्त अपना प्राण-परित्याग करने का संकल्प लेती हैं, परन्तु आकाश-वाणी को सुनकर अपने दुस्साहस से विरत हो जाती हैं। 'वासवदत्ता' में भी प्रेमिका के खो जाने पर कन्दर्पकेतु नायक की भी ऐसी ही स्थिति होती है। "रोमन्थमन्थर ............।" यह वाक्य सन्ध्यावर्णन-प्रसङ्ग में 'वासवदत्ता' में तथा 'हर्षचरित' के द्वितीय उच्छ्वास के अन्त में समान रूप से उपलब्ध होता है।[1] सुबन्धु और बाणभट्ट की कृतियों के अनेक स्थलों के सम्वाद शब्दतः और अर्थतः मिलते हैं। जैसे 'वासवदत्ता' का 'गुरुदारग्रहणम्.........।" 'हर्षचरित' के तृतीय उच्छ्वास के प्रारम्भ में "द्विजानां राजा गुरुदारग्रहणमकार्षीत्।" उपलब्ध है। इस स्वल्प उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में यह सारगर्भित प्रश्न उठता है कि सुबन्धु तथा बाणभट्ट में एक के लिए दूसरा अवश्य उपजीव्य बना होगा। बाणभट्ट का ही अनुकरण सुबन्धु ने किया होगा। यही समीचीन प्रतीत होता है। बाण ने सुबन्धु से चोरी नहीं की होगी, क्योंकि बाणभट्ट काव्यार्थ चोरों की निन्दा बड़े कटु शब्दों में करते है।

**"सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।**
**अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते।।"**[2]

बाणभट्ट शब्दतः और अर्थतः दोनों रूपों में अपने से चौर-कर्म करते हुए की निर्भीकरूप से उद्घोषणा कर ऐसे उत्कृष्टकोटि के गद्य-काव्यों की संरचना कैसे कर सकते हैं ? ऐसा इन दोनों कवियों के तारतम्य को विज्ञ सहृदय समीक्षक ही निर्णय कर सकते हैं। अतः सुबन्धु, बाणभट्ट के परवर्ती हैं। यह युक्तियुक्त प्रतीत होता है। पर इसके विपरीत म.म.पी.वी. काणे प्रभृति विद्वानों ने बाण को सुबन्धु का पश्चाद्वर्ती मानने के लिए निम्नलिखित तर्क उपस्थित किए हैं :-

इन समीक्षकों के कथन का स्वारस्य यह है कि बाण द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता' सुबन्धुकृत है, क्योंकि आचार्य वामन (८०० ई.) ने अपनी 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और बाण की 'कादम्बरी' दोनों से उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। आलंकरिक तथा कवि राजशेखर के पूर्वज कविराज (१२०० ई.) के 'राघवपाण्डवीय' में सुबन्धु, बाण तथा उनका ऐतिहासिक तथा कालक्रमानुसार उल्लेख है। प्राकृतकवि

१. द्रष्टव्यः **हर्षचरित** पृष्ठ ३६-३७ म.म.पी.वी. काणे द्वारा सम्पादित संस्करण
२. द्रष्टव्यः **हर्षचरित** प्रारम्भ के श्लोक संख्या ५ तथा ६

वाक्पतिराज ने अपने काव्य 'गौडवहो' (७३६ ई.) की गाथा संख्या ८०० में[1] भास आदि कवियों के साथ सुबन्धु का उल्लेख किया है, परन्तु बाणभट्ट का नहीं जिससे प्रतीत होता है कि उस समय तक सुबन्धु पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे और बाण की उतनी ख्याति नहीं हुई थी।

कतिपय संस्कृत साहित्य के आलोचकों ने 'वासवदत्ता' के आन्तःसाक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु का साहित्यिकरचनावदान-काल ईसा का षष्ठ शतक निर्धारित किया है। ग्रन्थारम्भ में सुबन्धु ने कीर्तिशेष विक्रमादित्य का स्मरण किया है।[2] प्राचीन भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य उपाधिधारी कई नरेश हो चुके हैं, पर इतिहासविदों की मान्यता है कि यह विक्रमादित्य यशोवर्मा ही था, जिसने बालादित्य के साहाय्य से हूणों के पराक्रमी नरेश मिहिरकुल को परास्त कर उन्हें भारत से बाहर निकाल दिया था तथा इसी उपलक्ष्य में विक्रमादित्य की उपाधि से अपने को विभूषित किया था। यह घटना ईसा के षष्ठ शतक के मध्य की है।[3] नारीसौन्दर्यवर्णन-प्रसङ्ग में 'वासवदत्ता' में 'न्यायविद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्' कवि ने इस उपमान का आनयन किया है। इसके द्वारा नैयायिकशिरोमणि उद्योतकर का निर्देश किया गया है जिन्होंने वात्स्यायनमुनिप्रणीत 'न्यायसूत्रभाष्य' के दिङ्नाग प्रभृति बौद्धाचार्यों के द्वारा खण्डन किए जाने पर 'न्यायवार्तिक' की रचना की थी।[4] उद्योतकर का समय ईसा की षष्ठ शती है।

कन्दर्पकेतु के द्वारा साक्षात्कार किए जाने पर नायक अपनी नायिका वासवदत्ता को 'बौद्धसंगतिमिव अलंकारभूषिताम्' मानता है। टीकाकार शिवराम ने 'अलंकारो नाम धर्मकीर्तिकृतो ग्रन्थविशेषः' ऐसी व्याख्या की है। डॉ. कीथ भी इसमें श्लेष द्वारा बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति के 'बौद्धसंगत्यलंकार' नामक ग्रन्थ की ओर संकेत मानते हैं।[5] धर्मकीर्ति का भी आविर्भाव-काल ईसा की षष्ठ शताब्दी है जिन्होंने दिङ्नागाचार्यप्रणीत 'प्रमाणसमुच्चय' की व्याख्या के लिए 'प्रमाणवार्तिक' प्रभृति ग्रन्थों की रचना की थी। मीमांसादर्शन के प्रति सुबन्धु का अन्य दर्शनों की अपेक्षा विशेष पक्षपात देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि 'वासवदत्ता' नामक ग्रन्थ की संरचना मीमांसकमत के सुप्रतिष्ठित हो जाने के उपरान्त की गई थी। ईसा के षष्ठ शतक के मध्य में कुमारिलभट्ट ने मीमांसकमत को पुनर्जीवित किया

---

१. द्रष्टव्य : "भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजन्स रहुआरे।
सोबन्धवे अबधम्मि हारियन्दे अ आणन्दो।।"

२. द्रष्टव्य : सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।"

३. द्रष्टव्य : "आचार्य बलदेव उपाध्याय-**संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृष्ठ ३८६

४. द्रष्टव्य : यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतु विंधीयते तस्य मया निबन्धः।।" **-न्यायवार्तिक**

५. द्रष्टव्य : A.B. Keith-Classical Sanskrit Literature पृष्ठ ७७

था तथा उस समय तक यह मत प्रतिष्ठा को प्राप्त कर चुका था। इन्ही आधारों पर समीक्षक सुबन्धु का स्थिति-काल ईसा की षष्ठ शती निर्धारित करते हैं।

संस्कृत वाङ्मय के अर्वाचीन कवियों के अधिकांश प्रबन्ध-काव्यों के अन्त में अपने उत्कर्ष तथा दूसरे की निन्दा का कुतूहल दृष्टिगत होता है।[1] कलकत्ता से मुद्रित, ग्रन्थान्ध्ररक्षरमुद्रित एवं तालपत्रों में लिखित 'वासवदत्ता' की कतिपय प्रतियों में योजनाबद्धरूप से ''कवीनामगलद्दर्पः नूनं वासवदत्तया।'' यह पद्य उपलब्ध होता है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'हर्षचरित' में प्राचीन कवियों के संस्तुति-वर्णन-प्रसङ्ग में यह पद्य कैसे स्थान पा गया है? अथवा यदि यह बाणकृत ही है, तो लेखकपरम्परा से कैसे 'वासवदत्ता' के अन्त में स्थान पा गया है ? इस सम्बन्ध में कुछ भी निर्णयात्मक इदमित्थं उत्तर प्रस्तुत करना बड़ा कठिन है, लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि सुबन्धु ने अपनी 'वासवदत्ता' की उस समय रचना की जिस समय कविगण प्रचुर मात्रा में सभङ्ग, अभङ्ग, क्लिष्ट एवं अर्थविधुर श्लेषों के माध्यम से काव्य में कौतूहल उत्पन्न कर अपने को धन्य समझते थे। ऐसे ही समय में त्रिविक्रमभट्ट ने सर्वप्रकार से 'वासवदत्ता' के प्रत्यक्षर श्लेषमयप्रपंचविन्यास का अनुकरण कर अपने 'नलचम्पू' नामक प्रबन्धकाव्य का निर्माण किया था। दोनों कृतियों में मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति, श्लेष की परियोजना, पद-विन्यास एवं कथा-संक्षेपण में अत्यधिक साम्य दृष्टिगत होता है। ऐसा सुना जाता है कि जिस प्रकार सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' की रचना की थी, उसी प्रकार त्रिविक्रमभट्ट ने सरस्वती की कृपा से 'नलचम्पू' की, ऐसी किंवदन्ती है। त्रिविक्रमभट्ट, बाणभट्ट से अर्वाचीन हैं; क्योंकि उन्होंने बाण और उनकी 'कादम्बरी' दोनों का स्मरण किया है। इस प्रकार के विमर्श से यह निष्कर्ष निकलता है कि सुबन्धु की अवस्थिति की सम्भावना वैसे ही उपर्युक्त समय में होनी चाहिए तथा यही समीचीन प्रतीत होता है। कविराज के पद्य से सुबन्धु, बाण की तुलना में प्राचीन (पूर्ववर्ती) नहीं प्रतीत होते; क्योंकि उसमें प्रथमतः सुबन्धु का तत्पश्चात् बाण का नामोल्लेख है। श्लेषादि की क्लिष्ट योजना में बाण की अपेक्षा सुबन्धु की प्रवृति अधिकतर है। श्लेषों के माध्यम से दो कथाओं के निर्वहण में प्रवृत्त कविराज का श्लेषमयजीवित सुबन्धु में अपेक्षाकृत पक्षपात स्वाभाविक तथा उचित ही है। यहाँ पूर्वापर निर्देश ऐच्छिक है। इससे

---

१. द्रष्टव्य : हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे।
अपि शिशुरकविः प्रभावाद् भवति कविश्च महाकविः क्रमेण।। -रत्नाकर-
तद्विस्तार्य च पुस्तकं परिचितं कीर्णैर्वचो देवताभूषामेचकमौक्तिकैरिव हठाक्षिप्तेक्षणैरक्षरैः।
व्यावहारेण हृदयान्तरालविहरद्विद्यावधू नूपुरध्वानभ्रान्तिकृता ततस्तदपठत्स्वं काव्यमव्याकुलः।।-मङ्खक-
ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु। -नैषधकर्ताश्रीहर्षः-

किसी भी अर्थ की खींचतान की सिद्धि करना युक्तिसंगत नहीं है। 'सुभाषितहारावली',' 'सूक्तिमुक्तावली', 'शाङ्र्गधरपद्धति',[२] 'श्रीकण्ठचरित'[३] और वामनबाणभट्टविरचित 'वीरनारायणचरित'[४] में पूर्वापर कालनिर्देश का अनादर कर श्लोकों की रचना की गई है।

## कथानक

सुबन्धु की एकमात्र रचना 'वासवदत्ता' उपलब्ध है जिसमें चिन्तामणि राजा का पुत्र कन्दर्पकेतु की कुसुमपुर के राजा शृङ्गारशेखर की राजकुमारी वासवदत्ता के साथ प्रणय-कथा निबद्ध है। राजकुमार प्रातःकालीन स्वप्न में एक रूपवती युवती को देखता है और कामासक्त होकर अपने मित्र मकरन्द के साथ उसके अन्वेषण में अपनी राजधानी से निकल पड़ता है। रात्रि में विन्ध्य-पर्वत की उपत्यका में एक वृक्ष के नीचे अपना पड़ाव डालता है और अर्ध-रात्रि के समय आपस में वार्त्तालाप करते हुए शुक-दम्पती से अवगत होता है कि कुसुमपुर के राजा की एकलौती परिणययोग्या पुत्री वासवदत्ता पिता के द्वारा आयोजित स्वयंवर में सभी वरों को अस्वीकार कर चुकी है। स्वप्न में वह कन्दर्पकेतु नामक युवक को देखती है और उसी के साथ प्रणय-सम्बन्ध करना चाहती है। युवक की खोज में वासवदत्ता ने सन्देश-वाहक काक को भेजा, जो संयोगवशात् कन्दर्पकेतु से उसी स्थान पर मिलता है। कुसुमपुर के उद्यान-आरामगृह में दोनों प्रेमियों का मिलन होता है, पर यह जानने पर कि राजा शृङ्गारशेखर ने अपनी पुत्री को विद्याधरों के राजा को देने का संकल्प कर लिया है, दोनों प्रेमी-प्रेमिका जादू के घोड़े पर आरूढ़ हो भाग निकलते हैं और विन्ध्याटवी के उसी वृक्ष के नीचे आकर प्रणय-सुख का अनुभव करने लगते हैं। एक दिन प्रातः वासवदत्ता, कन्दर्पकेतु को सोये हुए छोड़कर वन में कन्दमूल की खोज में निकलती है और एक प्रकुपित ऋषि के शाप से शिला में बदल जाती है। प्रिया के विरह में कन्दर्पकेतु आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो जाता है और आकाश-वाणी से पुनः दोनों का मिलन

---

१. द्रष्टव्य : "सुबन्धौ भक्तिर्नः क इव रघुकारे न रमते,
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरस्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूति र्वितनुते।।"

२. द्रष्टव्यः "भासो रामिलसौमिलौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कविर्माघः भारविकालिदासतरलाः स्कन्धः। सुबन्धुश्च यः। दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः सिद्धाः यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते।"

३. द्रष्टव्यः "मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशंयाते सुबन्धौ विधेःशान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः। वाग्देव्या विरमन्तुमन्तुविधुरा द्राक्दृष्टयश्चेष्टते शिष्टः कश्चन न प्रसादयति तां यद् वाणिसद् वाणिनी।।"

४. द्रष्टव्यः "प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः।।"

होगा ऐसा सुनकर अपने दुःसाहस से विरत हो जाता है। अन्त में शिला का आलिङ्गन करने पर कन्दर्पकेतु का वासवदत्ता से स्थायी मिलन हो जाता है और मकरन्द के साथ अपनी राजधानी में आकर दोनों सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

## उपजीव्य

इसी उपर्युक्त कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता के प्रणयपूर्ण लघु कथानक को आधार बनाकर सुबन्धु ने अपनी पाण्डित्यपूर्ण प्रतिभा और वर्णन-चातुर्य्य से एक गद्यात्मक प्रबन्ध-काव्य का रूप प्रदान कर दिया, जो सर्वथा प्रशंसनीय है। सुबन्धु, गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से परिचित थे और उसको उपजीव्य बनाकर उसकी शैली के अनुकरण पर अपनी कृति का प्रणयन किया था। इसके ज्वलन्त प्रमाण विद्यमान हैं। कुसुमपुर के वर्णन में शुक अपने मुख से कहता है कि आज मैंने अपूर्व बृहत्कथा सुनी है-''अपूर्वाद्य बृहत्कथा मया श्रुता ....।'' सुनाही नहीं ''प्रत्यक्षीकृता च''। उसी संदर्भ में "प्रशस्तसुधाधवलैः बृहत्कथा लम्बैरिव शालभंजिकोपशोभितैः वृत्तैरिव।" यह भी उल्लेख 'बृहत्कथा' के सम्बन्ध में श्लेष द्वारा उपलब्ध होता है। वासवदत्ता के स्वयंवर के अवसर पर राजाओं तथा राजकुमारों का वर्णन करते हुए सुबन्धु ने उल्लेख किया है कि कई राजकुमार गुणाढ्य कवि के सदृश शौर्यादि गुणों से युक्त थे। प्रणय-कथानक के बीच-बीच में विस्तृत वर्णनों तथा अवान्तरीय घटनाओं के संयोग से कवि ने इस छोटी सी प्रेम-कथा को एक प्रबन्ध-काव्य का रूप प्रदान कर दिया है। 'वासवदत्ता' का कथावृत्तान्त प्रसिद्ध वासवदत्ता-उदयन की कथा से सर्वथा भिन्न है। यह कथा संस्कृत-वाङ्मय में कहीं उपलब्ध नहीं है। स्वप्न-दर्शन द्वारा प्रेमी और प्रेमिका के भीतर रागात्मक प्रणय का जागरण, शुक-पक्षी के माध्यम से कथा का वाचन, शापद्वारा प्रेमिका का शिला में परिवर्त्तित हो जाना, जादू के अश्व पर आरूढ़ होकर प्रेमासक्त युग्म का अपने निवास-स्थान से भागकर अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाना, आत्म-हत्या के लिए समुद्यत प्रेमी नायक का आकाश-वाणी से आश्वस्त होना इत्यादि ऐसे इतिवृत्तों को मूल कथानक की प्रमुख घटनाओं का आधार बनाना यह सिद्ध करता है कि सुबन्धु, 'वासवदत्ता' की संरचना में लोकप्रचलित परम्परागत रूढ़ियों से अवश्य प्रभावित हुए हैं। स्वप्नदर्शन द्वारा पौराणिक प्रसिद्ध उषा-अनिरुद्ध की प्रणय-कथा में प्रेम का उद्‍बोधन हुआ। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु ने गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' लोक प्रचलित रूढ़ियों और पौराणिक आख्यानों को उपजीव्य बनाया तथा उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अपनी नैसर्गिक कविगत परिकल्पना के बल से इस प्रणयप्रधान कथा-ग्रन्थ का सृजन किया है।

**समीक्षा**–परम आलंकारिक आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने 'ध्वन्यालोक' में उल्लेख किया है कि प्रायः कविगण रसाभिव्यक्ति को ध्यान न करके अलंकार-निबन्धन में निमग्न रहते

हैं-'दृश्यन्ते च कवयोऽलंकारनिबन्धनैकरसाः अनपेक्षितरसाः प्रबन्धेषु'। वस्तुतः यह संकेत सुबन्धु सदृश कवियों की ओर ही है। कवि सुबन्धु रसवस्तु की अवहेलना कर अलंकारों की परियोजना द्वारा वर्णन में अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न करने में दक्ष हैं। सुबन्धु प्रत्येक वस्तुवर्णन में श्लेष से उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, विरोधाभास प्रभृति अलंकारों का निर्वाह करते हैं। सुनने में दुःसह श्लिष्ट पदों का प्रयोग कर तथा वर्णन-वैचित्र्यगत-पाण्डित्य प्रदर्शन करने में कृतार्थता का अनुभव करते हैं और अपने को 'प्रत्यक्षर श्लेषमय प्रपंच विन्यासवैदग्ध्यपूर्ण तथा 'सरस्वतीदत्तवरप्रसादशाली' मानकर काव्यानन्द से आह्लादित करते हैं। सुबन्धु ने सभङ्ग और अभङ्ग उभयविध श्लेषों के विन्यास से अपने काव्य को 'विचित्र-मार्ग' का उत्कृष्ट निदर्शन बना दिया है जैसा कि आचार्य कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवित' में निर्देश किया है। अपने युगीन कवियों के सदृश सुबन्धु की मान्यता थी कि सत्काव्य वही है, जिसमें श्लेष तथा वक्रोक्ति की पाण्डित्यसमन्वित परियोजना विशेष रूप से की गई हो :-

**''सत्कविकाव्यबन्ध इवानबद्ध-विनिपातः ततो दीर्घोच्छ्वासरचनाकुलम्।**
**सुश्लेषवक्रघटनापटुसत्काव्यविरचमिव सत्कविकाव्यरचनामिव अलंकारप्रसाधितम्।''**

श्लेषविन्यास में दीक्षित सुबन्धु श्लेष-प्रयोग के अवसर पर अपने लोभ का सम्वरण नहीं कर सकते अतः स्थान-स्थान पर जहाँ-तहाँ श्लिष्ट उपमाओं की योजना में धर्मैक्यसम्पादक अनेक पदों के प्रयोग में उनके परित्याग के पातक से भयभीत की नाँई एक ही उपमानवस्तु के दशाभेद, पदभेद एवं और भी कुछ अधिक विशेषणयोजना के भेद की परिकल्पना कर एक ही स्थल पर अनेक उपमाओं का निरूपण कर अपने को कृतकार्य अनुभव करते हैं।[1]

सुबन्धु ने विविध अलंकारों-उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोध प्रभृति से काव्य को विभूषित करने का प्रयास किया है, पर सर्वत्र उनका प्रधान अभिप्राय श्लेष-चमत्कार उत्पन्न करने के माध्यम से अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन ही परिलक्षित होता है। गद्य कवियों की भाँति इन्होंने भी विद्यास्थानों को उपमान के रूप में उपन्यस्त किया है:-

'व्याकरणमिव', 'न्यायविद्यमिव', 'उपनिषदमिव', 'नक्षत्रविद्यामिव', 'सत्कविकाव्य-प्रबन्ध इव', 'छन्दोविचितिरिव', 'हरिवंशैरिव', 'भारतेनेव', 'रामायणेनेव', 'वेदस्येव'।

---

१. द्रष्टव्यः चिन्तामणिवर्णन अवसर पर ''नृसिंह इव', 'कृष्ण इव', 'नारायण इव', 'कंसरातिरिव', 'सागरशायी इव', 'न चक्रीव', 'राम इव'। कन्दर्पकेतुवर्णन के अवसर पर-'मन्दर इव', 'क्षीरोदमथनोद्यतमन्दर इव'। दुर्जननिन्दावसर पर-'मातङ्ग इव', 'दुष्टशूर्पश्रुतिरिव'। विन्ध्यवर्णन प्रसंग में-'पशुपतिरिव', 'विरूपाक्ष इव'।

छन्दःशास्त्र और मीमांसा का प्रयोग उपमान के रूप में सुबन्धु बार-बार करते हैं। अतः इन दोनों शास्त्रों के प्रति सुबन्धु का पक्षपात विशेष दृष्टिगत होता है। "बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवचनदर्शनोऽभवत्" इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सुबन्धु का वेदविरुद्ध बौद्धसिद्धान्तों के प्रति विद्वेष था। रामायण, भारत तथा हरिवंश के अनेक पात्रों तथा प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध घटनाओं का निर्देश पर्याप्त प्रमाण है कि कवि का वेद, उपनिषद्, समस्त दर्शनशास्त्र, रामायण, महाभारत प्रभृति से विद्वत्तापूर्ण परिचय था। सुबन्धु बहुश्रुत थे। उनके उपमानों का रसास्वादन तो तत्-तत् शास्त्र के विद्वान् ही कर सकते हैं। जैसे 'रक्तपादां व्याकरणमिव', 'न्यायविद्यामिव उद्योतकरस्वरूपामिव', 'उपनिषदामिवानन्दमेकमुद्योतयन्तीम्' इत्यादि इत्यादि, पर कतिपय स्थलों पर सुबन्धु ने प्रसन्नश्लेष का प्रयोग किया है जो बड़ा रोचक तथा सहृदयहृदयग्राह्य होता है। जैसे-''नन्दगोप इव यशोदयान्वितः, जरासन्ध इव घ टितसन्धिविग्रहः, भार्गव इव सदा न भोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः, दिलीप इव सुदक्षिणयान्वितो रक्षितश्च।''

'वासवदत्ता' का दूसरा काव्यगत वैशिष्ट्य उसका वर्णन-वैचित्र्य है। रसाभिव्यक्ति की सर्वथा उपेक्षा कर सुबन्धु ने कतिपय वर्णनों को बड़ा विस्तृत बना दिया है जैसे कन्दर्पकेतु द्वारा स्वप्नदृष्ट वासवदत्ता का वर्णन और वासवदत्ता द्वारा स्वप्नदृष्ट कन्दर्पकेतु का वर्णन इत्यादि। इन दोनों वर्णनों में नायक-नायिका के रूपसौन्दर्य, प्रेम, सम्वेदना, वियोग एवं संयोग का बड़ा ही सूक्ष्म शास्त्रीय चित्रण है। कन्दर्पकेतु के द्वारा वासवदत्ता के लावण्य का वर्णन अलंकृत शैली में किया गया है जिसमें कवि ने अपने कामशास्त्र के सम्पूर्ण ज्ञान का परिचय दिया है और उन्होंने सुन्दरी युवती के एक भी शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन को छोड़ा नहीं है। सुबन्धु ने मल्लनाग के 'कामसूत्र' का भी उल्लेख किया है।[1] वर्णनों में उनका वाग्वैदग्ध्य सर्वत्र परिलक्षित होता है। वासवदत्ता ''छन्दोविचितिरिव मालिनीसनाथा', 'छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्', विन्ध्याटवी 'श्रीपर्वत इव सन्निहितमल्लिकार्जुनः', 'शिशुरिव कृतधरित्रीधृभिः" रूप में वर्णित है।

'वासवदत्ता' में यद्यपि सम्वाद-प्रसङ्ग अत्यन्त स्वल्प हैं, तथापि जो हैं वे सरल, सरस तथा स्वाभाविक हैं। विन्ध्याटवी के वर्णन में शुक-दम्पती का सम्वाद-'भद्रे मुञ्च कोपम्। अपूर्वाद्य बृहत्कथा मया श्रुता, प्रत्यक्षीकृता तेनायं कालातिनिपातः'। 'वासवदत्ता' की पुष्पिका में सज्जनों और दुर्जनों का चित्रण करते हुए उल्लेख किया है कि "असतां हृदि प्रविष्टो दोषलवः करालायते। सतां तु हृदि न प्रविशति एव। यदि कथमपि प्रविशति तदा पारद इव क्षणमपि न तिष्ठति"। इसी प्रकार श्लोकों की रचना में सुबन्धु की पदावली प्राञ्जल सरस तथा सुबोधगम्य है। उदाहरणार्थ-वासवदत्ता के प्रारम्भिक पद्य जैसेः-

---

१. द्रष्टव्य Winternitz's History of Indian Literature Vol. III Page ३६७

"अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालती माला।।"

इस प्रकार सुबन्धु ने अपनी 'वासवदत्ता' की संरचना में कहीं अत्युद्धतार्थसंदर्भा आरभटीवृत्ति का तो कहीं मृद्वर्थेऽप्यनतिप्रौढ़बन्धा मध्यमकैशिकीवृत्ति का प्रयोग किया है। फिर भी प्रायेण 'वासवदत्ता' में ओजःकान्तिगुणोपेता गौडीया रीति का प्राधान्य है। अतः सुबन्धु की शैली आलंकारिक विद्यानाथ के शब्दों में "सः नारिकेलपाकः स्यादन्तगूढ़रसोदयः" के समीप है।

**प्रकृति-चित्रणः**-सुबन्धु ने गद्यप्रबन्ध-काव्य में स्थान-स्थान पर प्रसंगानुसार सूर्यास्त, सूर्योदय, सन्ध्या, रात्रि, वसन्त, शरत् इत्यादि प्रकृति के नानारूपों तथा दृश्यों का बड़ा सूक्ष्म तथा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें शरत्-ऋतु "पटुतरप्रभप्रभाते उद्भ्रान्तशुककुलसकल-कलसंकुलकलमकेदारे", प्रातःकालीन दृश्य तथा वासवदत्ता द्वारा कन्दर्पकेतु के पास प्रणय-पत्र-प्रेषण के अवसर पर पृथ्वी पर उतर आई धूलधूसरित अपने घोंसलों में अहमहमिकया भाव से प्रवेश करने की चेष्टा वाले पक्षियों के द्वारा शब्दायमान वृक्षों के शाखाओं से युक्त "रजोविलुठितोत्थितकुलापार्थिवपरस्परकलहविकलकलविहंगकुल-कलकलवाचालशिखरिषु, वसतिसाकांक्षेषु ध्वांक्षेषु, अनवरतदह्यमानकालागुरुधूपपरिमलोद्गारेणु वासागारेषु।" का सन्ध्या-वर्णन सर्वथा उल्लेखनीय, यथार्थ एवं मनोहारी है।

**सामाजिक तथा सांस्कृतिक चित्रण**-'वासवदत्ता' में युगीन परिस्थितियों का संकेत मिलता है। जैसे शुक-सारिका के वार्त्तालाप में, चिन्तामणि नामक राजा के शासनकाल के वर्णन-प्रसंग में। उस राजा के राजत्वकाल में प्रजा धनद (कुबेर) तथा वरुण के सदृश दानी तथा उदार थी। उस राजा के राज्य में निवासी गन्धर्वों के समान प्रियभाषी, कामदेव के सदृश प्रियदर्शी, भरत और लक्ष्मण के समान प्रजापालक थे। प्रजा पारस्परिक कलहरहित, ज्ञानी, यज्ञानुष्ठान में तत्पर, काव्यमर्मज्ञ एवं वाणी की अधीश्वर थी। उक्त वर्णनों के अतिरिक्त लोकाचार के विस्तृत वर्णन से तत्कालीन आचार-व्यवहार और संस्कृति का पता चल जाता है। उस युग में वेश्या-वृत्ति प्रचलित थी, पर वेश्याओं का समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं था। वेश्याएँ, समाज का शोषण करने वाली, विलास तथा काम-वासना की तृप्ति की साधनमात्र थीं-"भ्रमरेणेव कुसुमेषु लालितेन; जलौकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन यायजुकेनेव सुरतार्थिना...।" इसके अतिरिक्त वासवदत्ता के स्वयंवर में उपस्थित राजाओं तथा राजकुमारों के वर्णन में भी युगीन प्रदेशों की संस्कृति और वेशभूषा का वर्णन पर्याप्त मिलता है।

सुबन्धु की गद्यशैली तथा वर्णन-वैचित्र्य के निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने वाले एक गद्यकार शिल्पी हैं जिसने अपनी कृति 'वासवदत्ता' को एक विशाल प्रासाद का रूप प्रदान कर तथा उसके प्रत्येक कक्ष को

अलंकारों से विभूषित कर अपने पाण्डित्य प्रदर्शन द्वारा पाठकों को आकृष्ट कर आश्चर्यचकित करने का प्रयास किया है। सुबन्धु अपनी सामयिक साहित्यिक-जगत् की परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा कर चुके थे कि मैं एक ऐसे प्रबन्ध-काव्य का प्रणयन करूँगा जिसका प्रत्येक अक्षर श्लेषमय होगा। अतः उनका काव्य 'विचित्र-मार्ग' शैली का अनुकरणीय निदर्शन बन चुका था। संस्कृत गद्यसाहित्य में सुबन्धु, बाणभट्ट तथा दण्डी तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय कवि हैं, जिनकी शैलियों का अवान्तरीय कवियों ने आदर्श मानकर अनुकरण किया है। सुबन्धु की अलंकृत शैली तथा समास-बहुला भाषा से जहाँ उनकी रचना में काव्य-सौष्ठव के अभाव में प्रसाद और माधुर्य का हनन हो गया है और शाब्दी-क्रीड़ा का आडम्बर, कृत्रिमता और क्लिष्टता का प्राधान्यमात्र अवशेष रह गया है, वहीं बाण और दण्डी ने अपनी कृतियों में काव्य-सौन्दर्य और रसाभिव्यक्ति को विस्मृत नहीं किया है। दण्डी के वर्णनों में-विकट शब्दबन्धों और अनुप्रासादि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग है, फिर भी उनकी रचनाओं में काव्य-सौन्दर्य विद्यमान है। बाणभट्ट तो गद्यसाहित्य के कवि-सम्राट् हैं। उनकी रचनाओं में कवित्व, विशाल शब्दभण्डार, अलंकारों की मनोहारी योजना, उदात्त कल्पना, लालित्य एवं सहृदयहृदयावर्जक रसिकता अर्थात् सत्काव्य के समस्त गुण वर्त्तमान हैं। वस्तुतः बाण का गद्य संगीतात्मक स्निग्ध रसमयी पाञ्चाली शैली का निदर्शन है। सुबन्धु अपने ग्रन्थ में आद्योपान्त शाब्दी-क्रीडा में व्यस्त रहते हैं। दण्डी की रचनाओं में जीवन के याथार्थ्य का प्रत्यक्षीकरण तथा विषयान्तरों के रुचिकर संयोजन का सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है। पात्रों के सम्वादात्मक कथोपकथन में प्रसादगुणयुक्त वाक्यों का लावण्य सुबन्धु तथा बाण दोनों में समानरूप से दृष्टिगत होता है।

## बाणभट्ट

**बाणभट्ट का समय**-महाकवि बाणभट्ट संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में अपना तथा अपने वंश का ही नहीं, प्रत्युत संस्कृत वाङ्मय के प्रमुख निर्माताओं का यथासाध्य परिचय देने का अनुकरणीय प्रयास किया है। यह बाण की अभूतपूर्व देन है, जिससे संस्कृत साहित्य की निर्मिति में महत्त्वपूर्ण योगदान हुआ है। सौभाग्यवश बाण के तिथि-निर्धारण में कतिपय बाह्य तथा आन्तः साक्ष्य-प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जिनका विवरण निम्नरूप से प्रस्तुत किया जाता है:-१. आचार्य रुय्यक ने अपने 'अलंकारसर्वस्व' में अनेक बार बाण की कृतियों 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' का उल्लेख किया है। 'अलंकारसर्वस्व' से यह भी विदित होता है कि बाण ने किसी 'हर्षचरितवार्तिक' ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था।[1] 'अलंकारसर्वस्व' की निर्मिति-तिथि ११५० ई. है। अतः बाण का साहित्यिक अवदान-काल इससे पूर्व है।

---

१. द्रष्टव्यः "एषा उत्प्रेक्षा च समस्तोपमाप्रतिपादकाविषयेऽपि हर्षचरितवार्तिके साहित्यमीमांसायां च तेषु प्रदेशेषूदाहृता" अलंकारसर्वस्व पृष्ठ ६

परम आलंकारिक क्षेमेन्द्र ने अपनी 'औचित्यविचारचर्चा' तथा 'कविकण्ठाभरण' में कई बार बाणभट्ट, उनकी 'कादम्बरी' एवं उससे उद्धरणों को प्रस्तुत किया है। क्षेमेन्द्र ने बाण की 'कादम्बरी' की अनुकृति पर एक 'पद्यकादम्बरी' की भी संरचना की थी, जिसके पद्यों का उल्लेख उन्होंने 'कविकण्ठाभरण' में किया है। क्षेमेन्द्र ने अपने 'कविकण्ठाभरण' तथा 'सुवृत्ततिलक' की संरचना कश्मीरनरेश अनन्तराज (१०२८-१०६३) के शासनकाल में की थी। अतः क्षेमेन्द्र का समय ईसा की एकादश शती का उत्तरार्द्ध है।

रुद्रट के 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमिसाधु ने 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' बाण की इन दोनों कृतियों की गद्यसंरचना के क्रमशः आख्यायिका तथा कथा के दृष्टान्त के रूप में उल्लेख किया है। उनकी टीका के अन्तिम श्लोक से स्पष्ट होता है कि नमिसाधु का समय १०६९ ई. है।

भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में कतिपय निर्देश बाण के उपलब्ध होते हैं। भोज ने एक स्थान पर यह भी उल्लेख किया है कि "यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः"। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजराज ईसा की दशमी शती के अन्त में सिंहासनारूढ़ थे।

धनञ्जय ने अपने अलंकारशास्त्रीयग्रन्थ 'दशरूपक' में "यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य"[1] के रूप में बाण का "यथा कादम्बर्यां वैशम्पायनस्य"[2] के द्वारा 'कादम्बरी' का नामोल्लेख किया है। धनञ्जय के आश्रयदाता राजा मुञ्ज थे जैसा 'दशरूपक' के अन्तिम श्लोक से स्पष्ट होता है।[3] मुञ्ज, भोजराज के पितृव्य थे, अतः धनञ्जय का समय ईसा की दशम शती होता है। किसी अभिनन्द कवि ने 'कादम्बरी' की अनुकृति पर 'कादम्बरीकथासार' एक पृथक् ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ आमूलचूल पद्य में है तथा क्षेमेन्द्र ने इसके अनुष्टुप् छन्दों की संस्तुति अपने 'सुवृत्ततिलक' में की है।[4] अभिनन्द ने उल्लेख किया है कि इनके परप्रपितामह शक्तिस्वामी कर्कोटवंशीय कश्मीरनरेश मुक्तापीड़ के मन्त्री थे।

आलंकारिक मूर्धन्य अभिनवगुप्त ने भी 'कादम्बरीकथासार' का उल्लेख अपने 'ध्वन्यालोकलोचन' में किया है,[5] पर उनका निर्देश कि इस पद्यरचना का प्रणयन भट्टजयन्त ने की थी जो अभिनन्द के पिता थे जैसा वृत्तिकार का कथन है।

आनन्दवर्धनाचार्य में अपने 'ध्वन्यालोक' में बाण और उनकी दोनो गद्यात्मक कृतियों 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' का नामोल्लेख किया है तथा उनसे उपयुक्त उद्धरणों को भी यथास्थान प्रस्तुत किया है। कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' से अवगत होता है कि

---

१. द्रष्टव्य : **दशरूपक II**, ३५
२. वहीं IV, ६६
३. द्रष्टव्य : "आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्।"
४. द्रष्टव्य : "अनुष्टुप्सततसक्ता साभिनन्दस्य नन्दिनी।"
५. द्रष्टव्य: "कथातात्पर्ये सर्गबन्धो यथा भट्टजयन्तस्य कादम्बरीकथासारम्" पृष्ठ १४२

ध्वन्यालोकरचयिता आनन्दवर्धन कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा (८५५-८८३ ई.) के सभापण्डित थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब 'ध्वन्यालोक' निर्माता ने बाण की कृतियों से उद्धरणों को प्रस्तुत किया है, तब अवश्य ही ईसा की नवम शती के उत्तरार्द्ध तक बाण तथा उनकी दोनों गद्यरचनाएँ पूर्णरूप से प्रसिद्धि में आ गई थीं।

आलंकारिक वामन ने अपने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में 'कादम्बरी' से कुछ शब्दों "अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" को प्रस्तुत किया है। अभिनवगुप्त का विचार है कि समासोक्ति तथा आक्षेप इन दोनों अलंकारों के विषय में परस्पर विरोधी कथनों को प्रस्तुत करते समय आनन्दवर्धन के सम्मुख वामन और भामह के विरुद्ध विचार थे। इसीलिए उन्होंने "अनुरागवती सन्ध्या .....।" के दृष्टान्त का उल्लेख किया है। इन उपर्युक्त तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर डॉ. पी.वी. काणे ने वामन का आविर्भाव काल ईसा की अष्टम शती का उत्तरार्द्ध निश्चित किया है। अतः वामन के प्रासङ्गिक उल्लेख से सिद्ध हो जाता है कि अष्टम शताब्दी तक 'कादम्बरी' की ख्याति सम्यक्रूप से होगई थी।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की द्वादश शती से लेकर अष्टम शती तक संस्कृत साहित्य के अनेक निर्माताओं ने बहुशः बाण तथा उनकी 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' का उल्लेख किया है तथा इन दोनों कृतियों से अभीष्ट पंक्तियों को उद्धृत किया है। इनके अतिरिक्त 'नलचम्पू' तथा 'कीर्तिकौमुदी' के रचयिताओं ने भी बाण का निर्देश किया है। बाण ने अपने 'हर्षचरित' के तृतीय उच्छ्वास से अष्टम पर्यन्त वर्धनवंशीय सम्राट् हर्षवर्धन का इतिवृत तथा अपने व्यक्तिगत साक्षात्कार को साहित्यिक रूप से प्रस्तुत किया है, जिससे सिद्ध हो जाता है कि बाण, हर्ष के समसामयिक थे। हर्ष का शासनकाल ६०६ ई. से ६४२ ई. तक था। अतः बाण का आविर्भाव-काल ईसा की सप्तम शती का पूर्वार्द्ध है। यह विवादरहित है, जिसकी पुष्टि चीनी बौद्धयात्री ह्नेनसाँग के यात्रा-विवरण से होती है जो ६२६ ई. से ६४५ ई. तक भारत में रहे। ह्नेनसाँग ने अपने भारत यात्रा-विवरण में तत्कालीन उत्तरी भारत के प्रशासक हर्षवर्धन का विस्तृत वर्णन किया है। यद्यपि चीनी यात्री तथा सभापण्डित बाणभट्ट के वर्णनों में यत्र-तत्र विसंगतियाँ हैं, तथापि समता इतनी अत्यधिक है जिससे प्रमाणित होता है कि बाण के आश्रयदाता तथा ह्नेनसाँग के उत्तरापथ के सम्राट् हर्ष दोनों अभिन्न हैं। अतः बाण का आविर्भाव-काल ईसा की षष्ठ शती का उत्तरार्द्ध तथा सप्तम शती का पूर्वार्द्ध मानना ही सर्वथा समीचीन है।[1]

बाण का आविर्भाव-काल संस्कृत वाङ्मय के निर्माताओं के कालक्रमानुसार तिथि निर्धारण हेतु एक विशिष्ट उल्लेखनीय महत्त्व रखता है। बाण ने अपने 'हर्षचरित' के प्रथम उच्छ्वास के प्रारम्भ में 'भारत' नामक ग्रन्थ के कर्त्ता सर्वविद वेदव्यास, वासवदत्ता,

---

१. द्रष्टव्य : डॉ. पी. वी. काणे-**हर्षचरित** की भूमिका, पृष्ठ XIV

गद्यबन्धनृपति भट्टार हरिश्चन्द्र, सुभाषितकोश-निर्माता सातवाहन, सेतु-रचयिता प्रवरसेन, नाटकों के प्रणेता भास, सूक्तिसम्राट् कवि कालिदास, हरलीला के सदृश विस्मयकारिणी बृहत्कथा एवं उत्साहकृत आढ्यराज का उल्लेख किया है। इन उपर्युक्त कवियों तथा ग्रन्थों की अन्तिम तिथि ईसा की सप्तम शती का पूर्वार्द्ध तक है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध पाश्चात्त्य समीक्षक डॉ. पिटर्सन के मत की चर्चा अप्रासङ्गिक नहीं प्रतीत होती, जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी 'कादम्बरी' के सम्पादन की भूमिका में किया है। विद्वान् समालोचक की मान्यता है कि भास तथा कालिदास, बाण के समकालीन तथा निकट पूर्ववर्ती थे। बाण के प्रशंसित 'वासवदत्ता' के निर्माता सुबन्धु उनके पश्चात्वर्ती थे, पर यह विचारणीय मत नहीं प्रतीत होता; क्योंकि स्वयं पिटर्सन ने बल्लभदेवविरचित 'सुभाषितावलि' के प्राक्कथन में 'कादम्बरी' की भूमिका में निर्दिष्ट सुबन्धु और बाण की सम्बद्ध अवस्थिति को छोड़ दिया है।[1] अतः डॉ. पी.वी. काणे प्रभृति विद्वानों की मान्यता है कि पिटर्सन का उपर्युक्त मत माननीय नहीं है, क्योंकि 'राघवपाण्डवीय' महाकाव्य के प्रणेता कविराज ने सुबन्धु, बाणभट्ट तथा कविराज (स्वयं) को वक्रोक्तिमार्ग में निपुण उल्लेख किया है। उनका कथन है कि इन तीनों के अतिरिक्त कोई चतुर्थ नहीं है। कविराज का यह उल्लेख सर्वथा कालक्रमानुसार है। इसी प्रकार कविवर मंखकृत 'श्रीकण्ठचरित' के द्वितीय सर्ग में एक श्लोक है जिसमें प्रथमतः सुबन्धु की संस्तुति है तत्पश्चात् भारवि तथा बाण की है।[2] प्राकृत महाकाव्य 'गौडवहो' के रचयिता वाक्पतिराज ने सुबन्धु की रचना का उल्लेख किया है।[3] 'वासवदत्ता' के प्रणेता के अतिरिक्त अन्य सुबन्धु विदित नहीं हैं। अतः विद्वानों का अनुमान है कि वाक्पतिराज का निर्देश प्रस्तुत 'वासवदत्ता' के निर्माता तक ही सीमित है। वाक्पतिराज, कान्यकुब्जेश्वर यशोवर्मा के सभापण्डित थे तथा उन्होंने महाकवि भवभूति के मित्र तथा शिष्य होने के कारण प्रशंसा की है। 'गौडवहो' के सम्पादक पण्डित का निष्कर्षात्मक निर्णय है कि वाक्पतिराज ने अपने काव्य की रचना (७००-७२५ ई.) के मध्य की थी।[4] इसके अतिरिक्त इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय यह है कि जहाँ वाक्पतिराज ने सुबन्धु की कृति के निर्देश के साथ भास तथा कवि कालिदास का नामोल्लेख किया है, वहाँ बाण तथा उनकी रचनाओं के विषय में सर्वथा मौन हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामयिक होते हुए भी बाण की कृतियाँ उस समय तक ख्यातिप्राप्त नहीं हो सकी थीं।

---

१. द्रष्टव्य : वही पृष्ठ १२३

२. द्रष्टव्य : "मेण्ठे स्वर्विरूढाधिरोहिणि वशंयाते सुबन्धौ विधेः।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणः विषादस्पृशः।।" श्लोक ५३

३. द्रष्टव्य : "भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्स रहुआरे।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारिबन्दे अ आणन्दो।।" पण्डित-गौडवहो, श्लोक ८००

४. द्रष्टव्य : वही- भूमिका पृष्ठ, १००

## बाणभट्ट का व्यक्तिगत जीवन

यह बड़े दुर्भाग्य का विषय है कि इस आधुनिक युग में भी संस्कृत वाङ्मय के निर्माताओं तथा विशेषरूप से कवियों का व्यक्तिगत जीवनवृत्त जानने के लिए ऐतिहासिक सामग्रियाँ अत्यन्त स्वल्प एवं नगण्य हैं। अधिकांश कवियों के विषय में तो हमें उनके नाम-मात्र के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं है। कालिदास प्रभृति कवियों के सम्बन्ध में ऐसी परम्परागत कल्पनाप्रसूत जनश्रुतियाँ अनुस्यूत की गई हैं कि उनसे यथातथ्य-स्थिति की अवगति एक दुष्कर व्यापार बन गई है। कतिपय कवियों के विषय में हमें सामयिक शिलालेखों, दानपत्रों तथा साहित्यिक-लेखों से कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जो सन्तोषजनक नहीं हैं, लेकिन कतिपय बिल्हण, मंख इत्यादि ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों- 'विक्रमाङ्कदेवचरित' तथा 'श्रीकण्ठचरित' में अपने जीवनवृत्त के विवरण के साथ अपने समसामयिकों के विषय में भी सूचनाएँ दी है। ऐसे उपर्युक्त कोटि के कवियों में बाणभट्ट प्रथमस्थानीय हैं, जिन्होंने अपनी 'कादम्बरी' में अपने वंश का संक्षिप्त तथा अपने 'हर्षचरित' में अपने पूर्वजों तथा अपना व्यक्तिगत विस्तृत परिचय दिया है। 'हर्षचरित' के प्रथम दो उच्छ्वासों में बाण ने अपने वंश, पूर्वजों तथा अपना व्यक्तिगत इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। उनके वैयक्तिक जीवन का वर्णन तो तृतीय उच्छ्वास तक चला गया है। हर्षचरित के प्रारम्भ में अपने वात्स्यायन-कुल का वर्णन बाण ने पौराणिक शैली में किया है।[1] उनके कुल के आदि-पुरुष वत्स थे, जिनका सम्वर्धन तथा परिपालन सरस्वती और दधीच के आत्मज सारस्वत के साथ-साथ सम्पन्न हुआ था। इसी वत्स से वात्स्यायन-वंश की परम्परा प्रवाहित हुई, जिसमें बाण ने जन्म लिया। वत्स के अनन्तर कालान्तर में कुबेर नामक ब्राह्मण उत्पन्न हुए, जिनके अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत-ये चार पुत्र युगारम्भ के सदृश हुए। उनमें भू-भार के सदृश कुल-मर्यादा के रक्षक महात्मा पुत्र अर्थपति का जन्म पाशुपत से हुआ। अर्थपति के रुद्रों के समान एकादश पुत्र उत्पन्न हुए-जो भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप इन नामों से प्रसिद्ध हुए। उनमें से चित्रभानु ने राजदेवी नामक ब्राह्मणी में बाण नामक पुत्र प्राप्त किया। बाण के दो पारशव भाई (शूद्रा स्त्री से उत्पन्न) चित्रसेन तथा मित्रसेन एवं चार चचेरे भाई-गणपति, अधिपति, तारापति तथा श्यामल-थे। 'कादम्बरी' के प्रारम्भिक श्लोकों में भी इसी वंश-वृक्ष का वर्णन निम्नप्रकार से उपलब्ध है। कुबेर, वात्स्यायन गोत्रीय एक ब्राह्मण थे जो गुप्तनरेशों के द्वारा समादृत थे। कुबेर के आत्मज अर्थपति थे जिनके चित्रभानु पुत्र

---

१. द्रष्टव्यः हर्षचरित के अनुसार वात्स्यायन-वंश-वृक्षका परिचय वत्स (दधीच तथा सरस्वती के पुत्र सारस्वत के पितृव्य पुत्र) कुबेर = (वत्स के वंशज) अच्युत, ईशान, हर, पाशुपत = अर्थपति = भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप।

हुए। यही चित्रभानु, बाण के पिता थे। हर्षचरित के अनुसार पाशुपत, बाण के प्रपितामह थे, पर 'कादम्बरी' में उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

माता सरस्वती के प्रभाव से सारस्वत में यौवनावस्था के आरम्भ में ही समस्त विद्याओं का प्राकट्य हो गया, जिनका संचार उन्होंने अपने समवयस्क प्राणप्रिय मित्र वत्स में कर दिया। यही बाण के सर्वप्रथम कुल-पुरुष थे। सारस्वत ने वत्स का विवाह कर दिया तथा हिरण्यबाहु (आधुनिक शोणभद्र) नदी के तट पर प्रीति के कारण प्रीतिकूट नामक निवास-ग्राम वत्स के लिए बसा दिया। दैवदुर्विपाकवश बाण बाल्यावस्था में ही मातृहीन हो गए। स्नेहवश पिता चित्रभानु ने मातृस्थान की पूर्ति कर बाण का पालन-पोषण किया। बाण के उपनयनादि संस्कार यथाकाल सम्पन्न हुए। बाण की आयु चौदह वर्ष की भी पूर्ण न हो पाई थी कि उनके पिता बिना वृद्धावस्था में पहुँचे ही दिवंगत हो गए। पिता की मृत्यु से दुःखी बाण ने अपना कुछ समय घर में ही व्यतीत किया। स्वतन्त्र बाण की अनुशासनहीनता उत्तरोत्तर बढ़ती गई तथा वह कौमारावस्थाजनित अनेक चपलताओं का शिकार बन अवारा (इत्वर) बन गया। बहुत से समवयस्यक मित्र और सहायक बन गए। बाण ने अपने हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वासकी परिसमाप्ति पर अपने इस अवस्था की मित्रमण्डली की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है। यद्यपि पैतृक ब्राह्मणोचित धन-सम्पत्ति बाण के गृह में परम्परा से चली आरही थी तथा विद्या-प्रसङ्ग भी अविच्छिन्न रूप से चल रहा था, तथापि किशोरावस्था के अल्हड़पन के कारण विवश होकर बाण देश-देशान्तरों को देखने के कौतूहल से वशीभूत अपनी मित्र-मण्डली के साथ अपने घर से निकल पड़े। ग्रहाभिभूत की तरह स्वतन्त्र रूप से इतस्ततः विचरण करते हुए बाण सामाजिक श्रेष्ठ-जनों की हँसी के पात्र बन गए। बाण बड़े-बड़े राजकुलों में भी गए जिनके उदार-व्यवहार ने उन्हें आकृष्ट कर लिया। इस यात्राक्रम में बाण ने अनिन्द्य विद्याओं के अध्ययनाध्यापन से उद्भासित गुरु-कुलों की सेवा की, गुणी जनों की गोष्ठियों में भी सम्मिलित हुए तथा गम्भीरबुद्धिप्रधान विदग्धजनों की मण्डलियों का सेवन किया। परिणामस्वरूप संस्कारवशात् बाण ने विद्या, बुद्धि एवं अनुभवों के धनी बनकर अपनी पैतृकमूल विद्वज्जनप्रकृति को संयोग से प्राप्त कर लिया। बहुत दिनों के उपरान्त पुनः बाण अपने प्रीतिकूट ग्रामकी निवासभूमि पर लौट आए। बन्धुजनों ने आदरपूर्वक अभिनन्दन किया तथा अपनी बालमण्डली के मध्य बाण ब्रह्मानन्द के समान सौख्य का अनुभव करने लगे।

प्रचण्ड भीषण ग्रीष्म ऋतु में एक दिन जब मध्याह्न का भोजन समाप्त कर बाण अपने गृह में बैठे हुए थे, उसी समय उनके पारशव भ्राता चन्द्रसेन ने भीतर प्रवेश कर निवेदन किया कि महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीहर्षदेव के भाई कृष्ण का सन्देशवाहक आया है। लेखहारक मेखलक ने पत्रसहित सन्देश दिया कि ''आपकी अनुपस्थिति में कतिपय दुर्जनों ने सम्राट् से विपरीत निवेदन कर दिया है, पर वास्तविकता ऐसी नहीं है। प्रायः शैशवावस्था

इस प्रकार के चाञ्चल्य से पूर्ण होती है। सम्राट् ने इसे स्वीकार किया है। अतः आप अविलम्ब राजकुल में आ जाइए। निष्फल वृक्ष की तरह ग्राम में समय-यापन करना सर्वथा अनुचित है।" प्रथमतः राज-दरवार की कष्टमयी विषय सेवा-वृत्ति के प्रति अपनी अनभिज्ञता तथा अकुशलता के कारण बाण संकल्प-विकल्पात्मक अन्तर्द्वन्द्व में पड़ गए, पर अन्ततोगत्वा उन्होंने 'जाना ही पड़ेगा' ऐसा अपरिहार्य निर्णय कर भगवान् आशुतोष शंकर के प्रति शरणागत हो प्रस्थान करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। दूसरे दिन प्रास्थानिक माङ्गलिक कृत्यों का विधिपूर्वक सम्पादन कर बाण राजदरबार के लिए अपने निवास-स्थान से निकल पड़े। प्रथम दिन चण्डिकावन नामक ग्राम को पार कर मल्लकूट ग्राम में पहुँच गए। वहीं यात्रिक पड़ाव किया तथा अपने अभिन्न मित्र जगत्पति की आवभगत से कृतकृत्य होकर गंगा पार यष्टिगृहक नाम के वन-ग्राम में रात बिताई। दूसरे दिन अजिरवती नदी के तट पर मणिपुर नामक ग्राम के समीप अवस्थित स्कन्धवार में पहुँच गए और राजभवन के पास ही ठहर गए।

अवसर मिलने पर एक दिन अपराह्ण के समय जब राज-दरबार सभासदों से भरा था तथा सम्राट् हर्ष के पास मालवराजकुमार विद्यमान था, तब दौवारिक के साहाय्य से बाण का प्रवेश महाराज के समीप हुआ। बाण के पहुंचने पर श्रीहर्ष ने अवज्ञापूर्ण वचनों में कहा कि "जब तक यह मेरे प्रसाद का पात्र नहीं बनेगा, तब तक मैं इसे नहीं देखूँगा। यह तो बड़ा भारी भुजङ्ग है।" बाण ने प्रत्युत्तर में अपनी सफाई दी और सम्राट् भी "मैंने ऐसा ही सुना है।" बस इतना ही कहकर मौन हो गए। "मैं सर्वथा वही करूँगा जिससे समय आने पर सम्राट् मुझे सम्यक् रूप से जान लेंगे।" ऐसा निश्चय कर बाण स्कन्धवार से निकलकर अपने शुभ हितैषियों के घर ठहरने के लिए चले गए। बाण राज-दरबार के समीप कुछ दिन ठहरे तथा समयानुसार सम्राट् उनके स्वभाव तथा पाण्डित्यपूर्ण विद्वत्ता से परिचित होकर नितान्त प्रसन्न हो गए। बाण राज-भवन में प्रविष्ट हो गए। थोड़े ही दिनों में सम्राट् ने बाण को अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति एवं प्रभाव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

राजकीय सम्मान से समादृत होकर बाण अपने ग्राम लौट आए। मित्रों, सम्बन्धियों एवं कौटुम्बिक जनों ने बाण का हार्दिक अभिनन्दन किया। वाचक सुदृष्टि ने वायुपुराण के वाचन से उनका स्वागत किया। उसी अवसर पर बन्दी सूची-बाण ने मधुर-स्वर से दो आर्या छन्दों का गायन किया जिनमें श्रीहर्ष के जीवन-वृत्त के प्रति संकेत था। आर्याओं का श्रवणकर बाण के चारों चचेरे भाई परस्पर एक दूसरे का मुख कौतूहलवश देखने लगे और तदनन्तर उन चारों में कनीयान्, बाण के प्राण-प्रिय श्यामल ने निवेदन किया कि "हे तात। द्वितीय महाभारत के सदृश हर्ष के चरित को सुनने के लिए किसके मन में कुतूहल न होगा। अतः आप वर्णन करें। यह भार्गव-वंश उस पुण्यकीर्ति राजर्षि के पावन चरित को

सुनकर और भी पवित्र हो जाएगा।" बाण ने सम्राट् हर्ष के महान् कार्यों के यथावत् वर्णन करने में सर्वथा अपनी असमर्थता प्रकट की, लेकिन उस दिन तो दिवसावसान समीप था। अतः हर्षचरित का वर्णन दूसरे दिन से प्रारम्भ होगया। बाण के जीवनवृत्त के उत्तर-भाग का वर्णन सुलभ नहीं है। 'कादम्बरी' को अपूर्णावस्था में छोड़कर बाण दिवंगत हो गए। उसके उत्तरार्द्ध को पूरा कर उनके पुत्र ने पूर्ण बनाया। 'हर्षचरित' में वर्णित बाण की आत्मकथा का अंश समाप्त हो जाता है और तृतीय उच्छ्वास से हर्षचरित का मूल वर्णन प्रारम्भ होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्षवर्धन के समक्ष उपस्थित होने के पूर्व बाण का वैवाहिक संस्कार सम्पन्न हो चुका था और वे एक पूर्ण गृहस्थ बन चुके थे। सम्भवतः सन्ततियुक्त हो चुके थे; क्योंकि प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर हर्ष की उपेक्षाजनित "महान् अयं भुजङ्गः।" उक्ति का प्रत्युत्तर देते हुए बाण ने निवेदन किया है कि "दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि ..।"

संस्कृत के अन्य अधिकांश कवियों के सर्वथा विपरीत बाण एक सुसम्पन्न धनी परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनका परिवार ब्राह्मण विद्वानों का एक प्रतिष्ठित कुल था, जिसमें पिता-पितामहों द्वारा उपार्जित ब्राह्मणजनोचित सम्पदा विद्यमान थी। ऐसा उन्होंने हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास के अन्त में उल्लेख किया है।[1] बाण को लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों का दुर्लभ संयोग प्राप्त था जो साहित्यकारों के लिए अप्राप्य है।[2] यह भी विदित होता है कि सम्राट् हर्ष ने बाण को 'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया था। जैसा कि चालुक्यवंशीय राजा जगदेकमाला के सभापण्डित कवि दुर्गासिंह ने अपनी रचना 'कर्नाटक पंचतन्त्र' में उल्लेख किया है। बाण वस्तुतः कवियों के चक्रवर्ती थे। यह उनकी दोनों गद्यात्मक कृतियों से स्वतः सिद्ध हो जाता है। बाण जन्म से स्वभावगम्भीरधीर थे तथा उच्चकोटि के पारंगत विद्वान् थे। उन्होंने स्वयमेव उल्लेख किया है कि "सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि।" उनकी रचनाओं के सिंहावलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि बाण साहित्यशास्त्र, व्याकरणशास्त्र के निष्णान्त विद्वान् थे तथा वैशेषिक, वेदान्त एवं बौद्धप्रभृति भारतीय आस्तिक-नास्तिक दर्शनों से सम्यक् रूप से परिचित थे। अपनी दोनों कृतियों का प्रारम्भ बाण ने भगवान् शिव की संस्तुति से की है। अपने जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यात्रा का प्रारम्भ उन्होंने भगवान् शिव की सर्वाङ्गीण पूजा की है। अतः यह स्पष्ट है बाण एक निष्ठावान् आस्तिक शिवभक्त थे। 'मानवीय जीवन की प्रचण्ड प्रताड़नाओं तथा वेदनाओं से प्रताड़ित-मर्माहत कविमात्र ही सरस्वती का उत्कृष्ट उपासक

---

१. द्रष्टव्य : "सत्स्वपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु..... गृहान्निरगात्।"
**हर्षचरित** पृष्ठ ४२

२. द्रष्टव्य : "परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
संगतं श्रीसरस्वत्यो र्भूतयेस्तु सदा सताम्।।" **विक्रमोर्वशीयम्** ५, २४ **रघुवंशम्** ६.२६

हो सकता है अन्य नहीं, ऐसी आंग्ल भाषा के महान् कवि कीट्स की मान्यता है। बाण इसके अपवाद थे। भौतिक सुविधाओं के उत्तुङ्ग शिखर से जीवन के यथार्थ स्थल पर उतरकर मानव की भीषण यातनाओं का अनुभव तथा आत्मसात् कर बाण ने भारतीय संस्कृति के शाश्वत सार्वभौम सार्वजनिक सन्देश का उद्घोष किया है। वह अद्वितीय तथा अपूर्व है।

## बाण तथा उनके पुत्र

निःसन्देह बाण के पुत्र योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। यद्यपि एक महान् कवि के रूप में नहीं, जैसे उनके पिता थे, तथापि अपूर्ण 'कादम्बरी' को पूर्णता प्रदान कर उन्होंने संस्कृत जगत् को अधमर्ण बना दिया। बाण के पुत्र ने बड़ी शालीनता के साथ उल्लेख किया है कि "मैं कवित्वदर्प से प्रेरित होकर नहीं, प्रत्युत पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए पिता के दिवंगत होने के एक वर्ष की अवधि में प्रस्तुत ग्रन्थ 'कादम्बरी' को पूर्ण बनाया।'[1] पितृचरण के प्रभाव से उनके सदृश गद्य-संरचना कर सका हूँ, अन्यथा कादम्बरी (मदिरा) के रस से मदोन्मत्त होकर विवेकशून्य मुझे भय है कि रसवर्जित अपने वचनों से उसकी पूर्ति कर विद्वज्जनों की कहीं हँसी का पात्र न बन जाऊँ।"[2] उन्होंने यह भी निवेदन कर दिया है "मैंने पितृ-कृति को इस योग्यता से पूर्णता प्रदान की है कि विदग्धजन बड़ी कठिनाई से व्यवधान का अनुभव कर सकेंगे। यद्यपि मुझे अपेक्षित सीमा तक सफलता नहीं मिली, तथापि मैंने पूरा यत्न किया।" विनय-भावना से भावित होकर बाण-तनय ने कादम्बरी के उत्तरार्द्ध में अपना नामोल्लेख तक नहीं किया है; क्योंकि उनकी हार्दिक अनुभूति तथा श्रद्धा-समन्वित विश्वास था कि मूलतः उनका कोई योगदान नहीं है। उनकी इस मौनता ने आधुनिक संस्कृत-साहित्य के समीक्षकों के लिए समस्या उपस्थित कर दी है कि उनका नाम क्या था ? डॉ. पिटर्सन का कथन है कि बाण-तनय का नाम भूषण था तथा उनका निर्देश है कि इस नाम को प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ. बूल्हर को है।[3] यह मत अन्य समालोचकों को स्वीकार्य नहीं है। जम्बू में संगृहीत शारदा-लिपिबद्ध 'कादम्बरी' की एक हस्तलिखित प्रति के उत्तरभाग के अन्त में बाणपुत्र का नाम भट्टपुलिन्द अङ्कित है। जिसकी

---

१. द्रष्टव्य : "याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं,
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य,
प्रारब्ध एव च मया न कवित्वदर्पात्॥" 'कादम्बरी' उत्तरार्द्ध का चतुर्थ श्लोक'

२. द्रष्टव्य : "कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाऽप्यनुसंदधानः॥" वही

३. द्रष्टव्य : डॉ. पिटर्सन द्वारा सम्पादित 'कादम्बरी की भूमिका' पृष्ठ-४०

लेखन-तिथि शकाब्द १५६९ तदनुसार १६४७ ई. है।[1] उदयपुर के विक्टोरिया संग्रहालय में उपलब्ध एक दूसरी हस्तलिखित प्रति तथा नाथद्वार के महाराजाधिराज के संग्रह की एक अन्य प्रति में पुलिन्द नाम मिलता है।[2] महाकवि बाणभट्ट के हर्षचरित की अनुकृति पर कविवर धनपाल ने अपनी 'तिलकमंजरी' में अपने पूर्ववर्ती कवियों का नामोल्लेख किया है। उन्होंने बाण की संस्तुति के संदर्भ में स्पष्ट उल्लेख किया है कि बाण-तनय का नाम पुलिन्द था।[3] धनपाल का समय ईसा की एकादश शती है। अतः इससे स्पष्ट है कि बाण-पुत्र का नाम पुलिन्द ही था भूषणबाण अथवा भूषणभट्ट नहीं।

## बाण तथा मयूर

सम्राट् हर्षवर्धन के दरबार को सुशोधित करने वाले कवियों में बाण के साथ मयूर का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने 'सूर्य्यशतक' की रचना की थी। 'सूर्य्यशतक' की अपनी 'भावबोधिनी' टीका में मधुसूदन ने उल्लेख किया है कि मयूरभट्ट श्वसुर थे और कादम्बरी-कर्त्ता उनके जामाता।[4] 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के रचयिता मेरुतुङ्ग का कथन है कि बाण, मयूर की बहन के पति थे। बाण और मयूर के सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रचलित है कि एक दिन मयूर प्रातःकाल काव्यरचनोपरान्त बाण के घर उनसे मिलने गए। उस समय बाण पति-पत्नी पारस्परिक स्वाभाविक प्रेम-कलह में लिप्त थे। दोनों अपने अन्तःकक्ष में विद्यमान थे। मयूर दरवाजे पर ही रुक गए। भीतर प्रवेश का दुःसाहस नहीं किया। बाण, पत्नी को श्लोक रचना कर सुना रहे थे जिसका तीन चरण पूरा कर पा रहे थे, पर चतुर्थ विस्मृत हो जाता था। मयूर ने चतुर्थ पाद की पूर्ति कर दी।[5] बाण अत्यन्त प्रसन्न हो गए। पत्नी ने प्रेम-कलह में हस्तक्षेप से क्रुद्ध हो पिता को कुष्ठ रोग से ग्रस्त होने का शाप दे दिया। पतिनिष्ठ पत्नी के शापवश मयूर असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गए, परन्तु

---

१. द्रष्टव्य : डॉ. स्टीन की जम्बू संस्कृत हस्तलिखित सूचीपत्र पृष्ठ २६६

२. द्रष्टव्य : प्रो. एस.आर. भण्डारकर शोधविवरण हस्तलेख १६०४-५, १६०६

३. द्रष्टव्यः "केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्र (न्द) कृतसन्निधिः।।"

४. द्रष्टव्यः "मालवराजस्योज्जयिनीराजधानीकस्य कविजनमूर्धन्यस्य रत्नावल्याख्यनाटिकाकर्त्तुर्महाराजश्रीहर्षस्य सभ्यौ महाकवी पौरस्त्यौ बाणमयूरावास्ताम्। तयोर्मध्ये मयूरभट्टः श्वसुरः। बाणभट्टः कादम्बरीग्रन्थकर्त्ता तस्य जामाता।"

५. बाणरचित पद्य के तीन चरण इस प्रकार हैं-
गतप्राया रात्रिर्विगत-कल-शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तोमानस्तदपि न रुषं मुञ्चसि प्रिये
मयूर-कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्।।

'सूर्य्यशतक' की संरचना से पुनः स्वस्थ हो गए।[1] आलंकारिक आचार्य मम्मट ने भी अपने 'काव्यप्रकाश' के प्रारम्भ में इस घटना की ओर संकेत किया है।[2] बाण ने भी स्पर्धावश भगवती चण्डी की संस्तुति में शतश्लोकों में 'चण्डीशतक' का निर्माण किया था। जनश्रुति के अनुसार भगवती स्वयमेव उपस्थित हुई और बाण पूर्ण स्वस्थ हो गए। अनुश्रुति के कथांश में जो भी सत्यता हो, पर इतना तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि बाण तथा मयूर दोनों समसामयिक थे। राजशेखर ने भी उपर्युक्त कथन का समर्थन करते हुए उल्लेख किया है कि बाण और मयूर दोनों श्रीहर्ष के सभापण्डित थे।[3] कविवर पद्मगुप्त ने भी अपने 'नवसाहसाङ्कचरित' में इसका संकेत किया है।[4] आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने 'ध्वन्यालोक' में सूर्य्यशतक के कतिपय श्लोकों को उद्धृत किया है। 'सुभाषितावलि' में मयूरकृत सूर्य्यशतक के कुछ श्लोक अंकित हैं, पर वे प्रस्तुत प्राप्त ग्रन्थ में सुलभ नहीं हैं, 'सुभाषितावलि' की श्लोक संख्या २५१५ में उल्लिखित है कि हर्ष, मयूर के आश्रयदाता थे। अतः यह निर्विवादपूर्वक कहा जा सकता है कि बाण तथा मयूर समसामयिक थे।

डॉ. हाल,[5] डॉ. पिटसर्न[6] तथा स्वर्गीय विष्णुशास्त्री चिपलुङ्कण ने उल्लेख किया है कि कवि मयूर, बाण के साथी थे जैसा कि हर्षचरित के प्रथम उच्छ्‌वास के अन्त में बाण के समवयस्क घुमक्कड़ साथियों की सूची में 'जाङ्गुलिको मयूरकः' उल्लिखित है। इन उपर्युक्त समीक्षकों के निर्देश के प्रति एतावन् मात्र निवेदन पर्याप्त है कि मयूरक गारुड़िक सपेरा था वह कवि मयूर बाण का श्वसुर नहीं हो सकता।

## बाण के काव्य-गुरु

बाण ने अपने 'हर्षचरित' में अपनी आत्म-कथा के वर्णन-प्रसङ्ग में अपने गुरु की चर्चा नहीं की, लेकिन प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर जब परमेश्वर हर्षवर्धन ने उपस्थित गण्य-मान्य सभा-सदस्यों के सम्मुख उपेक्षाभाव प्रदर्शित करते हुए बाण को देखकर कह डाला कि "यह बड़ा भारी भुजङ्ग है।"; तब मर्माहत बाण का ब्राह्मण-सुलभ स्वाभिमान जाग उठा और उसने कहा है कि "समयानुसार मेरे उपनयनादि संस्कार हुए हैं। मैंने अङ्गों

---

१. द्रष्टव्यः इसी प्रकार की अनुश्रुतियाँ पण्डितराजजगन्नाथ तथा उनकी **'गंगालहरी'**, मानतुङ्गकृत 'भक्तामरस्त्रोत' तथा वेङ्कटाध्वरि और उनकी **'लक्ष्मीसहस्र'** के विषय में प्रचलित हैं।

२. द्रष्टव्यः "आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्"

३. द्रष्टव्यः "अहो प्रभावो वाग्देव्याः, यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः।। शार्ङ्गधरपद्धति श्लोक १८०

४. द्रष्टव्य : "स चित्रवर्णविच्छिन्निहारिणीरवनीपतिः।
श्रीहर्षः इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः।। श्लोक २, १८

५. द्रष्टव्य : डॉ. हाल **'वासवदत्ता** की भूमिका' पृष्ठ १२

६. द्रष्टव्य : डॉ. पिटसर्न-**सुभाषितावलि** की भूमिका पृष्ठ १३३

सहित वेदों का सम्यक् अध्ययन किया है। यथाशक्ति सभी शास्त्रों का भी श्रवण तथा मनन किया है"।[1] इसके अतिरिक्त 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' ऐसी रचनाएँ ज्वलन्त प्रमाण हैं कि इनका रचयिता समस्त संस्कृत वाङ्मय तथा अन्य शास्त्रों का उत्कृष्ट विद्वान् था। प्रभुप्रदत्त-प्रतिभा होने पर भी बाण ने अवश्य बाल्यावस्था में सभी शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया होगा अन्यथा ऐसा कैसे सम्भव हुआ?

बाण अपने गुरु का नामोल्लेख अपनी कृतियों में नहीं करते, तो अब प्रश्न उपस्थित होता है कि वह कौन सर्वशास्त्रनिष्णात कवि-गुरु था, जिसके चरणों में बैठकर बाण ने शास्त्रों का अभ्यास किया था जिसके परिणाम-स्वरूप बाण एक महान् कवि हुए थे। 'हर्षचरित' के अतिरिक्त 'कादम्बरी' पूर्वार्द्ध के प्रारम्भिक उपोद्घात के चौथे श्लोक में बाण ने अपने काव्य-गुरु का किञ्चिन्मात्र परिचय दिया[2] है। उस पद्य में बाण ने 'भर्वु' के चरणकमलद्वय को प्रणाम समर्पित किया है। यही 'भर्वु' बाण के गुरु थे, क्योंकि निर्दिष्ट पद्य के अव्यवहित पूर्व देवस्तुति है तथा उसके अनन्तर खलवर्णन है। अतः यह अनुमान करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि उपर्युक्त पद्य में बाण ने अपने गुरु की वन्दना की है। 'कादम्बरी' के टीकाकार भानुचन्द्र ने इन्हीं को ही बाण का गुरु बताया है। अन्तर इतना ही है कि भानुचन्द्र ने 'भर्वोः' के स्थान पर 'भत्सोः' पाठान्तर का उल्लेख किया है। अतः टीकाकार के अनुसार बाण के गुरु का नाम 'भर्वु' नहीं 'भत्सु' था। 'सदुक्तिकर्णामृत' में भर्वु कवि के नामोल्लेखसहित उनका एक पद्य भी उद्धृत है। इसी प्रकार 'शार्ङ्गधरपद्धति' में प्रस्तुत कविविशेष के दो पद्य मिलते हैं तथा 'सुभाषितावलि' में 'शार्ङ्गधरपद्धति' के ही दो पद्य 'भश्चु' नामक कवि के नाम से उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त इनका एक अन्य तीसरा भी पद्य उद्धृत है। सूक्ति-ग्रन्थों के भर्वु, भर्चु तथा भश्चु ये तीनों नाम एक ही कवि हैं तथा ये ही 'कादम्बरी' के टीकाकार भानुचन्द्र के अनुसार कवि बाणभट्ट के गुरु थे।[3]

## बाण तथा अन्य कवि

यहाँ उन कवियों की चर्चा अपेक्षित है, जिनका नामोल्लेख बाण ने अपने हर्षचरित के प्रारम्भिक श्लोकों में की है। सर्वप्रथम भगवान् शम्भु तथा उमा की वन्दना कर बाण ने सर्वविद् व्यास को नमस्कार किया है जिनकी वाणी ने 'भारत' नामक ग्रन्थ को पवित्र किया,

---

१. द्रष्टव्य : **हर्षचरित** पृष्ठ ३६

२. द्रष्टव्यः "नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्। समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटंक-पीठोल्लुलितारुणांगलि।।" और भी- पाश्चात्य संस्कृत समीक्षक डॉ. पिटर्सन ने 'कादम्बरी' के पूर्वार्द्ध के प्रारम्भिक पद्यों की निर्मिति के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया है और उनका कथन है कि इन पद्यों के रचयिता बाण नहीं हैं।" पर आलंकारिक क्षेमेन्द्रने पूर्वार्द्ध के चार श्लोकों को अपनी 'औचित्यविचारचर्चा' में उद्धृत किया है। अतः सन्देह का कोई औचित्य नहीं है।

३. द्रष्टव्यः आचार्य पं. बलदेव उपाध्यायकृत- **'संस्कृत सुकवि समीक्षा'** पृष्ठ २७६

जिस प्रकार सरस्वती नदी ने भारतवर्ष को पावन बनाया। इसके अनन्तर 'वासवदत्ता' नामक ग्रन्थ की संस्तुति है जिसने कवियों के दर्प को उसी प्रकार समाप्त कर दिया, जिस प्रकार कर्ण के पास पहुँची हुई इन्द्र द्वारा प्रदत्त शक्ति ने पाण्डुपुत्रों के अभिमान को चूर्ण किया।[1] इस 'वासवदत्ता' के विषय में संस्कृत साहित्य के समीक्षकों में बड़ा विवाद है। ऊपर संकेत किया जा चुका है। प्रस्तुत ग्रन्थ सुबन्धु-कृत कथा नहीं, प्रत्युत आख्यायिका ग्रन्थ है, जिसका निर्देश पतञ्जलि के 'महाभाष्य' तथा 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' प्रभृति व्याकरणशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध है, जो आज अनुपलब्ध है। पर अनेक समीक्षक इसे सुबन्धुकृत वासवदत्ता ही मानते हैं।

बाण ने उल्लेख किया है कि भट्टारहरिचन्द्र द्वारा निर्मित गद्य-बन्ध राजा के सदृश है। इसमें पदों की रचना उज्ज्वल तथा मनोहारिणी एवं वर्णों की संघटना अलंकार-शास्त्र-अनुसार है।[2] महेश्वर-विरचित 'विश्वप्रकाश-कोश' के अनुसार हरिशृचन्द्र, साहसांकनृपति के राजवैद्य थे। इन्होंने चरक पर एक प्रसिद्ध 'खरणाद' संहिता नामक टीका की रचना की थी,[3] लेकिन टीकाकार हरिश्चन्द्र तथा बाणनिर्दिष्ट भट्टारहरिचन्द्र अभिन्न थे, यह कहना बड़ा कठिन है। राजशेखर ने एक साहित्यकार हरिचन्द्र का उल्लेख किया है। कतिपय समीक्षक बाण के भट्टारहरिचन्द्र की पहचान उन्हीं से करना उचित समझते हैं।[4]

सातवाहन ने एक कोश की रचना की थी जिसमें सुभाषितों का संग्रह था, ऐसा बाण ने उल्लेख किया है। अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थों में प्राकृत-भाषा में निबद्ध पद्यात्मक गीतों के संग्रह को कोश की संज्ञा दी गई है।[5] अतः सातवाहनविरचित यह सुभाषितकोश हालकृत गाथासप्तशती का ही वास्तविक अभिधान है; क्योंकि हाल सातवाहन वंशीय सम्राट् थे। हेमचन्द्र ने हाल को सातवाहन का पर्याय माना है। पाश्चात्य समीक्षक बेवर की मान्यता है कि सातवाहन-कृत यह कोश अनेक कवियों द्वारा विरचित गीतों का भण्डार है। सातवाहन ने संग्रह मात्र किया; लेकिन बाण सदृश महान् कवि द्वारा संकलन-कर्त्ता की संस्तुति समीचीन नहीं प्रतीत होती। इसी से डॉ. पिटसर्न का कथन है कि बेवर की मान्यता भ्रामक है। इसका आधार गाथासप्तशती की एक गाथा है। इसके विपरीत 'सप्तशती' में ऐसे

---

१. द्रष्टव्य : "कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचनम्।।" **हर्षचरित** प्रारम्भिक श्लोक

२. द्रष्टवय : वही श्लोक १२

३. द्रष्टव्य : वाग्भट्ट-विरचित **अष्टांगसंग्रह** के व्याख्याता इन्दु के अनुसार भट्टारहरिचन्द्र की चरक की टीका का नाम **'खरणाद' संहिता-कल्पस्थान**-अध्याय ६

४. द्रष्टव्यः "श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा।
इह कालिदासमेण्ठावत्रामरसूरभारवयः।
हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्।।"

५. द्रष्टव्य : **साहित्यदर्पण** ६, पृष्ठ ३२९-३०, **काव्यादर्श** १.१३

आन्तःसाक्ष्य हैं जिनसे सिद्ध होता है कि कोश के रचयिता सातवाहन ही हैं, अन्य नहीं। यहाँ उल्लेखनीय है कि डॉ. भण्डारकर दोनों ग्रन्थ-हालकृत गाथासप्तशती तथा सातवाहनविरचित कोश को एक नहीं मानते हैं। इसके विपरीत डॉ. वा.वि. मिराशी ने निश्चित प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दोनों ग्रन्थ अभिन्न हैं, क्योंकि 'गाथासप्तशती' की अन्तिम गाथा की टीका में उसके टीकाकार पीताम्बर ने संस्कृत-छायानुवाद में मूल-ग्रन्थ को कोश से अभिहित किया है। 'गाथा-सप्तशती' के अन्य दो टीकाकार-बलदेव तथा गंगाधर ने भी हालकृत 'सुभाषित-संग्रह' को गाथाकोश कहा है।[1] प्राकृत कुवलयमालागाथा के कर्त्ता उद्योतन (७७८ ई.) ने हाल के ग्रन्थ को कोश कहा है। हरिचन्द्र के समान सातवाहन का समय भी अनिर्णीत है। सोमदेव ने अपने 'कथासरित्सागर' में उल्लेख किया है कि सातवाहन प्रतिष्ठान के राजा थे तथा प्राकृत भाषा में निबद्ध 'बृहत्कथा' के रचयिता गुणाढ्य उनके मन्त्री थे।[2]

"हर्षचरित" में प्रवरसेन 'सेतुबन्ध' के निर्माता के रूप में उल्लिखित हैं। 'सेतुबन्ध' प्राकृत-काव्य है। यह 'रावणवहो' नाम से भी ज्ञात है। इस काव्य के माध्यम से प्रवरसेन की कीर्ति सागर के दूसरे छोर तक फैल गई थी। डॉ. मिराशी मानते हैं कि 'सेतुबन्ध' के रचयिता महाकवि कालिदास हैं, जो कुछ समय के लिए वाकाटक नरेश प्रवरसेन के दरबार में दूत बनकर गए थे। यह प्रवरसेन रुद्रसेनद्वितीय के पुत्र थे, जिनसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह किया था। 'सेतुबन्ध' के एक टीकाकार ने उल्लेख किया है कि यह काव्य विक्रमादित्य की आज्ञा से प्रवरसेन के लिए कालिदास ने लिखा था। इसी से कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि प्रवरसेन प्रस्तुत काव्य के रचयिता नहीं प्रत्युत आश्रयदाता थे, जो समीचीन प्रतीत नहीं होता; क्योंकि प्रस्तुत संदर्भ में बाण ने कवियों की संस्तुति की है तथा प्रवरसेन का सम्बन्ध काव्यात्मक विषय से भी नहीं है। अतः यह अनुमान संगत है कि प्रवरसेन 'सेतुबन्ध' के निर्माता थे, जिससे उनकी कीर्ति समुद्र के पार पहुँच गई थी। डॉ. पिटर्सन तथा डॉ. हाल की मान्यता है कि प्रवरसेन कश्मीरनरेश थे जो महाकवि कालिदास के आश्रयदाता तथा मित्र दोनों थे।[3] कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' के अनुसार मातृगुप्त के बाद प्रवरसेन कश्मीर में गद्दी पर बैठे थे। इस सम्बन्ध में एतावन्मात्र कथन पर्याप्त है कि उपर्युक्त मान्यता भ्रामक है। प्रवरसेन को 'सेतुबन्ध' का प्रणेता स्वीकार किया जा सकता है; क्योंकि प्राचीन भारत में ऐसी परम्परा विद्यमान थी कि राजा भी काव्य स्रष्टा होते थे। यहाँ तक कि प्रस्तुत ग्रन्थ के एक टीकाकार राजा ही हैं।

१. द्रष्टव्य : डॉ. वा.वि. मिराशी-**"दि ओरिजिनल नेम आफ दि गाथासप्तशती"** नागपुर ओरियंटल कान्फ्रेन्स जरनल १९४६ पृष्ठ ३७०-७४

२. द्रष्टव्य : **कथासरित्सागर**, तरङ्ग ६

३. द्रष्टव्य : डॉ. पिटर्सन-**'कादम्बरी'** की भूमिका' पृष्ठ ७८, ७९ तथा डॉ. हाल-**'वासवदत्ता** का प्राक्कथन' पृष्ठ १४

प्रो. कीथ ने नाटककार भास के सम्बन्ध में बाण के उल्लेख को अत्यन्त प्रामाणिक माना है। हर्षचरित के अनुसार भास के नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार के द्वारा होता है जिनमें बहुसंख्यकपात्र हैं तथा कथावस्तु में 'पताका' नामक अंग पाए जाते हैं।[1] प्रो. कीथ का कथन है कि बाण ने जो विशेषताएँ बतलाई हैं, वे दक्षिण से उपलब्ध भास के नाटकों में मिलती हैं। अतएव उन्हें भास की प्रामाणिक रचना मानना चाहिए।[2]

भास के अनन्तर बाण ने कालिदास को स्मरण किया है तथा उनकी सूक्तियों की रसस्निग्धता की प्रशंसा की है। कालिदास के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह सर्वविदित है कि ये सुरभारती के विलास तथा 'भारत के कविकुलगुरु' हैं। तत्पश्चात् 'बृहत्कथा' का उल्लेख है। ऐसी मान्यता है कि यह ग्रन्थ अपनी मूलावस्था में पैशाची भाषा में लिपिबद्ध था, लेकिन आज उपलब्ध नहीं है। सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' तथा क्षेमेन्द्रविरचित 'बृहत्कथामंजरी' आज दो ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिनके प्रणेताओं ने यह स्वीकार किया है कि उनकी कृतियाँ पैशाची में निबद्ध गुणाढ्यनिर्मित ''बृहत्कथा'' का संक्षिप्तरूप है। 'कथासरित्सागर' के प्रारम्भ में यह बताया गया है कि 'बृहत्कथा' मूलतः पैशाची भाषा में क्यों लिखी गई।[3] 'बृहत्कथा' बाण के समय में थी तथा विस्मयजनक थी। 'कादम्बरी' में भी बाण ने लिखा है कि ''कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च ...'' अर्थात् कर्णीसुत की कथा में विपुल, अचल और शश इन पात्रों का सम्बन्ध था। कर्णीसुत मूलदेव का नाम था जिसकी कथा बृहत्कथा में आती है और वहीं विपुल तथा शश इन पात्रों का नाम भी आता है। केशवकृत 'कल्पद्रुमकोश' के अनुसार कर्णीसुत या मूलदेव का भाई शश था तथा विपुल और अचल मूलदेव के भृत्य थे।

आढ्यराज अन्तिम कवि हैं, जिनका उल्लेख बाणभट्ट ने अपनी 'हर्षचरित' की भूमिका में किया है। इन्होंने उत्साहों की संरचना की थी। बाण ने लिखा है- इनकी उत्साहों की स्मृति मेरी जिह्वा को भीतर खींच देती है और मेरी काव्य-रचना की प्रवृत्ति सर्वथा अवरुद्ध हो जाती हे। आढ्यराज नामक कवि और उनके उत्साह का निश्चित पता नहीं है। अतः समीक्षकों ने विविध अनुमान किया है। भोजकृत अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ- 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के टीकाकर रत्नेश्वर के अनुसार आढ्यराज का दूसरा नाम शालिवाहन था, जिन्होंने प्राकृत भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित किया था[4]। पर इसे स्वीकार करने में यही आपत्ति है कि जब शालिवाहन और सातवाहन दोनों अभिन्न हैं, तब एक बार बाण ने उनकी संस्तुति कर दी है। तदनन्तर दूसरी बार का कोई औचित्य नहीं प्रतीत

---

१. द्रष्टव्य : **हर्षचरित** का प्रारम्भिक श्लोक १५वाँ

२. द्रष्टव्य : ए.बी. कीथ : **ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर** १९४१ भूमिका पृष्ठ, १४

३. द्रष्टव्य : **कथासरित्सागर** के प्रारम्भिक आठ तरङ्ग।

४. द्रष्टव्यः-"केऽभूवन्नाढ्यराजस्य काले प्राकृतभाषिणः"

होता। डॉ. पिटर्सन[1] मानते हैं कि आढ्यराज किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। वे आढ्यराज को आद्यराज स्वीकार करते हैं और 'उत्साह' को वीरतापूर्ण कार्य। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में आढ्यराज मिलता है, लेकिन यह आढ्यराज की व्याख्या कठिनाई से प्रतीत होती है। डॉ. पिशेल तथा प्रो. कीथ स्वीकार करते हैं कि[2] हर्षवर्धन ही आढ्यराज थे, पर यह स्पष्ट नहीं लगता कि हर्ष को आढ्यराज क्यों कहा जाएगा। कतिपय समीक्षक इस श्लोक के व्यंग्यार्थ को स्वीकार करते हैं। किम्वदन्ती है कि आढ्यराज सातवाहन के दरबार में गुणाढ्य सात लाख श्लोकों में लिखी गई अपनी 'बृहत्कथा' को लेकर उपस्थित हुए। उन्हें राजकीय विशेष प्रोत्साहन न मिला। गुणाढ्य ने ग्रन्थ के छह लाख श्लोकों को नष्ट कर दिया और अन्त में जब एक लाख श्लोक शेष रह गए तब सातवाहन ने उस ग्रन्थ की रक्षा की। यह अनुश्रुति अतिशयोक्तिपूर्ण तथा प्राचीन परम्परागत प्रतीत होती है। सम्भवतः बाण के समय प्रचलित होगी और बाण की यह उक्ति तत्कालीन कवियों को राजकीय प्रोत्साहन के न मिलने पर लिखी हो। बाणभट्ट सातवाहन ऐसे प्रसिद्ध प्राचीन राजा के प्रति व्यंग्यार्थ आक्षेप में क्यों संलग्न होंगे तथा अग्रिम श्लोक के साथ इसकी प्रासङ्गिता भी नहीं बैठती है।

संस्कृत वाङ्मय में पूर्ववर्ती कवियों तथा उनके निर्मित ग्रन्थों के प्रति नमस्कार, समर्पण तथा कृतज्ञताज्ञापन की पद्धति सर्वप्रथम बाण में दृष्टिगत होती है या सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में मिलती है। धनपाल की 'तिलकमंजरी' में भी इसका अनुसरण हुआ है। प्राकृत और अपभ्रंश के प्रायः सभी कवियों ने इसका अनुगमन किया है। जैन साहित्य के महापुरुष की उत्थानिका में पुष्पदन्त ने लगभग बाईस पूर्ववर्ती कवियों का नामोल्लेख किया है।[3]

## बाण की कृतियाँ

'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' बाणभट्ट की सर्वविदित प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त अनुश्रुति है कि बाण ने अपने क्रुद्ध श्वसुर मयूर के शाप से मुक्त होने के लिए भगवती दुर्गा की स्तुति में 'चण्डीशतक' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह सम्पूर्ण शतक स्रग्धरा वृत्त में निबद्ध है। चण्डीशतक आज अनुपलब्ध है, लेकिन इसके श्लोक 'सरस्वती-कण्ठाभरण' तथा आचार्य मम्मटकृत 'काव्यप्रकाश' में मिलते हैं। बाण ने भीषण चण्डी की आराधना में इसकी रचना की थी। यह आश्चर्य का विषय नहीं है, क्योंकि उन्होंने

---

१. द्रष्टव्य-डॉ. पिटर्सन-**कादम्बरी** की भूमिका।

२. द्रष्टव्यः-**जरनल रायल एसियाटिक सोसाइटी**, १६०३ पृष्ठ ८३।

३. नाथूराम प्रेमीः **जैन साहित्य और इतिहास**, पृष्ठ ३२५

'हर्षचरित'[1] और 'कादम्बरी'[2] में देवी चण्डिका तथा उसके मन्दिर का आकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है। अर्जुनदेव ने तो अपनी 'अमरुशतक' की टीका में बाण को 'चण्डीशतक' के रचयिता के रूप में अङ्कित किया है[3] अतः बाण को 'चण्डीशतक' का प्रणेता स्वीकार करना युक्तिसंगत है।

४. **पार्वती-परिणय**-पांच अंकों में निबद्ध 'पार्वतीपरिणय' नाट्य-ग्रन्थ के रचयिता भी बाण माने जाते हैं। कालिदास के 'ऋतुसंहार' के समान कतिपय समीक्षकों की धारणा है कि 'पार्वती-परिणय' बाण की रचना नहीं है। पण्डित आर. वी. कृष्णमाचारी ने अपने वाणी-विलास संस्करण के 'पार्वतीपरिणय' की भूमिका में उल्लेख किया है कि प्रस्तुत ग्रन्थ कादम्बरी के प्रणेता की कृति नहीं है। ईसा की १५ शताब्दी के प्रथम चरण में किसी वामनभट्टबाण ने इसकी रचना की थी जो 'श्रृङ्गारभूषणभाण' के भी रचयिता हैं। लेकिन पण्डित आचारी के तर्क बुद्धिसंगत नहीं प्रतीत होते। 'पार्वतीपरिणय' की प्रस्तावना में बाण को वत्स वंश में उत्पन्न बतलाया गया है।[4] 'कादम्बरी' के प्रणेता बाण वत्सगोत्रोत्पन्न हैं और वामनभट्टबाण भी उसी वंश की संतति हैं।[5] वामनभट्टबाण ने बाणभट्ट से अपने को भिन्न बताने के लिए वामनबाण, वामनभट्टबाण, अभिनवबाण, अथवा मात्र भट्टबाण इत्यादि भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है। 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' के रचयिता अपने को मात्र बाण उल्लेख करते हैं। और यही 'पार्वतीपरिणय' में उपलब्ध है। इससे स्पष्ट अनुमान होता है कि 'पार्वती-परिणय', बाण की संरचना है, वामनभट्टबाण की नहीं। इसके अतिरिक्त 'पार्वती-परिणय' तथा 'हर्षचरित' में उल्लेखनीय समता दृष्टिगत होती है। दोनों कृतियाँ नए कवि की लेखनी से प्रसूत हैं। प्रस्तुत नाटक पर कालिदास के 'कुमारसम्भव' की छाया पड़ी जान पड़ती है, क्योंकि दोनों का प्रतिपाद्य-शिवपार्वती-विवाह है। दोनों की भावाभिव्यक्ति में अत्यन्त साम्य से प्रेरित होकर भी अधिकांश विद्वान् मानने के लिए तैयार नहीं कि 'पार्वती-परिणय' बाण की कृति है। लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। बाण सदृश मौलिक प्रतिभा संम्पन्न कवि अन्य कवियों की रचनाओं से भावों तथा विचारों का अपहरण

---

१. **हर्षचरित** (डॉ. पी.बी. काणे) पृष्ठ ५७

२. **कादम्बरी** (पिटर्सन) पृष्ठ २२५-२२८

३. "उपनिबद्धे च भट्टबाणे नैवंविध एवं संग्रामप्रस्तावे देव्यास्तद्भक्तिभिः भगवता भर्गेण सह प्रतिपादनाय बहुधा नर्म। यथा "दृष्टावासक्तदृष्टिः प्रथममथ तथा संमुखीनाभिमुख्ये, स्मेरा हासप्रगल्भे प्रियवचसि कृतश्रोत्रपेयाधिकोक्तिः। तद्युक्ता नर्मकर्मण्यवतु पशुपतेः पूर्ववत्पार्वती वः, कुर्वाणा सर्वभीषद्विनिहित-चरणालक्तकेव क्षतारिः।" **चण्डीशतक** श्लोक ३७ **अमरुकशतक** पृष्ठ ३

४. "अस्ति कविसार्वभौम वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाणः"। नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखरंगलासिका वाणी।।" पार्वतीपरिणय १.४

५. "जागर्ति वामनो बाणो वत्सवंशशिखामणिः।" **-शब्दरत्नाकर निघण्टु**-'श्रीमान् वामनभट्टबाण कविः साहित्यचूडामणिः।' **श्रृङ्गारभूषणभाण**

नहीं कर सकता। 'कुमारसम्भव' में नारद का इतिवृत्त नगण्य है जब कि 'पार्वती-परिणय' के प्रथम अंक का समस्त कथानक नारद से सम्बद्ध है। दोनों कृतियों की तुलना में 'पार्वती-परिणय' की वरीयता स्पष्ट है। बाण कालिदास पर सर्वथा आश्रित नहीं हैं। इन्होंने 'कुमारसंभव' में वर्णित शिव-पार्वती-विवाह में परिवर्त्तन किया है। नाटक में वसन्तिका और रम्भा तथा पार्वती की दो सखियों जया और विजया का सम्वादात्मक उपाख्यान अभिनय की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'कादम्बरी' की रचना से पूर्व बाण, कालिदास के द्वारा प्रस्तुत 'कुमारसंभव' के कथानक को आधार बनाकर नाट्य-कृति का प्रणयन करना चाहते थे। बाण के द्वारा संस्कृत नाट्यकारों के मूर्धन्य कालिदास की संस्तुति की भी सार्थकता सिद्ध होती है। आंग्ल भाषा के सर्वश्रेष्ठ नाटकार शेक्सपियर भी नार्थ प्लुटार्क तथा स्काटलैण्ड के क्लानिक्स के ऋणी हैं, क्योंकि वे अधिकांश अपने नाटकों की रचना में उनसे प्रभावित हैं।

'पार्वती-परिणय' एक सफल नाट्य-कृति नहीं है। यही प्रधान कारण है कि बाण नाटक-प्रणयन से विमुख होकर, उन्होंने अपनी काव्यगत-प्रतिभा का प्रदर्शन गद्य के क्षेत्र में किया। 'पार्वती-परिणय' ने विद्वानों को आकृष्ट नहीं किया। परिणामस्वरूप आलंकारिकों ने इसके उद्धरणों को अपनी कृतियों में स्थान नहीं दिया। गद्य-काव्यकार की प्रतिभा से नाटककार की प्रतिभा सर्वथा भिन्न होती है। बाण ने अनुभव किया तथा उस दिशा में प्रयास करना छोड़ दिया। 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' में बाण ने अपनी काव्यगत प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। 'पार्वती-परिणय' में उसका सर्वथा अभाव है। अतः समीक्षक यह स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है कि 'पार्वती-परिणय' कादम्बरीकार की रचना है। यद्यपि कवि जन्मजात होता है, बनता या बनाया नहीं जाता है, तथापि अपनी स्वभावसिद्ध काव्य-प्रतिभा को विकसित करने के लिए समय की अपेक्षा होती है। प्रारम्भिक रचना की प्रतिभा प्रौढ़ावस्था की कृतियों में नितान्त विकसित तथा परिपक्व हो जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में समीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' के स्तर तक 'पार्वती-परिणय' नहीं पहुँच सकता, तथापि बाण के कृतित्व को स्वीकार करने में कोई अवरोधक तत्त्व प्रतीत नहीं होता।

इन उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त 'मुकुटताडितक' भी बाण की एक रचना है ऐसा प्रमाण मिलता है। त्रिविक्रमभट्ट-विरचित 'नलचम्पू' के टीकाकार गुणविजयगणि ने इस नाटक को बाण-की रचना बतलाया तथा उसमें से एक श्लोक भी उद्धृत किया है।[1] परन्तु इसके अतिरिक्त इस-'मुकुटताडिक' नाटक ग्रन्थ की आज तक न उपलब्धि हुई है न कहीं

---

१. 'यदाह मुकुटताडितकनाटके बाणः। आशाः प्रोषितदिग्गजा इव गुहा, प्रध्वंससिंहा इव द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव। बिभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां, जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः।।"

इसका उल्लेख मिलता है। बाण के नाम से दूसरा नाटक ग्रन्थ 'सर्वचरित' का उल्लेख किया जाता है। क्षेमेन्द्र के अनुसार बाण ने कादम्बरी-कथा श्लोकों में भी पृथक् रूप से लिखी थी। उन्होंने अपनी 'औचित्यविचारचर्चा' में उससे एक पद्य भी उद्धृत किया है, जिसमें प्रियविमुख कादम्बरी की विरहावस्था का वर्णन है।[1] पर इन उपर्युक्त तीनों कृतियों- 'मुकुटताडितक', 'सर्वचरित' तथा 'छन्दोबद्ध कादम्बरी-कथा' के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है तथा आज तक इनका पता भी नहीं चला है।

ऐसी चर्चा है कि 'रत्नावली' नाटिका की रचना बाण ने की थी तथा प्रचुर धन प्राप्त कर बाण ने अपने आश्रयदाता श्रीहर्ष के नाम से इसको प्रचारित करा दिया। काव्य के तृतीय प्रयोजन-फल-धनप्राप्ति के उदाहरण के रूप में 'काव्यप्रकाश' के निर्माता आचार्य मम्मट ने उल्लेख किया है कि जैसे श्रीहर्षादि से बाण ने धन की प्राप्ति की 'श्रीहर्षादिर्बाणादीनामिव धनम्'। इन शब्दों के व्याख्या-प्रसंङ् में काव्यप्रकाश के किसी एक टीकाकार ने ऐसा उल्लेख कर दिया है कि बाण ने द्रव्य हेतु अपनी नाटिका को श्रीहर्ष के हाथों बेच दिया था। डॉ. बुल्हर तथा डॉ हाल उपर्युक्त विचार से पूर्ण सहमत हैं।[2] परन्तु यह विचार भ्रामक प्रतीत होता है। आचार्य मम्मट के उल्लेख का अभिप्राय यह है कि बाण एक महान् कवि थे। अतः श्रीहर्ष ने उन्हें आश्रयप्रदान किया तथा प्रचुर-धन-सम्पत्ति दी।[3] यदि यही मान लिया जाय कि बाण ने 'रत्नावली' धन के लोभ से श्रीहर्ष के हाथ बेच दी, तो 'रत्नावली' ही क्यों अपनी सर्वोत्कृष्ट 'कादम्बरी' का विक्रय कर बाण अत्यन्त धन प्राप्त कर सकते थे। 'रत्नावली' के अतिरिक्त श्रीहर्ष की 'प्रियदर्शिका' तथा 'नागानन्द' दो अन्य भी नाट्य-कृतियाँ हैं। इन तीनों में अधिक साम्य है जिससे सिद्ध होता है कि तीनों एक ही कवि की रचनाएँ हैं। आज तक किसी ने बाण को 'प्रियदर्शिका' तथा 'नागानन्द' का निर्माता नहीं कहा। दामोदरगुप्त के 'कुट्टिनीमत' (८०० ए.डी.) में तथा भोज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'रत्नावली' के श्लोक उद्धृत हैं। 'ध्वन्यालोक' में आनन्दवर्धन ने 'रत्नावली' तथा 'नागानन्द' का नामोल्लेख किया है। 'दशरूपक' में 'रत्नावली' के बीसों पद्य तथा 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' का भी नामोल्लेख है। पर कहीं

---

१. द्रष्टव्यः "यथा वा भट्टबाणस्य।" हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः।।
अत्र विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः कादम्बर्याः विरहव्यथावर्णना"-**औचित्यविचारचर्चा**

२. द्रष्टव्यः डॉ. हाल द्वारा सम्पादित **'वासवदत्ता'** का प्राक्कथन पृष्ठ, १५

३. द्रष्टव्यः "हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत्। या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टंकिताः कीर्तयस्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परिम्लानताम्।।" **काव्यप्रकाश** की टीका-सारसमुच्चय-तथा सुभाषितावलि में भी उद्धृत (पिटर्सन) न. १८० और भी-श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम् रामचरित "यदस्य स्वयमेव गृहीत-स्वभावः पृथिवीपतिः प्रसादवानभूत्। स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसाद जन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमनीयत नरेन्द्रेण।" **हर्षचरित** पृष्ठ ३७ डॉ. पी. वी. काणे

भी कोई ऐसा संकेत नहीं है कि बाण 'रत्नावली' के रचयिता हैं श्रीहर्ष नहीं। पाश्चात्त्य समीक्षकों को राजा-कवि का दृष्टान्त आश्चर्यपूर्ण प्रतीत होता है, पर भारत में ऐसी गौरवमयी परम्परा विद्यमान थी। भर्तृहरि, शूद्रक, श्रीहर्ष, भोजराज, प्रभृति उसके उदाहरण हैं।

## हर्षचरित का संक्षिप्त प्रतिपाद्य

संस्कृत-वाङ्मय में उपलब्ध आख्यायिकाओं में 'हर्षचरित' प्राचीनतम ग्रन्थ है। बहु-आयामी प्रतिभा सम्पन्न बाण ने "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" इस युगीन स्थापना को अङ्गीकृत कर इस गद्य-काव्य की संरचना की। प्रस्तुत आख्यायिका आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। प्रथम उच्छ्वास का प्रारम्भ श्लोकों से होता है। इनकी संख्या २१ [इक्कीस] है तथा इनमें क्रमशः भगवान् शम्भु तथा उमा की वन्दना के अनन्तर व्यास, वासवदत्ता, भट्टारहरिचद्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा, आढ्यराज प्रभृति भारतीय वाङ्मय में समादृत बाण के पूर्ववर्ती कवियों तथा ग्रन्थों की संस्तुति वर्णित है। यह महाकवि बाण की अद्वितीय देन है, जिसका बाण के पूर्ववर्ती कवियों के द्वारा निर्मित ग्रन्थों में सर्वथा अभाव था। संस्कृत-साहित्य की ऐतिहासिक क्रम-व्यवस्था में इस उल्लेख का बड़ा महत्त्व है। इन उपर्युक्त श्लोकों में बाण ने अपने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना-शैली तथा उसके प्रतिपाद्य विषय का भी निर्देश कर दिया। इसके साथ ही साथ उन कवियों तथा ग्रन्थों के प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन भी कर दिया, जिनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर इस महान् साहित्यिक कार्य को उन्होंने अपने हाथों में लिया था। यह निर्देश सर्वथा युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि यह परम्परा अत्यन्त आधुनिक विश्व के उच्च स्थानीय कतिपय साहित्यों में दृष्टिगत होती है जिसका बीजारोपण बाण ने उस प्राचीन काल में कर दिया।

हर्षचरित का प्रारम्भ पौराणिक शैली के अनुसार होता है। ब्रह्मलोक में इन्द्रादिक देवताओं से घिरे हुए भगवान् ब्रह्मा कमल के आसन पर बैठे हैं और मुनियों की विद्या-गोष्ठियाँ चल रही हैं। विद्या-विवाद उत्पन्न होता है और सरस्वती के उपहास से क्रुद्ध दुर्वासा, सरस्वती को स्वर्गलोक से मर्त्यलोक में अवतरित होने का शाप दे देते हैं। मन्दाकिनी का अनुगमन करती हुई सरस्वती, सावित्री के साथ शोणनदी के तट पर पहुँचती हैं और वहीं च्यवन-ऋषि के पुत्र दधीच के साथ सरस्वती का प्रणय-आकर्षण हो जाता है। सरस्वती सारस्वत नामक पुत्र को जन्म देती हैं, जिसका पालन-पोषण दधीच की भार्गववंशीय भ्रातृजाया अक्षमाला के पुत्र वत्स के साथ सम्पन्न होता है। वत्स से ही एक वंश-परम्परा चली, जिसमें कालान्तर में बाण का जन्म हुआ। प्रथम-उच्छ्वास में वात्स्यायन-वंश के पूर्वजों, बाण का जन्म, उनके माता-पिता की असामयिक मृत्यु, तत्पश्चात् स्वतन्त्र बाण का अपनी समवयस्यक मित्रमंडली के साथ देशान्तर-परिभ्रमण एवं स्वग्राम-प्रत्यावर्त्तन वर्णित है। यहाँ सरस्वती, सावित्री, प्रदोष, मन्दाकिनी, युवक दधीच तथा इनकी परिचारिका मालती एवं बाण के ४४ मित्रों की सूची का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है।

द्वितीय उच्छ्वास का प्रारम्भ बाण के बान्धव-जनों के गृहों के वर्णन से होता है। तदनन्तर भीषणतम निदाघकाल तथा दावाग्नि का वर्णन है। इसी ग्रीष्म-ऋतु में जब बाण अपने ग्राम में हैं, तभी सम्राट् हर्ष के भाई कृष्ण का लेखहारक मेखलक उनके पास हर्ष के समीप आने का निमन्त्रण लेकर आता है। बाण अपने प्रीतिकूट नामक ग्राम से निकलकर तीन पड़ावों के बाद अजिरवती नदी के तट पर स्थित मणितार ग्राम में हर्ष के सकन्धवार में पहुँच जाते हैं। वहाँ महाप्रतीहार दौवारिक के साहाय्य से बाण राजकीय मदुरा, गजशाला एवं राजकीय प्रमुख हाथी दर्पशात को देखते हैं जिसका वर्णन बाण ने विस्तृत रूप से किया है। दरबार में प्रवेश पा सम्राट् हर्ष से उनका साक्षात्कार होता है तथा थोड़े ही दिनों में सम्राट् के अत्यन्त प्रसन्न होने पर बाण राजकीय प्रसाद-जनित सम्मान, प्रेम एवं प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। तृतीय उच्छ्वास शरद्-ऋतु के वर्णन से प्रारम्भ होता है। उसी समय बाण हर्ष से सम्मानित होकर घर लौट आते हैं। अपने चचेरे भाइयों के अनुरोध से बाण हर्ष का चरित-वर्णन प्रारम्भ करते हैं, जिसमें सर्वप्रथम श्रीकण्ठ-जनपद, उसकी राजधानी स्थाण्वीश्वर तथा वर्धन-वंश के प्रवर्त्तक पुष्पभूति की कथा वर्णित है। परमशिवभक्त पुष्पभूति की भेंट तान्त्रिक साधक-विद्याधरत्व की सिद्धि में संलग्न भैरवाचार्य से होती है। भैरवाचार्य को अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है और राजा भगवती लक्ष्मी के दर्शन-वरदान से एक महान् वंश का कर्त्ता बन जाता है। चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पभूति से प्रवर्त्तित वर्धन-राजवंश में कालक्रमानुसार उत्पन्न राजाधिराज प्रभाकरवर्धन के वैभव-प्रभाव का वर्णन है। इन्होंने ही स्थाण्वीश्वर के छोटे राज्य को बृहद्रूप प्रदान कर महाराजाधिराज की पदवी धारण की थी। इनकी राजमहिषी का नाम यशोवती था। प्रभाकरवर्धन भगवान् आदित्य के उपासक थे, जिनकी कृपा से राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन उनके दो पुत्ररत्न होते हैं। युवावस्था में पहुँचने पर मालवराजकुमार कुमारगुप्त और माधवगुप्त दोनों राजकुमारों के सहयोगी अनुचर नियुक्त किए जाते हैं। इन दो पुत्रों के अतिरिक्त रानी यशोवती, राज्यश्री पुत्री को जन्म देती हैं जिसका विवाह समयानुसार मौखरि-नरेश अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठपुत्र ग्रहवर्मा के साथ सम्पन्न होता है। बाण ने इस उच्छ्वास में राजकुमारों के जन्मोत्सव तथा राज्यश्री के विवाह-समारोह का बड़ा विशद तथा आकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है। इनमें तत्कालीन सामाजिक रीतियों-प्रथाओं के वर्णन हैं, जिनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। पंचम उच्छ्वास दुःख और शोक वर्णन से भरा हुआ है। इसी से इसका नामकरण महाराजमरणवर्णन है। राज्यवर्धन कवचधारण की अवस्था में पहुँचते हैं और महाराज प्रभाकरवर्धन उन्हें आक्रामक हूणों से युद्ध करने के लिए अनुरक्त महासामन्तों की देख-रेख में सैन्यबल के साथ उत्तरापथ की ओर भेज देते हैं। हर्ष जिनकी अवस्था उस समय १४-१५ वर्ष की है अपने अग्रज का अनुसरण करते हैं और हिमालय की उपत्यका में कतिपय पड़ावों तक पहुँच कर आखेट में लग जाते हैं।

इसी बीच महाराज मरणान्तक विषम ज्वर से आक्रान्त हो जाते हैं तथा हर्षवर्धन, लेखहारक कुरंगक से पिता की रुग्णावस्था का सम्वाद पा राजधानी लौट आते हैं। महाराज का ज्वर उत्तरोत्तर भीषणरूप धारण करने लगता है और रानी यशोवती सरस्वती के तट पर प्रियजनों तथा आत्मज हर्ष की उपस्थिति में सती हो जाती हैं। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु से राजधानी स्थाण्वीश्वर दुःसह विषाद में डूब जाती है। अशौच के दिनों के बीतने पर बड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त राज्यवर्धन उत्तरापथ से लौटते हैं। राज्यश्री का परिचायक सम्वादक मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा के मारे जाने तथा भर्तृदारिका राज्यश्री के कान्यकुब्ज के कारागार में बन्द कर दिए जाने के समाचार का निवेदन करता है। राज्यवर्धन मालवनरेश से युद्ध हेतु निकल पड़ता है। कतिपय दिनों के उपरान्त दूत कुन्तक राजधानी में आकर निवेदन करता है कि मालवसैन्य तो पराजित हो गई, पर गौड़ाधिपति ने कपटपूर्ण छद्म से राज्यवर्धन को मार डाला। यह सुनते ही हर्षवर्धन की, प्रतिशोध की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठती है और वे सेनापति सिंहनाद के परामर्श से पृथ्वी को गौड़ाधिपति से रहित करने की उग्र प्रतिज्ञा कर लेते हैं। महासन्धिविग्रहाधिप अवन्ति को आज्ञा प्रदान कर हर्ष विजय-प्रयाण की तैयारी में लग जाते हैं। सप्तम उच्छ्‌वास का प्रारम्भ हर्ष के सैन्यबल के दिग्विजय-प्रयाण की तैयारी के विस्तृत वर्णन से होता है। ठीक उसी समय प्राग्ज्योतिषेश्वर भास्करवर्मा का दूत हंसवेग भेंट तथा मैत्री का सन्देश लेकर पहुँचते हैं। सेना विन्ध्यप्रदेश में प्रवेश करती है। मालवराज जीत लिया जाता है। उसकी सेना तथा कोषागार दोनों हर्ष के अधीन हो जाते हैं। अष्टम उच्छ्‌वास में शबर युवक निर्घात के साहाय्य से हर्ष अपनी बहन राज्यश्री को खोजते हुए बौद्ध-भिक्षुक दिवाकरमित्र के आश्रम में पहुँचते हैं। वहाँ पता चलता है कि एक विपन्न नारी अग्नि में प्रवेश करने के लिए उद्यत है। हर्ष अपनी बहन को बचा लेता है। दिवाकरमित्र के उपदेश से राज्यश्री अपने शेष जीवन को अपने भाई हर्ष के साथ व्यतीत करने के लिए तैयार हो जाती है। हर्ष अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर राज्यश्री के साथ गेरुआ वस्त्र धारण कर लेंगे, ऐसी सूचना मिलती है। यहीं हर्षचरित का प्रतिपाद्य समाप्त हो जाता है।

हर्षचरित इतिहास प्रख्यात वर्धन वंशीय सम्राट् परमेश्वर हर्षवर्धन के जीवन-वृत्त पर आधृत साहित्यिक अलंकृत शैली में निबद्ध वर्णनप्रधान गद्यात्मक प्रबन्ध-काव्य है। इस गद्य-काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है कि यह संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसमें ग्रन्थकर्त्ता बाण ने अपने पूर्ववर्ती कवियों तथा ग्रन्थों का प्रशस्तिपरक निर्देश किया है। परम्परा से आगत सरणी का विरोध करते हुए बाण ने अपनी दोनों गद्यात्मक कृतियों में अपना तथा अपने वंश का भी परिचय दिया है। बाण का यह श्लाघनीय प्रयास था जिसका अनुकरण अनेक संस्कृत साहित्य के कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है।

बाण में काव्यगत प्रतिमा अद्वितीय थी। अतः उन्होंने एक क्रान्तिजनक कदम उठाया। बाण के पूर्व संस्कृत वाङ्मय में काव्य के अन्तर्गत छन्दोबद्ध (पद्यात्मक) रचना की गणना होती है। संस्कृत में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में आज भी पद्यात्मक शैली में निबद्ध रचना ही काव्य में परिगणित होती है और उसके रचयिता कवि संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। बाण के सम्मुख यह युगीन समस्या थी कि काव्यगत रस,ध्वनि, गुण-अलंकार प्रभृति के यथास्थान सन्निवेश से यदि छन्दोबद्ध रचना को काव्य की संज्ञा प्रदान की जा सकती है, तो उन्हीं काव्यगत रसादि को गद्य-संरचना में स्थान प्रदान किया जाय तो क्या गद्य की गणना काव्य के अन्तर्गत नहीं की जा सकती है। बाण ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से अपनी दोनों गद्यात्मक कृतियों में ऐसे नैपुण्य से काव्य-गुणों को स्थान प्रदान किया कि संस्कृत वाङ्मय के आलंकारिकों ने यह उद्घोषणापूर्वक स्वीकार कर लिया कि गद्य ही काव्य की कसौटी है- "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" पद्य नहीं। बाण के उपरान्त संस्कृत साहित्य में गद्यात्मक कृतियों तथा उनके निर्माता काव्य तथा कवि के रूप में गिने जाने लगे। यह 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' की ही विशिष्टता है जिनके माध्यम से बाण ने संस्कृत-साहित्य में अभूतपूर्व परिवर्तन लाया। बाण ने 'हर्षचरित' को ऐसी अलंकृत शैली में लिपिबद्ध किया कि यह उनकी संरचना अपनी 'काव्यविधा' का निदर्शन बन गई। इस काव्यात्मक आख्यायिका को आधार मानकर आलंकारिकों ने अपने लक्षणग्रन्थों में आख्यायिका के लक्षणों को निरूपित किया यह निर्विवाद सत्य है। 'हर्षचरित का प्रधान प्रतिपाद्य रस, 'वीर' है तथा करुण रस अंगीरस का अंग है जिसकी अभिव्यञ्जना बड़े सौन्दर्य के साथ सती-वेश में यशोवती के वर्णन तथा उसके अन्तिम विलाप एवं राज्यवर्धन के शोक-वर्णन में हुआ है। श्रीहर्ष का दिग्विजय-प्रयाण-वर्णन वीररस के कवि की ज्वलन्त स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है। प्रथम उच्छ्वास का सरस्वती, मन्दाकिनी, युवक दधीच, द्वितीय उच्छ्वास का निदाघ तथा प्रचण्ड भीषण दावाग्नि एवं राजकीय गजशाला में हर्ष के मुख्य हाथी दर्पशात, तृतीय उच्छ्वास का शरद्-वर्णन, चतुर्थ का राज्यश्री का विवाहोत्सव, सप्तम का सायंकाल वनग्राम-वर्णन अपने उल्लेखनीय वैशिष्ट्य के लिए प्रसिद्ध हैं। अपनी काव्यात्मक गरिमा के अतिरिक्त 'हर्षचरित' का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से कम महत्त्व नहीं है। 'हर्षचरित' से अवगत होता है कि पुष्पभूति, हर्ष के सुदूर के पूर्वज थे। पुष्पभूति और हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन के बीच इस वंश के अनेक राजाओं ने शासन किया, जिसका उल्लेख हर्ष के मधुबन तथा बाँसखेरा के ताम्रपत्रों में हुआ है पर 'हर्षचरित' के अनुसार पुष्पभूति के अनन्तर प्रभाकरवर्धन का वर्णन मिलता है। तत्कालीन बौद्धचीनी यात्री हेनसाँग ने प्रभाकरवर्धन से अपना यात्रा-विवरण-वर्णन प्रारम्भ किया है और उसने लिखा है कि राज्यवर्धन, हर्ष का अग्रज था। बाण ने उल्लेख किया है कि हर्ष के पूर्वजों की राजधानी स्थाण्वीश्वर (वर्त्तमान थानेश्वर) में थी, जब कि हेनसाँग का कथन है कि हर्ष की राजधानी

कान्यकुब्ज थी। यद्यपि विद्वान् चीनी यात्री के विवरण से अवगत होता है कि हर्ष वैश्य जाति के थे, तथापि बाण ने ऐसा कुछ भी संकेत नहीं दिया है कि हर्ष का परिवार क्षत्रिय नहीं था। हर्षचरित में उल्लिखित है कि हर्ष की बहन राज्यश्री का विवाह प्राचीन क्षत्रिय-कुल मौखरि के अवतंस ग्रहवर्मा से हुआ था। यद्यपि बाण ने नहीं लिखा है कि हर्ष की माता किस कुल की थी, तथापि हर्षचरित में निर्देश है कि यशोवती के पिता वीरपुरुष थे और उसके माता-पिता उसके सती होने के समय जीवित थे।[1] हर्षचरित के अनुसार प्रभाकरवर्धन ने सफलतापूर्वक हूणों, सिन्धु, गुजरात, गान्धार, लाट (वर्त्तमान भड़ौच) और मालवनरेशों के विरुद्ध युद्ध किया था। हर्ष के अभिलेखों से भी अवगत होता है कि प्रभाकरवर्धन महाराज तथा महाराजाधिराज की उपाधि से विभूषित हैं।

सिंहासनारोहण के समय राज्यवर्धन अत्यन्त युवक थे और उनकी अवस्था लगभग १६ अथवा २० वर्ष की थी। हर्षचरित से पता चलता है कि राजकुमार राज्यर्धन तथा हर्ष के समवयस्क साथी दोनों गुप्त-कुमारों में ज्येष्ठ कुमारगुप्त लगभग १८ वर्ष का था। अतः राज्यवर्धन भी लगभग उसी अवस्था का था। हूणों को परास्त कर जब राज्यवर्धन लौटते हैं, तब उनके कपोलों पर कुछ बाल निकले हैं। हर्ष अपने अग्रज से चार वर्ष छोटा था और राज्यश्री अपने ज्येष्ठ भ्राता से लगभग छः वर्ष छोटी थी। अतः हर्ष और राज्यश्री क्रमशः १६ और १४ वर्ष के थे जब उनके पिता दिवंगत हुए। इसका समर्थन हर्षचरित के कतिपय उद्धरणों से होता है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु ६०५ ई. में हुई। अतः हर्ष का जन्म ५९० ई. तथा उनका राज्यारोहण ६०६ ई. में हुआ था।[3] श्री सी.वी. वैद्य ने भी ज्योतिष शास्त्रीय तथ्यों के आधार पर हर्ष का जन्मकाल ४ जून ५९० ई. निर्धारित किया है। हर्ष के ऐतिहासिक इतिवृत्त में कतिपय विवादास्पद स्थल हैं-जैसे राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा का घातक कौन था ? राज्यवर्धन का वध करने वाला कौन गौडाधिपति था ? इन प्रश्नों का समाधान करने का डॉ. होर्नले, फ्लीट आदि ने प्रयास किया है, तथापि हर्षचरित में निर्णायक कुछ तथ्य विद्यमान हैं।

बाण ने उल्लेख किया है कि अग्रज के निधन के उपरान्त मन्त्री भण्डी ने सचिवों से हर्ष को राजा के रूप में चयन करने का अनुरोध किया है और सभी ने उसके परामर्श को स्वीकार कर लिया, लेकिन ह्वेनसाँग ने हर्ष के सिंहासनारोहण को रहस्यात्मक वातावरण से आवृत्त कर रखा है। राज्याभिषेक के अनन्तर हर्ष लगभग ६ वर्षों तक दिग्विजय-यात्रा करता है तथा हिमालय से लेकर नर्मदा तक एवं बंगाल की खाड़ी से लेकर सिन्धप्रदेश तक

---

१. द्रष्टव्य 'वीरजा वीरजाया', अम्ब तात न पश्यतं पापां परलोकप्रस्थितां माम्'

२. द्रष्टव्यः 'यदि बाल इति नितरां तर्हि न परित्याज्योऽस्मि; पृष्ठ ४२ 'बाल एवाखण्डभूमिमारूढ़ः-१" पृष्ठ ५६ 'इयं नः स्वसा बाला न बहुदुःखकरवेदिता च' पृष्ठ ८५

३. V.A. Smith: Early History of India पृष्ठ ३१२

समस्त उत्तरी भारत में एकछत्र राज्य स्थापित कर लेता है। हर्षचरित के तृतीय उच्छ्वास में उल्लेख है कि पुरुषोत्तम हर्ष ने सिन्धुराज का उन्मूलन कर जिनकी राज्यलक्ष्मी को आत्मसात् कर लिया है तथा दुर्गम तुषार शैलभूमि से कर ग्रहण किया। ऐसा संकेत उपलब्ध होता है कि अपने बाल्यकाल के साथी ज्येष्ठ मालवराजकुमार कुमारगुप्त को हर्ष ने सिंहासन पर बैठाया था। कनिष्ठ मालवराजपुत्र माधवगुप्त हर्ष का अत्यन्त प्रियपात्र था। मालव परिवार के अतिरिक्त हर्ष का प्रगाढ़ सम्बन्ध तथा मित्रता मौखरि राजवंश से थी जहाँ राज्यश्री का विवाह हुआ था। मौखरिनरेशों की राजधानी कान्यकुब्ज थी। बाण ने 'कादम्बरी' के प्रारम्भिक श्लोकों में उल्लेख किया है कि मौखरि बड़ा प्राचीन तथा प्रतिष्ठित राजपरिवार था। इसके वंशज भगवान् शिव के भक्त थे[1] हर्षचरित से पता चलता है कि कुमार उपनाम भास्करवर्मा प्राग्ज्योतिष (आधुनिक असम) के राजा थे और उन्होंने हर्ष के दिग्विजय-प्रयाण के अवसर पर भेंट तथा मैत्री का संदेश भेजा था। ह्वेनसाँग ने भी इसका समर्थन किया है और यह भी लिखा है कि कन्नौज के प्रति गंगा के दक्षिण तट पर प्रस्थान करते हुए हर्ष का कुमारराज ने अनुगमन किया था।

हर्षचरित के द्वारा ज्ञात इस उपर्युक्त हर्ष के जीवनवृत्त का तत्कालीन अभिलेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों एवं अन्य ऐतिहासिक साधनों से उपलब्ध इतिवृत्त से अनमेल तथा विसंगति नहीं है। इसके अतिरिक्त यद्यपि हर्षचरित के वर्णनों में काव्यात्मक सौन्दर्य है, तथापि यथार्थ की अवहेलना नहीं हुई है। राजकीय जीवन-व्यवहार और तत्कालीन धार्मिक स्थितियों का चित्रण बड़ा वास्तविक तथा सत्य पर आधारित है। विशेष रूप से सांस्कृतिक वर्णन के लिए हर्षचरित का महत्त्व अद्वितीय है। प्रामाणिक स्रोतों से पता चलता है कि हर्ष के समय ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन-ये तीन धर्म भारत में प्रचलित थे। इन तीनों में जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रचलन उत्तरी भारत में नहीं था। नग्न जैन भिक्षु का दर्शन बड़ा अशुभ समझा जाता था।[2] शेष दोनों ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रचलित थे। धार्मिक कट्टरता का युग न था अपितु दोनों में पारस्परिक सहिष्णुता थी। एक ब्राह्मण धर्मावलम्बी, बौद्ध धर्म को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता था। इसके विपरीत बाणभट्ट प्रसंगानुसार बौद्ध धर्म की प्रत्येक वस्तु का स्पष्टता तथा सहिष्णुता के साथ वर्णन करते हैं।[3] जनता बिना किसी भय के एक धर्म का परित्याग कर दूसरे को अंगीकार कर लेती थी। प्रारम्भ में दिवाकरमित्र यजुर्वेदीय मैत्रायणीय शाखा के छात्र थे और युवावस्था में ही बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। उनके बौद्ध धर्म के प्रति पक्षपात के होते हुए भी शैव, भागवत, जैन, पौराणिक, मीमांसक प्रभृति विविध धर्मावलम्बी तथा सम्प्रदायवादी उनका अनुगमन

---

१. द्रष्टव्यः-"नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्"

२. द्रष्टव्यः-"अभिमुखमाजगाम शिखिपिच्छलाञ्छनो नग्नाटकः" **हर्ष.** पृ. २०

३. द्रष्टव्यः **हर्षचरित** द्वितीय उच्छ्वास पृष्ठ ७८

करते थे। और सभी समन्वित होकर परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के भ्रामिक चक्कर में पड़े हुए भी सत्य के अन्वेषण में तत्पर थे। यद्यपि बाण स्वयं एक कट्टर ब्राह्मण लेखक हैं, तथापि राज्यवर्धन के बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण की टीका-टिप्पणी नहीं करते। राज्यश्री की सहेलियाँ विपत्ति में भगवान् बुद्ध की रक्षाहेतु स्तुति करती हैं। हर्ष कहते हैं कि अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर मैं अपनी बहन राज्यश्री के साथ बौद्ध कषाय वस्त्र को धारण करूँगा। अपने एक अभिलेख में हर्ष अपने अग्रज राज्यवर्धन को परमसौगत अर्थात् एक उच्चकोटि के बौद्ध धार्मिक कहतें हैं तथा अपने पिता से भी अधिक उनके प्रति आदरभाव व्यक्त करते हैं। अभिलेखों तथा हर्षचरित दोनों से अवगत होता है कि राजकीय परिवार में किसी देवता-विशेष की आराधना अथवा धर्मविशेष के प्रति मानने का बन्धन नहीं था। हर्ष के तीन पूर्वज सूर्य के परमभक्त थे। बाण ने उल्लेख किया है कि वर्धनवंश के सुदूर पूर्वज पुष्पभूति भगवान् शिव के उपासक थे।[1] बाण ने 'हर्षचरित' में वर्णन किया है कि प्रभाकरवर्धन प्रतिदिन रक्तपुष्पों से भगवान् सूर्य की पूजा करते थे। हर्ष अपने को शिव का परम उपासक-परममाहेश्वर कहता है। सोनपत की हर्ष की मुहर में नान्दी की आकृति अंकित है। बाण सूचित करते हैं कि अपने दिग्विजय-प्रयाण के पूर्व हर्ष शिव की आराधना करते हैं। इस उपर्युक्त विवरण से स्पष्टतः प्रकट हो जाता है कि हर्ष-कालीन युग में ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म में और विविध देवताओं के उपासकों के बीच कोई मानसिक कटुता का भाव नहीं था, प्रत्युत उदार स्वतन्त्र मानसिकता थी। प्रभाकरवर्धन ने कई विशाल यज्ञों का सम्पादन किया था। हर्षचरित के द्वितीय उच्छ्वास के प्रारम्भ में बाण ने अपने ग्रामीण बन्धुजनों के गृहों के वर्णन-प्रसंग में तत्कालीन सामाजिक विद्यमान अनेक सूचनाएँ दी हैं। हर्ष से सम्मानित होकर अपने ग्राम प्रीतिकूट में लौटने पर बाण अपने निकटतम कौटम्बिक जनों से पूछते हैं-"यज्ञों के सम्पादन, वेदों का अभ्यास प्रतिदिन अविच्छिन्न गति से चल रहा है न ? याज्ञिक विद्या तथा कर्मों के प्रति वही पूर्वभाव तो है न ? सादर व्याकरण-शास्त्रीय व्याख्यान जम तो रहे हैं न ? न्याय-शास्त्र पर विचार-गोष्ठी भी उसी पुराने रूप में चल रही हैं न ? मीमांसाशास्त्र में रस तो उसी रूप से मिलता है न ? सुधा-वर्षी काव्यालाप तो चल रहा है न ?" आज ही के समान बाण के समय में भी पौराणिक कथा-वाचन चलता था। उनका मित्र सुदृष्टि वायु-पुराण का वाचन नित्य उनके यहाँ दरवाजे पर करता था। पिता की मृत्यु के उपरान्त पौराणिक, हर्ष को आश्वासन प्रदान कर रहे हैं। 'कादम्बरी' से

---

१. द्रष्टव्यः-"तस्य ....सहजैव ....अन्यदेवताविमुखी....., भगवति....भवे भूयसी भक्तिरभूत्।" हर्ष. -तृतीय उच्छ्वास

पता चलता है कि महाभारत आज की तरह प्रिय ऐतिहासिक ग्रन्थ था विशेषरूप से नारी-समाज में। हर्षचरित भी महाभारत की लोकप्रियता की चर्चा करता है।[1] मरण-शय्या पर पड़े प्रभाकरवर्धन के आरोग्यलाभ हेतु सम्पादित धर्म-प्रधान विधियाँ यद्यपि जादू-टोना के रूप में प्रतीत होती हैं, तथापि उनसे तत्कालीन प्रचलित हिन्दू धार्मिक विश्वासों तथा रीति-रिवाजों का पता चलता है। बाण जब हर्ष के यहाँ प्रथम बार प्रस्थान करते हैं, उस समय उनके द्वारा सम्पादित प्रास्थानिक मांगलिक कृत्यों से ज्ञात होता है कि उस समय समाज में किसी महत्त्वपूर्ण अवसर पर किन-किन धार्मिक आचारों-व्यवहारों का प्रचलन था। युवावस्था में बाण के साथियों की विस्तृत विलक्षण सूची से पता चलता है कि एक कट्टर ब्राह्मण धर्मावलम्बी बिना जाति-पाँति के संकीर्ण वैचारिक भय के विविध जाति, धर्म, व्यवसाय एवं सम्प्रदाय के समवयस्कों से मिल-जुलकर अपना समय व्यतीत कर सकता था। बाण ने उल्लेख किया है कि उनके दो घनिष्ठ सम्पर्क में रहने वाले भ्राता पारशव थे अर्थात् उनकी माताएँ शूद्रा थी तथा पिता ब्राह्मण। हर्ष के जन्म तथा राज्यश्री के विवाहोत्सव का विस्तृत वर्णन तत्कालीन तत्सम्बन्धी आचार-व्यवहारों को पूरा प्रकाशित करते हैं। ह्वेनसाँग ने हर्षकालीन धार्मिक अवस्था का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है।

बौद्ध-यात्री ने उल्लेख किया है कि अपने जीवन के अन्तिम चरण में हर्ष एक परम निष्ठावान् बौद्ध बन गए थे और प्रति पांचवे वर्ष एक बार सभा का आयोजन कर अपने राजकीय कोष का दान देकर उसे रिक्त कर देते थे। इस संक्षिप्त उपर्युक्त मूल्यांकन से स्पष्ट हो जाता है कि हर्षचरित का महत्त्व ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

## कादम्बरी

'कादम्बरी' महाकवि बाण की द्वितीय प्रौढ़ गद्यात्मक रचना है। 'हर्षचरित' कवि की प्रथम कृति है, जिसकी परिपक्वता की परिणिति 'कादम्बरी' में हुई है। 'कादम्बरी'-पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध-दो खण्डों में उपलब्ध है। 'हर्षचरित' इसी पृथ्वी-तल के यथातथ्य पर आधृत आख्यायिका है, तो 'कादम्बरी' दिव्य-लोक को भूतल पर अवतरित करने वाली कवि-कल्पना-प्रसूत एक कथा-ग्रन्थ है। इसकी कथा प्राकृत कवि गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' से ली गई है जो पैशाची भाषा में लिपिबद्ध थी, पर आज अनुपलब्ध है। कल्पना के आधिक्य के कारण पाश्चात्त्य संस्कृत-साहित्य के समीक्षकों ने इसे उपन्यास की संज्ञा प्रदान की है।[2] 'कादम्बरी' का कथांश 'बृहत्कथा' के संस्कृत रूपान्तर सोमदेव के 'कथासरित्सागर' (५६, २२-१७८) तथा क्षेमेद्रकृत 'बृहत्कथामंजरी' (१६, १८३) में मिलता है। अतः विद्वानों

१. द्रष्टव्यः "महाभारतभावितात्मनः" तृतीय उच्छ्वास।
"कस्य न द्वितीय महाभारते भवेदस्य चरिते कुतूहलम्"। वही

२. द्रष्टव्यः-M. winterniz's 'History of Indian Literature Vol III page ४०५-४०६

की मान्यता है कि बाण गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से परिचित थे। उसी से 'कादम्बरी' की कथा संगृहीत है। कवि ने अपनी प्रतिभा तथा कल्पना से उसे एक सर्वथा नवीन और मौलिक रूप प्रदान कर दिया है। 'कादम्बरी' की रचना में बाण के दो प्रयोजन थे। प्रथम महाभारत की तरह मानवीय जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रण प्रस्तुत करना तथा द्वितीय इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति के सन्देश को पाठकों तक पहुँचाना। इन दोनों उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए बाण ने इस ग्रन्थ के मूल कथानक के प्रमुख पात्रों के जीवन-वृत्त में उनके पूर्व तीन जन्मों के कथांश को अनुस्यूत किया है, जिसमें भारतीय संस्कृति की मूलभूत आधारस्वरूप जन्मान्तरवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। कथा का प्रारम्भ विदिशा नगरी के राजा शूद्रक के प्रभाव तथा वैभव के वर्णन से होता है। राजा के सभाकक्ष में एक चाण्डालकन्या पंजरबद्ध विस्मयकारी शुक को लेकर उपस्थित होती है। शुक का नाम वैशम्पायन है जो मानवीय वाणी में अपना जीवनवृत्त प्रारम्भ से महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक सभासदों को सुनाकर उनका मनोरंजन करता है। तदनन्तर शुक के पूर्वजन्म के वृत्तान्त की अवतारणा ऋषि जाबालि करते हैं, जिसमें उज्जयिनी के राजा तारापीड़ तथा उनकी रानी विलासवती की कथा वर्णित है।

राजकुमार चन्द्रापीड़ तथा मन्त्री शुकनास के पुत्र वैशम्पायन में प्रगाढ़ मित्रता होती है। दोनों एक बार हिमालय की उपत्यका में दिग्विजय हेतु प्रस्थान करते हैं। मित्र से बिछुड़ कर किन्नर-मिथुन का पीछा करते हुए चन्द्रापीड़ 'अच्छोद' नामक रमणीक सरोवर के समीप पहुँचता है जहाँ तपस्विनी गन्धर्वकन्या महाश्वेता से उसकी भेंट होती है। महाश्वेता की सहायता से चन्द्रापीड़ का कौमार्यव्रत धारण करने वाली कादम्बरी से मिलन होता है और प्रथम साक्षात्कार में ही चन्द्रापीड़ और कादम्बरी परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। पिता का पत्र पाते ही चन्द्रापीड़ राजधानी लौट आता है, पर मित्र वैशम्पायन को न पाकर पुनः महाश्वेता के पास आ जाता है और यहीं से 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्ध की कथा प्रारम्भ होती है। प्रणय-याचना से प्रकुपित महाश्वेता के द्वारा मित्र के शुक में रूपानन्तरित हो जाने का समाचार सुनकर चन्द्रापीड़ प्राण त्याग देता है तथा कादम्बरी भी वहाँ पहुँचकर चन्द्रापीड़ के शव के समीप भावी मिलन की आकांक्षा से शवशरीर की सेवा में लग जाती है। जाबालि-कथा की समाप्ति हो जाती है। तत्पश्चात् शुक, राजा शूद्रक से निवेदन करता है कि "मैं ऋषि के आश्रम में महाश्वेता से मिलने के लिए उड़ चला तथा बीच में चाण्डाल के हाथ लग गया जिसने मुझे अपनी कन्या को समर्पित कर दिया", तब चाण्डाल-कन्या कहती है कि "मैं ही पुण्डरीक की माता लक्ष्मी हूँ। पुण्डरीक ही दूसरे जन्म में वैशम्पायन तथा इस जन्म का शुक है और आप (शूद्रक) चन्द्रापीड़ हैं।" इतना सुनते हुए राजा शूद्रक की कादम्बरी के प्रणय की स्मृति जाग्रत हो उठती है। उसके प्राण निकल जाते हैं और इधर चन्द्रापीड़ पुनर्जीवित हो जाता है। लक्ष्मी तिरोहित हो जाती है। शुक की आत्मा

पुण्डरीक के मृत शरीर में प्रविष्ट हो जाती है जो चन्द्रलोक में सुरक्षित है। पुण्डरीक और महाश्वेता का तथा चन्द्रापीड़ और कादम्बरी का मिलन होता है और प्रणयी-युगल विवाहित होकर सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगते हैं। इस प्रकार महाकवि ने 'कादम्बरी' की इस कथा के माध्यम से यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि प्रेमी-युग्मों का वैवाहिक सम्बन्ध एक जन्म का नहीं होता, प्रत्युत कई जन्मों के सम्बन्ध से सम्बद्ध होता है। यही जन्मान्तरवाद का सिद्धान्त है, जिसकी आधार-शिला पर भारतीय संस्कृति के प्रासाद की भित्ति खड़ी की गई है। 'कादम्बरी' के दोनों प्रणयी- युगल के प्रणय- चित्रण के द्वारा बाण ने यह सांस्कृतिक संदेश प्रचारित तथा प्रसारित किया है कि वासनाजन्य प्रेम को स्थायी विशुद्ध रूप प्रदान करने के लिए पश्चात्ताप दिव्यानल है, जिसमें महाश्वेता तथा कादम्बरी तप्त होकर अपने प्रणयी जनों-पुण्डरीक तथा चन्द्रापीड़ को प्राप्तकर वैवाहिक बन्धन में बधतीं हैं।

'कादम्बरी' में वर्णनात्मक पद्यात्मक शैली में उत्तरोत्तर वर्धनशील कथानकों की क्रमबद्ध श्रृङ्खलाओं को मूलकथा में अनुस्यूत किया गया है। मूल-कथा स्वतः विशेषरूप से आकर्षक नहीं है। 'कादम्बरी' की शैली 'हर्षचरित' के समान है। अन्तर मात्र इतना ही है कि जहाँ 'हर्षचरित' में कहीं-कहीं करुण-रस का प्राधान्य है, तो 'कादम्बरी' का प्रमुख अंगी रस शान्त अनुप्राणित श्रृङ्गार है। 'कादम्बरी' भी विस्तृत वर्णन, सुदूरस्थ उपमानों के आनयन, दीर्घ समासों एवं विस्तृत वाक्यों से भरी हुई है। पाश्चात्त्य संस्कृत विद्वान् बेवर का कथन है कि 'कादम्बरी' की कथावस्तु अतिशयोक्तिपूर्ण बड़े-बड़े शब्दों के प्रयोग से आगे बढ़ती है जिसमें पाठक का धैर्य छूट जाता है। 'कादम्बरी' का गद्य भारतीय कान्तार (अरण्यानी) है जिसमें पाठक को बिना प्रयास आगे बढ़ने का मार्ग मिलना कठिन है तथा जहाँ हिंसक जन्तुओं के सदृश अप्रचलित समस्तपद अध्येता को भयभीत करते रहते हैं।" इस विज्ञ समीक्षक की उक्ति के विषय में इतना ही निवेदन पर्याप्त है कि यद्यपि 'कादम्बरी' दीर्घ समस्त (समासयुक्त) विशाल वाक्यों से परिपूर्ण है, तथापि वे वाक्य लघु साधारण वाक्यों में परिवर्त्तित किए जा सकते हैं। पाश्चात्त्य संस्कृत पाठकों के लिए यह उपर्युक्त कथन ठीक हो सकता है, पर भारतीय संस्कृत के विद्वानों को तो 'कादम्बरी' एक विलक्षण अपूर्व काव्यात्मक ग्रन्थ प्रतीत होता है।

'कादम्बरी' की कथा-सृष्टि के समय बाण के सम्मुख गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' उपजीव्य थी। यह विविध वर्णनों के लिये जगत्त्रय को व्याप्त करने वाली भारती-कथा के लिए निदर्शनस्वरूप थी और बाण के उद्देश्य-मानवीय जीवन के सर्वाङ्गीण चित्रणों में सहायक कथा। 'कादम्बरी' असंख्य वर्णनों का संग्रह है। चाहे नदी का वर्णन हो अथवा सरोवर का, नगर अथवा अरण्य अथवा अरण्यानी का, राजदरबार अथवा ऋषि के आश्रम का। बाण ने वृक्ष, पशु (इन्द्रायुध अश्व) प्रभृति सभी वर्णनों में बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया

है। बाण के वर्णन की सर्वोपरि विशेषता उनकी सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति है। 'हर्षचरित' से प्रारम्भ होकर कवि की वर्णन-प्रतिभा ने -'कादम्बरी' में पूर्णता को प्राप्त कर लिया है। महाकवि कालिदास को छोड़कर इस क्षेत्र में संस्कृत साहित्य का कोई कवि बाण की तुलना में नहीं आ सकता। अन्तर केवल इतना ही कि जहाँ कालिदास थोड़े चुने हुए शब्दों द्वारा चित्र-अंकन में पटु हैं, वहीं विस्तृत वर्णन के पक्षधर बाण किसी वर्णन को भव्य रूप प्रदान कर बड़ा बना देते हैं। 'कादम्बरी' की दूसरी विशेषता इसके चरित्रों का चित्रण है। 'हर्षचरित' के समान 'कादम्बरी' के सभी पात्र सजीव तथा अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। बाण अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण तीन स्तर से करते हैं। प्रथमतः कवि अपने शब्दों की तूलिका से व्यक्ति-विशेष का रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं। दूसरे स्तर पर उतर कर बाण उस रेखाचित्र में अलंकारों का विविध रंग भरते हैं, जहाँ चित्र-विशेष का प्रधान साहित्यिक रूप सम्मुख होता है। अन्तिम तृतीय स्तर पर पहुँच कर कवि बाणभट्ट आवश्यक विविध रंगों से मनोरम बने हुए उस रेखाचित्र को उत्कृष्ट कोटि के सौन्दर्य तथा भाव-विधायक अलंकार, गुण, ध्वनि, रस आदि की परियोजना रूपी कुंकुमादि के प्रयोग से अतिशय आकर्षक बनाने का प्रयास करता हैं। 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' दोनों के वर्णन और चरित्र-चित्रण में बाण ने उपर्युक्त इस पूर्व-नियोजित क्रमबद्धता से काम लिया है। प्रथम स्तर पर कवि श्लेष अलंकार की आधार-शिला पर प्रतिष्ठित उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों के माध्यम से रेखाचित्र प्रस्तुत करता है जिससे प्रथमतः उस वस्तु-व्यक्ति विशेष का चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता है। अलंकारों के प्रयोग में अप्रस्तुत अथवा उपमान का आनयन बाण, सुबन्धु की तरह दूर से नहीं करते। बाण के उपमान, उपमेय से सम्बद्ध होते हैं। यहाँ तक उपमेय तथा उपमान में लिङ्ग, वचन, विभक्ति एवं साधर्म्य की समता इतनी सटीक, कुछ स्थानों को छोड़कर, सर्वत्र परिलक्षित होती है कि "उपमा कालिदासस्य" की स्मृति हठात् जाग्रत हो जाती है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रथम स्तर पर जहाँ कवि प्रस्तुत वर्णन का रूप खड़ा करता है, तो द्वितीय स्तर से स्वभावगत प्रकृति (स्वभाव) का तथा तृतीय स्तर से उस चित्रण-विशेष अथवा पात्र-विशेष के प्रति बाण की जैसी धारणा रहती हैं उस भावना से कवि पाठक को अनुभावित करने का सफल प्रयास करता है। सौम्य युवक चन्द्रापीड़, उदार महाराज तारापीड़, परमप्रवीण राजनीतिशास्त्रदक्ष महामन्त्री शुकनास, सुकुमार रानी विलासवती, छाया के समान अनुगमन करने वाली परिचारिका पत्रलेखा, अध्यात्म के देदीप्यमान निदर्शन जाबालि-ऋषि, विरहविधुर कलभाषिणी स्निग्धहृदया महाश्वेता, सरस हृदया कमनीय कलेवरवाली कादम्बरी इत्यादि शताधिक चरित्र-चित्रण इतने सजीव हैं कि पाठक का ध्यान हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। वस्तुतः कल्पना और वर्णन की संघटना से, भाषा और भाव के पारस्परिक सम्मिश्रण से, अलंकारों एवं रसों के मधुर समन्वय से 'कादम्बरी' बाण की 'अतिद्वयी' संरचना ही नहीं है, प्रत्युत समस्त संस्कृत साहित्य का देदीप्यमान समुज्ज्वल हीरक है।

यद्यपि 'हर्षचरित' से न्यून, तथापि सामयिक जन-जीवन के आचार-व्यवहार के वर्णन में 'कादम्बरी' का सांस्कृतिक महत्त्व उल्लेखनीय है। विशेष रूप से धर्म के विषय में शैव सम्प्रदायों के आचरण 'कादम्बरी' में यथाप्रसङ्ग प्रकाशित हुए हैं। उदाहरणार्थ सन्तानहीन रानी विलासवती सभी धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करती हैं और उसे पुत्र की प्राप्ति होती है। इसका वर्णन बड़े विस्तारपूर्वक किया गया है। रानी उपवास करती हैं। श्वेत वस्त्र धारण कर दुर्गा के मन्दिर में तृणों की शय्या पर सोती हैं और अर्चना करती हैं। गो-शाला में स्नान करती हैं तथा प्रत्येक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को ब्राह्मणों को दान देती हैं। माँ के मन्दिर में जाती हैं तथा वृक्षों आदि का पूजन करती हैं। दूसरे स्थान पर मस्तक पर भस्म धारण करने वाले रुद्राक्षमाला सहित जटाजूटयुक्त शैव योगियों का वर्णन मिलता है, जो अपने-अपने सम्प्रदायानुसार बाघाम्बर तथा वल्कल धारण किए हुए हैं।[1] एक स्थान पर बाण ने विधवाओं के जलाने की परम्परा (सती-प्रथा) की भर्त्सना की है। इस संदर्भ में बाण की दोनों कृतियों-'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' की तुलनात्मक समीक्षा प्रासङ्गिक प्रतीत होती है। दोनों ग्रन्थ अलंकृत शैली में विस्तृत रूप से निबद्ध हैं। दोनों में गुण-दोष समान हैं। साहित्यिक संरचना की दृष्टि से हर्षचरित, कादम्बरी की तुलना में न्यून है। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्षचरित में बाण ने श्लोकों की योजना श्रमसहित की है। हर्षचरित में बाण ने बहुत से अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है जो केवल कोशमात्र में सुलभ हैं। कादम्बरी में बाण ने जिस सूक्ष्मता के साथ मानवीय भावनाओं का विश्लेषण किया है वह हर्षचरित में दृष्टिगत नहीं होता है। 'कादम्बरी' में चरित्र-चित्रण बड़ी परिपक्वतापूर्वक किया गया है। भाषा का प्रवाह, भावों का प्रभाव, विचारों की अभिव्यक्ति एवं रसों की अभिव्यञ्जना में कादम्बरी, हर्षचरित से आगे बढ़ जाती है। चन्द्रापीड़ के लिए शुकनास के उपदेशात्मक तथा पुण्डरीक के प्रति कपिञ्जल के सौहार्दपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति करने वाले सदृश वाक्य हर्षचरित में नहीं दीख पड़ते। पर जहाँ तक ऐतिहासिक तथा तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति का प्रश्न है हर्षचरित का महत्त्व कादम्बरी से सर्वथा अधिक है। सामयिक प्राचीन भारतीय समाज, धार्मिक आचार-व्यवहार, सामरिक सैन्य-व्यवस्था, ग्राम, नगरों तथा स्कन्धवारों का यथातथ्य जीवन, आयुर्वेदिक ओषधि-प्रगति एवं विविध प्रचलित व्यवसायों तथा उद्योगों का परिचय देने के लिए हर्षचरित में प्रचुर पर्याप्त सामग्रियाँ हैं। कादम्बरी में वैसा नहीं है।

दोनों ग्रन्थों में एक उल्लेखनीय समता यह है कि कादम्बरी तथा हर्षचरित दोनों बाणभट्ट की अपरिसमाप्त (अपूर्ण) कृतियाँ हैं। यह तो विदित है कि मृत्यु से विवश होकर बाण ने 'कादम्बरी' को अपूर्ण ही छोड़ दिया, जिसको उनके पुत्र पुलिनभट्ट अथवा पुलिन्दभट्ट ने पूर्ण किया और वह कादम्बरी का उत्तरार्द्ध है।

---

१. द्रष्टव्यः-**'कादम्बरी'** पृष्ठ ५४, २०८

हर्षचरित की परिसमाप्ति आकस्मिक प्रतीत होती है। बाण ने हर्ष के जीवन का चित्रण एकांगी किया है। सम्भवतः बाण अपने आश्रयदाता के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त का विवरण नहीं प्रस्तुत कर सकते थे :-

**"कः खलु पुरुषायुषशतेन शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुं। एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः, सज्जा वयम्...।"**-तृतीय उच्छ्वास-

सम्भवतः बाण पूर्णरूप से आश्वस्त थे तथा उन्होंने ऐसा अनुभव किया हो कि राज्यश्री की उपलब्धि के अनन्तर उनके आश्रयदाता के चारित्रिक वृत्तान्त से सभी परिचित हैं अतः उसे लिपिबद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। बाण ने हर्षचरित की रचना एक साहित्यिक ग्रन्थ के रूप में की है, हर्ष के शासन की ऐतिहासिक कृति के रूप नहीं। उनकी काव्य-प्रतिभा उच्चतम शिखर पर पहुँच गई, तो उन्होंने उसे अपूर्ण अवस्था में ही छोड़ दिया हो ? जो भी कारण हो। हर्षचरित की अपूर्णता प्राचीन भारतीय इतिहास के जिज्ञासुओं को खटकती है।

'कादम्बरी' की कथावस्तु कल्पित हैं, किन्तु कल्पित होने का तात्पर्य यही है कि वह ऐतिहासिक नहीं हैं। कादम्बरी का उपजीव्य गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' है जिसके संस्कृत-रूपान्तर सोमदेवविरचित 'कथासरित्सागर' के मकरन्दकोपाख्यान के अन्तर्गत राजा सुमनस् की कथा से कादम्बरी की कथावस्तु का अत्यधिक साम्य है। यद्यपि बाण ने राजा सुमनस् की कथा को आधार बनाया है, तथापि पर्याप्त मौलिक परिवर्त्तन किए हैं। बाण ने पात्रों की संख्या बढ़ा दी है। पात्रों का नाम परिवर्त्तित कर बाण ने उनके चरित्र-चित्रण में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। गम्भीर व्यक्तित्वपूर्ण सर्वशास्त्रपारंगत शुकनास की सर्वथा नूतन परिकल्पना कवि की निजी सृष्टि है। प्रसङ्गानुसार प्रकृति के रमणीय चित्रों को उपन्यस्त कर, राजकीय वैभव के परिचायक उपकरणों को प्रदर्शित कर और मन्त्री शुकनास के उपदेश के माध्यम से मानवीय जीवन के शाश्वत सत्यों का उद्घाटन कर बाण ने 'कादम्बरी' में अपनी प्रभुप्रदत्त कवित्व-प्रतिभा का यथेष्ठ प्रदर्शन किया है। 'कादम्बरी' वस्तुतः संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य की कसौटी है जिसका सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, कलात्मक, दार्शनिक एवं भौगोलिक आदि अनेक दृष्टियों से अद्वितीय महत्त्व है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'कादम्बरी' की पृष्ठभूमि को क्षीर-समुद्र कहा है और कादम्बरी की तुलना अमृत-कलश से की है जिसे महाकवि बाण ने अपनी ध्यानशक्ति के सुमेरु से मन्थन कर विश्व के विज्ञ साहित्य-प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किया है। किन्तु "कादम्बरी रसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्" के अनुसार बाण ने अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक-साधना के श्रम से असामान्य, असाधारण अनुपलब्ध प्रेम के रूप में रसतत्त्व को उपस्थित किया है और यही इसका वास्तविक पक्ष है।

बाण ने अपनी कादम्बरी में प्रेम-तत्त्व का विश्लेषण लौकिक तथा आध्यात्मिक उभयविधि से किया है। कवि की मान्यता है कि प्रेम भौतिक सम्बन्ध का नामान्तर मात्र नहीं है, प्रत्युत यह 'जन्मान्तरसौहृद' है जो विविध जन्मों में समुद्भूत अलौकिक-आध्यात्मिक सम्बन्ध का परिचायक है। महाश्वेता तथा पुण्डरीक और कादम्बरी तथा चन्द्रापीड़ का प्रणय-कथानक एक ही जन्म में विद्यमान नहीं है, बल्कि तीन जन्मों से सम्बद्ध हैं। कर्मवश उनकी विविध योनियों के परिवर्तन से प्रेम का माधुर्य और स्वरूप अक्षुण्ण है। 'कादम्बरी' की कथा इसी महान् शाश्वत तथ्य की सत्यता को प्रमाणित करती है।

राजा शूद्रक की राजधानी विदिशा नगरी कलाओं और शास्त्रों की केन्द्रस्थली थी जहाँ राजकीय व्यवस्था के अनुसार विद्या-गोष्ठियों का आयोजन होता रहता था, जिनसे साहित्य, संगीत-कलाओं का विकास निरन्तर होता रहता था। महाराज तारापीड़ की राजधानी उज्जयिनी तो महानगरी थी जो तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना की साकार प्रतिमूर्ति थी। रत्नों और मणियों से भरी नगरी ईसा की सातवीं शती के व्यापार की केन्द्रस्थली थी। व्यापारी पद्मपति थे और जिनके गगनचुम्बी प्रासादों में जो सिन्दूरमणि की भूमियों, मोतियों के प्रालम्बों, सूर्यकान्त की शिलाओं और इन्द्रनीलमणि के वातायनों से सुसज्जित थे, तत्कालीन स्थापत्य तथा चित्रकला का उत्कृष्ट रूप उपलब्ध होता है। उस नगरी के नागरिक साक्षात् कल्पवृक्ष थे, जो दानशीलता, वीरता, विनय, सत्यभाषण एवं अनेक कलाओं के प्रेमी तथा गुणग्राहक थे। डॉ. अग्रवाल का कथन है कि "कादम्बरी के पात्र गन्धर्वलोक और मनुष्यलोक की जीवन-विभूति और मानस-सम्पत्ति, एक दूसरे की सम्प्रीति और कुशल-क्षेम के लिए समर्पित थे"।[1] राजा तारापीड़ का साम्राज्य पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में सेतुबन्ध पश्चिम में मन्दराचल और उत्तर में गन्धमादन से आवृत था, जो बृहद् गुप्तसाम्राज्य की स्थिति का सूचक था। चन्द्रापीड़ की दिग्विजय-यात्रा गुप्तनरेश समुद्रगुप्त पर विशेष रूप से घटित होती है। इसी प्रकार के अन्य भौगोलिक तथ्य 'कादम्बरी' में विद्यमान हैं, जो इसकी उस दृष्टि के महत्त्व के प्रकाशक हैं।

## समीक्षा

महाकवि बाणभट्ट का कथन है कि उनके समय में उत्तरभाग में श्लेषप्रधान शैली का प्रचलन था, तो पश्चिम के काव्य निर्माताओं ने अर्थगौरवपूर्ण चमत्कार को प्रश्रय दिया था, दाक्षिणात्यों ने कल्पना समन्वित उत्प्रेक्षालंकार को काव्य का निर्णायक गुण उद्घोषित किया था और प्राच्य गौड़ीय विद्वानों ने अक्षराडम्बर को काव्यनिर्मितिहेतु श्रेष्ठ स्वीकार किया था।[2]

---

१. द्रष्टव्य, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, **'कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन'**

२. द्रष्टव्यः-"श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्।।"
**हर्षचरित** प्रारम्भिक ७वाँ श्लोक

काव्यरचना के लिए स्वभावोक्तिप्रधान शैली गर्हित बन गई थी।[1] धीरे-धीरे साहित्य-जगत् में जनरुचि स्वभावोक्ति से हटकर वक्रोक्ति की ओर उन्मुख हो रही थी। बाण का दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। अतः अपनी पूर्ववर्ती तथा सामयिक प्रचलित काव्य शैलियों का विश्लेषण कर बाण ने निदर्शन के रूप में एक नवीन रचना-पद्धति और सुविचारित उत्कृष्ट काव्यशैली की अवतारणा करते हुए उल्लेख किया है कि अर्थ (विषय) की नवीनता, स्वभावोक्ति की नागरिकता, श्लेष की सरलता तथा स्पष्टता, रस की स्फुटता एवं अक्षरों की विकट बन्धता-इन पाँच समस्त गुणों का सन्निवेश एक स्थान पर दुष्कर है:-

**"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या, श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।**
**विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।।"**

इसी उपर्युक्त कथन का समर्थन करते हुए महाकवि ने अपनी 'कादम्बरी' में भी उल्लेख किया है कि दीपक और उपमा आदि अलंकारों ये युक्त, नवीन पदार्थों से सम्पन्न, निरन्तर श्लेष से पूर्ण एवं सुजाति (स्वभावोक्ति) से सुसज्जित कथा (काव्यरचना) किस सहृदय को आकृष्ट नहीं करती:-**"हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः"**।।

इसी प्रकार बाण ने काव्य-समीक्षा हेतु ये पाँच मापक-दण्ड निर्धारित कर दिए हैं। अतः इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में उनके काव्यगत गुण-दोष की समीक्षा सर्वथा समीचीन है।

१. नवोऽर्थो-अर्थ की नवीनता से बाण का अभिप्राय काव्य के विषय की नूतनता से है। म.म. डॉ. पी.वी. काणे ने उल्लेख किया है कि 'नवोऽर्थः' का तात्पर्य उस विषय-वस्तु से है जिसकी चर्चा अन्य पूर्ववर्ती कवियों ने नहीं की है। अथवा जो उल्लेखनीय विषय हो अथवा अर्थ। यह कवि की प्रतिमा का परिचायक है जिसे आलंकारिकों ने "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता" की मान्यता प्रदान की है।[2] हर्षचरित का प्रारम्भ पूर्ववर्ती कवियों की यशः प्रशस्ति से होता है, जिनको बाण ने उपजीव्य बनाकर अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन किया है। हर्षचरित के प्रथम तीन उच्छ्वासों तथा कादम्बरी के पूर्वार्द्ध के प्रारम्भिक श्लोकों में बाण के कुल, पूर्वजों, उनके निवास-स्थान एवं उनकी आत्म-कथा के लिए सर्वथा नवीन विषय है, क्योंकि बाण के पूर्व इस वाङ्मय में किसी कवि ने अपने ग्रन्थ में अपना तथा अपने वंश का उल्लेख तक नहीं किया है। बाण एक क्रान्तिकारी कवि थे जिन्होंने सामयिक आगत साहित्यिक परम्परा का विरोध कर एक सर्वथा नूतन विषय को काव्य की चर्चा का विषय बनाया। अपने तत्कालीन 'सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिश्रीपर्वतवर्धनवंशीय नरेश हर्षवर्धन और उनके वंश, पूर्वजों, उनके पारिवारिक जनों की चर्चा को अपनी आख्यायिका 'हर्षचरित' के पंचम उच्छ्वास से अष्टम पर्यन्त प्रतिपाद्य बनाकर एक सर्वथा नवीन विषय

---

१. "सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे-गृहे।" वही ८वाँ
२. द्रष्टव्यः-म.म. पी.वी. काणे द्वारा सम्पादित **हर्षचरित** पृष्ठ १४

का समावेश काव्य में किया है, क्योंकि बाण के किसी पूर्ववर्ती ने अपने सामयिक लौकिक राजा को अपने काव्य का विषय नहीं बनाया था। 'हरलीलेव' बृहत्कथा की तरह अपनी कथा 'कादम्बरी' को विस्मयकारिणी बनाकर बाण ने भारती-कथा के सदृश जगत्-त्रय के विषयों को समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया। जन्मान्तरवाद की मान्यता को अपनी कथा के कथानक की आधारशिला बनाकर चन्द्रलोक (स्वर्गलोक), गन्धर्वलोक तथा मानवलोक के विषयों को स्थान देकर सर्वव्यापिनी बना दिया। कवि मानव-जीवन का चित्रण समग्र रूप से नहीं कर सकता, पर उसके मार्मिक स्थलों के वर्णन से उसे सम्पूर्णता प्रदान कर सकता है। इस अर्थ में 'कादम्बरी' मानव-जीवन का सर्वाङ्गीण चित्रण है, यह निर्विवाद है।

**स्वभावोक्ति की नागरिकता**.......आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में स्वभावोक्ति के ग्राम्य तथा अग्राम्य दो विभेद प्रदर्शित कर "अग्राम्योऽर्थो रसावहः" ऐसा उल्लेख किया है।[1] जाति छन्द-विशेष के प्रति संकेत नहीं है। यहाँ अग्राम्या जाति से वर्ण्य-वस्तु की स्वभावोक्ति अर्थात् यथार्थ वर्णन से तात्पर्य है, जिसमें कवि के अभीष्ट रस की अभिव्यञ्जना हो। 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक तीन उच्छ्वासों में बाण ने अपनी आत्म-कथा के वर्णन-प्रसङ्ग में जिस निर्भीकता के साथ अपने वैयक्तिक गुण-दोषों की चर्चा की है उसमें वर्णन की स्वाभाविकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस वर्णन का एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य यह है कि अपनी कुमारावस्था के भ्रमणशील समवयस्कों की चर्चा जो प्रथम उच्छ्वास के अन्त में बाण ने की है, उससे संस्कृत साहित्य का एक अन्य पक्ष उजागर होता है। बाण के पूर्व संस्कृत साहित्य देव-वाङ्मय समझा जाता था जिसमें देवभाषा संस्कृत के माध्यम से लोकोत्तर पुरुषों की चर्चा होती थी। संस्कृत साहित्य अभिजात्य वर्ग से सम्बद्ध था। बाण ने सर्वप्रथम समाज के निम्नवर्गीय व्यक्तियों तथा उनके व्यवसायों का उल्लेख कर एक सब प्रकार से नवीन परम्परा की अवतारणा की, जिसका सूत्रपात नाटककार शूद्रक ने अपने प्रकरण ग्रन्थ 'मृच्छकटिक' में किया था। कुमारी भगवती सरस्वती, अष्टादश वर्षीय युवक दधीच, परम शिवभक्त वर्धनवंश के प्रवर्त्तक राजा पुष्पभूति, वेताल-साधना की सिद्धि में प्रवृत्त भैरवाचार्य, राजाधिराज प्रभाकरवर्धन, उनकी पतिव्रता सम्राज्ञी यशोवती, आज्ञाकारी वीर राजकुमार राज्यवर्धन, चक्रवर्ती सम्राट् हर्षवर्धन एवं बौद्धभिक्षुक दिवाकरमित्र प्रभृति 'हर्षचरित' के तथा 'कादम्बरी' के प्रजापालक महाराज शूद्रक, युवराज चन्द्रापीड़, सौम्य तापस हारीत, ज्ञानवृद्ध ऋषि जाबालि, वदान्य नरपति तारापीड़, लोकशास्त्रनिपुण अमात्य शुकनास, शुभ्रवसना विरहविदग्धा स्निग्धहृदया तपस्विनी महाश्वेता, सरसहृदया कमनीय-कलेवरा कादम्बरी इत्यादि शताधिक वर्णनों में अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से बाण ने ऐसा स्वाभाविक

---

१. द्रष्टव्यः **काव्यादर्श** १. ६३-६४

वर्णन प्रस्तुत किया है कि प्रत्येक वर्णन की सजीव साकार मञ्जुल मूर्ति पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाती है तथा कवि जिस भावना की जागृति पात्र-विशेष के प्रति उत्पन्न करना चाहता है पाठक उससे सर्वथा भावित हो जाता है। यद्यपि उन स्थलों पर बाण का वर्णन विस्तृत हो गया है, तथापि सफल तथा सटीक वर्णन हुआ है। मानवों का ही नहीं, प्रत्युत पशुओं-हर्षवर्धन के प्रमुख युद्धहस्ती दर्पशात तथा चन्द्रापीड़ के अश्व इन्द्रायुध एवं प्रकृति के विविध रूपों के वर्णनों में भी बाण ने उनकी यथावस्तु का स्वाभाविक वर्णन किया है।

**प्रकृति-वर्णन**-बाण ने जिस प्रकार मानव की अन्तः प्रकृति के वर्णन में स्वाभाविकता तथा अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति की निपुणता का परिचय दिया है, उसी प्रकार वे बाह्य-प्रकृति के भी सफल चित्रकार हैं। अपनी दोनों कृतियों हर्षचरित और कादम्बरी में बाण ने अनेकशः प्रातः तथा सायं-कालीन प्रकृति के विविध रूपों का बड़ा स्वाभाविक, रमणीक, सटीक एवं विविधतापूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है। बाण का प्रकृति-वर्णन अधिकांशतः आलम्बन रूप में हुआ है, परन्तु कवि की दृष्टि सदा उचित वातावरण की सृष्टि पर टिकी रहती है। अतः वाण ने सर्वत्र प्रासङ्गिक इतिवृत्त के सहायक तथा पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति को देखने का प्रयास किया है। हर्षचरित में दुर्वासा के शाप से दण्डित सरस्वती अपनी सखी सावित्री के साथ ब्रह्मलोक से भूतल पर सन्ध्या समय उतरने लगती हैं। तब कवि "अत्रान्तरे सरस्वत्यतरणवार्त्तामिव कथयितुं मध्यमं लोकमवततारांशुमाली।" शिल्प-सज्जा और कलात्मकता के दृष्टिकोण से प्रथम उच्छ्वास का यह सन्ध्या-वर्णन कवि के कवित्व का श्रेष्ठ उदाहरण है। 'कादम्बरी' में ऋषि जाबालि के आश्रम में सन्ध्या का वर्णन पवित्रता तथा श्रद्धा-समन्वित रमणीयता का सञ्चार करता है :-

"इस समय तक दिन ढल चुका था। स्नानोपरान्त मुनियों ने अर्घ में लाल चन्दनराग सूर्य को अर्पित किया था। उसी को मानो आकाशसंचारी सूर्य्य ने अपने अंगों में लपेट लिया है। दिन क्षीण हो रहा है। मानो तपस्वियों ने सूर्योपासना में सूर्यमण्डल पर दृष्टिपात कर उसकी किरणों का पान कर लिया है और प्रकाश को भी पी लिया है" इत्यादि।

**"अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोपस्थितेन मुनिजनेनार्घनिधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलतः साक्षादिव रक्तचन्दनांगरागं रविरुदवहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्ब-विनिहितदृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयस्तेजः प्रसरो विरलातपो दिवसस्तनिमान-मभजत्।"**

**"एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसम्पुटमिव किञ्चिदुन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति मरीचिमालिनि"**। जिस प्रकार यह प्रातः कालीन वर्णन प्रभातकाल की रमणीयता, शीतलता एवं सुगन्ध को एक ही साथ पाठक के समक्ष उपस्थित कर देता है, उसी प्रकार

"दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्त्तमाना सन्ध्या............।" कपिला धेनु के साथ यह सन्ध्या की लालिमा की उपमा सायंकालीन शान्ति तथा रम्यता का उद्‌बोधन तथा जागरण करने में सक्षम है। 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' दोनों कृतियाँ सूर्योदय तथा सूर्यास्त के वर्णनों से भरी पड़ी हैं। उल्लेखनीय विशेषता है कि कहीं भी शब्द, अर्थ एवं भाव की पुनरुक्ति नहीं है। बाण को प्रकृति के मञ्जुल रमणीय तथा भयावह रोमांचकारी भीषण-दोनों रूपों के वर्णन में समान रूप से सफलता मिली है। ऐसा अन्यत्र संस्कृत साहित्य में दृष्टिगत नहीं होता। कतिपय कवि प्रकृति के रमणीय रूप को प्रस्तुत करने में कुशल हैं जैसे कालिदास प्रभृति, तो कुछ प्रकृति के भयानक भीषण रूप का वर्णन कर अपने को कृतकार्य अनुभव करते हैं। जैसे भवभूति 'उत्तररामचरित' में। 'हर्षचरित' के द्वितीय उच्छ्वास के प्रारम्भ में भीषण निदाघकाल, तत्कालीन उन्मत्त मातरिश्वा एवं दारुण दावाग्नि का वर्णन तथा 'कादम्बरी' में विन्ध्याटवी के उद्दाम भयंकर दृश्यों का चित्रण ज्वलन्त दृष्टान्त हैं, जिनसे बाण की प्रकृति के मधुरेतर रूप से भी साहचर्य्य तथा सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का बोध होता है। ऋतुओं का वर्णन बाण ने स्वाभाविक तथा मार्मिक रूप से किया है। प्रभात, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय आदि प्रकृति के नाना दृश्यों का वर्णन भी यथार्थतापूर्वक दोनों कृतियों में हुआ है। 'कादम्बरी' में अच्छोदसरोवर का वर्णन बाण के प्रकृति के रमणीय वर्णनों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। यह सरोवर भारतवर्ष के उत्तरापथ की पावनभूमि में कैलास तथा हेमकूट पर्वतों के मध्य किरातों की सुवर्णपुर नामक नगरी के समीप है। यह अनन्त, अनादि एवं कालातीत है। यह इतना सुखदायक है कि मानो यह त्रिभुवन का मूर्तिमान् पुण्य है। प्रतिबिम्ब ग्रहण की क्षमता के कारण यह अपनी स्वच्छता वशात् मानों वरुण का दर्पण है। इतना पवित्र, निर्मल तथा शुभ्र जलपूर्ण है कि मानों किसी ने मुनियों के मन, सज्जनों के सद्गुणों एवं मोतियों की शुभ्रता से इसकी निर्मिति की है। **"त्रिभुवनपुण्यराशिमिव सरोरूपेणावस्थितम्। आदर्शभवनमिव प्रचेतसः। स्वच्छतया मुनिमनोवृत्तिभिरिव, सज्जनगुणैरिव हरिणलोचनप्रभाभिरिव मुक्ताफलांशुभिरिव निर्मितम्।"**

**श्लेषोऽक्लिष्टः** अर्थात् श्लेष से तात्पर्य यहाँ श्लेषालंकार की उस परियोजना से है जो श्रमसाध्य न हो।[1] श्लेष से बाण का विशेष मोह है। उनकी दोनों रचनाओं में व्यक्ति या दृश्य के विशद वर्णन में उत्प्रेक्षा, उपमा, अपह्नुति, अर्थापत्ति, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, परिसंख्या प्रभृति अलंकार, श्लेष का आधार लेकर यथास्थान उपन्यस्त हैं। बाण की आख्यायिका तथा कथा दोनों उत्प्रेक्षा और मालोपमाओं से व्याप्त हैं। कवि तब तक एक उत्प्रेक्षा या उपमा के अनन्तर उनकी मालाएँ प्रस्तुत करते जाते हैं, जब तक उनके समस्त उपमान का भण्डार शेष नहीं हो जाता है। निम्नलिखित रसनोपमा का उदाहरण द्रष्टव्य है-

१. द्रष्टव्यः-"अव्यवहितार्थप्रत्ययं क्लिष्टम्" काव्यालङ्कारसूत्र २.१.२१

**"क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।"**

किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा दृश्यविशेष के वर्णन में बाण ने तीन स्तर निर्धारित किए हैं। प्रथम स्तर से कवि प्रतिपाद्य वस्तु का रेखाचित्र स्वभावोक्ति (जाति) के द्वारा खींचता है। द्वितीय स्तर पर उतर कर बाण उन रेखाओं द्वारा प्रस्तुत चित्र में उपमा या उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से रंग भरते हैं। तृतीय स्तर पर पहुँच कर कवि कोरी चटक-मटक बाह्य चाकचिक्य से आकृष्ट होने वाले पाठकों के लिए कहीं-कहीं शाब्दी-क्रीड़ा के सुनहरे पाउडर रंग से युक्त चित्र पर चिपका देता है। इसी तृतीय अन्तिम स्तर पर आने पर महाकवि बाण अपने प्रिय विरोधाभास तथा परिसंख्या के पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं। इन उपर्युक्त अलंकारों की योजना विदग्धों को बड़ी रोचक तथा नितान्त हृदयावर्जक प्रतीत होती है। विन्ध्याटवी के वर्णन में विरोधाभास की छटा दर्शनीय है :-

**"क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा, क्वचिद् विधवेवोन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित्समरभूमिरिव शरशतनिचिता, क्वचिदमरपतितनुरिव नेत्रसहस्रसंकुला.... क्रूरसत्त्वाऽपि मुनिजनसेविता पुष्पवत्यपि पवित्रा।"**

ऋषि जाबालि के आश्रम के सौन्दर्य-वर्णन-प्रसङ्ग में निम्नलिखित परिसंख्या विद्वज्जनों में प्रसिद्ध है :-

**"यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः मूलानामधोगतिः।"**

इन अर्थालंकारों की योजना में बाण की उल्लेखनीय विशेषता है कि कवि सदा अपने वर्ण्यवस्तु पर ध्यान केन्द्रित रखता है। अतः ऐसे उपमानों का चयन करता है जो अभीष्ट वातावरण का सृजन कर अपेक्षित भावों को स्पष्ट करते हैं। इससे पाठक का ध्यान विषयान्तर की ओर नहीं जाता है। विरोधाभास तथा परिसंख्या की योजना से भी कवि वर्ण्य-वस्तु की अन्तः प्रकृति को ही उजागर करता है।

**स्फुटो रसः अर्थात् रस की स्फुटताः**-मानव के सर्वाङ्गीण वर्णन-हेतु बाण ने मार्मिक स्थलों का चित्रण कर काव्य के समस्त रसों की सफल अभिव्यञ्जना की है, इसमें दो राय नहीं है। हर्षचरित का प्रधान रस वीररस है और अन्य श्रृंगार, करुण, अद्भुत, बीभत्स इत्यादि रसों की अभिव्यक्ति अंग के रूप में हुई है। हर्षचरित के सप्तम उच्छ्वास के प्रारम्भ में चरितनायक हर्षवर्धन की दिग्विजय-यात्रा की सज्जा तथा प्रथम अवसर पर वीररस की तथा सरस्वती और दधीच के प्रणय-वर्णन-प्रसङ्ग में (प्रथम उच्छ्वास में) श्रृङ्गार रस के संयोग तथा वियोग-उभय पक्ष की अभिव्यक्ति बड़ी सफलता से हुई है। कादम्बरी का अंगी रस श्रृङ्गार ही हैं, जिसका चित्रण अच्छोद सरोवर के पश्चिमाभिमुख

कैलास पर्वत की उपत्यका में विद्यमान भगवान् शंकर के मन्दिर में ध्यानासन पर आसीन, अपने प्रिय पुण्डरीक के वियोग में विदग्ध प्रणयविधुरा महाश्वेता के वर्णन में श्रृङ्गार रस के कारुणिक वियोग पक्ष का तथा कन्या अन्तःपुर के श्रीमण्डप में बैठी हुई कादम्बरी के श्रृङ्गाररससिक्त नखशिख-वर्णन में संयोग पक्ष का श्रृङ्गारमय, काव्यमय, सौन्दर्यमय, कुतूहलमय एवं आश्चर्यमय चित्रण विद्यमान हैं। बाण के श्रृङ्गार-वर्णन की विशेषता है कि यह अत्यन्त मर्यादित तथा शिष्ट है। जन्मान्तरवाद की आधाशिला पर प्रतिष्ठित महाश्वेता-पुण्डरीक तथा कादम्बरी-चन्द्रापीड़ इन दोनों युग्मों का प्रणयचित्रण महाकवि भवभूति के "अद्वैतं सुखदुःरवयोनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्" के दाम्पत्य-प्रेम की ओर आकृष्ट कर लेता है। भारतीय संस्कृति की बद्धमूल मान्यता है कि लौकिक प्रेम को तपस्या और पश्चात्ताप के माध्यम से विशुद्ध, पवित्र एवं स्थायी रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इस संदेश का बाण ने अपनी अमर कृति 'कादम्बरी' के द्वारा प्रचार-प्रसार करने का एक श्लाघनीय प्रयास किया है, क्योंकि महाश्वेता तपस्या द्वारा तथा कादम्बरी पश्चात्ताप की प्रताड़ना से अपने पृथक्-पृथक् तीन जन्मों के प्रणय को दिव्य तथा स्थायित्व प्रदान करती हैं। 'कादम्बरी' में अंगी श्रृङ्गार रस के अंग के रूप में वीर, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, बीभत्स एवं अद्‌भुत समग्र रसों की सुयोजना यथाप्रसङ्ग उपलब्ध होती है। बाण की रस-योजना की संस्तुति करते हुए त्रिलोचन कवि ने कहा है कि बाण की रसमयी कविता के सम्मुख इतर कवियों की रचना चपलता मात्र है :-

> "हृदि लग्नेन बाणेन यन्मदोऽपि पदक्रमः।
> भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।"

'विदग्धमुखमण्डन' के रचयिता धर्मदास ने उल्लेख किया है कि सुन्दर वर्ण, स्वर, पद, रस और भाव से संसार के मन को हरने वाली युवती बाण की वाणी ही है।

> **"रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।**
> **सा किं तरुणी? नहि, नहि, वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।"**

**विकटाक्षरबन्ध अर्थात् अक्षरों या वर्णों के बन्ध की उदारता**-जिसकी अवस्थिति में शब्द मानो नृत्य करने लगते हैं।[1] म.म. डॉ. पी. वी. काणे का कथन है कि विकटत्व का अभिप्राय शब्द-ध्वनि भाव की प्रतिध्वनिरूप होना चाहिए। प्रो. कावेल तथा थामस का कहना है कि विकटत्व का अभीष्ट भाषा के भावप्रधान शाब्दिक वैभव से युक्त होने से है।

---

१. द्रष्टव्यः-"विकटत्वमुदारता-वृत्ति -बन्धस्य किं विकटत्वं यदसौ उदारता। यस्मिन्सति नृत्यन्तीव पदानीतिजनस्य वर्णभावना भवति तत् विकटत्वं लीलायमानत्वमित्यर्थः"
वामन-काव्यालंकारसूत्रवृत्ति- III १.२२.

शब्दों का चयन विषय के अनुरूप हो यही विकटाक्षरबन्ध से तात्पर्य है। बाण ने इसे संकेतित किया है। उपर्युक्त गुण 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' दोनों में विद्यमान है। हर्षचरित में निदाघ तथा तत्कालीन उन्मत्त मातरिश्वा के भीषणवर्णन में कटु तथा कर्ण कर्कश शब्दों का चयन हुआ है। 'कादम्बरी' के विन्ध्याटवी के भयंकर दृश्यों को उपस्थित करने हेतु कवि कर्णकटु उत्कट पदों का प्रयोग करता है। इसी प्रकार किसी कामिनी के रूप-लावण्य-वर्णन में कवि की शब्दावलि नितान्त ललित तथा मधुर हो जाती है। इन वर्णनों में एक ही बात खटकने लगती है कि इन स्थलों पर बाण ने प्रायः लम्बे-लम्बे समासों तथा वाक्यों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तो अर्थ व गति में जटिलता आ गई है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है जिसकी ओर पाश्चात्त्य जर्मन संस्कृत समीक्षक बेवर ने संकेत किया है। बेवर की उक्ति कटु प्रतीत होती है, क्योंकि यद्यपि दीर्घ समास तथा अपेक्षाकृत वाक्यों की विशालता, उस पर श्लेषप्रधान अलंकारों की योजना साधारण पाठकों के लिए भारस्वरूप तथा जटिल बन गई है। तथापि विकटाक्षर बन्ध और अलंकृत शैली के युग में आविर्भूत बाण के लिए उससे अछूता रहना सर्वथा असम्भव था। काव्य-तत्त्व के मर्मज्ञों तथा अनेकानेक भारतीय आलोचकों तथा कवियों ने बाण की शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[1] वस्तुतः बाण का वास्तविक मूल्यांकन उनके परवर्ती भारतीय समीक्षकों से ही ज्ञात होता है। गोवर्धनाचार्य का कथन है कि अत्यन्त प्रगल्भ बनने के लिए भगवती सरस्वती ही बाण के रूप में अवतरित हो गई है :-

**"जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।**
**प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति।।"**

बाण ने सर्वत्र समासबहुला तथा विस्तृत वाक्यों वाली शैली का ही प्रयोग मात्र नहीं किया है। अपनी दोनो रचनाओं में भावप्रधान, मार्मिक एवं गम्भीर वर्णनों में भावों को

---

१. द्रष्टव्यः-"केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्, किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः।
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि,
हर्षाख्यायिकाऽख्यायि बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्।।
धनपाल-**तिलकमंजरी** श्लोक २६.२७
बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य, शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति।
मान्द्यं न कस्य च कवेरिह कालिदासवाचां रसेन रसितस्य भवत्यधृष्यम्।।
बागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दमर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि।।
बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभा।
एकातपत्रं भुवि पुष्पभूतिवंशाश्रयं हर्षाचरित्तमेव।।"
सोड्ढल-**उदयसुन्दरीकथा**-

द्रुतगतिशील बनाने वाले लघु से लघुतम वाक्यों तथा समासरहित पदों का प्रयोग भी बाण ने किया है। शुकनास के द्वारा चन्द्रापीड़ को उपदेश देने के समय, कपिञ्जल द्वारा ब्रह्चारी पुण्डरीक के कामव्यथासंतप्त होने पर गर्हणा के अवसर पर एवं इसी प्रकार अनेक भावप्रधान स्थलों के चित्रण के समय लघु कलेवरात्मक प्रासादिक वाक्यों की शोभा दर्शनीय तथा हृदयावर्जक है। कहने का तात्पर्य कि बाण की लेखनी स्वच्छन्दविचरणशील है जो विषयानुसार अपनी शैली में परिवर्त्तन से पाठकों को चमत्कृत भी करती रहती है। श्रीचन्द्रदेव ने उल्लेख किया है कि बाण गम्भीर-धीर-कविता रूपी विन्ध्याटवी में सर्वत्र विचरण करने वाले तथा कवि रूपी हाथियों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने वाले पंचानन अर्थात् सिंह हैं :-

**"श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ,-**
**लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।**
**आः सर्वत्र गभीर-धीर-कविता-विन्ध्याटवीचातुरी-**
**संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पंचाननः।।"**

बाण किसी शैली-विशेष के क्रीतदास नहीं हैं। इन्होंने अल्पसमासयुक्तशैली, दीर्घसमासबहुला एवं समासरहित शैली-इन तीनों शैलियों का प्रयोग विषयानुसार किया है, जिन्हें आलंकारिक साहित्यदर्पणकार ने चूर्णक, उत्कलिका एवं आविद्ध इन तीन अभिधानों से अभिहित किया है।[1]

वस्तुतः विकटाक्षरबन्धयुक्त गौड़ी रीति और मधुर तथा सरस पदावली से युक्त वैदर्भी रीति समन्वित रूप पाञ्चाली रीति ही बाण की शैली है, जिसमें शब्द और अर्थ दोनों का गुम्फन समभाव से हुआ है अर्थात् जिसमें अर्थ के अनुसार शब्दों की योजना प्रस्तुत की गई हैं। आलंकारिक राजशेखर के मतानुसार महाकवि बाण की शैली पाञ्चाली रीति का भव्य निदर्शन है:-

**"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।**
**शिलाभट्टारिका-वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।"**

बाण की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि बाण शब्द-सम्पदा के धनी कवि हैं और शब्दों के ऊपर-उनका प्रभुत्व अखण्ड है। शब्द या भाव का प्रयोग एक बार कर देने के उपरान्त बाण उसकी पुनरुक्ति नहीं करते । किसी उपमान के सभी पर्यायवाची रूपों

१. द्रष्टव्यः-"चूर्णकमल्पसमासं दीर्घसमासमुत्कलिकाप्रायम्।
समासरहितमाविद्धं वृत्तभागान्वितं वृत्तगन्धि।।"

का प्रयोग प्रायः एक ही साथ कर देते हैं। हर्षचरित तथा कादम्बरी दोनों कृतियों के सम्मिलित सार्वभौमिक रूप को देखकर यह स्वीकार करने में संकोचानुभूति नहीं होती कि ये दोनों ग्रन्थ विश्वकोशात्मक हैं जिसमें प्रायः सभी शब्दों का प्रयोग हो गया है। संस्कृत वाङ्मय में महाकवि माघ "नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते" के लिए ख्यातिप्राप्त हैं। इस दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने पर बाण की दोनों रचनाएँ कथमपि न्यून नहीं हैं, प्रत्युत जहाँ माघकाव्य में शब्द यत्र-तत्र विकीर्ण हैं, तो इसके विपरीत बाण की कृतियों में एक ही स्थान पर शब्दविशेष के पर्यायवाची शब्द सुलभ हो जाते हैं। महाकवि कालिदास के उपमान, अपने उपमेय की लिङ्, विभक्ति, वचन एवं साधर्म्य में जिस प्रकार समग्ररूप से अनुवर्त्तन करते हैं, उसी प्रकार बाण के उपमान सर्वथा सटीक उतरते हैं। अतः यह कहना पड़ता है कि बाण ने 'उपमा कालिदास्य' को सर्वथा अपने सम्मुख रखा है। अतः वास्तव में क्या शब्दों के प्रयोग के क्षेत्र में अथवा अर्थगौरवपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अथवा अलंकारों की सुयोजना की सज्जा में बाण ने काव्य के किसी कोने को बिना स्पर्श तथा अपनी विशिष्टता की छाप से अछूता नहीं छोड़ा। अतः सहृदय हृदय समीक्षकों को "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" इस उक्ति को उच्चस्वर से उद्घोषित ही करना पड़ा। राजशेखर की निम्नलिखित उक्ति कितनी सटीक तथा सार्थक है कि हर्षचरित और कादम्बरी के साथ बाण की वाणी पुरुषरूप में पृथ्वीतल पर स्वच्छन्द विचरण करती है :-

**"सहर्षचरिता शश्वद् धृतकादम्बरीरूपा।**
**बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा चरति क्षितौ।।"**

## दण्डी

दण्डी दाक्षिणात्य या विदर्भ देश के निवासी प्रतीत होते हैं। कलिङ्ग और आन्ध्र देशों के उल्लेख से, 'कावेरीतीरपत्तन' जैसे शब्दों के प्रयोग से दक्षिण भारत में प्रचलित सामाजिक तथा पारिवारिक प्रथाओं के वर्णन से दण्डी का दाक्षिणात्य होना ही सिद्ध होता है। 'काव्यादर्श' में भी उन्होंने महाराष्ट्री प्राकृत तथा वैदर्भी शैली की प्रशंसा की है, जिससे उनके दाक्षिणात्य होने की ओर संकेत मिलता है। दण्डी का जन्म कौशिक अथवा विश्वामित्र शाखा के शिक्षित ब्राह्मण-कुल में पल्लव नरेशों की राजधानी काञ्ची नगरी (आधुनिक काञ्चीवरम्) में हुआ था। इनके पिता का नाम वीरदत्त और माता का नाम गौरी था।[1] दुर्भाग्यवश इनकी

---

१. द्रष्टव्यः श्रीवीरदत्त इत्येषां मध्यमो वंशवर्द्धनः।
यवीयानस्य च श्लाघा गौरी नामाभवत्प्रिया।।
ततः कथंचित्सा गौरी द्विजाधिपशिरोमणेः।
कुमारं दण्डिनामानं व्यक्तशक्तिमजीजनत्।।
**अवन्तिसुन्दरी-कथा** प्रारम्भ-

बाल्यावस्था ही में माता-पिता का निधन हो गया। अतः बालक दण्डी निराश्रित ही रहने लगे। दैवदुर्विपाकवश उसी समय काञ्ची में एक महान् विप्लव उपस्थित हो गया और बालक को अपना निवास-स्थान का परित्याग कर जंगलों में भटकना पड़ा। कालान्तर में जब विप्लव शान्त हो गया, तब दण्डी काञ्ची लौट आए और पल्लव राजाओं की छत्र-छाया में सम्मानित होकर काल-यापन करने लगे।

**स्थितिकाल**-महेन्द्रविक्रम के वंशज परमेश्वर वर्मा प्रथम के शासनकाल में दण्डी ने अपनी कृतियों का प्रणयन किया था। दण्डी का यह समय ईसा की सप्तम शती का अन्तिम चरण था। दण्डी अष्टम शती के प्रारम्भ में भी विद्यमान थे, जब नरसिंह वर्मा द्वितीय शासन करते थे। प्रो. एम. रंगाचार्य के अनुसार दक्षिण भारत में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि कविवर दण्डी ने पल्लववंशीय राजकुमार को अलंकार-शास्त्र की शिक्षा देने के लिए 'काव्यादर्श' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। 'काव्यादर्श' की अधोलिखित प्रहेलिका के व्याख्या-प्रसङ्ग में टीकाकार तरुण वाचस्पति ने उल्लेख किया है कि इसमें काञ्चीनगरी तथा उसके शासक पल्लव-नरेशों का संकेत सन्निहित है :-

**नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता।**
**अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः।।**

– *'काव्यादर्श'*

अतः यह निर्विवाद है कि दण्डी की जन्मभूमि तथा कर्मभूमि दोनों काञ्चीनगरी ही थी। 'अवन्तिसुन्दरी-कथा' की अवतारणा से यह विदित होता है कि दण्डी के पितामह दामोदर और महाकवि भारवि में गाढ़ी मित्रता थी, जिसके फलस्वरूप भारवि के सहयोग से दामोदर की मित्रता पल्लवनरेश विष्णुवर्धन के साथ सम्भव हो सकी थी[1] और दामोदर का प्रवेश राजदरबार में हो गया था। डॉ. बेलवेल्कर[2] तथा प्रो. पाठक[3] की मान्यता है कि 'काव्यादर्श' में उल्लिखित राजवर्मा तथा नरसिंहवर्मा द्वितीय दोनों एक हैं। अतः कवि दण्डी इसी पल्लवनरेश नरसिंहवर्मा द्वितीय के सभापण्डित थे और उसी के शासनकाल में उन्होंने अपनी विश्रुत तीनों ग्रन्थों की रचना की थी। शैवधर्मावलम्बी पल्लवराज नरसिंहवर्मा का शासन-काल ६९० ई. से लेकर ७५० ई. के मध्य था। अतः अधिकांश समीक्षकों का अनुमान है कि दण्डी का स्थिति-काल ईसा की सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। प्रो. पाठक का निर्णय है कि 'काव्यादर्श' में विवेचित हेतु-अलंकार का निर्वर्त्य, विकार्य तथा प्राप्य इन

---

१. स मेधावी कविर्विद्वान् भारविप्रभवं गिराम्। अनुरुध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने।।
**'अवन्तिसुन्दरी-कथा'**-१.२३

२. द्रष्टव्य : **'काव्यादर्श'** द्वितीय परिच्छेद पर टिप्पणी पृष्ठ १७६-७७

३. द्रष्टव्य : **इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** १९१२ पृष्ठ ९०

तीनों प्रभेदों में विभागीकरण परम वैयाकरण भर्तृहरि विरचित 'वाक्यपदीय' के अनुसार किया गया है।[1] भर्तृहरि का समय ६५० ई. है। अतः दण्डी को भर्तृहरि का परवर्ती स्वीकार करना युक्तिसंगत है। 'काव्यादर्श' के अधोलिखित श्लोक में 'कादम्बरी' में वर्णित 'शुकनासोपदेश' के अन्तर्गत लक्ष्मी-वर्णन की छाया परिलक्षित होती है:-

**अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।**
**दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः।।**

उपर्युक्त श्लोक तथा कादम्बरी के लक्ष्मीवर्णन-"निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेदम-प्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।" भावसाम्य से सिद्ध हो जाता है कि दण्डी, बाण के भी परवर्ती हैं। यद्यपि दण्डी बाण के पूर्ववर्ती हैं या परवर्ती यह संस्कृत साहित्य के इतिहास का विवादास्पद विषय है, तथापि पिटर्सन, याकोबी प्रभृति पाश्चात्त्य समीक्षकों की मान्यता है कि दण्डी परवर्ती ही हैं। राष्ट्रकूटनरेश अमोघवर्षविरचित कन्नड़ भाषा के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' के सम्पादक प्रो. पाठक ने अनेक प्रमाणों के साथ सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस ग्रन्थ पर दण्डी के 'काव्यादर्श' का पूर्ण प्रभाव है। 'कविराजमार्ग' का निर्माण ८१५ ई.-८७५ ई. के मध्य हुआ है। इसी प्रकार राजसेन प्रथम के राज्यकाल (८४६-८६६ ई.) में निर्मित सिंघली भाषा का ग्रन्थ 'सिय-वस-लकर' (स्वभाषालंकार) के सम्बन्ध में डॉ. वारनेट का कथन है कि यह ग्रन्थ 'काव्यादर्श' को ही आधार लेकर लिखा गया है।[2] 'कविराजमार्ग' के प्रायः सभी उदाहरण 'काव्यादर्श' से ही लिये गये हैं। यहाँ तक कि अतिशयोक्ति तथा हेतु प्रभृति अलंकारों के लक्षण तो मूलग्रन्थ से अक्षरशः मिलते हैं। इन दोनों दाक्षिणात्य भाषीय अलंकार-ग्रन्थों का रचनाकाल जब ईसा की नवम शती का पूर्वार्द्ध है, तब प्रो. पाठक, डा. वारनेट प्रभृति विद्वानों का अनुमान है कि 'काव्यादर्श' की रचना इनसे पूर्व की है। यह ऊपर उल्लेख किया गया है कि दण्डी पल्लवराज नरसिंहवर्मा के सभासद थे तथा उनके ग्रन्थों के आधार पर 'कविराजमार्ग' और 'सिय-वस-लकर' के ग्रन्थों का निर्माण निर्विवाद रूप से हुआ है एवं 'कादम्बरी' से 'काव्यादर्श' प्रभावित है, तो दण्डी का समय बाण के पश्चात् ईसा के सप्तम शती के अन्त तथा अष्टम का प्रारम्भ मानना सर्वथा औचित्यपूर्ण है।[3]

**दण्डी की रचनाएँ**-जल्हण द्वारा निर्दिष्ट तथा 'शाङ्गर्धरपद्धति' में राजशेखर के नाम से एक श्लोक उद्धृत है, जिसमें कहा गया है कि तीन अग्नियों, तीन देवों, तीन वेद और तीन गुणों की भाँति आचार्य दण्डी के तीन प्रबन्ध तीनों लोकों में विश्रुत हैं :-

---

१. द्रष्टव्यः वही
२. द्रष्टव्य : **जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी** १६०५
३. द्रष्टव्य : आचार्य बलदेव उपाध्यायकृत **'संस्कृत साहित्य का इतिहास'** पृष्ठ ४०१

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।

यद्यपि राजशेखर ने उन कृतियों का नामोल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं किया है, तथापि उनमें निःसन्देह एक ग्रन्थ 'काव्यलक्षण' अथवा 'काव्यादर्श' है। यह काव्यशास्त्रीय रचना है, जिससे दण्डी की व्यक्तिगत साहित्यशास्त्रगत स्थापनाओं का परिचय मिलता है और विशेषरूप से यह पता चलता है कि आचार्य दण्डी की मान्यता है कि इतिहास और उपन्यास में कोई भिन्नता नहीं है। काव्य की उत्तम शैली वैदर्भी है जिसके दस गुणों से अलंकारों का आविर्भाव हुआ है।

**द्विसन्धान**-यह दण्डी की द्वितीय कृति श्लेषप्रधान द्वयर्थक महाकाव्य है, जो सम्भवतः कालकवलित है। इस काव्य में एक साथ श्लेष के माध्यम से महाभारत और रामायण की कथाएँ वर्णित हैं। यह बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि वैदर्भी रीति के प्रशंसक, समर्थक एवं पोषक दण्डी ने ऐसे चित्रकाव्य का प्रणयन किया होगा ? लेकिन वैदर्भी के विषय में दण्डी की मान्यताएँ बड़ी व्यापक हैं जिनसे काव्य की प्रत्येक विधा का सृजन सम्भव हो सकता है। आधुनिक विद्वान् डॉ. राघवन् ने उल्लेख किया है कि दण्डीकृत 'द्विसन्धान' सरलता तथा स्पष्टता से युक्त है।[1] भोजराज ने अपने 'शृंगारप्रकाश' में दण्डी के 'द्विसन्धान' का दो बार संकेत किया है[2] तथा उसके प्रथम श्लोक को भी उद्धृत किया है। भोजराज ने राजशेखर के उस श्लोक का भी निर्देश किया है, जिसमें दण्डी की तीन प्रख्यात कृतियाँ थीं, यह लेख है। इन्होंने 'काव्यादर्श', द्विसन्धान' तथा 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से श्लोकों को भी उद्धृत किया है।[3] संस्कृत साहित्य के समीक्षक डॉ. कृष्णमाचार्य का भी मत है कि दण्डी की तीन रचनाएँ थीं।[4]

'काव्यादर्श' के प्रारम्भिक तथा अन्तिम परिच्छेद 'छन्दोविचित' तथा 'कलापरिच्छेद' को भी कतिपय आलोचक स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में स्वीकार करते हैं; लेकिन 'छन्दोविचित', छन्दशास्त्र का एक अपर अभिधान है। दण्डी ने इसे विद्या मानी है जो काव्य में प्रवेश पाने वालों के लिए आवश्यक है–सा विद्या नौविविक्षणाम्-'काव्यादर्श १.१०।

'कलापरिच्छेद' भी 'काव्यादर्श' का अनुपलब्ध अंश है।

दण्डी द्वारा विरचित एक अन्य गद्य-काव्य 'दशकुमारचरित' भी आज प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ पूर्वपीठिका (भूमिका), दशकुमारचरित (मूलग्रन्थ) और उत्तरपीठिका (पूरक अंश)

---

१. द्रष्टव्यः डॉ. राघवन् '**भोजराज शृंगारप्रकाश**' पृष्ठ ८३६-३८ (मद्रास १९६३)

२. द्रष्टव्यः 'दण्डिनो धनञ्जयस्य वा द्विसन्धाने.... सप्तम प्रकाश
रामायण-महाभारतयोर्दण्डिद्विसन्धानमिव.... अष्टम प्रकाश

३. द्रष्टव्यः **सरस्वतीकण्ठाभरण** पृष्ठ २६२

४. द्रष्टव्यः **हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर** पृष्ठ ४६१

इन तीन भागों में उपलब्ध है। श्री एम. रामकृष्ण शास्त्री[1] तथा श्री अप्पयदीक्षित[2] के शोधपूर्ण प्रयासों के फलस्वरूप यह प्रकाश में आया है कि 'अवन्तिसुन्दरीकथा' दण्डी की मौलिक रचना है 'दशकुमारचरित' नहीं; क्योंकि दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका में 'अवन्तिसुन्दरीकथा' का वृत्त वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में 'अवन्तिसुन्दरीकथा' का सारांश 'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका के रूप में उपनिबद्ध कर दिया गया है। अतः 'अवन्तिसुन्दरीकथा' ही दण्डी की विश्रुत प्रबन्धत्रयी में समाहित मौलिक कृति है।[3]

**दशकुमारचरित**-यह कौतूहलवर्धक तथा रोमाञ्चक आख्यानों से भरा हुआ एक संस्कृत गद्य का उपन्यास है, जो कवि दण्डी की कृति के रूप में प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ खण्डों में उपलब्ध है-पूर्वपीठिका, दशकुमारचरित और उत्तरपीठिका। जैसा कि उल्लेख किया गया है कि पूर्वपीठिका के पाँच उच्छ्वासों में 'अवन्तिसुन्दरीकथा' की कथावस्तु वर्णित है। मूलग्रन्थ 'दशकुमारचरित' के रूप में आठ उच्छ्वासों में प्राप्त है, जिसमें मात्र आठ ही कुमारों का चरित चित्रित है। सम्भवतः दशकुमारचरित इस शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करने के लिए पूर्वपीठिका में अन्य दो कुमारों का चरित-वर्णन जोड़ दिया गया है। 'दशकुमारचरित' यह अपूर्ण ग्रन्थ है। अतः इसे पूर्ण बनाने के लिए उत्तरपीठिका, मूलग्रन्थ में जोड़ दी गई है। इस प्रकार प्रारम्भ में पूर्वपीठिका तथा परिसमाप्ति पर उत्तरपीठिका से सम्पुटित सम्पूर्ण ग्रन्थ ही आज 'दशकुमारचरित' के नाम से दण्डी की अन्य रचना के रूप में प्रसिद्ध है। उत्तरपीठिका में मात्र एक उच्छ्वास है। अतः सम्पूर्ण 'दशकुमारचरित' चौदह उच्छवासों (५. ८. १) में विभक्त है, जिसमें दश कुमारों की रोमाञ्चक घटनाएँ अनुस्यूत हैं। इस ग्रन्थ की प्रधान कथा निम्न प्रकार है :-

मगधराज राजहंस युद्ध में मालवनरेश मानसार से पराजित होकर वन में चला जाता है जहाँ उसकी रानी राजवाहन नामक राजकुमार को जन्म देती है। ठीक इसी समय राजहंस के चार मन्त्रियों को भी एक-एक पुत्र उत्पन्न होते हैं। कुछ समय के उपरान्त अन्य पाँच राजकुमारों को बड़े विचित्र ढंग से राजा के पास वन में लाया जाता है, जहाँ सभी दश कुमारों का पालन-पोषण तथा विविध ज्ञान-विज्ञान में उनका प्रशिक्षण एक साथ होता है। बड़े होने पर राजवाहन अपने साथियों के साथ दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता है। एक दिन राजकुमार विन्ध्याचल के वनों में ब्राह्मण मातङ्ग से मिलता है, जिसे वह पाताल-लोक की साधना की सिद्धि में यथेष्ट सहायता करता है। तत्पश्चात् राजवाहन पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। भाग्य की विडम्बनावश सभी कुमार एक दूसरे से अलग होकर पृथक्-पृथक् देशों में पहुँच जाते हैं। इसी बीच सभी कुमार राजवाहन का अन्वेषण करते

---

१. द्रष्टव्य: New Catalogus Catalogorum of the University of Madras
२. प्रसिद्ध वेदान्ती से भिन्न अप्पयदीक्षित की 'नामसंग्रहमाला' में "इत्यवन्तिसुन्दरीये दण्डिप्रयोगात्"
३. द्रष्टव्य : आचार्य बलदेव उपाध्यायकृत 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृष्ठ ४०२

हुए एक उद्यान में पहुँचते हैं जहाँ सभी साथी एकत्र होते हैं और अपनी-अपनी आप-बीती साहसपूर्ण घटनाओं का रोचक वर्णन आपस में करते हैं। 'दशकुमारचरित' इन्हीं दश कुमारों के द्वारा वर्णित घटनाओं का आख्यान-ग्रन्थ है। जे.जे. मेयर दशकुमारचरित को धूर्तता तथा शठतापूर्ण उपन्यास कहते हैं। डॉ. पिशेल इसे एक नैतिक उपन्यास की संज्ञा प्रदान किए हैं तथा इसी प्रकार अन्य पाश्चात्त्य संस्कृत साहित्य के समीक्षकों ने इस ग्रन्थ को कथा-उपन्यास कहा है। इसमें अपरहारवर्मा, उपहारवर्मा तथा अर्थपाल कुमारों के उपाख्यान कपटपूर्ण षड्यन्त्रों, शठता एवं नीचता से परिपूर्ण हैं। अतः डॉ. हर्टेल का कथन है कि 'दशकुमारचरित' एक राजनयिक उपन्यास है तथा उनकी सम्मति में 'तन्त्राख्यायिका' की तरह यह ग्रन्थ वर्णनात्मक है, जिसका उद्देश्य उपदेश प्रदान करना है। इस कथन में सत्यता नहीं दीखती; क्योंकि यद्यपि कवि ने अपने अर्थशास्त्रगत पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है, तथापि इस ग्रन्थ का प्रणयन सरस साहित्यिक कथा के रूप में किया गया है।

इस ग्रन्थ के सभी उपाख्यानों में शाखाओं की तरह रोमाञ्चक उल्लासमयी घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। घटनाओं की वर्णन-दुरूहता कभी-कभी तो इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है कि पाठक को मूलकथा का सूत्र ही भूल जाता है। सभी घटनाओं का विस्मयप्राधान्य संशय की स्थिति को जागरूक रखता है। उदाहरणार्थ प्रत्येक वस्तु पहले से निश्चित है। घटनाएँ होती हैं जैसे उन्हें घटित होना है। आन्तरिक आवश्यकता-वश नहीं, प्रत्युत शाप, स्वप्न, भविष्यवाणी के परिणामस्वरूप घटित होती हैं। नायक के साथ कोई अशुभ होता है, तो पाठक को भय नहीं अनुभव होता; क्योंकि उसे ज्ञात रहता है कि उससे मुक्त हो जाएगा। समग्र ग्रन्थ में शृंगार-वर्णन अर्थात् नायक-नायिका के प्रेम की प्रधानता है। कवि पक्षपातपूर्वक रुक-रुककर नारी-सौन्दर्य तथा प्रेम-दृश्य के चित्रण में प्रवृत्त हो जाता है। इन सभी वर्णनों से सिद्ध हो जाता है कि दण्डी कामशास्त्र के पूर्ण पण्डित हैं तथा काव्यशास्त्र के भी मर्मज्ञ हैं। पंचम उच्छ्वास के प्रारम्भ में जहाँ प्रमति वर्णन करता है कि किस प्रकार वह अरण्य में सो गया और अचानक उठने पर अपने को सुन्दर रमणियों की गोष्ठी-मध्य पाता है और उनमें सबसे सुन्दर राजकुमारी नवमालिका उसके निकट विद्यमान है। दण्डी ने अपनी हास्यपटुता का प्रदर्शन अपहारवर्मा के प्रसङ्ग में काममञ्जरी नामक वेश्या द्वारा मरीचि-ऋषि की प्रवञ्चना के सन्दर्भ के अवसर पर बड़ी विदग्धता के साथ किया है।

भाषा के विषय में दण्डी ने काव्य के गुणों से अलंकृत शैली के प्रवीण प्रयोग-कर्ता के रूप में अपने को प्रदर्शित किया है। 'दशकुमारचरित' में कवि दण्डी ने साधारण वर्णन-कर्ता की सरल भाषा का कम प्रयोग किया है।

दण्डी ने 'दशकुमारचरित' की कथावस्तु की संरचना की प्रेरणा गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से ग्रहण की है। 'कथासरित्सागर' के अध्यायों (६६-१०३) में एक राजकुमार का आख्यान वर्णित है, जिसके दश मन्त्रियों के कुमार साथी हैं। भाग्यवश ये सभी राजकुमार

से बिछुड़ जाते हैं जो पुनः एक स्थान पर मिलते हैं और अपनी आप-बीती आपस में एक दूसरे को सुनाते हैं। 'कथासरित्सागर' की कथाओं तथा 'दशकुमारचरित' की अधिकतर समानान्तर घटनाएँ और उनकी समताओं के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि दण्डी ने अपने इस गद्य-काव्य के प्रणयन की प्रेरणा 'बृहत्कथा' से ली थी। उनके समय तक वह ग्रन्थ विद्यमान रहा होगा और दण्डी ने उसका उपयोग किया होगा। 'दशकुमारचरित' की बहुत सी कथाएँ जातकों में उपलब्ध होती हैं। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि 'दशकुमारचरित' का मूल कथानक दण्डी की मौलिक रचना नहीं है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती साहित्य से प्रेरणा तथा सामग्री का चयन किया है।

दण्डी जनता के कवि हैं। यद्यपि इनका जीवन पल्लवनरेशों की छत्र-छाया में व्यतीत हुआ, तथापि अपनी रचना 'दशकुमारचरित' में इन्होंने राजकीय दरबार से कोसों दूर रहने वाले अपने तत्कालीन समाज के निम्नवर्ग का बड़ा यथार्थ तथा मार्मिक वर्णन किया है। अतः इस ग्रन्थ का साहित्यिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व भी है। विशेषरूप से समाज के अशोभनपक्ष के जीवन तथा कार्यकलापों की अनुभूति दण्डी की बड़ी सूक्ष्म तथा तीखी है। अतः कवि ने बड़े विनोदपूर्ण तथा व्यंग्यात्मक ढंग से वेश्याओं, धूर्तों, शठों, विषदूकों चोरों, जुवाड़ियों के आचरण और कार्यों का वर्णन बड़ा सजीवपूर्ण किया है। कपटी तापसी तथा छली वेश्या का यथार्थ व्यंग्य-चित्रण अपहारवर्मा के प्रसङ्ग में मरीचि तापस और काममंजरी नामक वेश्या के आख्यान के संदर्भ में हुआ है। दण्डी ने बड़ी सूक्ष्मता से नारी-हृदय का निरीक्षण किया तथा उसकी यथातथ्य अभिव्यक्ति की है। इसका परिचय पतिवंचक निष्ठुरहृदया धयिनी तथा पतिपरायणा सती साध्वी गोमिनी के चरित्र-चित्रण में उपलब्ध होता है। वेश्याओं के जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है और इसका पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त हो जाता है। तत्कालीन समाज में वेश्या-व्यवसाय प्रभु-प्रदत्त माना जाता था तथा उसे राजकीय संरक्षण प्राप्त था। षष्ठ उच्छ्वास में निम्बवती के उपाख्यान में कामजनित वासना-प्रेम की पूर्ण-अभिव्यञ्जना हुई है तथा उससे समाज में नारी की दशा का पूर्ण परिचय मिल जाता है। महाकवि दण्डी कामशास्त्र, राजतन्त्र एवं चौर-विद्या के निष्णात पण्डित हैं। उन उपर्युक्त शास्त्रों के उनके विचित्र पाण्डित्य तथा व्यापक ज्ञान का परिचय 'दशकुमारचरित' से मिल जाता है। अष्टम उच्छ्वास वीरभद्र के आख्यान का नीतिशास्त्रगत ऐतिहासिक महत्त्व है, जहाँ राजकीय-जीवन के दिन-प्रति का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है तथा जिसका 'कौटिल्य-अर्थशास्त्र' से बड़ा साम्य लक्षित होता है। ईसा की सप्तम तथा अष्टम शतियों में वर्तमान भारतीय जनता के आमोद-प्रमोद, आचार-व्यवहार एवं मनोविनोदात्मक विविध क्रीडाओं को जानने के लिए 'दशकुमारचरित' की उपादेयता उल्लेखनीय है। जनपदों में सार्वजनीन सभा-गृह निर्मित थे, जहाँ संगीत के माध्यम से जनता अपना मनोरञ्जन करती थी। समाज में विविध उत्सव मनाए जाते थे,

जिनमें आधुनिक होलिकोत्सव के सदृश कामोत्सव विशेषरूप से उल्लेखनीय है। निम्नवर्गीय लोग मुर्गों की लड़ाई के द्वारा अपना मनोविनोद करते थे, जिसे देखने के लिए जनसमुदाय उमड़ पड़ता था।[1]

मित्रगुप्त के उपाख्यान से अवगत होता है कि उस समय भारतीय जलपोतों में बैठकर विदेश की यात्रा करते थे और व्यवसाय-व्यापार भी करते थे। इसी प्रकार वैदेशिक व्यावसायिक भी जहाजों से आकर हिन्दमहासागर के रास्ते से व्यापार के लिए भारत आते थे। बंगदेशीय आधुनिक ताम्रलिप्ति उस समय दामलिप्ति के नाम से प्रसिद्ध बन्दरगाह था जहाँ से मित्रगुप्त जलयान से किसी अज्ञात द्वीप के लिए प्रस्थान किया था तथा दुर्भाग्यवश चट्टानों से टकराकर चकनाचूर हो जाने पर किसी यवन नाविक के जहाज के पास पहुँच गया था, जिसके नायक रामेषु पर किसी अन्य वैदेशिक युद्ध-पोत मद्गु ने आक्रमण कर दिया था। प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय-उच्छ्वास में 'खनति' नामक यवन व्यवसायी का कथानक आया है, जिसमें उससे मूल्यवान् हीरा प्रवञ्चना से ले लिया जाता है। इन उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि दण्डी के युग में भारत का व्यापार समृद्धशाली था और देशिक तथा वैदेशिक यवन व्यापारी परस्पर सभी प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे जिसकी पुष्टि गुप्त-कालीन ऐतिहासिक तथ्यों से भी होती है, जिनके अनुसार भारतीय नौ-सेना का व्यापारी बेड़ा देश-देशान्तरों से व्यापार करने में संलग्न था।

**धार्मिक स्थिति**-यद्यपि दण्डी व्यक्तिगत रूप से वैदिक वैष्णव मतानुयायी थे, तथापि 'दशकुमारचरित' के उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि उनके समय में दक्षिण भारत में शैव, बौद्ध, जैन इन तीनों धर्मों का प्रचार-प्रसार था। प्राधान्य शैव धर्म का ही था तथा अधिकतर जनता इसी धर्म को ही मानती थी। उज्जयिनी प्रमुख नगरी थी जहाँ 'महाकाल' का शिवमन्दिर था जिसकी चर्चा महाकवि कालिदास ने अपने 'मेघदूत' में की है। दण्डी के समय उज्जयिनी धर्म तथा विद्या दोनों की सांस्कृतिक पीठस्थली थी जहाँ धार्मिक श्रद्धालु-जन शिव-दर्शन हेतु आते थे तथा जिज्ञासु अध्ययन-शील विद्योपार्जन के लिए आकृष्ट होते थे। जैन तथा बौद्ध दोनों धर्म अपनी ह्रासोन्मुख अवस्था में थे, जैसा कि वर्णन मिलता है कि भिक्षुणियाँ वैवाहिक कार्यों के सम्पादन में दूती का कार्य करती थीं और कहीं-कहीं जैन-विहार भी वर्तमान थे।

**अवन्तिसुन्दरीकथा**-यह दण्डी की मौलिक गद्य-काव्यात्मक रचना है[2] जो बाणभट्ट के हर्षचरित तथा कादम्बरी से पूर्णरूप से प्रभावित है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ हर्षचरित की तरह प्राचीन श्रेष्ठ कवियों के संस्तुतिपरक श्लोकों से हुआ है, जिसका साहित्यिक विकास-क्रम के आकलन में महत्त्व है। तदनन्तर वर्णनात्मक गद्य का आरम्भ काञ्ची नगरी

---

१. द्रष्टव्य : **'दशकुमारचरित'** पृष्ठ १६६ जिसमें श्वेत बलाका जाति के तथा कृष्ण नारिकेल जाति के मुर्गों के युद्ध का वर्णन है।

२. द्रष्टव्य : आचार्य पं. बलदेव उपाध्यायकृत **संस्कृत साहित्य का इतिहास**

के वर्णन से होता है। पल्लवनरेश सिंहविष्णु दण्डी के प्रपितामह दामोदर को अपने दरबार में आमन्त्रित करता है तथा कवि अपने पूर्वजों के वृत्तान्त से अपनी आत्म-कथा की अवतारणा करता है। तत्पश्चात् दण्डी अपने मित्रों से कथा प्रारम्भ करता है तथा मगध, उसकी राजधानी कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) और उसके राजा राजहंस का वर्णन करता है। युवक राजहंस अपने चार मन्त्रियों-सुमति, सुमित्र, सुश्रुत एवं सुमन्त्र को शासनभार समर्पित कर अपनी रानी वसुमती के साथ षड्ऋतुओं के आनन्द का अनुभव करने लगता है। नरवाहनदत्त के साथ वासवदत्ता की तरह वसुमती गर्भवती होती है। इसी बीच गुप्तचर आजिक मालव (अवन्ति) से आता है और सूचित करता है कि राजहंस का पराजित पुराना शत्रु राजा मानसार आमरदक शिव के प्रसादस्वरूप दैवी खड्ग प्राप्त कर आक्रमण करना चाहता है। युद्ध का विस्तृत वर्णन है। अवन्तिसुन्दरी यह कथा ग्रन्थ है, जिसकी संरचना उदात्तशैली में की गई है। समास-बहुल तथा असमस्त दोनों प्रकार के पदों का प्रयोग प्रचुर रूप से हुआ है। यह कथा अपूर्ण रूप से प्राप्त है।

## दण्डी की काव्यगत शैली

अवन्तिसुन्दरी-कथा में 'कादम्बरी' का कथानक संक्षिप्त रूप से वर्णित है। अतः महाकवि दण्डी का आविर्भाव बाणभट्ट के अनन्तर है। दोनों उनकी कृतियों-अवन्तिसुन्दरी-कथा और दशकुमारचरित पर बाणभट्ट के दोनों ग्रन्थों-हर्षचरित और कादम्बरी का प्रभाव विशेषरूप से पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्षचरित को निदर्शन बनाकर ही दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' का प्रारम्भ किया है। दण्डी बाणभट्ट के अनुरूप अपने वर्ण्य विषय की शैली में परिवर्तन करते हैं। वे समास बहुल तथा असमस्त दोनों शैलियों में सिद्धहस्त हैं। वर्णन की गाढ़बन्धता में समासों की बहुलता दृष्टिगत होती है। उपदेशात्मक स्थलों में दण्डी की भाषा सरल, सुबोध, भावगर्भित एवं समस्त पदों से भरी हुई है। दण्डी ने अपनी भाषा को अलंकारों के कृत्रिम आडम्बर से सदा बचाए रखने का प्रयास किया है, तथापि दशकुमारचरित में आनुप्रासिक पदविन्यास की छटा-दर्शनीय है। आनुप्रासिक चमत्कार के साथ ही यमक का समावेश अतीव मनोहर हो गया है, उदाहरणार्थ-

"तत्र वीरभटपटलोत्तरङ्गतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथन-मन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डमण्डलः पुरन्दरपुराङ्गणपवनविहरणपरायण- तरुणगणिकागणजे-गीयमानयाऽतिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीर- क्षीरगिरिशाट्ट-हासकलासकाशनीकाशमूर्त्या रचितदिगन्तरालपूर्त्या कीर्त्याऽभितः सुरभितः स्वर्लोकशिखरोरु-रुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलायितधरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान्.....विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन सतततुलितवियन्मध्यहंसः........तस्य वसुमती नाम सुमतिः लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव।"

उपर्युक्त गद्य-खण्ड में "वीरभटपटलोत्तरङ्ग... में दण्डी का शब्द-शिल्प-कौशल प्रशंसनीय है तथा "वसुमती सुमती शेखरमणी रमणी" में अनुप्रास अलंकार के साथ यमकालंकार का विन्यास सर्वथा सराहनीय है। दण्डी ललित पदों के विन्यास में बड़े दक्ष हैं। इसी से संस्कृत जगत् में यह आभाणक "दण्डिनः पदलालित्यम्" दण्डी की काव्यकला का मापदण्ड माना जाता है। इसी उपर्युक्त उक्ति को लक्ष्य कर संस्कृत साहित्य के समीक्षकों ने यह उच्चस्वर से उद्घोषित कर दिया है कि "कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः"। पदों के लालित्य के साथ-साथ दण्डी की भाषा की द्वितीय विशेषता है-अर्थ की स्पष्टता तथा रस की सुन्दर अभिव्यक्ति। दशकुमारचरित में निम्नलिखित लक्ष्मी-वर्णन में पदों का लालित्य तथा अर्थाभिव्यक्ति की स्पष्टता दर्शनीय है :-

"रज्जुरियम् उद्बन्धनाय सत्यवादितायाः, विषमियं जीवितहरणाय माहात्म्यस्य, शस्त्रमियं विशसनाय सत्पुरुषवृत्तानाम्, अग्निरियं निर्दहनाय धर्मस्य, सलिलमियं निमज्जनाय सौजन्यस्य; धूलिरियं धूसरीकरणाय चारित्रस्य"

संस्कृत भाषा के कोष-ग्रन्थों ने दैनन्दिन प्रयोग में आने वाली व्यावहारिक वस्तुओं के सूचक शब्दों का अर्थ संकेत किया है, पर शब्दों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में सुलभ नहीं था। संस्कृत वाङ्मय में सर्वप्रथम कवि दण्डी ने अपनी कृतियों में व्यावहारिक वस्तुओं के परिचायक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ किया। यह उनकी मौलिक देन है। उदाहरणार्थ अधोवस्त्र धोती के लिए 'उद्गमनीय', साधु-संन्यासी जनों की लंगोटी के निमित्त 'मलमल', अन्नों के बाहरी छिलका भूसी के लिए 'किशारु', जनपद-गोष्ठी के लिए 'पंचवीर-गोष्ठ' प्रभृति अनेक शब्दों का प्रयोग दण्डी ने प्रसङ्गानुसार अपनी दोनों कृतियों में किया है। इस दिशा में प्रथम श्लाघनीय प्रयास कर दण्डी ने संस्कृत साहित्य के निर्माताओं को प्रेरणा प्रदान किया कि संस्कृत भाषा को भी व्यवहार-प्रधान बनाया जा सकता है, जिस दोषारोपण से यह भाषा ग्रस्त है। दण्डी ने व्यवहार-जगत् के शब्दों का प्रयोगमात्र ही नहीं किया, प्रत्युत इस भाषा को व्यावहारिक प्रयोग के लिए सक्षम तथा सामर्थ्यशालिनी बनाने का भी प्रयत्न किया।

संस्कृत गद्य के इतिहास में दण्डी की अपनी पृथक् शैली है। उन्होंने सुबन्धु के समान अपने काव्य के प्रत्येक अक्षर को श्लेषालंकार के प्रयोग से कृत्रिम बनाने की चेष्टा नहीं की अथवा महाकवि बाणभट्ट के सदृश समस्तपदों की गाढ़बन्धता से अपने वर्णनों को विभूषित कर उन्हें दुर्गम बनाने का भी प्रयास नहीं किया। उन दोनों संस्कृत गद्य साहित्य के महारथियों की शैली का अनुगमन न कर दण्डी ने एक नूतन विधा की उद्भावना की।

**धनपाल**- सुबन्धु, बाण और दण्डी ने अपनी साहित्यिक साधना से संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में अपने गद्यप्रबन्धों के माध्यम से जिस प्रकाश-स्तम्भ को प्रज्वलित किया, धनपाल ने उसी की ही ज्योति को और अधिक प्रसारित तथा अग्रसारित किया। धनपाल ने बड़े

अभिनिवेश से इन मूर्धन्य कवियों के द्वारा प्रचारित काव्य-शैली को आत्मसात् कर अनुकर्ता की अपेक्षा बाण का अपने को एक योग्य सफल उत्तराधिकारी सिद्ध करने का श्लाघनीय प्रयास किया। तत्कालीन प्रचलित गद्य-पद्य दोनों की ही शैलीगत विधाओं की परम्पराओं को समन्वित कर धनपाल ने गद्य-काव्य के निर्माण के क्षेत्र में एक नूतन विधा का सूत्रपात किया जिसमें सामयिक साहित्यिक तथा संस्कृत वाङ्मय के विविध शास्त्रीय पाण्डित्यपूर्ण मर्यादाओं का संरक्षण विद्यमान है।

परवर्ती कथालेखकों-प्रभाचन्द्र, मेरुतुङ्ग प्रभृति ने धनपाल के जीवन-इतिवृत्त का विस्तृत वर्णन सुरक्षित रखा था, पर दुर्भाग्यवश सब कालकवलित हो गया। तथापि प्रभावकचरित के 'महेन्द्रसूरिप्रबन्ध', प्रबन्धचिन्तामणि के 'धनपालप्रबन्ध', रत्नमन्दिरगणि के 'भोजप्रबन्ध' इत्यादि में कई आख्यान सुरक्षित हैं जिनसे कवि के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। पता चलता है कि धनपाल काश्यपगोत्रीय ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह देवर्षि मध्यप्रदेश के सांकाश्य नामक ग्राम (वर्तमान फरुखाबाद जनपदान्तर्गत संकिस ग्राम) के मूल निवासी ब्राह्मण थे।[1] तत्कालीन श्रीसम्पन्न उज्जयिनी नगरी में आकर बस गये थे। धनपाल यहीं के निवासी विद्वान् ब्राह्मण सर्वदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके अनुज का नाम शोभन तथा बहन का नाम सुन्दरी था। किंवदन्ती है कि पिता सर्वदेव को एक जैनमुनि श्रीवर्धमानसूरि के प्रभाव से घर में ही एक संचित निधि की प्राप्ति हुई थी तथा मुनि की शर्त के अनुसार पिता को ब्राह्मणधर्माभिमानी ज्येष्ठ पुत्र धनपाल की असम्मति के कारण अपने द्वितीय पुत्र शोभन को ही जैनधर्म में दीक्षित कराना पड़ा था जो आगे चलकर एक तपस्वी जैन मुनि बन गये और उन्हीं के उपदेश तथा प्रभाव से धनपाल ने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया था।

**स्थितिकाल**-धनपाल का साहित्यिक अवदान-काल ६५५ ई. से लेकर १०५५ ई. के मध्य था, जिस समय इतिहासप्रसिद्ध धारा नगरी के परमारवंशीय नरेशों का वैभव अपनी पूर्ण विकासावस्था में था। परमारनृपतियों के दरबार से धनपाल का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'पृथ्वी-वल्लभ' विरुद से विभूषित महीपति मुञ्ज ने धनपाल की काव्य-कला से प्रभावित होकर उन्हें 'सरस्वती' इस उपाधि से सम्मानित किया था जिसका उल्लेख 'तिलकमंजरी' के प्रारंभिक उपोद्घात में निम्न प्रकार से मिलता है :-

> ''तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपंकजरजःसेवाप्तविद्यालवो,
> विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात् कथाम्।
> अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना,
> श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः।।''

---

१. द्रष्टव्य : ''आसीद् द्विजन्माऽखिलमध्यदेशप्रकाशसांकाश्यनिवेशजन्मा।
अलब्धदेवर्षिरितिप्रसिद्धिं यो दानवर्षित्वविभूषितो-तिलकमंजरी-उपोद्घात् २-५ श्लोकोऽपि।।

धनपाल मुञ्ज के उत्तराधिकारी राजा भोज के भी विद्वत्सभा के समादृत सभापण्डित थे। अतः मुञ्ज तथा भोजराज का समसामयिक होने के नाते धनपाल का समय ईसा की एकादश शती मानना सर्वथा समीचीन है। संस्कृत तथा प्राकृत के प्रख्यात विद्वान्-कवि धनिक, हलायुध, पद्मगुप्तपरिमल, अमितगति प्रभृति धनपाल के समकालीन थे।

**धनपाल की रचनाएँ:**-'पाइयलच्छीनाममाला', 'ऋषभपंचाशिका' और 'वीरथुई' ये धनपाल की प्राकृत-भाषा में निबद्ध कृतियाँ हैं। संस्कृत में धनपाल की प्रसिद्ध रचना 'तिलकमंजरी' है जिसका प्रणयन उन्होंने भोजराज[1] के जिनागमोक्त कथा सुनने के कुतूहल निवृत्ति हेतु की थी। 'तिलकमंजरी' एक गद्य-कथाग्रन्थ है जिसका नामकरण नायिका के नाम से किया गया है।

इस कथा में राजकुमार हरिवाहन और दैवी राजकुमारी तिलकमंजरी तथा राजकुमार समरकेतु और अर्धदैवी राजकुमारी मलयसुन्दरी-इन दो युग्मों की प्रणय-गाथा वर्णित है। इस प्रणय-कथा का दृश्य अयोध्या से काञ्ची और पुनः दक्षिण हिन्दसागर में अवस्थित रत्नकूट द्वीप से हिमालय पूर्वोत्तरीय विन्ध्यपर्वत के एक शृंग-शिखर पर घूमते हुए वस्तुतः परम्परागत समस्त बृहत्तर भारत-हिमालय से श्रीलंका और मलद्वीपों से हिन्द-एशिया के द्वीपों को अपनी परिधि में समाविष्ट कर लेते हैं।

अयोध्या के इक्ष्वाकु-नृपति मेघवाहन के वृत्तान्त से कथा का प्रारम्भ होता है। उसकी रानी का नाम मदिरावती है। निःसन्तान होने से दम्पती अत्यन्त दुःखी हैं। विद्याधर मुनि के अनुरोध से राजा-रानी महल में ही श्रीदेवी की उपासना करते हैं। उन्हें देवी की प्रसन्नता से पुत्र-प्राप्ति का वरदान एवं बालारुण नामक अंगूठी प्राप्त होती है। पुत्र का नाम हरिवाहन रखा जाता है। वर्धिष्णु राजकुमार समस्त विद्याओं में पारंगत बन जाता है। एक दिन तिलकमंजरी के चित्र को सहसा देखकर हरिवाहन उसके प्रेम में आसक्त हो जाता है। एक विद्याधर के साहाय्य से वह रथनूपुरचक्रवाल देवनगर में पहुँच जाता है। वहाँ तप के प्रभाव से वह राजकुमारी तिलकमंजरी के प्रणय का अधिकारी बन जाता है। ये दोनों प्रेमी पूर्वजन्म के ज्वलनप्रभ और प्रियङ्गसुन्दरी ही थे। इस प्रधान कथानक में सिंहलद्वीप के राजा चन्द्रकेतु के समरकेतु की कथा जोड़ दी गयी है। पिता के द्वारा नियोजित अपने विजययात्राप्रयाण में समरकेतु रत्नकूटद्वीप में मलयसुन्दरी को देखता है और उसके प्रेम में आबद्ध हो जाता है। दुर्भाग्यवश समरकेतु के गले में एक पुष्पमाला के विक्षेपणमात्र से मलयसुन्दरी अन्तर्धान हो जाती है। आत्म-हत्या करने को उद्यत समरकेतु दैवीशक्तियों

---

१. द्रष्टव्य : 'निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः, श्रोतं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम्।।"
तिलकमंजरी-उपोद्घात श्लोक ५०वाँ।

द्वारा बचा लिया जाता है। अपनी वियुक्त प्रिया के निर्देश से वह कांची पहुँचता है और वहाँ राजा कुसुमशेखर की प्रिया को आत्म-हत्या करने से बचाता है। यही समरकेतु की प्रेमिका मलयसुन्दरी है। सैनिक दबाव के कारण पिता विवश होकर अपनी पुत्री मलयसुन्दरी को एक विद्याधर को समर्पित करना चाहता है। इसी बीच अयोध्या के सेनापति वज्रायुध उसे मुनि शान्तातप के आश्रम में भेज देता है। वहाँ भी वह आत्म-हत्या करने के लिए प्रवृत्त होती है, पर दैव-बल से रक्षित होकर एक पर्वत-शृंग पर पहुँच जाती है और वहीं अपने प्रेमी की प्राप्ति-हेतु उपासना में लग जाती है। राजकुमार समरकेतु रात्रि के समय अयोध्या पर आक्रमण करता है, पर श्रीदेवी के द्वारा प्रदत्त बालारुण अंगूठी के प्रभाव से उसका प्रयास विफल हो जाता है और कैद कर लिया जाता है। राज्य की दैवी शक्ति की ओर समरकेतु आकृष्ट होता है और राजकुमार हरिवाहन का प्रमुख साथी बना दिया जाता है। दोनों राजकुमार देशान्तर-भ्रमण के लिए निकलकर कामरूप पहुँच जाते हैं। एक हाथी 'हरिवाहन को गायब कर देता है और समरकेतु अपने मित्र को खोजते हुए वैताढ्य पर्वत पर अदृष्टपार नामक सरोवर के पास पहुँचता है। वहाँ अपने मित्र हरिवाहन और एक गन्धर्व को देखकर बड़ा प्रसन्न होता है। वहीं हरिवाहन, तिलकमंजरी के दर्शन और मलयसुन्दरी की तपस्या की सूचना से समरकेतु को अवगत कराता है। दोनों युग्मों का प्रेम पूर्ण परिपक्व होता है। इसी बीच एक महर्षि इन चारों को उनके पूर्वजन्म के वृतान्त को प्रकट करता है। अन्त में हरिवाहन का विवाह तिलकमंजरी से और समरकेतु का मलयसुन्दरी के साथ सम्पन्न हो जाता है और यहीं कथा की परिसमाप्ति हो जाती है।

इस कथानक में लगभग ५२ पुरुष और २६ स्त्रीपात्र हैं। प्रसङ्गानुसार दैवी हार, दैवीप्रदत्त बालारुण अंगूठी, अभिशप्त शुक, नाविक सामुद्रिक यात्रा, त्रिकालज्ञ महर्षि का इतिवृत्त भी मूलरूप से जोड़ दिया गया है जो तत्कालीन परम्परागत लोकप्रचलित रूढ़ियों की ओर संकेत करते हैं।

बाणकृत 'कादम्बरी' और 'तिलकमञ्जरी' की कथावस्तु में अत्यधिक साम्य है। दोनों ग्रन्थों का प्रारम्भ पद्यों द्वारा होता है जिनमें दोनों कवियों ने कथा, गद्य, चम्पू प्रभृति के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। दोनों उपर्युक्त कृतियाँ उपविभागों में विभक्त नहीं हैं। 'कादम्बरी' की गन्धर्वकुलोत्पन्न कादम्बरी विद्याधरी तिलकमंजरी की चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन हरिवाहन और समरकेतु की, उज्जयिनी के राजा-रानी तारापीड-विलासवती निःसन्तान होने से दुःखित मेघवाहन और रानी मदिरवती की स्मृति सहज ही जागृत कर देते हैं। 'तिलकमंजरी' का अयोध्या का शक्रावतार सिद्धायतन कादम्बरी के महाकाल देवायतन की याद दिलाता है। मलयसुन्दरी की तपोविधि का वर्णन महाश्वेता की ही भाँति है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि धनपाल ने बाण की 'कादम्बरी', उद्योतनसूरि की 'कुवलयमाला' इन पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों को उपजीव्य बनाकर इस अपने कथा-ग्रन्थ

की निर्मिति की है। धनपाल ने 'तिलकमंजरी' के प्रारम्भ में वाल्मीकि, कानीन वेदव्यास[1], गुणाढ्य की 'बृहत्कथा', कथाग्रन्थ 'तरङ्गवती', कवियों की वाणी को मलिन करने वाले कालिदास[2], 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' इन दो रचनाओं से कवियों के दर्प को चूर करने वाले बाण[3], काव्य-रचना के लिए कवियों को उत्साहहीन बनाने वाले भारवि तथा माघ[4], नाट्यरचना में नर्तनशील भवभूति की भारती, गौड़वहो के रचयिता वाक्पतिराज, यायावर कवि राजशेखर, त्रैलोक्यसुन्दरीकथा-अनेक कवि तथा ग्रन्थों की संस्तुति कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन किया है। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कवि धनपाल इन उपर्युक्त कवियों तथा उनकी रचनाओं से अपने ग्रन्थविशेष की निर्मिति में अवश्य प्रेरणा ग्रहण की है। इस उल्लेख का यह भी महत्त्व है कि इससे पूर्ववर्ती कवियों तथा ग्रन्थों के तिथि-निर्धारण में भी सहायता मिलती है।

**धनपाल की काव्यगत शैली**-स्निग्ध मनोहर वर्णों की योजना से युक्त श्लेषों के अत्यधिक बोझ से बोझिल रचना को अनुकरणीय न मानने वाले कवि धनपाल ने[5] सुबन्धु की 'प्रत्यक्षरश्लेषमय'... शैली को प्रश्रय नहीं दिया। बाण की अलौकिक प्रतिभा से अभिभूत उन्होंने उन्हीं की पांचाली शैली का अनुसरण किया, लेकिन उसे अपेक्षाकृत सुबोध तथा प्राञ्जल बनाने का सफल प्रयास किया। बाण ने जिस प्रकार शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों के प्रयोग द्वारा घटना और वर्णन को बोझिल बनाया है, धनपाल ने उन अलंकारों की योजना से रमणीयता का संचार कर वर्णनों में नूतनता का पूर्ण स्फुरण किया। उपमा और उत्प्रेक्षा धनपाल के प्रिय अलंकार हैं, पर अवसर उपलब्ध होने पर परिसंख्या तथा विरोधाभास के प्रयोग के लोभ का सम्वरण भी नहीं कर सकते। परिसंख्या का यह रमणीय प्रयोग द्रष्टव्य है :-

**''यस्मिन् राजनि अनुवर्तितशास्त्रमार्गे प्रशासति वसुमतीम्, धातूनां सोपसर्गत्वम्, इक्षूणां पीडनम्, पदानां विग्रहः, तिमीनां गलग्रहः, कुकविकाव्येषु यतिभ्रंशदर्शनम्, उदधीनामपवृद्धिः, द्विजातिक्रियाणां शाखोद्धरणम्, सारीणामक्षप्रसरदोषेण परस्परं बन्धवधभारणानि बभूवुः।''**

---

१. द्रष्टव्य : प्रस्तावनादिपुरुषौ रघुकौरववंशयोः। वन्दे वाल्मीकिकानीनौ सूर्याचन्द्रमसाविव।।
तिलकमंजरी, पूर्वोद्धात श्लोक २०वाँ

२. म्लायन्ति सकलाः कालिदासेनासन्नवर्तिना। गिरः कवीनां दीपेन मालतीकलिका इव।।
वही श्लोक २५वाँ

३. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्। किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः।।
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि। हर्षाख्यायिका ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्।।
वही श्लोक २६-२७वाँ

४. माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे। स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा।। वही श्लोक २८वाँ

५. १. द्रष्टव्यः-वर्णयुक्तिं दधानाऽपि स्निग्धाञ्जनमनोहराम्। नातिश्लेषघनां श्लाघां कृतिर्लिपिरिवाश्नुते।।
तिलकमंजरी-पूर्वोद्धात् श्लोक १६वाँ

संदर्भ के अनुसार धनपाल समासबहुल तथा असमस्त दोनों प्रकार की पदावलियों से युक्त शैली के प्रयोग में निपुण हैं। इनके गद्य की उल्लेखनीय विशेषता है कि उसमें विस्तृत तथा अनेकों पदों से युक्त समास की बहुलता का अभाव है। 'तिलकमंजरी' के प्रारम्भ में ही धनपाल ने विस्तृत गद्य को व्याघ्र तक कह दिया है जिससे भयाक्रान्त हो पाठक काव्य के अध्ययन से विरत हो जाता है।[1] कवि की भाषा गतिशील प्रभावशालिनी तथा प्रवाहमयी है। अधिक श्लेषालंकार की भरमार तथा विशेषणों के आडम्बर के अभाव के कारण मूल कथा के आस्वादन में गतिरोध नहीं उत्पन्न होता।

श्रुत्यनुप्रास के प्रयोग के द्वारा कवि ने भाषा को श्रवण-मधुर तथा प्राञ्जल बनाने का सर्वथा प्रयास किया है। भाषागत प्राञ्जलता तथा प्रवाह हेतु निम्नलिखित वाक्य निदर्शनस्वरूप हैः-

**"यथा न धर्मः सीदति, यथा नार्थः क्षयं व्रजति, यथा न राज्यलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्तिर्मन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणाः श्यामायन्ते, यथा न श्रुतमुपहस्यते, यथा न परिजनो विरज्यते, यथा न मित्रवर्गो म्लायति, यथा न शत्रवस्तरलायन्ते, तथा सर्वमन्वतिष्ठत्"**। धनपाल ने अपनी 'तिलकमंजरी' को 'अद्‌भुतरसारचिता' कहा है जिसमें श्रृंङ्गाररस की अभिव्यंजना के अवसर पर नारी के सौन्दर्य का वर्णन जिस प्रकार शास्त्रीय विधि के अनुसार कोमलकान्त पदावली में हुआ है, उसी प्रकार वीररस की अभिव्यक्ति हेतु युद्धों की भीषणता का वर्णन भी ऐसी कठोरतापूर्वक किया गया है कि पढ़ने मात्र से ही युद्ध विभीषिका नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाती है।

यह गद्य-प्रबन्ध अपने वर्णन-वैविध्य तथा वैचित्र्य हेतु सदा समादृत होता रहेगा। कवि मानवीय जीवन के व्यावहारिक पक्ष का विशेष रूप से निरीक्षक, अनुभवी एवं पारखी है। अतः जीवन के व्यावहारिक विषयों के यथातथ्य आकलन तथा वर्णन से 'तिलकमंजरी' पाठकों को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। विषय के प्रतिपादन में कवि की भाषा भी व्यावहारिक बन गई है। धनपाल की उल्लेखनीय देन है कि उन्होंने अपनी इस प्रस्तुत संरचना के माध्यम से संस्कृत गद्य के व्यावहारिक रूप का निदर्शन प्रस्तुत किया है। इस क्षेत्र में धनपाल ने अपने को बाण से भी आगे बढ़ा हुआ सिद्ध कर दिया है।

'तिलकमंजरी' में तत्कालीन सामाजिक जीवन, राजाओं के राजकीय वैभव तथा उनके मनो-विनोद के साधनों, सामयिक गोष्ठियों, अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों के नाम, नाविक-तन्त्र, युद्धास्त्रों का वर्णन उपलब्ध होता है जो इसकी सांस्कृतिक महनीयता का परिचायक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस गद्य-प्रबन्ध का एक अपना विशिष्ट महत्त्व है; क्योंकि इसके प्रारम्भ में धारा-नगरी के इतिहास-प्रसिद्ध परमारवंशीय नरेशों की बैरिसिंह

---

१. द्रष्टव्य-अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात्। व्याघ्रादिव भयाक्रान्तो गद्याद् व्यावर्तते जनः।।
तिलकमंजरी पूर्वोद्धात श्लोक १५वाँ

से प्रारम्भ कर भोजराजपर्यन्त वंशावली मिलती है। कवि स्वयं परमार नृपति मुञ्ज की विद्वत्-परिषद का एक सम्मानित सभासद था।

जैन धार्मिक भावनाओं से प्रभावित तथा चित्रित होने के कारण दीर्घकाल तक 'तिलकमंजरी' ब्राह्मण-धर्मावलम्बी साहित्यकारों से उपेक्षित रही है। धनपाल जैन धर्मानुयायी थे, पर कट्टर साम्प्रदायिक नहीं थे। वे एक उदार तथा समन्वित दृष्टिकोण के विद्वान् कवि थे। कवि की उदारता पर प्रतिष्ठित तथा संस्कृत गद्य की अलंकृत शैली में निबद्ध 'तिलकमंजरी' ने अनेक विद्वान् कवियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणामस्वरूप ईसा की त्रयोदश शती के प्रारम्भ से ही इस ग्रन्थ का संक्षेपण प्रारम्भ हो गया। जिस प्रकार संस्कृत के अनेक कवियों की कृतियों के उपजीव्य प्राकृत की पैशाची भाषा में लिपिबद्ध गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' को जो सम्मान तथा गौरव प्राप्त हुआ कि उसके सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर', क्षेमेन्द्रविरचित 'बृहत्कथामंजरी' और बुद्धस्वामीप्रणीत 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' तथा बाणभट्ट की 'कादम्बरी' के 'कादम्बरीकथासार' एवं दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' के रूप में संक्षेपण हुए, उसी प्रकार 'तिलकमंजरी' को उसकी कथावस्तु के प्रसार-प्रचार हेतु लगभग पांच संक्षेपण होने का गौरव उपलब्ध हुआ। सर्वप्रथम १२०४ ई. में पल्लिपाल धनपाल ने मूलग्रन्थ का संस्कृत पद्यों में 'तिलकमंजरीसार' नाम से रूपान्तर किया है।[1] तदनन्तर पण्डित लक्ष्मीधर ने सन् १२२४ ई. में 'तिलकमंजरीकथासार' नामक द्वितीय संक्षेपण का प्रणयन किया।[2] यह भी ग्रन्थ संस्कृत पद्यों में ही है। तृतीय संक्षेपण 'तिलकमंजरीकथोद्धार' की रचना पण्डित पद्मसागर ने सन् १५८६ ई. में संस्कृत पद्यों में ही की।[3] चतुर्थ 'तिलकमंजरीसंग्रह' का प्रणयन १६२५ ई. में अभिनवभट्ट बाण पण्डित आर. वी. कृष्णमाचार्य ने संस्कृत गद्य में की तथा पंचम संक्षेपण पन्न्यास सुशीलविजय ने संस्कृत गद्य में किया है। इसके अतिरिक्त एक गुजराती उपन्यास में भी 'तिलकमंजरी' की कथा वर्णित मिलती है।

## वादीभसिंह

अलंकृत शैली में निबद्ध वादीभसिंह की 'गद्यचिन्तामणि' संस्कृत वाङ्मय की एक महनीय, उल्लेखनीय एवं रोचक गद्यकाव्य है, जिसके प्रत्येक लम्भ की परिसमाप्ति पर निम्नलिखित प्रकार का पुष्पिकावाक्य अङ्कित है :-

---

१. द्रष्टव्यः यह ग्रन्थ एल.डी. इन्स्टीच्यूट आफ इण्डोलाजी अहमदाबाद से सन् १६०६ ई. प्रकाशित हो चुका है जिसके सम्पादक एन.एम. अन्सार है।

२. द्रष्टव्यः-प्रकाशित हेमचन्द्र सभा, पटना द्वारा १६१६

३. द्रष्टव्यः शारदापीठ प्रदीप Vol. XII, NO. 2, A अगस्त १६७२ में प्रकाशित

"इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्भः"....।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'गद्यचिन्तामणि' के रचयिता वादीभसिंह ही हैं। इस ग्रन्थ की उपलब्ध चार हस्तलिखित प्रतियों में से तीन के अन्त में नीचे लिखे दो श्लोक उपलब्ध होते हैं :-

**श्रीमद्वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः।**
**स्थेयादोड्यदेवेन चिरायास्थानभूषणः।। १।।**
**स्थेयादोड्यदेवेन वादीभहरिणा कृतः।**
**गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापरः।। २।।**

इन उपर्युक्त दोनों श्लोकों के आधार पर ऐसा अनुमान होता है कि कवि का जन्मजात नाम 'ओड्यदेव' था और वादीभसिंह उनकी उपाधि थी। श्रवणवेलगोला के शिलालेख संख्या ५४[1] की मल्लिषेण प्रशस्ति में वादीभसिंह उपाधिधारी किसी आचार्य मुनि अजितसेन का निर्देश है।

अतः श्री टी.एस. कुप्पुस्वमी,[2] श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री[3] और पं. के. भुजबली शास्त्री[4] प्रभृति समीक्षकों की मान्यता है कि मुनि अजितसेन और 'गद्यचिन्तामणि' के निर्माता वादीभसिंह दोनों अभिन्न व्यक्ति हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'गद्यचिन्तामणि' की पूर्वपीठिका में ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है-"अपने गुरु पुष्पसेन की शक्ति से ही मैं मूढ़बुद्धि मनुष्य 'वादीभसिंहता' को प्राप्त कर सका।"[5] इस अन्तःसाक्ष्य के प्रमाण से अनुमान होता है कि श्रवणवेलगोला शिलालेख में निर्दिष्ट अजितसेन ही ओड्यदेव हैं, जिन्होंने अपनी न्यायशास्त्रीय वाक्पटुता तथा शास्त्रदक्षता के कारण 'वादीभसिंह' जैसी उपाधि धारण कर ली थी।[6]

---

१. द्रष्टव्यः 'सकलभुवनपालनम्रमूर्धावबद्ध स्फुरितमुकुटचूडालीढ़पादारविन्दः
मदवदखिलवादीभेन्द्रकुम्भप्रभेदी
गणभृदजितसेनो भाति-वादीभसिंहः।।" ५७
२. द्रष्टव्यः टी. एस. कुप्पुस्वामी द्वारा सम्पादित **'गद्यचिन्तामणि'** की प्रस्तावना।
३. **'न्यायकुमुदचन्द्रोदय'** प्रथम भाग प्रस्तावना पृष्ठ-।।।
४. **जैनसिद्धान्तभास्कर'** भाग ६ अंक २ पृष्ठ ७८-८०
५. "श्रीपुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतो दिव्यो मनुर्हृदि सदा मम संविदध्यात्।
यच्छक्तितः प्रकृतिमूढमतिर्जनोऽपि वादीभसिंहमुनिपुङ्गवतामुपैति।।"
**गद्यचिन्तामणि** प्रारम्भ श्लोक ६
६. **जैन साहित्य और इतिहास** पृष्ठ ३२२ द्वितीय संस्करण।

वादीभसिंह की जन्मभूमि के उल्लेख के अभाव में इनके मूलनाम ओड्यदेव के आधार पर श्री पं.के. भुजबली शास्त्री ने इन्हें तमिलप्रदेश निवासी कहा है और वी. शेषगिरि राव ने अनुमान किया है कि वादीभसिंह मूलतः कलिङ्ग (तेलुगु) के गंजाम जनपद के निवासी हो सकते हैं। भुजबली शास्त्री का कथन है कि तमिल निवासी होते हुए भी वादीभसिंह की साहित्यिक साधना की भूमि मैसूर प्रान्त ही थी; क्योंकि मैसूर प्रान्तान्तर्गत पोम्बुच्च तथा अन्य कई स्थानों में उपलब्ध शिलालेख इस उपर्युक्त तथ्य के साक्षीभूत हैं।[1]

**स्थितिकाल**-बाण की दोनों कृतियों 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' से वादीभसिंहकृत 'गद्यचिन्तामणि' प्रभावित है; क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ का कथानायक कुमार जीवन्धर के लिए विद्यागुरु आर्यनन्दी द्वारा प्रदत्त उपदेश, 'कादम्बरी' के शुकनासोपदेश की छाया ही है। इसके अतिरिक्त 'गद्यचिन्तामणि' के बहुत से वर्णन-स्थल 'हर्षचरित' के अनुरूप हैं। अतः वादीभसिंह निर्विवाद रूप से बाण के परवर्ती हैं।

वादीभसिंह की दार्शनिक शास्त्रीय रचना 'स्याद्वादसिद्धि' के षष्ठ प्रकरण की १६वीं कारिका में भट्ट तथा प्रभाकर के नामोल्लेख के साथ-साथ उनके अभिमत भावनानियोगरूप वेदवाक्यार्थ का निर्देश है। इसके अतिरिक्त कुमारिलभट्ट के 'मीमांसाश्लोकवार्तिक' की कई कारिकाएँ 'स्याद्वादसिद्धि' में उद्धृत हैं और उनकी कटु आलोचना भी की गई है। कुमारिलभट्ट और प्रभाकर दोनों समसामयिक थे तथा उनका समय ईसा की सातवीं शती है। अतः वादीभसिंह उनके भी परवर्ती सिद्ध होते हैं।[2]

सोमदेवविरचित 'यशस्तिलकचम्पू' के टीकाकार श्रुतसागरसूरि ने कवि वादिराजरचित निम्नलिखित श्लोक "**कर्मणा कवलितोऽजनि सोऽजा तत्पुरान्तरजनङ्गमवाटे।**

**कर्मकोद्रवरसेन हि मत्तः किं किमेत्यशुभधाम न जीवः।।**"[3] के आधार पर उल्लेख किया है कि वादीभसिंह और वादिराज दोनों गुरुभाई थे और सोमदेव उनके गुरु थे। सोमदेव ने 'यशस्तिलकचम्पू' की रचना शकाब्द ८८१ तदनुसार ६५६ ई. में की थी तथा वादिराज ने 'पार्श्वचरित' का निर्माण शकाब्द ६४७ तदनुसार १०२५ ई. में किया था। अतः वादीभसिंह का समय ईसा की एकादश शताब्दी होना चाहिए। आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय जी ने भी उपर्युक्त तिथि ही मानी है।[4]

**वादीभसिंह की रचनाएँ**:-वादीभसिंह दार्शनिक तथा कवि दोनों थे। 'गद्यचिन्तामणि' इनकी प्रमुख गद्यप्रबन्धात्मक संरचना है। कवि ने उसी की ही कथा को अनुष्टुप् जैसे सरल छन्दों में एक अन्य 'क्षत्रचूड़ामणि' नामक पद्य काव्य का प्रणयन किया जिसमें ७४१ श्लोक

---

१. द्रष्टव्य : **'क्षत्रचूडामणि'** उत्तरार्द्ध की प्रस्तावना पृष्ठ ४

२. **जैन साहित्य और इतिहास** पृष्ठ ३२४ द्वितीय संस्करण।

३. द्रष्टव्यः **'यशस्तिलकचम्पू'** आश्वास द्वितीय श्लोक १२६ की टीका।

४. आचार्य बलदेव उपाध्यायकृत **'संस्कृत साहित्य का इतिहास'** पृष्ठ ४०६

हैं। दोनों ग्रन्थ एकादश लम्भों में लिपिबद्ध हैं। 'क्षत्रचूड़ामणि ' का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है कि इसमें कुमार जीवन्धर के जीवनचरित के वर्णन के साथ-साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टय का वर्णन नीतिपुरस्सर किया गया है। इस दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का समस्त संस्कृत वाङ्मय में अद्वितीय महत्त्व है। इस ग्रन्थ का मूलरूप में प्रकाशन सर्वप्रथम टी. एस. कुप्पुस्वामी तदनन्तर पं. निद्धामल्ल जी तथा पं. मोहनलाल जी ने भी किया है।

**गद्यचिन्तामणि**-अलंकृत शैली में निबद्ध 'गद्यचिन्तामणि' संस्कृत गद्य का एक अन्यतम ग्रन्थ है जिसमें जिनसेन के महापुराण में वर्णित कुमार जीवन्धर की कथा ११ लम्भों में रची गई है। ग्रन्थ का प्रारम्भ जितेन्द्रदेव, गणधर, जिनधर्म और 'स्याद्वाद' से चिह्नित जिनवाणी की मंगल संस्तुति करके समन्तभद्रादि पूर्व मुनियों का स्मरण किया गया है। स्याद्वाद की वाणी की गर्जना से दिग्गज विद्वानों के मद को चूर करने वाले शास्त्रकला में दक्ष वादीभसिंह ने समन्तभद्रादि मुनियों को "वाग्वज्रनिपातपाटितप्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः"। कहकर उनके गौरव को प्रकाशित किया है। तत्पश्चात् गुरु पुष्पसेन का स्मरण कर परम्परागत पद्धति का अनुगमन करते हुए सुजन-प्रशंसा और दुर्जननिन्दा कर श्रेणिक के प्रश्न पर सुधर्मा गणनायक के द्वारा जीवन्धर की कथा का प्रारम्भ किया गया है।

जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में हेमांगद देश की राजपुरी नामक नगरी है, जहाँ का राजा सत्यन्धर है और विजया उसकी राजमहिषी है। मन्त्री काष्ठांगार छल से राजा को परास्त कर स्वयं राजा बन जाता है। गर्भवती निःसहाय विजया श्मशान में एक पुत्र को जन्म देती, जिसका पालन-पोषण गन्धोत्कट नामक वैश्य करता है। नवजात शिशु का नाम जीवन्धर रखा जाता है। आर्यनन्दी नामक गुरु की शिक्षा-दीक्षा से वर्धिष्णु युवक अल्पकाल में ही एक योग्य विद्वान् बन जाता है। भीलों के दल को परास्त कर गोपालों की गाय के प्रत्यावर्तन से जीवन्धर का सुयश सर्वत्र फैल जाता है और उसका मित्र पद्मास्य गोपपुत्री गोविन्दा को प्राप्त करता है। इसी बीच वैश्य श्रीदत्त एक वीणास्वयंवर का आयोजन करता है, जिसमें नित्यानित्य नगर के नृपति गरुड़देव की पुत्री गन्धर्वदत्ता, जीवन्धर का वरण करती है और दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है। वसन्तोत्सव से लौटते हुए जीवन्धर के पंचनमस्कार मन्त्र के प्रभाव से मरणोन्मुख कुत्ता सुदर्शन यक्ष बन जाता है। पुनः प्रमुख श्रेष्ठी की पुत्री गुणमाला के साथ जीवन्धर का द्वितीय विवाह होता है। अपने हाथी के पराजित हो जाने की कुण्ठा से राजा काष्ठांगार जीवन्धर को मृत्युदण्ड से दंडित करता है जिससे समस्त नगरी में विषाद छा जाता है। सुदर्शन यक्ष के साहाय्य से जीवन्धर को जीवनलाभ मिल जाता है। तदनन्तर वह तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान करता है और पल्लव देश में पहुँचता है। यहाँ भी सुदर्शन यक्ष के द्वारा प्रदत्त विषापहारी मन्त्र से राजा लोकपाल की पुत्री पद्मा को सर्प-विद्या से मुक्त करने के कारण जीवन्धर का तृतीय पाणिग्रहण संस्कार पद्मा के साथ हो जाता है। पद्मा को राजभवन में छोड़कर किसी रात्रि जीवन्धर तापसों के वन में

पहुँचकर जैन धर्म स्वीकार कर लेता है। यहाँ राजश्रेष्ठी सुभद्र की पुत्री क्षेमश्री का जीवन्धर के साथ चतुर्थ विवाह सम्पन्न कराया जाता है। पावस ऋतु के बीत जाने पर जीवन्धर यहाँ से भी चल देता है जहाँ से वह हेमाभपुरी में पहुँचता है जहाँ राजा दृढ़मित्र, जीवन्धर को अपने पुत्रों को बाणविद्या सिखाने के लिए नियुक्त कर लेता है और राजा अपनी पुत्री का विवाह जीवन्धर के साथ कर देता है। इस स्थान पर जीवन्धर की बाल्यावस्था के सभी मित्र पद्मास्य प्रभृति मिलते हैं और उनसे अपनी माता विजया का कुशल-क्षेम मिलने पर जीवन्धर अपनी नगरी राजपुरी को लौट आता है। यहाँ पुनः सागरदत्त श्रेष्ठी की पुत्री विमला के साथ जीवन्धर का छठवाँ विवाह हो जाता है। कामदेव के मन्दिर में राजपुत्री सुरमंजरी से बड़े छलछद्म तथा अपना कौशल प्रदर्शन कर जीवन्धर सप्तम विवाह सम्बन्ध सम्पन्न करता है। जीवन्धर शर्त के अनुसार एक ही बाण से वराहों के तीन पुतलों को बेधकर गोविन्द महाराज की पुत्री लक्ष्मणा को स्वयंवर में प्राप्त करता है। यहाँ इसका पूर्ववृत्तांत प्रकट हो जाता है। अपनी नगरी राजपुरी का शासक नियुक्त हो जाता है और अपने विरोधियों को परास्त कर देता है। अन्त में वैराग्य उत्पन्न होने पर मुनिराज के उपदेश से अपनी सभी आठों स्त्रियों के साथ भगवान् महावीर के समवसरण की ओर प्रस्थान करता है। जिन धर्म में दीक्षित होकर परम संयम स्वीकार करता है। उसी समय सुदर्शन यक्ष आकर उसकी स्तुति करता है तथा कठोर तपस्या के उपरान्त निर्वाण प्राप्त कर लेता है। देवियाँ स्वर्ग चली जाती हैं। यहीं इस गद्यकाव्य की कथा की समाप्ति हो जाती है।

## काव्यगत विशेषता

वादीभसिंह की दोनों रचनायें 'गद्यचिन्तामणि' और 'क्षत्रचूड़ामणि' पूर्ववर्ती कवियों कालिदास, सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि की कृतियों से प्रभावित हैं। धर्म और दर्शन के वर्णन में समन्तभद्र पूज्यपाद शिवार्ण और अकलंक का प्रमाण स्पष्ट परिलक्षित होता है। कवि ने क्लिष्ट अलंकृत गद्य शैली में 'गद्यचिन्तामणि'[1] इस संस्कृत गद्य प्रबन्धकाव्य का प्रणयन किया है। यह काव्य क्षत्रचूडामणि' के समान ही एकादश लम्भों में विभक्त है। इसमें कवि की अद्वितीय कल्पना-वैभव तथा वर्णन-पटुता का पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन हुआ है। मानवीय जीवन का विस्तृत तथा व्यापक चित्रण होने के कारण कवि को मानवीय भावनाओं के मार्मिक वर्णन करने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुआ है। पूर्ववर्ती कलावादी कवियों सुबन्धु, बाणभट्ट के समान ही वादीभसिंह ने अपनी शाब्दिक-क्रीडा का खुलकर प्रदर्शन

---

१. द्रष्टव्य, यह ग्रन्थ वाणी विलास प्रेस, श्रीरङ्गम् से १६१६ ई.; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से हिन्दी अनुवाद और संस्कृत टीका सहित पं. पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित वि.सं. २०१५ में प्रकाशित हो चुका है।

किया है। प्रस्तुत काव्य में सानुप्रासिक समासान्त पदावली एवं विरोधाभास और परिसंख्या आदि अलंकारों का चमत्कार सर्वथा दर्शनीय है। काव्य की शब्दगत सुषमा को सुरक्षित रखने के लिए कवि ने पुनरुक्ति से बचने हेतु नये-नये शब्दों का भी सृजन किया है जैसे चन्द्रमा के लिए यामिनीवल्लभ, निशाकान्त, सूर्य के लिए नलिनसहचर, इन्द्र के लिए बलनिषूदन, पृथिवी के लिए अम्बुधिनेमि, मुनि के लिए यमधन इत्यादि। दण्डी भाषा के प्रवाह तथा पदों के लालित्य के लिए प्रसिद्ध हैं तथापि 'दशकुमारचरित' में ग्रन्थ के प्रारम्भ में भाषा का जो प्रवाह प्रदर्शित हुआ है वह उत्तरोत्तर क्षीण होता गया है। यहाँ तक कि अन्त में तो कथानक केवल अस्थिपञ्जरमात्र अवशिष्ट रह गया है। इसके विपरीत 'गद्यचिन्तामणि' में कथानक पौराणिक होते हुए भी कवि ने उस काव्य में ललित वेष-भूषा से प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है और भाषा के प्रवाह को महानदी के प्रवाह के समान प्रारम्भ से अन्त तक अखण्डधारा में प्रवाहित किया है। 'वासवदत्ता' कथा की अत्यल्पता, श्लेषादि अलंकारों की भरमार से बोझिल हो गई है, किन्तु 'गद्यचिन्तामणि' की रोचक कथा में सरस गद्यधारा पर सारगर्भित अलंकार उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। 'कादम्बरी' की अल्पकथा जहाँ लम्बायमान विशेषणबहुल गद्यों में उलझ गई है, वहाँ 'गद्यचिन्तामणि' की भाषा की प्रवाहयुक्तता अभीष्ट रस की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होती है। प्रस्तुत काव्य की इन्हीं उपर्युक्त विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इसके प्रथम सम्पादक पं. कुप्पुस्वामी ने कहा है कि यह काव्य पदों की सुन्दरता, श्रवणीय शब्दों की रचना, सरल कथासार, चित्त को आश्चर्य में डालने वाली कल्पानाएँ, हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला धर्मोपदेश आदि से सुशोभित है :-

**"अस्य काव्यपथे पदानां लालित्यं, श्राव्यः शब्द-संनिवेशः, निरर्गला वाग्वैखरी, सुगमः कथासारागमः;-चित्त-विस्मापिकाः कल्पनाश्चेतः प्रसादजनको-धर्मोपदेशो...विलसन्ति विशिष्टगुणाः।"**

'गद्यचिन्तामणि' में सूर्योदय, सूर्यास्त, लहराता समुद्र, रात्रि का घोर अन्धकार, वसन्त, पावस एवं ग्रीष्म ऋतुओं का सरस वर्णन, अन्तरिक्ष में व्याप्त चन्द्र-ज्योत्स्ना का रमणीय वर्णन संस्कृत वाङ्मय में एकत्र दुर्लभ प्रतीत होता है। इसके षष्ठ लम्भ में वर्णित जीवन्धर के द्वारा निरीक्षित तपोवन की शोभा दर्शनीय तथा प्रशंसनीय है -

**"विहितप्रगेतनविधिस्ततो विनिर्गत्य सात्यन्धरिन्धकारित परिसराणि क्वणदलिकदम्ब-कबलिताशिखरकुसुमतुङ्गतरुसहस्राणि विश्रृङ्खलखेलत्कुरङ्गखुरपुट मुद्रितसिकतिल-स्थलाभिरम्याणि स्वच्छसलिलसरःसमुद्भिन्नकुमुदकुवलयमनोज्ञानि.... कानिचित्काननानि नयनयोरुपायनीचकार।"[1]**

---

१. गद्यचिन्तामणि-षष्ठ लम्भ, १६८ पैराग्राफ-मध्य-पृष्ठ २५५-५६

काव्यशास्त्रीय सभी नवरसों का 'चिन्तामणि' में परिपाक सम्यक् रीति से हुआ है। इस गद्य-प्रबन्ध का अंगी रस शान्त है और समस्त श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत शेष अङ्ग रस स्थान-स्थान पर अपनी गरिमा प्रकट करते हैं। कथानायक जीवन्धर की गन्धर्वदत्ता आदि आठ नई नवेली वधुएँ हैं। उनके साथ पाणिग्रहणोपरान्त शृङ्गार रस के संयोग तथा वियोग उभयपक्ष का परिपाक हुआ है, पर कवि ने वर्णन में अश्लीलता नहीं आने दी है।

'गद्यचिन्तामणि' की सांस्कृतिक महनीयता भी उपेक्षणीय नहीं है। जीवन्धर स्वयं आठ विवाह करता है। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में बहुविवाह-प्रथा प्रचलित थी। क्षत्रिय नायक, गुणमाला, क्षेमश्री, विमला और सुरमंजरी प्रभृति चार वैश्य कन्याओं के साथ विवाह करता है। इससे पता चलता है कि समाज में क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में वैवाहिक संबंध होता था, लेकिन शूद्रवर्ण के साथ उच्च वर्णवालों का ऐसा सम्बन्ध प्रचलित नहीं था; क्योंकि जीवन्धर नन्दगोप की कन्या गोदावरी के साथ स्वयं विवाह न कर अपने मित्र पद्मास्य का उससे सम्बन्ध करा देता है। विवाह के लिए स्वयंवर की प्रथा का प्रचलन भी था। समाज में पुरुष और स्त्री अधोवस्त्र और उत्तरच्छद दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ दोनों वस्त्रों के अतिरिक्त स्तनवस्त्र को भी धारण करती थीं। स्त्रियाँ हाथों में मणि के वलय, कमर में सुवर्ण अथवा मणिखचित मेखला पहनती थीं एवं गले में मोती की माला। दाक्षिणात्य कवियों की कृतियों में अवगुण्ठन (घूंघट) तथा पादफटक का वर्णन नहीं मिलता। राजा अपनी आवश्यकतानुसार ४-६ मन्त्रियों को नियुक्त करता था। उनमें एक प्रधान होता था। धार्मिक कार्यों के लिए एक पुरोहित अथवा राजपण्डित भी रहता था। राजदरबार में रानी का भी स्थान होता था। राजा अपना उत्तराधिकारी युवराज के रूप में निश्चित कर सकता था। प्रधान अपराधों का न्याय स्वयं राजा करता था। यातायात के साधन सीमित थे। युद्ध में रथ, घोड़े, हाथियों की सवारी का उल्लेख मिलता है। अन्य समय में शिविका का उपयोग स्त्रियों के लिए किया जाता था। वैदिक धर्म तथा श्रमण धर्म दोनों का समाज में प्रचार-प्रसार था।

## जीवन्धरस्वामि चरिताश्रित साहित्य

जीवन्धरस्वामी का चरित लोकोत्तर घटनाओं से पूर्ण है अतः उसके अंकन में विविध लेखकों ने अपना गौरव समझा है। एतदर्थ द्रष्टव्यः-जीवन्धरचम्पू'- डॉ. उपाध्ये व हीरालाल लिखित अंग्रेजी प्रस्तावना-ज्ञानपीठ प्रकाशन।

जीवन्धर के चरित के प्रख्यापक निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं :-

१. गद्यचिन्तामणि-वादीभसिंह सूरिविरचित गद्यकाव्य।
२. क्षत्रचूड़ामणि-अनुष्टुप् छन्दोगत काव्य।

३. जीवन्धरचरित-गुणभद्राचार्यरचित उत्तरपुराण ७५वें पर्व का एक भाग।
४. जीवकचिन्तामणि-तिरुतक्कदेवरविरचित तमिलभाषा का एक प्रसिद्ध काव्य।
५. जीवन्धरचरिउ-पुष्पदन्त कविरचित अपभ्रंश काव्य अपभ्रंश महापुराण की ६९वीं सन्धि।
६. जीवन्धरचम्पू-महाकवि हरिश्चन्द्ररचित गद्यपद्यमय संस्कृत चम्पूग्रन्थ।
७. जीवन्धरचरित-अपभ्रंश भाषामय रइधू कवि द्वारा रचित १३ सन्धियों का ग्रन्थ।
८. जीवन्धरचरिते-वासव के पुत्र भास्कर लिखित कन्नड भाषा १८ अध्यायों वाला १००० श्लोकों का एक ग्रन्थ।
९. जीवन्धरसंगत्य-कन्नड भाषा।
१०. जीवन्धर-षट्पदी-कन्नड भाषा।
११. जीवन्धरचरित-शुभचन्द्र के पाण्डव पुराणान्तर्गत एक अंश (संस्कृत)।
१२. जीवन्धरचरिते-ब्रह्मकवि का कन्नड भाषात्मक ग्रन्थ।
१३. जीवन्धरचरित-कवि नथमल द्वारा हिन्दी छन्दोबद्ध रचना।

## विश्वेश्वर पाण्डेय

पण्डितप्रवर विश्वेश्वर पाण्डेय ने 'कादम्बरी' की शैली में एक गद्य-काव्य का प्रणयन किया है जो 'मन्दारमंजरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पूर्वज भारद्वाज गोत्रीय पर्वतीय ब्राह्मण थे जिनका मूलस्थान अलमोड़ा जिले के पाटिया नामक ग्राम में था। इनके पिता लक्ष्मीधरसूरि निखिलशास्त्रगुरु थे और शास्त्र अध्येताओं के लिए पारिजाततरु थे।[1] वे वृद्धावस्था में काशी चले आए और सन्तान के अभाव से दुःखित अपने को बाबा विश्वनाथ की आराधना में लगा दिया। कथा प्रचलित है कि भक्तानुकम्पी भगवान् आशुतोष ने स्वप्न में उनसे कहा कि "तुझे अदृष्टानुसार सन्तान का योग नहीं है। मैं क्या करूँ। तुम्हारी भक्ति के वशीभूत होकर मैं स्वयमेव तुम्हारे पास आऊँगा।" उसी स्वप्न के उपरान्त पुत्र का जन्म हुआ। भगवान् की अलौकिक कृपा से उत्पन्न हुए पुत्ररत्न का नामकरण उन्हीं के नाम पर विश्वेश्वरसूरि रखा गया। विश्वेश्वरसूरि जो साक्षात् विश्वेश्वर थे, ने सभी शास्त्रों का अध्ययन अपने पिता लक्ष्मीधरसूरि के चरणों में बैठकर काशी में ही किया। पाँच वर्ष की अवस्था में बालक विश्वेश्वर अक्षरारम्भ से अपने बुद्धिवैचित्र्य का प्रदर्शन करने लगे। दशवर्ष तक पहुँचते-पहुँचते जिस शास्त्र का अध्ययन करते थे उसमें ही ग्रन्थ का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। काव्याध्ययन के उपरान्त काव्यग्रन्थों, व्याकरण के अध्ययन से बुद्धि के परिपक्व होने पर व्याकरण शास्त्रीय और सभी शास्त्रों में इस अलौकिक प्रतिभा के धनी विलक्षण-शेमुषी सम्पन्न विद्वान् कवि ने ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनके द्वारा निर्मित कपितय ग्रन्थ निर्णयसागर बम्बई और कतिपय काशी-संस्कृत ग्रन्थमाला के द्वारा प्रकाशित

---

१. द्रष्टव्य : जयति यथाजातानां वाग्जातसुजातपरिजातश्रीः। श्रीलक्ष्मीधरविबुधावतंसचरणाब्जरेणुकणः।।" 'मन्दारमंजरी', प्रस्तावना श्लोक १२

हुए हैं और आज उपलब्ध भी हैं। पण्डित विश्वेश्वर व्याकरण, न्याय और काव्यशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे। इन्होंने 'अष्टाध्यायी' की विशद व्याख्या के रूप में 'वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि' नामक ग्रन्थ की रचना की जो पाणिनीय व्याकरण का एक प्रौढ़ विस्तृत ग्रन्थ है[1]। 'नव्यन्यायदीधिति' की टीका के रूप में इन्होंने 'तर्ककुतूहल' और 'दीधितिप्रवेश' इन दोनों ग्रन्थों की रचना की थी। 'अलंकारकौस्तुभ' 'रसचन्द्रिका', 'अलंकारप्रदीप', 'अलंकारमुक्तावली', 'काव्यतिलक', 'काव्यरत्न' इनके अलंकारशास्त्र के उपयोगी ग्रन्थ हैं। इनके काव्य-ग्रन्थों में 'रोमावलीशतक', 'आर्यासप्तशती' 'होलिकाशतक' 'वक्षोजशतकम्', 'षड्ऋतुवर्णन', 'लक्ष्मीविलास' उल्लेखनीय हैं। इन्होंने नैषाधीय काव्य की टीका तथा 'रसमञ्जरी' की टीका की भी रचना की थी। ऐसी किंवदन्ती है कि उनके द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थ भगवती गंगा को समर्पित कर दिए गए।

**विश्वेश्वर का समय**-'वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि' में विश्वेश्वर ने स्थान-स्थान पर भट्टोजिदीक्षित तथा उनके ग्रन्थों का उल्लेख किया है। अतः ये अवश्य ही[2] भट्टाजि के परवर्ती हैं। विद्वानों ने भट्टोजि का समय १५६० से १६१० ई. के मध्य निर्धारित किया है।[3] पर विश्वेश्वर ने भट्टोजि के पौत्र तथा नागोजिभट्ट के गुरुवर्य हरिदीक्षितकृत 'लघुशब्दरत्न' तथा 'बृहत्शब्दरत्न' का नामोल्लेख नहीं किया है। इससे अनुमान होता है कि वे उनके पूर्ववर्ती होंगे, लेकिन कर्णाकर्णिकापरम्परा से सुनने में आता है कि विश्वेश्वर हरिदीक्षित महादेय के समय में थे और हरिदीक्षित ने इनके दर्शन भी किए थे। 'रसमञ्जरी' की एक टीका के अन्त में ''ग्रन्थकृत्पुत्रजयकृष्णो विलिलेखेदं पुस्तकमिति'' तथा उसके द्वारा निम्नलिखित-

**'दिग्गुणर्तुशशलाञ्छनयुक्ते शालवाहनशके जयकृष्णः।**
**श्रावणीयसितपक्षदशम्यां निर्मितिं पितुरिमां विलिलेख।।**

पद्य के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वेश्वर-पुत्र १६४३ शक सम्वत् में विद्यमान थे। अतः विद्वानों का अनुमान है कि विश्वेश्वर का समय ईसा की अष्टादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।[4] प्रायः सभी शास्त्रों में ग्रन्थनिर्माण करने से कवि के पाण्डित्य का परिचय सहजरूप से लग जाता है। इनके सभी ग्रन्थ तत् तत् शास्त्रीय वैशिष्ट्य से युक्त हैं। ग्रन्थनिर्माण में इन्होंने प्राचीन ग्रन्थों के शब्दों में परिवर्तन कर अपने कौशल का प्रदर्शन मात्र नहीं किया, अपितु पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों का मत प्रदर्शन कर वस्तुतः अपने मत की स्पष्ट अभिव्यक्तिपूर्वक 'वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि' सदृश ग्रन्थों का निर्माण किया है। अतः

---

१. यह ग्रन्थ काशी संस्कृत ग्रन्थमाला से मुद्रित हुआ तथा प्रारम्भिक तीन अध्यायों के साथ चौखम्बा ग्रन्थमाला से भी प्रकाशित है।

२. यह सटीक-निर्णयसागर प्रेस से मुद्रित

३. आचार्य बलदेव उपाध्यायकृत **'संस्कृत शास्त्रों का इतिहास'** पृष्ठ ५०२-३

४. वही, पृष्ठ ४१०

उन-उन ग्रन्थों की रचना से कवि-प्रतिभा कैसी थी यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है। निगम-आगम की पारावारीणता को प्राप्त विश्वेश्वर पाण्डेय बयालीस वर्ष की अवस्था के लगभग ही दिवंगत हो गए, ऐसी जनश्रुति है।

'मन्दारमंजरी'[1] इसी सर्वशास्त्रपण्डित एवं विलक्षणप्रतिभासम्पन्न कवि की गद्यकाव्यात्मक एक प्रौढ़ रचना है। यह ग्रन्थ-पूर्वभाग तथा उत्तरभाग दो भागों में है। पूर्वार्ध विश्वेश्वरपाण्डेय द्वारा विरचित है, लेकिन उत्तरभाग परम्परावश उनके किसी शिष्य की कृति है जो आज समग्र रूप से उपलब्ध नहीं है। उत्तरार्ध के मङ्गलाचरण में निम्नलिखित दो श्लोक मिलते हैं।

**स्वर्गस्रवत्सुरसरिद्विरलप्रवाहकल्लोलडम्बरविडम्बिभिरेव गद्यैः।**
**विश्वेश्वराभिधकवीश्वरनिर्मितेयं तोषं कथा न हृदि कस्य चरीकरोति।।**
**अस्या अपूर्तिजनितेन हि नोद्यमानो दुःखेन चापलमहं प्रकटीकरोमि।**
**मालां करीन्द्रवरकुम्भजमौक्तिकीयां ग्रथ्नन्व रौप्यकृतबीजगणैर्हसाय।।**

इन मङ्गलश्लोकों के निर्माता ने अपना नामोल्लेख नहीं किया है। इस भाग के अन्त के भी चार पाँच पृष्ठ अप्राप्त हैं। अतः ग्रन्थकर्ता का पता नहीं चलता।

मन्दारमञ्जरी के पूर्वभाग का प्रारम्भ २६ आर्या छन्दों से किया गया है जिनमें सर्वप्रथम परमात्मा, ताण्डवनृत्य में प्रसक्त शिव, गौरी, गणेश, लक्ष्मी एवं सरस्वती इन विविध देवताओं की वन्दना की गई है। तदनन्तर आदिकवि वाल्मीकि तथा 'भारत' इस ग्रन्थ के निर्माता पाराशर मुनि वेदव्यास को प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात् महाकवि कालिदास की प्रशस्ति श्लेष के चमत्कार के माध्यम से इस निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत की गई है जिसमें कविता तथा काली का श्लेष है-

**नेत्रीकृताग्निमित्रा कुमारसूर्जनितमेघरघुभावा।**
**कवितामिषेण काली वशं गता कालिदासस्य।।**

राजा अग्निमित्र को नायक बनाने वाली तथा 'कुमारसम्भव' 'मेघदूत' और 'रघुवंश' ऐसे काव्यों की जननी कवि की कविता के व्याज से स्वयमेव भगवती काली ही कालिदास के वश में हो गई है। सकलकविमान्य कालिदास की संस्तुति हर ग्रन्थकर्ता, भवभूति के सम्बन्ध में कहता है कि इनके वियोग और मर्यादा को संरक्षण प्रदान करने वाली वाणी के रचनाभेदों के यथार्थत्व का परिमार्जन स्वयं प्रजापति ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।[2] शब्दराशि

---

१. पं. तारादत्त पंत की कुसुम व्याख्यासहित इस ग्रन्थ का पूर्वभाग मात्र पर्वतीय-पुस्तक प्रकाशन-मण्डल २३/५८ दूधविनायक, बनारस से सं. १९९५ में प्रकाशित है

२. द्रष्टव्य : भवभूतेर्विच्छित्तिव्यभिचारमुचो गिरां गुम्फाः।
विधिना दुर्निवारं तेषां खलु भावभूतत्वम्।।
'मन्दारमञ्जरी' प्रस्तावना - श्लोक ९

की शेवधि, गुणोंमात्र से रसों की अभिव्यञ्जना करने वाले एवं महाकवियों को भी आह्लादजनक काव्य वासवदत्ता के रचयिता सुबन्ध की परिशंसना करता है।[1] बाण की संस्तुति करते हुए कवि उल्लेख करता है कि इस भूतल पर बहुत से कवियों ने बाणी की देवी सरस्वती की अपने सरस रचनाओं से उपासना की, पर बाण ने केवल परिशीलनमात्र नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने अपने को सरस्वती के साथ आत्मसात् कर दिया कि वाणी वशीभूत होकर अपने स्त्रीस्वभाव का परित्याग कर पुरुष रूप में बाण का रूप धारण कर लिया।[2] ठीक इसी तरह गोवर्धनाचार्य ने कहा है कि अतिशय चमत्कार प्राप्त करने के लिए "वाणी बाणो बभूवेति"।

'मन्दारमञ्जरी' गद्यकाव्य का एक कथा-ग्रन्थ है। अतः कवि ने "आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्" इस अलंकार शास्त्रीय निर्धारित नियमानुसार पूज्यों को नमस्कार कर दुर्गम आत्मा वाले खल की माया, पिशुनसंसद्, सज्जनों की सत्ता, ब्रह्मा की सृष्टि से विलक्षण अनिर्वचनीय महाकवियों की कविता की संस्तुति एवं उग्रप्रकृति कुकवियों की निन्दा आदि की है।

कथा का प्रारम्भ प्राची दिशा के वर्णन से होता है, जहाँ मगध प्रदेशों में पुष्पपुर अथवा पाटलिपुत्र नामक एक नगर था। वहाँ पल्लव राजा राजशेखर राज्य करता था। उसकी रानी का नाम महादेवी मलयवती था और समस्त शास्त्रीय तथा व्यावहारिक गुणों से सम्पन्न बुद्धिनिधि नाम का प्रधान अमात्य था। राजा का प्रताप अद्वितीय था, परन्तु सन्तान के अभाव से वह बड़ा दुःखी था। एकरात्रि स्वप्न देखता है और उसी के अनुसार पुत्रीयानुष्ठानयज्ञ करवाता है। मलयवती गर्भवती होती है। पुत्र उत्पन्न होता है। पुत्रजननोत्सव, जातकर्मादि षष्ठीमहोत्सव और नामकरण संस्कारादि किए जाते हैं। बालक का नाम चित्रभानु रखा जाता है। कुमार समस्त विद्याओं को ग्रहण करता है तथा सर्वशास्त्रनिपुण प्रधानामात्य बुद्धिनिधि, चित्रभानु को सभी आवश्यकीय शिक्षाओं से अवगत करा देता है। एक समय जब राजा, कुमार के साथ सभामण्डप में बैठा है, उसी समय आकाश से इन्द्र का सारथि मातलि अपने स्वामी के रथ को लेकर पृथ्वीतल पर आता है और राजा इन्द्र के सन्देश को सुनाकर प्रस्थान कर देता है। राजा उदयगिरि, काञ्चनाचल, जम्बूपादप, जम्बूसरित्, अमरावती, गन्धमादनगिरि होते हुए कैलासपर्वत पर पहुँचता है। अपने समस्त परिवार के साथ वहाँ लोहितशैल, वैद्युत अचल, सरयू नदी, शिवगिरि को देखते हुए गृत्समद ऋषि के तपोवन में प्रवेश करता है। वहीं पुरन्दर (इन्द्र) का दर्शन होता है। स्थानीय विकल्प

---

१. यः शब्दराशिशेवधिरवभाति सुवंशलक्षणान्वयतः।
गुणमात्रप्राप्तरसः स सुबन्धुर्बन्धुरनिबन्धः।। वही, श्लोक १०

२. परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरिव वाग्देवी।
बाणेन तु वैजात्यात्कथयति नामैव वाणीति।। श्लोक ११

बिन्दुसरोवर के तट पर चित्रभानु गन्धर्वराज चित्रसेन की पुत्री मदयन्तिका से मिलता है जो अपनी सखी विद्याधरेन्द्र चन्द्रकेतुकन्या मन्दारमंजरी को दिखलाती है। चित्रभानु और मन्दारमंजरी का पारस्परिक अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ने लगता है और पूर्वभाग की कथा का अवसान हो जाता है।

काव्य शब्दतः और अर्थतः परछायारहित होने से ही विलक्षणशोभाधायक होता है। दूसरे काव्यों के इधर-उधर से लाए गए तथा अपने काव्य में विन्यस्त शब्द अर्थ-दारिद्र्य के सूचक हैं और अन्य के सौन्दर्य का अभिवर्धन नहीं कर सकते। ऐसी विश्वेश्वरकी परिनिष्ठित मान्यता थी। जैसा उन्होंने 'मन्दारमन्जरी' की प्रस्तावना में उपन्यस्त किया है :-

**"विशकलितैः परकीयैः पदार्थजातैः स्वकाव्यविन्यस्तैः।**
**याचितकमण्डनैरिव न भवति शोभा विजातीया।।"**

अतः यद्यपि विश्वेश्वर सुबन्धु और बाणभट्ट की कृतियों से विशेष रूप से प्रभावित परिलक्षित होते हैं, तथापि उन्होंने स्पष्ट रूप से उपर्युक्त आर्या छन्द के द्वारा उद्घोषणा कर दी है कि "मेरी 'मन्दारमञ्जरी' समस्त काव्यों से विचित्र होगी। विद्वान् कवियों के अन्तःकरण की काव्यमयी वृत्ति मालिन्य दोष से रहित स्वच्छ रहती है, तभी यथार्थतः आत्मप्रतीति के बोधक चैतन्यसूचक अर्थ का स्फुरण होता है"।[1] इस उपर्युक्त उक्ति से सिद्ध हो जाता है कि 'मन्दारमंजरी' कवि की स्वतन्त्र तथा अन्य कवियों से अप्रभावित एक विलक्षण रचना है। टीकाकार पं. तारादत्तपन्त ने उल्लेख किया है कि "मन्दारमञ्जरी तु अतीव रुचिरा लौकिकशास्त्रीय-व्यवहारवर्णनपरा कादम्बरीतोऽपि विलक्षणा, वासवदत्ताया अपि विचित्रा।" संस्कृत के गद्यकाव्यों में लौकिक पदार्थों के वर्णन-प्राधान्य को देखकर विश्वेश्वर के सन्मुख यह समस्या थी कि दर्शन के कार्यकारणभाव, व्याप्यव्यापकभाव, बाध्यबाधकभाव-प्रमाणप्रामाण्य इत्यादि गंभीर पदार्थों को किस रूप से सुगमता और सरलता से काव्य में निरूपण किया जाय कि दर्शन के अध्ययन से विमुख सुकुमारमति पाठकों को काव्य के माध्यम से इन दार्शनिक पदार्थों का ज्ञान हो सके। विशेषरूप से पद्यकाव्यों की अपेक्षा गद्यकाव्यों के लिए यह बड़ा अपेक्षित विषय है। इन दार्शनिक पदार्थों के ज्ञान के बिना दर्शन के अप्रगल्भ काव्य-पाठक काव्यशास्त्रीय अलंकारों का यथार्थतः आस्वादन से वञ्चित रह जाते हैं। कार्यकारणभाव के ज्ञान के बिना हेत्वलङ्कार, काव्यलिङ्ग और असंगति का, व्याप्यव्यापकभाव के ज्ञान बिना अनुमानादि का, बाध्य-बाधकभावज्ञान के बिना विरोधाभासादि का, सादृश्यज्ञान के बिना उपमा, आहार्यज्ञान के बिना रूपक आदि अलंकारों का वास्तविक आत्मसातीकरण सम्भव नहीं हो सकता। इसी उद्देश्य की पूर्ति को ध्यान में रख कर विश्वेश्वर ने अपनी कथा 'मन्दारमञ्जरी' की संरचना की है। इसीलिए इस ग्रन्थ में सर्वशास्त्रप्रवीण रचयिता ने

१. द्रष्टव्य : काव्यमयी विबुधानामन्तःकरणस्य वृत्तिरमलेयम्। अर्थश्चैतन्यमपि प्रतिफलति यथार्थतो यत्र।।

लौकिक पदार्थों के वर्णनप्रकार से दर्शनशास्त्रीय पदार्थों का प्रतिपादन किया है-"काणादं पाणिनीयञ्च सर्वशास्त्रोपकारकम्"। इसे ही ध्यान में रखकर कवि विश्वेश्वरने प्रथमतः सादृश्यसम्बन्ध का अनुसरण कर कुसुमपुरवर्णनप्रसङ्ग में प्रमाणप्रमेयादि पदार्थों का वर्णन किया है। इसी प्रकार अन्य प्रसङ्गों की संगति से तथा अवसर सङ्गतियों के माध्यम से दार्शनिक तथा लौकिक पदार्थों का वर्णन किया गया है। यह विचारणीय और अनुसन्धेय है।

'मन्दारमञ्जरी' की उल्लेखनीय विशेषता है कि इसकी मूलकथा आदि से अन्य तक प्रवाहित होती चली गई है। उपकथाएँ, मूलकथा में मिलती हैं, पर कथा का प्रवाह उत्तरोत्तर वर्धनशील ही रहता है। 'कादम्बरी' की तुलना में यह इस कथाग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। 'कादम्बरी' से प्रभावित होने पर भी कवि विश्वेश्वर ने सर्वत्र नवीनता के आनयन का एक श्लाघनीय प्रयास किया है। श्लेषनिष्ठ उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक, विरोधाभास, परिसंख्या प्रभृति अलंकारों का प्रयोग पर्याप्त रूप से हुआ है। अलंकारों के बोझ से काव्य को बोझिल बनाने का यत्न परिलक्षित नहीं होता। राजा राजशेखर के शासन-सौभाग्य का वर्णन आमूलचूल परिसंख्या अलंकार के माध्यम से वर्णित है। वर्णन की विपुलता होते हुए भी परिसंख्या का प्रयोग नितान्त दर्शनीय हैः-

"यस्मिन् सर्वोत्तरपुण्यचरितरत्नाकरे शासति महीं गुणच्छेदो मृणालेषु अङ्गप्रचारो गणितागमेषु, वर्णव्यत्ययः सात्त्विकभावेषु, सङ्करोऽलंकारेषु, वैषम्यं छन्दःप्रभेदेषु....... जातिनिराकरणं सौगतसिद्धान्तेषु, ईश्वरद्वेषो मीमांसकेषु,.......करग्रहणं विवाहविधिषु न ब्राह्मणेषु,......अश्लीलभाषणमश्वमेधविधिषु रतप्रयोगेषु च न सद्गोष्ठीषु, द्विजपरीक्षणं लक्षणविचारेषु न दानेषु, श्रुतिलङ्घनं वधूनां कटाक्षेषु न जनेषु समभवन्।"

कवि लघु तथा दीर्घ दोनों प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करते हैं। समासबहुल पदावली यत्र तत्र प्रयुक्त हुई है, पर समस्तपदों की परियोजना श्रमसाधित नहीं प्रतीत होती। संस्कृत गद्य की प्रौढ़ता तथा कमनीयता काव्य को सर्वथा प्रशंसनीय बना देती है। पारस्परिक सम्वादों में भाषा का प्रवाह बड़ा प्राञ्जल है। सन्तान की अनुत्पत्ति तथा पाताललोक में भागकर गये दावनेन्द्र के नाश सम्बन्धिनी चिन्ता से ग्रस्त राजा और मन्त्री बुद्धिनिधि के मन्त्रणाप्रसङ्ग में भाषागत सौन्दर्य दर्शनीय हैः-

"विज्ञातमप्येतदार्यस्य स्मार्यते इह किल कर्मणामविच्छेदेन प्रतायमाने संसारे जीवानां सुखदुःखान्यतरभोगाय तदनुरूपशरीरग्रहः समुल्लसति,.... स तु ममापि प्रायेण सञ्जात एव, यत्तु पित्र्यं तृतीयमृणं तत्पुत्रमात्रपरिहार्यमिति तद् बद्धोऽहं सकलातिशायिनीमपि सम्पदमिमां न बहु मन्ये, सम्पदो हि चलप्रायाः कालक्रमेणाविर्भवन्ति तिरोभवन्ति च, तासां हि सद्भावे सुखविशेषोऽभावे तु न कश्चिदप्यनिष्टलेशः"....इत्यादि।

कुमार चित्रभानु के विद्याओं के ग्रहण करने के उपरान्त महामहिम सर्वज्ञ प्रधानामात्य बुद्धिनिधि का मानव के सहज चाञ्चल्य, स्नेह, राजादेश, स्वामिभक्ति, स्वाधिकार इत्यादि के संबंध में राजकुमार को सत्परामर्श अपने शास्त्र तथा लौकिक व्यवहारगत पाण्डित्य से परिपूर्ण है, वहीं इसके वाक्यविन्यास अत्यन्त लघु तथा सारगर्भित हैं। यह उपदेश 'कादम्बरी' के शुकनासोपदेश की स्मृति को जागृत कर देती है।

'मन्दारमञ्जरी' प्रकृति के वर्णनों से रहित नहीं है। स्थान-स्थान पर चन्द्रोदय, रात्रि, प्रभात, सन्ध्या प्रकृति के विभिन्न अवयवों का वर्णन हुआ, पर कवि ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित किया है। विरह-विदग्धा मदयन्तिका सन्ध्या का वर्णन करती हुई कहती है-''ततः स्वल्पसमयमात्रावस्थायिनी रागबहुला मदीया जीवनसंभावनेवाऽऽविरभवत्सन्ध्या, किञ्चिन्मात्रसंचारिणो मदीयाः प्राणाः इवार्यम्णः किरणा मन्दतामगाहन्त, विरलायमानप्रकाशो मदीयकल्पनाभिनिवेश इव विरराम दिवसः, तत्तदनुपपत्तिप्रतिसन्धानेन प्रियतमलाभसंभाव-नेवोद्गच्छता तमसा तिरोधीयत माहेन्द्री हरित्.....

जनान्तराऽनधिगम्यं द्वीपान्तरमिव ममैव हृदयं प्राविशन्निदाघदाहः, सरसीभूतं च मत्सर्वाङ्गमिव वारि समवाय जाड्यम्।"

'मन्दारमंजरी' कवि विश्वेश्वर की एकमात्र गद्य-काव्यमयी उदात्त तथा प्रौढ़ रचना है। काव्यात्मक प्रख्यात गुणों से विभूषित इस रचना में लोकप्रियता की योग्यता विद्यमान है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि इस कृति के प्रणयन में कवि विश्वेश्वर संस्कृतगद्यम्कवि सम्राट् बाणभट्ट की कादम्बरी से अवश्य प्रभावित हुए हैं, तथापि उन्होंने सर्वत्र नवीनता लाने का एक श्लाघनीय एवं अनुकरणीय प्रयास किया है।

## अम्बिकादत्त व्यास

संस्कृत वाङ्मय में गद्य-संरचना अत्यन्त प्राचीन काल से निरन्तर होती आ रही है। यद्यपि मुस्लिम तथा आंग्ल शासकों की शासनावधि में यह रचना-प्रवाह शिथिल पड़ गया था, तथापि इसकी धारा अवरुद्ध नहीं थी। आधुनिक युग में अनेक प्रतिभासम्पन्न कवि, लेखक आविर्भूत हुए हैं जिनमें पं. अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित हृषीकेश भट्टाचार्य, पण्डिता क्षमाराव प्रभृति का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

पं. अम्बिकादत्त व्यास के पूर्वजों का मूलस्थान जयपुर के 'रावतजी की धूला' नामक ग्राम में था। इनके पूर्वपुरुष आदि गौड़, पराशर गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मण थे। इनके वृद्धप्रपितामह भीड़ा वंशावतंस श्रीगोविन्दराज जी, राजस्थान के मानसिंह के द्वितीय पुत्र दुर्जनसिंह के वंश में उत्पन्न दलेल सिंह के राजपण्डित थे। पं. गोविन्दराम जी के प्रपौत्र पं. राजाराम जी तीर्थयात्रा-प्रसङ्ग से काशी आए थे और काशीवासियों के स्नेहपूर्ण आग्रह-वश मानमन्दिर मुहल्ले में स्थायी रूप से बस गए। पं. राजाराम जी के ज्येष्ठपुत्र पं. दुर्गादत्त

संस्कृत और हिन्दी साहित्य के विद्वान् तथा लेखक थे। इनका विवाह जयपुर के सिलावटों के मुहल्ला में सम्पन्न हुआ, जहाँ उनके द्वितीय पुत्र अम्बिकादत्त का जन्म चैत्र शुक्ल अष्टमी सम्वत् १९१५ वि. तदनुसार १८५८ ई. को हुआ। बालक अम्बिकादत्त विलक्षण प्रतिभा के थे। बारह वर्ष की अल्पावस्था से ही कवि-गोष्ठियों में सम्मिलित होकर समस्यापूर्ति में जुटते थे। तत्कालीन हिन्दी साहित्य के युगप्रवर्तक कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक कवि-गोष्ठी में अम्बिकादत्त की समस्यापूर्ति से मुग्ध होकर अपना वरदहस्त प्रदान किया था।

बालक अम्बिकादत्त की शिक्षा-दीक्षा काशी में ही सम्पन्न हुई। उन्होने साहित्यदर्पण तथा काव्यशास्त्र का अध्ययन पं. ताराचरण तर्करत्न से, न्याय-शास्त्र कुञ्जलाल वाजपेयी और कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य से, सांख्य-दर्शन राममिश्र शास्त्री से और आयुर्वेदशास्त्र तथा बंगला भाषा की शिक्षा विश्वनाथ कविराज से ग्रहण की थी। १३ वर्ष की अल्पायु में ही सं. १९२८ में उनका विवाह हो गया। जब व्यासजी १६ वर्ष के थे तभी इनकी माता का और जब ये २२ वर्ष की यौवनावस्था में पहुँचे, उसी समय इनके पिता पं. दुर्गादत्त का स्वर्गवास हो गया। ज्येष्ठ भ्राता इनके अकारण द्वेषी थे। लघुभ्राता के निधन से सं. १९४२ से ही समस्त पारिवारिक गृहस्थी के सञ्चालन का बोझ इन पर आ गया, लेकिन ऐसी विषम परिस्थिति में भी विलक्षण प्रतिभासम्पन्न व्यास जी ने विविध ग्रन्थों की रचना की। यह प्रभुप्रदत्त प्रतिभा का ही फल था। कविता लिखने में इनकी अद्वितीय गति थी। 'द्रव्यस्तोत्र' का प्रणयन उन्होनें एक रात्रि में ही कर दिया था। एक घड़ी में शत श्लोक बनाने की क्षमता के कारण  व्यास जी को 'घटिकाशतक' की उपाधि मिली थी। इन्हें लोग 'शतावधान' भी कहते थे। व्यासजी का समग्र जीवन संस्कृत भाषा तथा सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित था। विहार के मधुबनी में अपने अध्यापन के समय ही 'धर्म-सभा', 'सुनीतिसंचारिणी सभा' ऐसी संस्थाओं की स्थापना इन्होंने की और पटना में 'विहारसंस्कृतसंजीवन' को पुनर्जीवित करने में व्यासजी का योगदान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। साहित्य के अतिरिक्त व्यासजी न्याय, वेदान्त-दर्शन-व्याकरण-शास्त्र के भी आधिकारिक विद्वान् थे। हिन्दी और संस्कृत दोनों में उन्होंने ग्रन्थों की रचना की थी। पाणिनि की सूत्र-पद्धति पर व्यास जी 'आर्यभाषासूत्राधार' नामक हिन्दी व्याकरण लिखना प्रारम्भ किया था, पर अपूर्ण रह गया। अप्रतिम प्रतिभाशाली व्यासजी ने लगभग छोटी-बड़ी ८० (अस्सी) रचनाएँ कीं, जिनमें 'शिवराजविजय' (उपन्यास), 'सामवत्तम्' (नाटक), 'गुप्ता-शुद्धि-प्रदर्शन', अबोधनिवारणम्' एवं विहारी-विहार' (हिन्दी काव्य) प्रमुख हैं। बड़े दुःख का विषय है कि ऐसा प्रतिभावान् व्यक्ति दीर्घायु नहीं हो सका। बयालीस वर्ष की अवस्था में जब ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज पटना में प्रोफेसर थे, तभी सोमवार मार्गशीर्ष त्रयोदशी सं. १९५७ तदनुसार १९०० ई. में इनका निधन हो गया।

**शिवराजविजय**[1]-पं. अम्बिकादत्त व्यास का संस्कृत गद्य में निबद्ध यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस ग्रन्थ का प्रणयन उन्होंने सं. १९४५ में प्रारम्भ कर सं. १९५० में पूरा कर दिया था। इसका कथानक ऐतिहासिक है, किन्तु अपनी प्रतिभा और कल्पना से कवि ने इसे उच्च कोटि का साहित्यिक ग्रन्थ बनाने का स्पृहणीय सफल प्रयास किया है। इस ग्रन्थ की कथावस्तु की संघटना की प्रेरणा व्यास जी ने प्राच्य और पाश्चात्त्य शिल्प के समन्वय से ग्रहण की है। इसमें कथानक की दो स्वतन्त्र धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं-एक के नायक महाराष्ट्राधीश्वर वीर शिवाजी हैं और दूसरी का नायक रघुवीर सिंह। दोनों धाराएँ स्वतन्त्र नहीं हैं, प्रत्युत परस्प अन्योन्याश्रित तथा एक दूसरे के पूरक हैं। कथानक तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निःश्वास हैं। 'शिवराजविजय' की संरचना पाञ्चाली रीति के माध्यम से की गई है। व्यासजी ने अवसर के अनुकूल दीर्घ समासबहुला पदावली तथा सरललघु पदावली दोनों का प्रयोग किया है। इनकी समासरहित सुन्दर पदावलियाँ अत्यन्त हृदयावर्जक हैं:-

"बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चासीत्।"

व्यासजी विद्वान् थे अतः भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था और उनमें भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता विद्यमान थी। यद्यपि व्यासजी बाण की कृतियों से विशेषरूप से प्रभावित हैं, तथापि उन्होंने अपने काव्यग्रन्थ को अलंकारों के अनावश्यक बोझ से बोझिल करने का प्रयत्न नहीं किया है। इनकी अलंकार योजना बड़ी अनुकूल तथा औचित्यपूर्ण है। अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा, दीपक, श्लेष, यथासंख्य आदि सभी अलंकारों की योजनाएँ इन्होंने की हैं। विरोधाभास के प्रयोग में ये बाण का ही अनुकरण करते प्रतीत होते हैं। शिवाजी के वर्णन में विरोधाभास की शोभा दर्शनीय है:-

"खर्वामप्यखर्वपरिक्रमाम् श्यामामपि यशः समूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम् कुशासनश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, पठनपाठनादि परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिपुणताम्, स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, ध्वसंकाण्डव्यसनिनीमपि धर्मधौरेयीम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम्, शोभिताविग्रहामपि दृढ़सन्धिबन्धाम्, कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्।"

'शिवराजविजय' का प्रधान रस वीर है तथा अन्य सभी शास्त्रीय रसों का समावेश अङ्गी के उपकारी के रूप में हुआ है। शिवाजी के शौर्य का अद्भुत वर्णन गौर सिंह ने अफजल खाँ से किया है। व्यासजी ने शृंगार का वर्णन शिष्ट, मर्यादित एवं सात्त्विक रूप से किया है।

---

१. प्रकाशक पं. कृष्णकुमार व्यास, मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित, पुस्तकालय वाराणसी, १९६९ ई.

संस्कृत कवियों में प्रकृति-वर्णन की परम्परा रही है। कवि की काव्यगत सफलता का मापदण्ड प्रकृति-चित्रण रहा है। अतः व्यासजी ने सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त एवं रात्रि के मनोरम पक्ष का वर्णन कर अपनी अत्यन्त कुशलता का परिचय दिया है। प्रकृति के भीषण रूप के वर्णन में व्यास जी उतने प्रवीण नहीं हैं।

'शिवराजविजय' के प्रायः सभी पात्र प्रतिनिधि पात्र के रूप में चित्रित किये गये हैं। शिवाजी तथा उनके सहयोगी देश-प्रेम, जाति-प्रेम एवं धर्म-प्रेम से युक्त हैं। वे सभी एक प्रकार की भावना से भावित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। व्यासजी ने 'शिवराजविजय' में नाटकीय तथा प्रभावशाली सम्वादों की योजना प्रस्तुत कर संस्कृत-गद्य-काव्य के लिए एक नूतन दिशा प्रदान की है। संन्यासी (गौरसिंह) तथा द्वारपाल और तानरंग (गौरसिंह) तथा अफ़जल खाँ का संवाद नाटकीय रोचकता को लेकर उल्लेखनीय है।

काव्यशास्त्र के परम्परागत-"काव्यं यशसेऽर्थकृते ...." प्रयोजनों के अतिरिक्त 'शिवराजविजय' के प्रणयन में व्यास जी ने देश, जाति और धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा तथा उससे जनमानस को अनुप्राणित तथा आप्लावित करने के प्रयोजन को उजागर कर संस्कृत कवियों को एक नयी दिशा में प्रेरणा प्रदान की है। इस उपन्यास-ग्रन्थ के द्वारा व्यासजी का यह भी उद्देश्य था कि संस्कृत वाङ्मय में एक नवीन मनोरम तथा चमत्कारपूर्ण मार्गों का आधान किया जाय, जिससे संस्कृत के विद्वान् कवि प्रेरित होकर इस नयी विधा की ओर प्रवृत्त होकर संस्कृत साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि करें। व्यासजी को सफलता मिली और नासिक के मेधाव्रत कविरत्न ने 'शिवराजविजय' के अनुकरण पर 'कुमुदिनी-चन्द्र' नामक उपन्यास की रचना की है। जिस प्रकार व्यासजी ने 'शिवराजविजय' में मुगलकालीन तत्कालीन भारतीय पतनोन्मुख सामाजिक परिस्थितियों को प्रकाश में लाया है, उसी प्रकार बंगलौर की श्रीमती राजम्मा ने 'चन्द्रमौलि' नामक उपन्यास को लिखकर समाज की कुरीतियों का उद्घाटन किया है।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यासजी आमूलचूल सनातन धर्मावलम्बी व्यक्ति थे। अपने काव्य का प्रारम्भ ही उन्होंने धार्मिक चित्रण से किया है, जिसमें भगवान् सूर्य की महिमा तथा स्वरूप का सुन्दर वर्णन है। यवन-शासकों के अत्याचार से प्रपीड़ित हिन्दू समाज विशेषरूप से बलशाली हनुमान् की पूजा में प्रवृत्त है। इस हेतु जगह-जगह हनुमान्-मन्दिर का वर्णन काव्य में उपलब्ध है। इस व्याज से व्यास जी ने सन्देश दिया है कि उत्पीड़न से रक्षा के लिए तथा प्रतिरोध हेतु बलबुद्धि के देवता हनुमान् मात्र ही आराध्य देव हैं।

'शिवराजविजय' की संरचना में व्यासजी अपने पूर्ववर्ती संस्कृत गद्य-साहित्य के मूर्धन्य निर्माताओं सुबन्धु, बाण और दण्डी की कृतियों तथा शैलियों से प्रभावित हैं। व्यास-

जी एक जागरूक साहित्यकार थे इसी से अपनी युगीन आधुनिकता की भी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। अतः अपनी पूर्ववर्ती संस्कृत गद्य-परम्परा का अनुकरण कर उन्होंने अपने 'शिवराजविजय' को आधुनिक औपन्यासिक तत्त्वों से सजाकर एक सर्वथा नूतन विधा के रूप में प्रस्तुत किया। वस्तुतः 'शिवराजविजय' महाकवि बाण और दण्डी के द्वारा स्थापित काव्यात्मक मापदण्डों तथा आधुनिक मापदण्डों का एक मञ्जुल सम्मिश्रित रूप कहा जा सकता है। 'शिवराजविजय' बाण की काव्यशैली से विशेष रूप से प्रभावित है। इसी से आधुनिक संस्कृत साहित्य के समीक्षकों ने व्यासजी को अभिनव बाण "व्यासस्त्वभिनवो बाणः" तक कह दिया है। यह सत्य है कि पं. अम्बिकादत्त व्यासजी अलंकृत संस्कृत गद्य-काव्य परम्परा में महाकवि बाण के सच्चे उत्तराधिकारी माने जायें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

## संस्कृत गद्य-काव्य की विशेषताएँ

संस्कृत गद्य-काव्यों के कथानक का मूल प्रायः लोक-कथाओं से लिया गया है। लोक-कथाओं की भाँति कथा में उपकथा का सन्निवेश करने का प्रचलन भी गद्य-काव्यों में दीख पड़ता है। किन्तु गद्य-काव्यों की व्यञ्जना-प्रणाली लोक-कथाओं से सर्वथा भिन्न है। इनकी शैली बहुत कुछ पद्य-काव्यों से प्रभावित हुई है। शिष्ट तथा सम्भ्रान्त वर्ग के लिए लिखे जाने के कारण इन गद्य-काव्यों में उत्कृष्ट एवं अलंकृत भाषा का प्रयोग हुआ ही है, साथ ही वर्णन-शैली का भी अत्यधिक परिष्कार हुआ है। दीर्घकाय समास, अनुप्रास, श्लेष, यमक, विरोधाभास, परिसंख्या इत्यादि अलंकारों तथा सूक्ष्म पौराणिक संकेतों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। प्रकृति का विस्तृत चित्रण तथा नायक-नायिका की शारीरिक और मानसिक दशाओं का अतिरंजित वर्णन भी हुआ है। शृंगाररस ही इन गद्य-काव्यों का प्रधान रस है। लोक-कथाओं के सरल और प्रवाहयुक्त आख्यानों पर कल्पना और पाण्डित्य का गहरा रंग चढ़ाया गया है। कथा-भाग गौण हो गया है और अलंकृत वर्णन-शैली ही प्रधान हो गई है। गद्य-काव्यों के व्यापक प्रभाव के कारण संस्कृत में व्यावहारिक गद्य-शैली का विकास बहुत कम दीख पड़ता है।

संस्कृत के गद्य-काव्य इस धारणा के पोषक हैं कि कविता में छन्द अनिवार्य तत्त्व नहीं हैं; छन्दोबद्धता उसका केवल एक बाह्य परिच्छद है। गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से कविता की संरचना हो सकती है। यही कारण है कि संस्कृत गद्य-काव्य सहृदयों के हृदय में वास्तविक काव्यानन्द का संचार करते हैं। यदि भाषा-सौष्ठव, वर्णन-नैपुण्य, कल्पना-वैचित्र्य, रसास्वाद, पदलालित्य, श्लेष-चातुर्य्य और अलंकार-वैभव इन समस्त काव्यात्मक गुणों का एकत्र अवलोकन करना है, तो संस्कृत के गद्य-काव्यों का अनुशीलन अपेक्षित है। ऐसी अलंकृत, उदात्त एवं परिष्कृत गद्य-शैली का विकास स्यात् ही किसी अन्य भाषा के साहित्य में हुआ है।

# चम्पू-काव्य

गद्य और पद्य के विशिष्ट संमिश्रण से निर्मित काव्य को चम्पू कहते हैं। गद्य-काव्य अपने अर्थगौरव और विन्यास शैली से महिमा मण्डित होता है तथा पद्यकाव्य सुललित राग-लय के साथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादन से गौरवशाली बनता है। इन दोनों के एकत्र संमिश्रण से चम्पू-काव्य अधिक चमत्कारी होता है। जैसे मनोहर वाद्य के साथ सुमधुरगान अधिक आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही अर्थ गौरवाश्रित गद्य रागलयाश्रित पद्य के साथ मिलकर अपूर्व काव्य-सौन्दर्य को प्रकट करता है।

चम्पू की अलंकारशास्त्रीय परिभाषाओं के विवेचन से पूर्व काव्य के प्रमुख भेदों का उल्लेख करना आवश्यक है।

काव्य के दो भेद हैं-श्रव्य एवं दृश्य।[1] सरस्वतीकण्ठाभरणकार भोजने श्रव्य एवं दृश्यकाव्य का अन्तर बतलाते हुए लिखा है कि दृश्यकाव्य के समान श्रव्यकाव्य का अभिनय नहीं होता है। वह सुना जाता है, देखा नहीं जाता। उससे कानों को सुख मिलता है, आँखों को नहीं।[2] श्रव्यकाव्य के तीन भेद हैं-गद्यकाव्य, पद्यकाव्य एवं मिश्रकाव्य।[3] गद्य छन्दोहीन होता है परन्तु पद्य छन्दोमय। गद्य में अक्षरों एवं पदों का कोई निश्चित मान नहीं होता है जबकि पद्य में अक्षरों एवं पदों का निश्चित मान होता है। गद्य के किसी पद में भी छन्द का आंशिक रूप दृष्टिगोचर हो सकता है किन्तु उसे पद्य नहीं माना जा सकता है, क्योंकि पद्य छन्दोमय चार चरणों में पूर्णता को प्राप्त करता है। मिश्रकाव्य गद्य-पद्य की मिश्रित शैली में निबद्ध होता है[4]। गद्य एवं पद्यों का मिश्रण रूपकों में भी मिलता है किन्तु वे दृश्काव्य की श्रेणी में आते हैं। मिश्रकाव्य में गद्यकाव्य का अर्थगौरव एवं पद्यकाव्य की रागमयता का एकत्र समावेश रहता है। अग्निपुराण में दो प्रकार के मिश्रकाव्यों का

---

१. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद् रूपारोपात्तु रूपकम्।।
- **साहित्यदर्पण**-६/१, **नाट्यशास्त्र**-३२/३८५

२. श्रव्यं तत् काव्यमाहुः यन्नेक्ष्यते नाभिनीयते।
श्रोत्रयोरेव सुखदं भवेत् तदपि षड्विधम्।।
- **सरस्वतीकण्ठाभरण** २/१४०

३. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।
दण्डी-**काव्यादर्श**- १/११
गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यं यत् सा गतिः स्मृता।
- **सरस्वतीकाण्ठाभरण**-२/१८
गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम्।
- **अग्निपुराण**-३३७/८

४. वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम्-**साहित्यदर्पण**-६/३३०

उल्लेख किया गया है-ख्यात एवं प्रकीर्ण।[1] ख्यात मिश्रकाव्य प्रबन्धात्मक होता है, जैसे चम्पू। प्रकीर्ण मिश्रकाव्य के अधोलिखित भेद मिलते हैं:- करम्भक, विरुद, घोषणा (जयघोषणा), आज्ञापत्र (दानपत्र) आदि।

(क) **करम्भक**:-विविध भाषाओं में रचित प्रशस्ति को करम्भक कहते हैं, जैसे कविराज विश्वनाथप्रणीत प्रशस्तिरत्नावली।[2]

(ख) **विरुद**: गद्य-पद्य की मिश्रशैली में प्रणीत राजस्तुति को विरुद कहते हैं,[3] जैसे रघुदेव मिश्र के द्वारा विरचित विरुदावली तथा दिगम्बर ठक्कुर द्वारा प्रणीत विरुदावली।

(ग) **घोषणा या जयघोषणा**:-सुमतीन्द्रजयघोषणा में शाहजी की जयघोषणा प्रस्तुत की गई हैं।[4]

(घ) **आज्ञापत्र या दानपत्र**:-शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों में आज्ञापत्र एवं दानपत्र मिलते हैं जिनकी भाषा गद्यपद्यमयी रहती है।[5]

चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगणीय गत्यर्थक चपि धातु से उ प्रत्यय लगाकर होती है:-चम्पयति चम्पति इति वा चम्पूः। हरिदासभट्टाचार्य के अनुसार-"चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मितीकृत्य प्रसादयति इति चम्पूः।"

वस्तुतः चमत्कारप्रदर्शन की प्रवृत्ति चम्पूकाव्य में सर्वाधिक रहती है। दण्डी के काव्यादर्श में सर्वप्रथम चम्पू का उल्लेख मिलता है।

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते।[6] इस परिभाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि सप्तम शताब्दी में चम्पू का अस्तित्व अवश्य था। हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में चम्पू की परिभाषा करते हुए लिखा है :-

गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पूः[7]। इसकी पुष्टि वाग्भट ने भी अपने काव्यानुशासन में की है।[8]

रामायणचम्पू के रचयिता भोजने चम्पूकाव्य में गद्यपद्य की मिश्रित शैली से मिलने वाले आनन्द की तुलना वाद्य एवं गीत के सम्मिश्रण से उत्पन्न माधुर्य से की है:-

---

१. देखें ३३७/३८
२. करम्भकं तु विविधाभिः भाषाभिर्विनिर्मितम्। -साहित्यदर्पण ६/३३७
३. गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते-वही
४. देखें वी.पी. एस्. शास्त्री के द्वारा सम्पादित सरस्वती महल लाइब्रेरी तंजौर कैटलोग-८/४२३७
५. देखें चालुक्य बादशाह विनयादित्य का दानपत्र **जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च**, मद्रास १/१७१
६. देखें १/३/उत्तरार्ध।
७. देखें ८/९
८. देखें प्रथम अध्याय।

गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति र्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया।।[1]

कविराज विश्वनाथ ने उदाहरणस्वरूप दशराजचरित नामक चम्पूकाव्य का उल्लेख करते हुए चम्पूकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की है :-

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।[2] एक अज्ञातकर्तृक परिभाषा का उल्लेख डा. सूर्यकान्त ने नृसिंहचम्पू की भूमिका में किया है, वह इस प्रकार है-

गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
उक्तिप्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता।।

किन्तु यह परिभाषा भी समीचीन नहीं है। कारण, गद्यपद्यमयी रचनाएँ तो अनेक हैं जो चम्पू नहीं हैं, जैसे ऐतरेयब्राह्मण, कठोपनिषद्, जातकमाला, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि। साङ्कता विशाल चम्पूसाहित्य में केवल दो चम्पूकाव्यों में मिलती है-नलचम्पू एवं गङ्गावतरणचम्पू। सोच्छ्वासता पारिजातहरणचम्पू, नलचम्पू, कुमारभार्गवीयचम्पू, नृसिंहचम्पू, गङ्गावतरणचम्पू, वीरभद्रचम्पू आदि में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कुछ चम्पू-काव्य ऐसे हैं जिनमें अध्याय-विभाजन है ही नहीं यथा बालकविकृष्णदत्तरचित जानराजचम्पू। शेष चम्पूकाव्यों में कुछ स्तबकों में विभक्त हैं तो कुछ आश्वासों में, कुछ उल्लासों में तो कुछ काण्डों में, कुछ तरङ्गों में, कुछ कल्लोलों में तो कुछ मनोरथों में, कुछ बिन्दुओं में तो कुछ परिच्छेदों में। जहाँ तक उक्तिप्रत्युक्ति के अभाव का प्रश्न है विश्वगुणादर्शचम्पू, वीरभद्रविजयचम्पू, विद्वन्मोदतरङ्गिणी आदि उक्ति-प्रत्युक्तिसम्पन्न हैं। जहाँ तक विष्कम्भकशून्यता का प्रश्न है चम्पू के दृश्यकाव्य नहीं होने के कारण विष्कम्भक की सत्ता की सम्भावना ही नहीं है।

नलचम्पू की भूमिका में डा. कैलासपति त्रिपाठी ने अधोलिखित परिभाषा का उल्लेख किया है: जो डा. छविनाथ त्रिपाठी के चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन शोधप्रबन्ध के ४६ वें पृ. से उद्धृत है। गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्। सालङ्कृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्।। इस प्रकार गद्यपद्यमयता, श्रव्यता, प्रबन्धकाव्यत्व, वर्णनाधिक्य, सालङ्कारता, रसमयता आदि चम्पूकाव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य मिश्रशैली की रचनाओं से पृथक् करती हैं।

चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन शीर्षक गवेषणात्मक ग्रन्थ के प्रणेता डा. छविनाथ त्रिपाठी के अनुसार:-गद्यपद्यमिश्रित काव्य चम्पूकाव्य कहलाता है।

---

१. चम्पूरामायण-बालकाण्ड-श्लोक सङ्ख्या-३

२. साहित्यदर्पण-६/३३६

चम्पूकाव्य में गद्यपद्य की मात्रा निश्चित नहीं है। गद्य और पद्य वर्णन के किसी विशेष अङ्ग के लिए सुरक्षित न रहकर समान रूप से व्यवहृत हुए हैं। चम्पूकाव्य में वर्ण्यविषय का क्षेत्र व्यापक है। इसके मुख्य स्रोत पुराण रहे हैं। चम्पूकाव्य का अङ्गीरस कोई भी हो सकता है।[1]

काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा चम्पू की कुछ अपनी विलक्षणता है जिसके कारण यह सहृदयग्राही होता है। गद्यपद्यमिश्रणरूप प्रबन्धात्मक चम्पूकाव्य में सम्मिश्रणजन्य चमत्कार केवल गद्य अथवा पद्य में नहीं प्राप्त होता। गद्यकाव्य के अर्थगौरव एवं पद्य काव्य की सरसता का इसमें एकत्र समावेश रहता है। इसीलिए चम्पूकारों ने चम्पूकाव्य के अध्ययन से प्राप्त आनन्द की विलक्षणता के प्रसङ्ग में कहा है कि वह आनन्द किशोरी कन्या,[2] वाद्ययुक्त सङ्गीत[3], माध्वीक एवं मृद्वीक[4] तथा सुधा और माध्वीक[5] के सम्यक् संयोग के प्राप्त आनन्द के समान है। इसकी रमणीयता पद्मरागमणियुक्त मुक्तामाला[6] अथवा कोमल-किसलय कलित-तुलसी के हार के समान[7] आकर्षक होता है। चम्पूविहार रसिकजनों के लिए जलविहार के सदृश[8] होता है।

गद्यपद्यमिश्रण की परम्परा तो अतिप्राचीन है। वैदिक वाङ्मय में कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय, कठ एवं मैत्रायणी तीनों संहिताओं में यह पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान में तथा उपनिषदों में कठ, केन श्वेताश्वतर, प्रश्न एवं मुण्डक में गद्य पद्य की मिश्रित शैली है। पालिजातकों में भी मिश्रशैली ही पाई जाती है। अवदानशतक एवं जातकमाला में भी गद्यपद्य का मिश्रण पाया जाता है। पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-वेतालपञ्चविंशतिका-सिंहासनद्वात्रिंशिकादि नीतिपरक उपदेशप्रद कथाएँ भी गद्यपद्य की मिश्रित शैली में ही लिखी गई हैं। पुराणों में विष्णुपुराण एवं भागवतपुराणों में गद्य एवं पद्य का मिश्रण मिलता है। दृश्यकाव्यों में अर्थात् रूपकों एवं उपरूपकों में पद्य एवं गद्य दोनों मिलते हैं। ताम्रपत्रों, शिलालेखों में भी गद्यपद्य मिश्रित शैली पाई जाती है। अब प्रश्न उठता है कि पञ्चतन्त्र, हितोपदेश आदि में गद्य एवं पद्य का मिश्रण तो है ही तथापि उसे चम्पूकाव्य की श्रेणी में क्यों नहीं रखा जाता है ? प्रबन्धात्मकता चम्पूकाव्य की रीढ़ है, जो उपरिलिखित मिश्रशैली की रचनाओं में नहीं पाई जाती है। नीतिकथाओं में

---

१. पृ. ३८
२. 'द्राक्बाल्यतारुण्यवतीव कन्या।। -**जीवन्धरचम्पू** १/६
३. 'हृदया हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।।' -**चम्पूरामायण**-बालकाण्ड-३
४. सङ्गः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीकमृद्वीकयोः।। -**विश्वगुणादर्श**-१/४
५. सुधामाध्वीकयोर्योगवत्-**कुमारसम्भवचम्पू**-१/६
६. पार्श्वाभिव्यक्तमुक्ताफल...पद्मरागोज्ज्वला स्रग्-**तत्त्वगुणादर्श**-१/४
७. तुलसी प्रबालविचकिलकलिता मालेवः-**बालभागवत**।
८. किमु सुतनु नीरविहारो नहि नहि चम्पूविहारोऽयम्।। -**गोपालचम्पू**-अन्तिम श्लोक

नीतिसम्बन्धी श्लोक रहते हैं, जिनकी विवरणात्मक कथा गद्य में लिखी गई होती है। सभी कथाएँ अपने आप में पूर्ण एवं स्वतन्त्र रहती हैं। चम्पूकाव्य में कथावस्तु में परस्पर सम्बद्धता रहती है और उसमें मनोभावात्मक विषयों के वर्णन पद्यों में किये जाते हैं और चरितनायक के वर्णनात्मक विषयों के वर्णन गद्यखण्डों में किये जाते हैं। चम्पू में पद्यांशों एवं गद्यांशों की मात्रा के प्रसङ्ग में कोई सर्वसम्मत मापदण्ड नहीं है। भिन्न२ चम्पूकाव्यों में इनकी पारस्परिक मात्रा में भिन्नता पाई जाती है। इनके आकार में भी भिन्नता पाई जाती है। नारायण एवं राम वर्मा के चम्पू केवल एक ही परिच्छेद के हैं, जब कि आनन्दवृन्दावन-चम्पू २२ स्तबकों का है। कथावस्तु कहीं एक घटनाश्रित होती है तो कहीं बहुघटनायुक्त। मुख्य एवं प्रासङ्गिक कथाओं के अतिरिक्त अवान्तर कथाओं का भी समावेश रहता है। प्रबन्धात्मकता होने के कारण चम्पूकाव्य में कथावस्तु का सन्निवेश अत्यावश्यक है। हाँ, कुछ चम्पूकाव्यों में कथावस्तु का या तो सर्वथा अभाव रहता है या कथावस्तु बहुत ही क्षीण रहती है। वर्ण्यविषय की कोई निश्चित सीमा नहीं है। चम्पूकाव्य के मुख्य स्रोत रामायण, महाभारत एवं पुराण हैं। गद्य-पद्य की एकाङ्गिता नहीं रहती है; दोनों से अधिक रमणीय होता है चम्पूकाव्य। अङ्गीरस वीर, श्रृङ्गार या शान्त कोई भी रहता है अन्य रस अङ्ग के रूप में रहते हैं। कीथ के अनुसार चम्पूकाव्य में पद्य-प्रयोग का उद्देश्य कथा के संक्षिप्तीकरण के लिए अथवा किसी विशेष वर्ण्य अंश की प्रभाववृद्धि के लिए या किसी महत्त्वपूर्ण भाव या विचार को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए हुआ है।[1] परन्तु, डॉ. दासगुप्ता के अनुसार, चम्पूकाव्य में पद्य, किसी विशेष उद्देश्य, जैसे किसी मुख्य भाव, कवित्वपूर्ण वर्णन, प्रभावपूर्ण भाषण, नैतिक सङ्केत, आवेगपूर्ण भावाभिव्यक्ति आदि के लिए सुरक्षित नहीं रखे गये हैं। वे सामान्य विवरण और वर्णन के लिये भी वैसे ही प्रयुक्त हुए हैं जैसे गद्य[2]।

उपरिलिखित मुख्य स्रोतों के अतिरिक्त धार्मिक ग्रन्थ, इतिहास, देवताओं के महोत्सव, उनके माहात्म्य, मात्रा, धर्मगुरु, विविधसम्प्रदायों के सन्त, कवियों के आश्रयदाता राजा भी चम्पूकाव्य के स्रोत हैं। देवता, गन्धर्व, राजा, ऋषि, मुनि, विद्वान्, आचार्य, जागीरदार, जमीन्दार, सेठ आदि धीरोदात्त एवं धीरप्रशान्त नायक होते हैं। चम्पूकाव्यों की नायिकाएँ भी राजकन्या से लेकर भिल्ल कन्याओं तक होती हैं। नायक एवं नायिका के अतिरिक्त देव, असुर से लेकर सामान्य कोटि के मनुष्य यहाँ तक कि पशुपक्षी भी, पात्र के रूप में समाविष्ट रहते हैं। पात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

कथावस्तु की दृष्टि से उपलब्ध चम्पू-काव्यों का, अधोनिर्दिष्ट प्रकार से, वर्गीकरण किया गया है :-

---

१. **ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर**-पृ. ३३२

२. **ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर**-(चम्पू) पृ. ४६३-६४

| | | |
|---|---|---|
| १ | रामायण पर आधारित चम्पू | ३२ |
| २ | महाभारत पर आधारित चम्पू | २७ |
| ३ | पुराणों पर आधारित चम्पू | ७५ |
| ४ | जैन ग्रन्थों पर आधारित चम्पू | ०८ |
| ५ | महापुरुषों के जीवनवृत्त पर आधारित चम्पू | ४६ |
| ६ | यात्राप्रबन्धात्मक चम्पू | २० |
| ७ | देवताओं एवं महोत्सवों पर आधारित चम्पू | २३ |
| ८ | दार्शनिक चम्पू | २१ |
| ९ | काल्पनिक चम्पू | ०५ |
| | | २४७ |

इस तालिका में परिगणित चम्पू के अतिरिक्त जिन बीस चम्पूकाव्यों का यहाँ उल्लेख है उनमें मिथिला में लिखे गये दो चम्पूकाव्य हैं। बालकविकृष्णदत्तविरचित जानराज-चम्पू और धर्मदत्त प्रसिद्ध बच्चा झा प्रणीत सुलोचनामाधवचम्पू। जानराजचम्पू में भोंसला वंशीय राजाओं विशेषकर रघूजी महाराज तथा उनके सुपुत्र जानूजी महाराज के जीवन के इतिवृत्तों पर आधारित है अतः उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार यह पाँचवीं कोटि में आता है। सुलोचनामाधवचम्पू की कथा पद्मपुराण के क्रियायोगसार खण्ड के पञ्चम एवं षष्ठ अध्याय में वर्णित है। अतएव यह उपरिलिखित वर्गीकरण के आलोक में तृतीय कोटि में आता है।

सप्तम शताब्दी के आचार्य दण्डी के समय से पूर्व चम्पू का उदय हो चुका था जो आचार्यकृत चम्पू के लक्षण से ही स्पष्ट होता है, किन्तु उस समय के चम्पूकाव्यों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में:-

"दशमशती के आरम्भ में चम्पूकाव्य पाषाण की गोद से निकलकर साहित्य के चिकने धरातल पर आ चमका और तब से १८ शती तक साहित्य के चमत्कारी विधा के रूप में समादृत होता रहा"।[1]

प्रसन्नता का विषय है कि उन्नीसवीं एवं बीसवीं शती में भी अनेक चम्पूकाव्यों की रचनाएँ हुई हैं, जिनमें श्रीनिवासप्रणीत आनन्दरङ्गविजयचम्पू, रामनाथरचित चन्द्रशेखर-चम्पू, अच्युत शर्मा के द्वारा लिखित भागीरथीचम्पू, कृष्णकविविरचित रघुनाथविजयचम्पू, सीतारामसूरिप्रणीत कविमनोरञ्जकचम्पू, शरभोजी द्वितीय विरचित कुमारसम्भवचम्पू, धर्मदत्त प्रसिद्ध बच्चा झा लिखित सुलोचनामाधवचम्पू तथा कविशेखर बदरीनाथ झा प्रणीत गुणेश्वरचरितचम्पू उल्लेखनीय है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में रचित चम्पूकाव्यों में पाँच का उल्लेख किया गया है। उपलब्ध चम्पूकाव्यों का ऐतिहासिक दृष्टि से तथा विषय[2] क्रम से विवरण निम्नलिखित है।

---

१. द्रष्टव्य, **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. ४१४

२. डॉ. छविनाथ त्रिपाठी, **चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन**

१. **रामायणचम्पू**[1] - रामायणचम्पू अथवा चम्पूरामायण के प्रणेता थे धारानरेश परमारवंशी राजा भोज जो दानशीलता के कारण विश्वविख्यात रहे। सरस्वतीकण्ठाभरण, शृङ्गारप्रकाश आदि इनकी प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियाँ हैं। इनका शासनकाल १०१८ ई. से १०६३ ई. माना जाता है।

रामायण की भाँति ही रामायणचम्पू काण्डों में विभक्त है। इसमें छः काण्ड हैं, जिनमें प्रारम्भिक, पाँच बालकाण्ड से सुन्दरकाण्ड तक, भोज की रचना है। युद्धकाण्ड लक्ष्मणसूरि की कृति है। इस तथ्य की पुष्टि लक्ष्मणसूरि ने स्वयं ही की है ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में:-

**साहित्यादिकलावता सनगरग्रामावतंसायित-**
**श्रीगङ्गाधर-धीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना।**
**प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः**
**काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि जीयाच्चिरम्।।**

रामायणचम्पू वाल्मीकिरचित रामायण पर आधारित हैं। भोज ने लिखा है :-

**वाल्मीकिगीतरघुपुङ्गवकीर्तिलेशै-**
**स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्**[2]**।**

चम्पूरामायण के पद्यांश के सौन्दर्य से थोड़ा भी कम नहीं है गद्यांश का सौन्दर्य। गद्य-भाग में शैलीगत विविधता है। कहीं अत्यन्त सरल और छोटे-छोटे वाक्य हैं[3] तो कहीं अनुप्रास की छटा से युक्त समस्त-पदावली वाले बड़े-बड़े वाक्य।[4] कादम्बरी में बाणभट्ट ने श्लेषबन्ध के द्वारा उपमा की सृष्टि कर पाठकों को आह्लादित किया है। उसी प्रकार भोज ने भी चम्पूरामायण में किया है।[5] आरण्यकाण्ड का हेमन्तवर्णन, किष्किन्धाकाण्ड का वर्षा-वर्णन तथा सुन्दरकाण्ड का सन्ध्या-वर्णन वर्णन-सौन्दर्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पूर्ववर्ती कवियों के काव्य-सौन्दर्य को एक ही चम्पू-काव्य में रखने का प्रयास किया है। उन्होंने कहीं कालिदास की शैली का अनुकरण किया है तो कहीं माघ की शैली का, कहीं अलङ्कारों का चमत्कार दिखलाया है तो कहीं रस-परिपाक पर ध्यान केन्द्रित किया है[6]। शब्दालंकारों में रामायणचम्पू में यमक की छटा दर्शनीय है।[7] राम के राज्याभिषेक की घोषणा

---

१. चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९५६, १९७९ के संस्करण का उपयोग।
२. **बालकाण्ड**-श्लोक संख्या ४ (पूर्वार्द्ध)
३. देखें **बालकाण्ड**-पृ. ४६
४. देखें **आरण्यकाण्ड**-पृ. २१६ तथा **बालकाण्ड** पृ. ८७
५. देखें **बालकाण्ड** पृ. ३६
६. **बालकाण्ड** श्लो. सं. ७८, ७९ तथा ८१
७. **बा. का.** श्लो. सं. १६ तथा **अर. का.** श्लोक सं. २ और ४

होने पर प्रजा की आनन्दमग्नता[1], वनगमन के समाचार सुनने पर सीता की मनोदशा[2] तथा बालिवध के बाद तारा का विलाप[3] काव्य की कसौटी पर खरे उतरने वाले स्थल हैं। काव्य की कसौटी पर कवि की अन्तर्वेदना मुखरित हो उठी है।[4]

लक्ष्मणसूरि ने भी लङ्कायुद्ध में पूर्ववर्ती काण्डों में विद्यमान भोज की शैली का सफलतापूर्वक अनुकरण किया है। लङ्काकाण्ड के प्रारम्भ में ही चन्द्रोदय का वर्णन पढ़ने के बाद यह निर्णय नहीं हो पाता है कि वह भोज की ही रचना है या किसी और की।

प्रसादमयी शैली में नवीन भावों का समावेश रामायणचम्पू की विशेषता है। मेघों में बिजली के कौंधने के विषय में मनोरम उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

> अम्भोपिधाने सलिलेन साकमापीतमौर्वाग्निशिखाकलापम्।
> तप्तोदरा वारिधरा वमन्ति विद्युल्लतोन्मेषमिषेण नूनम्[5]।।

वर्षाकाल में दामिनी कौंध रही है। मानो समुद्र से जल लेते समय मेघों ने जिस वडवानल की शिखाराशि को उदरस्थ कर लिया था, वह अग्नि जब उसके उदर में दाह उत्पन्न करने लगी तब वे मेघ उस शिखाराशि को विद्युत्प्रकाश के बहाने उगल रहे हैं।

२. **अमोघराघवचम्पू**[6] -विश्वेश्वर के पुत्र दिवाकर की रचना है अप्रकाशित अमोघराघवचम्पू जो रामायण पर आधारित है। इसकी रचना शाके १२२१ तदनुसार १२९९ ई. में हुई थी। आदिकवि वाल्मीकि की स्तुति करते हुए चम्पूकार ने लिखा है:-

> वाणी वासमवाप यस्य वदनद्वारिप्रतीक्ष्येव हृत्-
> पद्मस्थाम्बुजनामनाभिनिवसल्लोकेशसेवाक्षणम्।
> वल्मीकप्रभवाय कल्मषभिदे तस्मै परस्मै नमो
> रामोदात्तचरित्रवर्णनवचः प्रोद्योगिने योगिने।।

कालिदास की कविता की रमणीयता का वर्णन चम्पूकार ने इस प्रकार किया है:-

> रम्या श्लेषवती प्रसादमधुरा शृङ्गारसङ्गोज्ज्वला
> चाटूक्तैरखिलप्रियैरहरहस्यम्मोहयन्ती मनः।
> लीलान्यस्तपदप्रचाररचना सद्वर्णसंशोभिता
> भाति श्रीमति कालिदासकविता कान्तेव तान्ते रता[7]।

---

१. अयो. का. श्लो. सं. ४
२. वही श्लो. सं. १३
३. किष्किन्धाकाण्ड श्लो. सं. १८
४. अयो. का. श्लो. सं. ६०
५. रामायणचम्पू ४/३१
६. अप्रकाशित, ट्रिएनियल कैटलाग, मद्रास-V-६३६५
७. द्र., हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर, कृष्णमाचारी, पृ. ५१७

३. **काकुत्स्थविजयचम्पू**[1]-आचार्यदिग्विजयचम्पू के प्रणेता वल्लीसहाय कवि की दूसरी रचना है काकुत्स्थविजयचम्पू जो अप्रकाशित है। इस चम्पू का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है। इसमें आठ उल्लासों में राम की कथा वर्णित है।

४. **उत्तररामचरितचम्पू**[2] -इस चम्पू का भी प्रकाशन वेङ्कटाध्वरि की रचना के रूप में ही हुआ है। यह रामायण के उत्तरकाण्ड की कथावस्तु पर आधारित है। यह चम्पूकाव्य अपूर्ण सा प्रतीत होता है, क्योंकि भवभूति के उत्तररामचरित में वर्णित कथावस्तु का इसमें अभाव है। इसमें रामचन्द्र के अनुरोध पर अगस्त्य मुनि के द्वारा रावण, बालि एवं हनुमान् का चरित विशद रूप में चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत चम्पू में रचना की प्रौढ़ता सर्वत्र परिलक्षित होती है। चाहे वह कैलास का शृङ्गारिक वर्णन हो चाहे राम-रावण-युद्ध का वीररस से ओत-प्रोत वर्णन। उक्ति-वैचित्र्य[3] एवं शब्दालङ्कारों की छटा दर्शनीय हैं[4]।

कविता की प्रौढ़ता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

**चकितहरिणशावचञ्चलाक्षी मधुररणन्मणिमेखलाकलापम्।**
**चलवलयमुरोजलोलहारं प्रसभमुमा परिसष्वजे पुरारिम्[5]।।**

५. **चम्पूरामायण युद्धकाण्ड**[6]-लक्षमणसूरि ने युद्धकाण्ड की रचना कर यह सिद्ध कर दिया कि प्रौढि में वे भोज से कम नहीं हैं। सैन्य-वर्णन, प्रकृति-वर्णन एवं युद्धवर्णन की प्रौढता देखकर ऐसा अनुभव होता है कि वह भोज की रचना के समान ही है। अलङ्कारों के प्रयोग में भी वह अन्यून है।

६. **उत्तरचम्पू**[7] -उत्तरचम्पू की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड पर आधारित है। इसके रचयिता भगवन्त कवि थे। ये एकोजि भोसले (१६८७-१७११) के मुख्य अमात्य गङ्गाधर के पुत्र थे। अतः इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्त एवं अट्ठारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है। इसमें मुख्यतः राम के राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है।

---

१. **इण्डिया आफिस कैटलाग** ४०३८/२६२४
२. गोपाल नारायण कम्पनी बम्बई से प्रकाशित।
३. द्र. श्लोक ७८
४. द्र. श्लोक १७४
५. **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. ४२६ में उद्धृत
६. भोजकृत **चम्पूरामायण** के साथ ही प्रकाशित।
७. तञ्जोर **कैटलाग**-VI-४०२८, अप्रकाशित

उत्तरचम्पू की रचना-शैली साधारण कोटि की है।

७. **मारुतिविजयचम्पू**[1]-सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास के रघुनाथ कवि (कुप्पाभट्ट रघुनाथ) द्वारा विरचित सात स्तबकों वाले इस चम्पूकाव्य में वाल्मीकि के रामायण के सुन्दरकाण्ड के आधार पर हनुमान् जी के महनीय कार्यों की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ के आरम्भ में गणेश एवं हनुमान् जी की वन्दना की गई हैं। इस चम्पूकाव्य में ४३६ श्लोक हैं।

८. **रामचन्द्रचम्पू**[2]-रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह (१७२१ से १७४० ई.) की यह रचना रामायण की कथा पर आश्रित है। इसमें आठ परिच्छेद हैं। चम्पूकार ने स्वयं इस चम्पूकाव्य पर रामचन्द्रिका नाम की टीका भी लिखी है।

२. **महाभारत पर आश्रित चम्पू**-९. **नलचम्पू**[3]-यह उपलब्ध चम्पूकाव्यों में प्राचीनतम है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण है। इसके रचयिता त्रिविक्रमभट्ट नेमादित्य[4] अथवा देवादित्य[5] के पुत्र तथा श्रीधर के पौत्र थे।[6] शाण्डिल्यगोत्रीय कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का यह परिवार था।

त्रिविक्रमभट्ट हैदराबाद के मान्यखेटनरेश राष्ट्रकूट वंशीय इन्द्रराज के सभापण्डित थे। बड़ौदा के समीप नौसारी ग्राम में प्राप्त ताम्रलेख के अनुसार इन्द्रराज का राज्याभिषेक २४ फरवरी सन् ९१५ ई. में हुआ। धारवाड़ के धत्तितूर ग्राम में प्राप्त एक अन्य अभिलेख के आधार पर भी राज्याभिषेक का काल ९१५-९१६ ई. ही सिद्ध होता है। धारानरेश भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में नलचम्पू के षष्ठ उच्छ्वास के एक श्लोक को उद्धृत किया है। भोज का कार्यकाल १०१५ ई. से १०५५ ई. है। अतएव दशम शताब्दी त्रिविक्रमभट्ट का कार्यकाल माना जाता है। नलचम्पू की कथावस्तु महाभारत के वनपर्व में वर्णित प्रसिद्ध[7] नल-दमयन्ती-कथा पर आधारित है। यह अपूर्ण है। केवल प्रारम्भिक सात उच्छ्वास ही उपलब्ध हैं। चमत्कारपूर्ण एवं श्लेषमय सूक्तियों से युक्त यह चम्पू अपने

---

१. अप्रकाशित, **तञ्जौर कैटलॉग** नं. ४१०६
२. **आर. एल. मित्र कैटलॉग-वोल्यूम १** नं. ७३
३. निर्णयसागर प्रेस बम्बई से १९३१ तथा चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी से १९३२ में प्रकाशित
४. गुजरात के वगुम्रानामक ग्राम में प्राप्त ९१४ ई. के एक अभिलेख के अनुसार इनके पिता का नाम नेमादित्य था।
५. देखें **नलचम्पू**-प्रथम उच्छ्वास-श्लोक संख्या-१९
६. वहीं
७. नल-दमयन्ती-कथा पर आधारित अनेक रचनाएँ है जिनमें हर्षप्रणीत नैषधीयचरित, लक्ष्मीधररचित नलवर्णन, श्रीनिवासदीक्षितविरचित नैषधानन्द प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त नलविक्रम, विधिविलासिता, दमयन्तीपरिणय आदि ग्रन्थों की भी रचना हुई। नलोपाख्यान पर आधारित नलीय-नाटक (जयजगत्प्रकाशमल्लविरचित) की हस्तलिखित प्रति वीर पुस्तकालय, काठमाण्डू में सुरक्षित है (क्रमांक प्र. ३९७)

काव्यगत वैशिष्ट्य के कारण चम्पू-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। पाण्डित्य प्रधान पद-बन्धों से यह सुसज्जित है। चम्पूकार की मान्यता भी यही है। उन्होंने कहा है:-

**किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता।**
**परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः[१]।**

अर्थात् कवि के ऐसे काव्य से क्या जो श्रोता के हृदय को मुग्ध न कर सके और वह सिर हिला-हिलाकर उसकी प्रशंसा न करे। धनुर्धर के ऐसे बाण से क्या जो शत्रु की छाती में लग कर उसके सिर को हिला न दे।

पद-विन्यास पर चम्पूकार का विशेष ध्यान रहा है और उन्होंने इसमें दक्षता नहीं प्राप्त करने वाले अप्रगल्भ कवियों की निन्दा भी की है। कुकविनिन्दा के क्रम में उन्होंने कहा है-

**अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः।**
**सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव।।[२]**

चम्पूकार को अलङ्कारों में श्लेष सर्वाधिक प्रिय है। सरल शैली में जिस निपुणता के साथ श्लेष की चमत्कारपूर्ण योजना नलचम्पू में की गई है वैसी अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती है।[३] परिसंख्या एवं विरोधाभास के प्रयोग में भी त्रिविक्रमभट्ट निष्णात हैं। उदाहरण के लिए उनकी अधोलिखित पङ्क्ति पर दृष्टिपात किया जा सकता है।:-"अव्ययभावो व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्मादयत्करिकपोलमण्डलेषु न त्यागि-गृहेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु, स्नेहक्षयो रजनीविरामविरमत्प्रदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजन-हृदयेषु, कूटप्रयोगो गीततानविशेषेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरणच्छात्रेषु न स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदश्चित्रकेषु न सत्पुरुषेषु।[४]

सभङ्गश्लेष के उदाहरण तो भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थः-

**"नमिताः फलभारेण न मिताः शालमञ्जरीः।**
**केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनिःस्पृहाः।।[५]**
**नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा।**
**दश्यते न च यत्र स्त्री नवा पीनपयोधरा।।"[६]**

---

१. नलचम्पू-प्रथम उच्छ्वास-श्लोक संख्या ५
२. वहीं-श्लोक संख्या ६
३. देखें वहीं-उच्छ्वास ६, श्लोक संख्या २८ तथा ३२
४. देखें वहीं-उच्छ्वास १, पृष्ठ संख्या ३०
५. देखें वहीं-उच्छ्वास २, श्लोक संख्या २
६. देखें वहीं-उच्छ्वास १, श्लोक संख्या २६

"यस्य च चरणाम्भोजयुगलं विमलीक्रियेत न मज्जनेन
न मज्जनेन। यः शरङ्गारं जनयति नारीणां नारीणाम्,
यः करोत्याश्रितस्य नवं धनं न बन्धनम्, यो
गुणेषु रज्यते न रमणीनां नरभणीनाम्, यस्य च
नमस्याग्रहारेषु श्रूयते नलोपाख्यानं न लोपाख्यानम्।'[1]

चम्पूकार की चित्रणशैली अद्‌भुत सुन्दर है। समुद्र में आधे डूबे हुए अस्त होते सूर्य-बिम्ब के वर्णन में इनका कल्पना-चमत्कार दर्शनीय है :-

रक्तेनाक्तं विनिहितमधोवस्त्रमेतत्कपालं
तारामुद्राः किमु कलयता कालकापालिकेन।
सन्ध्यावध्वाः किमु विलुठिता कौङ्कुमी शुक्तिरेवं
शङ्कां कुर्वञ्जयति जलधावर्धमग्नार्कबिम्बम्।[2]

अर्थात् "क्या कापालिक रुधिर भरे कपाल को नीचे उलट कर तारकमुद्राओं को धारण कर रहा है ? सन्ध्यावधू की कुङ्कुमभरी शुक्ति क्या उलट गई हैं ? समुद्र में अधडूबा सूर्यबिम्ब इन शङ्काओं को उत्पन्न कर रहा है।" नलचम्पू के छठे उच्छ्‌वास के अधोलिखित प्रारम्भिक श्लोक में कवि की निराली कल्पना ने त्रिविक्रम को यामुनत्रिविक्रम की संज्ञा ही दे डाली-

"उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च।।"

अर्थात् "इधर उदयगिरि के शिखर पर प्रभा के कारण प्रकाश चमक रहा है, उधर अन्धकार अस्ताचल की चोटी पर निवास करने के लिए जा रहा है। इस समय आकाश के बीचोबीच कोई अवर्णनीय तेज (प्रकाश एवं अन्धकार के सम्मिश्रण से उत्पन्न तेज) शोभित हो रहा है। जान पड़ता है मानो नीलवर्णा यमुना के जल से सङ्गत पुण्य-सलिला श्वेतनीरा आकाशगंङ्गा का जल हो।"[3]

चम्पूकार की चमत्कारिणी सूक्ति में श्लेष की प्रसन्नता द्रष्टव्य है-

---

१. देखें वहीं-उच्छ्‌वास २, पृष्ठ संख्या १३८-१३६

२. वहीं-उच्छ्‌वास-५ श्लो. सं. ७६

३. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. ४१५

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः।
जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः।[1]

आर्यावर्त का वर्णन है। वहाँ फाल्गुन महीने में वृक्षों की शाखाएँ (वि + पल्लव) पल्लवरहित होती हैं, परन्तु वहाँ के रहने वालों को कभी भी (विपद् + लवाः) छोटी सी विपत्तियाँ भी नहीं होतीं। विपल्लवाः में श्लिष्टार्थ वस्तुतः साफ-सुथरा है।

१०. **अभिनवभारतचम्पू**[2]- महाभारत की कथा को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करता है अभिनव कालिदास का दूसरा अप्रकाशित चम्पूकाव्य-अभिनवभारतचम्पू जिसका उल्लेख डा. त्रिपाठी ने किया है।[3]

११. **भारतचम्पू**[4]- भारतचम्पू का दूसरा नाम चम्पूभारत भी है। किंवदन्ती के अनुसार इसके रचयिता अनन्तभट्ट ग्यारहवीं शताब्दी के भागवतचम्पूकाव्य के प्रणेता अभिनव कालिदास के समसामयिक थे। भारतचम्पू में महाभारत की प्रमुख घटनाएँ सङ्गृहीत हैं। चम्पूरामायण की तरह चम्पूभारत में भी पद्यभाग का आधिक्य है। गद्य-खण्ड उसी की भाँति यहाँ भी छोटे-छोटे हैं। इस चम्पूकाव्य में बारह स्तवक हैं, जिनमें कुल १०४१ श्लोक तथा लगभग २०० से अधिक ही गद्य-खण्ड हैं। महाभारत के कथा-क्रम का ही अनुसरण किया गया है।

यह चम्पू एक वीररसप्रधान काव्य है। प्रकृति-वर्णन एवं वसन्त-वर्णन तो रमणीय हैं ही, युद्धवर्णन में भी चम्पूकार ने पूरी सफलता पायी है। ओजोगुणविशिष्ट शैली में युद्ध-वर्णन बड़ा ही मार्मिक बन पाया है। भारतचम्पू पर सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कार्यरत मानवेद की टीका के आधार पर इतिहासकारों ने इन्हें सोलहवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती माना है।[5] चम्पूभारत पर छः टीकाएँ उपलब्ध हैं।

मध्ययुगीन अतिशयोक्ति के प्रभाव से प्रभावित कवि द्वारा नायिका के कटिप्रदेश का अभाव देखकर हाथ में सुनहली करधनी लेकर ठिठकने वाली सखी का यह वर्णन उर्दू कवियों की शैली का द्योतक है-

सकलमपि वपुर्विभूष्य तन्व्याःसपदि सखी विपुलेक्षणाम्बुजापि।
चिरतरमनवेक्ष्य मध्ययष्टिं करधृतकाञ्चनकाञ्चिरेव तस्थौ"

---

१. नलचम्पू १/२७
२. देखें, लेविस राइस कैटलाग (२४६)
३. देखें, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृ. ११७
४. चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी १९५७
५. कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर पृ. ५११, आचार्य बलदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. ४१६

१२. **राजसूयप्रबन्ध**[1] - नारायण का दूसरा चम्पूकाव्य राजसूयप्रबन्ध युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का विवरण उपस्थित करता है। महाभारत के सभापर्व में इस राजसूय यज्ञ का वर्णन है। यह प्रस्तुत चम्पूकाव्य का आधार है। युधिष्ठिर के द्वारा दिए गए प्रचुर दान का विस्तृत वर्णन इसमें किया गया है।

१३. **द्रौपदीपरिणयचम्पू**[2] - द्रौपदीपरिणयचम्पू के प्रणेता चक्रकवि सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में थे ऐसा माना जाता है, क्योंकि इन्होंने नीलकण्ठ दीक्षित का उल्लेख किया है और नीलकण्ठ का समय है ६३७ ई.। चक्रकवि के पिता थे लोकनाथ एवं माता थी अम्बा। रुक्मिणीपरिणय, जानकीपरिणय, पार्वतीपरिणय एवं चित्ररत्नाकर चक्रकवि की अन्य रचनाएँ हैं।

महाभारत के आदि पर्व की कथावस्तु पर आधारित यह चम्पू पाण्डवों के एकचक्रानगरी में निवास से लेकर द्रौपदी के स्वयंवर, धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य एवं युधिष्ठिर के राज्य करने तक का वर्णन करता है। यह छः आश्वासों में विभक्त है। ग्रन्थारम्भ में आदि कवि वाल्मीकि से लेकर भारवि पर्यन्त कवियों की वन्दना की गई है। चतुर्थ आश्वास में पाँचों पाण्डवों का वर्णन उनकी चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करता है। द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त पञ्चम आश्वास में वर्णित है। आश्वासों के अन्तिम श्लोकों में चम्पूकार ने अपना एवं अपनी रचनाओं का परिचय दिया है।

१४. **भारतचम्पूतिलक**[3] - सत्रहवीं शताब्दी के ही अन्तिम भाग में या अट्ठारहवीं के प्रारम्भ में गङ्गाम्बिका एवं गङ्गाधर के पुत्र लक्ष्मणसूरि ने महाभारत के आधार पर पाण्डवों के जन्म से लेकर युधिष्ठिर के राज्य करने तक की कथा के वर्णन करने वाले भारतचम्पूतिलक नामक चम्पूकाव्य का प्रणयन किया। लक्ष्मणसूरि के पिता गङ्गाधर एवं पितामह दत्तात्रेय ने भी चम्पूसाहित्य को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। लक्ष्मणसूरि ने भोज के चम्पूरामायण के युद्धकाण्ड की रचना उसी शैली में कर उसे भी पूर्ण किया।

भारतचम्पूतिलक चार आश्वासों में विभाजित है। ग्रन्थान्त में कवि ने अपना परिचय देते हुए अपने निवास स्थान शनगर ग्राम का भी उल्लेख किया है।

**३ पुराणों पर आधारित चम्पू**

१५. **मदालसाचम्पू**[4] - त्रिविक्रमभट्ट की दूसरी रचना है मदालसाचम्पू। यह मार्कण्डेय पुराण के अध्याय १८ से २१ तक वर्णित मदालसा एवं कुवलयाश्व के आख्यान पर

---

१. संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता की पत्रिका XVI न. १० में प्रकाशित
२. वाणी विलास प्रेस, श्रीरङ्गम् से प्रकाशित
३. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग**, मद्रास, न. १२३३२
४. सन् १८८२ ई. में जे.बी. मोदक द्वारा सम्पादित होकर पूना से प्रकाशित

आधारित है। यह उपाख्यान कवि, नाटककारों एवं चम्पूकारों की रचनाओं का प्रसिद्ध स्रोत रहा है।[1]

मदालसा के उपाख्यान की प्रमुख घटनाएँ हैं-नायक कुवलयाश्व का चरित्रचित्रण, पातालकेतु का वध, मदालसा का विवाह, मदालसा-वियोग, नागराज के घर पर कुवलयाश्व का जाना और मदालसा एवं कुवलयाश्व का पुनर्मिलन।

१६. **भागवतचम्पू**[2]-भागवतचम्पू कृष्णकथापरक चम्पूकाव्यों में प्राचीनतम है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की कथावस्तु पर रचित इस चम्पूकाव्य के रचयिता हैं अभिनव कालिदास। इन्होंने अपना परिचय ग्रन्थ में नहीं दिया है। कृष्णमाचार्य के अनुसार ये वेल्लालकुल के थे और अनुमानतः इनका समय एकादश शतक माना गया है।[3] इन का नाम अज्ञात है। अभिनव कालिदास इनकी उपाधि है। भागवतचम्पू में छः स्तबक हैं, जो भक्तिपरक नहीं होकर मुख्यतया शृङ्गारपरक हैं। ग्रन्थारम्भ शिव और पार्वती की स्तुति से होता है। अन्तिम स्तबक में राधाकृष्ण के मिलन का पूर्णतया भौतिक पक्ष अत्यधिक शृङ्गारिक पद्यों के द्वारा दर्शाया गया है। अभिनव कालिदास अपने उपजीव्य श्रीमद्भागवत की भक्तिभावना को अपने चम्पूकाव्य में समाविष्ट करने में सर्वथा असफल रहे। उन्होंने उद्दाम शृङ्गारिक संयोगपक्ष के चित्रण में ही अपनी निपुणता दिखलायी है। हाँ, कृष्ण के वियोग में विलखती हुई गोपियों के वर्णन में उन्होंने विप्रलम्भ शृङ्गार का आश्रयण किया है, किन्तु वह स्थल उतना मार्मिक नहीं बन पाया है जितना उचित था।

१७. **रुक्मिणीपरिणयचम्पू**[4]-रुक्मिणीपरिणयचम्पू एक अप्रकाशित चम्पूकाव्य, जिसके रचयिता थे अम्मल, जिनका समय लगभग सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। वेदान्तकल्पतरु, शास्त्रदर्पण एवं पञ्चपादिका-व्याख्या के रचयिता अमलानन्द का चम्पूकार अम्मल के साथ तादात्म्य मानकर कुछ लोग चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इनका काल मानते हैं।

इस चम्पूका आधार है हरिवंशपुराण[5] एवं भागवतपुराण[6] में वर्णित रुक्मिणी के विवाह की कथा जो विष्णुपुराण[1] एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण[2] में भी वर्णित है।

---

१. **मदालसाचम्पू** पर आधारित उपलब्ध रचनाएँ-मदालसा डा. रामकरण शर्मा की काव्यरचना है। मुदित मदालसा नाटक एवं कुवलयाश्वीय नाटक क्रमशः गोकुलनाथ एवं कृष्णदत्त की नाटक कृतियाँ हैं। नेपाल के वीर पुस्तकालय में जगज्-ज्योतिर्मल्लविरचित मुदितकुवलयाश्वनाटक (क्रमाङ्क ३६१) एवं जयजितामित्रमल्लप्रणीत **मदालसाहरण** नाटक (क्रमाङ्क ३५४) हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।

२. गोपाल नारायण कम्पनी कालबादेवी बम्बई से १९२६ ई. में प्रकाशित।

३. **हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर**-पृ. ५०६

४. **मैसूर कैटलॉग**-नं. २७०, अप्रकाशित

५. **विष्णुपर्व**-अध्याय ४७ से ६० तक

६. **दशम स्कन्ध**-अध्याय ५३ से ५४ तक

१८. **आनन्दवृन्दावनचम्पू**[३] -आनन्दवृन्दावनचम्पू एक विशालकाय चम्पूकाव्य है। इसमें २२ स्तबक हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराण के दशम स्कन्ध के आधार पर प्रस्तुत चम्पूकाव्य में कृष्ण के जन्म से प्रारम्भ कर उनकी किशोरावस्था की लीलाओं का चित्रण किया गया है।

इस ग्रन्थ के रचयिता थे श्रीपरमानन्ददास जो कविकर्णपूर के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म बंगाल के नदिया जिले के काञ्चनपल्ली नामक गाँव में सन् १५२४ ई. में हुआ था। इनका पहला नाम था पुरीदास। श्रीचैतन्यमहाप्रभु की अनन्य कृपा से इनका मूकत्व जाता रहा और भक्ति की धारा श्लोकबद्ध होकर मुँह से निकल पड़ी। कर्णपूर नाम चैतन्यमहाप्रभु ने ही इन्हें दिया। चैतन्यचन्द्रोदय, कृष्णाह्निकपद्धति प्रभृति इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

चन्द्रोदयवर्णन में चम्पूकार का उत्प्रेक्षा-विलास दर्शनीय हैः-"**समुदियाय तुहिनकिरणः स च प्रथमं कोपारुण-मुखकमलायाः कमलायाः कपोलपोलककनकताटङ्क इव युवजनहृत्पटरङ्गकुण्डवलय इवानङ्गरञ्जकस्य नभः कुण्डताण्डविता रसमयसमयनिश्चय-वटिका पात्रीव ताम्रमयी सितपरमण्डप इव रश्मिरश्मिवितानितऋतुराजस्य सपल्लवो राजतकुम्भ इव.... मधुरिमजलराशेः सौध इव सौन्दर्यदेवतायाः सैकतवलय इवाकाश-गङ्गायाः....।**"

वंशीरव सुनकर सुध-बुध खोकर दौड़ पड़ने वाली गोपिकाओं का चित्रण देखने योग्य हैः-

> **उत्तरीयमपि चान्तरीयतामन्तरीयमपि चोत्तरीयताम्।**
> **यज्जगाम किमभूत् परस्परं पूजनं तदपि नूनमङ्गयोः।।**

वसन्त ऋतु के अनेकविध पुष्पों से सजी राधा का वर्णन तो देखिए-

> **कचौघे पुन्नागं बकुलमुकुलानि भ्रमरके-**
> **ष्वशोकं सीमन्ते श्रवसि सहकारस्य कलिकाः।**
> **स्तनाग्रे वासन्तीकुसुमदलमालेति कुसुमैः**
> **स्वयं वृन्दा राधां सपदि मुमुदेऽलङ्कृतवती।।**

---

१. देखें V. २६

२. देखें उत्तरार्ध -अध्याय १०५ से १०८ तक

३. बंगलालिपि में वृन्दावन से तथा देवनागरी लिपि में वाराणसी से प्रकाशित।

चम्पूकार ने ग्रन्थ में अपने नृत्य एवं सङ्गीत सम्बन्धी ज्ञान की विशदता का पूर्ण परिचय दिया है। चम्पू का प्रधान रस है शृङ्गार। नायक हैं श्रीकृष्ण और नायिका राधिका। वीर, अद्‌भुत, हास्य आदि रसों का भी स्थान-स्थान पर समावेश हुआ है। माधुर्य एवं प्रसादगुणों का बाहुल्य है।

१९. **गोपालचम्पू**[1] - गोपालचम्पू के प्रणेता जीवराज महाराष्ट्र के भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न कामराज के पौत्र और ब्रजराजकविराज के पुत्र थे। ये महाप्रभुचैतन्य के समसामयिक थे। गोपालचम्पू की कथावस्तु भी आनन्दवृन्दावनचम्पू की भाँति श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित है। ग्रन्थारम्भ में गङ्गा की स्तुति की गई है।

चम्पूकाव्य से मिलने वाले आनन्द की तुलना चम्पूकार ने ग्रन्थान्त में विहार से प्राप्त होने वाले आनन्द से की है:-

**मदयति मनो मदीयं तनुजघनभारतीरसविलासः।**
**किमु सुतनु नीरविहारो नहि नहि चम्पूविहारोऽयम्।।**

२०. **कुमारभार्गवीयचम्पू**[2] -रसमञ्जरी, रसतरङ्गिणी, रसपारिजात, गीतगौरीपति, अलङ्कारतिलक, चित्रचन्द्रिका आदि अनेक ग्रन्थरत्नों के प्रणेता कविराज भानुदत्त मिश्र की रचना है कुमारभार्गवीयचम्पू।

भानुदत्त मिश्र मिथिला के प्रसिद्ध श्रोत्रिय वंश सोदरपुर मूल की सरिसव शाखा में उत्पन्न महामहोपाध्याय गणपति मिश्र के पुत्र थे। गणपति मिश्र गणेश्वर तथा गणनाथ के नाम से भी प्रख्यात थे। इनके द्वारा रचित सुललित पद्यों को इनके पुत्र भानुदत्त ने रस-पारिजात में सुरक्षित रखा है।[3]

भानुदत्त का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी के तृतीय चरण में हुआ था और सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध इनकी साहित्य-सेवा का काल माना जाता है। इन्होंने देवगिरि के द्वितीय निजाम (१५०८-१५५३), विजयनगर के कृष्णदेवराय (१५०९-१५३०), रीवा के वीरभानु (१५२३-१५५५), गढ़मण्डला के सङ्ग्राम सिंह (१४८०-१५३०) तथा सम्राट् शेरशाह (१५४०-१५४५) का आश्रय प्राप्त कर सारस्वत-साधना की। इन आश्रयदाता नरपतियों की प्रशंसा में लिखे गये श्लोक रसपारिजात में संगृहीत हैं।

कुमारभार्गवीयचम्पू बारह उच्छ्‌वासों में विभक्त है। इसमें शिव एवं पार्वती के परिणय तथा कुमार कार्तिकेय के जन्म से लेकर उनके द्वारा किए गए तारकासुरवध तक की कथा

---

१. वृन्दावन से बंगलालिपि में प्रकाशित
२. **कविराज भानुदत्तग्रन्थावली** में संगृहीत, मिथिला संस्कृत विद्यापीठ, दरभङ्गा से १९८८ में प्रकाशित/ लेखक द्वारा सम्पादित।
३. यथा गणपतेः काव्यं काव्यं भानुकवेस्तथा। उभयोः सङ्गतः श्लाघ्यः शर्कराक्षीरयोरिव।। (श्लोक २)

वर्णित है। कथाका मूलस्रोत है शिवपुराण का कुमारखण्ड, स्कन्दपुराण का माहेश्वरखण्ड एवं अन्य पुराणों में आनुषङ्गिक रूप में चर्चित कुमार कार्तिकेय का जीवन-वृत्त।

ग्रन्थ के आरम्भ में भानुदत्त ने वराहावतार भगवान् की महिमा गाते हुए आशीर्वादात्मक मङ्गल का विधान किया है। इसके बाद सज्जन-प्रशंसा एवं दुर्जन-निन्दा की गई है। रोचक यात्रावर्णन के क्रम में काशी एवं प्रयाग का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है।

श्रीविश्वनाथ की अर्चना करने वाले भक्त का चित्रण करते हुए चम्पूकार कहते हैं।

**माल्यति कला सुधांशोरुष्णीषति वीचिरमरवाहिन्याः।**
**हारति फणी हुताशस्तिलकति भाले महेशमर्चयताम्।**[1]

काशी की गङ्गा का वर्णन बड़ा ही चमत्कारपर्णू है :-

"**अथ महापुरुषमिव गम्भीरं, शशिनमिव स्वच्छं, गरलवलयमिव नहिमकररञ्जितं, गोपतरुणमिव प्रबलतरङ्गविद्योतमानप्रमोदं, महराजमिवं प्रबलपराक्रममीनसमुचित-विलासभाजनं, जलधिमिव नारायणसम्भेदसुभगं, देवकीतनयमिव अजं बालरूपं, मन्थनसमयसागरमिव अजगरप्रवेशभीषणं, जगन्नाथक्षेत्रमिव महोच्चकमठमेदुरमुदकमादधानां, सन्ध्यासमयचक्रवाकीमिव मन्दरनिवर्तमानलोचनप्रान्तां कल्पलतामिव बहुविधमर्थमर्पयन्तीं भगवतीभ्रमरतरङ्गवतीं ददर्श**[2]।" कुमार स्वयंवर के पश्चात् कराया है। तत्पश्चात् कुमार कार्तिकेय का जन्म होता है। कार्तिकेय के बाल्य एवं युवावस्था के वर्णन-क्रम में ही राक्षसों के साथ युद्ध एवं राक्षसों के वध की कथा भी कही गई है।

युद्धवर्णन देखने योग्य है:-"**अथाकस्मादेव बहलकलकलविक्षोभितदिक्कालकुसुम (म) रिकुलकलावतीनयनयुगलजलकलापकल्पितजलधिसहस्रप्रपञ्चरोमाञ्चित गण्डमण्डलमाखण्ड-लनगरीमयचपलदृगञ्चलरचितितामरसतोरण मुत्तरलतरवारिविरावितप्रतिनृ (प) तिमनोविनोद-शतमनवरतविपक्षपक्षदैन्यं सैन्यं प्रतिद्वन्द्विप्रतिपक्षं प्रत्यधावत्।**[3])" गद्य एवं पद्य दोनों में अलंकारो का भरपूर प्रयोग हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि प्रसिद्ध अलंकार प्रयुक्त हैं।

२१. **कल्याणवल्लीकल्याण**[4]-लिङ्गपुराण के गौरी-कल्याण पर आधारित यह चम्पू रामानुजदेशिक की रचना है। चम्पूकार रामानुजचम्पू के प्रणेता रामानुजाचार्य के पितृव्य एवं गुरु थे। इसका उल्लेख रामानुजचम्पू के उपसंहार में हुआ है। सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध इनका समय है।

---

१. II-४ पृ. ४००
२. पृ. ४०१
३. देखें पृ. ५१५
४. अप्रकाशित, डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग मद्रास-२१/८२७५

२२. **भागवतचम्पू**[1] - ग्रन्थकारम्भ में विजयनगर के राजा अच्युतराय का वर्णन है, जिनका शासनकाल १५२९ ई. से. १५४२ ई. है। डा. त्रिपाठी के अनुसार भागवतचम्पू के प्रणेता अनुमानतः 'अच्युतरायाम्भुदय' के रचयिता राजनाथ ही हैं। इनका पूरा नाम अय्यलराजु रामभद्र था। इनके पिता का नाम अवकलाचार्य (मद्रासवाले हस्तलेख के अनुसार अरुण गिरिनाथ) था।[2]

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कंसवध तक की घटनाएँ इस चम्पू में वर्णित हैं।

२३. **भागवतचम्पू**[3] - कौशिक गोत्रोत्पन्न सूर्यनारायणाध्वरि के पौत्र एवं अनन्तनारायण के पुत्र थे चिदम्बर, जिन्होंने भागवतचम्पू की रचना की। इसका समय १५८६ ई. निर्णीत हो चुका है। ये विजयनगर के राजा वेङ्कट प्रथम के आश्रित थे। राघवयादवपाण्डवीय, शब्दार्थचिन्तामणि, चिदम्बरविलास आदि इनकी काव्य-रचनाएँ इनके प्रौढ़ पाण्डित्य का परिचय देती हैं।

श्रीमद्भागवत की कथा को आधार मानकर लिखे गए इस चम्पूकाव्य में तीन स्तबक हैं। अपनी काव्यकृति के प्रसङ्ग में अत्यन्त विनीतभाव से वे कहते हैं:-

**काव्येषु सत्स्वपि महत्सु कवीश्वराणां**<br>**प्रायो मितापि भणितिः प्रमुदे मदीया।**<br>**कूलङ्कषेषु भुवने सरितां कुलेषु**<br>**कुल्यापि किं न सरसा कुरुते प्रमोदम्**[4]।।

चम्पू की भाषा सरल एवं प्रसाद गुणसम्पन्न है।

२४. **पारिजातहरणचम्पू**[5] - काशिराज के अनुज महाराजाधिराज नरोत्तम के आदेश से नरसिंहसूरि के पुत्र शेषकृष्ण ने पारिजातहरणचम्पू की रचना की। इसकी कथावस्तु का मूल स्रोत है हरिवंशपुराण के विष्णुपर्व का अध्याय ६४ से ७६, पद्मपुराण-उत्तरखण्ड-अध्याय २७५ तथा विष्णुपुराण-पञ्चमभाग-अध्याय ३० जिसमें यह लोकप्रिय प्रसिद्ध कथा विस्तार से वर्णित है। शेषकृष्ण का समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।

---

१. अप्रकाशित, **तञ्जौर कैटलॉग** VII-४०६९-७०

२. **चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन** पृ. १५०

३. अप्रकाशित **तञ्जौर कैटलॉग** VII-४०६७

४. स्तबक १-श्लोक-६ अप्रकाशित, **तञ्जोर कैटलॉग**-VII-३०८२ तथा **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग** कुप्पुस्वामी VI-२६४०

५. निर्णयसागर बम्बई से १६२६ में **काव्यमाला** में प्रकाशित

कृष्ण नारदमुनि से पारिजातपुष्प उपहार के रूप में प्राप्त करते हैं और रुक्मिणी को भेंट करते हैं। इससे सपत्नी की ईर्ष्या से सत्यभामा जलती हैं और कृष्ण से मानकर बैठती हैं। कृष्ण उन्हें मनाते हैं। सत्यभामा पारिजात-वृक्ष ले आने का हठ कर बैठती हैं। कृष्ण इन्द्र पर आक्रमण कर पारिजात-वृक्ष का अपहरण कर सत्यभामा की इच्छा पूर्ण करते हैं। आरम्भ के चार उच्छ्वास श्रृङ्गार प्रधान हैं केवल अन्तिम पञ्चम उच्छ्वास के युद्धवर्णन में वीर-रस है।

चम्पूकार ने अपने आश्रयदाता महाराजाधिराज नरोत्तम का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो ओजोगुण विशिष्ट समासबहुल गद्यखण्ड में प्रारम्भ में किया ही है। साथ ही प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में उनका गुणगान किया है।

कृष्ण से मान कर बैठी सत्यभामा का शब्दचित्र बड़ा ही हृदयग्राही है।

किञ्चित्कुञ्चितलोचनं विरचितभ्रूभङ्गमभ्युन्नम-
न्मध्यं वेल्लित बाहुवल्लिसरस व्याक्रोशवक्त्राम्बुजम्।
प्रोदञ्चत्कुचमानमत्तनुगलद्वेणीमिलद्भूतलं
सज्या कामधनुर्लतेव हरति व्याजृम्भमाणा मनः।।[1]
कुचगिरिमधिरुह्योत्सर्पिणी भोगिनीव
व्यथयति कबरीयं हारनिर्मोकमुक्ता।
इह बहिरुपयान्त्या नाभिमूलाद् गभीरात्
सरणिरुदयतेऽस्या रोमराजीमिषेण[2]।।

अविरल अश्रुधारा से स्तन-कनक-शम्भु का स्नपन करती हुई सत्यभामा का वर्णन दर्शनीय है। श्रीकृष्ण कहते हैं-

करकिसलयशय्याशायि निःश्वासतापा-
दविरलगलदश्रु त्वन्मुखं मां दुनोति।
द्विजपतिमभिभूयोद्भूतपापानुतापं
कुचशिवमभिषिञ्चत्स्वं किमेतत्पुनीते।।[3]

२५. **आनन्दकन्दचम्पू**[4] - आनन्दकन्दचम्पू समरपुङ्गव की दूसरी चम्पूरचना है। इसमें आठ आश्वास हैं। इसमें शैव सन्तों का चरित्र चित्रित है। आदि से अन्त तक कोई

---

१. उच्छ्वास २-श्लोक १५
२. वहीं श्लोक १५
३. वहीं श्लोक ५६
४. अप्रकाशित, **इण्डिया आफिस कैटलॉग** VII-४०३६/२६०

एक आख्यान नहीं है। सन्तों के जीवनचरित्र का यह एक संग्रह है। इस चम्पूकाव्य के उपसंहार से पता चलता है कि इसकी रचना १६१३ ई. में हुई थी।

२६. **नृसिंहचम्पू**[1] - नृसिंहचम्पू के प्रणेता दैवज्ञ सूर्य का जन्म भारद्वाज कुल में गोदावरी नदी के तट पर वार्था नामक नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम था ज्ञानराज और पितामह का नाम नागनाथ। ये स्वयं अपना परिचय सङ्गीतागमकाव्यनाटकपटु के रूप में देते है। ये दैवज्ञ तो थे ही लीलावती एवं बीजगणित की टीकाएँ इनकी उपलब्ध कृतियों में हैं। लीलावती की टीका की रचना इन्होंने १५४१ ई. में की थी अतः सोलहवीं शताब्दी का मध्यभाग इनका समय माना जाता है।

नृसिंहचम्पू का वर्ण्यविषय है नृसिंहावतार भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु का वध[2]। इसमें पाँच उच्छ्वास हैं। प्रथम में केवल दस पद्य हैं जिनमें विष्णुधाम वैकुण्ठ एवं भगवान् नृसिंह की स्तुति की गई है। द्वितीय में हिरण्यकशिपु द्वारा अपने पुत्र भक्त प्रह्लाद को दी गई अमानुषिक यातनाओं का विवरण है। तृतीय में नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु के वध की कथा चित्रित की गई है। चतुर्थ में नृसिंह की स्तुति है और पञ्चम में असुरसंहारजन्य नृसिंह की प्रसन्नता एवं शान्ति का विवरण है। चम्पूकार ने स्वयं कहा है कि प्रस्तुत चम्पू में सभी रसों का एकत्र समावेश है।

डा. सूर्यकान्त के शब्दों में :-**"चम्पूश्चेयं सर्वैरपि गुणैरहीना अलङ्काररीतिलक्षणैरदीना रसभावपराचीना चेति सर्वं निरवद्यम्।।"**[3]

चम्पूकार की भाषा में लालित्य है। लक्ष्मी का यह वर्णन उनके पदबन्ध का द्योतक है-

**सौन्दर्येण भृशं दृशोर्नरहरेः साफल्यमातन्वती**
**सभ्रूभङ्गमपाङ्गवीक्षणवशादाकर्षयन्ती मनः।**
**स्फूर्जत्कंकणकिंकिणीगणझणत्कारैः कृतार्थे श्रुती**
**कुर्वन्ती शनकैर्जगाम जगतामाश्चर्यदात्री रमा।।**
**(नृसिंहचम्पू ५/३)**

२७. **माधवचम्पू**[4] - माधवचम्पू के प्रणेता भी चिरञ्जीव भट्टाचार्य ही हैं। इसकी कथा काल्पनिक है। माधव अर्थात् कृष्ण का कलावती के साथ परिणय ही प्रस्तुत चम्पूकाव्य का प्रतिपाद्य विषय है। इसमें पाँच उच्छ्वास हैं।

---

१. डा. सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित जालन्धर से प्रकाशित
२. यह कथा महाभारत, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, नरसिंहपुराण, नादरीयपुराण, धर्मपुराण आदि में वर्णित है।
३. भूमिका
४. कलकत्ता से प्रकाशित

प्रथम उच्छ्वास में अपने सेवक कुवलयाक्ष के साथ नायक माधव का वृन्दावन में, मृगया-वर्णन है। द्वितीय उच्छ्वास में अपनी सखियों के साथ स्नानार्थ सरोवर में आयी हुई कलावती नाम की सुन्दरी स्त्री के कटाक्ष से माधव आहत हो जाते हैं। तभी एक शुक मनुष्य की वाणी में माधव से उनका परिचय पूछता है और सेवक कुवलयाक्ष परिचय देता है। शुक से कलावती के प्रति अपनी आसक्ति की बात माधव कहते हुए सहायता करने का अनुरोध करते हैं। शुक कलावती के कुल एवं उसकी अवस्था का पता लगाता है। कलावती उत्कल-नरेश मुकुन्दसेन की कन्या है और वह भी माधव के प्रति अत्यधिक अनुरक्त होकर वियोग में खिन्न है। तृतीय उच्छ्वास में कलावती के स्वयंवर में उपस्थित अनेक राजाओं का वर्णन है। स्वयंवर में वरमाला माधव के गले में पड़ती है और कलावती एवं माधव का विवाह होता है। चतुर्थ उच्छ्वास में राक्षसराज द्वारा माधव से कलावती की याचना की जाती है। कृष्ण-बलराम इसे अस्वीकार कर देते हैं। भयङ्कर युद्ध होता है, जिसमें राक्षसराज की मृत्यु होती है। राक्षसराज की पत्नी के द्वारा किए गए विलाप का वर्णन है। पञ्चम उच्छ्वास में माधव एवं कलावती का केलिवर्णन है। नारद के कथनानुसार माधव द्वारका जाते हैं। कलावती का दूत बनकर हंस द्वारका जाता है और विरहविधुरा कलावती की दयनीय दशा का वर्णन करता है और माधव रुक्मिणी को छोड़कर मथुरा लौट आते हैं और कलावती के साथ पुनर्मिलन होता है।

चम्पूकाव्य का अङ्गीरस श्रृंगार है। वीररस अङ्ग है। श्रृङ्गाररस अपनी पूर्णता को प्राप्त किए हुए है। पद्यांश अधिक रमणीय हैं। गद्यखण्ड सरल है, अन्य चम्पूकाव्यों की तरह समासबहुल गौडीरीति में निबद्ध नहीं।

वर्णन की दृष्टि से सम्पूर्ण चम्पूकाव्य मनोहर है। प्रभात-वर्णन के अधोलिखित श्लोक में श्रीहर्षप्रणीत नैषधीयचरित[1] १२५ की छाया दिखाई पड़ती है :-

**करनखरविदीर्णध्वान्तकुम्भीरकुम्भात्**
**तुहिनकणमिषेण क्षिप्तमुक्ताप्ररोहः।**
**अयमुदयधरित्रीधारिमूर्धाधिरूढो**
**नयनपथमुपेतो भानुमत्केशरीन्द्रः।।१२६**[2]

२८. **मत्स्यावतारप्रबन्ध**-मत्स्यावतारप्रबन्ध के प्रणेता केरल राज्य के निवासी नारायणीय नामक स्तोत्रकाव्य के रचयिता नारायणभट्ट ने चौदह चम्पूकाव्यों की रचना की। इनके पिता का नाम मातृदत्त था। वे मीमांसक थे।

---

१. सर्ग १८ श्लो. ६
२. उच्छ्वास ५ श्लोक २

नारायण कालीकट के मानविक्रम, कोचीन के वीरकेरल वर्मा, वटक्कुङ्कुर के गोदवर्मा तथा अम्पलयुक के देवनारायण नामक राजाओं के द्वारा सम्मानित हुए। इन राजाओं के आश्रित रहकर बहुमुखी प्रतिभा के अधिकारी नारायणभट्ट ने चम्पूकाव्यों के अतिरिक्त व्याकरणशास्त्र, मीमांसाशास्त्र आदि के ग्रन्थों की भी रचनाएँ कीं। इनका काल १५६० ई. के बीच माना जाता है।

मत्स्यावतारप्रबन्ध सड़सठ पद्यों एवं बारह गद्यखण्डों का एक लघुकाय चम्पूकाव्य है जिसमें मत्स्यावतार की कथा कही गई है। यह रचना श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय पर आधारित है। भगवान् ने किस प्रकार मत्स्य रूप धारण कर वेदों को चुराने वाले हयग्रीव नामक राक्षस का वध कर वेदों का उद्धार किया, यही प्रस्तुत ग्रन्थ की कथावस्तु है।

२९. **नृगमोक्षचम्पू**[1] -प्रस्तुत चम्पूकाव्य में राजा नृग का उपाख्यान वर्णित है। इसके रचयिता भी नारायणभट्ट हैं। इस उपाख्यान का आधार है श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का ६४ वां अध्याय। ब्रह्मशापवश गिरगिट का शरीर प्राप्त करने वाले राजा नृग को इस योनि से किस प्रकार भगवान् कृष्ण ने मुक्ति दिलायी, यही चम्पू का वर्ण्य विषय है।

३०. **हस्तगिरिचम्पू**[2] - यह चम्पू जिसका दूसरा नाम वरदाभ्युदयचम्पू भी है, वेङ्कटाध्वरि की दूसरी रचना है जिसमें लक्ष्मी एवं नारायण के परिणय का वृत्तान्त वर्णित है। यह चम्पू पाँच विलासों में विभक्त है। प्रस्तुत चम्पू का मूल स्रोत पुराण है। इस कथा को ब्रह्मा ने भृगु को और भृगु ने नारद को सुनाई -

**या कथा लोकधात्रैव वर्णिता कर्णिता मया।**
**कथये तामहं, तुभ्यं निधये तपसां मुदे।।**

चम्पू का मङ्गलाचरण है -

कल्याणैकनिकेतनं तदनघं कालाम्बुदश्यामलं
चित्ते नृत्यतु शेषभूधरशिरोरत्नं चिरत्नं महः,
यस्योरस्यनिशं सुता जलनिधेर्यस्यास्ति तन्मेखला
पार्श्वे यस्य पदे च तत् प्रियतमा यत्तत्र शेते स्वयम्।।[3]

---

१. **डिस्क्रिप्टिव कैटलाग**, मद्रास, सं. १२३१६ अप्रकाशित
२. मैसूर से १९०८ में प्रकाशित
३. विलास । श्लोक ।

हस्तगिरिचम्पू में विश्वादर्शचम्पू की अपेक्षा गद्यावतरणों का आधिक्य है।

३१. **आनन्दकन्दचम्पू**[1]-गोपाचल (ग्वालियर) निवासी परशुराम मिश्र के पुत्र मित्र-मिश्र की रचना है यह आनन्दकन्दचम्पू। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त तीन और इनकी रचनाएँ हैं-१. वीरमित्रोदय याज्ञवल्क्स्मृति की टीका २. स्वतन्त्र धर्मशास्त्रग्रन्थ तथा ३. स्वतन्त्र गणितग्रन्थ। मित्रमिश्र ओरछानरेश वीरसिंह देव (१६०५ से १६२७ ई.) के आश्रित थे।

आनन्दकन्दचम्पू की रचना का समय 'शाकेशाङ्कगजर्तुभूपरिमिते' को अशुद्ध मानकर 'शाकेसाष्टगजर्तुभूपरिमिते' के रूप में शुद्ध कर तदनुसार संवत् १६८८ (१६३१ ई.) माना गया है।

प्रस्तुत चम्पू में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्ण-लीला वर्णित है। इसमें आठ उल्लास हैं। अन्तिम उल्लास के उत्तरार्ध में आश्रयदाता वीरसिंहदेव की प्रशस्ति, ओरछानगर का वर्णन तथा कविपरिचय है।

आनन्दकन्दचम्पू में अधिकांशतः समासबहुत ओजोगुणविशिष्ट गौडीरीति का प्रयोग किया गया है। वर्णनों में कहीं-कहीं पूर्ववर्ती कवियों के श्लोकों का अनुकरण दीखता है। भाषा में देशी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। अलङ्कार की दृष्टि से वृन्दावन के अधोलिखित वर्णन में सौन्दर्य है :-

**"ये खलु पत्रिणोऽपि न पत्रिणो नापत्रिणोऽपि, अविपल्लवा**
**अपि सविपल्लवाः सपल्लवाश्च, फलिनोऽपि न फलिनः,**

**लतोपनद्धा अपि नल तोपनद्धाः, विपुल स्कन्ध बन्धुरा अपि न वि पुलस्कन्धबन्धुराः, चीरैकमात्रपरिच्छदा अपि न चीरैकमात्रपरिच्छदाः रामादयः, उल्लसत्करवीरा अपि नोल्लसत्करवीराः वाहिनाः, अर्जुनसहिता अपि नार्जुनसहिताः युधिष्ठिरादयः १... ..**(देखें २.५४५५)।"

आश्रयदाता वीरसिंहदेव की प्रशस्ति एवं कंस-कृष्ण से युद्ध के वर्णन में चम्पूकार मित्रमिश्र ने भले ही सफलता प्राप्त की हो, काव्यसौष्ठव एवं भक्ति-भावना-निरूपण में आनन्दवृन्दावनचम्पूकार कर्णपूर की तुलना में ये बहुत पीछे रह जाते हैं।

३२. **नृसिंहचम्पू**[2] - लौगाक्षी परिवार के श्री केशवार्य नृसिंहचम्पू अथवा प्रह्लादचम्पू के रचयिता केशवभट्ट के पितामह थे और अनन्त इनके पिता। इस चम्पू की रचना १६८४ ई. में हुई। यह चम्पूकाव्य उमापति दलपति की आज्ञा से लिखा गया है। इसमें

---

१. म. म. गोपीनाथ कविराजद्वारा सम्पादित होकर वाराणसी से १६३१ में प्रकाशित।

२. कृष्णा जी गणपत प्रेस बम्बई से १९०९ ई. में प्रकाशित

६: स्तबक हैं जिनमें, पुराणों में वर्णित नृसिंहावतार की कथा पर आधारित, पह्लाद एवं नृसिंहावतार की कथा वर्णित है। इसमें भ्रमवश प्रह्लाद को उत्तानपाद का पुत्र कहा गया है।

मङ्गलाचरण में श्रीकृष्ण का वर्णन बड़ा ही सुन्दर है :-

**कनकरुचिदुकूलः कुण्डलोल्लासिगण्डः**
**शमितभुवनभारः कोऽपि लीलावतारः।**
**त्रिभुवनसुखकारी शैलधारी मुकुन्दः**
**परिकलितरथाङ्गो मङ्गलं नस्तनोतु।।**[1]

३३. **नीलकण्ठविजयचम्पू**[2] - नीलकण्ठविजयचम्पू के रचयिता थे नीलकण्ठ दीक्षित। इनके पिता का नाम था नारायण दीक्षित एवं पितामह का अच्चा दीक्षित। भूमि देवी इनकी माता थी। अच्चा दीक्षित प्रख्यात विद्वान् अप्पय दीक्षित के सहोदर अनुज थे। नीलकण्ठ को अपने पितामह भ्राता का अपार स्नेह प्राप्त था।

नीलकण्ठविजयचम्पू की रचना कलिवर्ष ४७३८ अर्थात् सन् १६३६ में हुई ऐसी चम्पूकार की अपनी ही उक्ति है :-

**अष्टत्रिंशदुपस्कृतसप्तशताधिकचतुः सहस्रेषु।**
**कलिवर्षेषु ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम्**[3]।।

अतः सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध नीलकण्ठ का समय निर्धारित किया जाता है। यह चम्पू पाँच आश्वासों में विभक्त है। समुद्रमन्थन, उससे पूर्व एवं उसके बाद की प्रसिद्ध पौराणिक कथा ही इस का वर्ण्य-विषय है। किस प्रकार देवों एवं दैत्यों के संघर्ष में देवगण पराजित होकर देवगुरु बृहस्पति की आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के शरणापन्न हुए ? कैसे देवगुरु ने देवों एवं दैत्यों की सन्धि की योजना बनाई ? कैसे समुद्र-मन्थन का उद्योग हुआ एवं कैसे नागराज वासुकि एवं मन्दराचल के द्वारा समुद्र-मन्थन सम्पन्न हुआ जिससे लक्ष्मी, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, अमृत, हलाहल प्रभृति चौदह रत्न निकले ? लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर किस प्रकार शङ्कर ने विष-पान किया ? मोहिनीरूप धारण कर विष्णु ने कैसे अमृत-वितरण किया ? पुनः किस प्रकार देवों एवं असुरों के बीच संघर्ष हुआ जिसमें देवगण विजयी हुए ? ये सारी घटनाएँ निपुणता से नीलकण्ठविजयचम्पू में वर्णित हैं।

---

१. स्तबक-१, श्लोक-१

२. बालनोरमा प्रेस, माइलापुर-मद्रास से १६४१ में प्रकाशित

३. देखें आश्वास-१, श्लोक १०

चम्पूकार की वर्णन-निपुणता महेन्द्रपुरी के विलास-वर्णन, युद्ध-वर्णन, क्षीरसागर -वर्णन आदि में स्पष्ट परिलक्षित होती है। विरोधाभास, उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि अलङ्कारों का प्रचुर प्रयोग है। ग्रन्थान्त में शिव-स्तुति चम्पूकार की भक्ति-भावना की चरम अभिव्यक्ति है।

३४. **भैष्मीपरिणयचम्पू**[1] - भैष्मीपरिणयचम्पू के रचयिता हैं रत्नखेट श्रीनिवासमखी। इनके पिता का नाम था लक्ष्मीधर। दन्तिद्योति दिवाप्रदीप, षड्भाषाचतुर, अद्वैतविद्यागुरु आदि उपाधियों से विभूषित थे। इन उपाधियों के आधार पर राजचूडामणि दीक्षित के पिता के साथ इनका तादात्म्य मानकर इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का मध्योत्तर भाग माना जाता है।

श्रीमद्भागवत के आधार पर रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण का विवाह इस चम्पू का वर्ण्य-विषय है। इसमें गद्य एवं पद्य दोनों में यमकालङ्कार के प्रयोग की प्रचुरता है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है।

३५. **बाणासुरविजयचम्पू**[2] - बाणासुरविजयचम्पू के प्रणेता श्रीनिवासाचार्य के पुत्र वेङ्कट या वेङ्कटाचार्य हैं। ये सुरसिद्धगिरि नगर के रहने वाले थे। ये वाधुलकुल के थे। इन्होंने अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वभाग में विद्यमान घनश्याम कवि, जिनकी एक उपाधि कण्ठीरव थी, की वन्दना ग्रन्थारम्भ में की है। इसलिए इनका काल सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना गया है। इस चम्पूकाव्य की कथावस्तु श्रीमद्भागवत में वर्णित उषा एवं अनिरुद्ध की कथा पर आधारित है। इसमें छः उल्लास हैं।

३६. **मद्रकन्यापरिणयचम्पू** - सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही चार उल्लासों में विभक्त भद्रकन्यापरिणयचम्पू की रचना गङ्गाधर ने की, जिसमें मद्रराज बृहत्सेन की पुत्री लक्ष्मणा एवं कृष्ण के परिणय की कथा वर्णित है। श्रीमद्भागवत की कथा पर आधारित है यह चम्पूकाव्य[3]।

मद्रकन्या लक्ष्मणा पूर्व से ही कृष्ण से स्नेह करती थी। शुक से श्रीकृष्ण के स्नेह की चर्चा सुनकर वह और भी उनमें आसक्त हो जाती है। तत्पश्चात् मद्रनरेश बृहत्सेन स्वयंवर का आयोजन कर विवाह सम्पन्न कराते हैं।

डा. त्रिपाठी ने चम्पूकार गङ्गाधर की दो अन्य रचनाओं का उल्लेख किया है।[4] १. शिवचरित्रचम्पू तथा २. महानाटकसुधानिधि।

---

१. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग**, मद्रास, नं. १२३३३
२. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग**, मद्रास, नं. १२३१६
३. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग**, मद्रास, नं. १२३३४
४. **देखें चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन**- पृ. २१४

३७. **श्रीकृष्णविलासचम्पू**[1] - आत्रेय गोत्रोत्पन्न नरसिंहसूरि की यह रचना श्रीमद्भागवत की कथा का वर्णन सोलह आश्वासों में करती है। नरसिंह के पिता का नाम था नारायण एवं माता का लक्ष्मी।

ग्रन्थ वासुदेव कृष्ण की वन्दना से प्रारम्भ होता है। भाषा प्रवाहमयी है और वर्णन विस्तृत।

३८. **शिवचरितचम्पू**[2] - तृतीय आश्वास के मध्य से खण्डित इस चम्पू में भगवान् शिव के महान् कार्यों का वर्णन है। इसका प्रथम आश्वास नृसिंह, पद्म एवं मार्कण्डेय पुराणों में वर्णित मार्कण्डेय की कथा पर आधारित है। द्वितीय आश्वास का प्रतिपाद्य विषय है समुद्र-मन्थन से उत्पन्न कालकूट के शिव के द्वारा पान कर त्रैलोक्य की रक्षा एवं तृतीय आश्वास का दक्षयज्ञविध्वंस। चम्पू की शैली पौराणिक है। इसके रचयिता कवि वादिशेखर हैं।

३९. **शिवविलासचम्पू**[3] - यह चम्पू विरूपाक्ष की रचना है। कवि ने इस चम्पू में अपना स्वल्प परिचय दिया है जिसके अनुसार इनका गोत्र कौशिक था। इनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम गोमती था। चार उल्लासों में विभक्त इस चम्पू का भी वर्ण्य-विषय है शिवभक्ति की महत्ता। चम्पू का आरम्भ शिव की वन्दना से होता है-

ईश्वरं सर्वभूतानां निश्चलं निर्मलं विभुम्।
निगुर्णं शाश्वतं शान्तं शिवं वन्देऽहमद्वयम्।।

मार्कण्डेय, वायु, स्कन्द आदि पुराणों में वर्णित कथा के आधार पर इस चम्पू में शिवभक्ति की महिमा से मार्कण्डेय की दीर्घायुत्वप्राप्ति का वर्णन किया गया है। कथा का उपसंहार मृत्यविजयी मार्कण्डेय का अपने माता-पिता के पास प्रत्यावर्तन से हुआ है।

४०. **राधामाधवविलासचम्पू** - जयराम पिण्ड्येरचित। प्रस्तुत चम्पू का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत ही अधिक है। शिवाजी के पिता शाहजीराजा भोसले की स्तुति इसका प्रतिपाद्य विषय है। बंगलोर के शासक के रूप में प्रतिष्ठित होने के समय से ही जयराम शाहजी के आश्रित थे। के. वी. लक्ष्मण राव के अनुसार जयराम ने राधामाधवविलास चम्पूकाव्य की रचना शाहजी के पुत्र एकोजी के शासनकाल में की। प्रस्तुत चम्पू में दस उल्लास हैं साथ ही एक परिशिष्ट भी। प्रारम्भिक पाँच उल्लासों में राधा-कृष्ण का वर्णन है और बाद के पाँच उल्लासों में शाहजी की प्रशंसा है। परिशिष्ट में संस्कृतेतर भाषा में जयराम सहित अन्य

---

१. अप्रकाशित, डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, मद्रास, नं. १२२२।
२. डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास न. १२३१८
३. तञ्जौर कैटलाग न. ४१६०

कवियों के द्वारा शाहजी एवं अन्य राजपुरुषों के सम्मुख की गई कविता एवं समस्यापूर्तियों का सङ्कलन है। चम्पू में जयराम द्वारा शाहजी की दिनचर्या का वर्णन वैशिष्ट्यपूर्ण है।

४१. **जीवन-चरित पर आधारित चम्पू** - ४१. **आचार्यविजयचम्पू**[1] - अप्रकाशित चम्पूकाव्यों में एक है। आचार्यविजयचम्पू जिसका दूसरा नाम वेदान्ताचार्यविजयचम्पू भी है। इसके रचयिता वेङ्कटाचार्य के पुत्र वेदान्ताचार्य थे। यह चम्पूकाव्य भी खण्डित है। इसमें छः स्तबक हैं। इसमें आचार्य वेदान्तदेशिक के जीवनवृत्त एवं अद्वैत वेदान्ती श्रीकृष्ण मिश्र प्रभृति के साथ हुए शास्त्रार्थ का शब्दचित्र उपस्थित किया गया है। वेदान्तदेशिक का काल चौदहवीं शताब्दी का मध्य भाग है। अतएव यह चम्पूकाव्य उसके बाद की रचना है।

ग्रन्थारम्भ में वेदान्ताचार्यों की स्तुति की गई हैं। प्रस्तुत चम्पूकाव्य का गद्य-खण्ड भी बाण एवं दण्डी के गद्य के समान ही पदलालित्य एवं दीर्घसमास से युक्त है। दर्शन एवं काव्य-तत्त्व का अपूर्व सम्मिश्रण इस चम्पूकाव्य में परिलक्षित होता है।

४२. **आचार्यदिग्विजयचम्पू**[2] - आचार्यदिग्विजयचम्पू के रचयिता थे बल्लीसहाय कवि। इन्होंने इसकी रचना १५३६ ई. के. लगभग की। यह चम्पू भी अपूर्ण है और सातवें कल्लोल में खण्डित है। आनन्दगिरिविरचित शङ्करदिग्विजय नामक काव्य पर ही आधारित है यह चम्पू। इसमें शङ्कराचार्य के दिग्विजय का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है कि अपने नौ शिष्यों को साथ लेकर किस प्रकार रामेश्वरक्षेत्र, अनन्तशयनक्षेत्र, सुब्रह्मण्यक्षेत्र, गुणपुर, भवानीपुर, कुवलयपुर, उज्जैन, अनुमल्ल, वरूथपुरी, अर्थपुर, इन्द्रप्रस्थ, धर्मप्रस्थ, प्रयागक्षेत्र, वाराणसी आदि स्थानों में शङ्कराचार्य ने विरोधियों को शास्त्रार्थ में परास्त कर अद्वैतवाद में दीक्षित किया। इस चम्पू का आरम्भ शिव की स्तुति से होता है:-

**जटाबन्धोदञ्चच्छशिकरहृताज्ञानतमसे**
**जगत्सृष्टिस्थेमश्लथनकलनस्कारयशसे।**
**वटक्ष्मारुण्मूलप्रवणमुनिविस्मेरमनसे**
**नमस्तस्मै कस्मैचन भुवनमान्याय महसे।।**

४३. **श्रीरामानुजचम्पू**[3]-श्रीरामानुजचम्पूकाव्य के प्रणेता रामानुजाचार्य का समय सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना गया है। जीवनचरितात्मक चम्पूकाव्य की श्रेणी में आने वाले इस चम्पूकाव्य में दस स्तबक हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सन् १०१७ ई. में उत्पन्न विशिष्टाद्वैत के आदि आचार्य श्रीरामानुज की विस्तृत जीवनी इस ग्रन्थ में

---

१. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलाग** मद्रास सं. १२३६५
२. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग** मद्रास नं. २३८०
३. मद्रास से १९४२ ई. में प्रकाशित

प्रतिपादित की गई है। श्रीरामनुज के जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार, पिता से वेदवेदाङ्ग की शिक्षा, यादवप्रकाश से विद्याध्ययन, 'कप्यास' शब्द के अर्थ को लेकर शिष्य पर गुरु का क्रोध, गुरुकुल से रामानुज का निष्कासन, पुनः शिष्य को बुलाना, रामानुज एवं गोविन्द दो शिष्यों के साथ यादवप्रकाश की वाराणसी-यात्रा इस उद्देश्य से कि यात्रा में गङ्गा की धारा में रामानुज को डुबो दिया जाय, गोविन्द द्वारा रामानुज को इस रहस्य का उद्घाटन, विन्ध्य के वनों में चुपके से रामानुज का खिसकना, प्रभु के रूप में ही भयभीत रामानुज को शबरदम्पती का दर्शन, रामानुज का उनके साथ काञ्चीपुरी आना, रामानुज द्वारा एक राजकन्या को ब्रह्मराक्षस से मुक्त करना, महापूर्ण एवं रामानुज का साथ साथ-रहना, दोनों की पत्नियों के बीच कलह, महापूर्ण का श्रीरंङ्ग चला जाना, रामानुज द्वारा भी श्रीरङ्ग जाकर महापूर्ण से क्षमा-याचना, रामानुज का विरक्त होकर संन्यासग्रहण, तत्पश्चात् श्रीरङ्ग में भगवान् की मूर्ति की वन्दना, काशी जाकर काशिराज की सभा को अलङ्कृत करना, श्रीभाष्य की रचना का विस्तृत विवरण किया गया है। इस काल में रामानुजाचार्य की अलौकिक शक्ति के चमत्कारों का भी वर्णन किया गया है। समासबहुल गौडी रीति में लिखे गये इस चम्पूकाव्य के गद्य भाग में यमक एवं अनुप्रास अलङ्कारों का प्राचुर्य है।

महाभूतनगरी का वर्णन गद्य खण्ड एवं पद्यों में किया गया है। वर्णन-विस्तार होने पर भी प्रमुखता आचार्य के चरितवर्णन को ही दी गई है। विन्ध्य के वनों में अकेले भटकते हुए रामानुज एवं शबर-दम्पती के शब्दचित्र अत्यधिक हृदयग्राही हैं।

दशम स्तबक में यवनकन्या के विरह का चित्रण गद्य-खण्डों एवं पद्यों में दिया गया है जो बड़ा ही मार्मिक है।

शबर जातीय स्त्री का निम्न चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है।

> **विस्तीर्णे कर्णपत्रे द्विपदशनमये कर्णयो र्धारयन्ती**
> **गुञ्जामाला दधाना गलभुविवलये शंखक्लृप्ते वहन्ती।**
> **कस्तूरीचित्रकोद्यन्निटिलशशिकला देवतेवाटवीनां**
> **काचित् कान्तारपार्श्वे विलसति किमयं व्याघयूथाग्रगण्यः।।**

*(रामानुजचम्पू ३१४६)*

४४. **वीरभद्रचम्पू**-प्रस्तुत चम्पूकाव्य के चरितनायक चम्पूकार के आश्रयदाता रीवाँनरेश वीरभद्र स्वयं भी कवि थे। उन्होंने कन्दर्पचूडामणि नामक काव्य का प्रणयन १५७७ ई. में किया। प्रस्तुत चम्पू की रचना भी विक्रम संवत् १६३४ (तदनुसार १५७७ ई.) :-

> **युगरामर्तुशशाङ्के वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे।**
> **श्रीवीरभद्रचम्पूः पूर्णाभूच्छ्रेयसे विदुषाम्।।**

हिस्ट्री ऑफ तिरहुत के रचयिता श्यामनारायण सिंह ने पद्मनाभ को मैथिल विद्वान् माना है।[1] डॉ. रामप्रकाश शर्मा ने भी अपने ग्रन्थ मिथिला का इतिहास में वीरभद्रचम्पू के रचयिता पद्मनाभ मिश्र को मिथिला-निवासी माना है। डॉ. वर्णेकर के अनुसार ये मूलतः वङ्गाली थे पर काशी में इनका निवास था।[2] डा. सुरेश चन्द्र बनर्जी ने भी अपने ग्रन्थ 'कण्ट्रिव्युशन ऑफ बिहार टु संस्कृत लिटरेचर' में इन्हें बिहार प्रान्तीय माना है।[3]

प्रस्तुत चम्पू सात उच्छ्वासों में विभक्त है। प्रथम उच्छ्वास में अपने पिता रामचन्द्र के साथ वीरभद्र की ससैन्य बान्धवगढ़ की यात्रा का विवरण है जहाँ से रामचन्द्र विजय-यात्रा पर निकलते हैं।

द्वितीय एवं तृतीय उच्छ्वास में यात्रा-वर्णन के क्रम में भारत के विभिन्न भागों का वर्णन है। चतुर्थ में रामचन्द्र की प्रशस्ति का वर्णन है। पञ्चम उच्छ्वास में प्रयाग, श्याम-वट अलर्क नगरी, विन्ध्याचल, बन्धु-बान्धव पर्वत, रीवाँ राज्य एवं रामचन्द्र का वर्णन है। षष्ठ उच्छ्वास में रामचन्द्र के पुत्र चरितनायक वीरभद्र का विशद वर्णन है। रीवाँ राज्य के महापुरुषों के जीवनवृत्त के चित्रण के साथ समसामयिक राजवंशों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के कारण यह उच्छ्वास ऐतिहासिक महत्त्व का हे। सप्तम उच्छास में रत्नपुर का वर्णन है और उसंहार के रूप में कविवंश-वर्णन। इस चम्पू में ऐतिहासिकता के साथ कल्पना का सुन्दर संयोग प्रस्तुत किया गया है। भाषा ललित एवं आलंकारिक हैं।

४५. **धर्मविजयचम्पू**[4]-धर्मविजयचम्पू के रचयिता हैं भूमिनाद[5] (नल्ला) दीक्षित। इसमें भोसल वंशीय तञ्जौर के शासक अभिनव भोजराज नामक उपाधिधारी[6] व्यङ्कोजीपुत्र-शाहजी का चरित वर्णित है। शाहजी का शासन-काल १६८४ से १७१० ई. है। अतः सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध चम्पूकार का समय माना जाता है।

यह चम्पू चार स्तबकों में विभाजित है। चम्पूकार ने भोसल वंश का सम्बन्ध मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम से बतलाया है। ग्रन्थारम्भ में राम की वन्दना की गई है। आश्रयदाता शाहजी के गुणों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है जो दरबारी कवियों की वर्णन-परम्परा के सर्वथा अनुकूल ही है।

---

१. पृ. १५५-१५६
२. **संस्कृत वाङ्मयकोष**-प्रथम खण्ड-पृ. ३६३
३. पृ. ७८
४. अप्रकाशित, **तञ्जोर कैटलॉग**, नं. ४२३१
५. डॉ. वर्णेकर के अनुसार 'भूमिनाथ', देखें **संस्कृत वाङ्मयकोश** III-१४८
६. डॉ. वर्णेकर ने इसे चम्पूकार की उपाधि के रूप में उल्लिखित किया है किन्तु ग्रन्थ के उपसंहार-वाक्य से स्पष्ट है कि यह उपाधि शाहजी की है।

४६. **भोसल-वंशावली-चम्पू**[1] - तञ्जोरनरेश शरभोजी भोसले के राजकवि वेङ्कटेश की यह रचना भोसलवंशावलीचम्पू एक ही आश्वास की है जिसमें धर्मराजपुत्र वेङ्कटेश ने भोसले वंश के वर्णन की पृष्ठभूमि में प्रधानतः शरभोजी के जीवनचरित का वर्णन किया है। इसका रचना-काल १७११ से १७२८ ई. के बीच माना जाता है जो शरभोजी भोसले का राज्यकाल है।

४७. **श्रीनिवासविलासचम्पू**[2] - श्रीनिवासविलासचम्पू का प्रकाशन वेङ्काटाध्वरि के नाम से हुआ है, किन्तु वरदाभ्युदय का उपसंहार प्रस्तुत चम्पू के उपसंहार से सर्वथा भिन्न है। अतः सम्भवतः यह किसी दूसरे वेङ्कट कवि की रचना प्रतीत होती है। कृष्णमाचारी ने वेङ्कटेशकवि को प्रस्तुत चम्पू का रचयिता माना है।[3] ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में लिखा है। "वेङ्कटेशस्य काव्ये" जब कि उपसंहारात्मक गद्य-खण्ड में "श्रीमद्वेङ्कटाध्वरि विरचिताया श्रीनिवासविलासाभिधाशालिन्यां चम्वाम्" है।

पूर्वविलास एवं उत्तरविलास नामक दो भागों में यह चम्पूकाव्य विभाजित है। पूर्व-विलास में पाँच उच्छ्वास हैं और उत्तरविलास में पाँच उल्लास। पूर्वविलास में कथावस्तु का विकास है और उत्तरविलास में वाग्विलास का चमत्कार। पूर्वविलास के प्रथम उच्छ्वास में राजा श्रीनिवास का वर्णन है। द्वितीय में नारद का आगमन एवं नारद के द्वारा आनन्दकानन, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, गोदावरी, करवीपुर, रामसेतु आदि का वर्णन है। साथ ही श्रीनिवास द्वारा पद्मावती का साक्षात् दर्शन एवं परस्पर आकर्षण का चित्रण है। तृतीय उच्छ्वास में श्रीनिवास एवं पद्मावती का विरह वर्णित है। चतुर्थ-उच्छ्वास में श्रीनिवास द्वारा भेजी गई वकुला-का आकाशभूपति के पास जाकर श्रीनिवास के हेतु पद्मावती का हाथ मांगने का वर्णन है। पञ्चम उच्छ्वास में पद्मावती और श्रीनिवास के पाणिग्रहण का वर्णन है।

उत्तरविलास के प्रथम उल्लास में दो कवियों के वाग्विलास के चमत्कार का चित्रण है। द्वितीय उल्लास में हंस, शुक, नीलकण्ठ आदि की सूक्तियाँ हैं।

तृतीय उल्लास में पद्मावती, कमलिनी, केतकी, मालती आदि के वाग्विलास का वर्णन है। चतुर्थ उल्लास में परादेवी, वराह, पद्मावती ओर श्रीनिवास के संवाद है। पञ्चम उल्लास में तोण्डिमान एवं कुमार को आधा-आधा राज्य देकर श्रीनिवास-एवं पद्मावती का शेषाचल चले जाने का वर्णन है। श्लेष एवं यमक के चमत्कार से सम्पूर्ण चम्पूकाव्य भरा पड़ा है।

४८. **आनन्दरङ्गविजयचम्पू**[4] -आठ स्तबकों में पूर्ण आनन्दरङ्गविजयचम्पू के रचयिता थे श्रीनिवास कवि। इनके पिता का नाम था गङ्गाधर एवं माता का नाम पार्वती

---

१. अप्रकाशित, **तञ्जोर कैटलॉग**, नं. ४२४०
२. गोपाल नारायण कम्पनी बम्बई से प्रकाशित।
३. देखें कृष्णमाचारी का **हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर**-पृ. ५२१
४. डा. वी.राघवन् द्वारा सम्पादित होकर मद्रास से प्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलाग**, मद्रास-न. १२३८१

था। ये वत्स गोत्रीय थे। प्रस्तुत चम्पूकाव्य में फ्रांसीसी शासक डुप्ले के प्रमुख सेवक पाण्डिचेरी निवासी आनन्दरङ्ग पिल्लइ के जीवन-वृत्तों का वर्णन किया गया है। यह काव्य ऐतिहासिक महत्त्व का है। विजयनगर एवं चन्द्रगिरि के राजवंशों का वर्णन इस काव्य का प्रमुख वैशिष्ट्य है। पिल्लइ के पूर्वजों का भी वर्णन यहाँ संक्षेप में किया गया है। प्रस्तुत चम्पू अट्ठारहवीं शताब्दी की रचना है।

इस चम्पू में ऐतिहासिक वृत्त के उपयुक्त-गद्य-पद्य का प्रयोग बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया गया है। न लम्बे-लम्बे समासों का बाहुल्य है और न श्लेष का प्रयोग। शैली प्रसादमयी है। इसमें नये-नये विषयों का भी समावेश मनोरंञ्जक ढंग से किया गया है। चरितनायक आनन्दरङ्ग ने पाण्डिचेरी में विशाल महल बनवाया था जिसके ऊपर बजने वाली एक बड़ी घड़ी लगा रखी थी। यह उस युग के लिए अजीब चीज थी। कवि ने इसका सुन्दर वर्णन किया है-

**निर्मलं यत्र घण्टा ध्वनति च भवने बोधयन्ती मुहूर्तान्**
**दैवज्ञान् हर्षयन्ती समयमविरतं ज्ञातुकामानशेषान्।**
**प्राप्तुं श्रीरङ्गभूपात् फलमनुदिवमागच्छतां भूसुराणां**
**तत्सिद्धिं सूचयन्ती प्रकटयतितरामद्भुतां रागभङ्गीम्।।**
*(आ.रं. च. ४/२२)*

४९. **यतिराजविजयचम्पू**[1] - यतिराजविजयचम्पूकाव्य भी अप्रकाशित चम्पूकाव्यों में एक है। इसके प्रणेता थे अहोबलसूरि। इनके पिता का नाम था वेङ्कटाचार्य और माता का लक्ष्माम्बा। इनका एक दूसरा भी चम्पूकाव्य है जिसका नाम है विरूपाक्षवसन्तोत्सव। इस ग्रन्थ के आधार पर अहोबल का काल चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना गया है।

यतिराजचम्पू में सत्रह उल्लास हैं। अन्तिम उल्लास अपूर्ण है। इस चम्पूकाव्य में यतिराज रामानुजाचार्य के जीवनचरित को चित्रित किया गया है। भाषा में सरलता है। दीर्घसमासों का अभाव है जो ग्रन्थारम्भ में वैकुण्ठनगर के वर्णन से ही परिलक्षित होता है।

५०. **वसुचरितचम्पू**[2] - सोलहवीं शताब्दी के कविकालहस्ति सुप्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित की यह रचना श्रीनाथप्रणीत तेलुगु भाषामय वसुचरित्र पर आधरित हैं। ग्रन्थारम्भ में गणपति की स्तुति की गई है। तत्पश्चात् पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया गया है। ग्रन्थान्त में कामाक्षीदेवी की वन्दना निम्नलिखित रूप में की गई हैः-

---

१. अप्रकाशित, **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ गवर्मेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी** मद्रास नं. १२३३८

२. अप्रकाशित, **तञ्जोर कैटलॉग** नं. ४१४६

कामाक्षि देवि करुणामयि कामकोटि-
काञ्चीपुरीश्वरि कदम्बवनीनिवासे।
कान्तैकचूतपतिना कलितावधाना
कर्णामृतं कलय काव्यमिदं मदीयम्।।[1]

५. **जैन साहित्य पर आधारित चम्पू-५१ यशस्तिलकचम्पू**[2]-सुप्रसिद्ध जैनकवि श्रीसोमदेव या सोमभ्रम सूरि यशस्तिलकचम्पू के प्रणेता हैं। चालुक्यराज अरिकेसरिन् द्वितीय के बड़े पुत्र वाग्राज इनके आश्रयदाता थे। ये राष्ट्रकूट के राजा कृष्णराजदेव तृतीय के समकालिक थे। अतएव इस चम्पू का रचनाकाल सन् ६५६ ई. के आस-पास माना जाता है। इसका मूल स्रोत है गुणभद्ररचित जैनों का उत्तरपुराण। इस चम्पू में अवन्ती के राजा यशोधर के चरित का वर्णन करते हुए जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। आठ आश्वासों में विभक्त इस चम्पूकाव्य के प्रारम्भिक पाँच आश्वासों में यशोधर के आठ जन्मों की कथा का वर्णन है। अन्तिम तीन में जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन। यशोधर का उज्ज्वल चरित्र उनकी पत्नी की धूर्तता, राजा यशोधर का देहावसान एवं आठ जन्मों में नाना योनियों में जन्म एवं अन्त में जैनधर्म में दीक्षा इस चम्पू का प्रतिपाद्य है। आलङ्कारिक शैली में रचित इस चम्पूकाव्य में बाणभट्टप्रणीत कादम्बरी जैसी वर्णनचातुरी एवं प्रौढि है। इसके वर्णनों को देखने से चम्पूकार की बहुमुखी प्रतिभा एवं विवधशास्त्रमर्मज्ञता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। पद-पद से पाण्डित्य टपकता है। परम धार्मिक सन्तपुरुष हैं चम्पूकार किन्तु उनके पद्य की रमणीयता एवं सरसता किसी से कम नहीं है। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक अनुराग का यह वर्णन दृष्टान्तस्वरूप उद्धृत किया जा सकता है :-

"एषा हिमांशुमणिनिर्मितदेहयष्टिः
त्वं चन्द्रचूर्णरचितावयवश्च साक्षात्।
एवं न चेत् कथमिमं तव सङ्गमेन
प्रत्यङ्गनिर्गतजला सुतनुश्चकास्ति"।।[3]

वर्षाकाल में जलधारा से प्रताडित कुरङ्गी की दशा का वर्णन भी दर्शनीय है:-

"भूयः पयः प्लवनिपातितशैलशृङ्गे
पर्जन्यगर्जितवितर्जितसिंहपोते।

---

१. देखें डा. त्रिपाठी कृत चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन कैटलॉग मद्रास नं. १२ ३०६

२. म.म. शिवदत्त एवं वासुदेवशास्त्री पणशीकर द्वारा सम्पादित होकर सन् १६१६ ई. में निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित।

३. आश्वास २, श्लोक संख्या २१६

सौदामनीद्युतिकरालितसर्वदिक्के
कं देशमाश्रयतु डिम्भवती कुरङ्गी।।"[1]

प्रस्तुत चम्पूकाव्य में नीतिसम्बन्धी सूक्तियों का भी आधिक्य है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

**विचक्षणः किन्तु परोपदेशे न स्वस्य कार्ये सकलोऽपि लोकः।**
**नेत्रं हि दूरेऽपि निरीक्षमाणमात्मावलोके त्वसमर्थमेव।।**[2]

इस पद्य में 'परोपदेशे पाण्डित्यम्' का स्पष्ट समर्थन है। ५२. **जीवन्धरचम्पू**[3]- जीवन्धरचम्पू के रचयिता हैं हरिचन्द्र, जिन्होंने इसमें जैन उत्तरपुराण में वर्णित राजा सत्यन्धर एवं विजया के सुपुत्र जैन राजकुमार जीवन्धर का जीवनचरित चित्रित किया है। जैनों के पन्द्रहवें तीर्थङ्कर धर्मनाथजी के चरित पर आधारित धर्मशर्माभ्युदय काव्य के प्रणेता हरिचन्द्र के साथ इनका तादात्म्य कीथ ने माना है। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाय तो हरिचन्द्र नोमक वंश में उत्पन्न कायस्थ थे, जिनके पिता का नाम था आर्द्रदेव और माता का रथ्या देवी। इनका कोई निश्चित समय नहीं माना गया है। सन् ९०० ई. से लेकर ११०० ई. तक की अवधि में कभी ये थे, ऐसा इतिहासकारों का अभिमत है।[4]

हर्षचरित के प्रारम्भ में उल्लिखित चम्पूकार के नामधारी भट्टारहरिचन्द्र इनसे सर्वथा भिन्न हैं। गद्य-रचना में बाणभट्ट चम्पूकार के आदर्श हैं।

इस चम्पू में ग्यारह लम्भक हैं। जीवन्धर के चरित्र-चित्रण के क्रम में स्थान-स्थान पर जैनधर्म के अनुसार उपदेशों का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है।

चम्पूकाव्य में गद्य-पद्य के समन्वय से उत्पन्न आनन्द की समकक्षता चम्पूकार हरिचन्द्र ने अज्ञात यौवना वयःसन्धि-प्राप्ता नायिका के द्वारा प्रदत्त आनन्द से की है।

५३. **भरतेश्वराभ्युदयचम्पू**[5] (अप्रकाशित)-आदितीर्थङ्कर ऋषभ के पुत्र भरत के जीवन-चरित पर आधारित भरतेश्वराभ्युदयचम्पू के प्रणेता थे दिगम्बर जैनी आशाधर। जिनसे नरचित आदिपुराण के छब्बीसवें से अड़तीसवें पर्व तक भरत के चरित का विस्तृत वर्णन किया गया है। आशाधर का काल तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

५४. **पुरुदेवचम्पू** - आशाधर के शिष्य अर्हत् या अर्हदास की रचना हैं पुरुदेवचम्पू। इसमें जैन सन्त पुरुदेव के जीवनचरित को प्रस्तुत किया गया है। चम्पूकार का समय

---

१. आश्वास १, श्लोक संख्या ६६
२. **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. ४१७ में उद्धृत
३. टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर सन् १९०५ ई. में सरस्वती विलास सिरीज में तंजौर से प्रकाशित।
४. देखें त्रिपाठीः **चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन**-पृ. १०६ पादटिप्पणी-१
५. अप्रकाशित

तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। पुरुदेव के चरित का वर्णन आदिपुराण, उत्तर-पुराण तथा मुनिसुव्रतपुराण में किया गया है। इसकी भाषा अनुप्रासमयी एवं समस्तपदावली से युक्त है। उदाहरणार्थ अलका नगरी के वर्णन की प्रारम्भिक पङ्क्तियाँ:-

**"अथ विशालवाजिमालाविक्षिप्तविविधमौक्तिक-**
**पुञ्जसञ्जातमरालिका भ्रमसमागतदृढालिङ्गनमङ्गल-**
**तरङ्गित..... रजताचलस्योत्तरश्रेण्यामलकाभिधाना पुरी वरीवर्ति।**[1]

इस चम्पूकाव्य में जैनपुराणों पर आधारित चम्पू काव्यों की परम्परा का अनुपालन करते हुए अहिंसा के प्रभाव का वर्णन किया गया है और सभी जीवों के प्रति दया का उपदेश दिया गया है।

६. **विविध विषयक चम्पू-५५. उदयसुन्दरीकथाचम्पू**[2]-ग्यारहवीं शती के कोकड़ के राजा मुम्मुनिराज के आश्रित दक्षिण गुजरात के लाटदेश के निवासी सोड्ढल इस चम्पू के प्रणेता हैं। बाण की गद्य-शैली का अनुकरण करते हुए चम्पूकार ने प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन का नागराज शिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ विवाह का वर्णन किया है। सोड्ढल ने भी बाण की तरह आत्मवृत्तान्तसहित पूर्ववर्ती कवियों के विषय में प्रशंसात्मक श्लोक लिखे हैं। चम्पू की भाषा का लालित्य एवं माधुर्य दर्शनीय है। आकाश में छिटकी चाँदनी का वर्णन बड़ा ही मनोरम है। कल्पना की नवीनता देखने योग्य है। जैसे निम्न लिखित श्लोक में-

**चान्द्रं महीमण्डलभाजनस्थं दुग्धं यथा यामवती-महिष्याः।**
**वियोगिनां दृग्दहनोग्रतापैरुल्लासितं व्योमतले लुलोठ।**

अर्थात् "छिटकी चाँदनी क्या है ? वही महीमण्डलरूपी भाजन में रात्रिरूपी महिषी का चन्द्ररूपी दुग्ध है, जो वियोगियों के जलते हुए नयनों से दृष्ट होने पर उफान लेने वाले दूध के समान आकाश में बिखर गया है।"[3]

५६. **विरूपाक्षवसन्तोत्सवचम्पू**[4] - अहोबल सूरि की यह रचना भी खण्डित है। यह चार काण्डों में विभक्त है। इसमें विरूपाक्ष महादेव के वसन्तोत्सव का वर्णन है। आरम्भ के तीन काण्डों में रथयात्रा का तथा चौथे में मृगयामहोत्सव का चित्रण है।

गद्यलेखन में बाणभट्ट की शैली का अनुकरण किया गया है। अनुकरण में भी स्वाभाविकता एवं आपेक्षिक सरलता है। प्रसङ्गवश चम्पूकार ने कुछ कवियों का उल्लेख किया है। वे हैं-विद्यारण्य, वेङ्कटाचलपति, जयदेव, हरदत्ताचार्य, दीक्षित, विद्यासागर आदि।

---

१. प्रथम स्तबक
२. गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज न. ९९ सन् १९२० ई. में प्रकाशित
३. आचार्य बलदेव उपाध्याय, **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. ४१८
४. आर. एस. पञ्चमुखी द्वारा सम्पादित, मद्रास से प्रकाशित

वर्ण्य वसन्तोत्सव में भाग लेने हेतु आए हुए सामन्तों का उल्लेख चम्पू के ऐतिहासिक महत्त्व को दर्शाता है।

५७. **वरदाम्बिकापरिणयचम्पू**[1] -विजयनगर के महाराजा अच्युतराय की राजमहिषी-तिरुमलाम्बा वरदाम्बिकापरिणयचम्पू की प्रणेत्री हैं। अच्युतराय का कार्यकाल १५२९ से १५४२ ई. है। इस चम्पू की कथावस्तु विजयनगर के राजपरिवार से सम्बद्ध है। ओषधपति से प्रारम्भकर अच्युतराय के पुत्र चिनवेङ्कटाद्रि के युवराज पद पर अभिषिक्त होने की कथा इस चम्पू में वर्णित है। अच्युतराय के पिता नृसिंह की विजय-गाथा का भी सविस्तर वर्णन किया गया है। नृसिंह के निधन के बाद अच्युतराय के राज्याभिषेक का वर्णन है। तत्पश्चात् किस प्रकार उद्यानस्थित कात्यायनीमन्दिर में वरदाम्बिका नामक परम सुन्दरी कन्या को देखकर महाराज अच्युतराय मुग्ध हो गये और कालक्रम में दोनों का विवाह हुआ, इसका मनोरम विवरण ही इस चम्पूकाव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। विवाह के बाद चिन वेङ्कटाद्रि नामक पुत्र की उत्पत्ति की कथा है और तदनन्तर बाल्यकाल में ही उनके युवराजपद पर अभिषिक्त होने की कथा।

अच्युतराय के राज्यकाल में विजययात्रा आदि का कोई वर्णन नहीं किया गया है। उनकी रूपमाधुरी, कामुकता, विलासिता आदि का श्रृङ्गारिक वर्णन निपुणतापूर्वक किया गया है। स्त्री होते हुए भी कवयित्री ने जो अपने पति महाराज अच्युतराय के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है वह पाठक को आश्चर्यचकित कर देता है। पुरुष के सौन्दर्य का ऐसा वर्णन शायद ही कहीं किया गया हो।

यह चम्पू आश्वासों या स्तबकों में विभक्त नहीं है। एक ही प्रकरण वाला है। यह प्रणयकाव्य है।

चम्पू के ओजोगुणविशिष्ट समासबहुल गद्य-खण्ड बाणभट्ट की गद्य शैली की समता रखते हैं। कवयित्री की वर्णनचातुरी सर्वत्र परिलक्षित होती है। स्थल-स्थल पर ललित पद्यों का समावेश पाठक को मुग्ध कर देता है। गद्य-पद्य दोनों का सौष्ठव दर्शनीय है।

नृसिंह के युद्धवर्णन में वीर-रस या अच्युत की प्रणयगाथा के वर्णन में श्रृङ्गार-रस अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा-सा प्रतीत होता है। राज-कन्या की विरहदशा का चित्रण विप्रलम्भ का अनूठा उदाहरण है।

सायंकाल के वर्णन में अधोलिखित पद्य-युगल में कवयित्री की अनुपम कल्पना परिलक्षित होती है:-

**अपरगिरितरक्षोरातपच्छायलेशैर्हरितमलिनवर्णे रञ्जितस्यांशुमाली।**
**कवलितदिनधेनोः कण्ठरक्तेन रक्तं विसृमरनिजपादैः श्मश्रुलं प्रोथमासीत्।।**[2]

---

१. डा. लक्ष्मणस्वरूप द्वारा सम्पादित तथा लाहौर से प्रकाशित

२. श्लोक-१५६

**अरविन्दबन्धुकुरुविन्दपिधाने, चपलेन बालशशिना व्यपनीते।**
**घुसृणं वियन्मघवनीलकरण्डाद्, गलितं यथाघनमदृश्यत सन्ध्या।।**[1]

पद्य-भाग में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादिअलङ्कारों के प्रयोग के साथ ही अर्थान्तरन्यास का विन्यास कालिदास की रचनाओं का स्मरण कराता है।

उदाहरणार्थः-**सतां प्रसादः सहजो न रोषः**[2]

**तीव्रानुरागं हि तनोत्युपेक्षा**[3] इत्यादि।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस चम्पू को संस्कृत भाषा के ऊपर प्रशंसनीय प्रभुता, अलङ्कारों के विन्यास तथा चयन में अद्भुत सामर्थ्य के कारण[4] चम्पू-काव्य का एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि माना है।

५८. **तीर्थयात्राचम्पू**[5] -दक्षिण के वटवन नामक नगर के निवासी वाधूल गोत्रीय वेङ्कटेश एवं अनन्तम्मा के पुत्र समरपुङ्गव दीक्षित द्वारा विरचित तीर्थयात्राचम्पू में तीर्थयात्रा का मनोहर वर्णन है। 'कनकाढपाठ' समरपुङ्गव का विरुद था। नवम आश्वास के अन्त में चम्पूकार ने लिखा हैः-

**"कनकाढपाठविरुदाङ्कस्य.... समरपुङ्गवदीक्षितस्य**
**कृतौ चम्पूकाव्ये..... नवम आश्वासः**[6]

अप्पय दीक्षित समरपुङ्गव के गुरु थे। इनका काल १५५१ ई. से १६२३ ई. तक है। अतः समरपुङ्गव का काल सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। उन्होंने ग्रन्थनायक के जन्म की जिस ग्रहस्थिति का विवरण अपने चम्पूकाव्य में दिया है वह लगभग १५७४ ई. की है। इससे भी उनके काल की पुष्टि होती है। ग्रन्थनायक कोई दूसरा नहीं उनका सोदर भाई ही है। सूर्यनारायण एवं धर्म उनके दो भाई थे। डॉ. त्रिपाठी के अनुसार ग्रन्थनायक धर्म ही प्रतीत होता है।[7]

तीर्थयात्रावर्णनात्मक इस चम्पूकाव्य में नौ आश्वास हैं। प्रथम आश्वास में मङ्गलाचरण, वटवन नगरी का वर्णन, वेङ्कटेश का विवाह, देवियों एवं देवों की स्तुति, पुत्रप्राप्तिहेतु तथा अनन्तम्मा का गर्भधारण वर्णित हैं। द्वितीय में पुत्रोत्पत्ति, विद्याध्ययन, विवाहादि का

---

१. श्लोक-१५७
२. श्लोक ४७ का अन्तिम चरण।
३. श्लोक १४३ का अन्तिम पाद।
४. देखें पृ. ४२४, **संस्कृत साहित्य का इतिहास**
५. निर्णयसागर बम्बई से १६३६ में काव्याला में प्रकाशित
६. पृ. १७६
७. **चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन** पृ. १५६

वर्णन है। तृतीय में वसन्तवर्णन, तीर्थयात्राहेतु प्रस्थान, काञ्चीपुरी, पुरी एवं एकाम्रेश्वर का वर्णन है। चतुर्थ में सूर्योदय, संन्ध्या, चन्द्रोदय, सम्भोगादि का वर्णन है। पञ्चम आश्वास से अष्टम आश्वास तक विभिन्न तीर्थस्थलों का वर्णन है, साथ ही तत्तत्स्थानीय देवी-देवताओं की स्तुति भी। अन्तिम नवम आश्वास में वाराणसी की यात्रा, वाराणसी एवं विश्वनाथ की स्तुति है।

यात्रावर्णन में केवल भारत का पश्चिमी भाग छूटा हुआ है। उत्तर में बदरिकाश्रम, दक्षिण में रामेश्वर एवं पूरब में कामाख्या तक की तीर्थयात्रा का विवरण है। महाकाव्य की तरह इस चम्पूकाव्य में भी विवेच्य विषय के अतिरिक्त नगर, पर्वत, नदी, ऋतु, सूर्योदय, सन्ध्या आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। विभिन्न देवताओं की स्तुति भी विस्तार से की गई हैं। कावेरीवर्णन, यमुनावर्णन एवं वाराणसी-वर्णन मनोहारी है। अतएव अपने गुणों के कारण विद्वत्समाज में प्रस्तुत चम्पूकाव्य को विशेष स्थान दिया जाता है।

५६. **स्वाहा-सुधाकरचम्पू**[1] - इस चम्पू के लेखक भी नारायणभट्ट ही हैं। इसमें अग्नि-पत्नी स्वाहा एवं सुधाकर चन्द्रमा की प्रणय-लीला का वर्णन किया गया है।

६०. **कोटिविरह**[2]-नारायणभट्ट का यह चम्पू भी एक श्रृङ्गारिक चम्पूकाव्य है जिसमें श्रृङ्गार के दोनों पक्षों, मिलन एवं वियोग, का सफल चित्रण हुआ है। इसमें दो खण्ड हैं- पूर्व एवं उत्तर। पूर्व खण्ड में मिलन चित्रित है और उत्तर खण्ड में विरह। इसमें कालिदास आदि पूर्ववर्ती कवियों के अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं।

६१. **व्याघ्रालयेशाष्टमीमहोत्सवचम्पू**[3]-व्याघ्रालयेशाष्टमीमहोत्सवचम्प या अष्टमी महोत्सवचम्पू के रचयिता भी नारायणभट्ट ही हैं। इसमें कार्तिककृष्ण की अष्टमी तिथि को सम्पन्न होने वाले ट्रावनकोर के वैक्कम के शिवमन्दिर के महोत्सव का विशद वर्णन किया गया है। इस महोत्सव के अवसर पर समीपस्थ ग्राम उदयपुरम् से कार्तिकेय की प्रतिमा शिवमन्दिर में लायी जाती है, तब विशिष्ट महोत्सव होता है। भाषा की प्रौढि एवं अनुप्रासमयी शैली के आद्यन्त निर्वाह को देखते हुए डॉ. त्रिपाठी ने इसे नारायणभट्ट की अन्तिम रचना के रूप में माना है।

६२. **विश्वगुणादर्शचम्पू**[4]-इस चम्पू के रचयिता हैं १७ शती के वेङ्कटाध्वरि। ये आचार्य रामानुज के अनुयायी थे और महालक्ष्मी के परम भक्त। इनके पिता का नाम था रघुनाथ दीक्षित और माता का नाम सीताम्बा। इनके नाना का नाम था अप्पय। ये

---

१. **काव्यमाला** में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।
२. **काव्यमाला** में निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।
३. **डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग**-मद्रास XXI-१२३७६, अप्रकाशित।
४. निर्णयसागर प्रेस बम्बई में १९२३ ई. में प्रकाशित।

अप्पय चित्रमीमांसाकार अप्पय दीक्षित से भिन्न थे। वेङ्कटाध्वरि की दो अन्य रचनाएँ भी हैं-हस्तिगिरिचम्पू और लक्ष्मीसहस्रम्।

विश्वगुणादर्शचम्पू उच्छ्वासादि में विभक्त नहीं है। इसमें कुल ५९७ श्लोक हैं। गद्यावतरणों की संख्या अपेक्षाकृत कम है-केवल २५४ मात्र। ग्रन्थ की शैली सरल एवं लालित्यपूर्ण है।

रामानुज के मतानुयायियों के दो वर्ग थे-वडघले और तेंगले। वडघले मतानुयायियों ने तेंगलों की जो अवमानना की, जो स्पर्धा की, जो छल किया, उसी को स्पष्ट करने के लिए कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की[1]। किन्तु केवल इसे ही ग्रन्थ-प्रणयन का प्रयोजन नहीं माना जा सकता। वस्तुतः विश्ववैचित्र्य की अभिव्यक्ति ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।

विश्वको देखने के उत्सुक दोषैकदृक् कृशानु एवं गुणैकपक्षपाती विश्वावसु नामक दो गन्धर्वों की कल्पना प्रस्तुत चम्पूकाव्य में की गई है। उनके कथोपकथन के रूप में यह चम्पू-काव्य प्रस्तुत किया गया है।

वेङ्कटाध्वरि के विषय में एक किंवदन्ती है कि स्तुतिनिन्दात्मक विश्वगुणादर्शचम्पू-काव्य की रचना के कारण वे देवकोप से अन्धे हो गए थे। लक्ष्मीसहस्त्रम् की रचना के पश्चात् ही उन्हें फिर से खोई हुई दृष्टि वापस मिली। ग्रन्थ के नाम से ऐसा पता चलता है कि सम्पूर्ण विश्व का गुण-वर्णन इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है। किन्तु इतना सच है कि प्रस्तुत चम्पू में वर्णन की बहुविधता है।

उपोद्घात में मङ्गलाचरण, कवि-परिचय, चम्पूकाव्यप्रशस्ति तथा कृशानु और विश्वावसु के परिचय हैं। तत्पश्चात् क्रमशः सूर्य, भूगोल, बदरिकाश्रम, अयोध्या, गंगा, काशी, समुद्र, जगन्नाथक्षेत्र, गुर्जरदेश, यमुना, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्णाटक, वेङ्कटगिरि, वन, घटिकाचल, वीक्षारण्य, रामानुज, चन्नपट्टन, काञ्ची, वेदान्तदेशिक, कामासिकानगर, नृसिंह, त्रिविक्रम, कामाक्षी, एकाम्रेश्वर, क्षीरनदी, वाहानदी, तुण्डीरमण्डल, चञ्चीपुरी, पिनाकिनी, गरुडनदी, श्रीदेवनायक, श्रीमुष्णक्षेत्र यज्ञवराह, कावेरी, श्रीरङ्ग, जम्बुकेश्वर, चोलदेश, कुम्भघोणशार्ङ्गपाणि, चम्पकारण्य, श्रीराजगोपाल, सेतु, ताम्रपर्णी, कुरुकानगर, श्रीशठकोपमुनि, पाण्ड्यचोलदेशनिवासिस्मार्त शैवादित्य-वेदान्ति-ज्यौतिषिक-भिषक्-कवि-तार्किक-मीमांसक-वैयाकरण-वैदिक राजसेवक, दिव्यक्षेत्रादिके वर्णन के साथ उपसंहार एवं कविवाक्य वर्णित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ व्यक्ति, सम्प्रदाय, तीर्थस्थान, नदी, समुद्र स्थानीय देवता एवं विभिन्न प्रान्तों का वर्णन कथोपकथन की प्रक्रिया से किया गया है। विश्वावसु पहले इनके गुणों का वर्णन करता है। तब कृशानु उनमें दोषों का उद्घाटन करता है। फिर विश्वावसु दोषों का निराकरण करता है।

---

१. देखें श्लोक संख्या २४९ एवं २५०

ग्रन्थान्त में ग्रन्थकर्ता ने अपनी नम्रता दिखलाते हुए पाठकोंसे अनुरोध-किया है कि उनके "इस ग्रन्थ में स्पष्टतया दोषों की बहुलता होने पर भी दया के नाते प्रसन्नचित्त सज्जन वृन्द कृशानुवत् (दोषद्रष्टा की तरह) न हों अपितु विश्वावसु की तरह (गुणग्राही) बनें"[1]।

इस चम्पू के रचयिता कवि का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनकी भाषा प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल सरल एवं प्राञ्जल है। राजा की नौकरी करने वाले भृत्य की दशा का कितना सटीक एवं सजीव चित्रण निम्न पद्य में किया गया है-

**नैषां सन्ध्याविधिरविकलो नाच्युतार्चाऽपि साङ्गा**
**न स्वे काले हवननियमो नापि वेदार्थ-चिन्ता।**
**न क्षुद्वेलानियममशनं नापि निद्रावकाशो**
**न द्वौ लोकावपि तनुभृतां राजसेवापराणाम्।।**

काशी के विषय में कवि का निम्न चमत्कारी पद्य द्रष्टव्य है-

**वाराणसि त्वयि सदैव सरोगभूमावारोग्यभूमिरिति काममलीकवादः।**
**संतस्युषां भवति यत्र वपुः सशूलं जन्मान्तरेऽपि जलभारवदुत्तमाङ्गम्।।**
*(विश्वचम्पूश्लो)*

६३. **त्रिपुरविजयचम्पू**[2] - इस त्रिपुरविजयचम्पूकाव्य के प्रणेता तञ्जोर के भोंसला राजा एकोजि के अमात्य नृसिंहाचार्य हैं जो भारद्वाज कुलोत्पन्न आनन्दयज्वा के पुत्र थे। कैलास के वर्णन से कथारम्भ कर त्रिपुरदहन की कथा का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

६४. **केरलाभरण**[3] - केरलाभरण के रचयिता रामचन्द्र दीक्षित केशव (यज्ञराम) दीक्षित के पुत्र थे जो रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित के परिवार से सम्बन्धित थे। इनका काल सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। यह चम्पूकाव्य यात्रा-प्रबन्धात्मक है। इन्द्र की सभा में उपस्थित वसिष्ठ एवं विश्वामित्र में विवाद छिड़ता है कि कौन सा प्रदेश अत्यधिक रमणीय है।

**"कतमो देशो रम्यः कस्याचारो मनोहरो महताम्।**
**इति वादिनि देवपतौ संघर्षोऽभूद् वसिष्ठगाधिजयोः।।"**

---

१. दृष्ट श्लोक सं. ५९६
२. अप्रकाशित तञ्जोर कैटलाग न. ४०३६
३. अप्रकाशित, तञ्जोर कैटलाग न. ४०३१
४. श्लोक १८

इस पर देवराज इन्द्र के आदेशानुसार दो गन्धर्व-मिलिन्द एवं मकरन्द भू-परिक्रमा पर निकलते हैं और केरल देश की प्रकृतिक रमणीयता से मुग्ध होकर उसे ही सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हैं। इस चम्पू में भाषा की प्रौढ़ता एवं अनुप्रासमयता है। पद्यों से रमणीयता टपकती हैं।

६५. **गोदापरिणयचम्पू**-गोदापरिणयचम्पू के रचयिता वेदाविनाथभट्टाचार्य केशवनाथ थे। इसमें पाँच स्तबक हैं। तमिल की सुप्रसिद्ध कवयित्री गोदा (आण्डाल) का श्रीरङ्गम् के अधिष्ठातृ देवता रङ्गनाथजी के साथ विवाह ही इस चम्पूकाव्य का वर्ण्य-विषय है। सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण केशवनाथ का समय माना जाता है।

गोदा के प्रसंङ्ग में एक किंवदन्ती है।[1] षष्ठ शताब्दी के सुप्रसिद्ध सन्त पेरियाल्वार (विष्णुचित्त) की पोषिता पुत्री थी गोदा। वह पिता के द्वारा बनाई गई मालाओं को रङ्गनाथ जी को अर्पित किए जाने से पहले ही पहन कर अपने को सुसज्जित कर लेती थी। बाद में उन मालाओं को देवता को अर्पित किया जाता था। इस रहस्य के खुल जाने पर पेरियाल्वार ने गोदा को खरी-खोटी सुनायी और दूसरी माला से रङ्गनाथ जी की पूजा कराने की ठानी। इस पर आकाशवाणी हुई कि दूसरी माला स्वीकार नहीं की जायेगी। गोदावरी के द्वारा पहनी गई माला ही स्वीकार की जायेगी। पुत्री की कृष्णभक्ति से मुग्ध पिता ने वही किया और अन्त में गोदा के द्वारा हठ किए जाने पर उसका विवाह रङ्गनाथ जी से ही कर दिया। सोलह वर्ष की अवस्था में ही वह रङ्गनाथ जी में विलीन हो गई। यही किम्वदन्ती चम्पूकाव्य का आधार है।

६६. **वैकुण्ठविजयचम्पू** - वैकुण्ठविजयचम्पू के प्रणेता हैं राघवाचार्य। इनके पिता वत्सगोत्रीय श्रीनिवासाचार्य थे। राघवाचार्य रामानुजाचार्य के मत के अनुयायी थे। इनका समय है सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध। इन्होंने भी विशिष्टाद्वैतावादी कवियों की परम्परा का अनुसरण करते हुए ग्रन्थारम्भ में वेदान्ताचार्यों की स्तुति की है।

इस चम्पू में जय एवं विजय नामक दो पात्रों की कल्पना की गई है जो विश्वभ्रमण पर निकलते हैं। उसी क्रम में अनेक स्थानों का भ्रमण करते हैं। अनेक तीर्थों एवं मन्दिरों का वर्णन इसमें सुललित भाषा में किया गया है।

६७. **वेङ्कटेशचम्पू**[2] - सत्रहवीं शताब्दी के तञ्जोर निवासी धर्मराज कवि के द्वारा विरचित यह वेङ्कटेशचम्पूकाव्य तिरुपतिक्षेत्र के देवता वेङ्कटेश की महिमा का वर्णन करता है। ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण के पश्चात् सज्जनप्रशंसा एवं दुर्जन-निन्दा की गई है।

---

१. **डिस्क्रप्टिव कैटलाग** मद्रास, नं. १२२३०, अप्रकाशित।

२. अप्रकाशित, **तञ्जोर कैटलॉग** नं. ४१५८

पद्यभाग में कहीं-कहीं तीखा व्यङ्ग्य दिखाई पड़ता है। गद्यभाग में तो कादम्बरी तथा दशकुमारचरित जैसी रचना की रमणीयता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

६८. **तत्त्वगुणादर्शचम्पू**[1] - इस चम्पू के रचयिता अण्णाचार्य हैं। ये श्रीशैल-परिवार के थे। इनका समय १६वीं शती का अन्त और १८ वीं शती का पूर्वभाग माना जाता है।

कथोपकथन की शैली में लिखा यह चम्पूकाव्य जय-विजय के संवाद के रूप में शैव एवं वैष्णव सिद्धान्तों के गुण-दोषों का वर्णन करता है। जय शैव मत को उपस्थापित करता है, विजय वैष्णव मत के गुण-दोषो का वर्णन करता है। तत्त्वार्थ-निरूपण एवं कवित्व-चमत्कार दोनों का सम्यक् समावेश प्रस्तुत चम्पूकाव्य में देखने को मिलता है। वेङ्कटाध्वरि का विश्वगुणादर्शचम्पू इसका आदर्श है।....

६९. **जानराजचम्पू**[2]- जानराजचम्पू का उल्लेख न तो डॉ. त्रिपाठी के द्वारा किया गया है। न ही डॉ. वर्णेकर के द्वारा। इसके रचयिता थे कृष्णदत्त उपाध्याय, जो बाल्यकाल से ही काव्य-रचना में कुशल होने के कारण बालकवि कृष्णदत्त के नाम से मिथिला में प्रसिद्ध हुए। अपने गीतगोपीपतिकाव्य[3] में कृष्णदत्त ने लिखा है कि वे उद्यान (उजान) ग्रामवासी थे:-

"उद्यानवास्तव्य समस्त विद्यश्रीकृष्णदत्तस्य कवित्वमेत्"[4]। कृष्णदत्त मिथिला में अपने सारस्वत वैभव के लिए प्रसिद्ध सोदरपुर मूल[5] की कन्हौली शाखा में उत्पन्न मैथिल श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। इनके पिता[6] का नाम था भवेश एवं माता का नाम भगवती देवी।

डॉ. सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे ने सन् १७४० से १७८० ई. तक का समय कृष्णदत्त की रचनाओं का काल माना है।[7]

जानराजचम्पू के रचयिता भोसलावंशीय जानूजी महाराज के आश्रित एवं समसामयिक थे। अतः अठ्ठारहवीं शताब्दी में ये साहित्यिक रचना में संलग्न थे। पुरञ्जनचरितनाटक एवं जानराजचम्पू में इन्होंने समसामयिक भोसलावंशीय महाराजों एवं राजकुमारों का उल्लेख किया है।

---

१. **डिस्क्रिप्टिव कैटलाग** मद्रास, न. १२३३३
२. गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विदयापीठ, प्रयाग से... प्रकाशित डा. जगन्नाथ पाठक द्वारा सम्पादित।
३. स्व. डा. गंगानाथ झा द्वारा सम्पादित होकर १६३० में ... प्रकाशित।
४. XII-२८
५. सोदरपुर कुलजातकविकृष्णम्-गीतगोपीपति XI-२६
६. विद्वद्वंशवतंसितः सुचरितस्तातो भवेशाभिधो ज्येष्ठा यस्य पुरन्दरप्रभृतयः षट्शास्त्रपारङ्गताः। लब्धा शैशव एव येन सकला विद्या प्रसाद्याम्बिकां तेनाकारि बुधेन कृष्णकविना श्रीगीतगोपीपतिः।। वही-XII-२७
७. **पुरञ्जनचरितनाटक** (भूमिका)-विदर्भ संशोधन मण्डल नागपुर से सन् १६६१ में प्रकाशित।

चम्पूकार कृष्णदत्त के प्रसंग में किंवदन्ती है कि बचपन में ही एक रात स्वप्न में शारदा देवी ने उन्हें स्तनपान कराया। फलतः इन्हें लोकोत्तर प्रतिभा प्राप्त हुई। इनके विषय में अन्य अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं जिनका उल्लेख म.म. डॉ. गङ्गानाथ झा. पण्डित त्रिलोकनाथ मिश्र, डा. जगन्नाथ पाठक, डा. पुष्टिनाथ झा प्रभृति विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

जानराजचम्पू गद्य-पद्यमय एक अनूठा चम्पूकाव्य है। यह पद्यबहुल है। पद्यों की संख्या ३०५ है और गद्य-खण्ड हैं ३७ मात्र। ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। इस चम्पूका ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि इसमें नागपुर के भोसलावंशीय राजाओं विशेषकर रघूजी महाराज और उनके सुपुत्र जानूजी महाराज के जीवन के इतिवृत्तों का विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इन नरेशों की कीर्ति-कौमुदी को अक्षुण्ण रखने का श्रेय इसी ग्रन्थ को है। भोसलावंशीय नरेशों की धार्मिकता, दानशीलता, शूरता आदि का तथ्यपूर्ण वर्णन इस चम्पू का वर्ण्य-विषय है। जानूजी महाराज के पूर्वजों एवं चम्पूकार के समसामयिक जानूजी के वंशजों का परिचय नामोल्लेख पुरस्सर दिया गया है।

साहित्यिक दृष्टि से भी यह चम्पू-काव्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है। रीतियों में वैदर्भी, गौडी एवं पाञ्चाली-त्रिविध रीतियों का प्रयोग यथास्थान किया गया है। गुणों में माधुर्य, ओजः एवं प्रसाद तीनों गुणों का समावेश यत्र-तत्र किया गया है।

सभी मुख्य अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है। शब्दालङ्कार में अनुप्रास की छटा गद्यांशों एवं पद्यांशों में पायी जाती हैं। अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति, अपह्नुति, समासोक्ति, तुल्ययोगिता तथा काव्यलिङ्ग के अधिक उदाहरण हैं। हाँ, दीपक, व्याजस्तुति, उल्लेख, दृष्टान्त, पर्यायोक्त, व्यतिरेक, विषम, निदर्शना, विनोक्ति, असङ्गति, भ्रान्तिमान् आदि अलङ्कारों के भी उदाहरण जानराजचम्पू में मिलते हैं।

जानराजचम्पू का अङ्गी रस है वीर किन्तु स्थान-स्थान पर परिस्थिति के अनुसार अन्य रसों का भी सम्यक् परिपाक हुआ है। रघूजी एवं जानूजी महाराजों के द्वारा जो शत्रु-राजाओं के साथ युद्ध किए गए उनके वर्णन वीररस से लबालब भरे हैं। वीररस के चारों भेदों-युद्धवीर, दानवीर, दयावीर तथा धर्मवीर के उदाहरण प्रस्तुत चम्पूकाव्य में उपलब्ध हैं। अन्य रसों में रसराज शृंगार, हास्य, भयानक, रौद्र तथा शान्त रस के भी उदाहरण इस चम्पूकाव्य में उपलब्ध हैं।

जानराजचम्पू के रचयिता यद्यपि दोषपरिहार के लिए पूर्ण सयत्न प्रतीत होते हैं तथापि दुःश्रवत्व, च्युतसंस्कार, क्लिष्टत्व तथा अश्लीलत्व के कुछ उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं।

जहाँ तक छन्दों के प्रयोग का प्रश्न है कृष्णादत्त ने सर्वाधिक श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में लिखे हैं। तत्पश्चात् स्रग्धरा, शिखरिणी, मालिनी, हरिणी, भुजङ्गप्रयात, पुष्पिताग्रा,

उपजाति, वसन्ततिलका, वंशस्थ, अनुष्टुप्, आर्या, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, वियोगिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, पृथ्वी, अतिरुचिरा, मञ्जुभाषिणी के भी प्रयोग मिलते हैं।

राजनीतिविषयक, धर्मविषयक, नैतिकताविषयक एवं सामान्य सूक्तियाँ प्रस्तुत चम्पूकाव्य में यत्र-तत्र भरी पड़ी हैं। वर्णन-नैपुण्य कृष्णदत्त की विशिष्टता है। प्राकृतिक वस्तुओं, दृश्यों, ऋतुओं एवं युद्धों के वर्णन में कवि ने अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया है। गोदावरी नदी का वर्णन, उपवन का वर्णन, सरोवर का वर्णन, सूर्यास्त का वर्णन तथा चन्द्रोदय का वर्णन दर्शनीय है। युद्धों के वर्णन में इनकी प्रवीणता और भी निखरी है।

७०. **चोलचम्पू**[1]-विरूपाक्ष कवि प्रस्तुत चम्पू-काव्य के रचयिता हैं। इनका समय अनुमानतः सत्रहवीं शताब्दी माना गया है। चोलचम्पू का आधार है भविष्योत्तरपुराणान्तर्गत बृहदीश्वरमाहात्म्य का चतुर्थ से अष्टम अध्याय जहाँ कुलोत्तुङ्ग एवं देवचोल का वर्णन किया गया है। इस चम्पूकाव्य में वर्ण्य-विषय निम्नलिखित है:-

रवर्वट-ग्राम-वर्णन, कुलोत्तुङ्गवर्णन, कुलोत्तुङ्ग की शिवभक्ति, वर्षागम, शिवदर्शन, शिवद्वारा कुलोत्तुङ्ग को राज्य-दान, कुबेरागमन, तञ्जासुर की कथा, कुबेर की प्रेरणा से कुलोत्तुङ्ग का राज्यग्रहण, राज्य का वर्णन, पुत्रजन्म-महोत्सव, राजकुमार को अनुशासन, कुमार चोलदेव का विवाह, पट्टाभिषेक, अनेक वर्षों तक कुलोत्तुङ्ग का राज्य करने के पश्चात् सायुज्य-प्राप्ति एवं देवचोल के शासन करने की सूचना। मूलतः शिव-भक्ति का वर्णन ही प्रस्तुत चम्पू का प्रतिपाद्य विषय है।

७१. **कार्तवीर्यप्रबन्ध**[2]-कार्तवीर्य प्रबन्धनामक चम्पूकाव्य के प्रणेता थे ट्रावनकोर के युवराज अश्विन श्रीराम वर्मा। इनका समय है अट्ठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध। इनकी अन्य उपलब्ध रचनाओं में शृङ्गारसुधाकरभाण, स्थानन्दूरपुरवर्णन आदि हैं।

प्रस्तुत चम्पूकाव्य का वर्ण्य-विषय है रावण एवं कार्तवीर्य का युद्ध एवं कार्तवीर्य की विजय। पराजित होने पर रावण बन्दी बना लिया गया और अन्त में रावण के पितामह पुलस्त्य ऋषि ने कार्तवीर्य को प्रसन्न कर रावण को मुक्त करवाया। इस चम्पूकाव्य का अङ्गीरस है वीर-रस। ओजोगुणविशिष्ट शैली में युद्ध का वर्णन किया गया है। गद्यखण्डों की पदावली ललित एवं अनुप्रासमयी है।

७२. **गङ्गावतरणचम्पूप्रबन्ध**[3] - शङ्कर दीक्षित (मिश्र) की ही दूसरी चम्पू-रचना है गङ्गावतरणचम्पू-प्रबन्ध। यह सात उच्छ्वासों में विभाजित है। रामायण एवं पुराणों में

---

१. मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सिरीज एवं सरस्वती महल सिरीज, तञ्जोर से प्रकाशित।
२. १६४७ में त्रिवेन्द्रम से युनिवर्सीटी मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम न. ४ प्रकाशित।
३. पाद.टि. अप्रकाशित, इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैटलाग टप. ४०४१/११४ डी.।

वर्णित गङ्गावतरण की सुप्रसिद्ध कथा ही इस चम्पूकाव्य का प्रतिपाद्य विषय है। ग्रन्थ का प्रारम्भ गणेश की स्तुति से हुआ है। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि पूर्ववर्ती सुप्रसिद्ध कवियों का भी उल्लेख किया गया है। गद्य-खण्डों में अनुप्रासमयी समस्त पदावली का प्रयोग है। ग्रन्थान्त में कपिलमुनि के शाप से सगर-पुत्रों की मुक्ति का वर्णन है।

# उपलब्ध चम्पू-काव्यों का विवरण, तथा अनिरुद्धचम्पू का परिचय

## चम्पू-काव्य

समस्त ज्ञान, विज्ञान तथा सारी विद्याओं का मूल वेद ही है। **"भूतं भवद् भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति"** (मनु. १२।९७) यह मनुवचन सर्वविदित है। "पश्य देवस्य काव्यम्" (ऋग्वेद) के अनुसार वेद अपौरुषेय काव्य है। वह महर्षि वेदव्यासद्वारा किए गए विभाजन के पूर्व एक अखण्ड मिश्रशैली में था। विभाजन के पश्चाद् पद्यांश को ऋक्, गद्यांश को यजुष् तथा गीति को साम कहा गया। तब भी कृष्णयजुर्वेद की तैत्तरीय, मैत्रायणी तथा कठशाखाएँ मिश्रशैली में हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों के उपाख्यानों में मिश्रशैली अपनाई गई है। ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान (३३ अध्याय) मिश्रशैली का वैदिक निदर्शन है। इसमें प्रबन्धात्मकता भी है-"हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। सह नारदं पप्रच्छ इति"।

**यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न।**
**किं स्वित् पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष्व नारद।। इति (१। पृ. २११)**
**किं एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच इति।**
**ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति।**
**पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्।। (२।। पृ. २११)**

उपनिषदों में कठोपनिषद् का प्रारम्भ मिश्रशैली में ही है। अतः पौरुषेय लौकिक वाक्य का भी शैलीभेद से तीन भेद स्वीकार किया गया। "गद्यं पद्यं च मिश्रं च" (अ.पु. ३३७।८)।

गद्य में अर्थगौरव तथा वर्णन का वैशिष्ट्य होता है पद्य में गेयता, सरसता तथा लय ताल का वैशिष्ट्य होता है। मिश्र काव्य में दोनों का समन्वय एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न करता है। अतः उसकी उपमा बाल्यतारुण्यवती कन्या से दी गयी है। (जीव. च. १। ९)

कहीं वाद्यकलासमन्वित गीति से (चम्पूरामा. वा. का. ३) तथा पद्मरागमणि के मिश्रण से गुम्फित मुक्ताहार से (तत्त्वगुणादर्श १।४) उपमा दी गई है। चम्पू में अलङ्कृत शब्दार्थ, कल्पनासौन्दर्य, विशेषणबाहुल्य, सप्रासप्राचुर्य, चमत्कारजनकता की विशेषता होती है।

चम्पूकाव्य शिलालेखों में ही सीमित थे, कोई पुराना ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। यद्यपि ८ "गद्यपद्यमयी काचि" चम्पूरित्यपि विद्यते"। (का.द.१।३१) इस दण्डीकृत चम्पूलक्षण में "विद्यते" शब्द का प्रयोग दण्डी के समय में चम्पू की सत्ता सिद्ध करता है, तो भी वहीं "काचित्" का प्रयोग सिद्ध करता है कि उन्हें उपलब्ध नहीं था।

परन्तु दशमशती के प्रारंभ में त्रिविक्रमभट्ट की रचना 'नलचम्पू' अपने सौन्दर्य, माधुर्य से सहृदयों को आह्लादित करती हुई काव्य-जगत् में अवतीर्ण हुई। तब से इसकी धारा १६वीं शती तक अविच्छिन्न प्रवाहित होती रही। यद्यपि आज धारा क्षीणप्राय है, तो भी शुष्क तो नहीं ही है। पं. शिवप्रसाद द्विवेदी की रचना 'नवरत्नावलीयम्' चम्पू १६८३ ई. में प्रकाशित हुई है।

## उपलब्ध चम्पू-काव्यों का विवरण

| क्र. सं. | नाम | काल | लेखक | विवरण | स्रोत |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | नलचम्पू अथवा दमयन्ती-कथा | (दशम शताब्दी का प्रारम्भ) | त्रिविक्रमभट्ट | प्रकाशित | महाभारत (नलोपाख्यान) |
| २. | मदालसाचम्पू | १०वीं शती का प्रारम्भ | " | " | मार्कण्डेयपुराण |
| ३. | यशस्तिलक-चम्पू | दशम शती का मध्यभाग | जैन कवि सोमदेव | " | जैनों का उत्तरपुराण |
| ४. | जीवन्धर-चम्पू | दसवीं शती से ११वीं शती तक | हरिश्चन्द्र | " | गुणभद्र का उत्तरपुराण |
| ५. | रामायणचम्पू | ११वीं शती का मध्य | धारापति भोजराज | " | वाल्मीकि रामायण |
| ६. | उदयसुन्दरी-कथा | ११वीं शती | सोड्ढल | " | हर्षचरित का अनुकरण लक्षित होता है |
| ७. | भागवतचम्पू | ११वीं शती | अभिनव कालिदास (उपाधि) | " | श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध |
| ८. | अभिनव-भारतचम्पू | ११वीं शती | नाम अज्ञात | अप्रकाशित | महाभारत |
| ९. | भारतचम्पू | ११वीं शती | अनन्तभट्ट | प्रकाशित | महाभारत |
| १०. | भरतेश्वराभ्युदय-चम्पू | १३वीं शती का पूर्वार्द्ध | आशाधर (दिगम्बर जैनी गृहस्थ) | अप्रकाशित | आदिपुराण |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ११. पुरुदेव-चम्पू | १३वीं शती का उत्तरार्द्ध | अर्हत् या अर्हदास | प्रकाशित | आदिपुराण, उत्तरपुराण, सुव्रत पुराण |
| १२. अमोघराघव-चम्पू | १२९९ ई. | दिवाकर | अप्रकाशित | वाल्मीकिरामायण |
| १३. यतिराज-विजयचम्पू | १४वीं शती का उत्तरार्द्ध | अहोबलसूरि | अप्रकाशित | रामानुज के जीवन पर आधारित |
| १४. विरूपाक्ष वसन्तोत्सव-चम्पू | " | " | प्रकाशित | राजाओं का चरित |
| १५. रुक्मिणी-परिणयचम्पू | " | अम्मल (कमलानन्द) | अप्रकाशित | हरिवंशपुराण |
| १६. आचार्य-विजय-चम्पू | या वेदान्ताचार्य विजयचम्पू १५वीं के बाद | वेदान्ताचार्य | अप्रकाशित | वेदान्तदेशिक का जीवनवृत्त |
| १७. आनन्द-वृन्दावन-चम्पू | १६वीं शती का उत्तरार्ध | (कवि कर्णपुर) परमानन्ददास | प्रकाशित | श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध |
| १८. गोपालचम्पू | १६वीं शती का मध्य | जीवराज | प्रकाशित | " |
| १९. आचार्य-दिग्विजय-चम्पू | १६वीं शती का पूर्वार्द्ध | वल्लीसहाय | अप्रकाशित | शङ्करदिग्विजय |
| २०. काकुत्स्थ-विजयचम्पू | " | " | " | वाल्मीकि रामायण |
| २१. वरदाम्बिका-परिणयचम्पू | " | तिरुमलाम्बा | प्रकाशित | राजकथा |
| २२ वसुचरित्र-चम्पू | १६वीं शती | कवि कालहस्ति | अप्रकाशित | वसुचरित्र |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २३. नाथमुनि-विजयचम्पू | १६वीं शती | रामानुजदास | अप्रकाशित | वेदान्ताचार्य का विवरण |
| २४. श्रीरामानुज-चम्पू | १६वीं शती का अंत भाग | रामानुजार्य | प्रकाशित | रामानुज-जीवन-चरित |
| २५. कल्याणवल्ली-कल्याण | " | श्रीरामानुज देशिक | अप्रकाशित | लिंगपुराण का गौरीकल्याण |
| २६. भागवत-चम्पू | रामभद्र (तंजोर के प्रथम प्रति के अनुसार राजनाथ मद्रासवाली प्रति में) | | अप्रकाशित | श्रीमद्भागवत कंसवधपर्यन्त |
| २७. भागपत-चम्पू | १५८६-१६१४ ई. | चिदम्बर | अप्रकाशित | श्रीमद्भागवत |
| २८. पञ्चकल्याण-चम्पू | " | चिदम्बर | अप्रकाशित | - |
| २९. पारिजातहरण-चम्पू | १६वीं शती | शिवकृष्ण | प्रकाशित | हरिवंशपुराण |
| ३०. तीर्थयात्रा-प्रबन्धचम्पू | १६वीं शती का अंत १७वीं आदि | समरपुंगवदीक्षित | प्रकाशित | हरिवंशपुराण तीर्थयात्रा |
| ३१. आनन्दकन्द-चम्पू | १६वीं का अंत १७वीं प्रारम्भ | " | अप्रकाशित | संग्रहात्मक चरित्र का. |
| ३२. नृसिंहचम्पू | १५वीं का मध्य | दैवज्ञसूर्य | प्रकाशित | पुराण |
| ३३. मन्दारमान्द-चम्पू | १६वीं का उत्तरार्ध १७वीं का पूर्वार्द्ध | श्रीकृष्ण कवि | प्रकाशित | लक्षणग्रन्थ |
| ३४. विद्वन्मो-दतरङ्गिणी | १६वीं शती १५१२ ई. | चिरंजीव भट्टाचार्य (वामदेव) | प्रकाशित | दर्शन |
| ३५. माधवचम्पू | १६वीं शती | चिरञ्जीव भट्टाचार्य | प्रकाशित | काल्पनिक |
| ३६. वीरभद्रदेव-चम्पू | १५७७ ई. | पद्मनाभ मिश्र | प्रकाशित | राजवर्णन |

उक्त ३६ चम्पू दशम शती ई. के प्रारम्भ से १६वीं शताब्दी तक के निर्मित हैं। सोलहवीं शती के बाद के चम्पू-काव्यों का विवरण निम्नाङ्कित है।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ३७. मत्स्यावतार-प्रबन्ध- | १५६० से १६६६ के मध्य | नारायण भट्ट | प्रकाशित | पुराण |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ३८. राजसूयप्रबन्ध | " | " | " | महाभारत सभापर्व |
| ३९. पाञ्चाली-स्वयंवर | " | " | अप्रकाशित | " आदिपर्व |
| ४०. स्वाहा-सुधाकरचम्पू | " | " | प्रकाशित | प्रणयकाव्य |
| ४१. कोटिविरह | " | " | " | प्रणयकाव्य |
| ४२. नृगमोक्ष | " | " | अप्रकाशित | श्रीमद्भागवत |

मत्स्यावतार भूमिका पृ. ३ पर नारायण रचित ८ निम्नाङ्कित चम्पू का वर्णन है। ४३. सुभद्राहरण, ४४. पार्वतीस्वयंवर, ४५. नलायणीचरित, ४६. कौन्तेयाष्टक, ४७. दूतवाक्य, ४८. किरात, ४९. निरनुनासिकचम्पू, ५०. दक्षयाग उसमें ४५-५० तक छः चम्पू काव्यों का मलयालम संस्करण उपलब्ध है। (केरली साहित्य दर्शन पृ. ५४-५५)।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ५१. व्याघ्राल-येशाष्टमी-महोत्सवचम्पू | १७वीं शती | नारायण भट्ट | अप्रकाशित | पुराण |
| ५२. आनन्द-कन्दचम्पू | १७वीं शती का पूर्वार्ध | मित्रमिश्र | प्रकाशित | भागवत |
| ५३. नृसिंह-चम्पू (प्रह्लाद चम्पू) | १६८४ ई. | केशवभट्ट | प्रकाशित | पुराण |
| ५४. विश्वगुणा-दर्शचम्पू | सत्रहवीं शती, पूर्वार्ध | वेंकटाध्वरिन् | प्रकाशित | काल्पनिक |
| ५५. वरदाभ्युदय (हस्तगिरिच.) | " | " | " | पौराणिक |
| ५६. उत्तर-रामचरितचम्पू | " | " | प्रकाशित | रामायण |
| ५७. नीलकण्ठ-विजयचम्पू | १६३६ ई. | श्रीनीलकण्ठदीक्षित | प्रकाशित | पुराण |
| ५८. त्रिपुरविजय-चम्पू | १७वीं का मध्य | अतिराजयाजिन् | अप्रकाशित | पुराण |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ५६. त्रिपुर-विजयचम्पू | १७वीं का मध्य | नरसिंहाचार्य | अप्रकाशित | पुराण |
| ६०. केरलाभरणम् | १७वीं शती का उत्तरार्ध | रामचन्द्र दीक्षित | अप्रकाशित | |
| ६१. वैकुण्ठ-विजयचम्पू | १७वीं शती का उत्तरार्ध | | श्रीनिवासाचार्य | |
| ६२. उत्तर-चम्पूरामायण | " | " | " | अप्रकाशित रामायण |
| ६३. द्रौपदी-परिणयचम्पू | " | चन्द्रकवि | प्रकाशित | महाभारत आदिपर्व |
| ६४. गोदा-परिणयचम्पू | " | केशवनाथ भट्टाचार्य | अप्रकाशित | लोकोक्ति |
| ६५. गौरीमायूर-माहात्म्यचम्पू | १७वीं शती का अन्त १८वीं का आदि | अप्पादीक्षित | अप्रकाशित | मायावरम् माहात्म्य |
| ६६. वेंकटेशचम्पू | १७वीं शती का अंत | धर्मराज | अप्रकाशित | पौराणिक कथा |
| ६७. भैष्णी-परिणयचम्पू | १७वीं शती का उत्तरार्ध | श्रीनिवास मखिन | अप्रकाशित | श्रीमद्भागवत |
| ६८. बाणासुर-विजयचम्पू | १७वीं शती का उत्तरभाग | वेंकटार्य | " | " |
| ६९. तत्त्वगुणादर्शचम्पू | १७वीं का अंत १८वीं पूर्वार्ध | श्रीअणायार्य | " | सम्प्रदाय |
| ७०. धर्मविजयचम्पू | १७वीं का अंत १८वीं का पूर्वभाग | नल्ला दीक्षित या भूमिनाद | " | शैव वंशज राजा का वर्णन |
| ७१. भोसलवंशावलीचम्पू | १८वीं का आदिभाग | वेंकटेश (नैध्रुव) | " | वंशावली |
| ७२. श्रीनिवास-चम्पू | " | वेंकटाध्वरि या वेंकटकवि | प्रकाशित | राजचरित |
| ७३. दत्तात्रेयचम्पू | १७वीं शती का उत्तरार्ध या अनिर्णीत | दत्तात्रेय | अप्रकाशित | पुराण |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ७४. भद्रकन्या-परिणयचम्पू | १७वीं शती का अन्तिम गङ्गाधर | अप्रकाशित | | श्रीमद्भागवत |
| ७५. भारतचम्पू-तिलक | अनिर्णीत | लक्ष्मणसूरि | अप्रकाशित | महाभारत |
| ७६. चम्पूरामायण युद्धकाण्ड | " | लक्ष्मण कवि | प्रकाशित | रामायण |
| ७७. कुमार-भार्गवीय | - | भानुदत्त | अप्रकाशित | पुराण |
| ७८. उत्तरचम्पू | १७वीं शती का अंत १८वीं का आदि | भगवन्तकवि | अप्रकाशित | रामायण उ.का. |
| ७९. विक्रमसेन-चम्पू | " | " | नारायण राय | " चरितकाव्य काल्पनिक |
| ८०. श्रीकृष्ण-विलासचम्पू | - | नरसिंहसूरि | " | श्रीमद्भागवत |
| ८१. शङ्करा-नन्दचम्पू | - | गुरु स्वयंभूनाथ राम | " | महाभारत |
| ८२. विवुधानन्द-प्रबन्धचम्पू | १८वीं शताब्दी | वेंकटकवि | " | यात्राप्रबन्ध |
| ८३. दिव्यचाप-विजयचम्पू | चक्रवर्ती श्रीवेंकटाचार्य | | " | पौराणिक कथा |
| ८४. मार्गसहाय-चम्पू | - | नवनीत | " | देवपूजा |
| ८५. मारुतिविजय-चम्पू | रघुनाथकवि (कुमारभट्ट रघुनाथ) | | " | रामायण |
| ८६. मीनाक्षी-कल्याणचम्पू | कन्दुकुरीनाथ | | अप्रकाशित | हालास माहात्म्य |
| ८७. भिल्लकन्या-परिणयचम्पू | कोई नृसिंह भक्त नाम अज्ञात | | अप्रकाशित | लोककथा |
| ८८. रामायण (युद्धकाण्ड) | १७वीं शताब्दी | राजचूड़ामणि दीक्षित | अप्रकाशित | रामायण |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ८६. शिवचरित्रचम्पू | - | कविवादिशेखर | अप्रकाशित | पुराण |
| ९०. चोलचम्पू | १७वीं शती (अनुमानित) | विरूपाक्ष कवि | प्रकाशित | भविष्योत्तर पुराण |

संस्कृत लिटरेचर-लेखक ने १४वीं शती का माना है, इनकी दूसरी कृति नरकासुरविजय है

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ९१. शिवविलासचम्पू | - | विरूपाक्ष कवि | अप्रकाशित | पुराण |
| ९२. कार्तवीर्यप्रबन्ध | - | श्रीराम वर्मा | प्रकाशित | रामायण उ.का. |
| ९३. शङ्करचेतोविलास चम्पू | १८वीं शती का उत्तरार्ध | शङ्करमिश्र (दीक्षित) | अप्रकाशित | काशीवर्णन काशीनरेश चेतसिंह का |
| ९४. गङ्गावतरणचम्पू | " | " | " | पुराण |
| ९५. रामचन्द्रचम्पू | १८वीं का पूर्वार्ध | महाराज विश्वनाथ सिंह | अप्रकाशित | रामायण |
| ९६. चित्रचम्पू | १८वीं शती का पूर्वार्ध | श्रीवागेश्वर विद्यालङ्कार | प्रकाशित | पुराणाश्रित कल्पना |
| ९७. आनन्दरंगविजयचम्पू | १८वीं शती | श्रीनिवास कवि | प्रकाशित | वाजवंशवर्णन |
| ९८. चन्द्रशेखरचम्पू | १६वीं शती का अंत २०वीं का प्रारम्भ | रामनाथ कवि | प्रकाशित | काल्पनिक |
| ९९. भागीरथीचम्पू | - | अच्युत शर्मा | प्रकाशित | पुराण |
| १००. रघुनाथविजयचम्पू | ई. १८६५ में | कवि सार्वभौम कृष्ण | प्रकाशित | चरित |
| १०१. कविमनोरञ्जकचम्पू | १८७० ई. | सीताराम सूरि (रामस्वामी) | प्रकाशित | तीर्थयात्रा |
| १०२. कुमारसम्भवचम्पू | १८००-१८३२ ई. | शरभोजी (द्वितीय) | प्रकाशित | पुराण |

अन्य प्रकाशित तथा अप्रकाशित चम्पू जो कम प्रसिद्ध हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०३. भोजप्रबन्ध – | वल्लाल पण्डित | प्रकाशित | |
| १०४. राज- – शेखरचरित | कवि कुञ्जर | अप्रकाशित | डी.सी. मद्रास ८१६७ |
| १०५. मुक्तचरित्र | रघुनाथदास | प्रकाशित | |
| १०६. रामायण- – चम्पू | रामानुजदेशिक | अप्रकाशित | डी.सी. २१ ८५०४ |
| १०७. त्रिपुर- – विजयचम्पू | नीलकण्ठ दीक्षित | " | तंजोर कैट-बरवल पृ. १५८ |
| १०८. शाहराज- – सभा सरोवर्णिनी | लक्ष्मण कवि | अप्रकाशित | तंजोर कैट पृ. ४२३५ |
| १०९. रामायण- – युद्धकाण्ड | घनश्याम दीक्षित | अप्रकाशित | ए.एन.आर. १६८१ |
| ११०. रामायण- – युद्धकाण्ड | मुक्तीश्वर दीक्षित | " | ए.एन.आर. ३, १६८१ |
| १११. वीरभद्र- – विजय | एकाग्रनाथ दीक्षित | " | टियनियल कैट १,१, १६१०-१३ |
| ११२. रुक्मिणी- – चम्पू | गोवर्धन | " | कलकत्ता कैट. १, ५२७। |
| ११३. सुमतीन्द्र- – जय घोषणा | सुमतीन्द्र | " | तंजोर कैट. ४२३७। |
| ११४. भद्राचलचम्पू | राघवार्य | प्रकाशित | |
| ११५. कर्णचम्पू कक्का भट्ट | अप्रकाशित | जी.आर.ए.एस. बम्बई, | |
| ११६. शिवचरित्रचम्पू | गङ्गाधरकवि | अप्रकाशित | बी. १, १२४३ |
| ११७. श्रीनिवासमु - श्रीनिवास रामानुजदासीय नियात्राविलास | | अप्रकाशित | टी.सी. ३,२८८२। |
| ११८. " " | गोविन्दास, अप्रकाशित | | टी.सी.,२८८५। |
| ११९. श्रीनिवास-कृष्णकवि, विलासचम्पू | प्रकाशित, | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२०. कृष्ण-विलासचम्पू | लक्ष्मणकवि, | अप्रकाशित | डी.सी. मद्रास १२२२८। |
| १२१. श्रुतकीर्तिविलासचम्पू | सूर्यनारायण, | अप्रकाशित | डी.सी. २१, ८५६३। |
| १२२. इन्दिराभ्युदयचम्पू | रघुनाथ, | अप्रकाशित | मैसूर कैट. २६४ |
| १२३. उषापरिणयचम्पू | अज्ञात | अप्रकाशित | डी.सी. मद्रास १२३०२। |
| १२४. अनिरुद्ध- -चम्पू | देवराज | प्रकाशित | सरस्वती भवन वाराणसी |
| १२५. दमयन्तीपरिणय | अज्ञात | अप्रकाशित | टी.सी. ५, ६४१५ |
| १२६. पद्मावती- -परिणय | श्रीशैल | संस्कृतसिरीज में कार्वेटनगर से प्रकाशित। | |
| १२७. कालिन्दी- -मुकुन्दचम्पू | अज्ञात | अप्रकाशित | डी.सी. मद्रास १२२२६। |
| १२८. मीनाक्षीपरिणय - | आदि नारायण | अप्रकाशित | मैसूर कैट.२६७। |
| १२९. पद्मनाभचरित चम्पू | कविकृष्ण, | अप्रकाशित | ट्रावंकोर कैट. ८१। |
| १३०. यमुना-वर्णनचम्पू | पण्डितराज जगन्नाथ | प्रकाशित | भारतीय सा शा. बलदेवोपाध्याय |
| १३१. श्रीकृष्णचम्पू | कृष्णकवि | अप्रकाशित | डी.सी. २१, ८१८६। |
| १३२. सत्राजिती-परिणयचम्पू | कृष्णदास गांगेय | अप्रकाशित | टी.सी. ३, २७३२। |
| १३३. आञ्जनेयविजय | नृसिंह कवि, | अप्रकाशित | मैसूर २६१। |
| १३४. हनुमदापादान | " | " | तंजोर कैट. वो ४, ४३६७। |
| १३५. पुरुषोत्तमचम्पू | नृसिंह आचार्य | " | मैसूर २७४। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १३६. वीरभद्रविजय | मल्लिकार्जुन | " | आई.सी. ४, ६११३। |
| १३७. कलाकौमुदीचक्रपाणि | " | सी.सी.१, ७७७। | |
| १३८. सत्यसन्धचरित | कल्पवल्लीकवि | " | मैसूर २७१। |
| १३९. चिन्तामणिविजय | शेष कवि | " | मैसूर २६४। |
| १४०. यादवशेखरचम्पू | भाष्यकार | " | " २६६। |
| १४१. जैनाचार्यविजय | अज्ञात | अप्रकाशित | डी.सी. २६।९७४६। |
| १४२. सीताविजय घण्टावतार | अप्रकाशित | मैसूर २७२। | |
| १४३. वकवध | अज्ञात या नारायणभट्ट (?) | अप्रकाशित | तंजोरकैट ३. ४०११। |
| १४४. कुमाराभ्युदय | अज्ञात | अप्रकाशित | तंजोर कैट . ३, ३५२१। |
| १४५. पञ्चेन्द्रोपाख्यान | अज्ञात | अप्रकाशित | टी.सी. ३, ३४२०। |
| १४६. हयवदनविजय | वेंकटराघव | " | मैसूरकैट. २७२। |
| १४७. कुमारविजय | वमास्कर। | " | टी.सी. ४, ५८८१। |
| १४८. कल्याणचम्पू | पप्ययाराध्य। | अप्रकाशित | टी.सी. ५।६५७५। |
| १४९. भार्गवचम्पू | अज्ञात | प्रकाशित/गोपाल नारायण कम्पनी बम्बई | |
| १५०. सम्पत्कुमार विलास | रंगनाथ | अप्रकाशित | डी.सी. २१।८८५०। |
| १५१. जप्येशोत्सव | वेंकटसुब्बा | अप्रकाशित | मैसूर २६४। |

१५२. कृष्णचम्पू शेषसुधि। गोदावरी जिले के पी.बी. सुब्रह्मण्य शास्त्री राजोले के पास हस्तलिखित प्रति प्राप्य।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १५३. गोपालचम्पू | विश्वनाथ सिह | अप्रकाशित, मित्रा कैट. बा.ल. १, ७३। | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १५४. बालभागवतम् | पद्मराज | प्रकाशित | (राजमाहेन्द्री से) |
| १५५. भागवतचम्पू | सोमशेखर | अप्रकाशित | टी.सी. ३, ३१४५। |
| १५६. बालकृष्णचम्पू | जीवनशर्मा | प्रकाशित | मित्रा कैट. वोल्यूम १, ७१ बम्बई से। |
| १५७. श्रीनिवासचम्पू | श्रीनिवास | अप्रकाशित | तंजोर कैट. ७, ३१६८। |
| १५८. रामकथासुधोदयम् | '' कवि | '' | मैसूर कैट. २६६। |
| १५६. मुकुन्दचरित | '' | '' '' | २६८। |
| १६०. बल्लीपरिणय | सुब्रह्मण्य यज्ञ, | प्रकाशित | मद्रास से। |
| १६१. काव्यकलापचम्पू | महानन्दधीर | अप्रकाशित | मित्रा कैट. वोल्यूम २, ६३१ |
| १६२. अश्वत्थक्षेत्रयागचम्पू | अज्ञात | '' | त्रावंकोर कैट. ७६। |
| १६३. कृष्णचम्पू परशुराम कवि | '' | म. १०६। | |
| १६४. आनन्ददामोदरचम्पू | भुवनेश्वर कवि | '' | क.ए.सो.वा. २३। |
| १६५. उत्तरचम्पू ब्रह्मपण्डित - कृष्णमाचारी का इतिहास, उल्लेखमात्र | | | |
| १६६. उत्तरचम्पू राघवभट्ट | '' | '' | '' '' |
| १६७. आनन्दवृन्दावन | माधवानन्द | अप्रकाशित | अवध २१, ६२। |
| १६८. गोपालचम्पू किशोरविलास | अप्रकाशित | क.क. ३, ३५। | |
| १६६. कृष्णविजय वीरेश्वर | '' | टी.सी. २, २२६०। | |
| १७०. कृष्णविजय कवि कृष्णराज | '' | राइसकैट. २४८। | |
| १७१. वृन्दावनविनोद | रुद्रन्यायवाचस्पति | '' | - - |
| १७२. यदुगिरिभूषणचम्पू | अप्पलाचार्य | '' | कु. वोल्यूम ४, ३००५। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १७३. हरिश्चन्द्रचरित्रचम्पू | गुरुराम | " | कु. वोल्यूम ३, २०८३। |
| १७४. गौरीपरिणयचम्पू | पिन्नावेंकटसूरि | " | टी.सी. ३, ३०८१। |
| १७५. रुक्मिणीवल्लभपरिणय | नृसिंह ताता | " | मैसूर १७०। |
| १७६. वीरचम्पू | पद्मानन्द | " | त्रावंकोर कैट. १८२। |
| १७७. सुदर्शनचम्पू | कृष्णानन्दकवीन्द्र | प्रकाशित | काव्यमाला बम्बई। |
| १७८. वज्रमूक्तिविलास, | योगानन्द | अप्रकाशित | मैसूर २७० |
| १७६. मृगयाचम्पू कविराज | | अप्रकाशित | टी.सी. ४, ३२१८। |
| १८०. पार्वतीपरिणयचम्पू | रामेश्वर | अप्रकाशित | टी.सी. ३,४१३८ |
| १८१. उत्तरचम्पू | हरिहरानन्द | अप्रकाशित | एन.डब्लू. २७०। |
| १८२. रामायणचम्पू-युद्धकाण्ड | गरलपुरीशास्त्रिन् | प्रकाशित | मैसूर से। |
| १८३. भागवतचम्पू | गोपाल शास्त्रिन् | कृष्णमाचारी का इतिहास | उल्लेख। |
| १८४. भारतचरित भागवतकृष्ण शर्मा | | प्रकाशित | मद्रास। |
| १८५. अभिनवभारतचम्पू | श्रीकण्ठ और चन्द्रशेखर | अप्रकाशित | मैसूर कैट. २६३। |
| १८६. कृष्णराजाभ्युदय, | भागवतकृष्ण शर्मा | प्रकाशित | मद्रास। |
| १८७. जगद्गुरुविजय | श्रीकण्ठशास्त्री | प्रकाशित | मैसूर |
| १८८. शम्बरासुरविजय | सोंठी भद्राद्रिराम शास्त्रिन् | प्रकाशित | मद्रास। |
| १८६. रामायणचम्पू | सुन्दरवल्ली | " | " |
| १६०. रामचर्यामृत | कृष्णायंगर | " | मैसूर। |
| १६१. रामाभ्युदय | अवांचिराम शास्त्री | अप्रकाशित | टी.सी. २,१८१८। |
| १६२. सीतारामचम्पू | गुड्डूरामास्वामी - | कृष्णमाचारी का इतिहास | उल्लेख। |
| १६३. रामचम्पू | बन्दलामुडिरामस्वामी | | मद्रास से प्रकाशित। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १६४. वासुदेवनन्दिनी | गोपालकृष्ण | अप्रकाशित | सी.सी. १, १६१। |
| १६५. महीसुराभिवृद्धि | वेंकटराम शास्त्री | अप्रकाशित | – – |
| १६६. महीसुरदेशाभ्युदय | सीताराम कवि | अप्रकाशित | – – |
| १६७. कृष्णप्रभावोदय | अनवत्ति श्रीनिवासाचार्य | अप्रकाशित | – – |
| १६८. कृष्णराजकालोदय | यदुगिरि अनन्ताचार्य | अप्रकाशित | – – |
| १६६. कृष्णराजेन्द्रयशोविलास | एस.नरसिंहाचार्य | अप्रकाशित | – – |
| २००. श्रीकृष्णराजाभ्युदय | गीताचार्य | मैसूर संस्कृत कालेज जर्नल में प्रकाशित १-४। | |
| २०१. श्रीकृष्णनृपोदयप्रबन्ध | कुक्के सुब्रह्मण्यशास्त्री, | अप्रकाशित | |

उपर्युक्त छः रचनायें ऐतिहासिक हैं। मैसूर के राजा कृष्ण के अभ्युदय का वर्णन करती हैं। सबका रचनाकाल १६वीं शताब्दी है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| २०२. सारावतीजलपातवर्णनम् | कुक्के सुब्रह्मण्यशास्त्री, | अप्रकाशित | |
| २०३. गङ्गाविलासचम्पू | गोपाल | अप्रकाशित | सी.सी. २, ३२। |
| २०४. जगदम्बाचम्पू | ” | ” | सी.सी. २, ३७। |
| २०५. बाणायुधचम्पू | कोंकडी तम्बीरन् | अप्रकाशित | |
| २०६. गजेन्द्रचम्पू | पन्तविट्ठल | पूना से प्रकाशित | |
| २०७. विशाखातुलाप्रबन्ध | ए.आर. राजवर्मा | अप्रकाशित । | |
| २०८. विशाखासेतुयात्रावर्णनम् | गणपति शास्त्रिन् | अप्रकाशित । | |
| २०६. विशाखाकीर्तिविलास | रामास्वामी शास्त्रिन् | अप्रकाशित | |

२०७ से २०६ तक तीनों चम्पू त्रावंकोर के महाराज विशाखकी स्तुति तथा चरित वर्णन करते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| २१०. शङ्करचम्पू | लक्ष्मीपति | अप्रकाशित | मैसूर। २१७ |
| २११. अभिनवरामायण | लक्ष्मणदात्ते | अप्रकाशित | भण्डारकर लिस्ट १, (१८६३) नं. ३६। |

| | | |
|---|---|---|
| २१२. लक्ष्मीश्वरचम्पू | रमाबाई | कलकत्ता से प्रकाशित । |
| २१३. स्यानन्दूरपूरवर्णचम्पू | रामवर्म | अनन्तशयनम् से प्रकाशित। |
| २१४. लक्ष्मीश्वर | अनन्तसूर्य | बम्बई से प्रकाशित । |
| २१५. राघवचम्पू | असूरि अनन्ताचार्य | बैजवाड़ा से प्रकाशित। |
| २१६. गङ्गागुणादर्श | दत्तात्रेयशास्त्री | बम्बई से प्रकाशित। |
| २१७. रथशेखरचरित | दयावर्धन गणि | " " |
| २१८. कुवलयाश्वविलासचम्पू | त्रिविक्रम कवि, | " " |
| २१९. शङ्करमन्दारसौरभम् | नीलकण्ठ | अप्रकाशित, बम्बई युनिव. मैन्यू. वाल्यू. २, २२९०। |
| २२०. मानभूपालचरितम् | वेदान्तरामानुज | अप्रकाशित मैन्यू. त्रिवेन्द्रम् नं. ३८८। |
| २२१. प्रदोषमाहात्म्य | प्रभाकरतालमण, | त्रिचूर से प्रकाशित । |
| २२२. शङ्कराचार्यचम्पूकाव्यम् | बालगोदावरी | बम्बई से प्रकाशित। |
| २२३. बेहुलानरुखिन्दरम् | भगवच्चन्द्र, | कलकत्ता से प्रकाशित। |
| २२४. पुरुदेवचम्पू | जिनदास शास्त्री | बम्बई से प्रकाशित। |
| २२५. गुणेश्वरचरितचम्पू | बद्रीनाथ झा, | काशी से प्रकाशित। |
| २२६. प्रतापचम्पू | दिलीपकवि | प्रकाशित। |
| २२७. भारतचम्पू मथुराप्रसाद | प्रकाशित। | |

उपर्युक्त २२६-२२७ चम्पू-काव्यों का उल्लेख डॉ. सूर्यकान्त ने नृसिंहचम्पू की भूमिका में किया है।

राइस और गुस्ताव आफ्रेट के कैटलाग में निम्नलिखित चम्पूकाव्यों का उल्लेख हुआ है -

| | | | |
|---|---|---|---|
| २२८. उक्लचम्पू | उक्ल | अप्रकाशित | राइस २२८५। |
| २२९. यादवचम्पू | अज्ञात | अप्रकाशित | आफ्रेट ५१४०। |
| २३०. अश्वमेधचम्पू | अज्ञात | अप्रकाशित | आफ्रेट वोल्यूम २, १८८५ ई. पृ. ६७। |
| २३१. चूड़ामणिचम्पू | अज्ञात | " | " पृ. ६७१। |
| २३२. दशारामचम्पू | " | " | " " " |

| | | |
|---|---|---|
| २३३. दीक्षाटन चम्पू | " | " " " " |
| २३४. लक्ष्मणचम्पू | " | " " " " |
| २३५. प्रणयीमाधवचम्पू | माधवकवि, | पिटरसंस थर्ड रिपोर्ट, २१६। |
| २३६. अभिनवचम्पूरामायण | शाम्बशास्त्री | अप्रकाशित। |
| २३७. उत्तरचम्पू | शङ्कराचार्य | अप्रकाशित |
| २३८. उत्तरचम्पू | यतिराज | " |
| २३९. उत्तरचम्पू | वेंकटकृष्ण | " |
| २४०. किरातार्जुनीयचम्पू | देवराज | " |
| २४१. किशोरचरितचम्पू | अज्ञात | " |
| २४२. नृसिंहचम्पूसंकर्षण | " | " |
| २४३. रामचन्द्रचम्पू | रामचन्द्रदीक्षित | " |
| २४४. शालिवाहनकथा | शिवदाससूरि | प्रकाशित। |
| २४५. समतादिताकथा | अज्ञात | अप्रकाशित। |

विशेषः-२३६ से २४५ तक के चम्पूकाव्यों का उल्लेख कृष्णमाचारी ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में किया है।

| | | |
|---|---|---|
| २४६. जानराजचम्पू - १८वीं का उत्तरार्ध | बालकवि कृष्णदत्त | जीवनचरित (राजवंश) |
| २४७. सुलोचनामाधवचम्पू | १६वीं शती का अन्त | पं. धर्मदत्त, प्रसिद्ध नाम बच्चा झा। |

**इन चम्पूकाव्यों के विवरण का आधार-** इन चम्पूकाव्यो के विवरण का आधार है 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' (बलदेव उपाध्याय) तथा (छविनाथ त्रिपाठी निर्मित) चम्पूकाव्यों का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन। संस्कृतसाहित्य का इतिहास (कृष्णमाचारी) यद्यपि दसवीं शती के प्रारम्भ से सोलहवीं शती तक कुल ३६ चम्पूकाव्यों की ही रचना हुई है, परन्तु साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से ये रचनाऐं महत्त्वपूर्ण हैं।

शेष ६६ चम्पूकाव्यों की रचना १७वीं तथा १८वीं के पूर्वार्ध तक हुई है। इस प्रकार १०२ चम्पूकाव्यों का विवरण प्राप्त है।

शेष १४५ चम्पू का निर्माण १८वीं से २०वीं शती तक के प्रारम्भ तक हुआ है। अब चम्पूकाव्यनिर्माण की धारा शुष्क सी होती प्रतीत हो रही है। केवल 'नवरत्नावलीयम्' एक ही चम्पू सन् १९८३ में प्रकाशित हुई है, जिसकी सं. २४८ वीं है।

काव्य में अनुभूतियों तथा अभिव्यक्तियों की प्रधानता होती है। अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य, पद्य अथवा मिश्र शैली है। इन शैलियों का उपयोग वेदों, ब्राह्मणों उपनिषदों, पुराणों, जातक ग्रन्थों, जैनसाहित्यों, प्रशस्तियों, शिलालेखों में किया गया है।

यद्यपि नीतिकाव्य पञ्चतन्त्र आदि भी मिश्रित शैली में निबद्ध, हैं। विरुद, घोषणापत्र आदि भी मिश्र शैली में हैं परन्तु वे चम्पू नहीं हैं। अग्निपुराण में मिश्रकाव्य के दो भेद किए गये हैं।

ख्यात और प्रकीर्ण (अग्निपु. ३३७।३८)

इसमें जो ख्यात वृत्त है वही चम्पूकाव्य कहलाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है, कि वैदिक साहित्य में जो मिश्र रचना का बीज उपलब्ध होता है, वह ब्राह्मण ग्रन्थों में अङ्कुरित तथा उपनिषदों में कन्दलित, पुराणों में पल्लवित, प्रशस्तियों और जातकग्रन्थों में पुष्पित तथा चम्पूकाव्य रूप में फलित हुआ है। उसने सर्वप्रथम नलचम्पू रूप में सहृदयों को अपने रसास्वाद से आह्लादित किया।

इन्हीं चम्पूकाव्यों में 'कविराज देवराजकृत 'अनिरुद्धचम्पू' काव्य भी है जो विषयवस्तु, वर्णनशैली, साहित्यिक सौन्दर्य, अलङ्कार-विन्यास, सरसता में किसी प्रकार न्यून नहीं है, परन्तु वह आज तक समालोचकों की दृष्टि से ओझल ही रहा है, इसका कारण है इसका प्रकाशित न हो पाना। यद्यपि डॉ. उर्मिला मिश्रा हमारे (डॉ. वायुनन्दन पाण्डेय के) निर्देशकत्व में १९९० ई. में इस चम्पू पर शोध कर विद्यावारिधि की उपाधि प्राप्त कर चुकी हैं। इस चम्पू का परिचय इस प्रसंग में अत्यन्त उपयोगी है; अन्यथा न्यूनता रह जायेगी। अतः इसे प्रस्तुत कर रहा हूँ-

**अनिरुद्धचम्पू काव्य का परिचय**-१. कविपरिचय, २. कथावस्तु, ३. मूलस्रोत ४. काव्यसौन्दर्य, वर्णनसौन्दर्य, ५. प्रकृतिवर्णन, ६. शैली, ७. पद्य तथा गद्य की मात्रा, ८. अलङ्कारप्रयोग, ९. छन्दोविन्यास, १०. गुण, ११. रसनिरूपण, उपसंहार।

१. **कविपरिचय**-अनिरुद्धचम्पू-काव्य के निर्माता कविवर देवराज प्राचीन कवियों के समान ही अपने इतिवृत्त के विषय में मौन हैं। प्रबन्धों में कविवंश-वर्णन का नियम है। उसका पालन करते हुए अपने वंश तथा स्थान का अति स्वल्प निर्देश इन्होंने किया है। तदनुसार निम्नाङ्कित तथ्य सामने आते हैं:-

परापवाद से सर्वथा पराङ्मुख, समस्त वाङ्मय को कण्ठस्थ करने वाले, प्रसिद्ध शाण्डिल्य महर्षि के निर्मल वंश में उत्पन्न, दम, दया दान आदि गुणों से सुशोभित, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर विजय प्राप्त करने वाले सदाचारसम्पन्न, श्रौतस्मार्त यज्ञादि का अनुष्ठान करने वाले, श्रोत्रिय शिरोमाला के मकरन्द से प्रक्षालित चरणयुगल, भगवान् राघवेन्द्र रामचन्द्र के द्वारा सम्मानपूर्वक बसाये गये सरयू के उस पार (उत्तर तट पर) ब्राह्मण गण निवास करते हैं, जो परम पराक्रमी शीर्णेत (सिखेत) राजाओं से पूजित हैं।

उनमें एक गौरीकान्त नामक विद्वान् जो ज्ञान-गम्भीरता की सीमा थे तथा वाग्देवता के स्वच्छन्द निवासस्थान थे। उन्हें देखने से ज्ञात होता था कि ब्रह्मतेज ही आकारग्रहण कर आ गया है, उनका यश विश्वविश्रुत था। उनसे सर्वविद्यानिष्णात, शीलसम्पन्न, रघुपति नामक पुत्र हुआ, जो सकल सद्गुणों का निधि था। वे गोदावरी के पति थे, उनका निष्कलङ्क यश, त्रिलोक में व्याप्त था।

उन्हीं मनीषी रघुपति तथा गोदावरी से 'देवराज' नामक पुत्र हुआ। उसने शिवलाल के आश्रय में रहकर नाना रसों का उद्गिरण करने वाले सर्वश्रेष्ठ इस अनिरुद्धचम्पू का निर्माण किया। (अनिरुद्धचम्पू १। ७-१३)

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये सरयूपारीण (साखावारीण सखरिया) ब्राह्मण थे, शाण्डिल्य महर्षि के वशंज थे, (शाडिल्य गोत्र के त्रिपाठी तिवारी थे) शीर्णेत राजाओं से पूजित थे। शीर्णेत राजाओं की राजधानी बांसी (बस्ती जनपद) उनवलराज्य, सत्तासी (रुद्रपुर) (इनका राज्य सत्तासी कोश में था) अतः सत्तासी नाम से प्रसिद्ध थे। गोरखपुर जनपद में, तथा मझौली थी। इनमें किस राजा से ये पूजित थे, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। अपने आश्रयदाता शिवलाल का भी कोई विवरण इन्होंने नहीं दिया है।

बी. राघवन् के 'कैटलागस कैटलागोरम' तथा आफ्रेक्ट के और एम. कृष्णमाचारी के 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' एवं 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर विन्टरनिट्ज' इत्यादि से मात्र इतना ज्ञात होता है कि देवराज रघुपति के पुत्र और गौरीकान्त के पौत्र थे।

इन्होंने मङ्गलाचारण करते हुये कवियों में सर्वप्रथम वाल्मीकि का स्मरण किया है, तत्पश्चात् कृष्ण कवि की प्रशंसा की है।

एम. कृष्णमाचारी के 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' नामक पुस्तक के काव्यकार तथा व्याख्याकार के रूप में प्रायः इक्कीस कृष्ण कवि वर्णित हैं, परन्तु देवराज ने जिस कृष्ण कवि का स्मरण किया है, वे गोविन्द का यशोगान करने वाले थे।

**''सुगन्धि गोविन्दयशः करम्बिता जयन्ति कृष्णस्य सरस्वती सुधा।।**
**बुधा मनोहृत्य चिरं निपीय यां व्रजन्ति विक्षेपमुदस्य निर्वृतिम्।।''**

**(अनि. च. १। ५)**

इनकी उक्ति 'उषापरिणय' चम्पू के निर्माता से सम्बद्ध है, एम. कृष्णमाचारी के अनुसार उषापरिणयचम्पू के निर्माता कृष्ण कवि ही थे (देखें हिस्ट्री आ. क्ला. सं. लि. ६५४ पृ.) ये १६वीं शती (ई.) में विद्यमान थे। इससे सिद्ध है कि देवराज इनके परवर्ती हैं।

छविनाथ त्रिपाठी के अनुसार उषापरिणयचम्पू का कर्ता अज्ञात है। ये प्रायः बी. राघवन् का सहारा लिए हैं।

अनिरुद्धचम्पूकाव्य की प्रतियाँ जो (हस्तलिखित) उपलब्ध हैं, उनमें विभिन्न काल दिया हुआ है। जैसे-'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल', वाल्यूम ७ काव्य मैन्यूस्क्रिप्ट में अठारवीं शताब्दी।

'कैटलाग आफ द संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट इन द लाइब्रेरी आफ द इण्डिया आफिस लन्दन' में संवत् १८४७ मिति श्रावणमास कृष्णपक्ष द्वितीया तिथि सोमवार (ई. १७८०) लिखा हुआ है।

'नोटिसेज आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट बाई राजेन्द्रलाल मित्रा बंगाल' में १६१५ ई. है। इन लिपिकालों से इतना तो निश्चित ही है कि अठारहवीं शताब्दी के पूर्व ही इस चम्पू की रचना हो चुकी थी।

२. **कथावस्तु**-द्वारका नाम की नगरी है। वहाँ सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले पृथिवी के भार को उतारने के लिए मनुष्य रूप में देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते थे जिनके भुजबल का आश्रय पाकर विजयश्री ने चञ्चलता त्याग दी। जिन्होंने कंस, केशी, अघासुर, वकासुर आदि दैत्यों का विनाश किया। जिन्होंने सान्दीपनी से सभी विद्याओं तथा चौसठ कलाओं का अध्ययन किया है। जिन्होंने पारिजात को पृथिवी पर लाकर स्वर्गीय सुखों को पृथिवी पर सुलभ कर दिया, जिनके राज्य में प्रजा अतिप्रसन्न थी। उनकी रुक्मिणी-सत्यभामा आदि ८ पटरानियाँ थीं। उनमें भीष्मक राजा की पुत्री रुक्मिणी से प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पराक्रम में श्रीकृष्ण के समान तथा सौन्दर्य में साक्षात् कामदेव था। प्रद्युम्न को उत्पन्न होते ही शम्बरासुर सूतिकागृह से ही चुरा ले गया। वहाँ मायावती से माया-विद्या का अध्ययन कर प्रद्युम्न शम्बरासुर को मारकर द्वारवती लौटे। पारिजात-हरण के समय प्रद्युम्न इन्द्र के पुत्र जयन्त को भी पराजित कर दिये थे। युद्ध में प्रद्युम्न के मण्डलाकार धनुष को देखकर ही शत्रु भयभीत हो जाते थे। द्वन्द्वयुद्ध में इनका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं था।

रुक्मी की पुत्री शुभाङ्गी के स्वयम्वर में इन्होंने भाग लिया। शुभाङ्गी की सखी ने प्रद्युम्न का परिचय कराया-चन्द्रवंश में ययाति नाम के राजा हुए। इनसे यदु, यदु से शूर, शूर से वसुदेव, उनसे श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, उन श्रीकृष्ण के पुत्र ये प्रद्युम्न हैं। ये परम पराक्रमी, शूरता, वीरता, उदारता आदि सकल गुणों से मण्डित, सौन्दर्य से कामदेव के भी मद को खण्डित करने वाले हैं। ये ही तुम्हारे वल्लभ हो सकते हैं, तुम इनका वरण करो।

शुभाङ्गी ने कर्णरसायन इस वर्णन को सुनकर जयमाल से इनके कण्ठ को विभूषित किया। अनन्तर विवाह संस्कार में कन्यादान, पाणिग्रहण, लाजाहवन, सप्तपदी आदि संस्कार सम्पन्न हुये। वरातियों के साथ अङ्गनाओं का हास-परिहास तो बड़े ही मनोरम ढंग से वर्णित है। विदाई के समय वधू को गृहस्थोचित परिवार सञ्चालन की उपयोगिनी शिक्षा दी गई है। अनन्तर दोनों के प्रणय-वर्णन के साथ प्रथम उच्छ्वास पूर्ण हुआ है।

द्वितीय उच्छ्वास-

अनन्तर शुभाङ्गी गर्भवती हुई। वह गर्भ से अलसाई हुई जिस वस्तु की कामना करती थी, उसे तत्काल उपस्थित देखती थी। उसको पुंसवन, सीमन्तोन्नयन आदि संस्कारों से संस्कृत किया गया। अनन्तर ग्रहों के उच्चस्थान में स्थित होने पर शुभ वेला में शुभाङ्गी ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व गान करने लगे, दुन्दुभी की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी, आकाश निर्मल हो गया, शीतल मन्द सुगन्धित वायु बहने लगा, पक्षी कलरव करने लगे। पूर्णपात्र बांटे गये। कारागार में बन्दी बनाए गये शत्रु-राजाओं को मुक्त कर दिया गया। याचकों को विविध दान से सम्मानित किया गया। वैदिक विद्वान् जातकर्म संस्कार सम्पन्न कराए। कविगण श्रीकृष्ण का यशोगान करने लगे। सर्वत्र नगाड़े बजने लगे। नट, नर्तक, विदूषकों की क्रीडा से यह महोत्सव दिनों दिन बढ़ने लगा।

षष्ठी महोत्सव मनाया गया। अनन्तर सविधि नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ। रणाङ्गण में इसका कोई भी शत्रु निरोध नहीं कर सकता, इसलिए शिशु का 'अनिरुद्ध' नाम रखा गया। यह बालक अत्यन्त सुन्दर तथा महापुरुषों के लक्षणों से युक्त था। इस बालक को व्याघ्रनखमण्डित माला पहनाई गई। इसका, विविध बाल-क्रीडाओं के साथ शैशव काल व्यतीत हुआ। अब यह गुरुजनों से लिपि तथा गणित विद्या सीखने लगा। अनन्तर 'सान्दीपनि' से वेद-वेदाङ्ग-पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्र-सांख्य-योग-आयुर्वेद-धनुर्वेद-गान्धर्व-अर्थशास्त्र-वार्ता (वाणिज्य) कोश-काव्य-रूपक-आख्यायिका-इतिहास-कथा-कला-पञ्चवक्त्रीकरणादिकौतुक-मुष्टिज्ञान-चिन्ताज्ञान-सामुद्रिकशास्त्र-शालिहोत्र-हस्तितन्त्र- पाकशास्त्र-मल्लविद्या-इन्द्रजाल-वीणावाद्य-चित्रकर्म-वास्तुशिल्प तथा अट्ठारह लिपिओं का ज्ञानार्जन किया।

अनिरुद्ध के बल को देखकर बलराम भी विस्मित हो गये। इस प्रकार बाल्य-किशोर अवस्था को पारकर अनिरुद्ध यौवन में प्रवेश किए, पुष्पित कल्पतरु के समान इनका सौन्दर्य द्विगुणित हो गया।

एक दिन सोये हुवे प्रभातवेला में अनिरुद्ध ने स्वप्न में एक अद्भुत नगर देखा। उसमें तीनों लोक के अधिपति के निवास योग्य राजभवन देखा। दैवगति से उसमें प्रवेश कर कुछ कक्षाओं को पारकर वायु से भी दुर्गम कन्याओं का अन्तःपुर देखा। वहाँ क्षीरसागर के तरङ्गमध्य में स्थित लक्ष्मी के समान सुन्दरी कन्या को देखा जो शैशवावस्था को पारकर यौवन में प्रवेश कर रही थी। वह कन्या भी अनिरुद्ध को देखकर चिरपरिचित के समान अत्यन्त प्रसन्न हुई। अनन्तर कामविवश दोनों का समागम हुआ। परन्तु परस्त्री समागम को अनुचित मानते हुए अनिरुद्ध पश्चात्ताप करने लगे। नींद खुल गई। पुनः उसके दर्शन की कामना से अनिरुद्ध सोने का अभिनय करने लगे। परन्तु निद्रा की प्रार्थना करने पर भी नींद नहीं आई। ये विचार करने लगे कि प्रायः देखी या सुनी गयी ही वस्तु का स्वप्न में दर्शन होता है, परन्तु यह तो न देखी गई थी न तो सुनी गई है, तो कैसे स्वप्न में दीखी।

अवश्य कोई कारण होगा। स्वप्न, शकुन, अङ्गस्फुरण, चित्तवृत्तियाँ भावी अर्थ की सूचना देती हैं। इतने में उषाकाल की लालिमा गगन में फैल गयी। पक्षियों का कलरव होने लगा, बन्दीगण मङ्गलपाठ करते हुए कुमार को जगाने लगे।

**तृतीय उच्छ्वास**-अनिरुद्ध शय्या त्यागकर उचित कृत्यों को सम्पन्न किये। पश्चात् अपने प्रियमित्रों के साथ विविध उपकरणों से सजी हुई व्यायामशाला में गये। वहाँ व्यायाम कर स्नानगृह में सुगन्धित तथा थोड़े उष्ण जल से भरी हुई स्वर्ण-द्रोणी में उतर गये। वहाँ स्नान-क्रिया सम्पन्न कर वस्त्रयुगल धारण कर देवशाला में गए। वहाँ सूर्य भगवान् को अर्घ देकर जप किये, ब्राह्मणों को गोदान दिये। अनन्तर समवयस्कों के साथ षड्रस भोजन कर पान की बीड़ा कूचते हुये वस्त्राभरण धारण कर सभामण्डप में गए। वहाँ इनका मन नहीं लगा, अतः वलभी (एकान्तगृह) में जाकर उस स्पप्न में देखी हुई सुन्दरी के विषय में सोचने लगे। विरह सन्तप्त इनके मन को वहाँ भी शान्ति नहीं मिली, तब मित्रों के कहने पर मृगया के लिए चञ्चल तुरङ्ग पर आरूढ़ होकर वासुदेव के वसन्तवल्लभ नामक उपवन में प्रवेश किये। घुड़सवार इनके पीछे-पीछे चल रहे थे, कुछ क्षण वहाँ विश्राम कर बहुत बड़े वन में घुसे और मृगों को व्याकुल करने के लिए बहेलियों को आदेश दिये, स्वयं धनुष पर डोर चढ़ा लिये, भटों का कोलाहल सुनाई देने लगा। यहाँ मचान बनाओ, यहाँ जाल बिछाओ, यहाँ कृष्णसार मृग है, यहाँ हाथी है, यहाँ वाराह है, इस कोलाहल से वह अरण्य क्षुब्ध हो गया। कुमार ने विविध मृगों का आखेट किया। तब अनाधृष्टिनन्दन ने कुमार से कहा-महाभाग ! भगवान् सूर्य अपने प्रखर किरणों से मृगया का निषेध कर रहे हैं। तब कुमार 'मित्रों की जैसी इच्छा', कहकर आखेट से विरत हो गये और भ्रमण करते हुये एक रमणीय स्थान पर पहुँचे। वहाँ तपस्वियों की पर्णकुटी देखे और प्रसन्न होकर कहने लगे कि आश्चर्यजनक तपोबल का प्रभाव है। कहीं तो रङ्कु मृग चावल की रखवाली कर रहा है, कहीं वानर आगन्तुकों का पैर धो रहे हैं। कहीं सोये हुये बालक को चमरी अपने पूंछ की बालों से हवा कर रही है। क्या सुन्दर यह काल है जिससे पाँचों भूतों में विशेषता आ गई है। अनन्तर वसन्त-वर्णन से यह उच्छ्वास पूर्ण हुआ।

**चतुर्थ उच्छ्वास**-सेनापति के पुत्र द्वारा वर्णित वसन्तागमन जानकर स्वप्नसुन्दरी (स्वप्न में देखी गयी सुन्दरी) के वियोग से अनिरुद्ध अत्यन्त खिन्न हो गये। वे धैर्य से अपने मन को संयत कर कान में शूल के समान पीड़ा देने वाले कोकिल-कूजन को सुनते हुये कुशस्थली लौट आए। सायं सन्ध्योपासन कर अपने वासभवन में गये। संगीत-श्रवण के बाद इन्हें थोड़ी सी नींद आई थी कि आंखें खुल गईं। समीप में ही अलौकिक वेशभूषा धारने करने वाली एक परम सुन्दरी गौराङ्गी को देखा। अकस्मात् उसे देखकर सोचने लगे कि क्या यह स्वप्न है या इन्द्रजाल है या मन का मोह है ? निश्चय ही यह कोई देवता-विशेष का आविर्भाव हुआ है, ऐसा सोचते हुए बोले-प्रथम बार आये हुए अतिथि का स्वागत

है, आप कहाँ से आ रही हैं, क्या प्रयोजन है ? इतना कहकर जब अनिरुद्ध चुप हो गये तो वह मधुर वाणी में बोली। सुभग ! सुजनता के उच्च शिखर पर आरूढ़ आप सत्कार के योग्य हैं। भद्रमुख ! यह तुम्हारा दर्शन त्रिलोकी को ढूढने का फल है।

हिरण्यकशिपु के कुल में शरणागतों के रक्षक, याचकों के मनोरथ को पूर्ण करने वाले, बड़े-बड़े यज्ञों को सम्पन्न करने वाले, दूसरों के दुःख को हरण करने वाले, महाराज बलि हुए हैं। उनका पुत्र समस्त राजाओं के मुकुटमणि से प्रकाशित चरण वाला, बारहों सूर्य के समान तेजस्वी, धनुष के टङ्कार से दसों दिशाओं को गूंजित करने वाला महाराज बाणासुर हैं। वे कार्तिकेय की विभूति को देखकर "मैं भी इस विभूति को प्राप्त करूँ" इस इच्छा से भगवान् शिव और पार्वती को प्रसन्न करने के लिए हजारों वर्ष तक दुश्चर तप किये। भगवान् शिव उनके तप से सन्तुष्ट होकर वर देने के लिए प्रकट हुए। तब उन्होंने वर माँगा कि मैं आप तथा माँ पार्वती का वात्सल्यभाजन पुत्र बन जाऊँ और आप माता पार्वती के साथ हमारे नगर में सदा निवास करें। तब से शिव शिवा के साथ उस नगरी में निवास करते हुए दनुजराज को बहुत दिनों बाद एक उषा नाम की कन्या हुई। वह राजकन्योचित शिक्षा प्राप्त कर सारी कलाओं में निपुण हो गई। वह बाल्यतारुण्य के संगम में प्रविष्ट हुई तब एक दिन शिव-पार्वती के परस्पर प्रणय को देखकर मन में सोचने लगी कि मैं भी माँ गौरी की कृपा से कब इस सुख का अनुभव करूँगी। माँ गौरी इसके मन की बात समझ गयीं और बोलीं-वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को अर्धरात्रि में सोती हुई तुम को जो सम्भोग सुख से मोहित करेगा वही तुम्हारा वर होगा। मैं बाणासुर के मन्त्री कुम्भाण्ड की पुत्री उषा की सखी चित्रलेखा हूँ। वह मुझ पर अत्यंत विश्वास करती है।

एक दिन रात में सोई हुई उषा सहसा उठकर रोने लगी। उसके रोने से सारी सखियाँ व्याकुल हो गईं। सब उसके रोने का कारण पूछने लगीं। तब वह उन्हें अपना स्वप्न सुनाई और उस स्वप्न में देखे हुए पुरुष पर वह अनुरक्त हो गई और उसके वियोग में व्याकुल हो गई तब सखियों ने उसकी माँ से उसकी व्यथा सुनाई। माँ के बहुत पूछने पर उषा ने कहा-"माँ ! क्या कहूँ, भोजन, उत्सव, भाषण आदि कुछ भी हमें अच्छा नहीं लगता। केवल अङ्ग टूटता है, पसीना आता है, प्यास लगती है, जलन होता है"। यह सुनकर उसकी माँ ने वैद्यों से कहा। वैद्यों ने परस्पर में एक दूसरे के मुख को देखते हुए कहा कि यह भगवती की कृपा से शीघ्र स्वस्थ हो जायेगी। यह सुनकर माँ चली गई।

तब उषा मुझसे बोली कि सखि, तुम मेरी उपेक्षा क्यों करती हो। तब मैंने कहा कि मैं जिसका नाम-गोत्र-स्थान नहीं जानती उसका क्या कर सकती हूँ। परन्तु सात दिनों के अन्दर ही सुर-असुर-नर-नाग में जितने कुलीन सुन्दर पुरुष हैं सबका चित्र लिखकर तुम्हारे सामने ला दूँगी। तुम उन्हें देखकर पहचान लेना। तब जैसा सम्भव होगा वैसा करूँगी। तब मैंने सात दिनों में सबका चित्रपट लिखकर उसको दिखाया, वह भूलोकवासी पुरुषों के चित्र को देखती हुई कृष्ण के चित्र को देखकर विस्मित हुई। प्रद्युम्न को देखकर

सन्देह में पड़ गयी परन्तु जब आपके चित्र को देखा तो बोल पड़ी यही चितचोर है। और पूछी किसका चित्र है, कहाँ रहता है, किस कुल का है ?

तब मैंने कहा कि सखि! भगवती गौरी के प्रसाद से तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया, तुम गुणज्ञा हो, योग्य पुरुष पर आसक्त हुई हो। वह भी सखि ! तुम मेरी प्राणरक्षा के लिए वचनबद्ध हो ऐसा कहकर चुप हो गई।

तब मैं नारद मुनि से सर्वमोहिनी विद्या प्राप्त कर यहाँ आई हूँ। आप कामवेदना से अत्यन्त दुखी हमारी सखी की रक्षा करें।

यह सुनकर अनिरुद्ध ने कहा कि मैं भी उसे स्वप्न में देखकर उसके वियोग में व्याकुल हूँ, तुमने हमारी चिन्ता को आज हल्का कर दिया। मैं स्वप्न में भी उसे देखता हूँ, जागरण में भी देखता हूँ। परन्तु उसे जब पकड़ना चाहता हूँ तो वह न जाने कहाँ छिप जाती है। मैं विरह-सागर में डूब रहा हूँ, मुझे हाथ का सहारा दो। यह सुनकर चित्रलेखा बोली-मैं आज ही अपनी सखी से मिलाकर तुम दोनों की विरह-व्यथा का अंत कर देती हूँ। ऐसा कहकर योगसिद्धि से साधित विमान द्वारा वह योगिनी आकाशमार्ग से अनिरुद्ध को लेकर चली गई।

**पञ्चम उच्छ्वास**-अनिरुद्ध शोणितपुर पहुँचकर कन्या के अन्तःपुर में विमान से उतर गए। वहाँ से अपने विरह से पीड़ित उषा को देखे। उसके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गए। अकस्मात् आए हुए अनिरुद्ध को देखकर लजाई हुई उषा से चित्रलेखा ने कहा, "सखि ! सदाचार को क्यों भूल रही हो, इनका सत्कार करो। ये भी तुम्हें स्वप्न में देखकर तुम्हारे वियोग से अत्यन्त कातर हैं। भगवती गौरी ने तुम्हारे पति के रूप में इन्हीं का निर्देश किया था। शकुतन्ला के समान तुम भी इनके साथ गान्धर्व विवाह करो"।

ऐसा कहकर उषा का हाथ अनिरुद्ध के हाथ में देकर फिर बोली-"दैत्य कुल के अधिपति बाणासुर की पुत्री उषा को मैंने तुम्हें प्रदान किया। यह तुम्हारी प्रीतिपात्र सहचरी होवे"।

तत्पश्चात् उषा को आभूषणों से सजाकर मोहनमन्दिर में ले गई। वहाँ सारिकाएँ कामसूत्र का पाठ करती थीं। कृत्रिम परिचारिकाएँ कमलपत्र से पंखा झलती थीं। वहाँ दोनों का प्रेम-मिलन हुआ। अनिरुद्ध वहाँ चतुर सखियों से रक्षित अपने घर के ही समान स्वच्छन्द निवास करने लगे। कभी क्रीडा-पर्वत पर, कभी जल-क्रीडा के लिए वापी में, कभी प्रमदवन में विहार करते थे, कभी वीणावादन, कभी सरसकाव्य से मनोविनोद करते थे।

इस प्रकार दोनों का अनुराग धीरे-धीरे बढ़ता गया, और प्रकाश में आने लगा। एक दिन कन्यान्तःपुर-रक्षकों को भी ज्ञात हो गया। वे बाणासुर से कहे कि महाराज ! हम सदा सावधानी से अन्तःपुर की रक्षा करते हैं, तो भी कोई कपटी मन्त्रादि के बल से कन्यागृह में प्रवेश कर गया है। यह सुनकर क्रुद्ध बाणासुर ने अपने योद्धाओं को उसे पकड़ने के लिए

आदेश दिया। योद्धा शस्त्र लेकर कन्यागृह को घेर लिए। अकस्मात् भटों का कोलाहल सुनकर उषा घबड़ा गई, परन्तु अनिरुद्ध ने लगे लोहे के पुष्ट परिघ को लेकर सेनिकों को ललकारा। अनिरुद्ध के प्रहार से व्याकुल सैनिक रक्तवमन करते हुए बाणासुर के पास जाकर कहे कि महाराज ! यह कोई महापराक्रमी है, हम इस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। तब बाण ने रथी सैनिकों को आदेश दिया, वे भी पराजित हो गये। तब स्वयं बाणासुर युद्ध करने के लिए वहाँ पहुँच कर कार्तिकेय के समान अनिरुद्ध को देखकर सोचने लगा, यह अतिवीर है। कुम्भाण्ड ने भी सोचा-यह किसी महाकुलमें प्रसूत वीरवर है। अनन्तर सिंहनाद करते हुए दोनों का युद्ध प्रारम्भ हुआ। अनिरुद्ध के पराक्रम से अतिविस्मित बाणासुर उन्हें शस्त्रयुद्ध में जीतना असम्भव जानकर मायाबल से युद्ध प्रारम्भ किया। वह तामसी विद्या से स्वयं अदृश्य हो गया और अनिरुद्ध पर बाणों की वर्षा करने लगा, अनिरुद्ध उसे देख ही नहीं सके। बाणासुर ने उन्हें नागपाश में बाँध दिया और मारना चाहा, परन्तु मन्त्री ने कहा-''महाराज यह कोई महान् योद्धा है, महान् कुल में उत्पन्न है, अकेला होने पर भी इसे भय नहीं है, अतः इसका पता लगाया जाय कि यह कौन है। तत्पश्चात् जैसा उचित होगा किया जायगा''। तब बाणासुर ने सैनिकों को उनकी रक्षा का प्रबन्ध करने का आदेश दिया।

उषा अनिरुद्ध को नागपाश में बँधा देखकर विलाप करने लगी। अनिरुद्ध ने उसे धैर्य बँधाया।

अनिरुद्ध ने अपनी कुलदेवता पराम्बा की स्तुति की जिससे उनका बन्धन शिथिल हो गया।

वहाँ अंतरिक्ष में खड़े नारद जी युद्ध को देख रहे थे, वे अनिरुद्ध को नागपाश में बंधा देखकर द्वारका के लिए प्रस्थान किये।

रोती हुई उषा को चित्रलेखा ने समझाया-''सखि ! धैर्य धारण करो, शीघ्र ही कृष्ण पधारेंगे, और विजय प्राप्त कर अनिरुद्ध को मुक्त करेंगे''।

**षष्ठ उच्छ्वास**-इधर द्वारका में अनिरुद्ध को न देखकर सब स्त्रियाँ दास-दासियाँ चिन्तित हो गईं, अनिरुद्ध की माँ पुत्रवियोग में मूर्च्छित हो गईं। अन्तःपुर में करुण-क्रन्दन होने लगा जिसे सुनकर यदुवंशी वहाँ पहुँच गए, कृष्ण की सभा में सब वीरों को एकत्र किया गया।

तब श्रीकृष्ण ने कहा-''अनिरुद्ध का किसी ने हरण कर लिया है। पहले शाल्व ने आहुक का हरण किया था, भयङ्कर युद्ध कर उन्हें छुड़ाया गया। जन्म लेते ही प्रद्युम्न को शम्बरासुर ने हर लिया, वे स्वयं युवावस्था में उसे पराजित कर लौट आए। आज तक कहीं यादवों का शिर नहीं झुका। अनिरुद्ध का हरण चिन्ता का विषय है''।

इस पर आहुक ने गुप्तचरों द्वारा ढूढने का प्रस्ताव रखा। अनाधृष्टि ने पारिजात-हरण से क्षुब्ध हुए इन्द्र पर संदेह किया। अक्रूर ने इन्द्र को कृष्ण का आश्रित बताकर इस

सन्देह का खण्डन किया। इतने में ढूढने के लिए गये हुए भट सब धूलधूसरित हो वहाँ आये और कहने लगे कि यादवेन्द्र, हमने सारे जङ्गल-झाड़ियों तथा ऋक्षवन्त, रैवतक आदि पर्वतों की गुफाओं को कई बार ढूढ लिए परन्तु कहीं भी अनिरुद्ध नहीं मिले। इतने में रात्रि व्यतीत हो गयी। सभा विसर्जित कर श्रीकृष्ण प्रातःकृत्य-सन्ध्योपासन, हवन, गोदान आदि सम्पन्न कर पुनः यादवों के साथ सभामण्डप में प्रवेश किए और कहे कि स्त्रियों का विलाप हमसे सहा नहीं जाता। इस पर बलराम ने कहा-''कृष्ण ! वीरों की शोकज्वाला शत्रुनारियों की अश्रुधारा से बुझती है, शोक से नहीं''। कृष्ण ने कहा - ''आर्य! हमें आप पर भरोसा है, तो भी किसी कार्य के करने से पहले पाँच छः बुद्धिमानों की सहमति आवश्यक है''।

उद्धव ने कहा कि यह कार्य असुरों का है तो सुर स्वयं इसका पता लगाकर हमको सूचना देंगे। कुछ दिन प्रतीक्षा करनी चाहिए।

इतने में नारद मुनि वहाँ पधारे, श्रीकृष्ण ने उनका यथोचित सत्कार किया। नारद जी ने सबका मुख मलिन देखकर विषाद का कारण पूछा, श्रीकृष्ण ने अनिरुद्ध-हरण की बात सुनाई। इस पर नारद जी ने कहा-प्रत्यक्ष देखा हुआ वृत्तान्त आप सुनें--

चारों तरफ धधकती हुई अग्नि की ज्वाला से घिरा हुआ शोणितपुर नामक नगर है। वहाँ बाणासुर निवास करता है। उसके हजार बाहु हैं, वह दिशाओं को जीतने के लिए प्रस्थान किया, परन्तु कोई उससे युद्ध करने ही नहीं आया। तब वह शिवजी से निवेदन किया-''प्रभो ! आपकी कृपा से हमारे सारे मनोरथ पूर्ण हैं। परन्तु यह हजार बाहु भारभूत हैं, कृपाकर कोई प्रतिभट दें, जिससे युद्ध कर मैं संतुष्ट होऊँ। ''इस पर शिवजी ने हसते हुए कहा- तुम्हें शीघ्र ही प्रतिभट मिलेगा।

उसकी पुत्री उषा जो बिना समुद्र से निकली लक्ष्मी है। पार्वती से पतिरूप में अनिरुद्ध को पाने का वर प्राप्त की है। उसकी सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को तामसी माया से आच्छन्न कर हर ले गयी। वहाँ गान्धर्वविधि से विवाह कर, अनिरुद्ध प्रणय-लीला करने लगे। कन्या-रक्षकों को ज्ञात हो गया, वे बाणासुर को सूचित किए। उसके आदेश से सैनिकों ने कन्या-गृह को घेर लिया, अनिरुद्ध का उनके साथ विकट युद्ध हुआ। परन्तु यदुपते ! आपके पौत्र के पौरुष का क्या वर्णन करें, सभी सैनिकों को क्षणमात्र में पराजित कर दिए। तब बली बाणासुर स्वयं युद्ध करना प्रारम्भ किया, कुछ क्षण में ही वह समझ गया कि इसको प्रत्यक्ष युद्ध में पराजित करना असम्भव है अतः वह मायायुद्ध का सहारा लिया। और स्वयं तिरोहित होकर 'नागपाश' में अनिरुद्ध को बाँध रखा है।

इतना वृत्तान्त कह कर नारद जी श्रीकृष्ण से पूजित होकर पुनः युद्ध देखने की लालसा से तथा अनिरुद्ध को सांत्वना देने के लिए शोणितपुर पहुँच गये। इधर श्रीकृष्ण

ने भी सेनापति को प्रस्थान का आदेश देकर स्वयं यादव वीरों सहित सज्जित होने के लिए राजभवन में प्रवेश किया।

**सप्तम उच्छ्वास**-विजय-यात्रा की घोषणा सैनिकों में कर दी गई। युद्धकलाप्रवीण सेनापति वायु-समान वेगवाले घोड़े पर सवार होकर श्रीकृष्ण से निवेदन किए कि प्रस्थान के लिए सुसज्जित सेना हस्तिनख पर प्रतीक्षा कर रही है। श्रीकृष्ण ने सहायकों के साथ उग्रसेन को पुरी की रक्षा का भार सौंप कर दारुक द्वारा लाए गए गरुडध्वज 'शतानन्द' नामक रथ पर आरूढ होकर प्रस्थान किया। यादवों की हजारों शिविकाएँ पीछे-पीछे चलीं। मित्र सहायक राजा हाथियों पर चढ़कर चले। मार्ग में समृद्ध ग्रामों का वर्णन दारुक उन्हें सुना रहा था। चलते-चलते मध्याह्न हो गया, सूर्य के प्रखर ताप से सन्तप्त सैनिकों को विश्राम हेतु सेनापति ने आदेश दिया। वहाँ रात्रि व्यतीत कर सेना पुनः प्रस्थान की। इस प्रकार वनों, उपवनों, पर्वतमालाओं को लाँघते हुए चतुरङ्गिणी सेना मार्ग में विश्राम करती हुई हिमालय की शीतल तलहटी में पहुँची। वहाँ से जब रमणीय प्रदेशों को देखते हुए आगे बढ़ी तब सभी सैनिक तथा वाहन सहसा पीतवर्ण के हो गए। बलराम ने कृष्ण से पूछा कि हम सब क्यों पीले हो गए हैं ? क्या सुमेरु के समीप आ गए हैं। श्रीकृष्ण ने कहा - ''हम शोणितपुर पहुँच गए हैं, वह पुरी प्रदीप्त अग्नि से घिरी हुई हैं, उसी की ज्वाला से हम सब पीले हो गए हैं। अब हम सबको सेना सहित यहीं विश्राम करना चाहिए''।

नीतिज्ञों की मन्त्रणा हुई, उद्धव ने बाणासुर के पास किसी निर्भीक तथा चतुर दूत को भेजने का प्रस्ताव रखा, जो दूत शत्रु की भावना, वहाँ का दुर्ग-विधान, सैनिक शक्ति आदि को भी जानकर सन्धि का प्रस्ताव रखे। अगर वह सन्धि कर लेता है, तो युद्ध करना उचित नहीं है।

तब मन्त्री ने विकटवर्मा को सन्देशवाहक बनाकर भेजा। उसको दूत समझ कर नगरी के रक्षकों ने उसे प्रवेशमार्ग दे दिया। उसने दैत्यराज के समीप जाकर सम्मानपूर्वक सावधानी से सन्देश सुनाया। श्रीकृष्ण आपके कुशल की कामना करते हुए आदेश देते हैं- ''अर्धरात्रि में सोये हुए अनिरुद्ध को हरकर बहुत दिनों से अपने यहाँ रोककर रखे हो यह उचित नहीं है। परन्तु तुम शिव के परम भक्त हो अतः मैं क्षमा करता हूँ। प्रह्लाद के वंशजों पर कठोर प्रहार नहीं करूँगा। तुम अनिरुद्ध को साथ लेकर नगर के बाहर आकर मिलो''। यह सुनकर हसता हुआ बाणासुर ने अपने मन्त्री से कहा कि आप इस दुर्मुख का प्रलाप सुनें, इनकी धृष्टता देखो, ये अपने पापों को दूसरे पर लगाकर मधुर वाणी बोलने में नहीं लजाते। शिव की पूजा तथा प्रह्लाद के वंशज होने का फल मुझे मिल रहा है कि कृष्ण मुझे क्षमा कर रहे हैं। अनाथ बालक को नन्द ने पाला, यदुवंशियों ने अपना बन्धु बना लिया, यह निर्बल कंसादिकों को मारकर अब हमारे ऊपर दया करने आया है। दूत भेजा है। विष्णु भी वाराह, नृसिंह, वामन आदि की भूमिका में हास्यास्पद छल किए हैं,

वे हमारे पूर्वजों के साथ कब साक्षात् युद्ध किए हैं। यह गोप हो या यदुवंशी, वैकुण्ठनाथ हो या सैनिकों से सनाथ हो, जब मेरे सामने पड़ जायगा तब मेरे प्रहार से जीवित कैसे बचेगा ?

यह सुनकर दूत ने कहा -''बाणासुर ! पृथिवी का भार उतारने के लिए माया से मनुष्य में रूप में अवतरित कृष्ण गोपाल हों या मायावी हों परन्तु तुम अब दानवों के साम्राज्य को बचाओ। दण्डनीतिज्ञों के मत का पालन करो। आज या तो अनिरुद्ध को आगे कर कृष्ण की शरण में जाओ या रणयज्ञ में अपने अहङ्कार की आहुति दो''। यह सुनते ही बाण का क्रोध दूना हो गया, बोला-''तुम दूत हो, बको मत, यहाँ से चले जाओ''।

दूत के चले जाने पर कुम्भाण्ड ने बाणासुर को समझाया कि कृष्ण अमित पराक्रमी हैं, इनसे शान्तिवार्ता ही उचित है, इस सम्बन्ध में भी बहुत लाभ है। यह सुनकर बाण ने कहा कि कुम्भाण्ड ! तुम भी कायरों की भाँति ऐसा कहते हो। सन्धिवार्ता से हमें लज्जा आती है।

यह शिर शिव के अतिरिक्त किसी के सामने नहीं झुकेगा। सङ्ग्राम की तैयारी करो। इधर दूत आकर कृष्ण से निवेदन किया कि महाराज वह अहंकारी है, सन्धि करना नहीं चाहता।

**अष्टम उच्छ्वास**-दूत का वचन सुनकर कृष्ण का आदेश पाते ही यादवों की सेना समुद्र के उत्तुङ्ग तरङ्ग के समान आगे बढ़ चली। प्राकाररक्षकों द्वारा आग्नेय् यन्त्रों से निवारण करने पर भी दुर्निवार यादव सेना गोपुर में प्रवेश कर वहाँ की सेना को तलवार से काट गिरायी। श्रीकृष्ण ने गरुड़ को स्मरण किया, वे आकाशगङ्गा में जाकर हजारों मुँह बनाकर उसमें जलभर वर्षा करने लगे, जिससे नगरी के चारों तरफ जलने वाली अग्नि बुझ गई। तब अङ्गिरा नामक अग्नि ने शेष अग्नियों को साथ लेकर बाण बर्षाते हुए यादव सेना को ढक दी। तब श्रीकृष्ण के प्रहार से अग्नि गिर पड़ा, शेष गण भाग गए। नारद ने आकर कृष्ण को सूचना दी कि प्रमथ-गणों के साथ रुद्र भी युद्ध के लिए तत्पर हैं। इधर गुप्तचरों ने बाण को सूचना दी कि श्रीकृष्ण की सेना नगर में प्रवेश कर चुकी है। यह सुनकर क्रुद्ध असुरराज स्वस्त्ययन कराकर रथारूढ़ हुए, त्रिलोचन भी नन्दी पर सवार होकर गणेश और कार्तिकेय के साथ रणभूमि के लिए प्रस्थान किये।

सङ्ग्राम प्रारम्भ हुआ। यादवों के प्रहार से भीत दानव-सेना शीघ्र ही क्षीण हो गई। तब कार्तिकेय शिखिध्वज पर चढ़कर असुरसेना के आगे चलते हुए यादवों पर बाण वृष्टि करने लगे। इतना बाण वर्षाये कि संग्रामभूमि में कोई टिक नहीं सका, चारों तरफ रक्त की धारा बहने लगी। तब अपनी सेना को पराङ्गमुख देखकर प्रद्युम्न, गज, साम्ब, सारण, आदि यादवों ने 'मारों इन कीटों को' कहते हुये दैत्य सेना पर आक्रमण किया। भयङ्कर

युद्ध हुआ। प्रद्युम्न का युद्धकौशल देखकर सिद्ध-चारण साधुवाद देने लगे। इतने में बलदेव भी समरभूमि में आ गये। असुरसेना व्यग्र होकर भाग चली।

तब तीन शिर, तीन पैर, छः हाथ, नव नेत्र वाला ज्वर भस्म का प्रहार करता हुआ रणभूमि में आया और बलभद्र पर मुष्टिप्रहार कर गर्जा। उसके प्रहार से बलराम के शरीर में जलन होने लगी, उनके हाथ से शस्त्र छूट गया, प्यास से व्याकुल हो गये। इतने में श्रीकृष्ण आकर बलराम को अपने हृदय से लगाकर ज्वरमुक्त किए और वैष्णव ज्वर का निर्माण किए। उसे ज्वर पर प्रहार करने के लिए कहे, उसने बलराम के शरीर से ज्वर को निकालकर शिला पर पटक कर रगड़ने लगा तब आकाशवाणी हुई- कृष्ण ज्वर की रक्षा करो। तब श्रीकृष्ण ने अपने ज्वर को रोक दिया। ज्वर ने श्रीकृष्ण को प्रणाम कर प्रार्थना की, भगवन् ! आप हमारी रक्षा किए हैं, अब एक वर दीजिए, प्रभो मैं एक ही ज्वर रहूँ। एक ही मैं संसार को पीड़ित कर सकता हूँ तो दूसरे ज्वर की क्या आवश्यकता ? श्रीकृष्ण ने एवमस्तु कहा और अपने बनाए ज्वर को अपने में लीन कर लिया।

फिर ज्वर से कहे, तुम बहुत शक्तिशाली हो, तुम्हारे समग्र ताप को विश्व में कोई सहन नहीं कर सकता, अतः तुम अपने को (स्थावर जङ्गमों में) विभक्त कर लो। ज्वर ने इसे स्वीकार कर कहा कि प्रभो मैं धन्य हुआ। अब कोई आदेश दीजिए। तब श्रीकृष्ण ने कहा-"जो मुझे प्रणाम कर इस कथा को सुनेगा या पढ़ेगा उसे तुम मुक्त कर देना"। इस आदेश को स्वीकार कर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर ज्वर चला गया।

अब कूपकर्ण का बलभद्र के साथ, कार्तिकेय का प्रद्युम्न के साथ, युद्ध होने लगा। गणेशजी हाथ में परशु लिए हुए प्रमथ-गणों के साथ पधारे। उनको देखकर सब योद्धा इधर-उधर भाग गए। बलराम गदा लेकर सामने आये। दोनों का विकट सङ्ग्राम हुआ। प्रमथगण भाग गए, असुरों के शरीर से रणभूमि ढक गयी। तब भगवान् शङ्कर सङ्ग्राम भूमि में आये। उधर दारुक के रथ पर सवार श्रीकृष्ण भी वहाँ पहुँच गए। त्रिलोचन के मुख से सधूम ज्वालाएँ निकलने लगीं। चारों तरफ दिग्दाह होने लगा। इनके सङ्ग्राम को सहन करने में असमर्थ पृथ्वी ने ब्रह्मा के शरण में जाकर निवेदन किया- "भगवान् श्रीकृष्ण और इनके भार से मैं खण्डखण्ड होती जा रही हूँ, आप हमारी उपेक्षा क्यों करते हो" ?

ब्रह्मा धरणी को धैर्य धारण करने के लिए कहकर चन्द्रशेखर के समीप जाकर बोले, "भगवन्। आप स्वयं पृथिवी का भार उतारना चाहते हैं तो असुरों के वध में विघ्न क्यों कर रहे हैं। आप कृष्ण के साथ युद्ध न करें। आप दोनों एक ही हैं"। तब त्रिलोचन ने कहा, "मैं युद्ध नहीं करूँगा, श्रीकृष्ण पृथिवी का भार उतारें"। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण का आलिङ्गन कर शिव चले गए। मुनियों ने दोनों की स्तुति की।

इधर कुम्भाण्ड के रथ पर सवार बाणासुर सैनिकों पर प्रहार करने लगा। तब श्रीकृष्ण ने चक्र उठाया। रुद्र के आदेश से लम्बा उसकी रक्षा करने के लिए नग्न उपस्थित

हुई, कृष्ण मुँह फेरकर उससे बोले-कि तुम व्यर्थ में विघ्न न करो चली जाओ, वह बोली आप सकल लोक के रक्षक हैं, हमें वर दीजिये कि हमारा पुत्र जीवित रहेगा। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं केवल इसके बाहुओं का जो भारभूत है जिसके मद से यह उन्मत्त रहता है छेदन करूँगा। तब लम्बा चली गई, श्रीकृष्ण ने चक्र से उसके बाहुओं का छेदन कर डाला, केवल दो भुजा बचे रहे। तभी भगवान् शिव उपस्थित हुए और कहे कि कृष्ण चक्र का उपसंहार कर लो, कृष्ण ने चक्र का प्रहार रोक लिया। सङ्ग्राम समाप्त हो गया।

अब बाहु कटने से छटपटाते हुए बाणासुर से नन्दी ने कहा, बाण रथ पर चढ़कर तुम शीघ्र जाकर शिवजी के सामने नृत्य करो। तब वह जाकर शिवजी के सामने नृत्य करने लगा, प्रसन्न होकर शिव ने कहा बाण ! तुम जो चाहो वर माँग लो। बाणासुर ने कहा ! प्रभो बाहु कटने से उबड़-खाबड़ हुए हमारे शरीर को सम कर दें और बाहु कटने की पीड़ा मिट जाय, मैं द्विबाहु होकर भी अजर, अमर तथा प्रमथ-गणों का प्रधान होकर आपके समीप में सदा रहूँ और जो लोग आपके सामने हमारे समान नृत्य करेंगे उन्हें आप धन-पुत्र आदि सम्पत्ति से सम्पन्न कर देंगे। शिव ने उसे वर प्रदान कर उसके शरीर को सम तथा पीड़ा निवृत्त कर दिए और कहे तुम अजर, अमर प्रमथ-गणों के अधिपति महाकाल नाम से प्रसिद्ध होगे।

उधर श्रीकृष्ण गरुड़ पर चढ़कर नारद को आगे करके अनिरुद्ध को देखने गए। वहीं गरुड को भेजकर अनिरुद्ध को नागपाश से मुक्त किए। अनिरुद्ध कुछ लजाते हुए श्रीकृष्ण, बलराम, नारद, प्रद्युम्न, गरुड आदि को प्रणाम किए। बलराम और कृष्ण ने अनिरुद्ध का मस्तक सूंघकर उन्हें छाती से लगा लगाए। उषा भी लजाती हुई जाली के पीछे से सबको प्रणाम की। अनन्तर मङ्गल वाद्य बजने लगे।

**नवम उच्छ्वास**—अनन्तर इन्द्र के भेजने पर नारद जी वहाँ आए और कृष्ण को शत्रुपराजय, युद्ध में विजय तथा पौत्रमिलन की बधाई दिए। सभी ने नारद को प्रणाम किया। अनिरुद्ध के विवाहोत्सव की तैयारी होने लगी। कुम्भाण्ड वहाँ आया, श्रीकृष्ण ने उसे राजमुकुट पहनाकर उस राज्य का अधिपति बना दिया। उसे अभयदान देकर श्रीकृष्ण ने कहा, "आप यहाँ के अधिपति हैं, हम अनिरुद्ध के लिए कन्या की इच्छा से आपके पास आये हैं"। मन्त्री कुम्भाण्ड अत्यन्त प्रसन्न हुये और विवाहमण्डप सजाकर श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए पूर्णभद्र नामक प्रतीहार को भेजा। उसने श्रीकृष्ण को प्रणाम कर निवेदन किया कि यदुपते ! पुरोहित के साथ सचिव विवाह मण्डप में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

तब मङ्गल स्नान किए हुए, विवाहोचित वस्त्राभूषण धारण किए हुए अनिरुद्ध को आगे कर जाति-वृद्धों के साथ श्रीकृष्ण ने मण्डप में जाने के लिए प्रस्थान किया। वरयात्री भी सजधज कर पान चबाते हुए चले। पूर्ण कलश के साथ उपस्थित लोग अगवानी कर इन्हें विवाहमण्डप में ले गये। तब कुम्भाण्ड ने स्वस्त्ययन पाठ कराकर यादवों को प्रणाम

कर मङ्गलमाला पहने हुए वर को बहुमूल्य आसन पर बैठाकर विष्टर, पाद्य, अर्घ आदि प्रदान किया। अब वधू को भी स्वर्णघट में भरे हुए सुगन्धित जल से स्नान कराकर बहुमूल्य वस्त्राभूषण से सजाकर मङ्गलगान करती हुई सोहागिन स्त्रियों के साथ चित्रलेखा लेकर आई। तब दोनों (वर-वधू) पक्षों का गोत्रोच्चार ब्राह्मणों ने किया, अनन्तर मन्त्री (कुम्भाण्ड) ने अग्नि की साक्षी में कुश, दूर्वा, अक्षत जलसहित उषा के हाथ को अनिरुद्ध के हाथ में देकर गोत्रनामकीर्तनपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न किया, अनन्तर हवन, लाजाहवन, सप्तपदी आदि विवाहकृत्य ब्राह्मणों द्वारा वेदोच्चारपूर्वक सम्पन्न कराया।

ब्राह्मणों को बहुत से मणि, सुवर्ण, वस्त्र आदि दक्षिणा दिए गये। नट, नर्तक, याचक, दीन-दुखियों को दान-मान से सन्तुष्ट किया गया। अनन्तर बरातियों को विविध मिष्टान्नों-पकवानों से भोजन कराकर तृप्त किया गया, सुबासिनियाँ मधुर ध्वनि में सरस गाली गान कीं, हास-परिहास पूर्वक भोजन सम्पन्न हुआ। उन्हें लवङ्ग-इलायची-पान दिया गया। इस प्रकार प्रेमपूर्वक सत्कार से सन्तुष्ट बराती कई दिनों तक वहाँ रुके रहे। अनन्तर श्रीकृष्ण ने कुम्भाण्ड से कहा कि आपके नित्य नूतन सत्कार से हम लोग तो द्वारकापुरी जाना भूल ही गये हैं। परन्तु राजा उग्रसेन चिन्तित होंगे, उनके दर्शन के लिए मन शीघ्रता कर रहा है। कुम्भाण्ड ने कहा-"त्रिलोकीतिलक ! आपके दर्शन से कौन तृप्त होगा, आपके सम्बन्ध से यह कुल पवित्र हुआ। मेरे लिए क्या आज्ञा है"। श्रीकृष्ण ने कहा कि आप अब इस समृद्ध राज्य का उपभोग करें। सम्बन्धी के रूप में हमारा भी स्मरण करना। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने कुम्भाण्ड के शिर पर मुकुट बाँध दिया।

कुम्भाण्ड ने भी यौतुक में इतनी मणि-रत्न, सुवर्ण आदि तथा घोड़े-हाथी रथ आदि दिये, सवत्सा बहुत सी गायें प्रदान किए। (विषाद से मूक) उषा की माँ ने उषा को छाती से लगाकर विदा किया। अनन्तर उषा, माँ गौरी को प्रणाम की, गौरी ने अपने शरीर के वस्त्राभूषणों से विभूषित कर उषा को आशीर्वाद दिया, सुभगे ! पति की प्यारी बनी रहो। दस सहस्र दासियाँ प्रदान की गईं। इस प्रकार आनन्द विनोदपूर्वक श्रीकृष्ण ने प्रस्थान करने का मन्त्री को आदेश दिया। सेनासहित श्रीकृष्ण प्रस्थान किए, कई दिनों के बाद यात्रा के बाद द्वारकापुरी दृष्टिगोचर हुई। श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख बजाया। दूतों ने जाकर उग्रसेन को उषासहित अनिरुद्ध तथा श्रीकृष्ण के आने की सूचना दी।

वसुदेव, उग्रसेन आदि मङ्गलोपचारपूर्वक प्रजा के साथ नगर के बाहर आये, बाल-वृद्ध सब दौड़े। श्रीकृष्ण ने वसुदेव उग्रसेन को प्रणाम किया, सबसे मिले, पुर में प्रवेश किए। अनिरुद्ध सभी कुलवृद्धों को प्रणाम कर अपने माता के चरणों पर पड़े, उषा ने सास को तथा सभी बड़ी स्त्रियों को प्रणाम किया। उषा के सौन्दर्य की सभी प्रशंसा करने लगीं। कृष्ण ने गरुड को विदाकर बन्धु-बान्धवों के साथ सभामण्डप में प्रवेश कर ब्राह्मणों, बन्दीगण, नट-नर्तक, याचकों को इच्छित वस्तु प्रदान कर सन्तुष्ट किया। नट-नर्तकों ने

विविध कौतुकपूर्ण कला से सबको सन्तुष्ट किया। अनिरुद्ध के आनन्द की सीमा ही नहीं रही।

**अनिरुद्धचम्पू का मूल**-(उपजीव्य) अनिरुद्धचरित अनेक पुराणों में तथा हरिवंश में वर्णित है। यद्यपि उनमें वर्णित कथा में भेद भी है, परन्तु मूलतः भेद कहीं नहीं है।

१. श्रीमद्भागवत (१०।६२-६३ अ.) में अनिरुद्ध-चरित वर्णित है, परन्तु वहाँ अनिरुद्ध के माता का नाम 'रुक्मवती' लिखा है, चम्पू में शुभाङ्गी नाम है।

२. ब्रह्मवैवर्त के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में (११४-१२० अ.) अनिरुद्धोपाख्यान वर्णित है। परन्तु यहाँ अनिरुद्ध ही स्वप्न में उषा को अपना परिचय देते हैं, और उषा भी अपना परिचय देकर अपने पिता से आदेश लेने का निर्देश देती है। अनिरुद्ध भी पुनः स्वप्न में "श्रीकृष्ण के ओदश के बिना मैं तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ" कहते हैं। तथा बाण स्वयं कन्यादान करता है। परन्तु चम्पू में यह कथा नहीं है।

३. पद्मपुराण (२५० अ.) में अनिरुद्ध-कथा में बाण स्वयं नागपाश से अनिरुद्ध को मुक्त करता है तथा कन्यादान करता है। चम्पू में गरुड को देखकर नाग भागते हैं। कुम्भाण्ड कन्यादान करता है।

४. ब्रह्मपुराण (२०५ अध्याय) में भी अनिरुद्ध चरित है, वहाँ हरिहर का युद्धवर्णन है। २०६ अ. में ज्वर का कृष्ण के साथ युद्ध वर्णित है। परन्तु चम्पू में बलराम के साथ।

५. विष्णुपुराण (५/३२) में संक्षिप्त विवाह-वर्णन है। शिवपुराण में (५१-५५ अ.) उषाचरित वर्णित है।

६. हरिवंश के २/११७-१२८ अध्यायों में उषा-अनिरुद्ध-कथा वर्णित है। अनिरुद्धचम्पू काव्य का मूल हरिवंश की ही कथा है। यद्यपि चम्पू में हरिवंश की कुछ कथा छोड़ दी गई है। कहीं-कहीं काव्य के अनुरूप नवीन कथा की कल्पना की गई है, यह कवि का कौशल है।

**शैली**–चम्पूकाव्य मिश्र काव्य है, इसमें गद्य-पद्य का मिश्रण रहता है। गद्य चार प्रकार का होता है, उन चारों भेदों के उदाहरण का दिग्दर्शन प्रस्तुत है।

मुक्तक–**"तस्य केशेष्वेव मालिन्यं न चरितेषु, भुवोरेव कौटिल्यं न मनसि, रङ्ग एवातङ्को नाङ्गे, मध्य एव तनुता न यशसि, मतङ्जेष्वेवावग्रहो न देशेषु"**। इत्यादि स्थलों में मुक्तक गद्य की छटा दर्शनीय है।

वृत्तगन्धि का उदाहरण जैसे छठे उच्छ्वास में- **"ततो मुकुन्दस्य मुखारविन्दम्"** इस अंश में उपेन्द्रवज्रावृत्त के पाद का गन्ध है।

उत्कलिका का उदाहरण द्वारवती नगरी के वर्णन में मिलता है –

"जलधिनिकषोपलोल्लितविश्वकर्मनिर्माणनैपुणस्वर्णरेखेव शोभमानाः"

.....मुकुन्दोत्सङ्गसङ्गिश्रीसनाभिशोभाशातकुम्भमयी....इत्यादि।

चूर्णक का उदाहरण—('यश्च मीन इव धृताखिलश्रुतिः, कूर्म इव सहसामन्दराधारसोल्लासः वाराह इवोद्धृतगोत्रः नृसिंह इव प्रणतप्रह्लादवर्धनः, वामनदर्शितविक्रमः, राम इवोन्मूलितार्जुनः, दाशरथिरिव सुमित्रानन्दनानुरक्तः, बलदेव इव धेनुकान्तकरः, बुद्ध इव याज्ञिकावमानक्षमः, कल्कीव यवननाशकृतक्रमः,....इत्यादि।

**वर्णन**—यह अनिरुद्धचम्पू प्रबन्धकाव्य है। इसमें दण्डी निर्दिष्ट सारे लक्षण सङ्गत होते हैं। इसमें प्रकृतिवर्णन तथा वस्तुवर्णन दोनों निबद्ध हैं। मङ्गलाचरण के पश्चात् द्वारकानगरी-वर्णन, नदी-(मन्दाकिनी) वर्णन-आश्रमवर्णन, तपःप्रभाव, अरण्यानी-वर्णन, ऋतु-वर्णन में ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त-ऋतुओं का वर्णन, प्रातः, सन्ध्या, रात्रि-चन्द्रोदय-वर्णन, मृगया, जलक्रीडा-वर्णन, समुद्र, वन, पर्वत-वर्णन, सामाजिक वर्णनों में संस्कार, वरयात्रा, विवाह, भोजनादि वर्णन, विविध-शिक्षा, कलादि का वर्णन, सांस्कृतिक कृत्य-वर्णन, नीति-वर्णन, अत्यन्त मनोहर सरस रीति से किए हैं जो सहृदयों के मन को बलात् आकृष्ट करते हैं। निदर्शन के लिए मन्दाकिनी वर्णन के कुछ वाक्य उद्धृत हैं।

"जलकेलिलोलनागरी गरीयस्तनकलशकस्तूरिका, जम्बालमलिनतया कलिन्दकन्यामनुकुर्वती मत्तदन्तिकपोलगलितमदबिन्दुबद्धचन्द्रकद्युतिः फुल्लपुष्पपरागरञ्जितजला, जलहंसमिथुनकेलिविदलितकमलदला....

श्रान्तवककुला, मन्दाकिनी नाम नदी, पश्यतां दीनतां न न दलयति। (तृ. उ.)

आश्रमवर्णनम्—

वालेयानजिरेषु रक्षति धृतान् रङ्कुः क्वचितन्दुलान्
आगन्तोः क्वचिदाचरत्यपि कपिः प्रक्षालनं पादयोः।....(३।८४)

ग्रीष्मवर्णन-यत्र च शिशिरं कूपोदकं, वटस्यच्छाया, पाटलवासिता वाताः, प्रिया अभवन्, यत्र मध्यदिने कृषकाणां गोष्ठी चिरं न विरमति। ...

यत्र पदे पदे मही पादनखम्पचा भवति। यत्र धूलीचये कुकूलता जायते। यत्रामृतममृतं छत्रं छत्रंभवति। यत्र पयः पायं पायमपि जनाः पिपासवः। (पञ्चम उच्छ्वासः)

वसन्त-वर्णन—अत्र सरित्पूरेषु कृतप्लवनः कुसुमिततरुमालेषु सञ्चरन् सुगन्धिः धीरः समीरो मन्दमन्दमुपैति। .....(तृ.उ.)

नीतिवर्णन के कुछ पद्य उद्धृत हैं।

कौटिल्यमेव साधीयो धिगनर्थकमार्जवम्।
नमन्ति प्रतिपच्चन्द्रं न राकाशशिनं जनाः।। (६।८६)

धिक् तद्बलं येन न निःसपत्नं, धिक् तद्धनं येन न दानभोगौ।
धिक् तच्छ्रुतं येन गतो न मोहो धिक्तत्तपो येन मनो न शुद्धम्।। (६।६०)
अस्वीकृत्य क्षतान्युग्राण्यकृत्वा साहसं महत्।
अनभ्युपेत्य हिंसां च राज्यं मध्विव दुर्लभम्।। (६।६२)
अविनीतात्मनः शास्त्रमरण्यरुदितं ध्रुवम्।
भूयोऽपि जनुषाऽन्धस्य निध्यञ्जनमपार्थकम्।।
दुर्मेधसि प्रभौ सर्वं राज्याङ्गमवसीदति।
किं कार्यं करणैः सद्भिरात्मैव विगुणो यदि।। (६।१०६-१०)

महाकवि देवराज का वैदुष्य एवं कवित्वः-

इस चम्पू के अध्ययन से प्रतीत होता है कि देवराज विद्या, कवित्व, प्रतिभा इन तीनों शक्तियों से सम्पन्न थे। वे व्याकरणशास्त्र, छन्दः शास्त्र, कोष, धर्मशास्त्र, राजशास्त्र, साहित्यशास्त्र, दर्शन, पुराणोतिहास, आदि विद्याओं में निपुण तथा लोकवृत्त के ज्ञाता थे।

छन्दस् तथा अलङ्कार इनके वशवर्ती थे। ये रसानुरूप छन्दों में पद्य निर्माण करते हैं, तथा दुष्कर यमक आदि का भी बड़ी ही सरलता से प्रयोग करते हैं।

साथ ही चित्रकाव्य-निर्माण में भी ये पटु हैं। प्रहेलिका, एकाक्षर, बन्ध निरोष्ठ्य प्रयोग, कर्तृगुप्त, क्रियागुप्त, बिन्दुच्युतक, मात्राच्युतक, आदि का भी निर्माण इन्होंने किया है।

छः अंकों के चक्रबन्ध (षडरचक्रबन्ध) में उन्होंने अपना तथा अपने काव्य का नाम निर्देश किया है, सभवतः इस चक्र में जन्मस्थान का तथा अन्यत्र किसी नगर में जाने का भी निर्देश है। यह षडरचक्रबन्ध अगले पृष्ठ पर विद्वज्जनमनोविनोद के लिए अङ्कित है।

प्रज्ञं देवभु अप्रमेयचरितं शुद्धप्रमं जन्मना
जन्मावस्थिति निर्गति प्रचयदं पञ्च प्रभाकृत्परा।
नम्रं राजति रुद्रभाः प्रचरिता श्रीः पूः सुनीतिः पदे,
देवः स प्रणुतो जगाम नगरीं नाना वराणां मुदे।।

अगले पृष्ठ पर अङ्कित चक्रबन्ध में 'प्र' से प्रारम्भ कर यह पद्य निबद्ध है। 'प्र' वर्ण जहाँ है उसे पूर्वदिशा मानकर प्रत्येक अरों में लिखे तीसरे वर्ण को पढ़ें तो वाक्य बनेगा 'देवराजकृति'। और छठे वर्ण को पढें तो वाक्य बनेगा-''अनिरुद्धचम्पू''।

और पूर्व से तीसरे अर में छठा तथा सातवां वर्ण रुद्र है, और मध्य कोष्ठ में अङ्कित च से नीचे की तरफ पाँचवा वर्ण 'पू' है। इन तीनों वर्णों से शब्द बनता है 'रुद्र पू.'। अर्थात्! रुद्रपुर। यह जन्मस्थान का परिचय है। वहाँ से फिर नगर में जाने का निर्देश है परन्तु नाम स्फुट नहीं है। पद्य का तीसरा और चौथा चरण देखें। इस पद्य में श्लेष से

श्रीकृष्ण भगवान् का द्वारका नगरी में जाना वर्णित है, तथा कवि, काव्य का नाम, जन्मस्थान, वहाँ से जाना आदि भी वर्णित है।

षडरश्चक्रबन्धः-इस अनिरुद्ध चम्पू काव्य में बड़े-बड़े नौ उच्छ्वास हैं। इसमें लम्बे-लम्बे २०० गद्यखण्ड तथा १६४६ पद्य हैं। गद्य एवं सरस पद्य निर्माण में ये त्रिविक्रम भट्ट से पीछे नहीं है। कथा में प्रवाह एवं सरसता है रचना विशेषणों से भरपूर तथा अलङ्कृत है। छन्दोविन्यास रसानुरूप है।

**छन्दोविन्यास**–चम्पू काव्यों में छन्दों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। "छन्दःपादौ तु वेदस्य" के अनुसार छन्दस् वेदाङ्ग हैं। लोक में छन्दों का प्रथम अवतार वाल्मीकि के द्वारा हुआ। इनका निरूपण महर्षि पिङ्गल ने किया है।

**इस अनिरुद्धचम्पू में प्रयुक्त छन्दों का निर्देश**–प्रहर्षिणी, वंशस्थ, शालिनी, वसन्ततिलका, उपजाति, अनुष्टुप्, आख्यानिकी, विपरीताख्यानिकी, पुष्पिताग्रा, सुन्दरी, रथोद्धता, मालिनी, प्रमिताक्षरा, अतिरुचिरा, मञ्जुभाषिणी, हरिणी, शार्दूलविक्रीडितम्, कालभारिणी, मन्दाक्रान्ता, पृथिवी, शिखरिणी, स्वागता, कलहंस, द्रुतविलम्बित, अपरवक्त्र, प्रवरललित, इन्द्रवज्रा, स्रग्धरा, उपेन्द्रवज्रा, मालती, मत्ता, विद्युन्माला, भुजङ्गप्रयात, प्रमाणिका, स्रग्विणी, दोधक, नाराच, मृगेन्द्रमुख, हंसी, तोटक, कुसुमितलतावेल्लिता, पञ्चचामरम्, प्रियंवदा, विपिनतिलक, मत्तमयूर, जलोद्धतगति, सोमराजी, नर्कुटकम्, इन्द्रवंशा, आर्या, उपगीति, गीति आर्यागीति।

इन विविध छन्दों का प्रयोग उपयुक्त प्रसङ्ग में इन्होंने किया है।

**अलङ्कार प्रयोग**–बिना अलङ्कार के कवि-भारती शोभित नहीं होती, प्रत्युत "अर्थाऽलङ्काररहिता विधवेव सरस्वती" (अग्निपु. ३४४।२) के अनुसार मलिन विवर्ण नीरस हो जाती है। जैसे बिना उष्णता के आग नहीं, वैसे बिना अलङ्कार के काव्य नहीं होता। (चन्द्रा.) चम्पू में तो विशेषकर अलङ्कृत वाक्य-विन्यास ही शोभाधान करता है। अलङ्कार मम्मट के अनुसार तीन वर्ग में विभाजित किए गए हैं। १. शब्दालङ्कार, २. अर्थालङ्कार, ३. उभयालङ्कार।

इस दृष्टि से देवराज ने जिन अलङ्कारों का प्रयोग किया है, वे निम्नाङ्कित हैं- शब्दालङ्कारों में अनुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, श्लेष का बाहुल्येन प्रयोग है। अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रान्तिमान् अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, अपह्नुति अर्थान्तरन्यास, परिसंख्या, विरोधाभास, उल्लेख, स्वभावोक्ति, अर्थापत्ति, काव्यलिङ्ग, स्मरण, अनन्वय, सहोक्ति, सन्देह, तद्गुण, अतद्गुण, विनोक्ति, निदर्शना, विभावना, विषम, सङ्कर, संसृष्टि आदि का प्रयोग वर्ण्य-विषय को चमत्कारी बना देता है। उभयाऽलंकार पुनरुक्तवदाभास का भी प्रयोग है।

**गुण विवेचन**–गुण काव्यात्मा रस के धर्म हैं, वे तीन प्रकार के माने गए हैं। ओज, प्रसाद, माधुर्य, इन तीनों गुणों का यथावसर प्रयोग हुआ है। माधुर्य का उदाहरण-**अञ्जनं नयनयोरबलानां रञ्जनं प्रिय दृशो विततान।**

गञ्जनं व्यथित भूरिसपत्न्या खञ्जनं मलिनमावहदुच्चैः"। (च.उ.)

ओजोगुण - "उन्मीलन् मौलिरत्नद्युतिरतनुतनुश्चण्डदोर्दण्डनिष्टैः

कोदण्डैः कालजालैरसि परशुमहापट्टिशै र्डामरश्रीः। (८।२२७)

प्रसाद गुण - ब्राह्मं तेजः स्वीकृताकारसम्पद् वाचो देव्याः स्वैरसंवासभूमिः।

आसीत्तेषु ज्ञानगाम्भीर्यसीमा गौरीकान्तो विश्वविश्रान्तकीर्तिः।। १।

**रस निरूपणम्**-काव्य की आत्मा रस ही है, अग्निपुराण में कहा है (सा.दं.प्र.प. में उद्‌धृत "वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवाऽत्र जीवितम्"।

काव्य में वागुविदग्धता की प्रधानता होने पर भी काव्य का जीवन तो रस ही है। वह रस स्वप्रकाश अखण्ड एक है तो भी स्थायीभाव के भेद से रस नौ प्रकार का हो जाता है। वे शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानक-बीभत्स-अद्‌भुत-शान्त कहलाते हैं।

चम्पूकाव्य में भी महाकाव्य के समान एक ही रस अङ्गी होता है-

"शृङ्गार-वीर-शान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते" (सा.द. ६।३१७)

तदनुसार अनिरुद्धचम्पू में शृङ्गार रस अङ्गी है, अन्य आठ रस अङ्ग रूप में वर्णित हैं।

कतिपय उदाहरण-

चुम्बित्वा चिरमाननं मधुरसस्फीतं निपीयाधरं

श्लिष्यन् कण्ठतटीं पयोधरपरीरम्भेण रोमाञ्चितः। इत्यादि (२।८२)

सम्भोग शृङ्गार के उदाहरण हैं।

विप्रलम्भका उदाहरण-

क्व लपानि किं सहसा व्रजानि वा कथमाप्यते कमललोचना नु सा।

हास्य : - दधिनारदस्य सुविलम्बि कूर्चके स ननर्त हासयितुमिन्दिरापतिः (३।३)

वीररस - यद् दोर्दण्डपविप्रपातविगलन्मस्तिष्कपङ्कप्लुतै -- (६।६२)

रेते सम्प्रति जर्जरैरवयवैरावृण्वते मेदिनीम्" (५।१४८)

शान्तरस - "विषय विषाटवीमटसि किं विकटां हृदय,

त्यज सुतसुन्दरीद्रविणदेहवृथाऽभिरतिम् ।। इत्यादि (८।२०३)

भक्ति-यद्यपि आचार्यों ने भक्ति को भाव माना है रस नहीं, तो भी भक्तिसम्प्रदाय (गौडी) के आचार्यों ने अप्राकृतालम्बन में भक्तिरस माना है, उसका उदाहरण-

अहो सुलभमद्‌भुतं शरणमस्ति तेषां द्वयं,

पदं जलधिजापतेश्चरणमिन्दुचूडस्य वा। (८।२०२)

**उपसंहार**-कल्पना-कुशल, चमत्कारी वर्णन में निपुण, प्रतिभाशाली कविराज देवराज के द्वारा निर्मित यह अनिरुद्धचम्पू काव्य अत्यन्त मनोहर है। इनकी पद्यरचना, शब्दसौष्ठव भावमाधुर्य, आरोहावरोहणमति से विभूषित है तो गद्य भी परिष्कृत प्राञ्जल विविधालङ्कारों से अलङ्कृत सरस प्रवाहमय है।

इस चम्पू की सुकोमल शब्दशय्या तथा ललितबन्ध, पदलालित्य, अर्थगौरव आदि गुण वरवश अध्येताओं को आकृष्ट कर लेते हैं।

इसमें भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक व्यवस्था, श्रेय तथा प्रेयो मार्ग का प्रतिपादन अत्यन्त मनोरम ढंग से किया गया है।

इस काव्य में दुर्बोध शब्दों का प्रयोग नहीं है, अलङ्कार-योजना रसानुरूप है। नीतिवर्णन में शिशुपाल वध की छाया है, काव्यकला में नैषध की, गद्यबन्ध में बाणभट्ट की तथा त्रिविक्रमभट्ट की छाया झलकती है।

'नवरत्नावलीयम्'-इस चम्पू के निर्माता पं. शिवप्रसाद द्विवेदी देवरिया मण्डल के पकड़ी ग्राम के निवासी थे। तमकूही और पड़रौना राज्य के सम्मानित विद्वान् थे, वहीं ये ३५ वर्ष तक अध्यापन कर काशी आए, वहाँ अस्सी संगम पर अपनी ही कुटी में निवास करते हुए छात्रों को पढ़ाते थे।

इन्होंने अपने चम्पू का नाम, 'रत्नावली' गोस्वामी तुलसीदास जी की पत्नी के नाम पर रखा है। इसमें नौ (९) रत्न हैं। गो. तुलसीदास जी का इतिवृत्त वर्णित है। इसमें पद्य तो सरस हैं, परन्तु गद्य सामान्य ही है अलङ्कृत भाषा नहीं है। सुगमता की दृष्टि से अच्छी है। इनकी दूसरी कृति 'शुकदूतम्' है, जिसका ज्ञान प्रकाशकीय लेख से होता है। यह चम्पू १९८३ में प्रकाशित हुई है।

# संस्कृत कथा-साहित्य
## (वैदिक कथा)

सप्तसिन्धु के सुरम्य भू-भाग के अन्तर्गत पुण्यसलिला सरस्वती के पावन पुलिन पर अग्नि की स्तुति में महर्षियों के तपःपूत मानस-मुकुर में जब अनाहार्य-मनोहर छान्दसी नेपथ्य सज्जा में आर्यवाणी का यथापर्व आविर्भाव हुआ था, तभी से उसके साथ यज्ञसंस्था से सम्बद्ध आदिकथा प्रारम्भ होती है। प्रथमोन्मेष-मनोहर कल्पना के संस्पर्श से क्रमशः विकसित वैदिक साहित्य में उपलब्ध कथाओं का मुख्य उद्देश्य यद्यपि यज्ञानुष्ठान से सम्बद्ध विविध विधियों के प्रति यजमान के हृदय में प्ररोचना का उद्भावन करना ही था, तथापि कथा के प्रथम पदविन्यास के परिज्ञान के लिए उनका अध्ययन नितान्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

विश्व के सर्वप्रथम पवित्र ग्रन्थ के रूप में लब्धप्रतिष्ठ ऋग्वेद-संहिता के अन्तर्गत देव-स्तुतिपरक सूक्त-समुच्चय में ऐसे सूक्त भी उपलब्ध होते हैं, जो संवाद-सूक्त अथवा आख्यान-सूक्त के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। अति-चिरन्तन काल में आर्य संस्कृति के अन्तर्गत बहुप्रचलित आख्यानों का इन्हें अवशेष माना जाता है। कथा के इतिहास की दृष्टि से इन सूक्तों का महत्त्व भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने निर्विवाद रूप से स्वीकृत किया है। डॉ. ओल्डेनबर्ग के अनुसार ऋग्वेदकालीन आख्यानों का स्वरूप गद्य एवं पद्य से संवलित था, जिनके पद्यभाग तो अपनी रोचकता के कारण अस्तित्वशील रह गये, किन्तु उनके गद्यभाग नीरसता के कारण कालक्रम से विलुप्त हो गये। उक्त मत से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ऋग्वेद-युग में कथाशिल्प का विकास हो चुका था।

वैदिक ऋषियों ने अपने युग में प्रचलित लोक-कथाओं में से उन आख्यानों का सङ्कलन किया है जिनकी उन्हें यज्ञसंस्था के अन्तर्गत देव-स्तुति के उपयुक्त वातावरण एवं पृष्ठभूमि के निर्माण के लिए आवश्यकता थी। इस प्रसङ्ग में शुनःशेप का आख्यान, त्रित आप्त्य की प्रार्थना, कक्षीवान् की स्तुति एवं वसिष्ठ-प्रोक्त ऋचाओं का उल्लेख किया जाता है, जिनके अन्तर्गत प्राचीन लोककथात्मक अंशों का अनुरणन सुनायी देता है। वस्तुतः, वैदिक आख्यान-सूक्तों में चिरन्तन भारत की सामाजिक, धार्मिक एवं काव्यात्मक चेतना भी अपनी विविध भङ्गिमाओं में अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार, इन आख्यानों में वैदिक भारत की सभ्यता, संस्कृति एवं जीवन-दर्शन के परिचय की सुदुर्लभ सामग्री सन्निहित है, इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

ऋग्वेद-संहिता के अन्तर्गत सूक्त-सन्निविष्ट आख्यानों की सङ्ख्या उनतीस है जो निम्नाङ्कित हैं:-

| | | |
|---|---|---|
| १. | सरमा एवं पणि का आख्यान | (१०/१०८) |
| २. | शुनःशेप का आख्यान | (१/२४) |
| ३. | कक्षीवान् स्वनय का आख्यान | (१/१२५) |
| ४. | दीर्घतमा का आख्यान | (१/१४७) |
| ५. | लोपामुद्रा और अगस्त्य का आख्यान | (१/१७६) |
| ६. | गृत्समद का आख्यान | (२/१२) |
| ७. | वसिष्ठ और विश्वामित्र का आख्यान | (३/५३) |
| ८. | सोम के अवतरण का आख्यान | (३/४३) |
| ९. | वामदेव का आख्यान | (४/१८) |
| १०. | त्र्यरुण का आख्यान | (५/२) |
| ११. | अग्नि के जन्म का आख्यान | (५/११) |
| १२. | श्यावाश्व का आख्यान | (५/५२) |
| १३. | सप्तवध्रि का आख्यान | (५/७८) |
| १४. | बृबु एवं भारद्वाज का आख्यान | (६/४५) |
| १५. | ऋजिश्वा और अतियाज का आख्यान | (६/५२) |
| १६. | सरस्वती का आख्यान | (६/६१) |
| १७. | विष्णु के तीन पादविक्षेपों का आख्यान | (६/६९) |
| १८. | बृहस्पति के जन्म का आख्यान | (६/७१) |
| १९. | राजा सुदास का आख्यान | (७/१८) |
| २०. | नहुष का आख्यान | (७/९५) |
| २१. | आसङ्ग का आख्यान | (८/१) |
| २२. | अपाला का आख्यान | (८/९१) |
| २३. | कुत्स का आख्यान | (१०/३८) |
| २४. | राजा असमाति और चार ऋत्विजों का आख्यान | (१०/५७) |
| २५. | नाभानेदिष्ट का आख्यान | (१०/६१) |
| २६. | वृषाकपि का आख्यान | (१०/८६) |
| २७. | उर्वशी एवं पुरूरवा का आख्यान | (१०/९५) |
| २८. | देवापि और शन्तनु का आख्यान | (१०/९८) |
| २९. | नचिकेता और यम का आख्यान | (१०/१३५) |

कथा के स्वरूप-विकास को समझने के लिए उक्त आख्यानों में से कतिपय महत्त्वपूर्ण आख्यानों का विवरण, प्रसङ्ग के अनुरोध से, यहाँ उपस्थित किया जाता है। यद्यपि ऋग्वेद

के इन आख्यानों में दैवततत्त्व का सर्वाभिभावी स्वर व्याप्त है तथापि लोक प्रचलित कथाओं की दूरवर्त्ती प्रतिध्वनि भी इनमें सुनी जा सकती है।

## (१) सरमा और पणि का आख्यान

ऋग्वेद के प्रसङ्गाधीन सूक्त के अन्तर्गत निहित कथा इस प्रकार है :- पणि के नाम से सप्रसिद्ध वर्गविशेष के असुरों ने देवराज इन्द्र की गौओं का अपहरण कर रसा नामक नदी के पार अवस्थित अपने पार्वत्य वासस्थान में उन्हें ला रक्खा था। अपनी गौओं का पता लगाने के लिए इन्द्र ने देवशुनी सरमा को पणियों के पास भेजा। उनके पास पहुँच कर सरमा ने उनसे अपना परिचय दिया और गौओं को लौटा देने की बात कही। इस सन्दर्भ में सरमा ने इन्द्र के सर्वाभिभावी पराक्रमोत्कर्ष का वर्णन किया है और पणियों से कहा है कि गौओं को न लौटाने पर इन्द्र अपने सहचरों के साथ आक्रमण करेंगे और बलपूर्वक अपनी गायें ले जायंगे। इस पर पणियों ने सरमा को यह कहकर प्रलोभन दिया कि वह उनके साथ बहन और भाई के सम्बन्ध का पालन करे और लौट कर इन्द्र के पास न जाय। परन्तु, सरमा उनके जाल में न फँसी और वहाँ से लौट कर सारी बातों से इन्द्र को अवगत करा दिया। फिर क्या था, देवराज इन्द्र ने पणियों को युद्ध में पराजित कर अपनी गायों को लौटा लिया।

इस कथा के अन्तर्गत देवशुनी सरमा के क्रियाकलाप में प्राणिकथा के तत्त्वों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ इन्द्र द्वारा दूतकर्म के लिये नियुक्त देवशुनी सरमा के चरित्र में विश्वासपरायणता, आदर्श स्वामिभक्ति तथा अविचल दृढता जैसे श्रेष्ठ-दूतोचित गुणों की अभिव्यक्ति हुई है जिससे इस कथा को नीतिकथा की कोटिं में रक्खा जाता है।

सायण के अनुसार इस सूक्त की सरमा देवशुनी है यद्यपि प्रसङ्गाधीन सूक्त के अध्ययन से यह स्पष्ट नहीं होता है। बृहद्देवता के रचयिता महर्षि शौनक के अनुसार सरमा इन्द्र की दूती है, देवशुनी नहीं है। परन्तु निरुक्तकार यास्क की दृष्टि में सरमा इन्द्र द्वारा प्रेषित देवशुनी ही है। इसके अतिरिक्त कात्यायन ने अपनी सर्वानुक्रमणी में सरमा को देवशुनी के नाम से ही परिचित कराया है। नीतिमञ्जरीकार द्या द्विवेद की दृष्टि में भी सरमा देवशुनी ही है। आफ़ेख्ट के अनुसार यह एक प्रतीक-कथा है। सरमा वात्या की देवी का प्रतीक है, पणि मेघ के प्रतीक हैं, गायें जल की प्रतीक हैं। इस प्रकार मेघ के गर्भ में अवरुद्ध जल को विमुक्त कराने के लिए द्युलोक के देवता इन्द्र ने अपनी दूती-वात्या-को भेजा जिसने विद्युत् और वज्र के प्रयोग से मेघपटल का विदारण कर जल-धारा को प्रवाहित कर दिया। अस्तु, प्रस्तुत सूक्त के आधार पर पशुधन का विरोधियों द्वारा अपहरण, उसके अन्वेषण के लिए शुनी-सम्प्रेषण, साम, दाम एवं दण्ड जैसे उपायों का सरमा द्वारा प्रयोग, पणियों द्वारा भेद-नीति का अवलम्बन और अन्त में इन्द्र द्वारा किये गये सङ्ग्राम के

फलस्वरुप पशुधन की विमुक्ति जैसी राजनैतिक धारणाओं की भी पुराकालिक अभिव्यक्ति होती है और ये सारे तत्त्व सरमा-पणि-संवाद में निहित कथा में अनुविद्ध हो गये हैं।

## (२) शुनःशेप का आख्यान

अजीगर्त्त-पुत्र शुनःशेप के प्रार्थनापरक मन्त्रों के आधार पर उसकी कथा का सार इस प्रकार है :-

वेधस् के पुत्र महाराज हरिश्चन्द्र की एक सौ पत्नियाँ थीं। परन्तु, जब उनसे एक भी पुत्र का लाभ उन्हें नहीं हुआ, तब उन्होंने पुत्र की प्राप्ति के लिए वरुण से प्रार्थना की और प्रतिज्ञा की कि पुत्र होने पर वे उसे बलि के रूप में वरुण को समर्पित कर देंगे। वरुण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उन्हें यथासमय पुत्रलाभ हुआ। तत्पश्चात्, जब वरुण ने पूर्व-प्रतिश्रुति के अनुसार उनके पुत्र जिसका नाम रोहित रक्खा गया था, की बलि माँगी तब ममता के वशीभूत होकर वे एक न एक बहाना बनाकर कालक्षेप करते रहे। राजकुमार रोहित अब किशोर वयस को प्राप्त कर चुका था। एक दिन उसे महाराज हरिश्चन्द्र ने वरुण देवता के साथ की गयी अपनी संविदा की बात कह दी, जिसे सुन कर रोहित ने राजधानी का परित्याग कर दिया और आरण्यक जीवन अपना लिया। यथासमय बलि न पाकर वरुण देवता कुपित हो गये जिसके फलस्वरूप हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग हो गया। पिता के रोगाक्रान्त होने की वार्त्ता से अवगत होकर रोहित राजधानी लौट चला, परन्तु इन्द्र ने उसे अरण्यचारी होकर ही रहने के लिए प्रेरित किया। सात वर्षों तक निरन्तर अरण्य में विचरण करते हुए एक दिन वह अजीगर्त्त नामक ऋषि से मिला जिसके तीन पुत्र थे- शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनोलाङ्गूल। राजकुमार रोहित ने अपने प्राणसङ्कट की कथा उनसे कही और अपने बदले में बलि देने के लिए सौ गायें प्रदान कर उक्त ऋषि से खरीदे गये उसके मध्यम पुत्र के साथ राजधानी लौटा और अपने पिता से सारी बातें कहीं। उन्होंने इसकी सूचना वरुण को दी और वे रोहित के बदले शुनःशेप की बलि को स्वीकार करने पर राजी हो गए।

यज्ञ प्रारम्भ हुआ। शुनःशेप को बलि के रूप में यज्ञभूमि ले जाया गया। इस यज्ञ में महर्षि विश्वामित्र होता बने, महर्षि जमदग्नि ने अध्वर्यु का कार्यभार सम्भाला, महर्षि अगस्त्य उद्गाता के रूप में सामगान कर रहे थे तथा महर्षि वसिष्ठ ब्रह्मा के पद पर आसीन थे। जब बलि को यूपकाष्ठ में बाँधने का अवसर आया तब इसके लिये वहाँ कोई भी उद्यत नहीं हुआ। लोभ के वशीभूत होकर शुनःशेप के पिता अजीगर्त्त ने अतिरिक्त एक सौ गायों के बदले अपने पुत्र को यूपकाष्ठ में आबद्ध कर दिया। जब बलि के विशसन का समय आया तब अजीगर्त्त ने ही पुनः सौ गायें लेकर इस कार्य के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। जब वह अपने विक्रीत पुत्र शुनःशेप के विशसन के लिए उद्यत हुआ तब उसने

दीनभाव से नाना देवताओं की प्रार्थना प्रारम्भ की। अन्ततोगत्वा जब वह उषा देवी की स्तुति कर रहा था तब उसके बन्धन टूट गये और वह यूपकाष्ठ से छूट गया। महाराज हरिश्चन्द्र का रोग जाता रहा। महर्षि विश्वामित्र ने अपने पौरोहित्य में शुनःशेप के द्वारा यज्ञानुष्ठान सम्पन्न कराया। अब, अजीगर्त्त ने शुनः-शेप को पुत्र के रूप में पुनः अपनाना चाहा, परन्तु उसने पिता के प्रस्ताव को ठुकरा कर महर्षि विश्वामित्र के दत्तक पुत्र के रूप में ही रहने का निश्चय किया। देवताओं की कृपा से ही शुनःशेप को इस सङ्कट से त्राण मिला था; अतः, वह इस घटना के बाद देवरात के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस आख्यान के स्थापत्य में पुरातन लोककथा की संरचना का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य-विक्रय, लोभ का दुर्निवार आकर्षण, देवस्तुति की महीयसी शक्ति तथा शुनःशेप के प्रति विश्वामित्र का असीम वात्सल्य-भाव इस कथा में सुस्पष्ट हुआ है।

## (३) श्यावाश्व का आख्यान

प्रस्तुत आख्यान में प्राचीन प्रेमकथा के तत्त्वों को सरलता से हृदयङ्गम किया जा सकता है। कथा इस प्रकार है :-

रथवीति दार्ल्भ्य-नामक एक प्रसिद्ध राजर्षि थे। उन्होंने एक बार यज्ञ करना निश्चित किया। अपने अभीष्ट यज्ञ में ऋत्विक् कर्म के सम्पादन के अनुरोध के साथ वे महर्षि अत्रि के सम्मुख उपस्थित हुए और उन्हें अपना परिचय देते हुए अपने आगमन का प्रयोजन निवेदित किया। राजर्षि के अनुरोध पर अर्चनाना अपने पुत्र श्यावाश्व के साथ यज्ञ-सम्पादन के लिए राजर्षि रथवीति के यज्ञस्थल पर पहुँचे और उनका यज्ञ सम्पन्न कराया। यज्ञ-सम्पादन के क्रम में अर्चनाना ने वहाँ सर्वाङ्गसुन्दरी राजकन्या को देखा। उसे देखकर उनके मन में हुआ कि यह मेरी पुत्रवधू बन पाती तो बड़ा ही अच्छा होता। इधर श्यावाश्व का मन भी राजकन्या पर आसक्त हो चुका था। श्यावाश्व ने राजर्षि रथवीति से जब अपने अभिप्राय का निवेदन किया, तब उन्होंने इस विषय पर अपनी महारानी से कहा कि मैं साङ्गोपाङ्गवेदों में निष्णात श्यावाश्व को अपनी कन्या प्रदान करना चाहता हूँ। इस विषय पर तुम्हारा क्या अभिमत है? अपने पति की बात सुनकर महारानी ने कहा कि मैं राजर्षि-कुल में उत्पन्न हुई हूं। जो व्यक्ति ऋषि-पद को प्राप्त नहीं हुआ है उसे हमारा जामाता नहीं होना चाहिए। किसी मन्त्रद्रष्टा को ही मैं कन्या देना चाहती हूँ जिससे मेरी कन्या वेदमाता का पद प्राप्त कर सके। मन्त्रद्रष्टा को वेद का पिता माना जाता है यह तो सुप्रसिद्ध ही है। अपनी महारानी से विचार-विमर्श के अनन्तर राजर्षि रथवीति ने यह कह कर इस सम्बन्ध को अस्वीकृत कर दिया कि जो मन्त्रद्रष्टा नहीं है वह हमारा जामाता नहीं हो सकता है।

इस प्रकार राजर्षि के द्वारा प्रत्याख्यात होकर पिता-पुत्र वहाँ से लौट चले, परन्तु श्यावाश्व का मन राजकन्या में ही लगा रहा। मार्ग में लौटते हुए पिता-पुत्र शशीयसी, तरन्त और राजा पुरुमील्ह से मिले जिन्होंने पिता-पुत्र को प्रभूत दान दिया। उनसे दान प्राप्त कर वे दोनों अपने आश्रम में लौट आये। मन्त्रद्रष्टा न होने के कारण राजकन्या के लाभ से वञ्चित श्यावाश्व के मन में शान्ति नहीं थी। वह ऋषिपद प्राप्त करने की लालसा से वन जाकर ध्यान-मग्न हो गया। वहाँ उसके समक्ष मरुद्गण प्रकट हुए। उन्हें देखकर श्यावाश्व ने उनकी स्तुति में मन्त्रों की रचना की। उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर मरुद्गणों ने अपने वक्षस्थल से स्वर्णाभरण उतार कर श्यावाश्व को प्रदान किया। इस घटना की सूचना देने के लिए श्यावाश्व ने रात्रि को दूती के रूप में नियुक्त कर राजर्षि रथवीति के पास भेजा। श्यावाश्व के ऋषिपद-लाभ की वार्त्ता जान कर वे अपनी कन्या को लेकर अर्चनाना के समक्ष उपस्थित हुए और उनसे नमस्कारपूर्वक कहा कि आपने ऋषि के पिता होने का भी गौरव प्राप्त किया है। अतः, आप मेरी पुत्री को अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार कीजिए। ऐसा कह कर राजर्षि ने पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क के द्वारा उनकी अर्चना की और दक्षिणा में एक सौ शुक्लवर्ण अश्व प्रदान किये। इस प्रकार श्यावाश्व ऋषिपद-प्राप्ति के अनन्तर राजकन्या से परिणय कर पाने में सफल हुआ।

इस वैदिक आख्यान से यह स्पष्ट होता है कि कन्यादान में कन्या की माता के अभिमत को निर्णायक माना जाता था तथा एक राजकन्या का सुयोग्य मन्त्रद्रष्टा ऋषिकुमार के साथ विवाह होने में कोई बाधा नहीं थी। नवयौवन-जनित आकर्षण का जो प्रेमकथा का आधारभूत तत्त्व है, यहाँ स्पष्ट अनुरञ्जन प्राप्त होता है। इससे आध्यात्मिक गुणसम्पदा की सर्वोत्कृष्ट रूप में राजपरिवार द्वारा स्वीकृति की बात का भी परिचय मिलता है। यह आख्यान ऋग्वेद में अपूर्ण एवं अव्यवस्थित रूप में प्राप्त है, जिसे शौनक ने बृहद्देवता में व्यवस्थित एवं पूर्ण रुप प्रदान किया है।

## (४) उर्वशी एवं पुरूरवा का आख्यान

उर्वशी एवं पुरूरवा के आख्यान में एक चिरन्तन प्रेमकथा अभिव्यक्त हुई है जो सुखान्त न होकर दुःखान्त है। दिव्य नायिका उर्वशी अपने मर्त्य प्रेमी पुरूरवा के साथ कतिपय अनुबन्धों के आधार पर एक परिमित अवधि तक सङ्गम-सुख का उपभोग करती है और तत्पश्चात् निष्ठुरता के साथ विलाप-विह्वल दशा में उसे छोड़ कर स्वर्गलोक चली जाती है। यह सुप्रसिद्ध आख्यान उर्वशी और पुरूरवा के उत्तर-प्रत्युत्तर की शैली में निबद्ध होने के कारण यास्क के अनुसार संवाद-सूक्त की कोटि में रखना पसन्द करते हैं; परन्तु, शौनक इसे इतिहास की कोटि में रखना पसन्द करते हैं। इस वैदिक प्रेमाख्यान की परम्परा ऋग्वेद से प्रारम्भ होकर शतपथब्राह्मण, बृहद्देवता, महाभारत, हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण,

वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, विक्रमोर्वशीय एवं कथासरित्सागर तक सुविस्तृत संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में निरन्तर नव-नव स्वरविन्यास के साथ प्रतिध्वनित होती रही है। काल के सुदीर्घ अन्तराल में परिवर्त्तनशील सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुचियों के अनुरोध से इस प्रेमकथा के पुनराख्यान के क्रम में इसके अन्तर्गत परिवर्द्धन एवं परिवर्त्तन होता रहा है जो पूर्वोक्त ग्रन्थों के अध्ययन से सुस्पष्ट होता है। इस आख्यान का सारांश परवर्त्ती भाष्य में प्रस्तुत इसकी भूमिका के साथ ऋग्वेदीय संवाद की शैली में इस प्रकार प्राप्त होता है:-

देवराज इन्द्र के आदेश से गन्धर्वों द्वारा किए गये प्रपञ्च के फलस्वरूप जब पुरूरवा के साथ उर्वशी द्वारा किये गये अनुबन्ध भग्न हो गये, तब पूर्वप्रतिश्रुति के अनुसार विवश होकर उर्वशी को पुरूरवा का साहचर्य छोड़ना पड़ा और वह स्वर्गलोक के लिए चल पड़ी। उर्वशी के विरह से खिन्न पुरूरवा पागल की भाँति उसका पीछा करता हुआ उसे लौटा लाने के उद्देश्य से विकसित कमलवन से मनोहर एक विशाल सरोवर के समीप उससे जा मिला। और अनुनय-विनय करता हुआ उससे कहने लगा-"हे निष्ठुर प्रिये ! तनिक रुक तो जाओ। पास आकर बैठो भला! हम लोग आपस में जी खोल कर मन की कुछ बातें करें-"वचांसि मिश्रा कृणवाव है नु।" इसके उत्तर में उर्वशी ने उससे कहा कि क्या करूंगी मैं तुम्हारी इन बातों से-"किमेता वाचा कृणवा तवाहम् ?" सृष्टि की प्रथम उषा के समान मैं तो अब तुम्हारे लिए अतीत की प्रेमिका हो चुकी हूँ जिसे पकड़ पाना अब तुम्हारे लिए असंभव है। अब इस जीवन में मुझे रोककर तुम रख न पाओगे। मैं तो उन्मुक्त पवन की भाँति स्वच्छन्द गति से जा रही हूँ जिसे पकड़ पाना अब तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है-"दुरापना वात इवाहमस्मि।" अतएव मैं कहती हूँ कि तुम अब मेरा अनुगमन करना छोड़ दो और घर लौट जाओ। मैं दिव्याङ्गना होकर भी चार वर्षों तक प्रति रात्रि तुम्हारी अङ्कशायिनी बनी रही। इस अवधि में प्रतिदिन बिन्दुमात्र आज्य भक्षण कर मैं सन्तृप्त रहा करती थी; और उसी तप्ति के साथ अब मैं स्वर्गलोक जा रही हूँ।

इतना कहकर उर्वशी आकाशमार्ग से स्वर्गलोक की ओर प्रस्थान करने लगी और उसकी ओर मुँह उठाकर खड़ा-खड़ा पुरूरवा दोनों बाँहें उठाकर उससे अनुरोध भरे स्वर में पुनः कहने लगा-"सुन्दरि ! तुम तो स्वर्ग की ओर चल पड़ी पर तुम्हारा प्रेमी मैं यहीं पड़ा रह गया। तुम्हारे अनुपमरूप की आभा से सारा अन्तरिक्ष अनुरञ्जित हो उठा है। मैं तुम से एकबार फिर निवेदन करता हूँ कि तुम मेरी बात मान लो और लौट आओ। मेरा हृदय सन्तप्त हो रहा है-**'निवर्त्तस्व हृदयं तप्यते मे।'** मैं अपने द्वारा उपार्जित सारी पुण्यराशि तुम्हें अर्पित कर दूंगा। तुम लौट आओ।" परन्तु पुरूरवा के आवेश भरे प्यार के अनुरोध को ठुकराकर उसकी निष्ठुर प्रेयसी उसे छोड़कर चली ही गयी और विरह-कातर पुरूरवा का हृदय हाहाकार करता रह गया।

ऋग्वेद के प्रेमाख्यान-परक अट्ठारह मन्त्रों के इस सूक्त में प्रसिद्ध कथाविद् एन.एम. पैञ्जर के अनुसार "प्रायः सबसे प्राचीन भारोपीय प्रेमकथा का रूप उपलब्ध होता है।" वस्तुतः, इस के अन्तर्गत निष्ठुर प्रेमिका के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित प्रेमाविष्ट हृदय का मर्मस्पर्शी उद्गार काल के सुदीर्घ व्यवधान को पार कर आज भी विदग्ध-हृदय को निरन्तर अभिभूत करता आ रहा है।

प्रस्तुत सूक्त के कपितय महत्त्वपूर्ण अस्फुट बिन्दुओं का विशद स्पष्टीकरण बृहद्देवता, शतपथ-ब्राह्मण तथा विष्णुपुराण में प्राप्त होता है। बृहद्देवता के अनुसार एक संविदा के अन्तर्गत अप्सरा उर्वशी राजर्षि पुरूखा के साथ रहती हुई सहचरी के धर्म का पालन कर रही थी। पुरूरवा को उपलब्ध उर्वशी के इस साहचर्य-सुख को देखकर इन्द्र के मन में पुरूरवा के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई, क्योंकि उर्वशी पर वह अपना एकाधिकार समझता था। ईर्ष्यालु इन्द्र ने अपने वज्र-आयुध से कहा कि तुम यदि मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हो तो इन दोनों के बीच विद्यमान इस प्रेम-बन्धन को तोड़ डालो। तदनुसार वज्र ने अपनी अलौकिक शक्ति से उन दोनों के प्रीति-बन्ध को तोड़ डाला। उर्वशी से विरहित होकर पुरूरवा अब उन्मत्त की भाँति इधर-उधर भटकने लगा। इसी क्रम में उसने एक सरोवर में पाँच सुन्दरी सखियों के मध्य में सुन्दरी उर्वशी को देखा। उसे देखकर उसने उससे कहा कि लौट आओ। इस पर उसने दुःख के साथ कहा कि इस मर्त्यलोक में अब तुम मुझे नहीं पा सकते। मेरा और तुम्हारा पुनर्मिलन स्वर्गलोक में होगा। शतपथ-ब्राह्मण के पञ्चम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में उपन्यस्त विवरण के आधार पर इस संवाद के कतिपय अस्फुट बिन्दुओं का और भी स्पष्टीकरण प्राप्त होता है। तदनुसार उर्वशी के तीन अनुबन्ध इस प्रकार थेः-वह केवल आज्य-प्राशन करेगी, प्रतिदिन तीन बार पुरुरवा को कामसौख्य प्रदान करेगी तथा पलंग के बाहर उसे कभी भी विवस्त्र अवस्था में नहीं देखेगी। उर्वशी ने अपने साथ दो मेमने लाये थे जिन्हें वह अपने पलंग से बाँधकर रक्खा करती थी।

उर्वशी के प्रत्यानयन के लिए व्याकुल गन्धर्वों को जब यह ज्ञात हुआ कि पुरूरवा के साहचर्य के फलस्वरूप वह गर्भवती हो गयी है, तब इससे वे अत्यन्त ही उद्विग्न हुए और एक रात उन्होंने उसके मेमने का अपहरण कर लिया। इस पर उर्वशी ने खीझ कर कहा कि मेरे प्रिय मेमने का अपहरण हो रहा है और लगता है कि यहाँ कोई पुरुष नहीं है जो मेरे मेमनों को छुड़ा लावे। इस पर विवस्त्र अवस्था में ही पलंग से कूद कर वह गन्धर्वों के पीछे दौड़ पड़ा। इतने में गन्धर्वों ने आकाश में बिजली चमका दी जिसके प्रकाश में उर्वशी ने पुरूरवा को निर्वसन रूप में देख लिया। फिर क्या था ? अनुबन्ध के भग्न हो जाने के कारण उर्वशी पुरूरवा के भवन से सद्यः तिरोहित हो गयी और वह स्वर्ग की ओर चल पड़ी। उर्वशी के विरह में इतस्ततः उसका अन्वेषण करते हुए पुरूरवा को कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत अन्यतःप्लक्षा-नामक सरोवर में हंसिनी के रूप में जलविहार करती हुई उर्वशी मिली। वहाँ उसकी सखियाँ भी हंसिनियों के रूप में उसके साथ थीं। उर्वशी ने पुरूरवा को

देखते ही पहचान लिया और उसके समक्ष अप्सरा के रूप में प्रकट हो गयी। पुरूरवा ने भी उसे पहचान लिया और उससे अपने साथ चलने के लिए वह कातर भाव से अनुरोध करने लगा। परन्तु उर्वशी अब लौटने वाली नहीं थी। अन्त में उसने पुरूरवा से कहा कि इस वर्ष की समाप्ति के अवसरपर तुम आना। तब मैं तुम्हारे पुत्र को जन्म दे चुकी रहूँगी। उसके कथनानुसार वर्षान्त की रात्रि में जब वह वहाँ आया तब उसे वहाँ एक अद्भुत सुवर्णनिर्मित मन्दिर दृष्टिगोचर हुआ। उसने उससे कहा कि प्रातःकाल गन्धर्वगण यहाँ आकर तुम्हें अभीष्ट वर-प्रदान करेंगे। तुम उनसे यही वरदान माँगोगे कि मैं भी गन्धर्वकोटि में उपनत हो जाऊँ। दूसरे दिन पुरूरवा द्वारा उर्वशी के कथनानुसार वर माँगने पर गन्धर्वों ने उसे एक पवित्र भाजन में दिव्य अग्नि प्रदान किया और कहा कि इसमें हवन करने पर तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो जाएगा। तत्पश्चात्, उस दिव्य अग्निसम्भृत पात्र को लेकर वह उर्वशी में उत्पन्न अपने पुत्र के साथ वहाँ से लौट चला परन्तु उसने उस अग्निपात्र को रास्ते में ही रख दिया।

दूसरे दिन जब वह वहाँ आया तो उसने उस अग्निपात्र के स्थान पर अश्वत्थ एवं शमी के वृक्ष देखे। गन्धर्वों के आदेशानुसार उसने उनसे अग्निमन्थन-काष्ठ (अरणियों) का निर्माण किया और उनसे उत्पादित अग्नि में हवन की विधि से गन्धर्वकोटि में उपनत हो गया।

शतपथ-ब्राह्मण में प्रस्तुत इस आख्यान का पर्यवसान यज्ञसंस्था के लिये आवश्यक अग्नि के उत्पादक अरणियों के महत्त्वोद्भावन में होता है और ऋग्वेद-संहितोक्त आख्यान में विद्यमान एक विरहार्त्त प्रेमी के आतुर प्रणयनिवेदन का स्वर तिरोहित हो जाता है।

इस आख्यान के सम्बन्ध में विष्णुपुराण से यह अतिरिक्त सूचना प्राप्त होती है कि मित्रावरुण द्वारा अभिशप्त होने के कारण ही उर्वशी को मर्त्यलोक में रहना पड़ा जहाँ वह पुरूरवा के सम्पर्क में आयी। वस्तुतः, यह वैदिक आख्यान दिनानुदिन लोकप्रिय होता गया और परवर्ती काल में महाकवि कालिदास के हाथों सज-संवर कर एक विलक्षण नाट्यकृति के रूप में प्रकट हुआ। परन्तु, यहाँ उसके नायक का निराशावादी स्वर नहीं सुनायी देता है जो ऋग्वेद-संहिता के आख्यान की प्रभावोत्पादकता का रहस्य है।

## (५) कक्षीवान् और स्वनय का आख्यान

इस आख्यान के अन्तर्गत ऋषि कक्षीवान् द्वारा प्रस्तुत राजा स्वनय की दान-स्तुति का वर्णन प्राप्त होता है। इस आख्यान में निहित कथा सायणभाष्य के आलोक में इस प्रकार है :-

प्राचीन काल में कलिङ्ग नामक एक राजा थे। अतिशय वार्द्धक्य के कारण जब उन्होंने पुत्रोत्पादन में अपने को असमर्थ पाया तब अपनी पत्नी में, नियोग-विधि से पुत्रोत्पादन का निर्णय किया। इस कार्य के लिए दीर्घतमा-नामक ऋषिकी उन्होंने प्रार्थना की।

यथा विहित कृत्य के सम्पादन के लिए जब वे आये तो वृद्ध ऋषि के पास जाने में लज्जाबोध से ग्रस्त रानी ने अपनी अशिक् नाम की एक दासी को अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत कर उनके पास भेज दिया, परन्तु ऋषि की दिव्य दृष्टि से यह बात छिपी न रह सकी। उन्होंने मन्त्रपूत जल से उसको अभिषिक्त कर ऋषिपुत्री के रूप में प्रतिष्ठित किया और तत्पश्चात् उसके साथ सङ्गम किया जिसके फलस्वरूप कक्षीवान् नामक ऋषि का जन्म हुआ। इस प्रकार, ये महर्षि दीर्घतमा के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए।

गुरुकुल में ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक चिरकाल तक रहकर वेदाभ्यास सम्पन्न करने के बाद गुरु की आज्ञा से कक्षीवान् घर की ओर चल पड़े। मार्ग में रात्रि हो जाने के कारण एक स्थान पर वे विश्राम करने लगे। प्रातःकाल होने पर राजा स्वनय अपने अनुचरों के साथ घूमते-फिरते वहाँ आ पहुँचे। उनके इस अप्रत्याशित आगमन से कक्षीवान् ससम्भ्रम उठ बैठे। राजा स्वनय ने उनका हाथ पकड़ कर अपने आसन पर बैठाया और उनके रोचिष्णु सौन्दर्य को देखकर मन ही मन उन्हें अपने जामाता के रूप में वरण करने की इच्छा से पूछा की भगवन्! आप किस के पुत्र हैं और आप का क्या नाम है? इस पर कक्षीवान् ने अपने माता-पिता का नामोल्लेख करते हुए उन्हें अपना वृत्तान्त कह सुनाया। सब कुछ सुनने के बाद उन्हें आदर के योग्य मान कर राजा स्वनय मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें घर लाकर मधुपर्क, वस्त्र एवं माल्यप्रभृति से उनका सम्मान किया और उन्हें अनेकों रथ, दस कन्याएँ, एक सौ स्वर्णमुद्राएँ, एक सौ बैल तथा एक हजार साठ गायें प्रदान कीं। उन्होंने सब कुछ स्वीकार कर अपने पिता दीर्घतमा के पास उपस्थित हो दान में प्राप्त सारा सम्भार उन्हें दिखलाया। राजा स्वनय द्वारा प्रदत्त हर महादान को देखकर प्रसन्नचित्त दीर्घतमा महर्षि ने उसकी प्रशंसा करते हुए उसकी शुभकामना की और अपने पुत्र को सोमयाग करने का आदेश देकर कहा कि राजा स्वनय दिनानुदिन अभ्युदय को प्राप्त करें ऐसी कामना करो। उन्होंने इस प्रसङ्ग में दान की स्तुति करते हुए कहा कि दान देनेवाला महापुरुष इस लोक में सभी प्रकार की समृद्धि प्राप्त करता है तथा परलोक में स्वर्गसौख्य प्राप्त करता है। गोदान और स्वर्णदान करनेवाला इस लोक में माल्य, चन्दनानुलेपन एवं मणिमुक्ता प्रभृति रत्नसम्भार के सौख्य को पाकर आनन्दित होता है, दीर्घायुष्य प्राप्त करता है तथा दानजनित दुरितक्षय के फलस्वरूप आत्मज्ञान के द्वारा सुदुर्लभ मोक्ष का लाभ करता है।

प्रस्तुत दानस्तुति से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक अभिजात समाज में ऋषियों का बहुत ही समादर था, राजागण उन्हें दान में गो, हिरण्य, अश्व एवं रथ प्रभृति के साथ अपनी कन्याएँ भी प्रदान कर दिया करते थे तथा ऋषिगण इस प्रकार दान में प्राप्त द्रव्यराशि का दाता के यशोगान के साथ यज्ञयाग के अनुष्ठान में सदुपयोग किया करते थे। यह उस समय की शिष्ट-समाज में प्रचलित रीति थी जिसके वर्णन के द्वारा ऐसे सूक्तों में प्राचीन लोक-समादृत परम्परा को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

उपर्युक्त सूक्तों के अतिरिक्त स्वाभाविक प्राणिवृत्त-वर्णन एवं विषादपूर्ण आत्मवृत्त-वर्णन के निदर्शन के रूप में मण्डूक-सूक्त एवं अक्षसूक्त उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। इनमें से मण्डूक-सूक्त के अन्तर्गत वृष्टि के देवता पर्जन्य एवं वृष्टिनिर्भर कृषक-समुदाय के मध्यवर्ती सम्बन्ध के संसूचक मण्डूकों का आलम्बन के रूप में वर्णन किया गया है और अक्षसूक्त के अन्तर्गत अक्षक्रीड़ा में पराजित एक द्यूत प्रसक्त कितव के पश्चात्ताप-पूर्ण आत्मवृत्त का वर्णन प्राप्त होता है।

## कितव-कथा

कवष ऐलूष द्वारा साक्षात्कृत अक्षसूक्त के अन्तर्गत एक दुर्भाग्य-पराहत अक्षदेवी की दैन्य एवं पश्चात्ताप से सम्भृत आत्मकथा का वर्णन प्राप्त होता है जो अक्षक्रीडा के दुर्निवार आकर्षण के कारण अपना सर्वस्व गँवाकर सतत ऋणग्रस्त रहने के फलस्वरूप सर्वत्र अनादर का पात्र बना फिरता है। सूक्त का मुख्य प्रयोजन अक्ष एवं अक्षदेवी की निन्दा तथा कृषिकर्म की उपादेयता को रेखाङ्कित करना है। वर्णन की स्वाभाविकता एवं सजीवता से परिचित होने के लिए प्रस्तुत सूक्त का निम्न विन्यस्त सार-सङ्कलन पठनीय है।

हवा में सर्वदा हिलती रहनेवाली विभीतक वृक्ष की ऊँची डाल की लकड़ी से निर्मित ये अक्ष मुझे सोमरस के समान मादक प्रतीत होते हैं। मेरी पत्नी का स्वभाव बड़ा ही अच्छा था। उसने कभी भी मेरे ऊपर क्रोध नहीं किया। वह मेरे साथियों के प्रति भी सौजन्यपूर्ण व्यवहार किया करती थी। परन्तु, इस अक्षक्रीडा के प्रति अपनी अत्यधिक आसक्ति के कारण मैंने ऐसे अनुकूल स्वभाववाली पत्नी का भी परित्याग कर डाला। अब, घर जाने पर मेरी सास मुझ से द्वेष करती है; और, मेरी पत्नी मेरे समीप नहीं आती है। ऐसा कोई भी मनुष्य मुझे नहीं मिलता है जो मांगने पर धन देकर मुझे सुखी करे। मैं जब अपने भाग्य पर सोचता हूँ तो मैं अपने को एक जरा-जर्जर अश्व के समान अकार्यक पाता हूँ। विजेता कितव-समाज अक्षक्रीड़ा में पराजित हुए कितव की पत्नी को धर्षित करते हैं तथा उसके पिता, माता एवं भाई भी उन विजेता कितवों से कहते हैं कि ऋणशोधन के लिए इसे ले जाओ बाँधकर। हम इसे नहीं पहचानते।

द्यूतक्रीड़ा में हार जाने के विषाद से बिना कुछ कहे ही घर से चले जाने के कारण कितव की पत्नी पति के वियोग में निरन्तर सन्तप्त रहा करती है तथा उसकी माता भी इस चिन्ता से कि वह कहाँ इधर-उधर भटकता होगा, सदैव उद्विग्न रहा करती है। द्यूत में हारे हुए धन को चोरी करके चुकाने की इच्छा से रात में वह किसी घर के समीप जाता है। अन्य व्यक्तियों की सुखी पत्नी तथा उनके सुव्यवस्थित घरों को देखकर उसे अपनी चिन्तातुर पत्नी तथा अव्यवस्थित घर का ध्यान हो आता है जिसे सोच-सोचकर वह अतिशय सन्तप्त रहा करता है। अन्त में मन्त्रद्रष्टा कवष ऐलूष को सविता देवता की कृपा

से सुबुद्धि प्राप्त होती है कि उसे अक्षक्रीडा छोड़कर कृषिकर्म, पशुपालन तथा अपनी पत्नी का पालन-पोषण करते हुए परिमित धन से ही संतुष्ट रहना चाहिए। द्यूतव्यसन के दुर्निवार आकर्षण के वशीभूत होकर द्यूतप्रसक्त कितव जब पराजित हो जाता था तब अपने स्वजनों से भी तिरस्कृत होकर वह मारा-मारा फिरता था। दैन्य, निराशा, विषाद एवं पश्चात्ताप से व्यथित एक पराजित कितव की मर्मवेधिनी पीड़ा इस सूक्त में मुखर हो उठी है। इस सूक्त का पर्यवसान द्यूतव्यसन की हेयता तथा कृषि एवं पशुपालन पर आश्रित सन्तोषपूर्ण गृहस्थ-जीवन को अपनाने के उपदेश के साथ होता है। एक पराजित चिरन्तन किंतव की यह आत्मकथा क्रूर यथार्थता के दंश से आविद्ध लौकिक अनुभूतियों की भित्ति पर प्रतिष्ठित है जिसमें नीति के शाश्वत तत्त्व निहित हैं। अक्षसूक्त में उपलब्ध कितव की इस आत्मकथा में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठा है।

## काक्षीवती घोषा की कथा

देवमाहात्म्य के उद्भावन से सम्बद्ध काक्षीवती घोषा द्वारा साक्षात्कृत ऋग्वेद के दो सूक्तों में उसकी सुप्रसिद्ध कथा प्राप्त होती है, जिसका उल्लेख शौनक ने भी बृहद्देवता में किया है। कथा इस प्रकार है:-

महर्षि कक्षीवान् की घोषा नामक एक पुत्री थी। वह पापरोग से ग्रस्त हो जाने के कारण विरूप हो गयी थी और इसी अवस्था में साठ वर्ष तक पिता के ही घर में पड़ी रही। उसे अपनी इस दुर्भाग्यपूर्ण दशा पर बड़ी चिन्ता हुई कि वह पति और पुत्र के बिना व्यर्थ ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो गयी। अतः उसे रूप और सौभाग्य की कामना से अश्विनीकुमार-युगल की स्तुति के योग्य मन्त्रों के दर्शन की लालसा उत्पन्न हई। इस प्रकार ध्यानमग्न अवस्था में उसने ऋग्वेद के दशम मण्डल के उनचालीसवें और चालीसवें सूक्त का दर्शन प्राप्त किया। अश्विनीकुमार-युगल के चिरन्तन माहात्म्य का उल्लेख करती हुई घोषा ने उन सूक्तों के द्वारा जब उनकी स्तुति की तो वे प्रसन्न होकर प्रकट हुए और उन्होंने उसे नैरुज्य, तारुण्य एवं सौन्दर्य प्रदान किया। इन स्ववैद्यों के अनुग्रह से घोषा को पति की भी प्राप्ति हुई और कालक्रम से उसे एक पुत्र का भी लाभ हुआ जो सुहस्त्य के नाम से मन्त्रद्रष्टा ऋषि के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

महर्षि कक्षीवान् की पुत्री घोषा द्वारा प्रस्तुत यह कथा अश्विनीकुमारों की चिकित्साकुशलता का परिचय प्रदान करती है तथा वेद-पुराण-प्रोक्त कथा-परम्परा में स्ववैद्य के रूप में उनकी प्रसिद्धि का अन्यतम प्रमापक है।

उपर्युक्त सन्दर्भ के अन्तर्गत प्रस्तुत कतिपय ऋग्वेदीय सूक्तों के सार-सङ्ग्रह से उनमें निहित कथातत्त्व का स्वरूप समझा जा सकता है। इन कथाओं का वस्तुतत्त्व वैदिक धर्मधारणा के अवगुण्ठन में निगूढ़ भाव से परिस्पन्दित होता है तथा इनमें लोकजीवन की

अनुभूतियाँ एवं नैतिकता की अवधारणाएँ अपने चिरन्तन परिवेश में अभिव्यक्त हुई हैं। इन आख्यानों की भाषाशैली एवं अर्थनिवेदन की भङ्गिमाओं में एक अनाहार्य-मनोहर काव्यश्री की दिव्य आभा सर्वत्र ही उद्भासित हो उठी है। प्रसङ्गविशेष के अनुरोध से प्रसाद एवं ओजस्विता से सम्भृत तथा स्वभावोक्ति से परिपेशल ऋग्वेद का वाचिक शिल्पविधान चिरंन्तन महर्षियों की वाक्साधना को स्पष्ट रूप से रेखाङ्कित करता है।

## यजुर्वेद में प्राप्त कथाएँ

यजुर्वेद की प्रकृति ऋग्वेद की प्रकृति से भिन्न है। ऋग्वेद के मन्त्रों का मुख्य विषय अग्नि, इन्द्र, मरुत् पर्जन्य, रुद्र, वरुण, पूषा, मित्र, सविता एवं उषा प्रभृति देवताओं की स्तुतियाँ हैं, जिनका होता नामक ऋत्विक् के द्वारा यज्ञ में शंसन हुआ करता था। परन्तु यजुर्वेद का साक्षात् सम्बन्ध यज्ञ-सम्पादन से है जिस सन्दर्भ में अध्वर्यु-नामक ऋत्विक् के द्वारा कर्मविशेष में मन्त्रों का विनियोग किया जाता है। अतएव यजुर्वेद की अपर आख्या आध्वर्यव वेद भी है। गद्यात्मक ब्राह्मण भाग के क्रमशः सद्भाव तथा अभाव के आधार पर कृष्ण तथा शुक्ल के भेद से यजुर्वेद की दो वाचनाएँ प्राप्त होतीं हैं।

वैदिक वाङ्मय में सर्वप्रथम यजुर्वेद में ही गद्य का आविर्भाव हुआ है। इसके अन्तर्गत यज्ञविधान के प्रतिपादन के सन्दर्भ में कतिपय रोचक आख्यान भी उपलब्ध होते हैं, जिन्हें प्राचीन कथा-साहित्य के स्वरूप-विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ऐसे आख्यानों में तैत्तिरीय संहिता में देवासुर-सङ्घर्ष का आख्यान तथा मैत्रायणीसंहिता में रात्रि की उत्पत्ति एवं इन्द्र द्वारा पर्वतों के पक्षच्छेदन के सुप्रसिद्ध आख्यान वर्णित हुए हैं। इनके परिचय के लिए सङ्क्षेप में इनके सारांश नीचे प्रस्तुत किये जाते हैः-

### १. देवासुर-सङ्घर्ष का आख्यान

एक बार राक्षसों और असुरों में संघर्ष छिड़ा। इस संघर्ष में मनुष्य तथा पितर देवताओं के संघ में थे तथा असुर और पिशाच राक्षसों के साथ थे। राक्षस बड़े ही क्रूरकर्मा थे। स्वभावतः रक्तपिपासु होने के कारण वे मनुष्य के शरीर का रक्त खींच कर पी जाते थे, जिसके फलस्वरूप दूसरे दिन सूर्योदय होते-होते उसकी मृत्यु हो जाती थी। देवताओं को राक्षसों के इस दारुण कृत्य का जब पता चला तब उन्होंने भेदनीति का अवलम्बन किया। उन्होंने राक्षसों को यह स्वीकार कर अपने संघ में मिला लिया कि असुरों को लूटने से प्राप्त धन में उन्हें आधा अंश दिया जायगा। अब राक्षसों और असुरों में फूट पड़ जाने के कारण असुरों का बल क्षीण हो गया जिससे देवताओं ने सरलता से उनपर विजय प्राप्त किया। इस विजय के पश्चात् राक्षसों के प्रति सहज वैरभाव के कारण देवताओं द्वारा उन्हें भगा दिये जाने पर जब वे विरोध-मुखर हुए तब देवताओं ने अग्नि की सहायता से उन्हें पराजित कर पूर्ण विजयश्री प्राप्त की।

## २. रात्रि की उत्पत्ति का आख्यान

अपने भाई यम की मृत्यु हो जाने पर उसकी बहन यमी बहुत उदास रहने लगी। देवताओं द्वारा वारम्वार सान्त्वना देने पर भी वह एक ही रट लगाया करती थी कि आज ही तो यम का निधन हुआ है। यह देखकर देवताओं ने रात्रिरहित दिवसकाल को खण्डित कर उसके दूसरे भाग से रात्रि की सृष्टि की। इस प्रकार अनेक रात्रियों से व्यवहित हुए अनेक दिनों के व्यतीत हो जाने पर कालकृत व्यवधान के फलस्वरूप यमी धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो पायी।

३. **पर्वतपक्षच्छेदन-आख्यान**-पर्वत प्रजापति के ज्येष्ठ पुत्र हैं। पूर्वकाल में उनके पंख हुआ करते थे। वे अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहते, उड़कर जाते और धरती पर वेग के साथ उतर पड़ते जिसके फलस्वरूप पृथिवी निरन्तर व्यथित होती रहती थी। पृथिवी को इस व्यथा से मुक्त करने के लिए इन्द्र ने उनके पंखों को काट डाला और पृथिवी को पर्वतों से कीलित कर स्थिर कर दिया। पर्वतों के वे कटे हुए पंख मेघ बन गये और यही कारण है कि आज भी वे पर्वतों से, पावस में, जा लगते हैं जहाँ पहले उनका स्थान था।

उपर्युक्त कथाओं में से देवासुर-संघर्ष की कथाा में कूटनीतिपूर्ण विचारधारा की स्पष्ट रूपरेखा प्राप्त होती है। रात्रि की उत्पत्ति के आख्यान में मनोवैज्ञानिक तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है तथा इन्द्र द्वारा पर्वतों के पक्षच्छेदन के आख्यान में पुराकालीन भूगर्भ के आवर्त्तन-विवर्त्तन से बहुधा होने वाले भूकम्पों की परवर्ती भौगोलिक स्थिति का कल्पनामूलक वर्णन किया गया है जब पृथ्वी को भूकम्प की वारंवारता से त्राण मिल चुका था।

कथा की स्वाभाविक रुचि गद्यात्मक भाषाशैली को अपनाने की होती है। अतः यजुर्वेद के अन्तर्गत विद्यमान गद्य-सन्दर्भ में कथाओं का स्वरूप स्पष्टता की ओर अग्रसर होता उपलब्ध होता है। इन कथाओं पर धर्मभावना का आवरण पड़ा हुआ है और यज्ञसंस्था से सम्बद्ध विविध अनुष्ठानों के सन्दर्भ में इनका आख्यान किया गया है। इतना होने पर भी इन कथाओं में लौकिक ज्ञानधारा का प्रवाह कहीं स्पष्ट तो कहीं निगूढ-भाव से प्रवाहशील दिखाई देता है।

## ब्राह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध कथाएँ

संहिता-साहित्य के परवर्त्ती काल में यज्ञ-याग को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए अनियताक्षर पदरचनात्मक गद्यशैली में ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना की गयी। यज्ञविशेष के अन्तर्गत अनुष्ठित होने वाले विविध कर्मों एवं उनसे सम्बद्ध मन्त्रों का व्याख्यान इनका मुख्य विषय है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के दो भाग हैः-विधि एवं अर्थवाद। विधिवाक्य द्वारा कर्त्तव्यत्वेन निर्दिष्ट कर्मविशेष के स्तुतिपूर्वक समर्थन के लिए अर्थवाद का उपन्यास किया गया है। ये अर्थवादात्मक सन्दर्भ विधिवाक्यों के साथ एकवाक्यतापन्न होकर ही प्रामाण्यलाभ

करते हैं।

अर्थवाद के अन्तर्गत स्थान-स्थान पर विविध दृष्टान्त एवं आख्यायिकाएँ उपलब्ध होती हैं, जिन के द्वारा यज्ञविधान ग्रन्थों की नीरस पृष्ठभूमि में इस प्रकार के दृष्टान्त एवं आख्यान मरुप्रदेश में अवस्थित शीतल उद्यान के समान हैं जहाँ इनके अध्येताओं को मनोविनोद की सामग्री प्राप्त होती है। ब्राह्मणों के रचनाकाल के अन्तर्गत विकसित वैदिक संस्कृति का अध्ययन करने पर इन आख्यानों की हृद्यता तथा कल्पनामूलक समृद्धि सुस्पष्ट हो जाती है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्राप्त कतिपय महत्त्वपूर्ण आख्यानों की विषय-सूची अधोविन्यस्त है :-

१. मन और वाणी में कलह का आख्यान
२. स्वर्भानु द्वारा सूर्य पर आक्रमण तथा अग्नि द्वारा उसका विनाश।
३. देवताओं के समीप से यज्ञ द्वारा अश्वरूप धारण कर पलायन तथा मुट्ठी भर कुशग्रास का प्रलोभन देकर उसका प्रत्यानयन।
४. असुरों तथा देवताओं के बीच हुए अनेकानेक संग्राम।
५. पुरूरवा और उर्वशी का आख्यान।
६. जलप्लावन का चिरन्तन आख्यान।
७. पुरुष से चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति का आख्यान।
८. शुनःशेप का आख्यान।
९. कमलनाल चुराने वाले चोरों का आख्यान।
१०. कवष ऐलूष का आख्यान।
११. सौपर्ण आख्यान।
१२. यज्ञिय पशु से सम्बद्ध आख्यान।
१३. विश्वन्तर एवं ब्राह्मणों का आख्यान।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में अर्थवाद के अन्तर्गत विन्यस्त आख्यानों की प्रकृति से परिचित होने के लिए यहाँ कतिपय आख्यानों का सारसङ्कलन प्रस्तुत किया जाता है :-

## १. कवष ऐलूष का आख्यान

एक समय पुण्यसलिला सरस्वती नदी के पुलिन पर भृगु एवं अङ्गिरा आदि महर्षियों ने यज्ञ प्रारम्भ किया। उन्हीं में से एक का पुत्र था कवष जिसे यह कहकर ऋत्विजों ने यज्ञ-भूमि से बाहर कर दिया कि यह एक दासी का पुत्र है तथा इसका शील-स्वभाव द्विजोचित नहीं है। उसे शिष्टमण्डली में रहने के अयोग्य घोषित कर याज्ञिकों ने सरस्वती नदी से दूरवर्त्ती मरुभूमि में निर्वासित कर दिया जिससे जल के अभाव में उसकी प्राणरक्षा न हो सके। इस प्रकार याज्ञिकों द्वारा मरुकान्तार में निर्वासित कवष का कण्ठ जब प्यास से सूखने लगा तब उसने अपोनप्त्रिय सूक्त से जल के देवता की स्तुति की जिसके

फलस्वरूप नदीरूप में सरस्वती ने आकर उसकी पिपासा शान्त की। इस घटना को देखकर ऋषियों ने जब जाना कि साक्षात् सरस्वती देवी ने इसे अनुगृहीत किया है तब उसे भी बुलाकर ऋषियों ने यज्ञ में स्थान दिया और उसके द्वारा दृष्ट मन्त्र को अपनाकर याज्ञिकों ने भी अन्न तथा जल की समृद्धि प्राप्त की। यह आख्यान अपोनप्त्रिय विधि की कर्त्तव्यता के उपदेश के सन्दर्भ में निबद्ध किया गया है।

यहाँ हम देखते हैं कि जन्म एवं आचरण से हीन होने के कारण पहले तो कवष को तिरस्कृत एवं निर्वासित कर दिया जाता है, किन्तु वही जब मन्त्रद्रष्टा का स्पृहणीय पद प्राप्त कर लेता है तब उसे शिष्ट समाज सोत्साह समादृत करता है। इससे जन्म की अपेक्षा ज्ञान की श्रेष्ठता पर प्रकाश पड़ता है। और इस प्रकार यह आख्यान तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चिन्तनधारा को स्पष्ट करता है।

## २. मन और वाणी में कलह का आख्यान

एक समय मन और वाणी में अपनी-अपनी श्रेष्ठता को लेकर कलह उत्पन्न हो गया। मन का कथन था कि वह वाणी से श्रेष्ठ है क्योंकि वाणी मन द्वारा चिन्तित अर्थ को ही प्रकट करती है। वाणी का कथन था कि तुम्हारे द्वारा चिन्तित अर्थ का प्रकाशन तो मैं ही करती हूँ। अतः, मैं ही तुम से श्रेष्ठ हूँ। इस कलह के समाधान के लिए दोनों ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित हुए। दोनों की बातें सुनकर ब्रह्मा ने मन की श्रेष्ठता उद्घोषित की और वाणी को मन की दासी कहा। इस पर वाणी ने रुष्ट होकर कहा कि अब से यज्ञ में तुम्हारे नाम से समर्पित किये जानेवाले हविर्द्रव्य के बोधक वाक्य के रूप में मैं प्रकट नहीं होऊंगी, मौन रह जाऊंगी। प्रजापतिदैवत हवनकर्म का अनुष्ठान मौनभाव से ही करना चाहिए इस विधि के औचित्य की व्याख्या के सन्दर्भ में इस आख्यान को निबद्ध किया गया है।

यहाँ हम देखते हैं अमूर्त्त मन और वाणी पर मानवरूप का अध्यारोप किया गया है जिसके मूल में वैदिक कल्पना का विलास परिस्पन्दित होता है। अमूर्त्त पात्रों के मूर्त्तन का यह चिरन्तन उदाहरण है। प्रकाशन-क्रिया के कर्मभूत अर्थलक्षण पदार्थ तो वस्तुतः मन के ही अधीन हैं, अतः मन की श्रेष्ठतामें मनस्तत्त्व का निगूढ सिद्धान्त भी निहित है।

## ३. जलप्लावन का आख्यान

एक समय प्रातःकाल स्नान की वेला में मनु के हाथ में जल के साथ एक क्षुद्रकाय मत्स्य भी आ गया। उसने उनसे कहा कि यदि तुम मेरी रक्षा कर सको तो मैं तुम्हारा उपकार करूँगा। मनु के द्वारा पूछे जाने पर कि वह उनका कैसा उपकार कर सकेगा उस मत्स्य ने कहा कि एक नौका का निर्माण करो और उसे जलप्लावित कर मुझे उसमें छोड़

दो कि ताकि मैं उसमें रहते हुए बड़ा आकार धारण कर सकूँ। तत्पश्चात्, मुझे तुम समुद्र में छोड़ देना। आने वाले दिनों में एक महान् जलप्लावन होने वाला है जिसमें सारी धरती डूब जायेगी। उस समय मैं तुम्हारी रक्षा करँगा। मनु ने वैसा ही किया जैसा कि उस मत्स्य ने कहा था। समय आनेपर जलप्लावन की घड़ी आ गयी। पृथ्वी को जलमग्न पाकर मनु ने नोका का आश्रय लिया। इतने में वह मत्स्य भी वहाँ आ पहुँचा और उसने मनु को हिमालय के उत्तुंग शिखर पर पहुँचा दिया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने यज्ञ का अनुष्ठान किया जिससे उन्हें स्त्री का लाभ हुआ; और इस प्रकार, मानवी प्रजा-सृष्टि की परम्परा गतिशील हो उठी।

प्राचीन जलप्लावन से सम्बद्ध यह आख्यान मत्स्योपाख्यान के नाम से भी प्रसिद्ध है तथा इससे मिलती-जुलती कथाएँ जेंद अवेस्ता, बाइबल एवं ग्रीक धर्मकथा के अन्तर्गत भी उपलब्ध होतीं हैं। समीक्षकों ने ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि जलप्लावन की ये कथाएँ परस्पर निरपेक्ष भाव से विकसित हुई होंगी। तथापि, शतपथ-ब्राह्मण में निबद्ध जलप्लावन की कथा विश्वसाहित्य में सर्वाधिक चिरन्तन मानी जाती है। इस कथा में नीतिकथा की विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं।

उपर्युक्त कथासार के अवलोकन से ब्राह्मण-साहित्य में निबद्ध कथाओं की एक सामान्य रूपरेखा का परिचय प्राप्त हो सकता है। ऋग्वेदोक्त शुनःशेप-आख्यान तथा पुरूरवा-उर्वशी आख्यान क्रमशः ऐतरेय ब्राह्मण एवं शतपथ-ब्राह्मण के अन्तर्गत विश्लेषणात्मक गद्यशैली में सविस्तर भाव से पुनराख्यात हुए है। शुनःशेप आख्यान हरिश्चन्द्रोपाख्यान के नाम से भी प्रसिद्ध है। ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तर्गत गद्य एवं गाथा की सम्मिश्र-शैली में पूर्ण नाटकीयता के साथ निबद्ध होने के कारण यह एक विलक्षण आकर्षण-कौशल रखता है। नरबलि की आदिम बर्बरतापूर्ण प्रथा की ओर से वैदिक आर्यों के मानस में उभरती हुई अरुचि एवं मानवतावादी भावना के विकास के स्वर इस आख्यान की नवीन प्रस्तुति में स्पष्ट ही सुने जा सकते हैं।

यज्ञसंस्था से सम्बद्ध दैवतवाद की व्याख्या में अनुस्यूत इन आख्यानों के परिशीलन से ऐसी कल्पना को बल मिलता है कि इनके मूलरूप बहुत अंशों में लौकिक रहे होंगे जो परवर्त्ती काल में कर्मकाण्ड से आविष्ट होकर धूमिल पड़ गये। वस्तुतः लौकिक कथाओं की विराट् सामग्री के एक परिमित अंश का ही ये आख्यान प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्राह्मण काल की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि प्रतिपाद्य की ग्राह्यता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से विधिभाग के साथ रोचक आख्यानों के विनियोजन में निहित है। निरन्तर अग्रसर होती हुई कथा-परम्परा का दूरवर्ती नूपुरसिंजन इन आख्यानों में प्रतिध्वनित होता है।

## उपनिषद्-वाङ्मय में निबद्ध कथाएँ

उपनिषद् वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग है। अतः वेदान्त के नाम से यह सुविश्रुत है। उपनिषद्-वाङ्मय वैदिक परम्परा की रहस्यवादी आध्यात्मिक चिन्तन-धारा का प्रतिनिधित्व करता है। उपनिषदों में ब्रह्मतत्त्व के स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में विविध आख्यानों का समावेश किया गया है। यहाँ कतिपय आख्यानों का नामोल्लेख किया जाता है :-

१. नचिकेता और यम का आख्यान
२. सत्यकाम जाबाल का आख्यान
३. आरुणि और श्वेतकेतु का आख्यान
४. सनत्कुमार एवं नारद का आख्यान
५. इन्द्र एवं विरोचन का आख्यान
६. याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी का आख्यान
७. प्रवाहण जैबलि एवं आरुणेय श्वेतकेतु का आख्यान
८. प्रतर्दन एवं इन्द्र का आख्यान
९. देवासुरसंग्राम का आख्यान
१०. जानश्रुति पौत्रायण का आख्यान
११. रैक्व का आख्यान
१२. श्वानों का आख्यान
१३. उमा हैमवती का आख्यान

उपर्युक्त आख्यानों में से कठोपनिषद् में वर्णित नचिकेता और यम का आख्यान, छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित सत्यकाम जाबाल का आख्यान एवं जानश्रुति पौत्रायण का आख्यान तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी आख्यान बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यहाँ परिचय के लिए इनका सार-सङ्कलन प्रस्तुत है।

१. **नाचिकेतोपाख्यान**-एक वार वाजश्रवा के पुत्र महर्षि उद्दालक ने विश्वजित् नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ की दक्षिणा के रूप में यजमान अपना सर्वस्व-प्रदान कर देता है। दक्षिणा-दान के क्रम में उनके पुत्र नचिकेता ने देखा कि उसके पिता बूढ़ी कृशकाय गायें तो दान कर रहे हैं किन्तु अच्छी-अच्छी दुधारू गायें रक्खे हुए हैं। नचिकेता को अपने पिता के इस मोहग्रस्त व्यवहार से बड़ा ही खेद हुआ और वह उनका मोहभङ्ग करने के अभिप्राय से उनसे पूछा कि पिताजी ! आप मुझे किसको दान करेंगे। पहले तो उसके पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया परन्तु जब उसने वारम्वार यही प्रश्न किया तो उन्होंने झुंझलाकर उससे कहा कि जा, तुझे मैंने यमराज को प्रदान किया। यह जानते हुए भी कि पिता ने क्रोध के वशीभूत होकर ऐसा कहा है, नचिकेता एक आज्ञाकारी पुत्र होने के कारण पिता

के वचन को सत्य प्रमाणित करने के लिए यमराज के भवन पर पहुँच कर उनकी अनुपस्थिति में वहीं द्वारदेश पर भूखे-प्यासे तीन रातों तक पड़ा रहा। प्रवास से लौट कर आये यमराज को जब परिजनों के द्वारा यह समाचार मिला तो वे नचिकेता के पास आये और उन्होंने सत्कारपूर्वक उससे कहा कि तुम नमस्कार-योग्य अतिथि होकर भी मेरे द्वार पर तीन रात्रि तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये पड़े रहे, अतः एक-एक रात्रि के लिए एक-एक कर मुझ से तीन वर माँग लो। इस पर नचिकेता ने सर्वप्रथम पितृपरितोष-रूप प्रथम वर तथा स्वर्गप्राप्ति-साधनभूत अग्निविद्या-परिज्ञान रूप द्वितीय वर यमराज से माँगे जिन्हें उन्होंने उसे सहर्ष प्रदान किया।

तत्पश्चात्, जब नचिकेता ने आत्मतत्त्व-बोध रूप तृतीय वर माँगा तब पहले तो यमराज ने उसे भौतिक सुखों का प्रलोभन दिया परन्तु उसकी वैराग्यभावना तथा आत्मतत्त्व-बोध के प्रति उसकी अनन्य आसक्ति को देखते हुए उन्होंने उसे परम रहस्य-तत्त्व प्रणव का उपदेश प्रदान किया। आत्मतत्त्व के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यमराज ने नचिकेता के समक्ष शरीर और आत्मा के अन्तर को समझाने के क्रम में रथ का रूपक प्रस्तुत किया है। यह आत्मा रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि इसका सारथि है, मन लगाम है, इन्द्रिय घोड़े हैं, रूप, रस, स्पर्श, गन्धप्रभृति इन्द्रिय रूपी घोडों के मार्ग हैं, और शरीर, इन्द्रिय तथा मन से युक्त आत्माको विवेकशील पुरुषों ने संसारी की संज्ञा प्रदान की है। आत्मज्ञानरूपी सारथि से युक्त तथा मनरूपी लगाम पर नियन्त्रण रखने वाला भाग्यशाली व्यक्ति इस दुस्तर संसार-मार्ग को पारकर सर्वव्यापक परमात्मा के शाश्वत पद की प्राप्ति करता है। यह आत्मा अजन्मा, अजर-अमर है, शाश्वत है, चिरन्तन है तथा शरीर के विनष्ट होने पर भी विनष्ट नहीं होता है। देवता, पितर एवं मनुष्य-प्रभृति के विविध शरीरों में अवस्थित यह आत्मा स्वयं शरीररहित है। इसकी सर्वव्यापकता को जानने वाला पुरुष सर्वथा वीतशोक हो जाता है। स्वाध्याय, मेधाशक्ति अथवा शास्त्रों के श्रवण से इस आत्मतत्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती है। यह तो केवल आत्माकी कृपा पर ही निर्भर है। जिस पुरुष को यह आत्मोपलब्धि के योग्य समझता है उसके समक्ष यह अपने को अनावृत कर देता है। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र एवं विद्युत् का प्रकाश भी उस आत्मलोक को प्रकाशित नहीं कर पाता है। उसी के प्रकाश से ये सूर्य प्रभृति प्रकाशित होते हैं। बुद्धि में विद्यमान अज्ञानमूलक विविध ग्रन्थियाँ जब विशीर्ण हो जातीं हैं तब सारी एषणाओं से रहित होकर मरणधर्मा पुरुष अमर हो जाता है। यही सारे वेदान्तों के उपदेश का सारतत्त्व है। इस प्रकार यमराज के द्वारा उपदिष्ट अध्यात्मविद्या तथा योगविधि का ज्ञान प्राप्त कर नचिकेता ने ब्रह्मभाव की उपलब्धि की जिससे उसका जन्म सफल एवं धन्य हो गया।

कठोपनिषद् के इस सुविश्रुत आख्यान में साधन-चतुष्टय-सम्पन्न नचिकेता के चरित्र का ज्योतिर्मय विकास उपलब्ध होता है। उपनिषत्साहित्य में वर्णित समस्त चरित्रों में

नचिकेता का चरित्र असाधारण रूप से आकर्षक हो उठा है। असिधारा के समान दुर्गम मोक्षपथ पर अपनी अनन्य निष्ठा का सम्बल लेकर निरन्तर अग्रसर होते हुए एक निःस्पृह एवं वीतकाम यात्री के रूप में नचिकेता चिरस्मरणीय हो उठा है जिसने आत्मोपलब्धि का दुर्लभ लक्ष्य पा लिया। इस कथा से लक्ष्यप्राप्ति में निश्चय की दृढ़ता का महत्त्व स्पष्ट होता है।

२. **सत्यकाम जाबाल का आख्यान**-समृद्धिशाली परिवारों में परिचारिका के कार्य से जीविकानिर्वाह करनेवाली एक स्त्री थी जिसका नाम था जबाला। उसे यौवन वयस में एक पुत्र हुआ जिसका नाम सत्यकाम था। यथासमय शिक्षा प्राप्त करने के लिए जब वह गुरुकुल गया तो महर्षि गौतम ने उसका गोत्र पूछा। वह अपनी माँ से अपना गोत्र जानना चाहा। इस पर उसकी माँ ने कहा मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है। अतः, तुम गुरु से कहना कि मैं सत्काम जाबाल हूँ। जाओ।

गुरु के पास आकर सत्यकाम ने अपनी माँ के कथनानुसार अपने को सत्यकाम जाबाल बतलाया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि माँ को पिता का नाम स्मरण नहीं है। मैं जबाला का पुत्र हूँ, अतः मेरा गोत्रनाम जाबाल है। महर्षि गौतम ने सारी बातें समझते हुए भी कहा कि वत्स ! ब्राह्मण ही ऐसा सत्यवादी हो सकता है। जाओ ! समिधा ले आओ। मैं तुम्हें उपनीत करूँगा। उपनयनसंस्कार के अनन्तर गुरु ने सत्यकाम को चार सौ कृशकाय गायें दीं और कहा कि इन्हें लेकर जाओ। गोचारण करते-करते जब इनकी संख्या एक हजार हो जाय तब उनके साथ गुरुकुल वापस आ जाना।

जंगल में गोचारण करते हुए जब कालक्रम से उसके पास गायों की संख्या एक हजार हो गयी तब एक दिन उस गोयूथ में विद्यमान वृषभ ने सत्यकाम से कहा कि वत्स ! अब हमारी संख्या एक हजार हो गयी है। अतः अब हमें गुरुकुल वापस ले चलो। मैं तुम्हें ब्रह्मबोध के एक चरण की शिक्षा प्रदान करता हूँ। सत्यकाम उनके साथ गुरुकुल चल पड़ा। मार्ग में अध्वखेद से क्लान्त होकर जब-जब वह विश्राम किया करता था तब तब क्रमशः तीन स्थानों पर अग्नि, हंस और एक अन्य जलचर पक्षी ने उसे ब्रह्मबोध के अवशिष्ट तीन चरणों का उपदेश दिया। इस प्रकार, पूर्ण ब्रह्मज्ञान की दीप्ति से विभास्वर होकर सत्यकाम जब एक हजार गायों के साथ गुरुकुल वापस आया तो गुरु ने उससे पूछा कि वत्स ! तुम ब्रह्मज्ञान से दीप्त दिखलायी देते हो। कहो! किसने तुम्हें ब्रह्म का उपदेश प्रदान किया है ? इस पर सत्यकाम ने सारा वृत्तान्त कहकर उनसे निवेदन किया कि गुरुमुख से अधिगत विद्या ही फलवती होती है। अतः आप मुझे ब्रह्मविद्या का उपदेश दीजिए। सत्यकाम के विनयपूर्ण अनुरोध से महर्षि गौतम ने उसे पुनः साङ्गोपाङ्ग ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया।

इस आख्यान में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के परिपार्श्व में दासीवृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करने वाली जबाला की आत्मवृत्त-विषयक स्पष्टोक्ति, ऋजु-स्वभाव एवं

निश्छलता का परिचय प्राप्त होता है। माता के कथनानुसार निस्संकोच एवं अकुण्ठ भाव से अपने मातृमूलक गोत्र का उल्लेख करने वाले सत्यकाम के चरित्र में सत्यवादिता को हम आश्चर्यजनक रूप में प्रतिष्ठित पाते हैं। गो-सहस्र के साथ गुरुकुल लौटने के क्रम में सत्यकाम को वृषभ, अग्नि, हंस एवं एक जलचर पक्षी के द्वारा रहस्यभूत ब्रह्मज्ञान की देशना के वृत्तान्त में प्राणि-पात्रप्रधान कथाबन्ध का परवर्त्ती स्वरूप उन्मेषोन्मुख उपलब्ध होता है, जो अनिर्भ्रान्त भाव से इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि तत्कालीन लोकमानस में पशु-पक्षी एवं अचेतन प्राकृतिक तत्त्व द्वारा मनुष्य की वाणी का व्यवहार किया जाना सन्देहातीत रूप में स्वीकृत हो चुका था। परन्तु, परवर्त्ती तर्कचेतना-वशम्वद भाष्यकारों ने इस आख्यान में चर्चित पात्रों पर देवतात्व का अध्यारोप कर दिया है। तदनुसार, वृषभ प्रभृति क्रमशः वायु, आदित्य एवं प्राणशक्ति के प्रतिरूप के रूप में व्याख्यात हुए हैं।

(३) **जानश्रुति पौत्रायण का आख्यान**-जानश्रुति एक शूद्रकुलोत्पन्न राजा था जिसकी ख्याति प्रचुर अन्नदान के फलस्वरूप असाधारण दाता नृपति के रूप में फैल चुकी थी। एक समय रात्रिकाल में आकाशचारी हंसों में से एक ने कहा कि हे भल्लाक्ष! देखो तो सही, पौत्रायण की ख्याति का प्रकाश द्युलोक की भाँति सर्वत्र प्रसृत्वर हो उठा है। कहीं उसका स्पर्श पाकर तुम भस्म न हो जाना। इस पर दूसरे हंस ने कहा कि ऐसे सम्मानगर्भित वचन का अधिकारी तो एकमात्र रैक्व ही है जिसके सदाचरण के अन्तर्गत समग्र संसार का सदाचरण समाहित है। अतएव, मेरी दृष्टि में तो वही महाप्रज्ञ एकमात्र प्रशंसनीय है। हंस-युगल के इस संवाद को सुनकर राजा जानश्रुति को बड़ा ही कौतूहल हुआ और वह रैक्व के दर्शन-हेतु प्रस्थान करने के पूर्व सारथि से उसका पता लगाने को कहा। पर्याप्त अन्वेषण के बाद सारथि ने रैक्व को एक जंगल के निभृत-प्रदेश में गाड़ी के नीचे अपना शरीर खुजलाते हुए देखा और राजा को उसकी सूचना दी। तत्पश्चात्, प्रचुर उपहार लेकर राजा जानश्रुति रैक्व के पास गये और उनसे दिव्य उपदेश प्रदान करने की प्रार्थना की। पहली बार तो रैक्व ने उनकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी परन्तु दूसरी बार उपहार-सामग्री के साथ उनके आने पर रैक्व ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर उनको कृतार्थ किया।

इस आख्यान में उपलब्ध हंस-युगल का संवाद प्राचीन लोककथा के प्रचलन का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस आख्यान से यह भी विदित होता है कि एक शूद्र राजा भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहा करता था तथा गोयूथ, धन, ग्राम एवं कन्याओं को दक्षिणा में देकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकता था। ज्ञान के अधिकारी होने में जातिजनित बाधा नहीं थी। साथ ही, एक मूलकथा के अन्तर्गत कथान्तर के सन्निवेश की शैली का भी प्राचीनतम रूप यहाँ देखा जा सकता है। इसकी मूलकथा तो हंस-युगल-संवाद है जिसके अन्तर्गत रैक्व की एक दूसरी कथा का गुम्फन किया गया है। मञ्जूषागत-मञ्जूषान्तरन्याय के आधार पर रचित कथा के रूप में इस कथा का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

(४) **यावल्क्य और मैत्रेयी का आख्यान**-महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं- मैत्रेयी और कात्यायनी। इन दोनों में मैत्रेयी तो ब्रह्मवादिनी थीं और कात्यायनी स्त्रीसुलभ सांसारिक बुद्धि रखती थीं। प्रव्रज्या ग्रहण कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने के हेतु कृतनिश्चय होकर महर्षि यागवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा कि आओ, मैं तुम दोनों के बीच अपनी सम्पत्ति का बँटवारा कर दूँ। इस पर मैत्रेयी ने उनसे पूछा कि धन-धान्य से परिपूर्ण इस सारी पृथिवी की मैं यदि स्वामिनी हो जाऊँ तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी अथवा नहीं। इसके उत्तर में महर्षि ने दृढता के साथ स्पष्ट शब्दों में कहा कि नहीं-नहीं। धन से अमरत्व नहीं प्राप्त किया जा सकता है। धन की बदौलत तो केवल सुख-सुविधा से परिपूर्ण धनी लोगों के समान जीवन बिताया जा सकता है। महर्षि का उत्तर सुनकर मैत्रेयी ने कहा कि तब उस धन को लेकर मैं क्या करूँगी जिससे मैं अमरत्व की प्राप्ति नहीं कर पाऊँगी? है स्वामी! आप जिस आत्मतत्त्व को जानते हैं उसी का उपदेश मुझे प्रदान कीजिए। इस पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने उससे कहा कि तू सदा ही मेरी बड़ी प्यारी रही है। आज मेरे प्रिय विषय के सम्बन्ध में प्रश्न कर तू और भी अधिक प्रिय हो गयी है। आओ, मैं तुम्हें मोक्षमार्गस्वरूप आत्मतत्त्व का उपदेश दूँगा। ध्यान से सुनो।

पति की कामना के लिए पत्नी को पति प्यारा नहीं होता है परन्तु अपनी कामना के लिए पति प्यारा होता है। पत्नी की कामना के लिए पत्नी पति को प्यारी नही होती है किन्तु अपनी कामना के लिए पत्नी प्यारी होती है। इसी प्रकार पुत्र, पशु, धन, लोक, देवता प्रभृति भी अपनी कामना-पूर्ति के साधन होने के कारण प्रिय होते हैं। अतः हे मैत्रेयि! यह परम प्रिय आत्मतत्त्व श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन के योग्य है। इस आत्मतत्त्व के श्रवण, मनन, निदिध्यासन एवं ज्ञान से यह सारा विश्व विदित हो जाता है। ब्रह्म, क्षत्र, लोक, वेद एवं प्राणिसमुदाय अपना आत्मस्वरूप ही है। इस आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार गीली लकड़ी को आग में डालने पर उससे धुआं निकलता है उसी प्रकार इस आत्मा से ही निकले हुए हैं सारे वेद, इतिहास, पुराण, विद्याएँ, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य, इहलोक और परलोक। सारी सृष्टि इसी आत्मा का निश्वास है। जिस प्रकार सैन्धव लवण के पानी में घुल जाने पर उसमें लवण रस सर्वात्मना, घनीभूत हो जाता है उसी प्रकार इस आत्मा में प्रज्ञान घनीभूत है। यह आत्मा अविनाशी और अनुच्छित्तिधर्मा है। हे मैत्रेयि! जहाँ द्वैत-भावना रहती है वहाँ एक दूसरे को देखता है, कहता है और सुनता है, परन्तु जहाँ द्वैत-भावना के अभाव में किस साधन से किस को देखे, किससे बात करे और किसे सुने। जो स्वयं ज्ञाता है उसे भला किस साधन से कोई जान सकता है। हे मैत्रेयि, यही अमृत-तत्त्व का उपदेश है। और, इतना कहकर, महर्षि याज्ञवल्क्य गृहत्यागी हो गये।

बृहदारण्यक उपनिषद् के इस दम्पति-सम्वादरूप आख्यान में ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी के प्रश्न के उत्तर के अन्तर्गत महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रस्तुत अध्यात्मविषयक विवरण समस्त

उपनिषत्-साहित्य का एक देदीप्यमान रत्न है। यहाँ विविध उपमाओं की सहायता से आत्मतत्त्व का शरीरव्यतिरिक्त रूप में परिचय प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में विद्यमान कतिपय आख्यानों के ऊपर स्थालीपुलाकन्याय से पूर्ववर्त्ती सन्दर्भ में दृष्टिपात करनेपर, उनके क्रमिक विकास का परिचय निम्नलिखित रूप में प्राप्त होता है। तदनुसार,

१. शुनःशेप आख्यान, कक्षीवान् स्वनय का आख्यान, अपाला की स्तुति, वसिष्ठ द्वारा प्रयुक्त श्वप्रस्वापन सूक्त प्रभृति ऐसे उदाहरण हैं जिनमें छान्दस युग के परिवेश में चिरप्रचलित लोककथाओं के निदर्शन प्राप्त होते हैं।

२. पुरूरवा-उर्वशी संवाद, इन्द्र-इन्द्राणी संवाद, वसिष्ठ-लोपामुद्रा संवाद, भावयव्य-रोमशा संवाद, श्यावाश्व के आख्यान में कामतत्त्व एवं प्रेमभावना के चिरन्तन बीज उपलब्ध होते हैं। परवर्त्ती संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत इन्हीं के आधार पर श्रृङ्गार प्रधान कथाओं का पल्लवन हुआ है।

३. आरण्यक परिवेश में वैदिक चेतना के विकसित होने के कारण आर्यों ने प्राणिजगत् का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। यही कारण है कि मन्त्रों में दृष्टान्त एवं उपमा की वाग्भङ्गिमा के अन्तर्गत उपमान के रूप में पशुपक्षियों का प्रयोग उपलब्ध होता है। साहित्य के क्षेत्र में मानवेतर प्राणियों के प्रवेश की परम्परा का सूत्रपात यहीं से हुआ है।

४. कतिपय मन्त्रों में प्राणियों का प्रयोग साक्षात् न होकर प्रतीक के रूप में किया गया उपलब्ध होता है। "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"- इत्यादि चिरपरिचित ऋग्वेदस्थ मन्त्र में वृक्ष एवं दो पक्षियों का उपादान प्रतीक के रूप में हुआ है। यहाँ वृक्ष संसार के लिए, स्वादिष्ट फल सांसारिक भोगों के लिए, उसे खानेवाले पक्षी का जीवात्मा के लिए तथा निराहार रहकर भी दिव्य कान्तिसम्पन्न पक्षी का परमात्मा के लिए प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त में मण्डूक का वर्णन वर्षा के प्रतीक के रूप में किया गया है। इस मन्त्र के विनियोग-वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि इसका उद्घोष अनावृष्टि के निवारण के लिए किया जाता था। वर्षाऋतु की प्रथम वृष्टिधारा से आप्लावित जलाशयों में टर्र-टर्र की अविराम रट लगानेवाले हर्षोन्मत्त मेढ़कों का जैसा स्वाभाविक एवं जीवन्त वर्णन यहाँ प्राप्त होता है वह ऋग्वेद-संहिता की प्रकृति को देखते हुए सर्वथा विलक्षण एवं कौतूहलजनक है। इस सूक्त के पर्यालोचन से इसके अन्तर्गत विद्यमान प्राणिकथा, लोककथा तथा नीतिकथा के तत्त्वों का सन्धान पाया जाता है।

५. ब्राह्मण-ग्रन्थों में गद्य का सर्वप्रथम प्रयोग प्राप्त होता है जो कथा के स्वरूप-विकास की दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अर्थवाद भाग के अन्तर्गत

विविध आख्यान उपलब्ध होते हैं जिनका वर्गीकरण डॉ. कर्णिक ने निम्नांकित चार वर्गों में किया है :-

(क) प्रतीकात्मक आख्यान,
(ख) ऐतिहासिक एवं लोकप्रिय आख्यान,
(ग) दार्शनिक पुरातन कथाएँ,
(घ) नीतिमूलक कथाएँ

परवर्त्ती संस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत विकसित नीतिपरक कथाओं का मूलाधार इन्हीं आख्यानों में प्रतिष्ठित है। इस दृष्टि से दार्शनिक पुरातन कथाएँ तथा नीतिमूलक कथाएँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अध्ययन से वेदकालीन चिन्तन धारा में राजनैतिक एवं लौकिक उपादानों के निरन्तर विकासोन्मुख प्ररोह का परिचय प्राप्त होता है।

६. पशुपात्र-प्रधान कथाओं के विकास की दृष्टि से ब्राह्मण-ग्रन्थों का अनल्प महत्त्व है। मानवेतर प्राणियों द्वारा मानवी भाषा के प्रयोग में लाये जाने की कल्पना का साक्षात्कार ब्राह्मण-ग्रन्थों में विशद भाव से होता है। इस कल्पना का परवर्ती रूप छान्दोग्य उपनिषद् के अन्तर्गत उपलब्ध जानश्रुति पौत्रायण के आख्यान में प्रस्तुत हंसयुगलसंवाद तथा शौव उद्‌गीथ के गान से सम्बद्ध आख्यान में देखा जा सकता है।

७. परवर्त्ती लौकिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले गद्य-पद्य मिश्रित चम्पूकाव्य की शैली का आदि रूप ब्राह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। इस दृष्टि से ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान का असाधारण महत्त्व है जहाँ इस गद्य-पद्य-मिश्रित शैली का मनोहर निदर्शन प्राप्त होता है।

८. एक कथा के अन्तर्गत अन्य अवान्तर कथा की योजना का विकास ब्राह्मण-ग्रन्थों के आधार पर लौकिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में लब्ध-प्रसर हुआ है। उसे मञ्जूषागत मञ्जूषान्तरन्याय से गुम्फित कथाशैली कहा जा सकता है।

इस प्रकार, वैदिक वाङ्मय में निरन्तर वर्धिष्णु आख्यान-साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न स्रोतों से विभिन्न प्रकार के उपादानों का विपुल सम्भार समाहित होता रहा, जिसके सुदृढ आधार-बन्ध पर ही लौकिक संस्कृत साहित्य के परिसर में एक से एक मनोहर कथाओं के भव्य स्थापत्य की प्रतिष्ठा परवर्त्ती काल में सम्भव हो सकी है। सूत, मागध, कुशीलव एवं ऋषियों द्वारा इन चिरन्तन वैदिक आख्यानों का कालक्रम से सङ्कलन, परिवर्द्धन एवं प्रवचन होता रहा था। प्राचीन साहित्य के इस अमूल्य रिक्थ को संजोकर रखनेवाले, ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, आख्यानविद् कहलाया करते थे। धीरे-धीरे ये आख्यान इतिहास-पुराण की कोटि में अनुप्रविष्ट होकर वैदिक यज्ञों एवं संस्कारों के अवसर पर नियमित रूप से आख्यानविदों द्वारा कीर्त्तित होते रहे। जिनका आधार लेकर परवर्ती काल में विपुलायतन पौराणिक साहित्य का उद्‌भव और विकास सम्पन्न हुआ।

# बौद्ध एवं जैन वाङ्मय का कथा-वैभव

## बौद्ध-वाङ्मय में कथासाहित्य का विकास

संस्कृत भाषा में निबद्ध प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत विद्यमान कथाशैली का प्रभाव समानान्तर रेखा में विकसित होने वाले बौद्धों एवं जैनों की रचनाओं पर भी पड़ा। उन्होंने भी अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार उपदेश प्रदान करने के अभिप्राय से मनोरञ्जक कथाशैली का सोत्साह अवलम्बन किया जिसके फलस्वरूप संस्कृत में निबद्ध महायान बौद्ध वाङ्मय के जातक और अवदान ग्रन्थों में तथा प्राकृत एवं संस्कृत में निबद्ध जैन वाङ्मय के ग्रन्थों में उपदेशप्रद कथाओं का एक विशाल साहित्य उपलब्ध होता है।

बौद्ध संस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत धर्मोपदेशमूलक कथाओं के विन्यास की दृष्टि से जातकमाला, दिव्यावदान, अवदानशतक तथा अवदानकल्पलता उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनमें आर्यशूरविरचित जातकमाला अपने भाषासौष्ठव एवं कथाशिल्प के सौन्दर्य के कारण, बुद्धभक्ति से अनुरञ्जित संस्कृतज्ञ-मण्डली में चिरकाल से समादृत रही है।

जातकमाला की कथाएँ भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म की घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। उन्होंने अपने अनेक पूर्वजन्मों में बोधिसत्त्व के रूप में दान, शील, धैर्य, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा की पारमिता का-परिपूर्णता का-निरन्तर अभ्यास किया था, जिसके फलस्वरूप महाराज शुद्धोदन से मायादेवी में सिद्धार्थ के रूप में जन्म ग्रहण करने पर उन्हें सम्बोधि की प्राप्ति संभव हो सकी। पारिमिताओं की अभ्यासावस्था का ही नाम बोधिसत्त्वता है तथा उनकी सिद्धावस्था का नाम बुद्धावस्था है-बुद्धत्व है। इस प्रकार जातकमाला के अन्तर्गत बोधिसत्त्व के जीवन की लोकोत्तर घटनाएँ वर्णित की गयी हैं।

भगवान् बुद्ध के आदर्शभूत चरित्र के स्थान पर बोधिसत्त्व के चरित्रगत आदर्श को जातकों में सुप्रतिष्ठित किये जाने के पीछे प्रबल यौक्तिकता का आधार विद्यमान है। भगवान् बुद्ध का आदर्श व्यक्तिगत निर्वाण के अभिलाषी भिक्षु का आदर्श था। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने राज्यसुख का परित्याग किया, स्तनन्धय पुत्र से आश्लिष्ट अपनी अनुपम रूपवती पत्नी का परित्याग किया, स्वजन-समाज का परित्याग किया और वासना की ज्वाला में अनवरत जलते हुए इस सांसारिक जीवन से अभिनिष्क्रान्त होकर वे अनागरिक हो गये। भगवान् बुद्ध के इस सर्वस्वत्यागी भिक्षुरूप के प्रति माया में लिप्त साधारण जनसमुदाय को एक ऐसा लोकातिक्रान्त आदर्श दिखलायी पड़ा जिसका अनुकरण उनके लिये असम्भव था। उसे तो एक ऐसा उद्धारकर्त्ता आदर्श पुरुष चाहिए था जिसके जीवन में स्त्री, पुत्र, परिवार तथा विभव के लिए स्थान हो। विश्वमैत्री और अपार करुणा से सम्भृत बोधिसत्त्व के रूप में जनसमुदाय ने इसी उद्धारकर्त्ता पुरुष का साक्षात्कार किया

जो एक भी सांसारिक जीव के दुःखमग्न रहने की स्थिति में स्वयं निर्वाण की कामना नहीं करता है और अशेष प्राणियों के दुःखप्रहाण के लिए कृच्छ्रसाध्य साधना में संलग्न रहता है। इस प्रकार, बोधिसत्त्व के आदर्श ने जनसमुदाय के हृदय को असाधारण रूप से सम्मोहित कर लिया। यही कारण है कि महायान सम्प्रदाय के बौद्ध आचार्यों ने पारमिताओं की साधना में निरत बौधिसत्त्वों की उज्ज्वल चरित्रगाथा को जातक कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

इन जातक कथाओं में सर्वत्र ही सदाचार का उद्द्योतन किया गया है। समाज में विद्यमान विभिन्न कोटि के मनुष्यों की मानसिकता के अनुरोध से इन जातक-कथाओं का प्रणयन किया गया है। अतएव हम देखते हैं कि इनके अन्तर्गत प्राणिकथा, लोककथा एवं नीतिकथा के तत्त्वों का सम्मिश्रण हो गया है। जातकमाला में बोधिसत्त्व की अनुपम दानशीलता, स्वार्थत्याग तथा आत्माहुति की एक से एक उत्तम कोटि की कथाओं का उपन्यास किया गया है। भगवान् बुद्ध ने अपने पूर्वजन्मों में मानव, देवता एवं पशुपक्षियों की विविध योनियों में बोधिसत्त्व का आदर्श लेकर अवतार लिया है और सर्वत्र ही अपने आदर्शोज्ज्वल चारित्रिक उत्कर्ष का परिचय प्रदान किया है।

इस प्रसङ्ग में कतिपय जातकों की कथावस्तु का संक्षिप्त उल्लेख अप्रासङ्गिक नहीं होगा। व्याघ्री जातक में हम देखते हैं कि अवदात ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर अशेष विद्यास्थान एवं कलाओं में पारङ्गम वैदुष्य से विख्यात बोधिसत्त्व द्वारा एक क्षुधातुर व्याघ्री की क्षुधा को शान्त करने के लिए निर्जीव मांसपिण्ड के समान अपने शरीर का समर्पण कर दिया गया है। शिविजातक में नेत्र की याचना करने के लिये आये एक अन्ध याचक को राजपदासीन बोधिसत्त्व अपने नेत्रों का दान कर देते हैं और अम्लानभाव से अन्धता का वरण कर लेते हैं। शश जातक में वर्णित हुआ है कि किस प्रकार शशयोनि में जन्म-ग्रहण करने पर भी बोधिसत्त्व ने एक सार्थ-परिभ्रष्ट एवं बुभुक्षित पथिक की क्षुधा के निवारणार्थ प्रज्वलित अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे दी, जिससे वह पथिक उसके अग्निपक्व मांस को खाकर अपनी बुभुक्षा शान्त कर सके। विश्वन्तरजातक में हम देख पाते हैं कि शिबिराज सञ्जय के पुत्र के रूप में विश्वन्तर के नाम से सुप्रसिद्ध बोधिसत्त्व अपना सर्वोत्तम गजराज, रथ, पत्नी एवं पुत्रद्वय का दान कर देते हैं। सुपारग जातक में बोधिसत्त्व को हम एक वृद्ध नौसारथि के रूप में देखते हैं जो अपनी जरातुर दशा में भी सांयात्रिकों का अनुरोध मान कर उनके कल्याण के लिए नौकारूढ हो गये और सामुद्रिक विपत्तियों से बचाकर उन्हें सकुशल वापस ले आये। कुल्माषपिण्डी जातक में स्वल्पमात्रा में भी किये गये कुल्माषदान का महत्त्व वर्णित हुआ है। इस दान की महिमा से बोधिसत्त्व को हम परजन्म में कोसल-नरेश के रूप में देख पाते हैं।

श्रेष्ठिजातक के अन्तर्गत हम बोधिसत्त्व को समृद्ध श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न देख पाते हैं; जिन्होंने सत्कर्म के शाश्वत प्रतिपक्षी मार द्वारा उद्भावित प्रचण्ड वह्निज्वाला का, अपने पुण्यप्रभाव से स्वतः विकसित कमलों पर पैर रखते हुए, अतिक्रमण कर श्रद्धेय प्रत्येक बुद्ध को पिण्डपात प्रदान किया। उन्मादयन्ती जातक में हमें शिबिराज के रूप में बोधिसत्त्व का दर्शन होता है जो अपने पौरमुख्य की अनुपम सुन्दरी कन्या उन्मादयन्ती के रूप-लावण्य पर पहले तो आसक्त हो जाते हैं, परन्तु पीछे चलकर अपने असाधारण धैर्य, जन्म-जन्मान्तर के धर्माभ्यास तथा प्रबुद्ध प्रसङ्ख्यान के बलपर दुर्निवार कामराग पर प्रशंसनीय रूप से विजय प्राप्त कर लेते हैं। कुम्भजातक में हम बोधिसत्त्व को देवराज इन्द्र के पद पर आसीन देखते हैं जो लोकोपकार की सहज भावना से परिप्रेरित होकर एक बार मर्त्यलोक में परिभ्रमण करते हुए सर्वमित्रनामक राजा को कुसंगति में पड़कर मद्यपान में प्रसक्त देखते है; और, तब राजसभा में अपनी मित्रमण्डली और सभासदों के साथ बैठे हुए उस राजा के समक्ष एक दिव्य तपस्वी का रूप धारण कर मद्यपूर्ण घट के साथ उपस्थित हो मद्य के दोषों के सविस्तर वर्णन द्वारा उन्हें मद्यप्रसङ्ग से विरत कर देते हैं। एक वार हिमालय के एक जंगल में बटेर-पक्षी के शावक के रूप में बोधिसत्त्व जन्म-ग्रहण करते हैं। अपने पूर्व-संस्कार के प्रभाव से अविलुप्त धर्मबोध के कारण पक्षिशावक के रूप में रहते हुए भी मांसाहार का सर्वथा परित्याग कर शुष्क तृणपर्ण के सहारे ही वे जीवन-यापन करते हैं। एक वार उस जंगल में भयङ्कर दावानल फैल जाता है जिससे आतङ्कित होकर सभी पक्षी वहाँ से उड़ जाते हैं और एकमात्र वही बटेर-शावक न उड़ सकने के कारण वहाँ रह जाता है। अपने प्राणों को सङ्कट में पाकर सत्यपूत वाणी के द्वारा वह अग्नि की स्तुति करता है जिससे दावानल तत्क्षण शान्त हो जाता है। आर्यशूर ने सत्य की अप्रमेय महिमा को इस जातक में प्रदर्शित किया है। महाबोधिजातक के अन्तर्गत बोधिसत्त्व को हम एक विद्वान् परिव्राजक के रूप में देख पाते हैं, जो एक विमतिग्रस्त राजा के समक्ष अहेतुवाद, ईश्वरवाद और अच्छेदवाद का निराकरण कर सम्यग्-दर्शन का सदुपदेश प्रदान करते हैं।

इस प्रकार जातकमाला में गुम्फित सभी जातकों में बोधिसत्त्व के अवदात चरित्र का मनोहर वर्णन प्राप्त होता है। आर्यशूर द्वारा इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में निबद्ध श्लोक ग्रन्थरचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते है :-

**श्रीमन्ति सद्गुणपरिग्रहमङ्गलानि**
**कीर्त्यास्पदान्यनवगीतमनोहराणि।**
**पूर्वप्रजन्मसु मुनेश्चरिताद्भुतानि**
**भक्त्या स्वकाव्यकुसुमाञ्जलिनार्चयिष्ये।।**
**श्लाघ्यैरमीभिरभिलक्षितचिह्नभूतै-**
**रादेशितो भवति यत् सुगतत्वमार्गः।**

स्यादेव रूक्षमनसामपि च प्रसादो
धर्म्याः कथाश्च रमणीयतरत्वमीयुः।।
लोकार्थमित्यभिसमीक्ष्य करिष्यतेऽयं
श्रुत्यार्थयुक्त्यविगुणेन तथा प्रयत्नः।
लोकोत्तमस्य चरितातिशयप्रदेशैः
स्वं प्रातिभं गमयितुं श्रुतिवल्लभत्वम्।।

मुनिप्रवर तथागत के चरितको जो सौन्दर्य से समलङ्कृत, सद्गुणों के परिग्रह से मङ्गलमय, यशस्कर, प्रशंसनीय, मनोहर तथा विस्मयावह कृत्यों से परिपूर्ण हैं, मैं अपनी काव्यमय पुष्पाञ्जलि से भक्तिपूर्वक समर्चित करूँगा।

इन प्रशंसनीय तथा परिचित विशेषताओं से युक्त चरितों से सुगत द्वारा प्रोक्त मार्ग का उपदेश प्राप्त होता है। इन चरितों के आख्यान से शुष्क हृदयवाले लोगों के मन में भी प्रसन्नता का निश्चित रूप से सञ्चार होगा और धर्मचर्चा से सुन्दर ये कथाएँ और भी सुन्दर हो उठेंगी।

''श्रद्धेय श्रमण-परम्परा की अनुश्रुतियों में प्रदर्शित युक्तियों से युक्त मार्ग का अनुसरण कर लोकोत्तम भगवान् बद्ध के चरित्रोत्कर्ष का आख्यान जनकल्याण की भावना से मैं करूँगा जिससे इसके साथ ही मेरी प्रतिभा से प्रसूत ये कथाएँ लोगों को सुनने में प्रिय प्रतीत हों।''

आर्यशूर की शैली अलङ्कृत संस्कृत काव्यशैली का चिरन्तन उदाहरण प्रस्तुत करती है और इसमें वे सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं जिसे अलङ्कृत शैली के लिए आवश्यक माना जाता है, फिर भी इनकी यह उल्लेखनीय विशेषता है कि इन्होंने दुरूहता से कुण्ठित भाषा के व्यवहार से अपने को सर्वत्र ही बहुत दूर रक्खा है। धर्मप्रचार की भावना से प्रतिबद्ध होने के कारण इनके गद्यबन्ध एवं श्लोक-सन्दर्भ दोनों ही प्रसाद गुण से ओत-प्रोत हैं। इनकी इस कृति पर भदन्त कवि अश्वघोष का पुष्कल प्रभाव परिलक्षित होता है। स्वाभाविकता, सरलता और धर्म-प्रवणता के फल-स्वरूप इनके काव्यशिल्प में सर्वत्र ही एक स्निग्ध-सौम्य आभा की मनोहरता विद्यमान है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग के कथनानुसार उसके पर्यटन-काल में बौद्ध उपासकों द्वारा जातकमाला का अध्ययन अत्यन्त ही आदर और आवेश के साथ किया जाता था जो इसकी लोकप्रियता को उद्घोषित करता है। इनके एक ग्रन्थ का ४३४ ई. में चीनी भाषा में अनुवाद किया गया था जिसके आधार पर इनके ग्रन्थलेखन का काल तीसरी अथवा चौथी सदी प्रमाणित होता है। आर्यशूर की भाषा एवं शैली से परिचित होने के लिए कतिपय अधोविन्यस्त सन्दर्भ अवलोकनीय हैः-

ततश्चकम्पे सधराधरा धरा व्यतीत्य वेलां प्रससार सागरः।
प्रसक्तगम्भीरमनोज्ञनिस्वनाः प्रसस्वनुर्दुन्दुभयो दिवौकसाम्।। (शिबिजातकम्-३८)

यत्संप्रयोगा विरहावसानाः समुच्छ्रयाः पातविरूपनिष्ठाः।
विद्युल्लताभङ्गुरलोलमायुस्तेनैव कार्यो दृढम प्रमादः।। (शशजातकम्-७)
मुहुर्मुहुः काञ्चनपिञ्जराभिर्भाभिर्दिगन्ताननुरञ्जयन्ती।
पयोदतूर्यस्वनलब्धहर्षा विद्युल्लता नृत्तमिवाचचार।। (मत्स्यजातकम्-१३)
ब्रूयादसत्यमपि सत्यमिव प्रतीतः
कुर्यादकार्यमपि कार्यमिव प्रहृष्टः।
यस्या गुणेन सदसत्सदसच्च विद्या-
च्छापस्य मूर्तिरिव सा निहितेह कुम्भे।। (कुम्भजातकम्-२३)
अलङ्क्रिया शक्तिसमन्वितानां
तपोधनानां बलसम्पदगया।
व्यापाददावानलवारिधारा
प्रेत्येह च क्षान्तिरनर्थशान्तिः।। (क्षान्तिजातकम्- २७)
धर्मश्च रक्षति नरं न धनं बलं वा
धर्मः सुखाय महते न विभूतिसिद्धिः।
धर्मात्मनश्च मुदमेव करोति मृत्यु-
र्न ह्यस्ति दुर्गतिभयं निरतस्य धर्मे।। (अयोगृहजातकम्- ४७)

उसके बाद पर्वतों के साथ ही धरती काँप उठी, तीरभूमि का अतिक्रमण कर सागर फैल चला और गम्भीर तथा मनोहर ध्वनि से युक्त देवताओं की दुन्दुभियाँ बज उठीं। (शिबिजातक-३८)

प्रियजनों के मिलन का अन्त विरह से होता है, सारे सांसारिक अभ्युदयों का अन्त पतन में होता है और जीवन बिजली की चमक के समान अस्थिर है। अतः धर्म के विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिये। (शशजातक-७)

सोने के समान पीतवर्ण कान्ति से दिगन्तों को अनुरञ्जित करती हुई बिजली बादल के तूर्यनिनाद रूपी गर्जना से प्रसन्न होकर ही मानो नाच उठी। (मत्स्यजातक-१३)

जिसके प्रभाव से असत्य भी सत्य के समान प्रतीत होता है, जिसके सेवन से लोग प्रसन्नतापूर्वक अकर्त्तव्य कृत्य को भी कर्त्तव्य कृत्य मानकर कर बैठते हैं तथा जिसके आवेश में सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य समझ बैठते हैं वही पाप का मूर्तिस्वरूप पदार्थ भरा है। (कुम्भजातक-२३)

क्षमा बलवानों का भूषण है, तपस्वियों का श्रेष्ठ बल है, द्रोह चिन्तनरूपी दावानल के प्रशम के लिए निर्मल वारिधारा है और इस लोक तथा परलोक में अनर्थों की शान्ति का कारण है। (क्षान्तिजातक-२७)

मनुष्य की रक्षा धर्म करता है, धन अथवा बल नहीं। महान् सुख की प्राप्ति धर्म से होती है, पार्थिव विभूतियों की सिद्धि में नहीं। मृत्यु धर्मात्मा व्यक्ति को हर्ष ही प्रदान करती है। धर्म-परायण व्यक्ति को दुर्गति का भय नहीं व्यापता है।

भास्कर्य एवं चित्रकला के क्षेत्रों में जातक-कथाओं का अवदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। न केवल भारत की ही, अपितु बृहत्तर भारत की कला-चेतना को भी जातक-साहित्य ने अभिनव छन्द एवं भङ्गिमा प्रदान की है। भरहुत एवं साँची के स्तूपों और उनकी पाषाण-वेष्टनी पर कतिपय जातकों की कथाएँ उत्कीर्ण पायी जातीं हैं। इस प्रसङ्ग में नागषड्दन्त जातक तथा रुरु जातक की कथाओं के आधार पर उत्कीर्ण मूर्त्तियाँ विशेष महत्त्व की हैं। अजन्ता की चित्रवीथी में सुप्रसिद्ध विश्वन्तर जातक का मनोहर आलेख्य प्राप्त होता है। चीन, बर्मा, जावा एवं स्याम देशों में जातक-साहित्य से उत्प्रेरित विविध मूर्तिव्यूह का उत्कीर्णन इस साहित्य के देशान्तर प्रसारी प्रभाव को अकुण्ठ भाव से प्रमाणित करता है। जातक-कथाओं का पात्र-चित्रण अतीव व्यापक है। इसके अन्तर्गत राजा, दरिद्र, चाण्डाल, विद्वान्, श्रेष्ठी, सांयात्रिक, चोर प्रभृति विविधकोटिक मानव; बन्दर, हरिण, हाथी, खरगोश एवं व्याघ्री प्रभृति वन्य पशुसमूह तथा विविध विहङ्गमों के कूजन से मुखर लताकुञ्ज, पादपश्रेणी एवं सघन वनप्रदेश से सङ्कुल पृथिवी के चराचर व्यापी जीवनचक्र का आवर्त्तन-विवर्त्तन उपलब्ध होता है।

निम्न से निम्न पशुयोनि में भी जन्म लेकर भी जीव अपने सदाचरण के द्वारा बुद्धत्व के सुदुर्लभ पद की प्राप्ति कर सकता है-जैसा सदुपदेश जातक कथाओं में वारम्वार रेखाङ्कित किया गया है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि इन कथाओं ने संस्कृत कथा-साहित्य, बुद्ध-भक्तिभावना एवं प्राचीन भारतीय कला-चेतना को समान रूप से समृद्धि प्रदान की है।

यहाँ कतिपय प्रमुख जातकों का नामनिर्देश किया जाता है :-

| | जातक के नाम | | प्रतिपाद्य |
|---|---|---|---|
| १. | व्याघ्री जातक | - | आत्मोत्सर्ग |
| २. | शिविजातक | - | नेत्रदान |
| ३. | कुल्माषपिण्डीजातक | - | भिक्षादान |
| ४. | श्रेष्ठिजातक | - | भिक्षादान |
| ५. | शशजातक | - | आत्मोत्सर्ग |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६. | अगस्त्यजातक | - | आहारप्रदान |
| ७. | मैत्रीबलजातक | - | आत्मोत्सर्ग |
| ८. | विश्वन्तरजातक | - | दान के कारण प्रजाकोप का वरण |
| ९. | यज्ञजातक | - | आशय-शुद्धि |
| १०. | शक्रजातक | - | भूतदया |
| ११. | ब्राह्मणजातक | - | सदाचार-पालन |
| १२. | उन्मादयन्तीजातक | - | काम पर विजय |
| १३. | सुपारगजातक | - | सत्यवचन की महिमा |
| १४. | मत्स्यजातक | - | शील-विशुद्धि |
| १५. | कुम्भजातक | - | मद्यपान की हेयता |
| १६. | हंसजातक | - | सद्वृत्त की महिमा |
| १७. | महाबोधिजातक | - | बौद्ध धर्म विरोधी वादों का खण्डन |
| १८. | महाकपिजातक | - | परोपकार के लिए प्राणोत्सर्ग |
| १९. | शरभजातक | - | अपकारी के प्रति भी उपकार की कर्त्तव्यता |
| २०. | क्षान्तिजातक | - | क्षान्ति-पारमिता |
| २१. | ब्रह्मजातक | - | परलोक की विश्वसनीयता |
| २२. | हस्तिजातक | - | परोपकार के लिए देहोत्सर्ग |
| २३. | सुतसोमजातक | - | प्राणिहिंसा से विरति |
| २४. | अयोगृहजातक | - | जगत् की अनित्यता |
| २५. | महिषजातक | - | क्षमाशीलता |
| २६. | शतपत्रजातक | - | क्षमाशीलता |

## अवदान-कथा

अवदान शब्द से 'लोकविश्रुत महनीय कृत्य' का अर्थ गृहीत होता है। भगवान् बुद्ध के पुरातन एवं वर्त्तमान जीवन से सम्बद्ध कथाएँ बौद्ध साहित्य में अवदान-कथाओं के नाम से विख्यात हैं। इन कथाओं में समसामयिक आदर्श चरित्रों का भी वर्णन प्राप्त होता है। धर्मोपदेश के उद्देश्य से प्रणीत अवदान-साहित्य के माध्यम से कर्मफल के भोग की अनिवार्यता, नैतिक नियमों के पालन की आवश्यकता, चातुर्वर्ण्य-धारणा की हेयता, सांसारिक विभूतियों की नश्वरता तथा बुद्धभक्ति की श्रेष्ठता को वारम्वार प्रकाश में लाया गया है। पञ्चशील का परिपालन तथा कुशल कर्मपथ का अनुसरण मनुष्य की ऐहिक तथा पारलौकिक अभ्युन्नति को सुनिश्चित करता है। शुभ कर्मों का फल शुभ एवं अशुभ कर्मों

का फल अशुभ होता है। अतः, शुभ कर्म यत्न-पूर्वक संसेव्य हैं तथा अशुभ कर्म यत्न-पूर्व त्याज्य हैं-यही अवदान-कथाओं में निहित उपदेशों का सारसंक्षेप है।

अवदान-साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों में अवदानशतक तथा दिव्यावदान उल्लेखनीय हैं। इनमें अवदानशतक प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। इसकी शब्दावली में यत्र-तत्र संस्कृत के विकृत शब्दों का भी प्रयोग देखा जाता है जो पालि और प्राकृत भाषा के प्रभाव को सूचित करता है। अतिशयोक्ति और पुनरुक्ति अवदान-ग्रन्थों की सामान्य विशेषताएँ हैं। अवदान-निर्माताओं का उपदेश-तत्त्व पर विशेष आग्रह रहने के कारण भाषा का शिल्पगत सौष्ठव यहाँ उपेक्षित हो गया है।

उपर्युक्त दोनों अवदान-ग्रन्थों में काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से दिव्यावदान अधिक आकर्षक है। इसमें अड़तीस प्रकरण हैं जिनके अन्तर्गत बुद्ध के प्रातिहार्य-प्रदर्शन, दान की महत्ता, अशोक एवं उपगुप्त का जीवन-चरित, कुणाल का नेत्रोत्पाटन, आनन्द पर आसक्त चण्डालकन्या की बुद्ध-द्वारा धर्मदीक्षा, सूर्य के समान तेजस्वी ब्राह्मण पुष्करसारी का मातङ्गराज शार्दूल कर्णद्वारा शास्त्रार्थ में पराजय, दुर्गम बदर-द्वीप जाकर सर्वदारिद्र्यमञ्जन रत्न लानेवाले महान् साहसी सार्थवाह सुप्रिय नामक बोधिसत्त्व का अलौकिक सत्त्वोत्कर्ष, चन्द्रप्रभ एवं मैत्रकन्यक बोधिसत्त्वों के चरित जैसे विषयों से सम्बद्ध अवदान विशेष रूप से रोचक हैं। इन अवदानों की मूलभूत सामग्री के वैविध्य तथा इनके रचनाकार भदन्तों के प्रज्ञामूलक तारतम्य के कारण भाषाशैली की दृष्टि से इनमें एकरूपता उपलब्ध नहीं होती है। इस अवदान ग्रन्थ के गाथाभाग तथा गद्यसन्दर्भ के अन्तर्गत बहुलांश में सरल संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है परन्तु स्थान-स्थान पर सुदीर्घ सामासिक गद्यबन्ध तथा अलङ्कारविन्यास से मनोहर विपुलाक्षर छन्दों में निबद्ध श्लोक सन्दर्भ भदन्तों के असाधारण रूप से पाण्डित्यपूर्ण रचनाकौशल का साक्ष्य उपस्थित करते हैं।

दिव्यावदान का प्रथम संस्करण ई.वी. कौबेल तथा आर.ए. नील द्वारा सम्पादित होकर केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस से १८८६ ई. में प्रकाशित किया गया था। तत्पश्चात् इसका द्वितीय संस्करण डॉ. पी.एल. वैद्य के सम्पादकत्व में मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से १९५८ ई. में प्रकाशित किया गया। बुद्ध के धर्मोपदेश-स्वरूप होने के कारण बौद्ध जगत् में यह ग्रन्थ अत्यन्त ही श्रद्धेय माना जाता है।

शुंगवंश के राजाओं के साथ पुष्यमित्र के नामोल्लेख तथा दीनार शब्द के प्रयोग के आधार पर इस ग्रन्थ में सङ्कलित अवदानों की रचना २०० ई. से लेकर ३५० ई. तक की कालावधि के मध्य की गई मानी जाती है। इस ग्रन्थ के शार्दूलकर्णावदान का एक चीनी अनुवाद २६५ ई. में किया गया था जिससे इस अवदान का विदेश में भी समादृत होना सिद्ध होता है।

अवदान-ग्रन्थ की परम्परा में बुद्धभक्ति से अनुप्राणित क्षेमेन्द्र द्वारा प्रणीत अवदानकल्पलता नामक संस्कृत-पद्यबद्ध ग्रन्थ, शैली और विषय की दृष्टि से, अन्यून महत्त्व रखता है। इसके अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म एवं वर्त्तमान जन्म से सम्बद्ध एक सौ सात अवदान उपलब्ध होते हैं। इस ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र के शास्त्रज्ञान एवं कवित्व का सर्वत्र ही सुस्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है। लोकचरित्र के उदात्तीकरण की दृष्टि से एक बौद्धेतर संस्कृत कवि की यह रचना उसकी गुणग्राहिता तथा विचारगत असङ्कीर्णता का निदर्शन प्रस्तुत करती है।

एक कथा के अन्तर्गत कथान्तर के संयोजन का कौशल अवदान-साहित्य में भी अपनाया गया उपलब्ध होता है। इसी अवदान की मूलकथा में अनुप्रविष्ट है मातङ्गराज त्रिशङ्कु की कथा जो अपने पुत्र शार्दूलकर्ण का विवाह पुष्करसारी नामक ब्राह्मण की कन्या से करना चाहता है। इस कथा के उपन्यास से यही प्रतिपादित किया गया है कि जातिमूलक श्रेष्ठत्व की धारणा मिथ्यादृष्टि-प्रसूत है। वस्तुतः गुणोत्कर्षमूलक क्षेष्ठता में ही यथार्थश्रेष्ठता प्रतिष्ठित होती है। त्रिशङ्कु मातङ्गराज की विविधशास्त्र-विषयक अगाध विद्वत्ता से हार मान कर पुष्करसारी ब्राह्मण अपनी कन्या का विवाह उसके पुत्र से कर देने के लिए अन्ततोगत्वा सहमत हो जाता है। अवदान के अन्त में कथा के पात्रों के पूर्वजन्म का परिचय भगवान् बुद्ध द्वारा इस प्रकार दिया गया है:-

"स्याद् भिक्षवो युष्माकं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा-अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन त्रिशङ्कुर्नाम मातङ्गराजोऽभूत्। नैवं द्रष्टव्यम्। अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन त्रिशङ्कुर्नाम मातङ्गराजोऽभूवम्। स्यादेवं च भिक्षवो युष्माकम्-अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन शार्दूलकर्णो नाम मातङ्गराजकुमारोऽभूत्। नैवं द्रष्टव्यम्। एष स आनन्दो भिक्षुः स तेन कालेन तेन समयेन शार्दूलकर्णो नाम मातङ्गराजकुमारोऽभूत्। स्यादेवं युष्माकम्-अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन पुष्कर-सारी नाम ब्राह्मणोऽभूत्। नैवं द्रष्टव्यम्। एष शारद्वतीपुत्रो भिक्षुः स तेन कालेन तेन समयेन पुष्करसारी नाम ब्राह्मणोऽभूत्। नान्या सा तेन कालेन तेन समयेन पुष्करसारिणो ब्राह्मणस्य प्रकृतिर्नाम माणविका दुहिताभूत्। नैवं द्रष्टव्यम्। एषा सा प्रकृतिर्भिक्षुणी तेन कालेन तेन समयेन पुष्करसारिणो ब्राह्मणस्य प्रकृतिर्नाम माणविका दुहिताभूत्। सा एतर्हि तेनैव स्नेहेन तेनैव प्रेम्णा आनन्दं भिक्षुं गच्छन्तमनुगच्छति तिष्ठन्तमनुतिष्ठिति। यद्यदेव कुलं पिण्डाय प्रविशति तत्र तत्रैव द्वारे तूष्णीम्भूता अस्थात्।।"
अथ खलु भगवानेतस्मिन्निदीने एतस्मिन् प्रकरणे तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषत-

"पूर्वकेण निवासेन प्रत्युत्पन्नेन तेन च।
एतेन जायते प्रेम चन्द्रस्य कुमुदे यथा।।"

"हे भिक्षुओ ! तुम लोगों को ऐसा सन्देह हो सकता है कि वह त्रिशङ्कु नामक चाण्डालों का राजा कोई अन्य व्यक्ति होगा। ऐसा नहीं जानना चाहिए। मैं ही उस समय त्रिशङ्कुनामक चाण्डालों का राजा था। हे भिक्षुओ ! तुम लोगों को ऐसा सन्देह हो सकता है कि कोई अन्य व्यक्ति ही चाण्डालों के राजा त्रिशङ्कु का पुत्र शार्दूलकर्ण था। ऐसा नहीं समझना चाहिए। वह यही आनन्द-नामक भिक्षु उस समय चाण्डालों के राजा त्रिशङ्कु का पुत्र शार्दूलकर्ण था। तुम लोगों को ऐसा सन्देह हो सकता है कि उस समय का वह पुष्करसारी नामक ब्राह्मण कोई अन्य व्यक्ति होगा। ऐसा नहीं समझना चाहिए। वह यही शारद्वती का पुत्र भिक्षु उस समय पुष्करसारी नामक ब्राह्मण था। और पुष्करसारी नामक ब्राह्मण की प्रकृतिनामक पुत्री को कोई अन्य कन्या नहीं समझना चाहिए। यही है वह प्रकृतिनामक भिक्षुणी जो उस समय उसी पूर्वजन्मप्ररूढ स्नेह और प्रेम के वशीभूत होकर जाते हुए आनन्द के पीछे-पीछे जाती थी और उसके खड़े रहने पर खड़ी रहती थी। आनन्द जिस-जिस गृहस्थ कुल में भिक्षा के लिए प्रवेश करता था, उसी-उसी स्थान पर द्वारदेश में वह चुपचाप खड़ी रहती थी।" इसके बाद भगवान् बुद्ध ने उसकी आदिकथा से सम्बद्ध इस प्रकरण में उस समय यह गाथा कही-"प्राक्तन वासनाके प्रत्युत्पन्न हो जाने के कारण ही इस जन्म में कुमुद के प्रति चन्द्रमा के समान प्रेम उत्पन्न हो जाता है।"

अवदान-साहित्य के अन्तर्गत कथाओं के माध्यम से धर्ममार्ग के अवलम्बन के लिए प्रोत्साहन का स्वर पाठकों को सर्वत्र ही सुनायी देता है। ज्योतिष्कावदान के उपसंहार में भगवान् बुद्ध-द्वारा कथित कर्म के प्रकार तथा उनके फल सभी धर्मों की मान्यताओं को समान रूप से सम्पुष्ट करते हैं :-

"इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लाना-मेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्।।"

"इस प्रकार, हे भिक्षुओ, सर्वथा बुरे कर्मों के सर्वथा बुरे फल, सर्वथा अच्छे कर्मों के सर्वथा अच्छे फल तथा मिले-जुले कर्मों के मिले-जुले फल होते हैं। इसलिए तब, हे भिक्षुओ, सर्वथा बुरे एवं मिले-जुले कर्मों को छोड़ कर सर्वथा अच्छे कर्मों में मन लगाना चाहिए। इस प्रकार, हे भिक्षुओ, शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।"

भारत तथा भारत से बाहर भगवान् बुद्ध के उपदेशों के व्यापकरूप से प्रचार-प्रसार में इन कथाओं का प्रभूत योगदान रहा है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में विकसित धर्म एवं नीतिमूलक कक्षाओं के अध्ययन की दृष्टि से जातक एवं अवदान-ग्रन्थों का अनुपेक्षणीय महत्त्व है।

## जैन-वाङ्मय में कथा-साहित्य

निवृत्तिपरक धार्मिक उपदेशों को मनोरम शैली में समाज के अन्तर्गत प्रचारित-प्रसारित करने के उद्देश्य से जैन आचार्यों ने भी अपने वाङ्मय में कथाविधा का अवलम्बन किया है। जैन आचार्यों की रचनाएँ प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। यह साहित्येतिहास का सर्वमान्य तथ्य है कि प्राकृत-साहित्य सहस्राधिक वर्षों तक संस्कृत साहित्य के साथ-साथ विकसित होता रहा और इसने भारतीय जन-जीवन के धर्म, संस्कृति और समाजसंस्था को निरन्तर प्रभावित किया है। संस्कृत साहित्य पर इसका मुखर प्रभाव ध्वनिकाव्य के उदाहरणपरक प्राकृत के पद्यों में दर्शनीय है जिन्हें संस्कृत के प्रायः सभी प्रमुख ध्वनिवादी आचार्यों ने अपने-अपने निबन्धों में सादर उपन्यस्त किया है। इस प्रकार संस्कृत और प्राकृत का समानान्तर विकास तथा पारस्परिक प्रभाव सरलता से देखा जा सकता है। परवर्ती काल में जैन आचार्यों ने संस्कृत और अपभ्रंश में अपनी विविध रचनाएँ प्रस्तुत कीं जो कथ्य एवं वर्णनशिल्प की दृष्टि से आकर्षक तथा वैविध्यपूर्ण होने के कारण साहित्य की अक्षय निधि बन गयीं हैं।

जैन कथा-साहित्य के बीज अर्द्धमागधी में निबद्ध आगम साहित्य में उपलब्ध होते हैं जिनका विकास निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाग्रन्थों में कालक्रम से सम्पन्न हुआ। दशवैकालिक सूत्र में प्रस्तुत वर्गीकरण के अनुसार इन कथाओं के तीन भेद प्राप्त होते हैं- (१) अकथा, (२) सत्कथा और (३) विकथा। जिन कथाओं से मिथ्यात्व-भावना के उद्दीपनपूर्ण वर्णनों के कारण मोहमय मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है ऐसी कथाओं को अकथा कहा गया है। जिन कथाओं में ज्ञान के साधनभूत तप, संयम, दान एवं शील जैसे सद्गुणों की प्रशस्ति निबद्ध की जाती है उन्हें 'सत्कथा' कहा जाता है। इसके विपरीत जिन कथाओं में प्रमाद, कषाय, रागद्वेष, स्त्री, विभव एवं लोकविकृतियों के वर्णन किये जाते हैं उन्हें 'विकथा' कहा जाता है। कथाओं की इन तीनों कोटियों में अकथा और विकथा हेय कोटि की कथाएँ हैं तथा सत्कथा उपादेय कोटि की कथा है।

आगमोक्त कथाएँ अतिसंक्षिप्त हैं। अतः उनमें कथाशिल्प का विकास नहीं हो पाया है। परन्तु उनका आकर्षण एक से एक सुन्दर दृष्टान्तों और उपमाओं के प्रयोग से आज भी म्लान नहीं हो पाया है। इन कथाओं में सांसारिक उपलब्धियों की व्यर्थता का प्रतिपादन कर वैराग्य की प्रशस्ति का गान किया गया है। सार्थवाह धन्य और उसकी पुत्र-वधुओं की कथा, जिनपालित और जिनरक्षित की कथा, सरोवरस्थ मेढक और समुद्रस्थ मेढक की कथा तथा एक सन्तरण-कुशल वीतरागी भिक्षु द्वारा अगाध-जल एवं पङ्क-सङ्कुल सरोवर से श्वेतकमल के आहरण की कथा प्राकृत कथा-साहित्य के प्राचीन उदाहरण हैं जिनमें शील, संयम एवं विवेक की शिक्षा निहित है। आगमोक्त कथाओं में लोक-कल्याण के साथ आध्यात्मिक उन्नति के ऊपर ही अधिकाधिक ध्यान दिया गया है, जिसके फलस्वरूप कथा

के शिल्प-सौन्दर्य का स्वर धर्मोद्घोष के प्रभाव से परिस्फुट नहीं हो पाया है। फिर भी, प्राकृत कथा-साहित्य के आदिकाल के अध्ययन की दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस सन्दर्भ में भगवतीसूत्र, विपाकसूत्र, उवासगदसाओ, व्यवहारभाष्य, बृहत्कल्पभाष्य, सूत्रकृतांग, णायाधम्मकहाओ, उत्तराध्ययनसूत्र, आचारांगसूत्र जैसे ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

आगमेतर कथा-साहित्य वस्तु-विन्यास और अभिव्यञ्जना की दृष्टि से नितान्त मनोहर तथा वैविध्यपूर्ण है। इनमें श्रेय और प्रेय का विलक्षण समन्वय प्राप्त होता है। भाव की भव्यता, वाग्विन्यास की प्रासादिकता, कल्पना की कमनीयता, सङ्घटना की चतुरस्रता तथा हृदय-संवाद की सत्वरता जैसे काव्योचित गुणों से सम्भृत होने के कारण इन कथाओं में प्राकृत-काव्यश्री का सौन्दर्य अपनी विविध दीप्तिमय भङ्गिमाओं के साथ छन्दायित हो उठा है। यहाँ प्रसङ्गवश कतिपय प्रसिद्ध प्राकृत कथाग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है:-

**(क) तरङ्गवती (तरङ्गलोला)**-यह सुप्रसिद्ध कथाग्रन्थ आज अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं होता है। प्रेमकथा-मूलक इस ग्रन्थ की रचना पादलिप्त सूरि नामक जैन आचार्य ने की थी जो कुषाण-सम्राट् कनिष्क के प्रान्तपाल मुरुण्ड के भक्तिपात्र थे। इस प्रकार, इस कथाकृति का काल दूसरी सदी ई. सिद्ध होता है। इसकी रचना के एक सौ वर्ष के अनन्तर नेमिचन्द्र गणि नामक एक जैन साधु ने अपने शिष्य के उपयोगार्थ मूलकथा को संक्षिप्त रूप में निबद्ध किया। इसका अपर नाम तरंगलोला भी प्रसिद्ध है।

तरंगवती की कथा के चार भाग हैं। प्रथम भाग में एक जैन साध्वी के रूप में इसकी नायिका तरंगवती राजगृह आती है। द्वितीय भाग में अपनी आत्मकथा के आख्यान के क्रम में वह कहती है कि किस प्रकार हंस-मिथुन को देखकर उसे जन्मान्तरीण प्रेम का स्मरण हो आया। तृतीय भाग में अपने प्रेमपात्र का अन्वेषण कर वह उससे विवाह कर लेती है। चतुर्थ भाग में एक जैन मुनि के उपदेश से तरंगवती अपने पति के साथ-मुनिव्रत धारण कर लेती है। इसकी संक्षिप्त कथा निम्नस्थ है :-

एक बार चन्दनलाला के नेतृत्व में जैन साध्वी-समाज राजगृह आया। उन्हीं में से एक थी सुव्रता नाम की साध्वी। भिक्षाचरण के क्रम में सुव्रता धनपाल सेठ की पत्नी शोभा के यहाँ गयी और वहाँ उसके अनुरोध पर उसने अहिंसा और शील के पालन का उपदेश दिया। सुव्रता के स्वरमाधुर्य तथा रूपलावण्य से प्रभावित होकर जब सेठ की पत्नी ने उससे वैराग्य के अवलम्बन का कारण पूछा तब उसने अपनी कथा प्रारम्भ की।

वत्स-जनपद में एक नगरी है कौशाम्बी। वहाँ उदयन वासवदत्ता नामक रानी के साथ राज्य करता था। इसी नगरी में ऋषभदत्त नामक नगरसेठ को यमुना की प्रार्थना के फलस्वरूप एक कन्यारत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम-यमुना के तरङ्ग के समान चञ्चल होने के कारण-तरंगवती (तरंगलोला) रक्खा गया। उसने गीत, नृत्य एवं वाद्य के साथ ही शास्त्रों में भी निपुणता प्राप्त की। एक दिन शरद् ऋतु में उपवन-विहार के प्रसङ्ग में

उसने हंस-मिथुन को देखा और उसे देखते ही उसके हृदय में सहसा पूर्वजन्म की स्मृति उदित हुई जो इस प्रकार है-

अङ्ग-जनपद में एक प्रसिद्ध नगरी है-चम्पा। यहाँ गङ्गा नदी के पावन पुलिन पर चक्रवाक-दम्पती वास करता था। एक दिन एक आखेटक ने एक जंगली हाथी पर बाण चलाया जिससे संयोगवश चक्रवाक विद्ध होकर मर गया। यह देखकर चक्रवाकी शोकाकुल हो गयी। अपने इस प्रमाद से आखेटक भी बहुत अनुतप्त हुआ। उसने चक्रवाक को चिताग्नि में समर्पित कर दिया। उसी चिताग्नि में अपने पति के साथ चक्रवाकी भी जल मरी। मैं वही चक्रवाकी इस जन्म में तरङ्गवती के नाम से प्रसिद्ध हुई हूँ। पूर्वजन्म की इस घटना के स्मरण से मेरे मन में प्रिय-मिलन की तीव्र उत्कण्ठा जग पड़ी। पूर्वजन्म का मेरा प्रियतम चक्रवाक इस जन्म में श्रेष्ठी धनदेव के पुत्र पद्‌मदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मैं उसके वियोग-दुःख की ज्वाला में प्रतिपल जलने लगी।

तत्पश्चात् प्रियतम की प्राप्ति के लिए मैंने तपश्चर्या की और उसके बाद उसके अन्वेषण के उद्देश्य से मैंने एक चित्रपट प्रस्तुत किया जिस पर मैंने अपने पूर्वजन्म के प्रेम-प्रसङ्ग का आलेखन किया था। एक दिन उस नगर में शरत्पूर्णिमा का महोत्सव मनाया जा रहा था। मैने अपनी सखी सारसिका को जनाकीर्ण चतुष्पथ पर उक्त चित्रपट को हाथ में लेकर खड़ी रहने के लिए कहा, जिससे वहाँ से आने-जानेवाले लोगों की दृष्टि उसपर पड़ सके। बहुत देर के बाद वहाँ से जा रहे पद्‌मदेव की दृष्टि सारसिका के हाथ में स्थित उस चित्रपट पर पड़ी और उसके मन में भी उसे देखते ही पूर्वजन्म के प्रेम-प्रसङ्ग की स्मृति उभर आयी। अब वह भी मुझे प्राप्त करने के लिए विकल रहने लगा। पुत्र की विकलता के कारण को जानकर धनदेव ने अपने पुत्र के लिए मेरे पिता से मेरी याचना की, परन्तु मेरे पिता को एक साधारण सेठ के साथ अपनी कन्या का विवाह अनुचित प्रतीत हुआ और उन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकृति नहीं दी। इस विषम स्थिति में मैंने निश्चय किया कि मैं अपने पूर्वजन्म के प्रियतम पद्‌मदेव के साथ यहाँ से कहीं अन्यत्र, चुपचाप, चली जाऊँगी तभी हम दोनों को शान्ति मिल सकेगी।

तदनुसार, मैं अपने प्रियतम पद्‌मदेव के साथ, एक रात, अपना घर छोड़ कर वहाँ से चल पड़ी। हमलोग जिस रास्ते से जा रहे थे, वह एक घनघोर जंगल की ओर जाता था जिसके बीच दस्युदल का वासस्थान था। हम दोनों जब जंगल होकर जा रहे थे तब सामने से कुछ दस्यु आते दिखाई पड़े। वे भगवती कात्यायनी को बलि देने के लिए उपयुक्त मनुष्य की खोज में निकले थे। उन्होंने मेरे पति को बलि देने के लिए पकड़ लिया और उन्हें बाँध कर वे चल पड़े। इस नयी विपत्ति से किंकर्त्तव्यविमूढ होकर मैं कातर भाव से रोती-रोती उनके पीछे चली। कुछ दूर जाने पर मेरे करुण क्रन्दन से एक दस्यु का हृदय द्रवित हो गया और उसने मेरे पति को बन्धनमुक्त कर हमें उस घनघोर जंगल से सुरक्षित

बाहर कर दिया। वहाँ से हम लोग जाते-जाते एक नगर में पहुँचे। उधर, मेरे इस गृहत्याग से चिन्तित होकर मेरे माता-पिता ने चारों ओर मेरी खोज में अपने अनुचरों को भेज रक्खा था। कुल्माषनामक उनका एक अनुचर मेरी खोज में उसी नगर में आया जहाँ हम दोनों रहते थे। वह हम दोनों को कौशाम्बी ले गया। वहाँ पहुँचने पर मेरे माता-पिता ने प्रसन्नतापूर्वक मेरा विवाह पद्मदेव के साथ कर दिया। हम लोग वहाँ सानन्द जीवन-यापन करने लगे।

एक दिन वसन्त ऋतु में हम दोनों उपवन-विहार के उद्देश्य से नगर के मनोरम उद्यान में पहुँचे। वहाँ हमें एक मुनि का दर्शन हुआ। वार्त्तालाप के क्रम में उस मुनि ने अपने पूर्वजन्म की कथा कह सुनायी। उसे सुनकर हमें वैराग्य हो गया और हम दोनों मुनिमत में दीक्षित हो गये। मैं हूँ वही तरंगवती। उसके इस कथन के साथ ही कथा समाप्त हो जाती है।

इस कथा का आख्यान उत्तम पुरुष में किया गया है। पूर्वजन्म के सम्बन्ध के स्मरण से उत्पन्न काममूलक प्रेम को नायिका ने तपस्या के द्वारा विशोधित कर उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। यह कथा नायिका के द्वारा आरब्ध प्रेम और उसके द्वारा उसकी सिद्धि के लिए किये गये प्रयत्नों का स्पष्टीकरण करती है। परिस्थिति विशेष की पृष्ठभूमि में श्रृङ्गार, रौद्र, भयानक, करुण एवं प्रशम की, अनेक आरोह-अवरोहों के साथ, यहाँ अभिव्यञ्जना की गयी है। देशी शब्दों और लोकोक्तियों के प्रयोग से वर्णन-शैली स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। कथा-साहित्य के विकास की दृष्टि से ईसा की दूसरी सदी में निबद्ध इस प्रेमकथा को अतीव महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

(ख) **वसुदेव हिण्डी**-वसुदेव हिण्डी नामक प्राकृत कथाग्रन्थ को न केवल भारतीय कथा-साहित्य का अपितु विश्वकथा साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। इसके दो भाग हैं जिनमें प्रथम खण्ड की रचना का श्रेय संघदास गणि को तथा द्वितीय खण्ड की रचना का श्रेय धर्मदास गणि को दिया जाता है। इसके प्रथम भाग में उनतीस लम्भकों तथा द्वितीय भाग में इकहत्तर लम्भकों का विन्यास किया गया है। सब मिला कर एक सौ लम्भकों से युक्त इस महान् कथाग्रन्थ का सम्प्रति केवल पूर्वभाग ही उपलब्ध होता है और वह भी सम्पूर्ण नहीं है। इसकी रचना का काल ईसा की चौथी सदी के आसपास कहा जाता है। यह महाराष्ट्री प्राकृत की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है, जिसके अन्तर्गत स्थान-स्थान पर संस्कृत श्लोक भी अनुस्यूत प्राप्त होते हैं।

इस कथा-ग्रन्थ में वसुदेव के भ्रमण-वृत्तान्त का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इसके वस्तुविन्यास को छः भागों में विभक्त किया गया है जिनके नाम कथोत्पत्ति, पीठिका, मुख, प्रतिमुख, शरीर और उपसंहार हैं। कथोत्पत्ति और पीठिका के मध्य धम्मिल-हिण्ड नामक एक अन्य कथाप्रकरण भी अनुप्रविष्ट किया गया उपलब्ध होता है। कथोत्पत्ति के अन्तर्गत जम्बूस्वामी, कुबेरदत्त, महेश्वरदत्त, प्रसन्नचन्द्र आदि के आख्यान निबद्ध किये गये हैं।

धम्मिल हिण्डी नामक प्रकरण के अन्तर्गत धम्मिलनामक एक सार्थवाह के पुत्र की कथा का आख्यान प्राप्त होता है जिसने नाना जनपदों में भ्रमण करते हुए बत्तीस विवाह किये। इसमें शीलमती, विमलसेना, ग्रामीण शाकटिक, वसुदत्त, रिपुदमन एवं नरपति प्रभृति के आख्यान नितान्त रोचक हैं। सांयात्रिकों के साथ जलयान पर यवनदेश की यात्रा करनेवाले सार्थवाहपुत्र धनवसु की कथा में साहस, कौतूहल तथा विस्मय के संयोग से एक अपूर्व आकर्षण उत्पन्न हो गया है। पीठिका-भाग में प्रद्युम्न का पुनर्जन्म, अपहरण, पाणिग्रहण तथा गृहप्रत्यागमन प्रभूति वर्णित हैं। मुखभाग में शंब और भानु की कथा एवं शुक-सारिका-संवाद निबद्ध किए गए हैं। प्रतिमुख-भाग में अन्धक-वृष्णि के पूर्वजन्मों की कथाओं के साथ प्रद्युम्न और वसुदेव वार्त्तालाप वर्णित हुआ है जिसमें वसुदेव ने पर्यटन से होनेवाले लाभों का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पर्यटन-वृत्तान्त का आख्यान प्रारम्भ किया। उन्होंने इस क्रम में कहा है कि किस प्रकार वे सौ वर्षों तक परिभ्रमण करते रहे और एक सौ कन्याओं से विवाह किया। शरीर-प्रकरण के अन्तर्गत वसुदेव के नौ पूर्वजन्मों का वर्णन, सुमित्राख्यान, विष्णुकुमारचरित, चारुदत्तकथा, गन्धर्वदत्त का आख्यान, अमितगति विद्याधर की कथा, ऋषभ-निर्वाण-प्रसंग, राम-चरित, सीताजन्मोपाख्यान, कंसजन्मोपाख्यान प्रभृति प्रसंगों का समावेश प्राप्त होता है।

यह विलक्षण कथाकृति शैली की सरलता, विषय की सरसता तथा चित्रण की मनोहारिता के कारण प्राकृत साहित्य की अनुपम निधि है। इसके वर्ण्यफलक पर चीनस्थान, सुवर्णभूमि, यवनद्वीप तथा सिंहल प्रभृति देशान्तरों के भूभाग समाविष्ट हैं। इसके पात्रों के चयन में अभिजात-वर्ग के साथ ही चोर, उचक्के, लुच्चे, धूर्त्त, ठग, दुश्चरित्र, विट, वारांगना तथा लम्पटों पर भी कवि ने दृष्टिपात किया है जिसके फलस्वरूप इस कथाकृति के अध्ययन से आस्वादवैविध्य का सुख प्राप्त किया जा सकता है। परवर्त्ती काल में इस ग्रन्थ के आधार पर बहुत से प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश के काव्यों की रचना की गयी है। इस प्रकार, यह महनीय ग्रन्थ विविध कथाकाव्यों का आकरस्वरूप माना जाता है। समसामयिक सभ्यता, संस्कृति, बुद्धिविलास एवं अध्यात्मचिन्तन से अवगत होने के लिए इस ग्रन्थ का अध्ययन परम उपयोगी है।

**(ग) समराइच्चकहा (समरादित्यकथा)**–प्रस्तुत कथाकाव्य हरिभद्र सूरि की रचना है जो श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रख्यात आचार्य थे। ये राजस्थान प्रान्त में अवस्थित चित्तौड़ के निवासी ब्राह्मण थे तथा संस्कृत और प्राकृत के उद्भट विद्वान् थे। आचार्य जिनदत्त से जैन धर्म की दीक्षा लेकर इन्होंने अपना सारा जीवन विविध ग्रन्थों की रचना के द्वारा जैनमत के अभ्युत्थान में लगा दिया। इनके व्यक्तित्व में धर्मशास्त्र, पुराणेतिहास, न्याय एवं योगदर्शन तथा काव्यकला जैसे विविध विषयों का अगाध वैदुष्य समाहित था। इनकी कृतियों में तर्क और काव्य की परस्पर-विरोधी प्रकृतियों का समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। राजशेखर

सूरि के अनुसार इन्हें १४४० प्रकरणों का रचयिता कहा जाता है। इनका समय ईसा की आठवीं सदी है।

समरादित्य-कथा का मूलाधार प्रतिशोध की बलवती भावना है जो इसके नायक उज्जैन के राजकुमार समरादित्य और उसके विरोधी अग्निशर्मा के बीच नौ जन्मों तक चलती है। नौ जन्मों तक व्याप्त इसी प्रतिशोध भावना का चित्रण यहाँ नौ परिच्छेदों के अन्तर्गत निबद्ध किया गया है। प्रथम जन्म में समरादित्य राजकुमार गुणसेन के नाम से विख्यात था। अग्निशर्मा वहीं के राजपुरोहित का पुत्र था जो कुरूप था। एक समय राजकुमार ने उसकी कुरूपता का जब उपहास किया तो उसने विरक्त होकर संन्यास का अवलम्बन कर लिया। गुणसेन के राजपदासीन होने पर संन्यासी अग्निशर्मा राजसभा में तीन बार आया परन्तु राजकार्य में व्यासक्त रहने के कारण उसने उसका समुचित सत्कार नहीं किया। राजा द्वारा अनादृत अग्निशर्मा ने इस व्रत के साथ वहीं प्राणत्याग कर दिया कि वह आगामी नौ जन्मों तक राजा गुणसेन से इस अपमान का प्रतिशोध लेगा। इस भूमिका के अनन्तर प्रत्येक भव के वैरशोधन की कथा एक-एक कर नौ परिच्छेदों तक चलती है। अन्ततोगत्वा अग्निशर्मा समरादित्य का वध कर देता है। वह तो देहपात के अनन्तर स्वर्ग चला जात है परन्तु घातक नरक जाता है।

यही है इसकी मूलकथा जिसमें लगभग एक सौ से अधिक अन्यान्य कथाएँ अनुस्यूत हैं। इन सारी कथाओं के पारस्परिक संश्लेषण में विद्यमान शिल्पसौष्ठवने हरिभद्र सूरि को प्राकृत कथासाहित्य के युगप्रवर्त्तक कथाकार की अनुपम ख्याति प्रदान की है। इस कथाकृति में तत्कालीन समाज, संस्कृति तथा आचार-विचार के वर्णन के साथ ही प्रणयोन्माद, सृष्टिसौन्दर्य एवं धार्मिक सम्प्रदाय के समुज्ज्वल चित्रण उपलब्ध होते हैं। कथाकार ने इसे धर्मकथा का नाम प्रदान किया है जो संयम और शील के बलपर नश्वर सांसारिक सुखभोग की व्यर्थता के प्रतिपादन के कारण यथार्थता की सम्पुष्टि करता है। तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर इसे बाणभट्ट की कादम्बरी का समकोटिक कथाकाव्य माना जाता है। शुभ और अशुभ कर्मों के फलाफल से अनुविद्ध पुनर्जन्मपरम्पराओं के चमत्कारमय वर्णनों वाली यह कथाकृति गद्यात्मक एवं पद्यात्मक सन्दर्भों की प्रौढता, प्राञ्जलता और ओजस्विता के कारण प्राकृत साहित्य की एक असामान्य दीप्तिसम्पन्न रचना मानी जाती है।

**(घ) धूर्त्ताख्यान (धुत्ताक्खान)**-समरादित्य कथा जैसी गम्भीर कथाकृति के रचयिता हरिभद्र सूरि की इस द्वितीय रचना में हास्य और व्यंग्य की समुच्छल अभिव्यक्ति हुई है। मूलश्री, पुण्डरीक, एलाषाढ एवं शश तथा एक परम धूर्त्त स्त्री खण्डपाना के द्वारा पर्यायशः सुनाये गये गल्पों की प्रामाणिकता को रामायण, महाभारत तथा पुराणों में वर्णित कथाओं के आधार पर इस कृति में सिद्ध किया गया है। इसके अन्तर्गत पचास के आसपास

पौराणिक कथाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। कौतूहल के उद्भावक अत्युक्तिपूर्ण वाग्विन्यास का स्वैर-विलास इस हास्य-प्रधान आख्यान का प्राणतत्त्व है। इस सन्दर्भ में मूलश्री द्वारा कथित एक गल्प उल्लेखनीय है। वह कहता है कि एक समय अपने मस्तक पर गङ्गा को धारण करने के लिए छत्र और कमण्डलु लेकर वह शिवपुरी की ओर चला। मार्ग में जब एक मतवाले हाथी ने उसका पीछा किया तब वह डर कर झटपट कमण्डलु में घुस पड़ा। परन्तु वह हाथी भी उसके पीछे कमण्डलु में घुस गया। अब उस कमण्डलु के भीतर छः महीने तक मूलश्री उस हाथी के डर से भागता फिरा और हाथी उसे खदेड़ता रहा। अन्त में मूलश्री उस कमण्डलु की टोंटी से बाहर निकल भागा। हाथी भी उसका पीछा करते-करते उसी टोंटी के रास्ते निकलने लगा परन्तु पूँछ के फँस जाने के कारण वह वहीं अटक कर रह गया।

इस कृति में कथाकार की प्रतिभा पुराणोक्त कथाओं की विसङ्गति, युक्तिहीनता तथा निस्सारता के सत्यापन में उद्ग्रीव हो उठी है जिससे जैन धर्म के प्रति उसकी अनन्य प्रतिबद्धता सूचित होती है। हरिभद्रसूरि द्वारा रचित लगभग एक सौ लघुकथाएँ भी उनके अन्यान्य ग्रन्थों में प्राप्त होतीं हैं जिन्हें मुनिचन्द्र नामक एक जैन टीकाकार ने विस्तृत रूप प्रदान किया है। यहाँ उनकी कतिपय लघुकथाओं का शीर्षक निर्देश किया जाता है :-

१. इन्द्रदत्त-कथा
२. धूर्त्तराज-कथा
३. शीलपरीक्षण-कथा
४. विषयासक्ति-कथा
५. शीलवती-कथा
६. रामकथा
७. वज्रस्वामि-कथा
८. गौतमस्वामि-कथा
९. आर्य महागिरि-कथा
१०. भीमकुमार-कथा
११. श्रावकपुत्र-कथा
१२. पाखण्डि-कथा
१३. कुरुचन्द्र-कथा
१४. शङ्खनृपति-कथा
१५. ऋद्धिसुन्दरी-कथा
१६. रतिसुन्दरी-कथा
१७. गुणसुन्दरी-कथा
१८. चण्डकौशिक-कथा
१९. गालव-कथा
२०. मेघकुमार-कथा
२१. हिङ्गुशिव-कथा
२२. अश्रुतपूर्व-कथा
२३. ग्रामीण शाकटिक-कथा
२४. अभयकुमार-कथा
२५. मृगावती-कौशल-कथा
२६. श्रमणोपासक-कथा
२७. सुलसा-कथा
२८. सोमा-कथा
२९. वरदत्त-कथा
३०. कलि-कथा
३१. कुन्तलदेवी-कथा
३२. ब्रह्मदत्त-कथा
३३. प्रभाकर-चित्रकर-कथा
३४. कामासक्ति-कथा

| | |
|---|---|
| ३५. सत्सङ्गति-कथा | ३६. भक्ति-परीक्षण-कथा |
| ३७. सुबन्धुद्रोह-कथा | ३८. दृढसङ्कल्प-कथा |
| ३९. मित्रचतुष्टय-कथा | ४०. मूलदेव-कथा |
| ४१. वणिक्-कथा | ४२. आर्य सुहस्ति-कथा |

(ङ) **कुवलयमाला-कथा**-ईसा की आठवीं सदी में उत्पन्न उद्द्योतन सूरि द्वारा रचित कुवलयमाला कथा के अन्तर्गत क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह प्रभृति चित्त की असद्वृत्तियों के परिमार्जन के उद्देश्य से विविध कथाओं की योजना की गयी है। दक्षिणापथ की विजया नगरी के राजा विजयसेन की पुत्री कुवलयमाला इस कथाकाव्य की नायिका है तथा अयोध्यानरेश दृढवर्मा का पुत्र कुवलयचन्द्र इसका नायक है। इस कथा में मुनिराज आचार्य धर्मानन्द द्वारा सांसारिक दुःखों के वर्णन के क्रम में चण्डसोम, मानभट, मायादित्य, लोभदेव तथा मोहदत्त नामक पात्रों के अनेक पूर्ववर्त्ती जन्मों से सम्बद्ध कथाओं का आख्यान किया गया है। ये पात्र, वस्तुतः, संसार में व्याप्त लोभ-मोह प्रभृति चित्तमल के प्रतीक के रूप में कथा के अन्तर्गत निबद्ध किये गये हैं। प्रसादपूर्ण भाषा में विषय-वैविध्य से युक्त रोचक शैली में प्रस्तुत यह कथाकृति अपनी उपदेशात्मकता के कारण जैन कथा-साहित्य में उल्लेखनीय स्थान रखता है। हूण-नरेश तोरमाण द्वारा भारत में किये गये अत्याचारों का यहाँ वर्णन प्राप्त होता है जिससे राजनैतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी गणना समसामयिक इतिहास की स्रोतसामग्री के रूप में की जाती है। जन्म-जन्मान्तर की वासना के आधार पर स्वप्न-सन्दर्शन से उत्पन्न प्रणयाङ्कुर के वर्णन की मनोवैज्ञानिक कथा-शैली का इस कथा में अवलम्बन किया गया है जो कथागत-सम्विधानकों के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना-शैली पर हरिभद्र सूरि का पुष्कल प्रभाव प्ररिलक्षित होता है।

(च) **कुमारपाल-प्रतिबोध**-पाटन-नगर के सुप्रसिद्ध चालुक्य-नरेश मुञ्जराज के वंशोद्भव कुमारपाल नृपति को कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र द्वारा प्रदत्त जैनधर्म की श्रेष्ठता का उपदेश इस कथाकृति में उपलब्ध होता है। इसकी रचना आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य सोमप्रभ सूरि ने राजा कुमारपाल के देहावसान के ग्यारह वर्षों के अनन्तर सम्पन्न की। तदनुसार, इसका निर्माणकाल ईसा की बारहवीं सदी स्थिर होता है। जैनधर्म के प्रति कुमारपाल की निष्ठा को उद्दीप्त करने के हेतु यहाँ अट्ठावन कथाएँ निबद्ध की गयी हैं जिनके अन्तर्गत पञ्च महाव्रत, गुरुमाहात्म्य, कर्त्तव्य-पालन तथा गृहस्थों द्वारा अनुष्ठेय इक्कीस प्रकार के व्रतों से सम्बद्ध उपदेश प्राप्त होते हैं। इन के स्पष्टीकरण के उद्देश्य से गुम्फित दृष्टान्त कथाओं में नलचरित, प्रद्योत-कथा, अशोक-कथा, द्वारका-दहन-कथा वरुण-कथा, लक्ष्मी-कथा, शीलवती-कथा तथा रुक्मिणीकथा प्रभृति पौराणिक, ऐतिहासिक एवं लोकाख्यानमूलक कथाओं का समावेश किया गया है। ये कथाएँ द्यूतक्रीडा, मद्यपान, परस्त्रीप्रसक्ति, वेश्याभिगमन प्रभृति दुराचरणों की हेयता तथा पूज्यपूजन, शीलव्रतपालन एवं

तपश्चरण की कर्त्तव्यता का उपदेश सरस-मनोहर शैली में प्रदान करतीं हैं। इसमें प्राकृत और अपभ्रंश के अतिरिक्त संस्कृत का भी प्रयोग किया गया है।

**(छ) श्रीश्रीपालकथा (सिरिसिरिवालकहा)**-ईसा की चौदहवीं सदी के उत्तरार्ध में उत्पन्न रत्नशेखर सूरि द्वारा रचित श्रीश्रीपालकथा में सिद्धचक्रपूजन का माहात्म्य वर्णित हुआ है। इसकी कथावस्तु का सार इस प्रकार हैः-

उज्जयिनी नगरी में पृथ्वीपाल नामक राजा राज्य करता था। उसकी दो रानियाँ थीं- सौभाग्यसुन्दरी और रूपसुन्दरी। सौभाग्यसुन्दरी की पुत्री का नाम सुरसुन्दरी तथा रूपसुन्दरी की पुत्री का नाम मदनसुन्दरी था। सुरसुन्दरी ने मिथ्यादृष्टि नामक आचार्य से गीत, वाद्य, नृत्य आदि कलाओं के साथ व्याकरण, काव्य, नाटक, प्रभृति विषयों की भी शिक्ष प्राप्त की। मदनसुन्दरी ने सम्यगृदृष्टि नामक आचार्य से तत्त्व, पदार्थ एवं कर्मविपाकसहित व्याकरण, दर्शन, काव्यप्रभृति की शिक्षा प्राप्त की। सुरसुन्दरी लौकिक ज्ञान में निष्णात थी और मदनसुन्दरनी जैन दर्शनानुयायी कर्मसिद्धान्त की विदुषी थी। राजा पृथ्वीपाल लौकिक ज्ञान का पक्षपाती था अतः वह सुरसुन्दरी को बहुत मानता था। उसने उसका विवाह राजकुमार अरिदमन के साथ कर दिया जो शंखपुरी के राजा दमितारि का पुत्र था। जैन धर्म से विरक्त रहने के कारण राजा पृथ्वीपाल ने मदनसुन्दरी का विवाह कुष्ठरोगाक्रान्त सात सौ हतभाग्य मनुष्यों के बीच राजत्व करनेवाले उम्बर राजा से कर दिया।

विवाह के अनन्तर मदनसुन्दरी अपने पति के साथ भगवान् ऋषभदेव के दर्शनार्थ चैत्यप्रासाद गयी। वहाँ मुनिचन्द्र नामक जैन यति ने उसे सिद्धचक्रार्चन का उपदेश प्रदान किया। तदनुसार मदनसुन्दरी ने विधानपूर्वक सिद्धचक्रार्चन सम्पन्न किया। तत्पश्चात्, गन्धोदक के अभ्युक्षण से उसके पति का कुष्ठरोग जाता रहा और सुवर्ण के समान उसके शरीर का वर्ण निखर उठा। साथ ही, सात सौ अन्य कुष्ठग्रस्त लोगों ने भी पापरोग से मुक्ति पायी। चक्रार्चन की समाप्ति के बाद अपने पति के साथ मदनसुन्दरी ज्यों ही चैत्यप्रासाद से निकली त्यों ही उसकी दृष्टि एक वृद्धा पर पड़ी। वह श्रीपाल की माता थी जो एक मुनिराज से पुत्र के नैरुज्यलाभ की वार्त्ता सुनकर उसे देखने आयी थी। श्रीपाल ने उसे देखते ही उसकी चरणवन्दना की और पूछा कि तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी थीं। इस पर उसकी माँ ने सारा वृत्तान्त बताया। श्रीपाल के सास-ससुर भी इस वार्त्ता से अवगत होकर वहाँ आये और उसका परिचय पूछा जिस पर वह वृद्धा इस प्रकार कहने लगी-

अङ्ग-जनपद में चम्पा नाम की नगरी है। वहाँ सिंहरण-नामक एक बड़ा पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी थी कमलप्रभा जिससे श्रीपाल का जन्म हुआ। श्रीपाल दो ही वर्ष का था जब उसके पिता दिवङ्गत हो गये। राजमन्त्री मतिसागर ने श्रीपाल को राजपद पर अभिषिक्त किया और स्वयं उसकी ओर से कुशलतापूर्वक राज्य-पालन करने लगा। इसी बीच श्रीपाल के पितृव्य अजितसेन ने राज्य पर अपना अधिकार स्थापित करने

के लिए श्रीपाल एवं उसके मन्त्री मतिसागर को मार डालने की योजना बनाने लगा। मन्त्री जब उसके इस षड्यन्त्र से अवगत हुआ तब उसने श्रीपाल की माता से कहा कि वह पुत्र की प्राणरक्षा के लिये वहाँ से कहीं अन्यत्र जाकर कालयापन करे। उसके कथनानुसार, आधी रात बीतने पर पुत्र को साथ लेकर रानी कमलप्रभा वहाँ से निकल कर एक जंगल में सात सौ कुष्ठग्रस्त लोगों की बस्ती में पहुँची और अपने पुत्र के साथ वहाँ रहने लगी। उन लोगों ने रानी को अपनी बहन तथा उसके पुत्र को अपना राजा बना लिया। कुष्ठग्रस्त लोगों के साथ रहने के कारण श्रीपाल को उम्बर नामक कुष्ठ हो गया जिससे वह उन लोगों के बीच उम्बर राजा के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसी के साथ मदनसुन्दरी का पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ था।

कुछ दिनों के बाद माँ और पत्नी की अनुमति लेकर श्रीपाल विदेश-भ्रमण के उद्देश्य से निकल पड़ा। इसी क्रम में एक सिद्ध पुरुष ने उसे जलतारिणी और परशस्त्रनिवारणी नामक विद्याएँ सिखलाईं। जब वह इन अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर आगे चला तब उसने देखा कि कौशाम्बी के धवल नामक सांयात्रिक का पोत फँसा हुआ था जिससे वह अत्यन्त उद्विग्न था। श्रीपाल ने जलतारिणी विद्या की महिमा से उसके पोत को मुक्त किया और धवल के साथ समुद्र-यात्रा पर चल पड़ा। मार्ग में उसने मदनसेना नामक कन्या से विवाह कर दोनों पत्नियों के साथ रत्नद्वीप पहुँचा जहाँ चक्रेश्वरी देवी के आदेश से उसने विद्याधरी मदनमञ्जूषा का पाणिग्रहण किया। धवल ने उसकी पत्नियों को अधिकृत करने के लिए उसे समुद्र में ढकेल दिया जहाँ से किसी प्रकार तैरकर वह कोङ्कण पहुँचा। वहाँ उसने राजकुमारी मदनमञ्जरी का पाणिग्रहण किया। कुछ दिनों के बाद चक्रेश्वरी देवी की महिमा से उसकी पूर्व-पत्नियाँ सतीत्वरक्षापूर्वक उससे आ मिलीं। वहाँ पर भी धवल ने उसे मारने के अनेक उपाय किये परन्तु वह स्वयं नष्ट हो गया। श्रीपाल अपनी सभी पत्नियों के साथ सांसारिक आनन्द में लीन रहने लगा।

इस कथा के विकास में प्रासङ्गिक उपाख्यानों का कुशलता के साथ गुम्फन किया गया है। भाग्य-निर्दिष्ट विविध उत्थान-पतन के चित्रण से कथा में कौतूहल और विस्मय का वातावरण उत्पन्न हो गया है। स्वार्थी, शठ एवं दुर्जन पात्रों द्वारा प्रवर्त्तित सारे कुत्सित प्रयत्नों की विफलता के साथ अन्त में सत्य की विजय होती है। यह कथा सिद्धचक्रपूजन से प्राप्त देवी महिमा के प्रभाव से महनीय हो उठी है।

उपर्युक्त सन्दर्भों में प्राकृत कथाओं के शिल्पविधान से अवगत होने के लिए कतिपय प्रसिद्ध कथाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत कथाओं के अध्ययन की पूर्णता प्राकृत कथाओं के अध्ययन के बिना सम्भव नहीं है। अतः जिज्ञासु अध्येताओं के लिए समानान्तर रूप में विकसित प्राकृत कथाओं का अध्ययन परम आवश्यक माना जाता है।

यहाँ जैन आचार्यों द्वारा संस्कृत में निबद्ध कथाग्रन्थों की एक संक्षिप्त विवरणी दी जा रही है :-

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | जिनेश्वरसूरि | - | निर्वाणलीलावतीकथा |
| २. | वही | - | कथाकोषप्रकरण |
| ३. | जिनचन्द्र | - | संवेगरङ्गशाला |
| ४. | महेश्वर सूरि | - | णाणपंचमीकहा |
| ५. | देवभद्र-गुणचन्द्रसूरि | - | कहारयणकोष |
| ६. | महेन्द्रसूरि | - | नर्मदासुन्दरीकथा |
| ७. | विजयसिंह | - | भुवनसुन्दरीकथा |
| ८. | अज्ञातकर्तृक | - | मलयसुन्दरीकथा |
| ९. | धनेश्वर | - | सुरसुन्दरी-चरित्र |
| १०. | नेमिचन्द्रसूरि | - | आख्यानमणिकोश |
| ११. | सुमतिसूरि | - | जिनदत्ताख्यान |
| १२. | जिनहर्षगणि | - | रयणसेहर निव कहा |
| १३. | वीरदेव गणि | - | महिवाल कहा |
| १४. | सोमचन्द्र | - | कथामहोदधि |
| १५. | धर्मदास गणि | - | उपदेशमाला |
| १६. | जयसिंह सूरि | - | धर्मोपदेशमालाविवरण |
| १७. | हरिषेणाचार्य | - | ........ बृहत्कथाकोष |
| १८. | हैम विजयगणि | - | ....... कथा-रत्नाकर |

पूर्ववर्त्ती कथाग्रन्थों के अतिरिक्त आचार्य मेरुतुङ्ग द्वारा रचित प्रबन्ध-चिन्तामणि तथा प्रबन्धकोष नामक दो कथा-सङ्कलन महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अन्तर्गत विक्रमादित्य, मूलराज, मुञ्जदेव, भोज, सिद्धराज, जयसिंह, कुमारपाल, वीरधवल, वस्तुपाल, तेजःपाल, लक्ष्मणसेन, जयचन्द्र प्रभृति ऐतिहासिक दृष्टि से प्रख्यात चरित्रों से सम्बद्ध कथाएँ उपलब्ध होतीं हैं। अन्यान्य कथाग्रन्थों में सिद्धर्षि नामक जैनकवि-रचित उपमितिभवप्रपञ्चकथा तथा जयशेखर सूरि-प्रणीत प्रबन्धचिन्तामणि सुविख्यात है। इनमें से प्रथम ग्रन्थ आठ प्रस्तावों में विभक्त एक विस्तृत रचना है जिसमें सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र जैसे जैन धर्म के त्रिरत्न की महिमा का आख्यान किया गया है। द्वितीय ग्रन्थ के अन्तर्गत रूपकात्मक शैली में परमात्म तत्त्व के साक्षात्कार का उपाय वर्णित हुआ है।

कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि में जैन आचार्यों का अविस्मरणीय अवदान है। जैन कथाकोष वाङ्मय के अन्तर्गत धर्मकथा, नीतिकथा उपदेशकथा, ऐतिहासिक कथा जैसी कथा की विविध विधाओं के पुष्कल उदाहरण प्राप्त होते हैं। मोह के दुर्दमनीय प्रभाव से उत्पीड़ित मानवता के हृदय में अप्रतिम विजेता के रूप में विवेक का आविर्भाव ही जैन-धर्मानुगामिनी कथाओं का चरम लक्ष्य है और इसकी उपलब्धि के लिए जैन कथाकारों द्वारा अपनायी गयी कथाशैली का असन्दिग्ध महत्त्व है।

# उपदेशात्मक एवं नीतिमूलक कथा-ग्रन्थ

## पञ्चतन्त्र

संस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत उपदेशप्रद नीतिकथा के रूप में पशु पात्र-प्रधान कथा-ग्रन्थ पञ्चतन्त्र का नाम विश्वविदित है। इसके विकास के बीज वैदिक वाङ्मय, महाभारत तथा बौद्ध-जैन साहित्य में उपलब्ध होते हैं। वैदिक संहिता के अन्तर्गत देवशुनी सरमा को देवदूती के रूप में प्राणियों के पास भेजा जाना तथा वर्षाकालीन वारिपात से प्रमुदित मेढ़कों के निनाद का अतिरात्र-याग में ऋत्विजों के मुख से उच्चरित वेदघोष के साथ साम्य-प्रदर्शन पशुओं और छोटे प्राणियों के ऊपर मानवोचित क्रियाकलाप का आरोप सूचित करता है। छान्दोग्य उपनिषद् में श्वानों की एक कथा का उल्लेख है जिसमें वे भोजन-संग्रह के लिए तारस्वर में विराव करने वाले एक श्वान का नेतापद के लिए अन्वेषण करते हैं। जानश्रुति पौत्रायण के आख्यान में वर्णित हंस-युगल-संवाद तथा सत्यकाम को हंस, वृषभ एवं एक अन्य जलचर पक्षी द्वारा प्रदत्त ब्रह्मोपदेश भी इसी तथ्य की ओर इङ्गित करते हैं। महाभारत में उपलब्ध गृध्र-गोमायु-संवाद, कपोत-व्याघ्र-संवाद, मार्जार-मूषिक-संवाद, व्याघ्र-गोमायु-संवाद प्रभृति में प्रस्तुत पशुपात्र प्रधान कथाएँ आगामी काल में विरचित किये जाने वाले इसी पञ्चतन्त्र की आधारभूमि प्रस्तुत करती हैं। इस सन्दर्भ में ए. बी. कीथ का यह कथन महत्त्वपूर्ण है- "महाभारत में हमें वह बीजभूत आधार प्राप्त है जो पञ्चतन्त्र के विकास की हेतुभूत सामग्री की ओर दृढतापूर्वक सङ्केत करता है।" बौद्ध और जैन साहित्य में प्राक्तन कर्म एवं पुनर्जन्म के अन्योन्याश्रित सिद्धान्त के अनुसार पशुयोनि से मानवयोनि में तथा उसके विपरीत योनि में जीवात्मा के जन्मग्रहण करने के विश्वास के मूल में भी पशु और मानव का सम्बन्ध स्पष्ट भाव से विद्यमान दीख पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पञ्चतन्त्र के पाठकों का इसकी कथाओं के साथ स्थापित होने वाली मानसिक अन्तरङ्गता के पीछे दीर्घकालीत साहित्यिक, धार्मिक और लौकिक मान्यताएँ कार्यशील रही हैं।

पञ्चतन्त्र के कथामुख के सन्दर्भ से विदित होता है कि इसके रचयिता विष्णुशर्मा नामक एक नैष्ठिक कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। बृहस्पति, शुक्राचार्य, मनु, पराशर एवं व्यास द्वारा प्रोक्त धर्म, अर्थ एवं काम जैसे पुरुषार्थ-त्रितय के आधारभूत सिद्धान्तों को उन्होंने आत्मसात् कर लिया था। वे व्यावहारिक नीतिशास्त्र के क्षेत्र में अपने समय में अद्वितीय विद्वान् के रूप में सर्वविदित एवं सर्वसमादृत थे। अपने शिष्यों को मनोरञ्जन के साथ सफलतापूर्वक शास्त्रज्ञान प्रदान करने की कला में असाधारण रूप से निपुण आचार्य होने का इन्हें विशद सुयश प्राप्त था। समकालीन छात्र-मण्डली इनके ज्ञान-सङ्क्रान्ति कौशल पर मुग्ध थी। ये

विद्या विक्रयी अध्यापक नहीं थे। ये तो एक परम निर्लोभ, निष्काम, वीतराग तथा जितेन्द्रिय विद्वान् थे, जिनके जीवन का एकमात्र ध्येय जिज्ञासु शिष्यों को आजीवन शास्त्रमन्थन से प्राप्त नवनीत का उदारतापूर्वक वितरण करना ही था।

दाक्षिणात्य जनपद की राजधानी महिलारोप्य नगर में विराजमान महाराज अमरशक्ति के अनुरोध पर बहुशक्ति, उग्रशक्ति तथा अनन्तशक्ति नामक परम दुर्बुधि, शास्त्रविमुख एवं विवेकहीन उनके तीन पुत्रों को नीतिशास्त्र में निष्णात बना देने का कार्यभार जब उन्होंने ग्रहण किया तब उनके वयस के अस्सी वर्ष पूरे हो चुके थे। राजसभा में अर्थ-लिप्सा और इन्द्रियासक्ति से शून्य उस निर्भीक विद्वान् की ऐसी प्रतिज्ञा सुन कर कि छः महीने की अवधि में ही वे उन तीनों को नीतिशास्त्र का अद्वितीय वेत्ता बना देंगे, सभी विस्मय से अवाक् हो गए। पण्डित विष्णुशर्मा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार छः महीने के अन्तर्गत ही उन तीनों राजकुमारों को स्वरचित पञ्चतन्त्र नामक ग्रन्थ पढ़ाकर नीतिशास्त्र में असाधारण रूप से पारङ्गत बना दिया। और, उसके बाद से यह ग्रन्थरत्न बालकों को प्रबुद्ध बनाने के उद्देश्य से सर्वत्र ही समादृत हुआ। इस प्रसङ्ग में कथामुख में विन्यस्त अधस्तन श्लोक में पञ्चतन्त्र के प्रणेता का असामान्य आत्मविश्वास प्रतिध्वनित हुआ है :-

**अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं श्रृणोति च।**
**न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन।।**

"जो व्यक्ति नित्य ही इस नीतिशास्त्र को पढ़ता और सुनता है वह देवराज इन्द्र से भी कभी पराभव नहीं प्राप्त कर सकता है।"

पञ्चतन्त्र में पाँच तन्त्र (परिच्छेद) उपलब्ध होते हैं जिनके नाम हैं- (१) मित्रभेद, (२) मित्र-सम्प्राप्ति, (३) काकोलूकीय, (४) लब्धप्रणाश तथा (५) अपरीक्षितकारक। कथा का प्रारम्भ राजा अमरशक्ति द्वारा बहुशक्ति, उग्रशक्ति एवं अनन्तशक्ति नामक अपने मूर्ख पुत्रों को नीतिनिपुण बनाने के उद्देश्य से पण्डित विष्णुशर्मा के शिक्षकत्व में समर्पित कर दिये जाने के वृत्तान्त से होता है। पण्डित विष्णुशर्मा ने उन शास्त्र-विमुख वयस्क राजकुमारों को इस ग्रन्थ में निहित कथाओं के द्वारा मनोरञ्जक शैली में नीतितत्त्व का उपदेश प्रदान कर छः महीनों के भीतर ही निपुण नीतिवेत्ता बना दिया।

१. इसके मित्रभेद नामक प्रथम तन्त्र में पिंगलक नामक सिंह एवं सञ्जीवक नामक वृषभ के बीच जो परस्पर मित्रभाव से रहते थे, एक चतुर श्रृगाल द्वारा फूट डाले जाने की मुख्य कथा प्रस्तुत की गयी है। राजनीति से सम्बद्ध विवादों के साथ ही यहाँ पशुपक्षियों की विविध मनोरञ्जक कथाएँ प्राप्त होती हैं जिनका शीर्षक-निर्देश निम्नस्थ है:-

१. पिङ्गलक-सञ्जीवक-दमनक-कथा
२. कीलोत्पाटी वानर की कथा
३. श्रृगाल और दुन्दुभि की कथा
४. दन्तिल और गोरम्भ की कथा
५. आषाढ़भूति-प्रभूति की कथा
६. विष्णुरूपधारी तन्तुवाय एवं राजकुमारी की कथा
७. वायस-दम्पति और कृष्णसर्प की कथा
८. बक एवं कर्कट की कथा
९. सिंह-शशक-कथा
१०. मन्दविसर्पिणी तथा अग्निमुख की कथा
११. नीलवर्ण श्रृगाल की कथा
१२. सिंह, ऊँट, श्रृगाल और कौए की कथा
१३. टिट्टिभ-दम्पती और समुद्र की कथा
१४. कम्बुग्रीव-नामक कच्छप की कथा।
१५. तीन मछलियों की कथा
१६. गौरेया और हाथी की कथा
१७. वज्रदंष्ट्र सिंह प्रभूति की कथा
१८. सूचीमुख नामक पक्षी और वानरों की कथा
१९. गौरैया और वानर की कथा
२०. धर्मबुद्धि और पापबुद्धि की कथा
२१. कृष्णसर्प एवं नकुल की कथा
२२. राजा और उसके सेवक वानर की कथा

२. मित्रसम्प्राति-नामक द्वितीय तन्त्र में चित्रग्रीव नामक कपोत, हिरण्यक नामक मूषिक, लघुपतनक नामक काक, चित्राङ्ग नामक हरिण तथा मन्थरक-नामक कच्छप की कथा मुख्य रूप से कही गयी है जिसमें मित्र-सङ्ग्रह के प्रभाव का आकर्षक रूप में वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत निम्नाङ्कित कथाएँ हैं -

१. चित्रग्रीव नामक कपोतराज की कथा
२. ताम्रचूड नामक परिव्राजक तथा मूषिक की कथा
३. शाण्डिली द्वारा तिलविक्रय की कथा
४. शबर शूकर और श्रृंगाल की कथा

५. सागरदत्त-नामक व्यापारी के पुत्र की कथा
६. सोमिलक जुलाहे की कथा
७. बल का अनुसरण करने वाले श्रृगाल की कथा

३. काकोलूकीय नामक तृतीय तन्त्र में काक और उलूक के जन्मजात वैरभाव के दृष्टान्त से युद्ध और सन्धि के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है। इस तन्त्र में अधोनिर्दिष्ट कथाएँ प्राप्त होतीं हैं :-

१. काक और उलूक की कलह-कथा
२. बाघ की खाल ओढ़कर चरने वाले गधे की कथा
३. चतुर खरगोश और हाथी की कथा।
४. दधिकर्ण नामक न्यायकर्त्ता मार्जार की कथा
५. गौरैया और खरगोश की कथा
६. तपस्वी द्वारा एक चुहिया को युवती का रूप प्रदान करने की कथा।
७. चोर का स्वागत करने वाले वृद्ध वणिक् की कथा।
८. भेकवाहन सर्प की कथा।
६. मित्रशर्मा नामक ब्राह्मण और तीन धूर्त्तों की कथा
१०. कृष्णसर्प और चींटियों की कथा
११. ब्राह्मण और सर्प की कथा
१२. स्वर्ण हंस और स्वर्णविहंग की कथा
१३. कपोत और व्याघ की कथा
१४. ब्राह्मण, चोर और पिशाच की कथा
१५. एक राजपुत्र के पेट में रहने वाले सर्प की कथा
१६. वीरधर रथकार की स्त्री एवं उसके उपपति की कथा।
१७. सिन्धुक नामक पक्षी और व्याघ की कथा
१८. सिंह, श्रृगाल और गुफा की कथा
१६. घृतान्ध ब्राह्मण की कथा।

४. लब्धप्रणाश नामक चतुर्थ तन्त्र में रक्तमुख नामक वानर तथा करालमुख नामक मगर की प्रमुख कथा के द्वारा उपलब्ध वस्तु के विनष्ट हो जाने की स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। इस तन्त्र में अधोनिर्दिष्ट कथाएँ प्राप्त होतीं हैं:-

१. वानर तथा मगर की मैत्री कथा
२. गङ्गदत्त नामक भेकराज और कृष्णसर्प की कथा

३. कराल केसर नामक सिंह और धूसरक नामक श्रृगाल की कथा।
४. युधिष्ठिर नामक कुम्हार तथा राजा की कथा
५. सिंहशावक और श्रृगालशावक की कथा।
६. ब्राह्मणी और लंगड़े की कथा
७. महाराज नन्द और उसके मन्त्री वररुचि की कथा
८. गधे और धोबी की कथा।
९. कृषक-पत्नी, ठग ओर श्रृगाली की कथा
१०. घंटे और ऊँट की कथा।
११. सियार और सिंह की कथा।
१२. कुत्ते की कथा

५. अपरीक्षितकारक-नामक पाँचवें तन्त्र में बिना अच्छी तरह सोच-समझकर काम करने से उत्पन्न विषम परिणामों को विविध कथाओं के द्वारा स्पष्ट किया गया है। इसके अन्तर्गत निम्नस्थ कथाएँ प्राप्त होतीं हैं-
१. मणिभद्र नामक श्रेष्ठी तथा नापित की कथा
२. ब्राह्मणी और नेवले की कथा।
३. सिद्धिच्युत चक्रधर की कथा
४. सिंहकारक तीन शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों की कथा
५. अलौकिक पण्डितों की कथा
६. शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि मत्स्यों की कथा।
७. सङ्गीतज्ञ गधे ओर सियार की कथा।
८. मन्थर नामक जुलाहे की कथा
९. सोमशर्म्मा के पिता की कथा
१०. चन्द्रनृपति और वानर-दल की कथा।
११. विकराल नामक वानर और राक्षस की कथा
१२. त्रिस्तनी राजकुमारी की कथा।
१३. चण्डकर्म राक्षस द्वारा पकड़े गये ब्राह्मण की कथा
१४. भारुण्ड-नामक पक्षी की कथा।

## पञ्चतन्त्र की विभिन्न वाचनाएँ-

पञ्चतन्त्र के काल-विशेष में प्रचलित विभिन्न भारतीय वाचनाओं एवं भारत के बाहर विभिन्न लेखकों द्वारा इसकी अनुवादात्मक वाचनाओं के प्रसार से इस कथाग्रन्थ की व्यापक

लोकप्रियता सिद्ध होती है। ऐसी अनुश्रुति है कि इस ग्रन्थ की मूल वाचना गुणाढ्य की बृहत्कथा के साथ ही सदा के लिए विलुप्त हो चुकी है। आज इसकी जो भी वाचनाएँ उपलब्ध होती हैं, वे न्यूनाधिक रूप में उसी मूल वाचना पर आधृत कही जातीं हैं। पञ्चतन्त्र के कृती शोधकर्त्ता एवं समीक्षक डा. एजर्टन के अनुसार इसकी निम्नवर्णित आठ भारतीय बाचनाएँ उपलब्ध होतीं हैं।

१. **तन्त्राख्यायिका**-इसे पञ्चतन्त्र की काश्मीरी वाचना कही जाती है। शारदा लिपि में लिखित इस की पाण्डुलिपियाँ डा. जे. हर्टेल को काश्मीर में प्राप्त हुई थीं, जिनके आधार पर उन्होंने इसका एक सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किया था। उनके अनुसार यह संस्करण मूल पञ्चतन्त्र के विशुद्ध पाठ का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु डा. एजर्टन इससे सहमत नहीं हैं। उनके कथनानुसार, तन्त्राख्यायिका मूल पञ्चतन्त्र का प्रतिनिधि न होकर उसकी अधिक से अधिक कथाओं को प्रस्तुत करती है और इस दृष्टि से अन्यान्य भारतीय वाचनाओं की तुलना में इसके अन्तर्गत मौलिकता के तत्त्व अधिकांशतः सुरक्षित हैं।

२. **दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र**-तमिलभाषाओं में रचित पञ्चतन्त्र की इस बाचना के सम्बन्ध में एजर्टन का अभिमत है कि इसमें मूल पञ्चतन्त्र के तीन चौथाई गद्य तथा दो तिहाई पद्य सुरक्षित हैं। पञ्चतन्त्र के आमुख में दक्षिणापथ में विद्यमान महिलारोप्य नगर के उल्लेख के आधार पर आधुनिक शोधप्रवण विद्वानों के अनुसार उक्त नगर को पञ्चतन्त्र की मूल वाचना का स्थान माना जाता है। तन्त्रोपाख्यान के इस तमिल संस्करण में तमिल-जनपद में प्रचलित कथाएँ भी संङ्गृहीत की गयी हैं।

३. **नेपाली पञ्चतन्त्र**-पञ्चतन्त्र की इस नेपाली वाचना के अन्तर्गत गद्य और पद्य दोनों का ही अस्तित्व प्राचीनकाल में विद्यमान था। परवर्त्ती काल में किसी सम्पादक ने पद्यभाग को मूलग्रन्थ से पृथक् कर दिया जो अभी भी स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध होता है, किन्तु इसका गद्यभाग नष्ट हो गया है। इस वाचना में उपलब्ध श्लोक समूह दक्षिण भारतीय पञ्चतन्त्र की वाचना में विद्यमान श्लोक-समूह से सर्वथा मिलते हैं। इतना होने पर भी विद्वानों ने इस नेपाली वाचना का स्रोत दक्षिण-भारतीय पञ्चतन्त्र से भिन्न माना है।

४. **पञ्चतन्त्र का हितोपदेशात्मक संस्करण**-ईसा की नवीं सदी के आसपास नारायण भट्ट नामक विद्वान् ने पञ्चतन्त्र के आधार पर 'हितोपदेश' नामक लोकप्रिय कथाग्रन्थ का प्रणयन किया, जिसका एक मात्र उद्देश्य पञ्चतन्त्र की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त और सरल रूप में रोचकता के साथ सुकुमारमति बालकों को संस्कृत भाषा तथा नीति की शिक्षा प्रदान करना था। पञ्चतन्त्र में विद्यमान पाँच भागों के स्थान पर इसमें केवल चार भागों की ही योजना की गयी है जिनके नामका भी सरलीकरण कर दिया गया है। इस भागचतुष्टय के नाम हैं मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। डा. कीथ के अनुसार, इसकी रचना किसी अन्य स्रोत के आधार पर लेखक ने की है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार इसका आधार दक्षिण भार पञ्चतन्त्र माना जाता है।

५. **बृहत्कथामञ्जरी के अन्तर्गत पञ्चतन्त्र की कथा**-क्षेमेन्द्र-प्रणीत बृहत्कथामञ्जरी के अन्तर्गत शक्तियशस् नामक लम्बक के भीतर पञ्चतन्त्र के कथाचक्र का अतिसंक्षिप्त रूप प्राप्त होता है। कथा-साहित्य के प्रसिद्ध समीक्षक फ्रेञ्च विद्वान् लाकोत की मान्यता है कि पञ्चतन्त्र की अतिशय प्रसिद्धि के कारण परवर्ती कालखण्ड में इसका सारांश बृहत्कथा के कलेवर में अनुप्रविष्ट कर दिया गया है। क्षेमेन्द्र द्वारा आख्यात पञ्चतन्त्र की पद्यात्मक कथा में मात्र पञ्चतन्त्र में अनुपलब्ध पाँच ऐसी कथाएँ प्राप्त होती हैं जो केवल तन्त्राख्यायिका में ही उपलब्ध हैं। इससे यह सहज ही अनुमेय है कि क्षेमेन्द्र द्वारा काश्मीर में रचित तन्त्राख्यायिका से वे कथाएँ ली गयी होंगी।

६. **कथा-सरित्सागर के अन्तर्गत विन्यस्त पञ्चतन्त्र की कथा**-सोमदेव-रचित कथासरित्सागर के शक्तियशस् की कथाओं से सम्बन्ध लम्बक में भी पञ्चतन्त्र का पद्यात्मक संक्षिप्त संस्करण प्राप्त होता है। परन्तु इन दोनों ही पद्यात्मक संस्करणों में मूल पञ्चतन्त्र की रोचकता तथा जीवन्त भाषा-शैली का सर्वथा अभाव है।

७. **पश्चिम भारतीय पञ्चतन्त्र**-पश्चिम भारतीय पञ्चतन्त्र की परम्परा का प्रतिनिधित्व निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई तथा बम्बई संस्कृत सीरिज, बम्बई द्वारा प्रकाशित पञ्चतन्त्र के संस्करण करते हैं। विद्वानों के अनुसार पञ्चतन्त्र की यह वाचना अपरिवर्द्धित मूल पञ्चतन्त्र का स्वरूप उपस्थित करती है। आज से एक हजार साल पहले इस वाचन का प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हो चुका था ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

८. **पञ्चाख्यान**-पूर्णभद्र नामक एक जैन मुनि ने ईसा की बारहवीं सदी के अन्त में पञ्चाख्यान-नामक पञ्चतन्त्र की वाचना प्रस्तुत की थी। पञ्चतन्त्र की जितनी भी वाचनाएँ उपलब्ध होती हैं। उन सभी में केवल एक यही वाचना ऐसी है जिसका रचनाकाल असन्दिग्ध है। इसके अन्तर्गत अन्य वाचनाओं की तुलना में इक्कीस नई कथाओं का समावेश किया गया प्राप्त होता है जो इस वाचना की विशेषता है। यह पञ्चतन्त्र 'सरल पञ्चतन्त्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके आधार पर परवर्ती काल में १६५९-६० ई. के आस-पास जैन लेखक मेघविजय द्वारा रचित 'पञ्चाख्यानोद्धार' एक अन्य नीतिकथा-मूलक ग्रन्थ भी उपलब्ध होता है।

९. **डॉ. एजर्टन द्वारा प्रस्तुत पञ्चतन्त्र का संस्करण**-पञ्चतन्त्र-कथा के उद्भव और विकास के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान डा. एजर्टन ने इसकी सभी वाचनाओं का सूक्ष्मेक्षिकापूर्वक तुलनात्मक अध्ययन किया और उससे प्राप्त तथ्यों के आलोक में उन्होंने पञ्चतन्त्र का एक 'पुनर्निमित संस्करण' प्रस्तुत किया। पञ्चतन्त्र के अपने इस संस्करण के सम्बन्ध में डॉ. एजर्टन का कथन है- "जब हम इसकी अन्य वाचनाओं के साथ तुलना करते हैं तब

यह तथ्य पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है कि यह न केवल साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कृति है अपितु यह एक सबसे सुन्दर, परिष्कृत एवं निपुणतम रचना है।" डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "यह पञ्चतन्त्र निश्चय ही महान् साहित्यकार की विलक्षण कलापूर्ण रचना है जिसमें लेखक की प्रतिभा द्वारा कहानियाँ और संवाद अत्यन्त ही सजीव हो उठे हैं।" डा. अग्रवाल की मान्यता है कि यह पञ्चतन्त्र, भाषा, पदसङ्घटना, शैली, अभिधान भङ्गिमा, वाक्य-योजना तथा कथाओं के सौष्ठवपूर्ण गठन जैसी विशेषताओं के कारण गुप्तकाल की एक अत्यन्त विलक्षण कृति है।

**पञ्चतन्त्र की कथाओं का विश्वपरिभ्रमण**-संस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत विशेषतः पञ्चतन्त्र-मूलक कथाओं के अनुसन्धान-क्षेत्र में लब्धकीर्त्ति पाश्चात्त्य विद्वान् डॉ. बेनफी तथा डॉ. हर्टेल ने विश्वकथा-साहित्य की पृष्ठभूमि में पञ्चतन्त्र के विभिन्न अनूदित संस्करणों तथा उनके देशान्तर प्रसारी प्रभावों का गहन अध्ययन एवं समीक्षण किया है। इन दोनों विद्वानों ने इस क्रम में विदेशी भाषाओं में पञ्चतन्त्र के अनुवादों का भी सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में डॉ. एजर्टन द्वारा किये गये अनुसन्धान तो पञ्चतन्त्र की देशान्तर-यात्रा के प्रत्येक जिज्ञासु अध्येता के लिए परम उपादेय-सामग्री के शोधपूर्ण, प्रस्तुतीकरण के कारण, अनुपेक्षणीय महत्त्व रखते हैं। इस प्रसङ्ग में इन विद्वानों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं का सार निम्नस्थ हैः-

१. **पञ्चतन्त्र का पहलवी (प्राचीन फारसी) भाषा में अनुवाद**-ईरान के सम्राट् खुसरो नौशेरवाँ के शासनकाल में ५५० ई. के आसपास उनके प्रमुख राजवैद्य बुरजुए ने एक भारतीय विद्वान् बुजूर जमेहर के सहयोग से पञ्चतन्त्र का सर्वप्रथम रूपान्तर पहलवी भाषा में सम्पन्न किया था। उसने पञ्चतन्त्र को ऐसा अमृत कहा है, जिसके सेवन से मृत व्यक्ति जीवित हो उठता है। अर्थात् मूर्ख मनुष्य भी विद्वान् हो जाता है। आज, यह अनुवाद उपलब्ध नहीं होता है।

२. **पञ्चतन्त्र का पहलवी अनुवाद पर आधृत सीरियाई अनुवाद**-अधुना लुप्त पहलवी अनुवाद के आधार पर ५७० ई. के आसपास बुद नामक एक विद्वान् ने-'कलिलग ओर दमनग' नाम से सीरियाई भाषा में पञ्चतन्त्र का अनुवाद प्रस्तुत किया। उन्नीसवीं सदी के मध्यान्तर में संयोगवश उपलब्ध इस अनुवाद का जर्मन-भाषा में रूपान्तर प्रस्तुत किया गया। यह अनुवाद मूल-पञ्चतन्त्र की कथाओं का विश्वसनीय रूप से प्रतिनिधित्व करता है।

३. **पञ्चतन्त्र का पहलवी अनुवाद पर आधृत अरबी अनुवाद**-ईसा की आठवीं सदी की अवधि में खलीफा अल् मन्सूर के आदेश से पूर्वोक्त पहलवी अनुवाद पर आधृत पञ्चतन्त्र का एक अरबी भाषा में रूपान्तर प्रस्तुत कराया गया। इस अनुवादक विद्वान् का नाम अब्दुल्ला-इब्न-उल्-मुकफ्फा था और इसने उक्त अनुवाद का नाम 'कलीलः व दिमनः' रक्खा था। पञ्चतन्त्र की एक कथा के पात्र करटक एवं दमनक के नामगत ध्वनिसाम्य को इस अरबी शीर्षक में स्पष्ट ही देखा जा सकता है।

**४. पञ्चतन्त्र का अरबी अनुवाद पर आधृत यूनानी अनुवाद**-ईसा की ग्यारहवीं सदी की अवधि में पूर्वोक्त अरबी अनुवाद के आधार पर साइमिआन नामक विद्वान् ने पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद का यूरोप की प्रमुख भाषा यूनानी (ग्रीक) में सर्वप्रथम अनुवाद प्रस्तुत किया। इस अनुवाद का सर्वाधिक महत्त्व इस बात को लेकर है कि इसके आधार पर लैटिन, जर्मन, इटैलियन, स्पेनिश, फ्रेन्च प्रभृति अन्यान्य यूरोपीय भाषाओं में इसके अनुवाद का मार्ग प्रशस्त हो गया और उन-उन भाषाओं में किये गये अनुवादों के माध्यम से पञ्चतन्त्र की कथाओं ने विश्वव्याप्त कीर्ति उपार्जित की।

**५. पञ्चतन्त्र का जावा द्वीप की भाषा में रूपान्तरण**-जावा द्वीप की भाषा में सम्प्रति अनिर्देश्य स्रोत से विकसित पञ्चतन्त्र का एक स्थानीय रूपान्तर प्राप्त होता है। यह रूपान्तर 'तन्त्री कामन्दक' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे इसमें उपलब्ध कथाओं के आधार पर पञ्चतन्त्र-जातीय साहित्य का प्रतिनिधि माना जाता है। जावा-द्वीप के साहित्य के प्रख्यात शोधकर्त्ता प्रो. हुइकास तथा वेंकटसुब्बिया ने 'तन्त्रीकामन्दक' के मध्य विन्यस्त संस्कृत श्लोकों के जावाभाषीय रूपान्तर के मूल का संस्कृत की कृतियों में अनुसन्धान किया है।

'तन्त्री कामन्दक' कथाग्रन्थ की नायिका का नाम तन्त्री है। उसे तन्त्र की विदुषी माना गया है। ग्रन्थ की समाप्ति पर विन्यस्त पुष्पिका में "इति चण्डपिङ्गलतन्त्रि-रचित तन्त्रवाक्य समाप्त" जैसा उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ कामन्दक शब्द के प्रयोग से यह स्पष्टतः सूचित होता है कि जावा द्वीप में प्राचीन काल से ही कामन्दकीय नीतिशास्त्र सुप्रचलित था। ऐसी सम्भावना व्यक्त की गयी है कि उक्त ग्रन्थ की रचना ईसा की बारहवीं सदी के परिपार्श्व में की गयी होगी।

इस कथा में वर्णित राजा का नाम ऐश्वर्यपाल है जिसकी राजधानी जम्बूद्वीप में अवस्थित सुप्रसिद्ध पाटलिपुत्र नगर बतलाया गया है। नीतिवन्वैश्वर्य-नामक इसका एक मन्त्री था और तन्त्री-नामक इसकी एक कन्या थी। सुप्रसिद्ध आरब्य उपन्यास सहस्ररजनी-चरित्र के नायक की भाँति इस कथा के नायक ऐश्वर्यपाल को भी काम-परितृप्ति के लिए प्रत्येक रात्रि में एक-एक अक्षत यौवना कन्या की आवश्यकता होती थी। मन्त्रिपुत्री तन्त्री ने अत्यन्त कौशल के साथ विविध रोचक एवं कौतूहलपूर्ण कथाओं के आख्यान के द्वारा राजा को सम्मोहित कर रखने में असाधारण निपुणता प्रदर्शित की है। मुख्य कथा के अन्तर्गत आनुषङ्गिक कथाओं के गुम्फन की भारतीय कथा-शैली का प्रयोग यहाँ भी किया गया है।

तन्त्री के द्वारा कही गयी कथाओं में नन्दक नामक भारवाही वृषभ की कथा, चण्डपिङ्गलनामक सिंह एवं नन्दक नामक वृषभ की मैत्री कथा, दुन्दुभि के शब्द को सुनकर भयभीत शृंगाल की कथा, कौशाम्बी नगरी के राजा गजद्रुम की कथा, कच्छप एवं राजहंसयुगल की कथा, राजा सेवन्तर एवं सागर के वक्ष पर नाचने वाले वानररूपधारी

विद्याधर की कथा, हाथी द्वारा पक्षियों के अण्डों को विनष्ट करने तथा मक्खी, कौआ, मेढ़क आदि के द्वारा उसकी विनाश-योजना की कथा, धावन-प्रतियोगिता में कच्छप द्वारा गरुड के पराजय की कथा, सुम्नपद एवं प्रियम्वदा नामक विहग-दम्पती के अण्डों के समुद्र द्वारा अपहरण तथा प्रत्यावर्त्तन की कथा उल्लेखनीय कथाओं के रूप में परिगणित की जाती हैं। इस कथाग्रन्थ के उपसंहार में श्रृगाल की कूटनीति के फलस्वरूप सिंह और वृषभ के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप दोनों ही मारे जाते हैं। सिंह मरकर विष्णुलोक में स्थान प्राप्त करता है तथा वृषभ मरने के बाद शिवलोक का अधिकारी होता है। और; श्रृगाल, अपने पापकृत्य के फलस्वरूप मरकर सैकत सागर ताम्ब गोहमुख एवं यमनी लोक नामक नरक में जा गिरता है।

उपर्युक्त रूपरेखा के आलोक में देखने पर पञ्चतन्त्र एवं तन्त्री कामन्दक की कथाओं में समता की प्रतिध्वनि प्राप्त होने पर भी समीक्षकों का अभिमत है कि इसमें धर्मशिक्षा के प्रति कोई आग्रह नहीं है।

पञ्चतन्त्र के इन पूर्व संसूचित भारतीय एवं भारतीयेतर भाषाओं में अनूदित समग्र संस्करणों का वर्णन डॉ. जे. हर्टेल द्वारा जर्मन-भाषा में प्रकाशित पञ्चतन्त्र-परक शोधपूर्ण ग्रन्थ से विशद रूप में प्राप्त किया जा सकता है। तदनुसार पचास से अधिक भाषाओं में इसके दो सौ से अधिक संस्करण आज तक हो चुके हैं जिनमें तीन-चौथाई संस्करण भारतीयेतर भाषाओं में हुए हैं। इस प्रकार इसकी विपुल संस्करण-सम्पदा के साक्ष्य से भारत के साथ ही भारत के बहिःस्थ समस्त सभ्य देशों में पञ्चतन्त्र की कथाओं के विजयाभियान की गौरव-गाथा से हम परिचित होते हैं। शोध-प्रवण विद्वानों के सत्प्रयास से आज यह तथ्य भलीभाँति प्रमाणित हो चुका है कि संसार के समस्त नीतिकथामूलक साहित्य के उद्‌गम का मूल स्रोत भारत में रचित पञ्चतनत्र ही है। और, वास्तव में यह ग्रन्थरत्न विश्व साहित्य को भारत का अनुपम अवदान है।

पञ्चतन्त्र के कथामुख से ज्ञात होता है कि इसकी रचना मन्दमति एवं कुपथगामी राजपुत्रों को कथानक की रोचक शैली में नीति की शिक्षा प्रदान करने के लिए की गई है। परन्तु यह ग्रन्थ केवल शिष्य-शिक्षण के सीमित उद्देश्य की ही पूर्त्ति नहीं करता, अपितु जीवन के ज्वलन्त एवं व्यापक प्रश्नों का समाधान भी प्रस्तुत करता है। इतना ही नहीं यह लोकनीति, धर्म-कर्म, आचार-विचार एवं राजनीति के उन नियमों का श्वेत-श्याम उदाहरणों के साथ परिचय भी प्रस्तुत करता है, जिनके ज्ञान एवं व्यवहार से मानव-जीवनका धरातल नैतिकता से समुज्ज्वल हो उठता है।

नैतिकता से परिपूर्ण जीवन की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए अंग्रेजी में पञ्चतन्त्र के अद्वितीय अनुवादक के रूप में सुप्रसिद्ध पाश्चात्त्य विद्वान् राइडर ने कहा है कि ''नीतिप्रधान जीवन वह है जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का पूर्ण विकास हो, अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति जिसमें आत्मरक्षा, धन-समृद्धि, सङ्कल्पमय

कर्म, मित्रता एवं उत्तम विद्या, इन पाँचों का इस प्रकार समन्वय किया जाय कि उसमें आनन्द की उत्पत्ति हो। यह जीवन का महनीय आदर्श है जिसे पञ्चतन्त्र की चातुर्य और बुद्धिमता से परिपूर्ण पशु-पक्षियों की कथाओं के माध्यम से अत्यन्त कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।"

**पञ्चतन्त्र का भाषा-शिल्प**-संस्कृत की आख्यान-शैली में पद्यगर्भित गद्यसन्दर्भ का दर्शन ब्राह्मण-साहित्य के युग से ही प्रारम्भ हो जाता है। इस शैली के अन्तर्गत कथा का सामान्य आख्यान गद्य के माध्यम से किया जाता है, परन्तु जब किसी सूक्ति अथवा महत्त्वपूर्ण तथ्य का कथन अभीष्ट होता है तब उसे पद्य के माध्यम से प्रकट किया जाता है। पञ्चतन्त्र में भी हम इसी शैली का प्रयोग देख पाते हैं। गद्यमय कथाप्रवाह के अन्तर्गत, स्थान-स्थान पर, उपदेशात्मक, नीतिनिर्देशपरक, धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त के प्रतिपादक, भाग्य की प्रभविष्णुता के प्रख्यापक, भविष्य की अनुल्लंघनीयता के उद्घोषक एवं आगामी कथा के उपक्षेपक पद्यों का यहाँ सुन्दर सन्निवेश प्राप्त होता है जो शैली की एकरसता को दूर करने के साथ ही अपनी शाश्वत गुणवत्ता के कारण हमारे मन में सदा के लिए बस जाते हैं।

जटिल समासों के विकट बन्ध से विहीन सरल एवं प्रवाहपूर्ण गद्य-सन्दर्भ के अन्तर्गत हृदय को अपनी रुचिर भंगिमा से आकृष्ट कर लेने वाले पद्यमय सुभाषितों का विन्यास इस ग्रन्थ के भाषाशिल्प को एक अभूतपूर्व सौष्ठव प्रदान करता है। परोक्ष-पद्धति के द्वारा संस्कृत-शिक्षण के क्षेत्र में तो इस ग्रन्थ की उपयोगिता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। शिक्षा-प्रदान करने के उद्देश्य से रचित ग्रन्थ में आडम्बरपूर्ण बन्ध-विन्यास तथा कृत्रिम अलङ्कार-योजना की कोई उपयोगिता नहीं है, इस तथ्य के प्रति इस ग्रन्थ के रचयिता पूर्णरूप से सचेतन हैं। अतः, इसकी भाषा, शब्दावली, वाक्य-रचना, छन्दों की प्रयुक्ति, अलङ्कारों के चयन, वाग्भङ्गिमा तथा कथाशिल्प के सरलता, स्वाभाविकता तथा प्रसङ्गौचित्य से संवलित होने के कारण संस्कृत के उपदेशात्मक कथाग्रन्थों में इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त है।

पञ्चतंत्र की भाषा और शैली के परिचय के लिए काकोलूकीय नामक तृतीय तन्त्र की शशक-कपिञ्जल-कथा द्रष्टव्य है जिसमें एक खरगोश और गौरैया अपने वासस्थान के लिए आपस में लड़ पड़ते हैं और अपने कलह के निराकरण हेतु एक वनबिलाव के पास जाते हैं, जो नदी के तट पर सूर्योपस्थान करता हुआ अहिंसा और धर्म के सम्बन्ध में विलक्षण व्याख्यान दे रहा होता है। वह उन दोनों को फुसला कर अपने पास ला बैठाता है और दबोच कर खा जाता है। क्षुद्र, ढोंगी और धूर्त्त न्यायकर्त्ता से किस प्रकार सरल बुद्धि वाले विवाद कर्त्ताओं का सर्वनाश होता है इसे हम इस कहानी में स्पष्ट ही देख पाते हैं।

**पञ्चतन्त्र के कतिपय पद्यरत्न**-पञ्चतन्त्र के अन्तर्गत विविध कथाओं से सम्बद्ध पद्यों में नीति के सारतत्त्व के प्रतिपादन के साथ ही जीवन के ज्वलन्त यथार्थ को भी रेखाङ्कित किया गया है। संस्कृत साहित्य की अनमोल निधि में ये पद्य रत्नों की भाँति अक्षय आभा से मण्डित हैं। इनकी ज्योति दैनन्दिन समस्याओं से सङ्कुल मानव की जीवनचर्या में आशा और उत्साह के सञ्चार के साथ नीति के आलोक का प्रसार करती है, जिससे मानवता के सुसंस्कृत, समुन्नत एवं सफल जीवन की ऊर्जस्वल प्रेरणा प्राप्त होती है। उपर्युक्त तथ्य के निदर्शन के रूप में यहाँ प्रस्तुत ग्रन्थ से कतिपय पद्य उद्धृत किये जाते हैं:-

**गतवयसामपि पुंसां येषामर्था भवन्ति ते तरुणाः।**
**अर्थेन तु ये हीनास्ते वृद्धा यौवनेऽपि स्युः।।**

धन-सम्पन्न व्यक्ति वृद्ध होने पर भी तरुण हुआ करते हैं परन्तु जो धनहीन हैं वे युवावस्था में भी वृद्ध ही हैं।

**न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः।**
**एतदेव हि पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद् भूरिरक्षणम्।।**

स्वल्प वस्तु की रक्षा के लिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह अधिक मूल्यवान् वस्तु का नाश न करे। पाण्डित्य यही है कि वह स्वल्प महत्त्व के वस्तु का अधिक मूल्यवान् वस्तु की रक्षा के लिए सहर्ष त्याग कर दे।

**उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते, हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिताः।**
**अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः, परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः।।**

शब्द के द्वारा प्रकट किये गये अर्थ को पशु भी समझ लेते हैं। घोड़े और हाथी भी अपने स्वामी के द्वारा प्रेरित होकर उन्हें उनके गन्तव्य स्थान की ओर ले चलते हैं किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति शब्द से कथित न किये गये अर्थ को भी तर्कशक्ति से जान लेता है। बुद्धि का फल यही है कि दूसरों के मनोगत भावों को केवल इशारे से ही समझ ले।

**सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं विचिन्वन्ति त्रयो जनाः।**
**शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।।**

स्वर्णमय पुष्पों से मण्डित इस पृथ्वी से समृद्धि की प्राप्ति शूर, विद्वान् और सेवावृत्ति में अभिज्ञ ये तीन व्यक्ति ही कर सकते हैं।

**भये वा यदि वा हर्षे सम्प्राप्ते यो विमर्शयेत्।**
**कृत्यं न कुरुते वेगान्न स सन्तापमाप्नुयात्।।**

भय अथवा हर्ष का अवसर उपस्थित होने पर भी जो व्यक्ति स्थिर होकर विचार करता है और मनोवेग के वशीभूत होकर कोई कार्य नहीं कर बैठता है वह कभी भी पश्चात्ताप से सन्तप्त नहीं होता है।

**अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।**
**पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्त्ययोग्याश्च योग्याश्च।।**

अश्व, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, पुरुष और नारी जैसे पुरुष के पास रहते हैं तदनुसार ही योग्य अथवा अयोग्य हो जाते हैं।

**एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।**
**बुद्धिर्बुद्धिमतः सृष्टा हन्ति राष्ट्रं सनायकम्।।**

किसी धनुर्धर द्वारा छोड़ा गया बाण किसी एक शत्रु को भी मार सकता है अथवा नहीं भी मार सकता है किन्तु एक दण्डनीति में निष्णात व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त बुद्धि राजा सहित समस्त शत्रुराष्ट्र को नष्ट कर देती हैं।

**त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले**
**धैर्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात् सः।**
**यथा समुद्रेऽपि हि पोतभङ्गे**
**सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव।।**

विषम परिस्थिति में भी धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिए। कभी ऐसा भी हो सकता है कि धैर्य के अवलम्बन के फलस्वरूप स्थिति सुदृढ़ हो जाय और सफलता मिल जाय। इसका दृष्टान्त वह समुद्री बनियाँ है जो सागर के मध्य में पोतभङ्ग हो जाने पर भी उसे तैर कर पार कर लेना चाहता ही है।

**उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति।**
**दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।।**

सिंह के समान पराक्रम-पूर्वक उद्योगशील श्रेष्ठ पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं चली आती है परन्तु कायर पुरुष लक्ष्मी को भाग्य के द्वारा देय मानते हैं। भाग्यवाद को तिलाञ्जलि देकर अपनी पूरी शक्ति से पुरुषार्थ का प्रदर्शन करो। यत्न करने पर भी अभीष्ट सिद्ध न हो तो इसमें पुरुष का कौन सा दोष है।

**बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।**
**तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्येन नागोऽपि बद्ध्यते।।**

बहुत से असार वस्तुओं का भी समूह बड़ा बलवान् और अजेय होता है। तृणों से रस्सी बनायी जाती है जिससे मतवाला हाथी भी बांधा जाता है।

**अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।**
**स्वार्थमभ्युद्धरेत् प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता।**

अपमान का वरण कर तथा आत्मसम्मान को पीठ पीछे रखकर बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने स्वार्थ का साधन करना चाहिए क्योंकि स्वार्थ की हानि सबसे बड़ी मूर्खता है।

**आदौ चित्ते ततः काये सतां सम्पद्यते जरा।**
**असतां तु पुनः काये नैव चित्ते कदाचन।।**

सज्जनों को पहले चित्त में और तब शरीर में बुढ़ापा आती है परन्तु दुर्जनों को केवल शरीर में ही आती है मन में कभी नहीं आती।

## हितोपदेश

पञ्चतन्त्र के आधार पर निर्मित उपदेशात्मक कथाग्रन्थ के रूप में हितोपदेश की लोकप्रियता और व्यापकता सर्वविदित है। इसके रचयिता राजा धवलचन्द्र के आश्रित नारायण नामक विद्वान् थे। हितोपदेश में उपलब्ध शिवस्तुतिपरक श्लोकों की बहुलता के आधार पर इन्हें शैव माना जाता है। इन्होंने अपनी कृति का स्रोत पञ्चतन्त्र तथा एक अन्य अनिर्दिष्ट नामक ग्रन्थ को बतलाया है।

पञ्चतन्त्र के मूल कलेवर की अपेक्षा हितोपदेश के कलेवर में पर्याप्त परिवर्त्तन किया गया है। इसकी कथाओं को चार भागों में विभक्त किया गया है और प्रत्येक भाग के नवीन नामकरण किये गये हैं। इनके नाम हैं-(१) मित्रलाभ, (२) सुहृद्भेद (३) विग्रह और (४) सन्धि। इनके अन्तर्गत सत्तरह नवीन कथाओं का सन्निवेश किया गया है, जिनमें सात पशुपात्रप्रधान, पाँच कूटनीतिमूलक, तीन लोककथाश्रित तथा दो उपदेशात्मक कथाएँ हैं। इन नवीन कथाओं के स्रोत स्पष्ट नहीं हैं। अपने ग्रन्थ में नीतिपरक कथ्यों के अतिरिक्त स्रोत के रूप में लेखक द्वारा कामन्दकीय नीतिसार का उपयोग किया गया प्रतीत होता है। ग्रन्थकार ने अपने इस कथाग्रन्थ की रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि गुरुमुख से इसके श्रवण से संस्कृत वाग्व्यवहार में निपुणता तथा सौष्ठव के साथ नीतिविद्या का ज्ञान प्राप्त होता है। तदनुसार उन्होंने यहाँ जो शैली अपनायी है वह असाधारण रूप से सरल और प्रवाहपूर्ण है। उनके पद्य आकर्षक हैं और उनमें हृदय पर अमिट प्रभाव डालने की अमित शक्ति है। बाल्यावस्था में अभ्यस्त इनके श्लोक आजीवन एक सच्चे साथी एवं मार्गदर्शक के रूप में इसके अध्येता के मानस में सहायतार्थ प्रस्तुत रहते हैं और यह

इस ग्रन्थ की उपादेयता का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। इस कथाग्रन्थ में निबद्ध कथाओं का नाम-निर्देश नीचे किया जाता है-

### प्रथम भाग-मित्र लाभ-

१. प्रस्तावना
२. लघुपतनक नामक कौए की कथा
३. वृद्धव्याघ्र एवं लोभी पथिक की कथा।
४. चित्राङ्गनामक मृग तथा सुबुद्धि नामक कौए की कथा
५. दीर्घकर्ण नामक विडाल की कथा
६. चूडाकर्ण नामक परिव्राजक की कथा
७. चन्दनदास नामक वणिक् की कथा
८. भैरव नामक व्याघ की कथा
९. वीरसेन नामक राजा की कथा
१०. कर्पूरतिलक नामक हाथी की कथा

### द्वितीय भाग-सुहृद्भेद

१. वर्द्धमान नामक वणिक्, सञ्जीवक नामक वृषभ तथा दमनक एवं करटक नामक श्रृगालों की कथा
२. कीलोत्पाटी वानर की कथा।
३. कर्पूरपटक नामक रजक की कथा
४. दुर्दान्त नामक सिंह तथा दधिकर्ण नामक विडाल की कथा
५. घण्टाकर्ण नामक राक्षस का प्रवादमूलक आतङ्क तथा एक कुट्टनी द्वारा उसके आतंक से नागरिकों की मुक्ति।
६. कन्दर्पकेतु नामक संन्यासी, एक वणिक्, ग्वाला और उसकी व्यभिचारिणी स्त्री की कथा-उसमें अनुरक्त एक दण्डनायक तथा उसके पुत्र की कथा
७. काकदम्पती और कृष्णसर्प की कथा
८. दुर्दान्त नामक सिंह तथा एक सियार की कथा
९. टिटहरी के जोड़े तथा समुद्र की कथा

### तृतीय भाग-विग्रह

१. हिरण्यगर्भ नामक राजहंस, चित्रवर्ण नामक मयूर तथा दीर्घमुख नामक बगुले की कथा।

२. पक्षी और बन्दरों की कथा
३. बाघ का खोल ओढ़कर खेत चरने वाले धोबी के गदहे की कथा।
४. हाथियों का झुण्ड एवं बूढे खरगोश की कथा
५. हंस, कौआ और एक पथिक की कथा
६. कौआ, पथिक और एक ग्वाले की कथा
७. एक बढ़ई, उसकी व्यभिचारिणी स्त्री और उसके जार की कथा।
८. नील में रंगे हुए एक सियार की कथा
९. वीरवर नामक राजपुत्र एवं उसके द्वारा अपने पुत्र के बलिदान की कथा।
१०. चूड़ामणि नामक क्षत्रिय, नापित तथा भिक्षुक की कथा

## चतुर्थ भाग-सन्धि

१. हंस और मयूर के मेल की कथा
२. संकट एवं विकट नामक हंस तथा उनके मित्र कम्बुग्रीव नामक कच्छप की कथा
३. अनागत-विधाता, प्रत्युत्पन्नमति तथा यद्भविष्य नामक मत्स्यों की कथा।
४. समुद्रदत्त नामक वणिक्, रत्नप्रभा नामकी उसकी व्यभिचारिणी स्त्री और उनके सेवक की कहानी
५. बगुले, साँप एवं नेवले की कथा
६. महातपा नामक मुनि तथा चूहे की कथा
७. वृद्धबक, कर्कट एवं मत्स्यों की कथा
८. देवशर्म्मा नामक ब्राह्मण और कुम्हार की कथा
९. सुन्द एवं उपसुन्द नामक दो दानवों की कथा
१०. एक ब्राह्मण एवं तीन धूर्तों की कथा।
११. मदोत्कट नामक सिंह और उसके तीन सेवकों कौआ, बाघ एवं सियार की कथा
१२. मन्दविष नामक सर्प एवं मेढकों की कथा
१३. माधव नामक ब्राह्मण और उसके द्वारा पालित नेवले की कथा।

## हितोपदेश के कुछ पद्यरत्न-

**काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।**
**व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।१०१।।**

बुद्धिमान् व्यक्तियों का समय काव्य एवं शास्त्र की विनोदपूर्ण गोष्ठियों में बीतता है परन्तु मूर्खों का समय जुआ, परनिन्दा, मद्यपान प्रभृति व्यसनों से, अतिनिद्रा से अथवा कलह से बीतता है।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।।१०१२।।

जिस प्रकार अपने प्राण अभीष्ट होते हैं उसी प्रकार अन्यान्य प्राणियों को भी अपने प्राण अभीष्ट होते हैं। सज्जन लोग अपने ही समान प्राणियों पर दया करते हैं।

मणिर्लुठति पादेषु काचः शिरसि धार्यते।
यथैवास्ते तथैवास्तां काचः काचो मणिर्मणिः।।२०६८।।

मणि पैरों पर लोटता है और काच का टुकड़ा मस्तक पर रक्खा जाता है। जो जहाँ है वहीं रहे परन्तु काच काच ही है और मणि मणि ही है।

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम्।। ४.१०३।।

लोभी को धन से वश में करना चाहिए, घमण्डी को हाथ जोड़कर वश में लाना चाहिए। मूर्ख को उसकी इच्छा का अनुपालन कर वश में लाना चाहिए और पण्डित को सत्यभाषण के द्वारा वश में कर लेना चाहिए।

**पुरुषपरीक्षा**-महाकवि विद्यापति-विरचित 'पुरुष-परीक्षा' उपदेशात्मक संस्कृत कथा-साहित्य का एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी भूयसी विशेषता यह है कि इसमें मानवेतर पशु-पक्षी जैसे पात्रों के स्थान पर वर्त्तमान कलियुग में उत्पन्न पुरातन एवं समसामयिक आदर्श चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है। कथा-विन्यास के क्रम में ग्रन्थकार ने उदाहरण-प्रत्युदाहरण की युग्म-शैली का अवलम्बन कर अपने पात्रों के चरित्रगत श्वेत-श्याम पक्षों के उन्मीलन के द्वारा सद्गुणों की उपादेयता तथा अवगुणों की हेयता को रेखाङ्कित किया है।

ग्रन्थ का नाम-'पुरुष-परीक्षा' है जो यादृच्छिक न होकर पूर्ण रूप से सार्थक है। ग्रन्थकार की मान्यता है कि पुरुष वही है जिसके व्यक्तित्व में वीरता, सुबुद्धि, विद्या तथा पुरुषार्थ-चतुष्टय का समन्वय प्राप्त होता है। इससे रहित व्यक्ति केवल आकार-प्रकार से पुरुष की भाँति दीख पड़ता है-पुरुषाभास है, बिना पूँछ और सींग का पशु ही है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से यथार्थ पुरुष के परीक्षण की दृष्टि प्राप्त होती है और इसी में इसके नामकरण की सार्थकता है।

ग्रन्थ के मङ्गलाचरण के क्रम में आदिशक्ति की वन्दना के अनन्तर ग्रन्थकार ने कथा-प्रबन्ध का उपक्षेप करते हुए कहा है कि एकबार जब चन्द्रातपा नगरी के राजा पारावार ने अपनी सर्वगुणसम्पन्न पुत्री के अनुरूप वर की अर्हता के विषय में मुनिवर सुबुद्धि से प्रश्न किया तब उन्होंने कहा कि वीरता, सुबुद्धि, सद्विद्या तथा पुरुषार्थ से युक्त

पुरुष ही वास्तविक पुरुष है। अतः ऐसे पुरुष को ही कन्या-प्रदान किया जाय। इसी सन्दर्भ में ऐसे आदर्श पुरुषों के पचिययार्थ मुनिवर सुबुद्धि द्वारा आख्यात कथाओं का उपन्यास इस ग्रन्थ में किया गया है।

इस ग्रन्थ की रचना का समय ईसा की चौदहवीं सदी है जिसके अन्तर्गत तुलुष्कों के निरन्तर आक्रमण के कारण तत्कालीन मिथिला का राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जनजीवन विशृङ्खल हो उठा था। ऐसे विप्लवसङ्कुल विषम काल में बर्बर विधर्मी आक्रान्ताओं के निष्ठुर उत्पीड़न एवं अत्याचार से भीत-सन्त्रस्त जनता के मानस में महाकवि विद्यापति ने अपने इस पुरुषार्थोपदेश से दीप्त कथाग्रन्थ के द्वारा नवजागरण के दिगन्त प्रसारी शङ्खनाद का उद्घोष किया है। विद्यापति का स्पष्ट अभिमत है कि शास्त्रविद्या की अपेक्षा शस्त्रविद्या श्रेष्ठतर है, क्योंकि शस्त्रबल से रक्षित राष्ट्र में ही शास्त्रविद्या का विकास सम्भव हो पाता है।

प्रस्तुत कथाग्रन्थ में चार परिच्छेद हैं जिनमें प्रथम परिच्छेद के अन्तर्गत उदाहरण -कथा की कोटि में दानवीर विक्रमादित्य, युद्धवीर कर्णाट-राजकुमार मल्लदेव, दयावीर रणथम्भौर-नरेश हम्मीरदेव तथा सत्यवीर चौहान वंशी चाचिकदेव की कथाएँ निबद्ध की गयी हैं और प्रत्युदाहरण-कथा की कोटि में चोर, भीरु, कृपण तथा आलसी की कथाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। द्वितीय परिच्छेद के अन्तर्गत उदाहरण-कथा की कोटि में प्रतिभासम्पन्न विशाख, मेधावी कोकपण्डित तथा कर्णाट नरेश हरिसिंहदेव के सुबुद्धि-सम्पन्न मन्त्री गणेश्वर की कथाओं का आख्यान किया गया है। इनके प्रत्युदाहरण के रूप में कुबुद्धि-कथा के अन्तर्गत वञ्चक एवं पिशुन की कथाएँ तथा अबुद्धि-कथा के अन्तर्गत जन्मबर्बर एवं सङ्गबर्बर की कथाएँ प्रस्तुत की गयीं हैं। तृतीय परिच्छेद में सविद्य-कथा के उदाहरण के रूप में धारा-नगरी-निवासी शस्त्रविद्य सिंहल नामक क्षत्रिय धनुर्धर, शास्त्रविद्य ज्यौतिषी वराहमिहिर, वैद्य हरिश्चन्द्र एवं मीमांसक शबरस्वामी की कथाएँ प्राप्त होती हैं। इसी परिच्छेद में वेदविद्य कथा के साथ लोकविद्य कथा और उभयविद्य कथा का निबन्धन किया गया है। इनके प्रधान पात्र क्रमशः वेदशर्मा, शकटार एवं चाणक्य हैं। तत्पश्चात् उपविद्य-कथा के अन्तर्गत उदाहरण-कथाकोटि में चित्रविद्य मूलदेव, गीतविद्य कलानिधि, नृत्यविद्य गन्धर्वनामक नट, इन्द्रजालविद्य पक्षधर, पूजितविद्य एक अज्ञात नामक कवि तथा हासविद्य तस्कर की कथाएँ प्राप्त होतीं हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्युदाहरण-कथा-कोटि में अवसन्न-विद्य वाग्विलास-नामक कवि, विद्याविहीन रविधर-नामक ब्राह्मण तथा खण्डितविद्य कुशशर्मा-नामक दम्भी ब्राह्मण की कथाएँ प्रस्तुत की गयीं हैं। चतुर्थ परिच्छेद के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष जैसे पुरुषार्थ-चतुष्टय से सम्बद्ध कथाओं का उपन्यास किया गया है। इनमें धर्म से सम्बद्ध कथाओं में तत्त्वज्ञानी बोधि नामक कायस्थ, तमोगुणी धार्मिक श्रीकण्ठ नामक ब्राह्मण तथा पापकर्म के लिए पश्चात्तापपूर्वक पुण्यार्जनपरायण राजकुमार

रत्नाङ्गद की कथाएँ निबद्ध की गयीं हैं। अर्थमूलक कथाओं में न्यायपूर्वक उपार्जित धन का दान एवं भोग में व्यय करने वाले महाराज देव-नामक महेच्छ धनिक की कथा, भविष्य में प्राप्त होने वाले धन की प्रत्याशा में संचित धन का व्यय करने वाले प्रचुरवसु-नामक मूढ धनिक की कथा, कुलक्रमागत वृत्ति को छोड़कर एक साथ बहुत से उद्यमों द्वारा बहुत सा धन एकत्र कर लेने की दुष्पूर तृष्णा से ग्रस्त एक माली की कथा तथा शूरता के बल से उपार्जित सम्पदा का रक्षणावेक्षण करते हुए वीरपराक्रम-नामक राजा की कथा जिसने दूरदर्शिता के साथ लक्ष्मी से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि उसके पुत्रों में राज्य के लिए कभी कलह न होने पावे, निबद्ध की गयी हैं। काम-कथा के अन्तर्गत अनुकूल नायक राजा शूद्रक की कथा, दक्षिण नायक गौडनरेश लक्ष्मणसेन की कथा, विदग्धनायक महाराज विक्रमादित्य की कथा, धूर्त्त नायक शशी की कथा तथा विद्या एवं बुद्धि से सम्पन्न होने पर भी अपनी प्रेयसी पटरानी शुभदेवी के वशीभूत रहने के कारण अपने राज्य एवं प्राणों को गँवा देने वाले महाराज जयचन्द्र की कथा प्राप्त होती है। मोक्ष-कथा के अन्तर्गत निर्बन्धपरायण मुमुक्षु, विवेकशर्मा की कथा, निःस्पृहमुमुक्षु कृष्ण-चैतन्य की कथा तथा लब्धसिद्धि मुमुक्षु, योगिवर्य भर्तृहरि की कथा प्रस्तुत की गयी हैं और इसी कथा के साथ ग्रन्थ समाप्त हो जाता है।

इस कथाग्रन्थ में विन्यस्त कथाओं के उपर्युक्त नामनिर्देश से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत भाषा के माध्यम से उदीयमान पीढ़ी को लोकनीति, दण्डनीति एवं चतुर्वर्ग के उपदेशों के द्वारा समसामयिक सन्दर्भ में नवचेतना प्रदान करना ग्रन्थकार का मूलभूत उद्देश्य था। यही कारण है कि इसकी भाषा असाधारण रूप से सरल एवं हृदयग्राही है। यहाँ गद्यमय सन्दर्भ में कथा का प्रवाह अबाध गति से अग्रसर होता जाता है जिसके अन्तर्गत स्थान-स्थान पर मनोहर श्लोकों का विन्यास किया गया है। विद्यापति-वाङ्मय के सुधी समीक्षकों के अनुसार इनकी सूक्तियाँ संस्कृत सूक्ति-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

### विद्यापति के कतिपय सुभाषित-

**वीरः सुधीः सविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।**
**तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः।।**

वीरता, सद्बुद्धि, विद्या और पुरुषार्थ युक्त पुरुष ही वास्तव में पुरुष है। बाकी लोग तो पुरुष के आकार में बिना पूँछ के पशु ही हैं।

**पुरुषं साहसक्लेशादर्जनायासकारिणम्।**
**लक्ष्मीर्विमुञ्चति क्वापि विद्याभ्यस्ता न मुञ्चति।।**

साहस और क्लेश सहकर अर्थोपार्जन के आयास में संलग्न, व्यक्ति को लक्ष्मी कभी छोड़ भी देती है, परन्तु भली-भाँति अभ्यस्त विद्या कभी भी साथ नहीं छोड़ती है।

**स्वभावाच्छस्त्रविद्यायाः शास्त्रविद्या कनीयसी।**
**शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते।।**

शास्त्र विद्या की अपेक्षा अपने स्वगत वैशिष्ट्य के कारण शास्त्रविद्या, न्यूनकोटिक है क्योंकि शस्त्रबल से सुरक्षित राष्ट्र में ही शास्त्रीय चिन्तन का विकास हो पाता है।

**नानारससमाकीर्णा शब्दार्थगुणमण्डिता।**
**आराधयति वाग्देवी सकर्णहृदयं न किम्।।**

नवसङ्ख्यक रसों से आप्लावित तथा शब्दनिष्ठ एवं अर्थनिष्ठ गुणों से विभूषित वाग्देवी (कवि की वाणी) भला किस श्रोत्रसंपन्न व्यक्ति को सन्तुष्ट नहीं करती हैं ?

**सम्वर्धनञ्च साधूनां दुष्टानाञ्च विमर्दनम्।**
**राजधर्मं बुधाः प्राहुर्दण्डनीतिविचक्षणाः।।**

सज्जनों के सम्वर्धन और दुष्टों के विमर्दन को ही दण्डनीति के विद्वानों ने राजा का कर्त्तव्य कहा है।

**अपि शास्त्रविदो धीराः शुद्धाः संसारनिस्पृहाः।**
**वामा-कटाक्ष-सम्पर्कात् के न स्युः स्मरकिङ्कराः।।**

शास्त्रों में निष्णात धैर्य सम्पन्न, शुद्धस्वभाव तथा संसार वासना से निःस्पृह कौन रमणी के कटाक्ष का पात्र होने पर काम के किङ्कर नहीं हो जाते हैं ?

**यावल्लौल्यं वसति हृदये यावदर्थाभिलाषो**
**यावच्चेतः कुसुमविशिखत्रासमङ्गीकरोति।**
**यावत्सर्वेष्वपि समतया हेतुहीना न मैत्री**
**तावन्नात्मा परमगहनो हन्त! सम्वित्तिमेति।।**

जब तक चित्त में चञ्चलता का निवास है, जबतक धन की तृष्णा है, जबतक चित्त में पुष्पधन्वा काम के बाणों का भय विद्यमान है और जबतक सभी प्राणियों के प्रति समान रूप से अकारण मैत्री का भाव उत्पन्न नहीं होता है तबतक यह अतिदुर्ज्ञेय आत्मतत्त्व का बोध सम्भव नहीं हैं।

# मनोरञ्जक कथाएँ

## बृहत्कथा

संस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत मनोरञ्जक कथा की कोटि में गुणाढ्य-विरचित सम्प्रति-नामशेष बृहत्कथा की ख्याति सुमेरुशिखर के समान देदीप्यामान है। पुरातन भारतीय कथा की विस्मयावह कल्पनाओं के इन्द्रधनुषी कान्ति-वैभव से विभासित यह ग्रन्थ पैशाची प्राकृत में निबद्ध किया गया था। भारतीय कथा-साहित्य के क्षेत्र में इसकी अनुपम गुणवत्ता के प्रति जागरूक डॉ. कीथ ने इसकी अनुपलब्धि को भारतीय कथा-साहित्य की एक अपूरणीय एवं गम्भीर क्षति कहा है। उनके अनुसार यह अद्भुतार्थ कथाग्रन्थ अपने गुणोत्कर्ष के कारण महाभारत एवं रामायण की समशीर्षिका का अधिकारी था।

संस्कृत के महाकवियों द्वारा प्रस्तुत बृहत्कथा के सोल्लास नाम-सङ्कीर्त्तन एवं प्रशस्तिपूर्ण उद्गारों में इसकी असाधारण मनोहारिता की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। बाणभट्ट के अनुसार बृहत्कथा के अन्तर्गत लोकमानस में विस्मय के उद्भावक तत्त्वों का आधिक्य था तथा इसकी ख्याति काममूलक कथाओं की बहुलता के कारण सर्वत्र लब्ध-प्रसर थी। उद्योतन सूरि के अनुसार गुणाढ्य को ब्रह्मा कहा गया है जिनके मुख में बृहत्कथा के रूप में साक्षात् सरस्वती निवास किया करतीं थीं। इन्होंने बृहत्कथा को अशेष कलाओं का आवास कहा है। आचार्य दण्डी ने इसे भूतभाषा (पैशाची) में निबद्ध कथाग्रन्थ कहा है जिसकी विषयवस्तु में अद्भुत रस की प्रधानता थी। धनपाल के अनुसार बृहत्कथा रूपी-सागरसे एक-एक बिन्दु-प्रमाण जल लेकर विरचित अन्यान्य कथाएँ उसकी सरस-मनोहर रचना के समक्ष मलिन एवं जीर्ण-शीर्ण वस्त्रखण्डों से निर्मित कन्था की भाँति ही थी।[1]

अद्वितीय कथाकार के रूप में गुणाढ्य का कीर्ति-सौरभ सागरमेखलावेष्टित भारतभूमि की सीमा का अतिक्रमण कर द्वीपान्तर में भी प्रसृत्वर हो उठा था। इसके साक्ष्य में ईसा की बारहवीं सदी के अन्तर्गत कम्बोडिया (कम्बुज देश) में उपलब्ध महाराज यशोवर्मा के एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण संस्कृत-लेख का उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसमें गुणाढ्य को 'प्राकृतप्रिय' कहा गया है।

गुणाढ्य का जीवन-वृत्त कल्पना से अनुरञ्जित किम्वदन्ती के रूप में हमें प्राप्त होता है जिसका वर्णन कथासरित्सागर, बृहत्कथामञ्जरी एवं हरचरित-चिन्तामणि में किया गया है। तदनुसार, गुगाढ्य ईसा की दूसरी सदी के सुप्रसिद्ध सातवाहन-नदेश हाल के

---

१. सत्यं बृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादायसंस्कृताः। तेनेतरकथाकन्थाः प्रतिभान्ति तदग्रतः।।
(कथासरितसागर भूमिका पृ. ६)

सभापण्डित थे। एक बार उनकी संस्कृत-विदुषी रानी ने जलविहार के क्रम में क्लान्त होकर कहा-"मोदकैः परिताडय।" सन्धिज्ञान से रहित राजा ने इस पर लड्डुओं को मंगवा कर रानी को उनसे मारना प्रारम्भ कर दिया। राजा के संस्कृतविषयक अज्ञान पर रानी ने उपहासपूर्वक कहा "तुम कितने बड़े मूर्ख हो कि मोदक शब्द का मा+उदक यह सन्धिविच्छेद तक करना नहीं जानते। भला जलकेलि के प्रकरण में कथित 'मोदकैः' का अर्थ 'लड्डुओं' से तुमने कैसे समझ लिया ?"

इस घटना से राजा को अपने संस्कृत के अज्ञान पर बड़ा खेद हुआ। उन्होंने अपने सभास्थित विद्वानों से अनुरोध किया कि उनमें से कोई उन्हें संस्कृत-व्याकरण सिखला दे। इस पर गुणाढ्य ने छह वर्षों में व्याकरण की शिक्षा प्रदान करने की बात कही, परन्तु शर्ववर्मा नामक एक अन्य विद्वान् ने दो ही वर्षों में व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न कर देने का वादा दिया। इस पर गुणाढ्य ने घोषणा की कि यदि ऐसा हुआ तो वह संस्कृत-भाषा का सदा के लिए परित्याग कर देगा। राजा को अल्पकाल में व्याकरण का ज्ञान प्रदान करने के लिए शर्ववर्मा ने 'कातन्त्र व्याकरण' की रचना की और उसकी सहायता से उसने राजा को दो ही वर्षों में व्याकरण में निपुण बना दिया।

इसे देखकर गुणाढ्य ने अपनी पूर्व-घोषणा के अनुसार संस्कृत भाषा का परित्याग कर दिया और वैराग्यवश वानप्रस्थ की जीवनचर्या अपना ली। घनघोर जंगल के बीच एक आरण्यक के रूप में वास करते हुए उसने पैशाची भाषा के माध्यम से सात लाख श्लोकों में निबद्ध बृहत्कथा (बड्ढकहा) की रचना की और उसे अपने शिष्य के द्वारा अपने पूर्व-संरक्षक राजा सातवाहन के सम्मुख अनुमोदनार्थ प्रस्तुत किया, परन्तु पैशाची भाषा में रचित होने के कारण उसने उसे तिरस्कृत कर दिया। इस वृत्तान्त से गुणाढ्य को अत्यन्त दुःख हुआ और वह हताश होकर अपनी कथाकृति के एक-एक पृष्ठ को पढ़कर उसे अग्नि में समर्पित करने लगा। कहते हैं उस कथा से आकृष्ट होकर वन के सारे पशुपक्षी खाना-पीना छोड़कर उसके चतुर्दिक् एकत्र हो उसके कथामृत के पान में निमग्न हो गये थे। तत्पश्चात् जब राजा को यह वृत्तान्त विदित हुआ तबतक तो छः लाख श्लोक अग्निदेव को समर्पित किये जा चुके थे। अन्ततोगत्वा अपने शिष्यों के अनुरोध पर गुणाढ्य ने नरवाहनदत्त के चरित से सम्बद्ध अन्तिम लक्षश्लोकात्मक अंश नहीं जलाया। यह मूल बृहत्कथा ईसा की बारहवीं सदी तक विद्यमान थी। दक्षिण भारत के गुम्मा रेड्डीपुर नामक स्थान से प्राप्त एक ताम्रपत्राङ्कित अभिलेख के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि दुर्विनीत नामक राजा ने मूल बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत किया था जो अब उपलब्ध नहीं है।

बृहत्कथा की मूलकथा के वस्तुविन्यास के सम्बन्ध में समीक्षकों ने निम्नांकित क्रम की सम्भाव्यता व्यक्त की है :-

(क) कथापीठ जिसमें महाराज उदयन और उनकी रानियों की कथाओं का निबन्धन किया गया होगा।

(ख) कथामुख जिसमें कथा का आख्यान करनेवाले नरवाहनदत्त और मदनमंजुका की प्रेमकथा निबद्ध की गयी होगी।

(ग) मुख्य कथावस्तु जिसमें विद्याधर-विशेषद्वारा अपहृत मदनमंजुका के अन्वेषण में निर्गत नरवाहनदत्त ने देश-देशान्तर का परिभ्रमण किया होगा तथा अपने पराक्रम के फलस्वरूप हर बार एक-एक कन्या से विवाह किया होगा।

(घ) उपसंहार जिसमें मदनमंजुका से नरवाहनदत्त के पुनर्मिलन के साथ ही उसके द्वारा विद्याधर पद के लाभ का वर्णन किया गया होगा।

पुराण-प्रथित गोदावरी नदी के सुरम्य तटवर्ती प्रतिष्ठानपुर के निवासी गुणाढ्य ने बृहत्कथा की रचना जिस सातवाहन-नरेश हाल के राज्यकाल में की थी, वह काल, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल[1] के अनुसार, सार्थवाहों और सांयात्रिकों की इतिहास-विश्रुत सक्रियता का काल था। उस समय के स्थलमार्ग सार्थवाहों के शकट-चक्रों के कूजन से अहर्निश मुखर रहा करते थे तथा सागर का दिगन्त प्रसारी वक्ष वाणिज्य के उद्देश्य से निर्गत उत्साही सांयात्रिकों की पोत-परम्परा से व्याप्त रहा करता था। बृहत्तर भारत की इन यात्राओं के क्रम में सार्थवाहों एवं सांयात्रिकों द्वारा स्वानुभूत विविध-विषयावगाही साहसिक एवं रोमांचक घटनाचक्रों को गुणाढ्य ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा के संस्पर्श से एक विलक्षण कथाग्रन्थ में परिणत कर दिया।

परवर्त्ती काल में मूल बृहत्कथा के आधार पर उसकी चार वाचनाएँ प्राप्त होतीं हैं जिनमें तीन संस्कृत में और एक महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध उपलब्ध होती है। यहाँ प्रसङ्ग के अनुरोध से इनके संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत हैं :-

**(क) बृहत्कथाश्लोकसङ्ग्रह**

भारतीय लोकमानस पर बृहत्कथा के प्रभावोत्कर्ष को ध्यान में रखते हुए बुधस्वामी ने 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह नामक ग्रन्थ की रचना ईसा की पाँचवीं सदी के आस-पास सम्पन्न की। इसमें कुल अट्ठाइस सर्ग हैं परन्तु यह एक अपूर्ण ग्रन्थ है। कथासरित्सागर में नरवाहनदत्त के अट्ठाइस विवाहों के वर्णन हैं जिनमें से यहाँ केवल छः विवाहों की ही कथा प्राप्त होती है। गुप्तकालीन सभ्यता और संस्कृत के प्रभाव का अनुरञ्जन इस ग्रन्थ में स्पष्टतः देखा जा सकता है। उल्लास, साहस एवं ओजस्विता से आविष्ट जीवन की पराक्रमपूर्ण सक्रियता का इसकी कथाओं में नितान्त जीवन्त शैली में वर्णन किया गया है जिसके अन्तस्तल में प्रेम की मन्दाकिनी निरन्तर प्रवाहशील दृष्टिगोचर होती है। यहाँ

१. कथासरित्सागर (प्रथम खण्ड) भूमिका पृ. १

भाग्यचक्र के आकस्मिक आवर्त्तन-विवर्त्तन से आनेवाली विषम परिस्थितियों में भी साहस एवं उत्साह से समुच्छल पात्रों के चरित्र-चित्रण की रेखाएँ असाधारण वर्ण-विच्छित्ति से देदीप्यमान उपलब्ध होतीं हैं। यह ग्रन्थ मूल बृहत्कथा की नेपाली वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रथम प्रकाशन फ्रेञ्च-अनुवाद के साथ फ्रेञ्च विद्वान् श्रीलाकोत ने १६०८ में पेरिस से किया था। कथा-साहित्य के समीक्षकों की सम्मति में बृहत्कथाश्लोकसंग्रह मूल बृहत्कथा में विन्यस्त कथाओं का अधिक विश्वसनीयता के साथ प्रतिनिधित्व करता है।

इस कथाकाव्य के प्रारम्भ में उज्जयिनी नगरी के प्रशस्ति-वर्णन के अनन्तर वहाँ के महाराज महासेन प्रद्योत के निधन का उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् उसका पुत्र गोपाल सिंहासनारूढ होता है, परन्तु पितृघाती होने के दुर्यश से खिन्न होकर वह सिंहासन का परित्याग कर देता है और उसका अनुज पालक राज्यासन पर बैठता है। कुछ दिनों के बाद उसके भी राज्यपरित्याग के अनन्तर अवन्तिवर्द्धन को हम राजसिंहासन पर आसीन होकर मातङ्गकन्या सुरसमञ्जरी के साथ विहार-परायण देख पाते हैं। तत्पश्चात्, नीलगिरिपर्वत पर काश्यप-प्रभृति ऋषिओं के द्वारा पूछे जाने पर नरवाहनदत्त अपना आश्चर्यजनक आख्यान सविस्तर कह सुनाता है। इसके अन्तर्गत नरवाहनदत्त द्वारा विद्याधरेश्वर का पद पाकर असामान्य रूप-लावण्य से समलङ्कृत विविध कन्याओं के साथ विवाह-सौख्य की प्राप्ति का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

आशा और उल्लासपूर्ण जीवन के प्रति अविचल आस्था, विस्मयावह साहसिक कृत्यों का प्राचुर्य, विविध प्रेम-प्रसङ्गों से मधुर एवं सुरभित पात्र-चरित्र तथा अनाहार्य-मनोहर वाग्विन्यास जैसी उल्लेखनीय विशेषताएँ इस श्लोकसंग्रह को असाधारण रूप से संस्कृत कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करतीं हैं।

### (ख) वसुदेव हिण्डी

सङ्घदास गणि द्वारा विरचित वसुदेव हिण्डी नामक प्राकृत गद्यकाव्य मूल बृहत्कथा पर आधृत होने के कारण उसकी जैन वाचना (प्राकृत वाचना) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके वस्तु-विन्यास और शिल्पविधान पर जैन धर्म की आभा व्याप्त है। मूल कथाग्रन्थ की अपेक्षा इसमें निम्नांकित परिवर्त्तन प्राप्त होते है :-

१. यह जैन धर्मधारणा से अनुरंजित कथाग्रन्थ है।
२. इसके नायक श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव हैं,
३. इसकी कथा लम्भों में विभक्त है,
४. इसमें वसुदेव के उनुसीस विवाहों का वर्णन किया गया है,
५. कथोत्पत्ति, धम्मिल हिण्डी, पीठिका, मुख-प्रतिमुख और शरीर के नाम से छः भाग हैं। इसका एक अन्तिम उपसंहार भी था, जो अब उपलब्ध नहीं होता है।

६. मदनमंचुका की प्रणयकथा को श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के साथ संलग्न किया गया है।

७. मदनमंचुका के स्थान पर यहाँ गणिकादारिका सुहिरण्या और राजकुमारी सोमश्री को प्रतिष्ठित किया गया है।

ग्रन्थनाम 'वसुदेव हिण्डी' शब्द में प्रयुक्त हिण्डी पद का अर्थ होता है हिण्डनव्यापार का कर्त्ता जो अपनी प्रकृति के अनुसार सांसारिक वस्तुओं का सूक्ष्मेक्षिकापूर्वक निरीक्षण करता हुआ सतत यात्रापरायण रहा करता है। प्रस्तुत ग्रन्थ की कथावस्तु की रूपरेखा पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। जैन अनुश्रुति के अनुसार श्रीकृष्ण की पुरानी कथा में परिवर्त्तन करते हुए ग्रन्थकार संघदासगणि ने यहाँ उसके वर्णन के क्रम में कहा है कि एक बार वसुदेव का अपने अग्रज से वैमनस्य हो गया और वे गृहत्यागी होकर यायावर हो गये। इस क्रम में नाना-देश-देशान्तर में पराक्रम-प्रदर्शन करते हुए उन्होंने उन्तीस कन्याओं से विवाह किया जिनमें अन्तिम कन्या रोहिणी थी। अपने सुदीर्घ परिभ्रमण के बाद जब वे घर लौटे तब सौभाग्यवश उन्हें अग्रज का स्नेह प्राप्त हुआ और वे अपने परिवार के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक समय प्रद्युम्न के उपहासगर्भ वचन से आवेश में आकर उन्होंने अपने उन्तीस विवाहों की रोमांचक कथाओं का सविस्तर आख्यान कर डाला। यही इस कथाग्रन्थ का शरीर स्थानीय मुख्य भाग है।

इस कथाग्रन्थ का एक दूसरा खण्ड धर्मदासगणिद्वारा निबद्ध किया गया है जो मध्यम खण्ड के नाम से सुविदित है। इसकी रचना मूल ग्रन्थ की रचना के दो शतक पश्चात् की गयी है और यह अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है। धर्मदासगणि के अनुसार वसुदेव ने एक सौ विवाह किये थे जिनमें से संघदासगणि ने विस्तरभय से केवल उनके उनतीस विवाहों का ही वर्णन किया था। अतः उनके अवशिष्ट इकहत्तर विवाहों की कथाएँ यहाँ निवद्ध की गयीं हैं। ये कथाएँ मूल ग्रन्थ की समाप्ति के बाद प्रारम्भ न होकर उसकी अट्ठारहवीं कथा के बाद प्रारम्भ होती हैं जिससे धर्मदासगणि की यह रचना मूल ग्रन्थ के मध्य में अनुप्रविष्ट होने के कारण मध्यम खण्ड कहलाती है। 'मज्झिम खण्ड' के नाम से परिचित इस की पाण्डुलिपि लालभाई दलपतभाई प्राच्यविद्या शोधसंस्थान, अहमदाबाद में सुरक्षित है।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् आल्सडोर्फ के अनुसार "वसुदेव हिण्डी गुणाढ्य की बृहत्कथा का प्राकृत-पर्याय है।" ईसा की तीसरी सदी के काल-खण्ड में संयुक्त लेखकत्व के अधीन महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में रचित यह कथाग्रन्थ विश्वकथा-साहित्य में उल्लेखनीय स्थान रखता है। रोमाञ्चकारी साहसिक क्रियाकलाप, रहस्यमय वातावरण, उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित प्रेम की पावनता, रणाङ्गण की भीषणता, कूटनीति की कुटिल वीथियों तथा यौवनजनित कामराग के उन्मादपूर्ण आवेश के वैविध्यपूर्ण चित्रणों से मनोहर यह ग्रन्थ जैन-धर्म की आधारभूत भावनाओं से अधिवासित है, अनुप्राणित है।

(ग) बृहत्कथामञ्जरी

काश्मीर-नरेश अनन्त के प्रतिष्ठित आस्थान-विद्वान् क्षेमेन्द्र-द्वारा गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार पर ईसा की ग्यारहवीं सदी की मध्यावधि में बृहत्कथामञ्जरी नामक पद्यबद्ध कथाग्रन्थ की रचना की गयी। इसे बृहत्कथा की 'काश्मीरी वाचना' कहा जाता है। इसकी कथावस्तु अट्ठारह लम्बकों (अध्यायों) में विभक्त है। मूलकथा के संक्षेपीकरण के प्रयास में मूलांश का परित्याग तथा कथाक्रम के पौर्वापर्य में परिवर्त्तन के फलस्वरूप उत्पन्न अस्पष्टता और निर्जीवता की क्षतिपूर्ति क्षेमेन्द्र ने अपनी आलङ्कारिक भाषा के द्वारा की है। यहाँ मूलकथा के साथ पच्चीस वेतालों की भी कथाओं का संयोजन किया गया है, जो स्वाभाविक न होकर बलात् आरोपित प्रतीत होता है। फिर भी उनके आख्यान-शिल्प में वास्तविकता के साथ काव्यकला की दीप्ति दृष्टिगोचर होती है। रामायण और महाभारत के विपुलायतन कथासंभार को रामायण-मञ्जरी एवं महाभारतमञ्री के रूप में प्रस्तुत करने के अनन्तर क्षेमेन्द्र ने गुणाढ्य की बृहत्कथा में निबद्ध कथाओं को बृहत्कथामञ्जरी के अभिनव नेपथ्य में प्रस्तुत कर भारतीय परम्परा में 'मञ्जरीकार' के रूप में प्रसिद्धि अर्जित की है। बृहत्कथामञ्जरी के अन्तर्गत विद्यमान विभिन्न लम्बकों के नाम तथा उनमें विन्यस्त प्रमुख कथाशीर्षक अधोलिखित हैं :-

१. प्रथम लम्बक-कथापीठ (गुणाढ्य का परिचय)
२. द्वितीय लम्बक-कथामुख (उदयन-कथा)
३. तृतीय लम्बक-लावाणक (वासवदत्ता का अग्निकाण्ड में निधन)
४. चतुर्थ लम्बक-नरवाहन-जन्म (उदयन को नरवाहन नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति जो भविष्य में विद्याधरों का चक्रवर्तित्व प्राप्त करेगा)
५. पञ्चम लम्बक-चतुर्दारिका (शक्तिवेग नामक विद्याधर द्वारा आत्मवृत्तकथन के क्रम में चार कन्याओं की प्राप्ति का वर्णन)
६. षण्ठ लम्बक-सूर्यप्रभ (सूर्यप्रभ द्वारा एक सामान्य राजा के पद से ऊपर उठकर सम्राट् पद की प्राप्ति के उपाख्यान का वर्णन)
७. सप्तम लम्बक-मदनमञ्चुका (नरवाहनदत्त का मदनमञ्चुका के साथ विवाह की कथा)
८. अष्टम लम्बक-वेला (मानसवेग नामक विद्याधर द्वारा मदनमञ्चुका का अपहरण)
९. नवम लम्बक-शशाङ्कवती (मदनमञ्चुका के वियोग से उदास नरवाहनदत्त के सान्त्वनार्थ एक मुनि द्वारा शशांकवती के उपाख्यान का कथन)
१०. दशम लम्बक-विषमशील (टेण्टाकराल, खण्ड कापालिक, यक्षिणींसमागम, कन्याचतुष्टय-प्राप्ति तथा मूलदेव प्रभृति की कथाएँ)
११. एकादश लम्बक-मदिरावती (नरवाहन के प्रति द्विजपुत्र द्वारा मदिरावती की प्राप्ति के उपाख्यान का कथन)

१२. द्वादश लम्बक-पद्मावती (गोमुख द्वारा नरवाहन के प्रति विद्याधरेश्वर मुक्ताफलकेतु और पद्मावती की कथा का आख्यान)
१३. त्रयोदश लम्बक-पञ्च (नरवाहन द्वारा पाँच विद्याधर-कन्याओं के साथ विवाह)
१४. चतुर्दश लम्बक-रत्नप्रभा (नरवाहन द्वारा रत्नप्रभा के साथ विवाह, कर्पूरद्वीप की यात्रा और वायुयान द्वारा प्रत्यावर्त्तन)
१५. पञ्चदश लम्बक-अलङ्कारवती (नरवाहन द्वारा अलङ्कारवती से विवाह, श्वेतद्वीप की यात्रा तथा यहाँ भगवान् श्रीनारायण का दर्शन एवं स्तवन)
१६. षोडश लम्बक-शक्तियशः (नरवाहन द्वारा शक्तियशस् नामक कन्याकी प्राप्ति)
१७. सप्तदश लम्बक-महाभिषेक (नरवाहन द्वारा मन्दरदेव का पराजय, पाँच कुमारियों के साथ विवाह तथा उसका महाभिषेक)
१८. अष्टादश लम्बक-सुरतमञ्जरी (अवन्तिवर्धन का सुरतमञ्जरी से विवाह)

इस प्रकार, भगवान् शङ्कर द्वारा अट्ठारह लम्बकों में वर्णित जिस कथा को पुष्पदन्तनामक गण के मुख से सुनकर काणभूति ने गुणाढ्य के समक्ष प्रस्तुत किया था उसका संस्कृत पद्यबद्ध आख्यान गुणाढ्य-रचित बृहत्कथा के आधार पर क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में प्राप्त होता है।

क्षेमेन्द्र के भाषाशिल्प एवं वर्णन कौशल से परिचित होने के लिए निम्नाङ्कित कतिपय उद्धरण अवलोकनीय हैं :-

**अस्ति विद्याधरवधूविलासहसितद्युतिः।**
**जाह्नवीनिर्झरोष्णीषः शर्वाणीजनको गिरिः।।**
**यस्याश्मकूटसङ्घट्टविशीर्णपतनोत्थिताः।**
**मुहूर्त्तं तारकायन्ते व्योम्नि गङ्गाम्बुराशयः।।**
**फेनहासविलासिन्यः फुल्लत्कुवलयेक्षणाः।**
**विभान्ति कटके यस्य तरङ्गिण्यो महीभृतः।।** (१.२.६-११)

"विद्याधर-गण की वधुओं के विलासपूर्ण हास के समान समुज्ज्वल तथा गङ्गा के निर्झर रूपी उष्णीष से विभूषित हिमालय पर्वत को जगज्जननी पार्वती के पिता होने का गौरव प्राप्त है। जिसके शिला-समूह के ऊपर वेग से टकराकर बिखरी हुई गङ्गा के प्रवाह से उछल कर ऊपर की ओर उड़े सलिल-सीकर पलभर के लिए आकाश में नक्षत्र-पुञ्ज की भाँति दीख पड़ते हैं। फेन रूपी नयनोंवाली नदियाँ जिस पर्वत के मध्यभाग में शोभायमान हुआ करतीं हैं।"

अत्रान्तरे जलनिधिं प्रविष्टे वासरेश्वरे।
बभूव रागिणी सन्ध्या नलिनीवनशालिनी।।
तिमिरैरञ्जनश्यामैः श्यामावदनकुन्तलैः।
चक्रवाकीवियोगाग्निधूमाभैरुत्थितं ततः।।
नीलाम्बुजैरिवोत्सृष्टं भ्रमरैरिव मूर्च्छितम्।
नीकण्ठैरिवोद्गीर्णं चचार सुचिरं तमः।।
अथादृश्यत चण्डीशजटामण्डलमण्डनम्।
श्यामाकर्पूरतिलको रोहिणीरमणःशशी।। (६.२.८२८-८३२)

इसी समय सूर्य के पश्चिम-पयोधि में प्रविष्ट हो जाने पर मुद्रित कमलिनी-वनों से शोभित सन्ध्या रागरञ्जित हो गयी। उसके बाद काजल के समान श्यामवर्ण, रात्रि रूपी सुन्दरी के मुख पर लोटने वाले कुन्तल-स्वरूप तथा चकवी के वियोगानल से उत्थित धूमराशि की भाँति अन्धकार उदित हुआ। नीलोत्पल, भ्रमर तथा मयूरवृन्द से ही मानो निर्गत अन्धकार चारों ओर फैल चला। इसके बाद भगवान् शंकर के जटामण्डल का आभूषण स्वरूप तथा रात्रि-वनिता के भाल का कर्पूरतिलक चन्द्रमा दीख पड़ा। और, इसके बाद, तड़-तड़-तड़ाक् की कठोर ध्वनि के साथ पोत के सारे बन्धन टूट गये, पोत भी टूट गया और उसके साथ ही सारे सांयात्रिकों के हृदय भी टूट गये।''

क्षेमेन्द्र की स्वाभाविक आसक्ति है अलङ्कृत वाक्याविन्यास में और वे वर्ण्यविषय को पल्लवित करने में अपनी रुचि का अनुगमन करते हैं। प्रस्तुत उद्धरण उनकी वाचिक भङ्गिमा, नेपथ्यसज्जा तथा सम्प्रेषण-शिल्प के प्रशंसनीय निदर्शन हैं।

### (घ) कथासरित्सागर

कश्मीर के निवासी सोमदेव द्वारा बृहत्कथा पर आधृत कथासरित्सागर नामक पद्यबद्ध संस्कृत कथाग्रन्थ की रचना १०६३ ई. से लेकर १०८१ ई. की मध्यावधि में की गयी। इसे बृहत्कथा की द्वितीय 'काश्मीरी वाचना' कहा जाता है। इसकी रचना ग्रन्थकार ने कश्मीर-नरेश अनन्त की रानी सूर्यमती के मनोरञ्जन के उद्देश्य से किया था। यह बृहत्कथा की अन्तिम वाचना है। सम्पूर्ण ग्रन्थ १८ लम्बकों में विभक्त है जिनके अन्तर्गत १२४ तरङ्ग हैं। इसके समग्र श्लोकों की सङ्ख्या २१,३८८ है।

सोमदेव ने कथा के प्रारम्भ में प्रस्तुत ग्रन्थ की वस्तु-योजना के सम्बन्ध में विनम्रतापूर्वक सूचित किया है-''यह ग्रन्थ मूलग्रन्थ के सर्वथा अनुरूप है और इसमें लेशमात्र भी व्यतिक्रम नहीं है। मूलग्रन्थ में वर्णित कथाओं को यहाँ संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूल भाषा पैशाची के स्थान पर संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है। अपने सामर्थ्य के अनुसार औचित्य एवं अन्वय-कथाओं के पारस्परिक सम्बन्ध-की मैंने रक्षा की है। यहाँ काव्य-सौष्ठव के उतने ही अंश की योजना की गयी है, जितने से कथारस के आस्वाद में

अवरोध न उत्पन्न हो जाय। इस ग्रन्थ की रचना मैंने विदग्धता की ख्याति प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं की है, प्रत्युत मूल ग्रन्थ की अनेकानेक कथाओं के समूह को स्मृति में संजोकर रखने के लिए की है।"

यथामूलं तथैवैतन्न मनागप्यतिक्रमः।
ग्रन्थविस्तरसंक्षेपमात्रं भाषा च भिद्यते।।
औचित्यान्वयरक्षा च यथाशक्ति विधीयते।
कथारसाविघातेन काव्यांशस्य च योजना।।।
वैदग्ध्यख्यातिलोभाय मम नैवायमुद्यमः।
किन्तु नानाकथाजालस्मृतिसौकर्यसिद्धये।। (१.१.१०-१२)

ग्रन्थकार ने इसके अनन्तर कथावस्तु के विभाजन का क्रम एवं कथ्य का परिचय इस प्रकार दिया है :-

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम लम्बक | - | कथापीठ |
| द्वितीय लम्बक | - | कथामुख |
| तृतीय लम्बक | - | लावाणक |
| चतुर्थ लम्बक | - | नरवाहनदत्त की गाथा |
| पञ्चम लम्बक | - | चतुर्दारिका |
| षष्ठ लम्बक | - | मदनमञ्चुका |
| सप्तम लम्बक | - | रत्नप्रभा |
| अष्टम लम्बक | - | सूर्यप्रभा |
| नवम लम्बक | - | अलङ्कारवती |
| दशम लम्बक | - | शक्तियशाः |
| एकादश लम्बक | - | वेला |
| द्वादश लम्बक | - | शशाङ्कवती |
| त्रयोदश लम्बक | - | मदिरावती |
| चतुर्दश लम्बक | - | पञ्च |
| पञ्चदश लम्बक | - | महाभिषेक |
| षोडश लम्बक | - | सुरतमञ्जरी |
| सप्तदश लम्बक | - | पद्मावती |
| अष्टादश लम्बक | - | विषमशीला |

आद्यमत्र कथापीठं कथामुखमतः परम्।
ततो लावानको नाम तृतीयो लम्बको भवेत्।।
नरवाहनदत्तस्य जननञ्च ततः परम्।
स्याच्चतुर्दारिकाख्यश्च ततो मदनमञ्चुका।।
ततो रत्नप्रभानाम लम्बकः सप्तमो भवेत्।
सूर्यप्रभाभिधानश्च लम्बकः स्यादथाष्टमः।।
अलङ्कारवतीत्यपि चाथ ततःशक्तियशा भवेत्।
वेलालम्बकसञ्जश्च भवेदेकादशस्ततः।
शशाङ्कवत्यपि तथा ततःस्यान्मदिरावती।।
महाभिषेकानुगतस्ततः स्यात्पञ्चलम्बकः।
ततः सुरतमञ्जर्यप्यथ पद्मावती भवेत्।।
ततो विषमशीलाख्यो लम्बकोऽष्टादशो भवेत्।। ?

इस प्रकार ग्रन्थ के स्वरूपगत, शैलीगत एवं वस्तुगत विशेषताओं के विश्लेषण के अनन्तर सोमदेव ने इसका प्रारम्भ करते हुए कहा है-एक समय भगवान् शङ्कर ने पार्वती के अनुरोध पर उन्हें सात विद्याधर-चक्रवर्तियो की अश्रुतपूर्व कथाएँ कह सुनायीं। संयोगवश उस कथा के गुप्त रूप से वहाँ उपस्थित पुष्पदन्त नामक गण ने सुन लिया और अपनी पत्नी जया को घर जाकर कह सुनाया। उसने भी उसे अपनी सखियों से कहा और इस प्रकार वह कथा घूम-फिर कर जब पार्वती जी के कानों में आयी तब उन्होंने पुष्पदन्त को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया और जब उसके भाई माल्यवान् ने पुष्पदन्त की ओर से उनसे क्षमा-याचना की तो उसे भी पार्वती जी ने रोषवश वही शाप दे दिया। पुष्पदन्त की पत्नी जया पार्वतीजी की सेविका थी। अपने पति को शापग्रस्त जान कर वह बहुत ही दुःखी रहने लगी। अपनी सेविका को इस प्रकार दुःखी पाकर पार्वती जी ने दयावश शाप के अवसान का उल्लेख करते हुए कहा- "जन्मान्तर की स्मृति से सम्पन्न पुष्पदन्त जब विन्ध्याचल पर अवस्थित काणभूति नामक पिशाच को ये कथाएँ सुना चुकेगा, तब उसके शाप की समाप्ति होगी। तत्पश्चात् माल्यवान् जब इन कथाओं को लोक में प्रचारित कर चुकेगा तब उसके भी शाप का अन्त हो जायगा।"

शाप के प्रभाव से कौशाम्बी में कात्यायन-वररुचि के नाम से विख्यात होकर पुष्पदन्त ने जन्मग्रहण किया। वह अपने समय का एक प्रख्यात वैयाकरण था और नन्द-वंश के अन्तिम सम्राट् योगानन्द का अमात्य था। अपने जीवन के शेष भाग में वानप्रस्थ ग्रहण कर जब वह विन्ध्याचल में भगवती विन्ध्यवासिनी के दर्शन हेतु जा रहा था, तब उसे वहाँ काणभूति मिला। जन्मान्तर की स्मृति के जागरित हो जाने पर उसने उसे वे सात बृहत्कथाएँ कह सुनायी और शापमुक्त हो स्वर्गगामी हुआ।

इधर, उसके भाई माल्यवान् ने भी प्रतिष्ठानपुर में गुणाढ्य के नाम से जन्म-ग्रहण किया और वहाँ के नरेश सातवाहन के अमात्यपद पर आसीन हुआ। उसके दो शिष्य थे जिनके नाम क्रमशः गुणदेव और नन्दिदेव थे। उनके साथ गुणाढ्य काणभूति के पास आकर उससे पिशाच-भाषा में रचित सात बृहत्कथाएँ उपलब्ध कीं। गुणाढ्य ने उन्हे सात लाख श्लोकों में अपने शोणितसे लेखबद्ध किया और अपने शिष्यों के द्वारा उन्हें राजा सातवाहन के समीप इस आशय से भिजवाया कि राजा उनका आदर करेगा, परन्तु पैशाची भाषा में निबद्ध होने के कारण उसने उन्हें तिरस्कृत कर दिया। इस घटना से गुणाढ्य ने हताश होकर बृहत्कथा के छह लाख श्लोकों से युक्त छह भागों को अग्निसात् कर दिया। जब राजा सातवाहन को इसकी सूचना मिली तब गुणाढ्य के पास जाकर उससे प्रार्थनापूर्वक अवशिष्ट कथाभाग को उसने प्राप्त किया और गुणदेव और नन्दिदेव से उसका अध्ययन कर कथोत्पत्ति-वर्णन-परक कथामुख का भाग स्वयं निबद्ध किया।

वस्तुतः, कथासरित्सागर की रचना कर सोमदेव ने संस्कृत साहित्य के आकाश में एक ऐसे भास्वर प्रकाशस्तम्भ की स्थापना की है, जिसकी रश्मियाँ शताब्दियों के आवर्त्तन-विवर्त्तन से उद्वेलित काव्य के तरङ्गों पर समान रूप से प्रकाश-पुञ्ज को बिखेरती आ रही है। सोमदेव की विलक्षण प्रतिभा कथासरित्सागर की प्रत्येक कथा में असाधारण रूप से प्रतिबिम्बित दीख पड़ती है। भारत के अतीत की छायातप से शबलित संस्कृति अपनी चारुता, विलक्षणता, साहसिकता तथा समग्रता के साथ इस महनीय ग्रन्थ में गुम्फित कथाओं में आश्चर्यजनक रूप से रूपायित हो उठी है। यद्यपि यह ग्रन्थ कथाप्रधान है, तथापि इसमें काव्योचित सौन्दर्य के अनल्प स्थल प्राप्त होते हैं। अद्भुत तत्त्व इस रचना का प्राण है और प्रसाद-गुण तो इसके प्रत्येक श्लोक में व्याप्त है। ग्रन्थकार के भाषा-शिल्प का सौन्दर्य एक से एक सुन्दर उत्प्रेक्षा की योजना से भास्वर हो उठा है। इस प्रसङ्ग में निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है :-

**तस्य दक्षिणतो गत्वा तरुषण्डं व्यलोकयम्।**
**सधूममिव तापिच्छैः साङ्गारमिव किंशुकैः।।**
**सज्वालमिव चोत्फुल्ललोहिताशोकवल्लिभिः।**
**हरनेत्रानलप्लुष्टं देहं रतिपतेरिव।।** (१३/१/९०-९१)

"उसके दक्षिण की ओर जाकर मैंने वृक्षों का समूह देखा। वह श्यामल तापिच्छ-पल्लवों से मानो धूमाच्छन्न था, विकसित किंशुक-कुसुमों से मानो प्रज्वलित अङ्गारों से दीप्त था, उत्फुल्ल रक्ताशोक की लताओं से मानो ज्वालामय हो रहा था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो शिव के तृतीय नेत्र की ज्वाला से दग्ध कामदेव का शरीर हो।"

एक विरहविधुर युवा की विषम मनोदशा के वर्णन के क्रम में रूपक अलङ्कार का निम्नाङ्कित उद्धरण में किया गया विन्यास द्रष्टव्य है :-

**चन्द्रोऽग्निर्विषमाहारो गीतानि श्रुतिसूचयः।**
**उद्यानं बन्धनं पौष्पी माला दिग्धा शरावली।।**
**ज्वलिताङ्गारवर्षञ्च चन्दनाद्युपलेनम्** (१३.१.७५-७६)

मेरे लिए चन्द्रमा अग्नि है, आहार विष है, गीत कानों को बेधने वाली सूई है, उद्यान बन्धन है, फूलों की माला विष से लिप्त बाणों का समूह है और चन्दन-प्रभृति शीतल उपकरणों का लेप प्रज्वलित अङ्गारों की वृष्टि है।''

कथानायक नरवाहनदत्त की विरह विषम अवस्था के वर्णन से सम्बद्ध निम्नाङ्कित सन्दर्भ सोमदेव के सरस उक्ति शिल्प का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करता है :-

**बिभेद तस्य मृदुरप्याततद्भिः शिलीमुखैः।**
**स्मर-चाप-लतेवात्र हृदयं चूतमञ्जरी।।**
**ततोऽलिकुलझाङ्कारमुखरैस्तैः स काननैः।**
**निष्कास्यमान इव तं प्रदेशं शनकैर्जहौ।।** (१३.१.६-९)

''कामदेव के लचीले धनुष के समान टूट पड़ते भौंरों से युक्त आम्रमञ्जरी ने भी उसके हृदय को विदीर्ण कर डाला। और, इसके बाद, भ्रमर-समूह के झङ्कार से मुखर उस वन-प्रदेश के द्वारा मानो निर्वासित कर दिये जाने के कारण ही उसने चुपचाप धीरे-धीरे उस सुरम्य प्रदेश को छोड़ दिया।''

इस संसार में लक्ष्मीपात्र मूर्खों का अभाव नही है और न उन्हें अपने वञ्चना-पाश में आबद्ध कर जीविकोपार्जन करनेवाले ठगों का ही अभाव है। वञ्चकजन सदा से ही अपने चातुर्य से ऐसे व्यक्तियों को प्रताडित कर अपनी जीविका का उपार्जन करते आये हैं। सोमदेव की दृष्टि इस चिरन्तन सांसारिक रीति पर भी पड़ी थी और उन्होंने ऐसे वञ्चकों के वञ्चनाकौशल का यथास्थान वर्णन किया है। इस प्रसङ्ग में एक धनी व्यक्ति की मूर्खता का हास्योद्भावक प्रसङ्ग निम्नाङ्कित उद्धरण में दर्शनीय है :-

**तद्दृष्ट्वाप्यविमर्शः सन् वैद्यं केशार्थमौषधम्।**
**तं ययाचे स जडधीस्ततो वैद्योऽब्रवीत्स तम्।।**
**खल्वाटः स्वयमन्यस्य जनयेयं कथं कचान्।**
**इति ते मूर्ख! निर्लोम दर्शितं स्वशिरो मया।।**
**तथापि त्वं न वेत्स्येव धिगित्युक्त्वा ययौ भिषक्।**
**एवं देव! सदा धूर्त्ताः क्रीडन्ति जडबुद्धिभिः।।** (१०.५.१८०-१८७)

''इस पर भी उस मूर्ख धनी व्यक्ति ने उससे बाल जमाने के लिए दवा मांगी। इसलिए तो मैंने पगड़ी उतार कर अपना गंजा सिर तुझे दिखलाया। पर, तू ऐसा मूर्ख है कि इतने से भी समझ नहीं ही पाया। धिक्कार है तुझे। ऐसा कहकर वह ठग वैद्य वहाँ से चला गया। राजन्! इसी प्रकार धूर्त व्यक्ति जडबुद्धिवालों के साथ खेला करते हैं।''

सोमदेव की कथाशैली में प्रवाह है, रोचकता है और सब से अधिक मात्रा में विद्यमान है कौतूहलतत्त्व जो पाठकों को बरबस एक कथा के सुरम्य द्वीप से अन्य कथा के सुरम्य द्वीप की ओर खींच ले चलता है। पाश्चात्त्य विद्वान् सी.एच. टॉनी द्वारा अंग्रेजी में प्रशंसनीय रूप से अनूदित कथासरित्सागर की प्रस्तावना में भारतीय कथा-साहित्य के मर्मज्ञ मनीषी पैन्जर ने जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं वे इस प्रसङ्ग में नितान्त महत्त्पूर्ण होने के कारण यहाँ उद्‌धृत किये जाते हैः-

''जब हम इस ग्रन्थ को देखते हैं, तब इसमें आई हुई हर प्रकार की कथाओं को देखकर मन आश्चर्य से भर जाता है। ईसवी-सन् से सैकड़ों वर्ष पहले की जीवजन्तु-कथाएँ इसमें हैं। द्युलोक और पृथिवी के निर्माण-सम्बन्धी ऋग्वेदकालीन कथाएँ भी यहाँ हैं। उसी प्रकार रक्तपान करनेवाले वेतालों की कहानियाँ, सुन्दर काव्यमयी प्रेम-कहानियाँ और देवता, मनुष्य एवं असुरों के युद्धों की कहानियाँ भी इसी सङ्ग्रह में हैं। यह न भूलना चाहिए कि भारतवर्ष कथा-साहित्य की सच्ची भूमि है, जो इस विषय में ईरान और अरब से बढ़-चढ़कर है। भारत के इतिहास की कथा भी तो उसी प्रकार की एक कहानी है। इसका अतिशयोक्तिपूर्ण रूप इन आख्यानों से कम रोचक नहीं हैं"।

''इन कहानियों का सङ्ग्रह करनेवाला लेखक सोमदेव विलक्षण प्रतिभाशाली पुरुष था। कवियों में उसकी प्रतिभा कालिदास से दूसरे स्थान पर आती है। स्पष्ट, रोचक और मन को खींच लेनेवाले ढंग से कहानी कहने की उसमें वैसी ही अद्‌भुत शक्ति थी, जैसी कहानियों के विषयों की व्यापकता और विभिन्नता है। मानवी प्रकृति का परिचय, भाषा-शैली की सरलता, वर्णन का सौन्दर्य और शक्ति एवं चातुर्य-भरी उक्तियाँ, इन सबकी रचना अत्यन्त प्रभावपूर्ण है।''

"कथासरित्सागर के रूप में कल्पना ने एक ऐसे महान् कथासागर की सृष्टि की है कि उसमें अद्‌भुत कन्याओं और उनके साहसी प्रेमियों, राजाओं और नगरों, राजतन्त्र एवं षड्‌यन्त्र, जादू और टोने, छल और कपट, हत्या और युद्ध, रक्तपायी वेताल, पिशाच, यक्ष और प्रेत, पशु-पक्षियों की सच्ची और गढ़ी हुई कहानियाँ एवं भिखमंगे, साधु, पियक्कड़, जुआरी, वेश्या, विट और कुट्टनी इन सभी की कहानियाँ एकत्र हो गई हैं। ऐसा यह कथासरित्सागर भारतीय कल्पना-जगत् का दर्पण है, जिसे सोमदेव भविष्य की पीढियों के लिए छोड़ गए हैं।''

इसी सन्दर्भ में कथासरित्सागर के संरचना-शिल्प से सम्बद्ध ए.बी. कीथ महाशय के भी निम्नोद्धृत समीक्षामूलक मन्तव्य ध्यातव्य हैं :-

"प्रयत्न करने पर भी सोमदेव एक सुसंघटित ग्रन्थ की रचना करने में सफल नहीं हुए, परन्तु कथासरित्-सागर के उत्कर्ष का आधार उसके वस्तुकी संघटना पर नहीं है। उसका आधार इस दृढ वस्तुस्थिति पर है कि सोमदेव ने सरल और अकृत्रिम रहते हुए आकर्षक और सुन्दर रूप से ऐसी कथाओं की बड़ी भारी सङ्ख्या को प्रस्तुत किया है जो नितरां विभिन्न रूपों में-मनोविनोदकारी अथवा भयानक, अथवा प्रेम प्रसङ्ग से सम्बद्ध, अथवा जल और स्थल के अद्भुत दृश्यों के प्रति हममें अनुराग उत्पन्न करने के लिए आकर्षक, अथवा बाल्यकाल की परिचित कहानियों का सादृश्य उपस्थित करने वाले रूपों में-हमारे लिए अतीव रुचिकर है। क्षेमेन्द्र की बृहत्-कथामञ्जरी में कहीं अत्यधिक सङ्क्षेप और कहीं अस्पष्टता के कारण कथाओं का सारा आकर्षण और रोचकता ही नष्ट हो जाती है। ठीक इसके विपरीत पञ्चतन्त्र के लेखक की तरह सोमदेव प्रतिभा के धनी हैं। वे पाठक के मन को क्लान्त किये बिना सावधानी से अभीष्ट अर्थ का प्रकाशन कर सकते हैं जिससे उनके द्वारा वर्णित कथाओं का रुचिकर रूप कभी भी क्षीण नहीं हो पाता है।"

सोमदेव ने कथासरित्सागर के ७५वें तरङ्ग से लेकर ९९वें तरङ्ग तक पच्चीस वेतालों की कथाएँ निबद्ध की हैं जो वेतालपञ्चविंशतिका के नाम से प्रख्यात हैं। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में भी शशाङ्कवती नामक लम्बक के द्वितीय गुच्छ के अन्तर्गत पच्चीस वेतालों की कथाएँ प्राप्त होतीं हैं। इन कथाओं के मूल स्रोत के सम्बन्ध के विषय में हर्टेल और एजर्टन का अभिमत है कि गुणाढ्य रचित बृहत्कथा में वेतालपञ्चविंशतिका नहीं थी। नरवाहनदत्त की कथा के साथ उसका कोई सम्बन्ध स्थापित न किये जा सकने के कारण विद्वानों का अनुमान है कि समसामयिक लोकप्रियता और कौतुहलक्षमता के कारण क्षेमेन्द्र और सोमदेव दोनों को ही उसका अपने-अपने ग्रन्थों में समावेश करने का आवेश रहा हो।

इन वेताल कथाओं के अतिरिक्त पञ्चतन्त्र की भी बहुत सी कहानियाँ यहाँ उपलब्ध होती हैं। इनका क्रम वही है जो पञ्चतन्त्र की कहानियों का है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार इनमें से आधी कहानियाँ ४५० ई. से पूर्वकाल में रचित एक ऐसे सङ्ग्रह में विद्यमान थीं, जिसका उपयोग आर्यसेनसङ्घ नामक एक भिक्षु ने अपने ग्रन्थ में किया था। उक्त ग्रन्थ का चीनी अनुवाद उसके शिष्य गुणवृद्धि ने ४९२ ई. में किया था।

प्राचीन भारतीय जनमानस पर गुणाढ्यरचित बृहत्कथा में गुम्फित कथाओं का अमिट प्रभाव छाया हुआ था। प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक नगर में कथाकोविद वृद्धों को घेरकर बैठ जाया करती थी उत्सुकता से परिपूर्ण कथारसिक श्रोताओं की मण्डली, जिसमें इन कथाओं का आख्यान किया जाता था। कालिदास, बाण, सुबन्धु, दण्डी, उद्योतन सूरि, धनिक एवं गोवर्धन प्रभृति सरस्वती के असाधारण कृपापात्रों ने जिस कथाग्रन्थ की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा

की थी, वह कथाग्रन्थ आज काल की वेगवती अगाध-धारा के गर्भ में विलीन हो चुका है। उस महनीय कथाकाव्य की मनोरम प्रतिध्वनि सोमदेव के कथासरित्सागर में आज भी सुनी जा सकती है और यही है प्रमुख कारण जो इस ग्रन्थ को हमारे लिए अनुपेक्षणीय महत्त्व का ग्रन्थ प्रमाणित करता है।

## वेतालपञ्चविंशतिका

वेतालपञ्चविंशतिका के अन्तर्गत राजा त्रिविक्रमसेन जिसे परवर्त्ती साहित्यकारों ने विक्रमादित्य से समीकृत किया है, के बौद्धिक उत्कर्ष से दीप्त पच्चीस कहानियाँ निबद्ध की गई हैं। इन कहानियों का आख्याता एक शवशरीर में अधिष्ठित वेताल है, जो विविध जटिल प्रश्नों से पूर्ण कहानियाँ राजा को सुनाता है और उनका समुचित उत्तर पाते ही पुनः अपने पुराने आश्रय-वृक्ष पर जा लटकता है। इन कथाओं का सर्वप्रथम वर्णन क्षेमेन्द्र रचित बृहत्कथा-मञ्जरी में तथा तत्पश्चात् सोमदेव-प्रणीत कथा सरित्-सागर में प्राप्त होता है। ये वेताल-कथाएँ असन्दिग्ध रूप से भारत के चिरन्तन कथा-साहित्य की लोकप्रिय प्रकृति का निदर्शन प्रस्तुत करती हैं।

वेतालपञ्चविंशतिका के नाम से सम्प्रति प्रचलित ग्रन्थों के कई संस्करण प्राप्त होते हैं, जिनमें शिवदास-रचित संस्करण के अन्तर्गत गद्य और पद्य का समिश्रण देखा जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस ग्रन्थ का मूलरूप पद्यबद्ध ही रहा होगा। एक अज्ञातकर्तृक संस्करण केवल गद्यात्मक रूप में उपलब्ध होता है, जिसकी रचना क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी में वर्णित वेताल-कथाओं के आधार पर की गई है। जम्भलदत्तरचित इसके एक परवर्त्ती संस्करण में पद्यबद्ध नीतिपरक अंश उपलब्ध नहीं होते हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत वेताल-कथाओं का आधार वल्लभदास-रचित एक संक्षिप्त ग्रन्थ है जिसका रूपान्तर मंगोल-भाषा में भी उपलब्ध होता है। वेतालपञ्चविंशतिका के आमुख और उपसंहार की संरचना इस प्रकार है :-

राजा त्रिविक्रमसेन को एक भिक्षु प्रतिदिन एक फल दिया करता था जिसे वे कोषाध्यक्ष को दे देते थे। यह क्रम दस वर्षों तक चलता रहा। एक दिन राजा को यह बात संयोगवश ज्ञात हो गयी कि प्रत्येक फल में एक-एक रत्न निहित रहा करता है। कोषाध्यक्ष से पता लगाने पर बात सच निकली। राजा का हृदय उस भिक्षु की इस असाधारण राजभक्ति को देखकर उसकी ओर आकृष्ट हो गया। एक दिन राजा के द्वारा इस मूल्यवान् भेंट का कारण पूछे जाने पर वह भिक्षु राजा को एकान्त में ले गया और कहने लगा कि मुझे एक मन्त्र की साधना करनी है जिसमें किसी वीर पुरुष की सहायता अपेक्षित है। मैं आपसे उक्त कार्य में सहायता की प्रार्थना करता हूँ। आगामी कृष्णचतुर्दशी को महाश्मशान में वटवृक्ष के नीचे मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा। यह सुनकर राजा ने कहा कि ठीक है, मैं आऊँगा।

और, जब कृष्णचतुर्दशी की रात आई तब राजा त्रिविक्रमसेन अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कर उस भिक्षु की साधना में सहायता करने के लिए हाथ में तलवार लेकर अपनी राजधानी से, अलक्षित रूप में, महाश्मशान की ओर निकल पड़े। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि चारों ओर भयङ्कर सघन अन्धकार छाया हुआ है। अनेक चिताएँ वहाँ जल रही थीं, जिनकी काँपती ज्वालाएँ बहुत ही भयानक दिख रहीं थीं। सर्वत्र असंख्य नरकंकाल, खोपड़ियाँ तथा हड्डियाँ फैली हुई थीं। आनन्द से उन्मत्त होकर शोर मचाते हुए भूत-वेतालों से वह स्थान परिपूर्ण था। रह-रह कर सियारों के क्रन्दन का समवेत नाद सुनाई पड़ता था, जिससे भय के मारे रोंगटे खड़े हो जाते थे। परन्तु राजा त्रिविक्रमसेन निर्भय हो कर वहाँ भिक्षु को ढूंढ़ रहे थे। कुछ दूर जाने पर एक वटवृक्ष के नीचे उन्होंने उस भिक्षु को देखा जो मण्डल के निर्माण में लगा था। उसके पास जाकर राजा ने कहा "भिक्षुक ! देखो, मैं आ गया। बोलो, अब मैं तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ ?" उसने कहा "राजन् ! आप यहाँ से दक्षिण दिशा की ओर चले जाइये। वहाँ बहुत दूर जाने पर शिंशपा का एक वृक्ष दीख पडेगा जिसकी डाल से एक मृतक का शरीर लटक रहा है। आप उसे यहाँ लाइये और मेरा कार्य पूरा कीजिए।" सत्यप्रतिज्ञ उस राजाने "ठीक है ऐसा ही होगा" यह कहकर चिता से एक जलती हुई लुकाठी उठा ली और उसके अस्फुट प्रकाश के सहारे चलते हुए भिक्षु द्वारा निर्दिष्ट शिंशपा वृक्ष के समीप आये। वहाँ, डाल से लटक रहे 'शव-शरीर' को पेड़ पर चढ़ कर राजा ने गिरा दिया। गिरने के साथ ही मानो आघात की व्यथा से वह चीत्कार कर उठा। वृक्ष से उतर कर राजा ने ज्यों ही उसके अंगों को सहलाना प्रारम्भ किया त्यों ही उस शव ने अट्टहास किया और राजा के देखते ही देखते वहाँ से लुप्त हो कर पुनः उसी वृक्ष पर वह जा लटका। यह देखकर राजा ने समझ लिया कि वह शवशरीर वेताल से अधिष्ठित है। उन्होंने पुनः साहसपूर्वक वृक्ष पर चढ़कर सावधानी से शव को उतारा और अपने कन्धे पर रक्खा। तत्पश्चात् उसे लेकर चुपचाप वे भिक्षु के पास चल पड़े। रास्ते में उस शव में अवस्थित वेताल ने राजा के मनोविनोदार्थ एक उलझन भरी कहानी उनसे कह सुनायी और अन्त में उसने कहा कि तू यदि इसका समाधान जानता है तो जल्दी कह दे अन्यथा तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे। बुद्धिमान् राजा से उसका समाधान पाकर वेताल नियमानुसार मैं पुनः उसी स्थान पर लौट चला। इसके बाद वेताल से अधिष्ठित वह शव आकाश-मार्ग से फिर वहीं जाकर वृक्ष की डाल से जा लटकता और खड्गहस्त राजा पुनः उसके· लाने के प्रयास में लग जाते। यह सिलसिला तेईस बार तक चला। अन्त में चौबीसवें बार वेताल ने जैसी उलझनभरी कहानी राजा से कह सुनायी कि उसका समाधान राजा से करते न बना। उस कहानी में कहा गया था कि कोई विपदा की मारी माँ-बेटी विन्ध्याटवी के एक सरोवर के समीपवर्त्ती वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहीं थीं। रास्ते में उनके पदचिह्न अङ्कित थे जिनमें माँ के पद-चिह्न छोटे थे और बेटी के बड़े।

आखेट के क्रम में उस रास्ते से आते हुए पिता-पुत्र ने इन पद-चिह्नों को देखकर आपस में यह निश्चय किया कि यदि इन पद-चिह्नों वाली स्त्रियाँ मिल जायें तो उनमें से बड़े पदचिह्नवाली स्त्री से पिता तथा छोटे पदचिह्न वाली स्त्री से पुत्र विवाह कर लेगा। बाद में उनका साक्षात्कार होने पर पूर्व नियमानुसार पिता ने बेटी से तथा पुत्र ने उसकी माता से विवाह कर लिया। कालक्रम से उन दोनों के सन्तानें हुईं। इतना कह कर वेताल ने प्रश्न किया कि राजन्! यदि तू जानता है तो बतला कि उन माँ-बेटियों को अपने-अपने पतियों से जो आपस में पिता-पुत्र थे- जो सन्तानें हुईं उनका आपस में कौन सा सम्बन्ध हुआ? यदि जानते हुए भी तूने नहीं बतलाया तो तेरा मस्तक शतधा खण्डित हो जायगा। राजा ने इस प्रश्न के समाधान के क्रम में बहुत सोच-विचार किया, परन्तु जब उसे कुछ भी कहते न बना तब वह हारकर निरुत्तर हो गया और चुपचाप शव को लेकर चलता रहा। राजा के मौन पर वेताल को मन ही मन हँसी आई और वह समझ गया कि राजा इस महाप्रश्न का उत्तर नहीं जानता है। राजा को, फिरभी, अनुद्विग्न भाव से चुपचाप चलता हुआ पाकर उसके धैर्य और साहस पर वेताल मुग्ध हो गया। उसने स्थिर किया कि इस महापराक्रमी राजा को इसके साहस और परोपकारिता का पुरस्कार अवश्य मिलना चाहिए। परन्तु वह भिक्षु तो बड़ा ही दुष्ट है और मेरे साथ चालाकी का खेल खेल रहा है। अतः, उस भिक्षु को उपायपूर्वक वञ्चित कर उसे प्राप्त होनेवाली सारी अलौकिक सिद्धियाँ इस राजा के लिए सुलभ कर दूँगा।

ऐसा सोचकर वेताल ने राजा से कहा कि राजन् इस भयङ्कर अंधेरी रात में महाश्मशान में बारम्बार आने-जाने के कष्ट को झेलते हुए भी तुम अपने निश्चय पर अटल रहे। तुम्हारे इस आश्चर्यजनक धैर्य को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। अब तुम इस शव को उस भिक्षु के पास ले जाओ। मैं इसके शरीर से बाहर हो जाता हूँ। और, तुम्हारे कल्याण के लिए जो मैं कहता हूँ उसे ध्यान-पूर्वक सुनो और तदनुसार कार्य करो। तुम जिस दुष्ट भिक्षु के लिए यह शव-शरीर ले आये हो वह आज की रात इस शरीर में मेरा आह्वान करके पूजन करेगा और तत्पश्चात् वह दुष्ट तुम्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करने के लिए कहेगा ताकि तुम्हारी ही बलि चढ़ा सके। अतः, तुम उससे कहना कि पहले तुम साष्टाङ्ग प्रणाम करके दिखलाओं तब मैं उसी रीति से प्रणाम करूँगा। तत्पश्चात्, धरती पर पड़कर जब वह साष्टाङ्ग प्रणाम की मुद्रा में आ जाय तब तुरन्त ही तुम तलवार से उसका सिर काट लेना। इस प्रकार विद्याधर-पद-मूलक जिस ऐश्वर्य की वह सिद्धि चाहता है वह तुम्हें प्राप्त हो जायगी। यदि तुम, ऐसा न करोगे तो वही तुम्हारी बलि चढ़ा देगा। जाओ, तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो। ऐसा कहकर वेताल शब से निकल गया और राजा ने शव को उस भिक्षु के पास लाकर रख दिया जो श्मशान में उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

राजा ने देखा कि श्मशान की भूमि को उसने शोणित से लीप रक्खा था। अस्थिचूर्ण से विविध मण्डलों की रचना की गई थी। सभी दिशाओं में शोणित से परिपूर्ण घट स्थापित

किये गये थे। मनुष्य की चरबी से भरे दीपक जल रहे थे और पास ही प्रज्वलित वह्निकुण्ड में आहुतियाँ प्रदान की जा चुकी थीं। राजा के साहस और दृढप्रतिज्ञता की प्रशंसा करते हुए उस भिक्षु ने शव को स्नान कराया, चन्दन से अनुलिप्त किया, माला पहनायी और मण्डल के भीतर रख दिया। तत्पश्चात् उसने अपने शरीर में भस्मलेपन किया, केशनिर्मित यज्ञोपवीत पहना और प्रेतवस्त्र धारण किया। फिर, ध्यानस्थ होकर मन्त्रबल से उसने शवशरीर में वेताल का आवाहन किया और विविध उपचारों से उसकी पूजा में वह संलग्न हो गया। पूजा समाप्त करने के बाद उस भिक्षु ने पास में ही खड़े राजा से कहा कि यहाँ मन्त्रों के अधीश्वर देवगण विराजमान हैं। तुम भूमि पर अधोमुख होकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करो जिससे वे प्रसन्न होकर तुम्हें अभीष्ट वर प्रदान करेंगे। उसकी इन बातों को सुनकर राजा को वेताल के कथन का स्मरण हो आया और तदनुसार उन्होंने उस भिक्षु से साष्टाङ्ग-प्रणाम की मुद्रा दिखलाने का अनुरोध यह कहकर किया कि वे साष्टाङ्ग प्रणाम की विधि नहीं जानते। उसके बाद ज्यों ही साष्टाङ्ग प्रणाम की मुद्रा में वह भिक्षु धरतीपर पड़ा त्यों ही राजा ने तलवार से उसका मस्तक काट डाला।

उसके इस कृत्य पर श्मशानवासी भूत-प्रेतों ने राजा की प्रशंसा की और शवशरीर में अधिष्ठित वेताल ने सन्तुष्ट होकर राजा से वर माँगने को कहा। इस पर राजा ने उससे कहा कि आपकी प्रसन्नता से मेरे सारे मनोरथ पूरे हो गये; फिर भी, आपके अमोघ वचन का आदर करने के लिए मैं यही वरदान माँगता हूँ कि ये पच्चीसों कथाएँ संसार में सुप्रसिद्ध और समादृत हों। राजा की इस प्रार्थना पर वेताल ने कहा कि ये पच्चीसों कथाएँ संसार में 'वेतालपञ्चविंशतिका' के नाम से सुविश्रुत होंगी तथा इनका पठन और श्रवण मङ्गल-जनक होने के साथ ही भूत-प्रेतादि-जनित बाधाओं का भी निवारक होगा। यह कहकर वह वेताल शवशरीर को छोड़ कर योगमाया की महिमा से अभीष्ट लोक चला गया।

तदनन्तर, राजा के ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर वहाँ अवतीर्ण हुए और राजा को अपराजित नामक दिव्य खड्ग प्रदान करते हुए वरदान दिया कि इसकी महिमा से तुम सभी द्वीपों को जीतकर विद्याधरों का स्वामित्व प्राप्त करोगे और चिरकाल तक दिव्य ऐश्वर्यसुख का भोग कर अन्त में मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे। इतना कह कर वे अन्तर्धान हो गये।

अब तक रात समाप्तप्राय हो चुकी थी और प्रातःकाल का प्रकाश फैलने लगा था। रात्रिकालीन सारे कृत्यों को समाप्त पाकर राजा अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर लौट आये और इस उपलक्ष्य में पुरवासियों ने नगर में महोत्सव का आयोजन किया।

इस कथासङ्ग्रह की उपर्युक्त रूपरेखा के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि इन कथाओं में उस समय की प्रचलित मान्यताएँ, विश्वास, धर्मधारणा तथा लोकरुचि का विशद प्रतिबिम्बन हुआ है। तान्त्रिक साधना एवं श्रृङ्गारिकता से अनुरञ्जित सभी कहानियाँ

विस्मय एवं कौतूहल से ओतप्रोत हैं, जिनकी परिणति वेताल के जटिल प्रश्नों तथा राजा द्वारा प्रदत्त उनके समुचित उत्तरों से होता है।

## शुकसप्तति

'शुकसप्तति' नामक कथाग्रन्थ में अपनी स्वामिनी को कुमार्ग पर चलने से विमुख करने के उद्देश्य से उसके पालतू सुग्गे द्वारा कही गई सत्तर मनोरञ्जक कहानियाँ प्राप्त होती हैं। यह दो वाचनाओं में उपलब्ध है, जिनमें प्रथम संक्षिप्त एवं अपरिष्कृत तथा द्वितीय विस्तृत एवं परिष्कृत है। इसकी दोनों ही वाचनाओं को डॉ. स्मिथ ने जर्मन भाषान्तर के साथ क्रमशः १८९३ तथा १८९९ ई. में जर्मनी के लाइपजिग नगर से प्रकाशित किया था। इसकी विस्तृत एवं परिष्कृत वाचना चिन्तामणि भट्ट की कृति के रूप में प्रसिद्ध है। डॉ. कीथ के अनुसार ऐसा सम्भाव्य है कि इसका मूलरूप सरल गद्य में निबद्ध किया गया हो, जिसके मध्य में सूक्तिपरक श्लोक रहे होंगे तथा प्रत्येक कथा के आदि और अन्त में कथावस्तु के सूचक श्लोक रहे होंगे।

इस कथाग्रन्थ के प्रारम्भ में हरदत्त नामक वणिक् के युवा पुत्र मदनसेन से हम परिचित होते हैं जो निरा मूर्ख है और अपनी युवती पत्नी के साथ अहर्निश प्रेमालाप में निमग्न रहा करता है। अपने पुत्र की इस दिनचर्या से उसका पिता हरदत्त निरन्तर चिन्तित रहा करता है। एक दिन वह अपने किसी हितैषी के परामर्श पर अपने पुत्र को एक बुद्धिमान् तोता तथा एक चतुर कौआ उपहार के रूप में दे देता है। वास्तव में ये गन्धर्व थे जो किसी कारणवश पक्षी के रूप में परिणत हो गये थे। उन दोनों पक्षियों के बुद्धिमत्तापूर्ण वार्तालाप को सुनते-सुनते वणिक्पुत्र मदनसेन सन्मार्ग का अवलम्बन कर लेता है जिससे उसके पिता को परम सन्तोष होता है।

एक बार मदनसेन कार्यवश प्रवास पर जाने को उद्यत होता है। वह अपनी अनुपस्थिति में अपनी युवती पत्नी के संरक्षण का भार उन दोनों पक्षियों पर सौंप देता है। पति की अनुपस्थिति में विरह की विषम व्यथा से विचलित होकर मदनसेन की पत्नी यौवनसुख का उपभोग करने के लिए परपुरुष का साहचर्य प्राप्त करने को उद्यत हो जाती है। यह देखकर कौआ उसे शीलभङ्ग न करने की शिक्षा देता है, परन्तु वह उसे ग्रीवाभङ्ग का भय दिखलाती है जिससे वह चुप हो जाता है। कौए की अपेक्षा तोता बुद्धिमत्ता से काम लेता है। वह मदनसेन की कामार्त्त पत्नी के विचार का अनुमोदन करता है, परन्तु साथ ही साथ यह भी कहता है कि गुणशालिनी नामक एक चातुर्यसम्पन्न युवती की भाँति उसे भी चातुर्यसम्पन्न होना चाहिये जिससे किसी विषम परिस्थिति में उलझ जाने पर वह उससे मुक्ति का मार्ग सरलता से पा सके। यह सुनकर मदनसेन की पत्नी को गुणशालिनी के चातुर्य एवं व्यवहार-कौशल के प्रति सहज ही जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है; और, तब वह

तोता उसे कहानियाँ सुनाने लगता है और उस क्रम में यह भी पूछता जाता है कि वैसी असमञ्जस स्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिये। कहानियों का यह सिलसिला तबतक चलता रहता है, जबतक उसका पति प्रवास से लौटकर नहीं आ जाता; और, इसी प्रकार तोता अपनी स्वामिनी के शील को खण्डित होने से बचा लेता है।

प्ररोचना-पूर्ण होने के कारण इन कहानियों में शृङ्गार-भावना का आवेग सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। अर्धाधिक कहानियों में स्वैराचरण के कारण दाम्पत्यप्रेम की पावनता सुरक्षित नहीं रह पायी है। धार्मिक पर्व, यज्ञ-समारोह, मन्दिरोत्सव तथा उद्यानयात्राओं के अवसरों में प्रेमी-प्रेमिका के प्रच्छन्न-समागम की सुलभता के उल्लेख के साथ गणिकाओं के प्रवञ्चनापूर्ण व्यवहार एवं दूतीचातुर्य के अनल्प उदाहरण इन कहानियों में मिलते हैं। कौतूहलमूलक रोचकता इसकी विशेषता है।

## सिंहासनद्वात्रिंशिका

'सिंहासनद्वात्रिंशिका' के अन्तर्गत भारतीय जनमानस में चिरकाल से प्रतिष्ठित पुण्यश्लोक विक्रमादित्य के यशस्कर, अद्भुत एवं पराक्रमोत्कर्ष से समुज्ज्वल अतिमानुषीय कृत्यों के वर्णन से सम्बद्ध बत्तीस कथाएँ निबद्ध की गयी हैं। इस कथाग्रन्थ के अनुवाद प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में हुए हैं जो अत्यन्त ही लोकप्रिय हैं।

ऐसी किम्वदन्ती है कि विक्रमादित्य को देवराज इन्द्र ने एक दिव्य सिंहासन उपहार में प्रदान किया था, जिसमें दिव्य आत्माओं से अधिष्ठित बत्तीस पुतलियाँ लगी थीं। अपने सुदीर्घ जीवन के अन्तिम दिन में शालिवाहन द्वारा पराजित होने के बाद सिंहासन पर अन्तिम बार बैठकर पुतलियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि मेरे देहावसान के पाँच सौ वर्षों के बाद भोज नामक नृपति पृथ्वी के गर्भ से इस सिंहासन को प्राप्त करेगा और इस पर बैठने के लिए उद्यत होगा। तुम सभी उससे मेरे महनीय कृत्यों का वर्णन करोगी और उसके बाद मुक्त होकर स्वर्ग में अपना स्थान-ग्रहण करोगी। इतना कह कर वे सिंहासन से उतर पड़े और उसे भूगर्भ में छिपा दिया।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में धाराधिपति भोजराज एक दिन जब अपने अमात्य नीतिवाक्य के साथ मृगया के क्रम में जंगल में घूम रहे थे तब एक टीले के नीचे भूगर्भ में गड़े हुए उक्त सिंहासन का पता लगने पर उन्होंने उसे निकलवाया और बड़े ही धूमधाम के साथ उसका पूजन सम्पन्न किया। शान्ति-स्वस्त्ययन, वेदपाठ एवं प्रभूत ब्राह्मण-भोजन जैसी माङ्गलिक विधियों के पश्चात् सिंहासन पर चढ़ने के लिए जब उन्होंने पैर बढ़ाया तभी पहली सीढ़ी पर खड़ी पुतली ने उन्हें रोकते हुए विक्रमादित्य के जन्म और उनकी दैवी सिद्धियों से सम्बद्ध उपाख्यान कह सुनाया और उनसे पूछा कि क्या आप समझते हैं कि उनका कोई भी गुण शतांश में भी आप में विद्यमान है जिससे आप इस सिंहासन पर बैठ कर शासन कर सकें? राजा भोज अपने अमात्य नीतिवाक्य के साथ इस

कहानी को सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। इतने में दिन बीत गया और वे हतप्रभ होकर लौट गये।

इसी प्रकार एक-एक कर सभी पुतलियाँ लोकगाथा में लोकातीत चरितों के भास्वर प्रभामण्डल से विराजमान विक्रमादित्य के विरुद-वर्णन के द्वारा धाराधिपति भोजराज को निरन्तर विस्मयाभिभूत करती रहीं। अन्त में, उन्होंने कहा कि राजन्! हम सबों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया और अब आप एक वर्ष तक इस सिंहासन पर बैठ कर शासन कर सकते हैं। इतना कहने के बाद वे सभी पुतलियाँ बन्धनमुक्त होकर स्वर्ग चली गयीं।

इस कथाग्रन्थ के कई संस्करण उपलब्ध होते हैं जिनमें क्षेमङ्कर-रचित जैन संस्करण उल्लेखनीय है। इसमें प्रत्येक कथा के प्रारम्भ तथा उपसंहार में श्लोकों का सन्निवेश किया गया है, जिनके अन्तर्गत कथाओं की विषय-वस्तु का उल्लेख किया गया है। इसका एक दक्षिण भारतीय संस्करण भी प्राप्त होता है जिसके गद्यभाग में सूक्तिमूलक एवं वर्णनपरक श्लोक उपलब्ध होते हैं। तथाकथित रूप से वररुचि-प्रणीत इसका बंगाली संस्करण पूर्वोक्त जैन संस्करण के आधार पर ही रचित हुआ है। इसकी भाषा में साहित्यिक सौन्दर्य के उन्मीलन के स्थान पर कथा को सरल आख्यान-प्रकार पर ही लेखक का आग्रह लक्षित होता है।

विक्रमादित्य के अद्भुत कृत्यों के वर्णन से सम्बद्ध अन्यान्य कृतियों में अनन्तप्रणीत वीरचरित महाकाव्य तथा शिवदास-प्रणीत शालिवाहनकथा उल्लेखनीय हैं।

## आधुनिक कथा-साहित्य की सूचना

आधुनिक काल में निबद्ध संस्कृत कथा-साहित्य में प्राचीन एवं नवीन दोनों ही प्रकार के विषयों का समावेश प्राप्त होता है। इन अभिनव संस्कृत कथाओं में मौलिक रूप से रचित कथाओं के अतिरिक्त भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में निबद्ध कथाओं के संस्कृत में अनूदित रूपान्तरों की भी संख्या प्रचुर है। पाश्चात्त्य कथा-शैली से प्रभावित संस्कृतज्ञ कथाकारों की कृतियों में भाषा की सरलता, कल्पना की नवीनता तथा अभिव्यक्ति, भङ्गिमा की आडम्बरहीनता के कारण परम्परा के बन्धन से विमुक्त शिल्प-सौष्ठव का साक्षात्कार किया जा सकता है। संस्कृत की कतिपय लघुकथाओं के अन्तर्गत युगानुरूप परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में साधारण मानव समाज की समस्याओं को भी मुखरता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। अद्यतन भारत में नवलेखकों द्वारा निबद्ध संस्कृत की कथाएँ भारत के विविध प्रान्तों से नियमित और अनियमित रूप से निर्गत होने वाली पत्रिकाओं में, प्रकाशित होती रही हैं। विपुल परिणाम वाली इन आधुनिक संस्कृत-कथाओं का अखिल भारतीय दृष्टिकोण से आज तक कोई भी संकलनात्मक संस्करण सम्पादित एवं प्रकाशित नहीं किया जा सका है। संस्कृत कथा-साहित्य की आधुनिक प्रकृति, प्रवृत्ति एवं शिल्पविधान के अध्ययन की दृष्टि से इन लघुकथाओं का महत्त्व निर्विवाद है। आज लिखी जाने वाली ये संस्कृत लघुकथाएँ सामान्य संस्कृतज्ञ समाज के मनोरञ्जन के साथ ही संस्कृत कथा-साहित्य की निरन्तर भाव से प्रवाहशील धारा को रूपायित करती हैं। यहाँ आधुनिक काल में विभिन्न प्रतिभाशाली रचनाकारों द्वारा संस्कृत में मौलिक रूप से रचित तथा भाषान्तर से अनूदित कथाओं और उनके संग्रहों में से कतिपय का नाम-निर्देश किया जाता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | विश्वेश्वर पाण्डेय | – | मन्दारमञ्जरी |
| २. | हृषीकेश शास्त्री भारद्वाज | – | पर्यटकत्रिंशत् |
| ३. | हरिदास सिद्धान्तवागीश | – | सरला |
| ४. | राधावल्लभ त्रिपाठी | – | महाकवि : कण्टकः |
| ५. | क्षमा राव | – | कथामुक्तावली |
| ६. | महालिङ्ग शास्त्री | – | (अ) कथानककोशः |
| | | – | (ब) सङ्कथासन्दोहः |
| ७. | अरिभट्टनारायणदास | – | हरिकथामृतम् |
| ८. | रङ्गनाथाचार्य | – | कथासङ्ग्रहः |
| ६. | रमेशचन्द्र शुक्ल | – | चारुचरितचर्चा |
| १०. | शिवप्रसाद भट्टाचार्य | – | उत्तराखण्डयात्रा |
| ११. | विजयलक्ष्मी | – | उपदेशप्रासाद |

## संस्कृत में अनूदित कथाएँ

१. गोविन्दकृष्ण मोडक - चोरचत्वारिंशीकथा (अरेबियन नाइट्स' की कथाओं का अनुवाद)

२. कृष्ण सोमयाजी - कणः लुप्तः गृहं दहति ('अ स्पार्क नेगलेक्टेड वर्न्स द हाउस' नामक टाल्स्टाय के अंग्रेजी नाटक का अनुवाद)

३. हरिचरण भट्टाचार्य - कपालकुण्डला (बङ्किमचन्द्र के सुप्रसिद्ध बंगला नाटक का अनुवाद)

४. एस. वेङ्कटरामशास्त्री - कथाशतकम् (भारत की प्रादेशिक भाषाओं की एक सौ कहानियों का अनुवाद)

५. जगन्नाथ - कथामञ्जरी (अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी की श्रीमाता द्वारा फ्रेंच भाषा में लिखित नीति-कथाओं का रूपान्तर)

६. एम. अहमद - दुःखोत्तरं सुखम् ('जामे उल्लिकायान' नामक फारसी कथासंग्रह का अनुवाद)

७. श्रीधर - कथाकौतुकम् (युसूफ और जुलेखा नामक फारसी कथा का संस्कृत अनुवाद)

८. एन. गोपाल पिल्लई - सीताविचारलहरी (मलयालम भाषा की कथाकृति का अनुवाद)

## सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. ऋग्वेदसंहिता - वैदिक संशोधन मण्डल पूना

२. ऋग्वेदसंहिता - सायणभाष्यसहित, मैक्समूलर सम्पादित

३. ऋग्वेदसंहिता - सातवलेकर-औंध, सतारा

४. वाजसनेयी संहिता -

५. तैत्तिरीय संहिता -
ऐतरेय ब्राह्मण
शतपथ-ब्राह्मण
बृहदारण्यकोपनिषद् - रामकृष्ण मठ, मद्रास
बृहद्देवता - शौनक-चौखम्बा, वाराणसी
छान्दोग्योपनिषद् - रामकृष्ण मठ, मद्रास
वाल्मीकिरामायणम् - निर्णयसागर, बम्बई
महाभारतम् - भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
पुराणपरिशीलन - म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी बिहार राष्ट्रभाष परिषद्, पटना
पुराणविमर्श - आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौक वाराणसी
जातकमाला - आर्यशूर-मिथिला रिसर्च इन्स्टीट्यूट, दरभंगा
दिव्यावदान - पी.एल. वैद्य सम्पादित मिथिला रिसर्च इन्स्टीच्यूट, दरभंगा
पञ्चतन्त्र - वासुदेवशरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
पञ्चतन्त्र - फ्रेंकलिन एजर्टन, जार्ज एलेन एण्ड अनविन लिमिटेड, लन्दन
हितोपदेश - नारायण पण्डित, चौखम्बा, वाराणसी
कथासरित्सागर - सी.एच. टानी एवं एन.एम. पैन्जर सम्पादित
कथासरित्सागर - सोमदेव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
बृहत्कथामञ्जरी - क्षेमेन्द्र निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
प्राचीन भारतीय इतिहास - विन्टरनित्ज हिन्दी अनुवाद मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
संस्कृत साहित्य का इतिहास - कृष्णमाचार्य, मद्रास
संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए.बी. कीथ (हिन्दी अनुवाद) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
संस्कृत साहित्य का इतिहास - पं. बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी

| | | |
|---|---|---|
| ए न्यू हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर | - | कृष्णचैतन्य, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई |
| संस्कृत साहित्य का इतिहास | - | एस. के. दे, कलकत्ता |
| प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | - | डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी |
| प्राकृत भाषाएँ और भारतीय संस्कृति में उनका अवदान | - | एस. एम. कत्रे (हिन्दी अनुवाद) राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी |
| बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष | - | प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली |
| नीतिकथा का उद्‌गम एवं विकास | - | पी.एन. कवठेकर चौखम्बा, वाराणसी |
| पुरुषपरीक्षा | - | विद्यापति, पटना विश्वविद्यालय, पटना |
| संस्कृत वाङ्मयकोष | - | प्रथम एवं द्वितीय खण्ड भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता |

# लौकिक संस्कृत साहित्य की कवयित्रियाँ

भारतीय इतिहास के प्राचीन काल तथा मध्यकाल के अन्तर्गत श्रीसम्पन्न कुल में उत्पन्न कन्याओं को विविध शास्त्रों के अतिरिक्त चौसठ ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी, जिनमें काव्यकला को अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय माना जाता था। कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन तथा काव्यमीमांसा के रचयिता राजशेखर के अनुसार पुरुष के समान महिलाएँ भी कवित्व-शक्ति से सम्पन्न हुआ करती थीं। इस सन्दर्भ में वहीं कहा गया है कि राजकन्याओं, महामात्य की पुत्रियों एवं गणिकाओं की काव्यकला-कुशलता सुप्रसिद्ध है। उपर्युक्त साक्ष्य से संस्कृत में काव्य रचना करने वाली महिला-कवियों की परम्परा का अस्तित्व असन्दिग्धभाव से प्रमाणित होता है। लौकिक संस्कृत साहित्य की काव्यमूर्त्ति को अपनी मञ्जुल कृतियों से विभूषित करने वाली महिला कवियों के नाम प्रकाशित एवं अप्रकाशित विभिन्न सुभाषित-सङ्ग्रहों तथा अलङ्कारशास्त्र के लक्षण-ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। कुछ महिला कवियों के तो केवल नाम ही उपलब्ध होते हैं; उनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक काल की महिला कवियों की विविध स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनमें समसामयिक सन्दर्भों का यथेष्ट प्रतिबिम्बन दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत निबन्ध में चर्चित महिला कवियों के नाम कालक्रम के अनुसार निम्नस्थ हैं:-

(१) चण्डाल विद्या (ईसा की चौथी सदी)
(२) फल्गुहस्तिनी (ईसा की आठवीं सदी)
(३) शीला भट्टारिका (ईसा की नौवीं सदी)
(४) विकटनितम्बा (ईसा की नौवीं सदी)
(५) विज्जका (ईसा की नौवीं सदी)
(६) भावक देवी (ईसा की नौवीं सदी)
(७) चिन्नम्मा (ईसा की दसवीं सदी)
(८) सरस्वती (ईसा की दसवीं सदी)
(९) सीता (ईसा की दसवीं सदी)
(१०) त्रिभुवन सरस्वती (ईसा की दसवीं सदी)
(११) मोरिका (ईसा की दसवीं सदी)
(१२) मारुला (ईसा की तेरहवीं सदी)
(१३) इन्दुलेखा (ईसा की पन्द्रहवीं सदी)
(१४) लखिमा देवी (ईसा की पंद्रहवीं सदी)
(१५) गङ्गा देवी (ईसा की पन्द्रहवीं सदी)
(१६) तिरुमलाम्बा (ईसा की सोलहवीं सदी)

(१७) मधुरवाणी (ईसा की सत्रहवीं सदी)
(१८) रामभद्राम्बा (ईसा की सत्रहवीं सदी)
(१९) पद्मावती (ईसा की सत्रहवीं सदी)
(२०) गौरी (ईसा की सत्रहवीं सदी)

## (१) चण्डालविद्या (ईसा की चौथीं सदी)

सदुक्तिकर्णामृत के अन्तर्गत इनके द्वारा रचित एक पद्य को समुद्धृत किया गया है, जिसके सह-रचयिता के रूप में विक्रमादित्य और कालिदास के नाम उपलब्ध होते हैं। कहा जाता है कि ये विक्रमादित्य की राजसभा के अन्तर्गत लब्धप्रतिष्ठ कवयित्री के पद पर आसीन थीं। इनका पद्य इस प्रकार है :-

**क्षीरोदाम्भसि मज्जतीव दिवसव्यापारखिन्नं जगत्**
**तत्क्षोभाज्जलबुदबुदा इव भवन्त्यालोहितास्तारकाः।**
**चन्द्रः क्षीरमिव क्षरत्यविरतं धारासहस्रोत्करै-**
**रुद्ग्रीवैस्तृषितैरिवाद्य कुमुदैर्ज्योत्स्नापयः पीयते।।**

जीवन-यात्रा के निर्वाह के क्रम में दिनभर आवश्यक क्रियाकलाप में व्यस्त रहने के कारण क्लान्त-श्रान्त यह सारा संसार मानो क्षीरसागर में डूबता हुआ प्रतीत होता है। उसके क्षोभ से उत्पन्न पानी के बुलबुलों के समान स्वच्छ नक्षत्रपुञ्ज सान्ध्यराग से रूषित होने के कारण रक्ताभ दीख पड़ते हैं। चन्द्रमा अपनी सहस्र-सहस्र रश्मि-धाराओं से मानो दूध की वर्षा कर रहा हो, ऐसा दीख पड़ता है। आज पिपासातुर की भाँति गरदन उठाकर कुमुदसमूह ज्योत्स्नारूपी जल को पी रहे प्रतीत होते हैं।

## (२) फल्गुहस्तिनी (ईसा की आठवीं सदी)

कवयित्री फल्गुहस्तिनी का चन्द्रोदय-वर्णन-परक निम्नस्थ श्लोक शार्ङ्गधरपद्धति और सुभाषितरत्नभाण्डागार में सङ्कलित किया गया है, जिससे इनकी ख्याति का परिचय प्राप्त होता है।

**त्रिभुवनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितं**
**ग्रहकिसलयं सन्ध्यानारी-नितम्ब-नखक्षतम्।**
**तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गं मनोभवकार्मुकम्**
**प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु नः।।**

शुक्ल-प्रतिपदा तिथि की नवोदित चन्द्र-कला भगवान् शङ्कर की जटावल्लरी में विन्यस्त श्वेतपुष्प है, निशासुन्दरी के मुख का मन्दस्मित है, आकाशमण्डल में उदित

नक्षत्रपुञ्ज का किसलय है, सन्ध्यारूपी कामिनी के नितम्ब पर अङ्कित नखक्षत है, अन्धकार को विदीर्ण करने वाला व्योम का शृङ्ग है तथा कामदेव का विश्वविजयी धनुष है। यह बाल-चन्द्र हमारे लिए सुखप्रद हो।

## (३) शीला भट्टारिका (ईसा की नवम शताब्दी)

शीला भट्टारिका संस्कृत की महिला कवयित्रियों में बहुचर्चित हैं। इनके पद्य कवीन्द्रवचन-समुच्चय, शाङ्‌र्गधरपद्धति तथा अलङ्कारसर्वस्व में उद्‌धृत किए गए हैं। राजशेखर ने शब्दार्थ की अनुरूप गुम्फना के लिए बाणभट्ट के साथ ही इनको भी प्रशंसनीय माना है। धनददेव ने इन्हें विद्वता और विदग्धता की समान रूप से अधिकारिणी कहा है। इनकी कविताओं में मन की विविध वृत्तियों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण प्राप्त होता है। पदयोजना की सरलता, सरसता और रमणीयता के साथ ही जीवन की अम्ल-मधुर अनुभूतियों के चित्रण की यथार्थता इनकी उल्लेखनीय विशेषता है। मानिनी के मान एवं नायक द्वारा उसे मनाने के वर्णनों से तो संस्कृत साहित्य भरा पड़ा है, किन्तु इनके निम्न उद्‌धृत पद्य में ठीक इससे विपरीत स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है:-

**विरहविषमो वामः कामः करोति तनुं तनुं**
**दिवसगणनादक्षश्चायं व्यपेत घृणो यमः।**
**त्वमपि वशगो मानव्याधेर्विचिन्तय नाथ हे!**
**किसलयमृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदाजनः।।**

विहर के कारण विषम वेदना देने वाला यह कामदेव मेरा प्रतिकूल होकर मेरे शरीर को प्रतिदिन क्षीण करता जा रहा है। यमराज भी बड़ा ही निष्ठुर है। जीवनावधि के दिनों की गणना करने में सिद्धहस्त होने पर भी मेरे सम्बन्ध में उसकी अदक्षता ही प्रमाणित होती है। और, हे नाथ ! तुम्हें भी तो इस मानरूपी व्याधि ने ग्रस लिया है। फिर, ऐसी स्थिति में, किसलय के समान कोमल युवती जिए तो कैसे जिये ?

## (४) विकटनितम्बा (ईसा की नवम शताब्दी)

कवयित्री विकटनितम्बा का नाम संस्कृत की महिला कवियों की प्रथम पंक्ति में सुप्रतिष्ठित माना जाता है। इनके द्वारा रचित पद्यों के उद्धरण संस्कृत के सभी प्रमुख सुभाषित संग्रहों तथा अलङ्कारशास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। कृत्रिमता और दूरारूढ कल्पनाओं के अभाव में इनकी काव्य-शैली असाधारण रूप से सरल तथा मनोहर है। अपने कथ्य को आडम्बरविहीन भाषा में उपस्थित कर देना इनके काव्य-शिल्प की विशेषता है। यहाँ इनके कतिपय पद्य उदाहृत हैं :-

लावण्यसिन्धुरपरैव हि केयमत्र
यत्रोत्पलानि शशिना सह संप्लवन्ते।
उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र
यत्रापरे कदलिकाण्डमृणालदण्डाः।।

प्रस्तुत श्लोक में नदीतट पर स्नानार्थ समागत किसी युवती का वर्णन किया गया है। यहाँ दूसरी ही कौन सी लावण्य की नदी है यह, जिसमें चन्द्रमा के साथ कमल तैर रहे हैं, जिसमें हाथी के मस्तक का प्रान्तभाग जल से प्रकट हो रहा है तथा जिसमें कदलीस्तम्भ और मृणालदण्ड दिखाई देते हैं। इसमें रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार के द्वारा चन्द्र, कमल, गजकुम्भ और कदलिकाण्डरूप उपमानों से मुख, नेत्र, उरोज और जाँघ रूप उपमेयों की अभिव्यक्ति है।

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग!
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु।
मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः।।

हे भ्रमर ! तुम्हारे भार को सह सकने में समर्थ किन्हीं-किन्हीं अन्य लताओं के साहचर्य से अपना चञ्चल मन बहलाओ। क्यों भला इस भोली-भाली अविकसित एवं परागरहित चमेली की नई कली को असमय में ही छेड़ रहे हो ?

## (५) विज्जका (ईसा की नवम शताब्दी)

संस्कृत की महिला कवियों में कवयित्री विज्जका का नाम शृङ्गारपरक सुप्रसिद्ध मुक्तक रचनाओं तथा अपनी काव्य-प्रतिभा के प्रति मुखर चेतना के लिए विदग्धगोष्ठी में चिरकाल से प्रशंसा के साथ चर्चित रहता आया है। वीणा की श्रुति-मोहक स्वरलहरी के सौभाग्य से विभूषित वैदर्भी रीति में सरस-मधुर पद्य-रचना का असामान्य शिल्प-सौष्ठव कालिदास के बाद इन्हीं में उपलब्ध होता है, ऐसा समीक्षकों का अभिमत है।

इनके पद्य सदुक्तिकर्णामृत, शाङ्गर्धरपद्धति, सूक्तिमुक्तावली, सुभाषितहारावली तथा सुभाषितरत्नभाण्डागार जैसे प्रायः सभी सुभाषित संग्रहों मं समदुधृत किए गये हैं। इनका एक पद्य नीचे उद्धृत हैः-

मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः।
एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्-काल ! हताश ! वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम्।।

आकाश बादलों से, धरती नवीन जलराशि से, दिशाएँ बिजलियों से, अन्तरिक्ष वृष्टि-धाराओं से, जङ्गल कुटजों से और नदियाँ बाढ़ से भरी हुई हैं। विरहिणी पावस से पूछती है कि प्रियतम के विरह में विषादमग्न दीन एवं असहाय एक स्त्री के वध के लिए तुमने इतना सारा आयोजन क्यों कर रक्खा है ?

इस पद्य में विरहाकुल ललना का मेघ के प्रति उपालम्भ अत्यन्त मार्मिक है।

## ६. भावकदेवी (ईसा की नवम शताब्दी)

कवयित्री भावकदेवी द्वारा रचित पद्य कवीन्द्र-वचनसमुच्चय और सदुक्तिकर्णामृत नामक सुभाषित-सङ्ग्रहों में विन्यस्त किए गए हैं। माधुर्य और सरलता इनकी रचनाओं के विशेष गुण हैं। लम्बे-लम्बे समास तथा अप्रसिद्ध पदों के यत्नपूर्वक परिहार के प्रति इनका सविशेष आग्रह लक्षित होता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है:-

**तथाभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं**
**ततोऽनु त्वं प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा।**
**इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं**
**मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम्।।**

पहले तो हम दोनों के शरीर अभिन्न थे। कुछ दिनों के बाद तुम मेरे प्रियतम और मैं तुम्हारी हताशा प्रियतमा हो गयी। पुनः कुछ दिनों के बीत जाने के बाद सम्प्रति तुम मेरे पालन-पोषण-करने वाले मात्र रह गए और मैं तुम्हारी केवल पालिता स्त्री होकर रह गयी। इस प्रकार, मैंने अपने वज्र सदृश कठोर प्राणों का यह विषम फल पा लिया।

उपर्युक्त पद्य में दाम्पत्य जीवन में स्नेह के चढ़ाव-उतार का अत्यन्त यथार्थ चित्रण हुआ है।

## (७) चिन्नम्मा (ईसा की दशवीं सदी)

चिन्नम्मा एक दक्षिण भारतीय महिला कवयित्री हैं, जिनका एक संस्कृत-पद्य भोजराज द्वारा सरस्वीकष्ठाभरण में उद्धृत किया गया है तथा वही संस्कृत-पद्य शार्ङ्गधरपद्धति में भी समुद्धृत किया गया है। इस पद्य के आधार पर धर्मशास्त्र एवं पौराणिक वाङ्मय से कवयित्री का परिचय सुस्पष्ट होता है। प्रसङ्गाधीन पद्य इस प्रकार प्राप्त होता है:-

**कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्कालदण्डः स्फुर-**
**च्छेषस्यूत-नृसिंह-पाणि-नखर-प्रोतादि-कोलामिषः।**
**विश्वैकार्णवता-नितान्त मुदितौ तौ मत्स्यकूर्मावुभौ**
**कर्षन् धीवरतां गतोऽस्यतु महामोहं महाभैरवः।।**

कल्पान्त-काल में अपने द्वारा शमित विष्णु के कङ्काल का दण्ड धारण करने वाले, शेषनागरूपी उज्ज्वल रस्सी से नृसिंह के हाथों को बाँध रखने वाले, अपने पाणि-प्ररूढ नखों से आदि वराह की मांसल काया को क्षत-विक्षत कर डालने वाले तथा संसार के महासागर के रूप में परिणत हो जाने पर अतिशय प्रसन्न मत्स्य और कूर्म को खींचते हुए धीवर-रूप-धारी महाभैरव अनादि वासना के कारण हमारे आत्मा में निरुद्ध अज्ञान को दूर करें।

## (८) सरस्वती (ईसा की दसवीं सदी)

कवयित्री सरस्वती द्वारा रचित पद्य सरस्वतीकण्ठाभरण, शार्ङ्गधरपद्धति तथा सदुक्तिकर्णामृत में समुद्धृत किए गए हैं। शैली-शिल्प और अर्थदर्शन की दृष्टि से ये संस्कृत की एक अन्यतम लब्धप्रतिष्ठ महिला कवि मानी जाती हैं। इनका निम्नोद्धृत अन्योक्तिपरक श्लोक सुप्रसिद्ध है :-

**पत्राणि कण्टकसहस्रदुरासदानि**
**वार्तापि नास्ति मधुनो रजसान्धकारः।**
**आमोदमात्ररसिकेन मधुव्रतेन**
**नालोकितानि तव केतकि ! दूषणानि।।**

तुम्हारे पत्ते तो हजारों-हजार काँटों से भरे हैं, जिससे उनके समीप जाने में बिंध जाने के भय के कारण तुम्हारे पास पहुँच पाना आसान नहीं है। और बची मधु की बात, सो, उसका तो कोई नामोनिशान तक यहाँ नहीं है। ऊपर से तो तुम्हारे पास तो सघन परागराशि के कारण हे केतकि ! अतिशय मनोहर सौरभमात्र के रसिक भ्रमर ने तुम्हारे इन दोषों की ओर दृष्टिपात नहीं किया।

## (६) सीता (ईसा की दसवीं सदी)

डॉ. रमा चौधरी के अनुसार कवयित्री सीता का एकमात्र पद्य वामन की काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्ति तथा राजशेखरकी काव्यमीमांसा में सौभाग्यवश सुरक्षित है। शृङ्गार वासना से अधिवासित इस पद्य में कल्पना की कमनीयता से उत्पन्न चमत्कार अतीव हृदयावर्जक हो उठा है :-

**मा भैः शशाङ्क ! सीधुनि नास्ति राहुः**
**खे रोहिणी वसति कातर ! किं बिभेषि ?**
**प्रायो विदग्धवनितानवसङ्गमेषु**
**पुंसां मनः प्रचलतीति किमत्र चित्रम् ! ।।**

कोई तरुणी चाँदनी रात में मदिरा से परिपूर्ण पान-पात्र हाथ में लेकर पीने के लिए उद्यत है। उसके श्वासोच्छ्वास के सम्पर्क से उसके मुख के समीपस्थ पानपात्र की मदिरा में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा काँप रहा है। इसे देखकर उस काँप रहे चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को चन्द्रमा के रूप में सम्बोधन करती हुई तरुणी की उक्ति इस श्लोक का विषय है। वह कहती है कि हे शशाङ्क ! तुम डरो मत। मेरी इस मदिरा में राहु छिपा हुआ नहीं है, और रही अपनी पत्नी रोहिणी की बात; सो, वह तो यहाँ से दूर बहुत दूर आकाश में निवास करती है। अरे कायर पुरुष ! फिर मेरे पास रहने के कारण तुम्हें डर क्यों हो रहा है ? परन्तु तुम्हारे इस कम्पन का एक कारण मैं जो समझती हूँ वह यह है कि विदग्ध वनिता के नव सङ्गम के अवसर पर पुरुषों का मन बहुधा चञ्चल हो जाया करता है।

## (१०) त्रिभुवन-सरस्वती (ईसा की दसवीं सदी)

त्रिभुवन-सरस्वती और महीतल-सरस्वती दो बहनें थी, जिनमें त्रिभुवन-सरस्वती बड़ी थीं। इनके नाम का उल्लेख राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में किया है। इसके अतिरिक्त सदुक्तिकर्णामृत में इनके दो पद्य उद्धृत किए गए हैं। इनके आधार पर इनका शास्त्रमूलक वैदुष्य तथा काव्योचित कल्पना-कौशल प्रमाणित होता है। यहाँ इनका एक श्लोक उद्धृत है:-

**पातु त्रिलोकीं हरिरम्बुराशौ, प्रमथ्यमाने कमलां समीक्ष्य।**
**अज्ञातहस्तच्युत भोगिनेत्रः, कुर्वन् वृथा बाहुगतागतानि।।**

वे भगवान् हरि त्रिभुवनकी रक्षा करें, जिन्हें समुद्र-मन्थन के क्रम में उससे आविर्भूत लक्ष्मी को देखकर पता ही नहीं चला कि कब उनके हाथ से शेषनागरूपी महारज्जु सरककर गिर पड़ा और वे कब तक व्यर्थ ही अपनी बाहों से उक्त रज्जु को आगे-पीछे खींचने की क्रिया करते रहे।

लक्ष्मी के सौन्दर्य पर मुग्ध विष्णु की भावविस्वलता का चित्रण नितान्त स्वाभाविक है।

## (११) मोरिका (ईसा की तेरहवीं सदी)

कवयित्री मोरिका के पद्य सूक्तिमुक्तावली, शार्ङ्गधरपद्धति तथा सुभाषितावली जैसे सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्कलित किये गये हैं। धनददेव ने कवियों की प्रथम पंक्ति में इन्हें स्थान दिया है। इनके पद्यों में शृङ्गार की सफल अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है। प्रवासोद्यत नायक का एक बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन इनके अधस्तन श्लोक में देखा जा सकता है:-

**यामीत्यध्यवसाय एव हृदये बध्नातु नामास्पदं**
**वक्तुं प्राणसमा समक्षमघृणेनेत्थं कथं पार्यते।**

**उक्तं नाम तथापि, निर्भरगलद्बाष्पं प्रियाया मुखं**
**दृष्ट्वापि प्रवसन्त्यहो धनलवप्राप्तिस्पृहा मादृशाम्।।**

विदेश के लिए जाने का निश्चय ही सर्वप्रथम कर पाना नितान्त कठिन है। वह यदि कर भी लिया जाय तो उसका उल्लेख अपनी प्राणप्रिया के समक्ष निष्ठुर होकर कैसे कहा जा सकता है ? फिर भी, किसी प्रकार उससे यह निश्चय कह सुनाया गया। इस पर उसकी अविरल बहती हुई अश्रुधारा से आर्द्र मुख को भी देखकर उसके प्राणनाथ विदेश की यात्रा पर चल पड़ते हैं। ओह ! मुझ जैसे लोगों के मन में विद्यमान लेशमात्र धन को पाने की ललक कितनी तीव्र है।

इस पद्य में प्रियतमा के अश्रुपूरित नेत्रयुक्त मुख को देखकर भी धन-प्राप्ति के लिए विदेश जाने को उद्यत नायक की विवशता का हृदयस्पर्शी वर्णन है।

## (१२) मारुला (ईसा की तेरहवीं सदी)

कवयित्री मारुला के दो पद्य क्रमशः सूक्तिमुक्तावली और शार्ङ्गधरपद्धति में उपलब्ध होते हैं। इनके द्वारा रचित ये दो ही श्लोक इनकी काव्य-प्रतिभा को पूर्ण रूप से प्रमाणित करते हैं। इनकी विदग्धता का परिचायक एक श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है:-

**गोपायन्ती विरहजनितं दुःखमग्रे गुरूणां**
**किं त्वं मुग्धे नयगलितं वाष्पपूरं रुणत्सि।**
**नक्तं नक्तं नयनसलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते**
**शय्योपान्तः कथयति दशामातपे शोष्यमाणः।।**

गुरुजनों के आगे विरहजनित दुःख को छिपाती हुई, अरी भोली-भाली ! तुम आँसुओं की झड़ी को क्यों छिपाती हो। रात-रात भर आँसुओं से भीगा यह तेरे बिछावन का छोर जिसे तुम धूप में सुखाती हो, तुम्हारी दशा का कथन करता है।

## (१३) इन्दुलेखा (ईसा की पन्द्रहवीं सदी)

कवयित्री इन्दुलेखा द्वारा रचित केवल एक ही पद्य वल्लभदेव की सुभाषितावली में उपलब्ध है। यह एकमात्र पद्य कवयित्री की काव्यकला का मनोहर साक्ष्य प्रस्तुत करता है। प्रसङ्गाधीन पद्य निम्नोद्धृत है :-

**एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनं**
**केचित् पावकयोगितां निजगदुःक्षीणेऽह्नि चण्डार्चिषः।**
**मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि ! प्रत्यक्षतीव्रातपं**
**मन्येऽहं पुनरध्वनीनरमणीचेतोऽधिशेते रविः।।**

कुछ लोग कहते हैं कि सायङ्काल के समय सूर्य सागर में प्रविष्ट हो जाते हैं। कुछ का कहना है कि वे देशान्तर के दर्शन के लिए चले जाते हैं। कुछ अन्य लोगों का कथन है कि वे अग्नि में प्रविष्ट हो जाते हैं। परन्तु इन सभी के कथन में साक्ष्य नहीं है। अतः ये सारी बातें झूठी हैं। मैं तो ऐसा मानती हूँ कि सूर्य रात्रिकाल में पान्थरमणी के हृदय में अपनी दाहक किरणों के साथ निवास करते हैं।

रात में पान्थरमणी के हृदय में सूर्य का अपनी दाहकशक्ति के साथ निवास करने की कल्पना कवयित्री की अनूठी सूझ है।

## १४. लखिमा देवी (ईसा की पन्द्रहवीं सदी)

ये मिथिला के ओइनिवार-वंशोद्भव अधिपति महाराजाधिराज शिवसिंह की विदुषी पटरानी थीं। इनकी काव्य-प्रतिभा का प्रख्यापक एक पद्य निम्नोद्धृत है :-

**भङ्क्त्वा भोक्तुं न भुङ्क्ते कुटिलबिसलता कोटिमिन्दोर्वितर्कात्**
**ताराकारास्तृषार्त्तः पिबति न पयसां विप्रुषः पत्रसंस्थाः।**
**छायामम्भोरुहाणामलिकुलशबलां वीक्ष्य सन्ध्यामसन्ध्यां**
**कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः।**

अपनी प्रेयसी से बिछुड़ा हुआ चकवा टेढ़े-मेढ़े कमल के नाल को खाने के लिए तोड़ लेता है, परन्तु चन्द्रमा के भ्रम से उसे खाता नहीं है। कमल के पत्र पर ताराओं के समान चमकीली पानी की बूँदों को प्यास से पीड़ित होने पर भी वह नहीं पीता है। कमलों की कान्ति को भ्रमरों से अधिष्ठित देखकर सायङ्काल के अभाव में भी उसे सायङ्काल का भान होने लगता है। अपनी प्रिया चकवी के विछोह के भय से ग्रस्त चकवा दिन को भी रात ही मान बैठता है।

## १५. गङ्गादेवी (ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी)

कवयित्री गङ्गादेवी काकतीय राजवंश की कन्या थीं। इनका जन्मस्थान एकशिला-नगरी के समीप था, जो आधुनिक वारंगल जिला के अन्तर्गत पड़ता हैं। इन्होंने कवीश्वर विश्वनाथ से संस्कृत विद्या की विविध शास्त्रीय शाखाओं का अध्ययन किया था और साथ ही काव्यकला की भी शिक्षा प्राप्त की थी। सन् १३४० ई. के आस-पास इनका विवाह सुविख्यात विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक बुक्कराज के प्रथम पुत्र वीर कम्पराय के साथ सम्पन्न हुआ था। इन्होंने अपनी शालीनता, वैदुष्य, विदग्धता एवं सौन्दर्य के समुत्कर्ष से पटरानी के गौरवपूर्ण पद को सुशोभित किया था।

संस्कृत की महिला कवियों में गङ्गादेवी का नाम उनकी एकमात्र उपलब्ध काव्यरचना मधुराविजय[1] महाकाव्य के कारण सनातन कीर्त्ति की प्रभा से विभास्वर हो गया है। भाषा-सौष्ठव एवं उदात्त भाव से विभूषित यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के आदिकाल में मदुरै की अत्याचार-परायण सुल्तान शाही का उन्मूलन कर इनके दुर्द्धर्ष पराक्रमी पति युवराज कम्पन ने तुलुष्कों के उत्पीड़न से विध्वस्तप्राय राष्ट्रीय अस्मिता की पुनः स्थापना की थी। इसी महनीयचरित अपने पति के अप्रतिहत पराक्रम से दीप्त वीरगाथा का अवलम्बन कर उनकी पटरानी गङ्गादेवी ने मधुराविजय महाकाव्य की रचना की थी। इसके काव्य-सौष्ठव से परिचित होने के लिए कतिपय निम्न उद्धरण द्रष्टव्य हैं:-

**मुखरकङ्कणमाकुलमेखलं, चलितहारलतं लुलितालकम्।**
**अधिगतश्रममस्य वधूजनो, रतिविशेषमशिक्ष्यत दोलया।।**

वसन्त की मादक ऋतु में कम्प नृपति की वधुएँ दोला-विहार का आनन्द लेने लगीं। उस क्रम में उनके कङ्कण मुखर हो उठे, मेखलाएँ शिथिल हो गयीं, वक्षःस्थल के हार चञ्चल हो उठे, अलकजाल बिखर पड़े तथा श्रम के कारण मुखमण्डल स्वेदार्द्र हो उठे। उन्हें उक्त अवस्था में देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो हिंडोले ने उन्हें कामोपभोग की एक विशेष विधा की शिक्षा प्रदान की हो।

काव्यनायक कम्पन द्वारा परिशीलित कामोपभोग के अनुकूल वातावरण की सृष्टि के उद्देश्य से काव्यनायिका गङ्गादेवी ने सूर्यास्त, सन्ध्यागम, प्रदोष तथा चन्द्रोदय के मनोहर वर्णन प्रस्तुत किये हैं। इनमें सूर्यास्त का दृश्य-विन्यास विशेष रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। दूर-दूर तक फैली क्षितिज-रेखा की पृष्ठभूमि में कल्लोल-मुखर सागर के उत्ताल तरङ्गों के पीछे अस्त होते हुए सूर्य के दृश्य को कवयित्री ने अपने वर्णन-कौशल से मूर्त कर दिया है :-

**चरमाम्बुधिवीचिचुम्बितं, प्रतिबिम्बाश्रयि मण्डलं रवेः।**
**दिवसान्तनटस्य धूर्जटे र्विदधे काञ्चनतालविभ्रमम्।।**

पश्चिम समुद्र की लहरों से चुम्बित एवं समुद्र में प्रतिबिम्बित सूर्यबिम्ब सन्ध्याकाल में नटवेष धारण करने वाले भगवान् शिव के सुवर्णमय तालवाद्य का [illegible]न उत्पन्न कर रहा था।

---

1. (क) अनन्तशयनम्, केरल से १६१६ में प्रकाशित (ख) इस काव्य का दूसरा नाम वीरकम्परायचरित भी है।

**पतयालु-पतङ्गमण्डल-क्षरदंशूत्कररञ्जिता कृतिः।**
**मधुकैटभरक्तलोहितामुदधिः प्राप पुरातनीं दशाम्।।**

अस्तोन्मुख सूर्य से निर्गत हो रही किरणों से रञ्जित पश्चिम पयोधि मधु और कैटभ नामक विष्णुद्वारा निहत दानवों के शोणित से लाल रंगवाले पुराने स्वरूप को पा चुका दीख पड़ता था।

## (१६) तिरुमलाम्बा (ईसा की सोलहवीं सदी)

कवयित्री तिरुमलाम्बा तञ्जौर के अधिपति अच्युतराय महाराज की पटरानी थीं। इनकी काव्यकला का प्रौढ़ निदर्शन **वरदाम्बिकापरिणय-चम्पू**' है, जिसके अन्तर्गत महाराज अच्युतराय का वरदाम्बिका के साथ विवाह का वृत्तान्त मुख्य रूप से निबद्ध किया गया है। संस्कृत विद्या की विविध शाखाओं के साथ तिरुमलाम्बा ने अलङ्कारशास्त्र एवं प्रमुख महाकाव्यों का गम्भीर परिशीलन किया था। इनकी प्रतिभा का समुल्लास वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू के अन्तर्गत सर्वत्र ही देखा जा सकता है। इनकी काव्यशैली के वैशिष्ट्य से संक्षेप में परिचित होने के लिए निम्नाङ्कित पद्य द्रष्टव्य है :-

**मुहुः सरोवारिषु केलिलोला, निमज्ज्नोन्मज्जनमाचरन्ती।**
**बलाहकान्तः परिदृश्यमाना, सौदामनीवाजनि चञ्चलाक्षी।।**

चञ्चल नयनों वाली नायिका जलकेलि के प्रसङ्ग में कभी पानी के भीतर छिप जाती थी तो कभी उसके ऊपर आ जाती थी। इस स्थिति में वह बादलों के भीतर दीख पड़ने वाली बिजली की भाँति दीख पड़ती थी।

**दुग्धाम्बुराशिलहरीव तुषारभानुमर्थं नवीनमनघा सुकवेरिवोक्तिः।**
**प्रत्यङ्मुखस्य यमिनः प्रतिमेव बोधं, प्रासूत भाग्य-महितं सुतमोम्बमम्बा।।**

जिस प्रकार क्षीरसागर की लहरी चन्द्रमा को, सुकवि की मनोहर उक्ति नवीन अर्थ को तथा आत्म-साक्षात्कारलीन जितेन्द्रिय पुरुष की प्रतिभा बोध को उत्पन्न करती है उसी प्रकार ओम्बमम्बा रानी ने पुत्र को जन्म दिया।

## (१७) मधुरवाणी-(ईसा की सत्रहवीं सदी)

ये तञ्जौर के महाराज रघुनाथ की आस्थान-विदुषी थीं। इन्होंने उक्त महाराज के अनुरोध पर आन्ध्ररामायण का संस्कृत में अनुवाद किया था।

---

१. डॉ. सूर्यकान्त के सम्पादकत्व में अंग्रेजी अनुवाद के साथ चौखम्बा से १९७० में प्रकाशित।

## (१८) रामभद्राम्बा-(ईसा की सत्रहवीं सदी)

इन्होंने रघुनाथाभ्युदय नामक एक ऐतिहासिक काव्य की रचना की थी, जिसके अन्तर्गत तञ्जौर के महाराज अच्युतराय के पुत्र रघुनाथ की विजयगाथा का वर्णन प्राप्त होता है।

## (१९) पद्मावती (ईसा की सत्रहवीं सदी)

कवयित्री पद्मावती के कतिपय पद्य पद्यामृततरङ्गिणी तथा पद्यवेणी जैसे सुभाषित-सङ्ग्रहों में सुरक्षित हैं। इनके पद्यों में गुजरात की ललना के सौन्दर्य का वर्णन प्राप्त होता है, जिसके आधार पर इन्हें गुजरात की रहने वाली माना जाता है। एक पद्य इनकी काव्यकला के दृष्टान्त के रूप में नीचे उद्धृत है :-

**किं चारुचन्दनलताकलिता भुजङ्ग्यः ?**
**किं फुल्लपद्ममधुसंवलिता नु भृङ्ग्यः ?**
**किं वाननेन्दु-जित-राहुरुचो विषाल्यः ?**
**किं भान्ति गुर्जरवरप्रमदा-कचाल्य : ?**

क्या ये चन्दन की सुन्दर लता में लिपटी नागिनें हैं ? क्या ये खिले हुए कमल के मकरन्द का पान करने वाले भ्रमर हैं ? क्या ये मुखचन्द्र से विजित राहु की छाया के समान गरल की धाराएँ हैं ? अथवा गुजरात की सुन्दर प्रमदाओं के केशभार शोभित हो रहे हैं ?

उपर्युक्त पद्य में सन्देह अलङ्कार के परिवेश में अन्त्यानुप्रास की छटा स्पृहणीय है।

## (२०) गौरी (ईसा की सत्रहवीं सदी)

कवयित्री गौरी के पद्य सूक्तिसुन्दर तथा पद्यवेणी जैसे सुभाषित-सङ्ग्रहों में समुद्धृत किए गए हैं। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा इनके द्वारा रचित विविध विषयक पद्यों में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुई है। इनकी काव्यकला के निदर्शन के रूप में सद्यःस्नाता नायिका के सौन्दर्य-वर्णन से सम्बद्ध निम्न श्लोक द्रष्टव्य है:-

**विनिस्सरन्ती रतिजित्वराङ्गी**
**नीरात् सरागाम्बुजलोचनश्रीः।**
**आलोकि लोकैः स्वरुचा स्फुरन्ती**
**जलाधिदेवीव जलेशवन्द्या।।**

स्नान के अनन्तर नायिका जलाशय से निकल रही है। अपनी निर्धौत देहयष्टि की स्वगत कान्ति से सुशोभित इस रक्ताभ अपाङ्गों से मनोहर नयनों वाली सद्यः स्नाता ने

नारी-सौंदर्य के उपमानभूत कामकान्ता रति को भी जीत लिया है। लोगों ने इस अवस्था में इसे वरुण द्वारा वन्दनीय जलराशि की अधिष्ठात्री देवी के समान देखा।

सद्यः स्नाता सुन्दरी को लोगों द्वारा जलराशि की अधिष्ठात्री देवी के समान देखा जाना भाव की उदारता का सुन्दर निदर्शन है।

उपर्युक्त संस्कृत कवयित्रियों के अतिरिक्त कतिपय वैदिक ऋषिकायें भी हैं, जिन्होंने मन्त्रों का साक्षात्कार किया था। उनका विवरण निम्न है -

## १. रोमशा-

एक ब्रह्मवादिनी ऋषिका थी रोमशा। वह महाराज भाव्य की पौत्री और महाराज स्वनय की पुत्री थी। अल्पवयस्कता के कारण उसे कामोपभोग के अनुपयुक्त जानकर पति ने उसके साहचर्य-सौख्य की उपेक्षा कर दी। समय धीरे-धीरे बीतता गया। एक दिन रोमशा ने अपनी तारुण्य तरङ्गित देहयष्टि के आलिङ्गन के लिए अपने पति को निमन्त्रित किया और इस प्रसङ्ग में अपनी कामोपभोग-योग्यता का उल्लेख किया। प्रसङ्गाधीन मन्त्र के अन्तर्गत एक प्रोढ़ा नायिका के रूप में रोमशा के द्वारा अपनी यौवनदीप्त देहकान्ति की, मान्मथ-रोमराजि के सघन प्रादुर्भाव के उल्लेख के माध्यम से, अभिव्यञ्जना की गयी है। मन्त्र इस प्रकार है:-

**उपोप में पराभृश मा मे, दभ्राणि मन्यथाः।**
**सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।।**
*(ऋग्वेद संहिता मं. १. सू. १२६, मं.७)*

## २. उर्वशी-

पुरूरवा-उर्वशी के संवाद से सम्बद्ध सूक्त के अन्तर्गत उर्वशी द्वारा साक्षात्कृत मन्त्रों मे नारी के एक नितान्त भिन्न स्वरूप का वर्णन किया गया है। उर्वशी एक विख्यात अप्सरा थी। अप्सरा के पर्यायवाची शब्द के रूप में स्वर्वेश्या शब्द भी होता है, परन्तु इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक समीक्षा करने पर इनका अर्थमूलक अन्तर स्पष्ट हो जाता है। अप्सरा शब्द जहाँ अप्सराओं की जलविहार के प्रति सहज आसक्ति को सूचित करता है, वहाँ स्वर्वेश्या शब्द उनके काममूलक चित्तचाञ्चल्य को रेखाङ्कित करता है।

अप्सराकोटिक स्त्री के स्वार्थ-परायण हृदय की व्याख्या करते हुए उर्वशी ने कहा है कि स्त्रियों के साथ सख्य की धारणा एक कल्पनामात्र हैं। यह ऐसी कोरी कल्पना है जिसका यथार्थ-जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इतना ही नहीं, वह यह भी कहती है कि स्त्रियों के हृदय भेड़ियों के हृदय के समान जिघांसा से भरे रहते हैं। अतः वह यदि अब पुरूरवा की आकुल प्रार्थना को ठुकरा कर उसका परित्याग कर रही है, तो इस कठोर यथार्थ के साथ उसे समझौता कर लेना चाहिए। वह तो पवन की भाँति स्वच्छन्दचारिणी है, जिसे पकड़ कर अपने पास सदा के लिए रख पाना पुरूरवा के भाग्य में नहीं लिखा है।

उर्वशी द्वारा साक्षात्कृत मन्त्रों में स्वर्वेश्या सुलभ-देहसौख्यमूलक सम्बन्ध का अनावृत यथार्थ स्वरूप सुव्यक्त हुआ है। इस सूक्त के प्रसङ्गाधीन मन्त्र निम्नोद्धृत हैं:-

**किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।**
**पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि।।**

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।।
*(ऋग्वेदसंहिता- मं. १०.सू. ६५.मंत्र २, ५,१५)*

## ३. लोपामुद्रा-

सुदीर्घ कालावधि तक अपने पति महर्षि अगस्त्य के तपोमग्न रहने के कारण अपनी तनुश्री को वार्द्धक्य के आक्रमण से प्रतिदिन शीर्यमाण देख-देख कर खिन्न एवं उदास रहने वाली लोपामुद्रा ने दाम्पत्य-सुख की प्राप्ति के उद्देश्य से पति को सम्बोधित कर रतिदैवत सूक्त में चिरविरहातुर एवं कामसन्तप्त नारी के हृदय की अभिलाषा को साकार कर दिया है। सूक्त के मन्त्र निम्न विन्यस्त हैं।

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूना मप्यू नु पत्नीवृषणो जगम्युः।।
ये चिद्धि पूर्वं ऋतसाप आसन् त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः।।
*(ऋग्वेदसंहिता म. १, सू. १७६, मन्त्र १-२)*

## ४. यमी-

यमी के संवाद-सूक्त के अन्तर्गत यमी द्वारा साक्षात्कृत मन्त्रों में यमी अपने यमज भ्राता यम को अपने साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का आवेशपूर्वक अनुरोध करती है, परन्तु उसका भाई यम इस प्रकार के सम्बन्ध को सामाजिक नैतिकता के आदर्श के विरुद्ध घोषित कर अस्वीकृत कर देता है और उसे किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह करने का अनुरोध करता है। इन मन्त्रों में यमी की अनियन्त्रित कामभावना का गर्हणीय परिचय प्राप्त होता है। यमी के उद्गार को अधोलिखित मन्त्रों में देखा जा सकता है :-

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः।।
यमस्य मायम्यकाम आगन् त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिदवृहेव्र रथ्येव चक्रा।।
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।।
*(ऋग्वेद संहिता मं. १० सू. ६ मन्त्र-१,५,१३)*

## ५. शश्वती-

महर्षि अङ्गिरा की पुत्री शश्वती वैदिक साहित्य के अन्तर्गत एक आदर्श पत्नी के

रूप में परिचित ऋषिका है। स्त्रीत्व से अभिग्रस्त अपने पति की पुंस्त्व-प्राप्ति के लिए इसने तपश्चर्या की, जिसके फलस्वरूप इसे अभीष्ट लाभ हुआ। अपने पति की पुंस्त्व-प्राप्ति से आनन्द-विह्वल पतिव्रता शश्वती के मन्त्र में उसके हार्दिक उल्लास का अनुभव किया जा सकता है।

**अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्ता दनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः।**
**शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि।।**
*(ऋग्वेद संहिता-मं-८, सूक्त-१ मन्त्र सं.-३४)*

## ६. वाक्-

अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् द्वारा दृष्ट मन्त्रों में वाणी की महिमा एवं ऐश्वर्य का बड़ा ही भव्य वर्णन प्राप्त होता है। तदनुसार वाणी ही राष्ट्र की अधिष्ठात्री है, सम्पत्तियों के सङ्गमन की विधायिका है तथा यज्ञार्ह वस्तुओं में प्राथम्य के साथ परिगणित है। देवताओं ने वाणी को देव, मनुष्य तथा तिर्यग्-योनि के व्यक्तियों में विविध रूप से स्थापित किया है। देवताओं और मनुष्यों द्वारा सेवित ऋषिका वाणी का ओजस्वी उद्घोष है कि वह जिन्हें चाहती है उनमें से किसी को अपरिमित तेजस्विता से सम्भृत कर देती है, और किसी को ब्रह्मा का पद प्रदान कर देती है तथा किसी अन्य को मेधा-सौष्ठव से सम्पन्न मन्त्रद्रष्टा का गौरव प्रदान करती है।

वही वाक् ब्रह्मद्रोही असुर के वध के लिए रुद्र को शक्तिशाली धनुष प्रदान करती है। और समस्त भुवनों की सृष्टि कर वही वाक् पवन की भाँति सतत गतिशील रहा करती है। उसका निवास स्थान समुद्र के मध्य में अप्रमेय जलराशि के अन्तर्गत विद्यमान है।

इस सूक्त में ऋषिका द्वारा महिमामण्डित आत्मवृत्त का मुक्तकण्ठ से प्रख्यापन किया गया है। वाक् तत्त्व की विशेषता के वर्णन से संवलित होने के कारण असाधारण रूप से प्रसिद्ध यह सूक्त निम्नोद्धृत है :-

**अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।**
**अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।**
**अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।**
**तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।**
**अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।**
**अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।**
**अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।**
**ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।**
*(ऋग्वेद संहिता-मं. १०, सू. १२५, मन्त्र १,३,६,६)*

## ७. सूर्या-

सविता की पुत्री सूर्या-द्वारा साक्षात्कृत एक सूक्त के मन्त्रों में विवाह-संस्कार के माङ्गलिक विधि-विधानों का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इन मन्त्रों में नवविवाहिता वधू के रूप-वैभव का नितान्त हृदयग्राही चित्रण किया गया है। सूर्या का सोम से विवाह-कृत्य का अनुष्ठान इस सूक्त का मुख्य विषय है। वधू-प्राप्ति की अभिलाषा से समागत सोम को सविता ने सुसज्जित केशपाश एवं दिव्याभरणों से विभूषित अपनी सुदर्शना पुत्री सूर्या का सम्प्रदान किया और विवाह की समाप्ति पर समवेत समाज के द्वारा मङ्गलमूर्त्ति वधू एवं सौभाग्यशाली वर के प्रति शुभाशीर्वाद प्रदान करने के क्रम में कहा गया कि तुम दोनों पति-पत्नी यहीं अपने घर में पुत्र-पौत्रों के साथ मनोविनोद करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आयु की सम्पूर्ण अवधि का उपभोग करो, तुम दोनों का एक-दूसरे से कभी वियोग न हो और तुम्हारे नयनों की भङ्गिमा कभी भी उग्र न हो, तुम सास, ससुर, ननद एवं देवर की सम्राज्ञी बनी रहो। और, इसके बाद भास्वर चन्द्रातप से आवृत गोरथ पर आरूढ होकर नववधू सूर्या पतिग्रह के लिए प्रस्थान कर जाती है। अन्त में पति-पत्नी के सौमनस्य एवं साम्मनस्य की मङ्गलकामना के साथ समाप्त होनेवाले सूक्त के प्रसङ्ग प्राप्त मन्त्र अधोनिर्दिष्ट हैं :-

**सोमो वधुयुरभव दश्विनास्तामुभा वरा।**
**सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्।।**
**सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।**
**सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन।।**
*(ऋग्वेद संहिता-मं. १०. सू. ८५. म. ६, ३३,)*

इस प्रकार, ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं द्वारा साक्षात्कृत कतिपय मन्त्रों के उपर्युक्त विवरण के आधार पर छान्दस संस्कृत साहित्य के सारस्वत सत्र में उनके भास्वर योगदान की चिरन्तन कथा का परिचय प्राप्त होता है। दिव्य काव्य की अलौकिक महिमा से मण्डित इनके मन्त्रों में भाव और भाषा की युगल मूर्त्ति परस्पर स्पर्धा से आविष्ट होकर समान ताल और लय में विविध मोहक भङ्गिमाओं के साथ नृत्यनिरत दृष्टिगोचर होती है, जिसकी दूरागत स्वरलहरी छान्दसी कविता के सुधी समीक्षकों को उस अतीत-युग की काव्य-माधुरी के प्रति चिरकाल से आकृष्ट करती आ रही है।

# परिशिष्ट अंश

# बौद्ध भिक्षुणियों के गीत

# (थेरीगाथा)

थेरीगाथा के अन्तर्गत ७३ बौद्ध भिक्षुणियों के गीत पालि भाषा के खुद्दक निकाय में प्राप्त होते हैं। इसकी शैली में सङ्गीत तथा निश्छल आत्माभिव्यक्ति का अनोखा सङ्गम प्राप्त होता है। यह बौद्ध भिक्षुणियों के अपने जीवनगत अनुभवों का गीतिकाव्य है, जिसमें तृष्णा, दुःख, शोक, नश्वर पार्थिव सुखभोग के बन्धन से सर्वथा मुक्ति पाकर वैराग्य के आकाश में उदित प्रशम की स्निग्ध ज्योत्स्ना के आलोक से विभास्वर भिक्षुणियों की हृदयतन्त्री का तापापहारी झङ्कार सुनायी देती है। महिला कवियों की रचना की दृष्टि से थेरी गाथाएँ साहित्य की अनमोल निधि हैं। निर्वाण की स्पृहणीय उपलब्धि पाकर भगवान् बुद्ध की ये शिष्याएँ संसारी जीवों को विषम-वेदना-प्रद संसृति-चक्र से मुक्ति का अमर-सन्देश इन गीतों में प्रदान करतीं हैं। इन बौद्ध भिक्षुणियों के नाम निम्नस्थ हैं :-

१. मुक्ता
२. पूर्णा
३. तिष्या
४. धीरा
५. मित्रा
६. भद्रा कुण्डलकेशा
७. उपशमा
८. धम्मदिन्ना
९. विशाखा
१०. सुमना
११. उत्तरा
१२. धम्मा
१३. अभिरूपा नन्दा
१४. जयन्ती
१५. सुमङ्गल माता
१६. अड्ढकासी
१७. चित्रा
१८. मैत्रिका
१९. अभया
२०. अभय-माता
२१. श्यामा
२२. उत्तमा
२३. दन्तिका
२४. उब्बिरी
२५. शुक्ला
२६. शैला
२७. सोमा
२८.. भद्रा कापिलायनी
२९. वङ्गदेसी
३०. विमला
३१. सुन्दरी नन्दा
३२. सिंहा
३३. नन्दुत्तरा
३४. मित्तकाली

३५. सकुला
३६. सोणा
३७. पटाचारा
३८. चाला
३९. उपचाला
४०. शिशूप चाला
४१. वड्ढमाता
४२. कृशा गौतमी
४३. उत्पलवर्णा
४४. पूर्णिका
४५. अम्बपाली
४६. रोहिणी
४७. चन्द्रा
४८. वासिष्ठी
४९. क्षेमा
५०. सुजाता
५१. अनुपमा
५२. महाप्रजापति गौतमी
५३. गुप्ता
५४. विजया
५५. उत्तरा
५६. चापा
५७. सुन्दरी
५८. शुभा
५९. ऋषिदासी
६०. सुमेधा
६१. अज्ञात नाम वाली भिक्षुणी

इनमें एक नाम की कई भिक्षुणियाँ हैं जिनको मिलाकर इनकी कुल सङ्ख्या तिहत्तर परिगणित की जाती है। यहाँ इनमें से कतिपय के परिचय एवं भावोद्गार का हिन्दी गद्य में आशय प्रस्तुत है।

**१. धम्म दिन्ना**-भिक्षुणी धम्मदिन्ना का जन्म राजगृह के एक वैश्यकुल में हुआ था। एक दिन उसके पति ने भगवान् बुद्ध का दर्शन प्राप्त कर ज्ञान लाभ किया। अब तक वह सर्वथा वीतराग हो चुका था। अतः घर आकर उसने अपनी पत्नी से कहा कि शास्ता तथागत का उपदेश पाकर अब मैं स्त्रीशरीर तथा सुस्वादु भोजन प्रभृति सांसारिक विषयों में रमने योग्य नहीं हूँ। अतः अब यदि तुम इस घर में रहना चाहो तो रहो, अन्यथा यदि इच्छनुसार धनराशि लेकर अपने माता-पिता के घर जाना चाहो तो वैसा करो। पति के मुख से ऐसी बातें सुनकर उसने भी प्रव्रज्या को स्वीकार करना ही वरणीय समझा। प्रव्रज्या-ग्रहण करने के बाद निर्वाण-लाभ के उद्देश्य से जब वह साधना में निरत थी, तब उसके द्वारा कही गयी गाथा का अर्थ इस प्रकार है :-

"अन्तः करण की अशेष वृत्तियों को एकाग्र कर जो शान्ति की स्पृहा करता है और सांसारिक भोगतृष्णा के प्रलोभन से आकृष्ट नहीं होता है, वही इस संसार-प्रवाह से ऊपर (ऊर्ध्वस्रोत) में अवस्थित कहा जाता है।"

**२. अभिरूपा नन्दा**-अभिरूपा नन्दा कपिलवस्तु के निवासी शाक्यकुलोत्पन्न क्षेमक नामक क्षत्रिय की दुहिता थी। नाम तो उसका नन्दा था, परन्तु अपने रूप-लावण्य के उत्कर्ष के कारण उसका उपनाम 'अभिरूपा' भी नाम के समान ही सुप्रसिद्ध हो चुका था। उसके

विवाह-हेतु आयोजित स्वयम्वर के दिन उसके सम्भावित वर का संयोगवश निधन हो गया। इसके बाद उसके माता-पिता ने अपनी इच्छा से उसे प्रव्रज्या को अङ्गीकार करने के लिए कहा। उसे अपने सौन्दर्य का बड़ा ही अभिमान था और वह यह जानती थी कि तथागत शारीरिक सौन्दर्य के प्रति दोषदर्शी हैं। अतः उनके सम्मुख जाने में उसका मन सङ्कोच से ग्रस्त हो रहा था। जिस किसी प्रकार जब वह उनके सम्मुख उपस्थित हुई, तब उन्होंने उसे अपनी योगशक्ति के बल से उससे भी अधिक सुन्दरी का दर्शन कराया। तत्पश्चात्, उसे उसके जराजीर्ण रूप की कुत्सित दशा दिखलायी। इसे देखकर उसका मन बड़ा ही आहत हुआ। तब तथागत ने उसे ज्ञानप्राप्ति के उपयुक्त मानकर उससे एक गाथा कही, जिसे वह बराबर गाया करती थी। उक्त गाथा का आशय इस प्रकार है।

"नन्दे ! यह शरीर अपवित्र है, दुर्गन्ध से दूषित है तथा व्याधि से ग्रस्त है। इसे ध्यानपूर्वक देखो। समस्त सांसारिक प्रपञ्च को अनित्य, दुःखात्मक तथा अशुचि समझने का अभ्यास करो। चित्त के अन्तर्गत, निवास करने वाले अहङ्कार रूपी मल का त्याग करो। अहङ्कार ही सारे दुःखों का मूल है। इसका भलीभाँति दमन कर लेने पर तुम प्रशान्त और निष्कलुष चित्त से विचरण करोगी।।"

**३. उब्बिरी**-उब्बिरी का जन्म श्रावस्ती नगरी के उच्चकुल में हुआ था। इसके अनिन्द्य सौन्दर्य से आकृष्ट होकर कोसल-नरेश ने इसे अपने अन्तःपुर में सादर स्थान दिया। कालक्रम से यह एक पुत्री की माता बनी जिसका नाम जीवन्ती रक्खा गया। उस कन्या के जन्म से कोसल-नरेश ने प्रसन्न होकर इसकी माता को राजमहिषी के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु जीवन्ती बचपन में ही कालकवलित हो गयी। अब, उसकी माता तो शोक से पागल हो गयी। वह प्रतिदिन उस श्मशान में जाती थी जहाँ उसकी पुत्री का दाह-संस्कार किया गया था और वहाँ बैठकर आर्त्तस्वर से क्रन्दन किया करती थी। एक समय वह भगवान् बुद्ध के सम्मुख उपस्थित हुई और उनके चरणों की वन्दना कर एक किनारे बैठ गयी। फिर, चित्तोद्वेग के कारण वह वहाँ से तुरंत उठी और पुनः अचिरावती नदी के तट पर उसी श्मशान में जाकर अपनी कन्या का नाम ले-लेकर रोने लगी। भगवान् बुद्ध अपनी कुटी में बैठे ही बैठे इस करुण दृश्य को देखकर योगबल से उसके समक्ष उपस्थित हुए और उससे रोने का कारण पूछा। शोक-विह्वल उब्बिरी ने उत्तर दिया कि भगवन् ! मैं अपनी मृत पुत्री के लिए रोती हूँ।

इस पर भगवान् बुद्ध ने उससे कहा कि इसी श्मशान में तुम्हारी चौरासी हजार पुत्रियों का दाह-संस्कार किया गया है। कहो तो, उनमें से किस पुत्री के लिए विलाप कर रही हो। और, इतना कह कर अपने प्रातिहार्य के प्रभाव से उन्होंने उसे श्मशान में वे सारे स्थान दिखलाये जहाँ उसकी सहस्रों कन्याओं का दाह-संस्कार किया गया था। भगवान् बुद्ध के इस वचन से उसे बोध उदित हुआ और वह ध्यान-लीन रहने लगी। अन्त में उसका

चित्त शोक-मोह के द्वन्द्व से सर्वथा मुक्त हो गया। उसके द्वारा कही गयी गाथा का सार निम्नस्थ है -

**"आज मेरे हृदय का शल्य निकल गया।**
**पुत्री के शोक से मेरा हृदय विषाक्त हो**
**गया था और मुझे प्राणहारी प्रतीत हो रहा था।**
**उसका वियोग परन्तु, अब मैं शोकमुक्त हूँ।**

**आज मेरा हृदय शान्त, अव्याकुल, निर्मल तथा वीतशोक है। मैं अपने को भगवान् बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ को समर्पित करती हूँ।"**

४. **सोमा**-राजगृह में मगध-नरेश महाराज बिम्बिसार के पुरोहित की पुत्री के रूप में सोमा का जन्म हुआ था। सांसारिक बन्धनों से मुक्ति के सुख में मग्न होकर एक समय वह अन्धकवन में जब ध्यानलीन थी, तब मार ने उसे मार्गच्युत करना चाहा परन्तु प्रशम में प्रतिष्ठित सोमा द्वारा वह धर्षित हुआ। इस अवसर पर सोमा द्वारा कही गयी गाथा का आशय प्रस्तुत है :-

"जिसका चित्त समाधि में स्थित है, जीवन ज्ञान से उज्ज्वल है और अन्तःकरण में धर्म का सम्यक् दर्शन प्रतिष्ठित हो चुका है तब स्त्री-मात्रता के कारण उसकी क्या हानि होगी ? मैंने अज्ञान के अंधकार को ध्वस्त कर दिया है जिससे मेरी सारी वासनाएँ विनष्ट हो चुकी हैं। अरे पापी मार ! तू इसे भलीभाँति जान ले कि आज तेरा अन्त कर दिया गया।"

५. **चापा**-आजीवक सम्प्रदाय का एक तपस्वी था उपक। उसकी दृष्टि रास्ते में भगवान् बुद्ध पर पड़ी, जो सम्यक् सम्बुद्ध होकर धर्मचक्र प्रवर्त्तन-हेतु सारनाथ (वाराणसी) जा रहे थे। उनकी तप्त काञ्चन भास्वर देहद्युति और शान्त-गम्भीर मुखमुद्रा देख कर उसने पूछा कि मित्र! तुमने किस हेतु सांसारिक जीवन का परित्याग किया ? तुमने किस गुरु से अध्यात्म-उपदेश पाया है ? किस मत में तुम्हारी आस्था है? इस पर भगवान् बुद्ध ने उससे कहा- "मैंने स्वयं सम्बोधि प्राप्त की है, मैं सर्वविजेता हूँ, सर्वज्ञ हूँ। तृष्णा का मूलोच्छेद कर मैं दुःखों से मुक्त हूँ तथा संसार से अलिप्त हूँ। मेरा गुरु कोई नहीं है। मैं धर्म-चक्र प्रवर्त्तन-हेतु सारनाथ (वारणसी) जा रहा हूँ। अज्ञान के गहन अन्धकार में सुप्त जनता को सद्धर्म के दुन्दुभि-नाद से मैं जगाऊगा, मुक्त करुगा।" यह सुनकर तपस्वी उपक ने उनसे कहा कि ''जाओ मित्र ! तुम्हारा महान् निश्चय सफल हों" उनसे ऐसा कहकर वह तपस्वी दूसरे रास्ते से वङ्कहार जनपद की ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँचकर वह एक व्याधमुख्य का अतिथि बना। उसने उसका यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया और अपनी पुत्री चापा को उसकी सेवा का आदेश देकर मृगया के

उद्देश्य से स्वयं जंगल चला गया। व्याधमुख्य की पुत्री अनुपम सुन्दरी थी। तपस्वी उसके रूप-यौवन से मोहित हो गया। जब चापा का पिता जंगल से लौटा तब उस तपस्वी ने उससे अपना मनोगत भाव प्रकट किया और कहा कि मैं आपके द्वारा लाये गये शिकार को खरीद कर बाजार में बेचने का काम करूँगा और इसी विधि से अपनी गृहस्थी चलाऊँगा। यह सुनकर व्याधमुख्य ने चापा के साथ उस तपस्वी का विवाह कर दिया। कालक्रम से चापा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम सुभद्र पड़ा।

वह शिशु जब-जब रोता था तब-तब चापा अपने पति को लक्ष्य कर उपहास के स्वर में यह कह-कह कर शिशु को चुप कराती कि हे उपक के पुत्र ! चुप हो जाओ, हे तपस्वी के पुत्र ! चुप हो जाओ। हे व्याध के पुत्र चुप हो जाओ। उपक को उसकी ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं थी। परन्तु उसकी पत्नी स्वामी के खीझने पर आनन्द का अनुभव करती थी। एक दिन उपक विरक्त होकर चला गया और अपने पूर्व परिचित भगवान् बुद्ध के सम्मुख उपस्थित होकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। कुछ दिनों के बाद चापा ने अपने शिशु को पितामही की देखरेख में छोड़कर स्वयं भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

व्याध-कन्या चापा की कथा में अपने स्वामी के साथ हुए उसके वार्त्तालाप से हम परिचित होते हैं।

उपक कहता है कि ''मैं पहले एक दण्डधारण करने वाला तपस्वी था, किन्तु आज तृष्णा के महापङ्क को पार करने में असमर्थ होकर मैं एक व्याध हो गया हूँ। मुझे अपने रूप-यौवन के जाल में आबद्ध देख कर मेरी पत्नी अपने शिशु के मनोविनोद के लिए मेरा परिहास किया करती थी। मैंने चापा की आसक्ति का त्याग कर प्रव्रज्या का जीवन अपना लिया है।"

चापा कहती है कि ''हे महान् तपस्वी! मुझ पर क्रोध न करो। क्रोध से आत्मशुद्धि की प्राप्ति नहीं होती है। हे उपक! लौट आओ और सांसारिक जीवन के सुखों का उपभोग करो। मैं खिले हुए गुलाब के समान रूप और यौवन से रमणीय हूँ। तुम्हारी मनःप्रीति के लिए मैं केसर-मिश्रित चन्दन का लेप करूँगी और काशी में निर्मित कौशेय वसन धारण करूँगी। मुझ जैसी रूपवती का परित्याग कर तुम जाओगे कहाँ ? देखो उपक ! मैंने तुम्हें पुत्ररूपी अनमोल फल दिया है। तुम्हीं तो इस शिशु के पिता हो। मुझ पुत्रवती को छोड़कर तुम जाओगे कैसे ? फिर भी यदि तुम जाने का हठ नहीं छोड़ोगे तो मैं अभी ही तुम्हारे इस पुत्र को छुरी से मारकर गिरा दूँगी तब तो पुत्र-मोह के कारण तुम नहीं जा सकोगे!"

उपक कहता है कि "मुझे अब तुम्हारा रूप-सौन्दर्य बाँधकर नहीं रख सकता है। ज्ञान सम्पन्न पुरुष पुत्र, विभव और परिवार का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण किया करते हैं। अब पुत्र का मोह भी मुझे अपने निश्चय से विचलित नहीं कर सकता है। मैंने सुना है

कि भगवान् बुद्ध निरंजना नदी के तट पर सभी प्राणियों को सर्वदुःखहारी सद्धर्म का उपदेश प्रदान करते हैं। मैं उन्हीं के शरण में जाऊँगा।"

स्वामी के निश्चय को जानकर चापा ने उससे कहा कि" उस सम्यक् सम्बुद्ध तथागत को मेरी भी चरण वन्दना निवेदित करना, उनकी प्रदक्षिणा करना और मेरी भी दक्षिणा उनके पादपद्मों पर समर्पित कर देना।"

इसके बाद उपक भगवान् बुद्ध के समीप गया जहाँ वे निर्वाण के साधन-स्वरूप चार आर्य-सत्यों का उपदेश दे रहे थे। उसने उनके चरणों पर शीश झुकाया और चापा की विनती भी पूरी की। तत्पश्चात् भगवान् बुद्ध से उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और बुद्ध-शासन में परिपूर्णता का लाभ किया। यहाँ उद्धृत हैं उसकी गाथा।

चापा-

"लट्ठिहत्थो पुरे आसिं सो दानि मिगलुद्दको ।
आसाय पलिपा घोरा नासक्खि पारमेत से ।।
सुमत्तं मं मञ्ञमाना चापा पुत्तमतोसयि ।
चापाय बन्धनं छेत्वा पब्बजिस्सं पुनो'म'हं ।।
मा मे कुज्झि महावीर मा मे कुज्झि महामुनि ।
न हि कोधपरेतस्य सुद्धि अत्थि कुतो तपो ? ।।
एसो हि भगवान बुद्धो नदिं नेरञ्जरं पति ।
सब्बदुक्खपहानाय धम्मं देसेसि पाणिनं ।
तस्सा हं सन्तिके गच्छं सो मे सत्था भविस्सति ।।
तस्स पादानि वन्दित्वा कत्वानां नं पदक्खिणं ।
चापाय आदिसित्वान पब्बजि अनगारियं ।।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता कतं बुद्धस्य सासनं ।।

५. **भद्रा कुण्डलकेशा**-राजगृह नगर के कोषाध्यक्ष की पुत्री थी भद्रा। तारुण्य में पदार्पण करने पर एक दिन उसने अपने महल से देखा कि राजपुरोहित के पुत्र सत्थुक को चौर्य के अपराध में पकड़े जाने के कारण प्राणदण्ड देने के लिए वधिक ले जा रहे हैं। वह उसे देखकर तत्क्षण उसके प्रति आसक्त हो गयी। उसने प्रण कर लिया कि इसके साथ मेरा विवाह होगा तो मैं जीवित रहूँगी अन्यथा मृत्यु का वरण करूँगी। पुत्री के प्रति अतिशय स्नेह के कारण उसके माता-पिता ने वधिकों को धन देकर सत्थुक को छुड़ा लिया और हीरे-जवाहरात के बहुत सारे आभूषणों से पुत्री को अलङ्कृत कर उसके साथ विवाह करा दिया। कुछ दिन जब आमोद-प्रयोद में बीत गये तब एक दिन पत्नी के रत्नमय आभूषणों

के लोलुप सत्थुक ने उससे कहा कि वध से मुक्ति पाने पर पर्वत पर अवस्थित देवता को अर्घ्य-समर्पण करने की बात मैंने मन में स्थिर की थी। अतः, तुम अर्घ्य प्रस्तुत करो। हम दोनों आज, साथ ही वहाँ चलेंगे। तदनुसार अर्घ्य-सामग्री लेकर रत्नाभरणों से सुसज्जित भद्रा उसके साथ पर्वत की ओर चल पड़ी। उसके पति ने उसके साथ आ रही परिचारिकाओं को लौट जाने को कहा और स्वयं भद्रा के साथ पर्वत पर चढ़ गया। वहाँ, उसने भद्रा से अपने सारे आभूषणों को उतार देने को कहा। इस पर जब भद्रा ने उससे पूछा कि यह मेरे किस अपराध का दण्ड है तब उसने कहा कि अर्घ्यदान तो एक व्याज था। वस्तुतः मैं तो तुम्हारे रत्नाभूषण लेने के लिए ही तुम्हें यहाँ लाया हूँ। भद्रा ने बहुत अनुनय-विनय किया परन्तु वह तो प्रकृति से ही दुष्ट था। उसने उसकी एक न सुनी। भद्रा एक प्रत्युत्पन्नमति स्त्री थी। अतः उसने उससे कहा कि मैं इन वस्त्राभूषणों के साथ एक बार तुम्हारा आलिङ्गन-सौख्य प्राप्त कर लेना चाहती हूँ। इस पर जब वह सम्मत हो गया तब आलिङ्गन के व्याज से भद्रा ने उसे इतने जोर का धक्का दिया कि वह औंधे मुंह पहाड़ से नीचे गिरकर मर गया।

इसके बाद भद्रा ने सांसारिक जीवन को त्याग कर जैन साधुओं के आश्रम में आश्रय लिया। नियमानुसार, वहाँ उसके केशों का लुंचन किया गया। परन्तु उसके बाद उसके सिर पर जो केश उगे वे कुण्डलाकृति थे। तब से उसे कुण्डलकेशा कहा जाने लगा। जैन-आश्रम में रहकर उसने हेतुविद्या का अध्ययन किया और उसमें निष्णात हो गयी। एक बार सुप्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु सारिपुत्र से शास्त्रार्थ में निरुत्तर होकर जब उसने उन्हें अपनी शरण में लेने का अनुरोध किया तब उसने उसे भगवान् बुद्ध की शरण में जाने को कहा। तदनुसार, सर्वलोक शरण्य भगवान् बुद्ध की शरण में जाकर उसने स्पृहणीय अर्हत्पद की प्राप्ति की। उसने अपनी गाथा में निर्वाण पद की प्राप्ति की। उसने अपनी गाथा में निर्वाण की अक्षोभ्य शान्ति की महिमा गायी है जो इस प्रकार है। "अस्त-व्यस्त विवर्ण केशों से आच्छन्न मुख लिये पङ्कलिप्त हो एकवस्त्रा नारी के रूप में मैं पहले इतस्ततः भ्रमण किया करती थी। उपादेय कर्मों से विमुख होकर मैं केवल हेय कर्मों में संसक्त रहा करती थी।

परन्तु एक दिन मैंने गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर जाकर, भिक्षु-सङ्घ से अभिवन्दित भगवान् बुद्ध का दर्शन प्राप्त किया। मैंने उनके सम्मुख घुटनों के बल बैठ कर प्रणाम की मुद्रा में अञ्जलि बाँधी और उनकी अभिवन्दना की।

भगवान् ने मुझे कहा-"भद्रे ! आओ" और इस प्रकार मैंने उपसम्पदा प्राप्त की। तत्पश्चात्, उस दिन से लेकर आज तक मैं निरन्तर काशी, कोसल, मगध प्रभृति जनपदों में चारिका-परायण रही। और, इस प्रकार पचास वर्षों की अवधि बीत गयी। इतने समय में मैं अर्हत् के रूप में राष्ट्र की सेवा करती रही।"

६. **सुमेधा**-सन्तावती नाम की नगरी में क्रौञ्च नामक राजा राज्य करता था। उसके एक पुत्री थी जिसका नाम था सुमेधा। वह बाल्यावस्था से ही भिक्षुणी-संघ की सत्सङ्गति में आ चुकी थी जिसके फलस्वरूप उसका चित्त निर्वेद की भूमि पर प्रतिष्ठित निर्वाण की स्निग्ध-शीतल छाया के सौख्य में निमग्न रहने लगा था। माता-पिता ने जब उसे तारुण्योन्मुख देखा तब वारणवती नगरी के राजा 'अनिकरत्त' से उसका विवाह स्थिर किया। अपने विवाह की वार्त्ता से अवगत होकर उसने अपने माता-पिता से अपने प्रव्रजित होने का निर्णय स्पष्ट शब्दों में कह सुनाया। माता-पिता ने उसे प्रव्रजित होने से मना किया। उसके माता-पिता द्वारा उसके लिए सङ्कल्पित वर राजा अनिकरत्त ने भी उसे धन, ऐश्वर्य और सांसारिक सुखों से सम्भृत गृहस्थ-जीवन का महत्त्व समझाया और अपना राज्य उसे अर्पित कर दिया। परन्तु वह तो निर्वाण के प्रति समर्पित थी। सो, वह अपने निर्णय पर अविचल रही। उसने अपने हाथों अपने केशपाश को काट लिया और प्रव्रज्या का जीवन अपना लिया। कठोर साधना के द्वारा उसने अनुत्तम बोध प्राप्त किया और अपने माता-पिता को भी धर्मोपदेश देकर बौद्धमत में दीक्षित किया। उसकी गाथा में उसकी स्वानुभूति का साक्षात्कार किया जा सकता है :-

**सुमेधा-**

"निब्बाणाभिरता हं असस्सतं भवगतं यदि पि दिब्बं।
किमङ्ग पन तुच्छा कामा अप्पसादा बहुविधाता।।

चत्तारो विनिपाता द्व च गतियो कथञ्चि लब्भन्ति।
न च विनिपातगतानं पब्बज्जा अत्थि निरयेसु।।

"उट्ठेहि पुत्तक किं सोचितेन दिन्नां सि वारणवतिम्हि।
राजा अनिकरत्तो अभिरूपो तस्स त्वं दिन्ना।।

अज्झोसिता असारे कलेवरे अट्ठिन्हारुसङ्गाते।
खेलस्सुमुच्छास्सव परिपुण्णे पूतिकायम्हि।।

दिवसे दिवसेंति सत्तिसत्तानि नवनवा पतेय्युं कायम्हि।
वस्ससतम्पि च घातो सेय्यो दुक्खस्स चेंव खयो।।

चातुर्द्दीपो राजा मन्धाता आसि कामभोगिनं अग्गो
अतित्तो कालङ्गतो न च'स्स परिपूरिता इच्छा।।

सत्तिसूलूपमा कामा रोगो गण्डो अघं निघं।
अङ्गारकासुसदिसा अघमूलं भयं वधो।।

सर रूपं फेनपिण्डोपमस्स कायकलिनो असारस्स।
खन्धे पस्स अनिच्चे सराहि निरये बहुविधाते।।

आदीपिता तिणुक्का गण्हन्तं दहन्ति नेंव मुञ्चन्तं।
उक्कोपमा हिकामा दहन्ति ये ते न मुञ्चन्ति।।

एवं भणति सुमेधा सङ्गारगते रतिम लभमाना।
अनुनेन्ती अनिकरत्तं केसे व छमं छुपि सुमेधा।

अच्छरियं अब्भुतं तं निब्बाणं आसि राजकञ्ञाय।
पुब्बे निवासचरितं यथा ब्याकरि पच्छिमें काले।।

सो हेतु सो पभवो तं मूलं सत्थुसासने सन्ति।
तं पठमं समोधानं तं धम्मरताय निब्बाणं।। (थेरीगाथा)

८. **उत्पलवर्णा**-श्रावस्ती नगरी के कोषाध्यक्ष की पुत्री थी उत्पलवर्णा। नीलोत्पल की सी देहद्युति के कारण उसका नाम उत्पलवर्णा रक्खा गया था। उसके अनुपम सौन्दर्य की वार्त्ता से आकृष्ट होकर अनेक राजपुत्रों और श्रेष्ठियों ने उसके पिता से उसके साथ विवाह की इच्छा प्रकट की। पिता के सामने समस्या थी कि वह सबको सन्तुष्ट कैसे करे। अतः उसने अपनी पुत्री से पूछा कि क्या वह बुद्ध शासन में दीक्षित होना चाहती है ? उत्पलवर्णा ने इस पर प्रसन्नता के साथ कहा कि मैं अभी इसी क्षण प्रव्रज्या के अङ्गीकार हेतु उद्यत हूँ। उसकी सहर्ष स्वीकृति पाकर पिता ने आदर-सम्मानित उसे भिक्षुणी सङ्घ में ले जाकर दीक्षित कराया। साधना के बल पर उस कन्या ने अर्हत्पद की प्राप्ति की और भिक्षुणी सङ्घ में विशेष गौरव की अधिकारिणी बनी। उसने अपनी गाथा में साधना से उपलब्ध आत्यन्तिक मनः प्रसाद का वर्णन किया है जो इस प्रकार है :-

"साधना के बल पर मैंने पूर्वजन्मों का स्मरण प्राप्त किया। मेरे चर्मचक्षु शुद्ध हो गये। मैंने दिव्यदृष्टि पायी। मुझे दूसरों के मनोभावों का ज्ञान हो गया। मेरे चित्त-गत मलों का क्षय हो गया। बुद्ध के शासन में मैंने परिपूर्णता प्राप्त की। अपने योगबल से निर्मित चार घोड़ों से युक्त रथ पर आरूढ होकर मैं भगवान् बुद्ध के समीप उपस्थित हुई और मैंने उनकी चरण-वन्दना की।"

९. **अनुपमा**-साकेत नगर में मध्य नामक एक महाधनी श्रेष्ठी रहता था। उसे एक पुत्री थी जो रूप में अद्वितीय थी। इसीलिए वह अनुपमा के नाम से सुप्रसिद्ध हुई। उसने जब यौवन वयस में प्रवेश किया तब अनेक श्रेष्ठी, श्रेष्ठिपुत्र, राजपुत्र और महामात्य ने उसके पिता के समीप दूत के माध्यम से उसके साथ विवाह की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अनुपमा के पिता को कहा कि वे उनकी पुत्री को तोल कर उसके आठ गुने अधिक रत्न

और सुवर्ण उसे प्रदान करने को प्रस्तुत है। परन्तु अनुपमा का स्वभाव से ही गृहस्थ-जीवन के प्रति अत्यधिक वितृष्णा थी। वह प्रव्रजित होकर सौगत पन्थ की अनुगामिनी होना चाहती थी। अपने पिता से उसने अपने महान् लक्ष्य का उल्लेख कर भगवान् बुद्ध के परम कल्याणकारी धर्मोपदेशपरक वचन सुने और तदनुरूप आचरण के द्वारा ज्ञान की पराकाष्ठा तक वह पहुँची। उसकी गाथा में उसके अपने अनुभव का आख्यान निहित है।

"महाऐश्वर्यशाली अभिजात कुल में मैंने जन्म ग्रहण किया। रूप और गुण में मैं सचमुच ही अनुपमा थी। कितने उच्च कुलोत्पन्न श्रेष्ठिपुत्रों और राजकुमारों ने मेरे साथ विवाह की आतुरता प्रकट की और मेरे पिता को स्वर्ण तथा रत्नराशि का प्रलोभन दिया।

परन्तु मैं विश्ववन्दनीय भगवान् बुद्ध के पावन दर्शन करने चली गयी। उनके पास पहुँच कर मैंने उनका दर्शन किया, पादाभिवन्दन किया और उनके उपदेश-वचन सुने। मैं कृतार्थ हो गई, धन्य हो गई। फिर, केशवपन करा कर मैंने प्रव्रज्या ग्रहण की। इस घटना को हुए छः रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं। आज सातवीं रात्रि को मेरी अशेष वासनाओं का अन्त हो गया।"

**अनुपमा-**

**उच्चे कुले अहं जाता बहुवित्ते महद्धने।**
**वण्णरूपेन सम्पन्ना धीता मज्झस्स अत्रजा।।**

**सांहं दिस्वान सम्बुद्धं लोकजेट्ठं अनुत्तरं।**
**तस्स पादानि वन्दिला एकमन्तं उपाविसिं।।**

**सो मे धम्मं अदेसेसि अनुकम्पाय गोतमो।**
**निसिन्ना आसने तस्मि फुसयिं ततियं फलं।।**

*(थेरीगाथा-पृ. १५.१६)*

**१०. अम्बपाली**-अम्बपाली का जन्म वैशाली के आम्रकानन में हुआ था। इसी से उसका नाम अम्बपाली रक्खा गया। वह अपने समय की अनुपम सुन्दरी थी। जब उसकी देहयष्टि में यौवन कुसुमित हो उठा, तब उससे विवाह करने के लिए वैशालिक गणों में परस्पर स्वर्धा उत्पन्न हो गयी। कलह को शान्त करने के लिए गणसभा के अध्यक्ष ने यह निर्णय किया कि वह किसी एक की वधू न होकर नगरवधू बन कर रहेगी। कालक्रम से अम्बपाली जब वृद्धा हो गयी तब एक बार वैशाली में भगवान् बुद्ध का शुभागमन हुआ था। वहाँ वे उसीके आम्रकानन में ठहरे थे। अम्बपाली ने उनके सम्मुख उपस्थित होकर उनका पादाभिवन्दन किया और भोजन हेतु उन्हें भिक्षुसंघ के साथ अपने प्रासाद में निमन्त्रित किया। भगवान् बुद्ध ने उसका निमन्त्रण स्वीकार किया और भोजन के बाद उसे सद्धर्म का उपदेश प्रदान किया। अम्बपाली ने अपना आम्रकानन भिक्षुसंघ को दान कर दिया।

तत्पश्चात् बौद्ध-सम्प्रदाय में प्रव्रज्या लेकर दीक्षित अपने पुत्र विमल कौण्डिन्य के धर्मोपदेश के अनुसार संसार से प्रव्रजित होकर उसने भिक्षुओं की जीवनचर्या अपना ली और अपना शेष जीवन धर्मसाधना में व्यतीत कर दिया। उसकी गाथा में जराजनित विक्षोभकारी शारीरिक विकृतियों के वर्णन की पृष्ठभूमि में भगवान् बुद्ध के उपदेशवचन और त्रैकालिक सत्यता के प्रति उसकी अविचल निष्ठा अभिव्यक्त हुई है जो इस प्रकार है :-

अम्बपाली-

"काननं व सहितं सुरोपितं कोच्छ सूचितविचितग्ग सोभितं।
तं जराय विरलं तहिं तहिं सच्चवादिवचनमनञ्ञथा।।

कङ्कणं व सुकतं सुनिट्ठितं सोभते सु मम कण्णपालियो पुरे।
ता जराय वलीहि पलम्बिता सच्चवादिकवचनम नञ्ञथा।।

कञ्चनस्स फलकं व सुमट्ठं सोभते सु कायो पुरे मम।
सो वलीहि सुखुमाहि ओततो सच्चवादिवचनम नञ्ञथा।।

एदिसो अहु अयं समुस्सयो जज्जरो बहुदुक्खानमालयो।
सो पलेपपतितो जराघरो सच्चवादिवचनम नञ्ञथा"।।

*(थेरी गाथा पृ. २४-२५)*

बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा रचित गीतों का साहित्य एक ही स्वर में मुखरित है, और वह स्वर है निर्वाण की स्पृहणीयता। सांसारिक जीवन को विविध दुःखों और सन्त्रासों से अनुविद्ध पाकर विषसम्पृक्त भोजन की भाँति इन्होंने उसे परम हेय घोषित किया है। विश्वमैत्री, करुणा और अहिंसा पर प्रतिष्ठित भगवान् सुगत की शरणागति में ही इन भिक्षुणियों ने अपनी सद्गति का मार्ग ढूंढा है और अपनी अनन्य निष्ठा और ध्यान की एकाग्रता के बल पर इन्होंने अर्हत्पद की प्राप्ति की है। प्राचीन भारत के उस अतिचिरन्तन युग में सत्य के आलोक से उद्भासित निर्वाण के पथ पर सर्वस्व-परित्यागपूर्वक अग्रसर होनेवाली इन काषायवसना भिक्षुणियों के गीतों के उल्लेख के बिना महिला कवयित्रियों का परिचय अधूरा ही रह जाता है। यद्यपि इनके गीत संस्कृत में न होकर पालि भाषा में हैं, फिर भी उनका एक स्वतन्त्र महत्त्व और आकर्षण हैं और यही कारण है कि प्रसक्तानुप्रसक्त रीति का अनुसरण कर संस्कृत कवयित्रियों के विशद परिचय के परिशिष्टांश के रूप में उनकी रचनाओं की एक झलक यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची-

१. ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्यसहित) मैक्समूलर-सम्पादित, चौखम्बा, १९६६।
२. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय-प्रणीत

(पञ्चम संस्करण) शारदा संस्थान ३७-बी. रवीन्द्रपुरी दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।

३. बृहद्देवता, (शौनक-प्रणीत) सम्पादक और अनुवादक-रामकुमार राय (बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।

४. कन्ट्रीव्यूशन्स ऑफ वीमेन टु संस्कृत लिटरेचर, डॉ. यतीन्द्र विमल चौधरी, पी.एच. डी. (लन्दन) (कलकत्ता विश्वविद्यालय) ३-फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता।

५. वीमेन इन ऋग्वेद, भगवतशरण उपाध्याय एस. चाँद एण्ड कम्पनी (प्राइवेट लिमिटेड १६७४) रामनगर, नई दिल्ली-११००५५।

६. थेरीगाथा, सम्पादक-एन. के. भागवत एम. ए. प्रोफेसर, सेन्ट जेवियर्स कालेज, बम्बई १६३७।

७. परमत्थदीपनी, (पालि टैक्स्ट सोसायटी) सम्पादक-मैक्समूलर, लन्दन, १८६३।

८. साम्स ऑफ द सिस्टर्स, श्रीमती आर. डेविड्स द्वारा अंग्रेजी अनुवादात्मक संस्करण, लन्दन, १६०६।

९. ए हिस्ट्री ऑफ पालि लिट्रेचर, बी.सी.ला. (प्रथम भाग ) लन्दन, १६३३।

१०. कवीन्द्रवचनसमुच्चय, एफ. डब्ल्यू. टामस द्वारा सम्पादित बिब्लियोथिका इण्डिका (न्यू सीरीज) एशियाटिक सोसायटी ऑफ बङ्गाल, कलकत्ता, १६१२।

११. सदुक्तिकर्णामृत-श्रीधरदास-सङ्कलित, पण्डित श्रीरामावतारशर्मा द्वारा सम्पादित, बम्बई संस्कृत प्रेस, १६३३।

१२. शार्ङ्गधरपद्धति-शाङ्धरप्रणीत पी. पिटर्सन द्वारा सम्पादित, बम्बई, १८८६।

१३. सुभाषितावली, वल्लभदेव सङ्कलित पी. पिटर्सन द्वारा सम्पादित, एडुकेशन सोसायटी प्रेस, बम्बई, १८८६।

१४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम. कृष्णमाचारियर-प्रणीत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-१६७४।

१५. संस्कृत वाङ्मयकोष, श्रीधर भास्कर वर्णेकर-विरचित, भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता।

१६. मिथिला इन द एज ऑफ विद्यापति, राधाकृष्ण चौधरी-विरचित चौखम्बा, वाराणसी, १६७६।

१७. संस्कृत पोयटेसेज, डॉ. रमा चौधुरी ३, फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता, १६४१।

# नीतिशास्त्र का इतिहास

स्वच्छ आचरण एवं आदर्श चरित्र का विज्ञान रूप नीतिशास्त्र भारतीय साहित्य का एक प्रधान अङ्ग है। इसमें शान्तिपूर्ण, सुखमय तथा उन्नतिकर जीवन जीने की कला का उपदेश अनुभव के आधार पर सरल भाषा तथा सुबोध शैली में छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा दिये गये हैं, जो अधिक हृदयग्राही होने से जन-जन के कण्ठों में सुरक्षित रहे हैं।

संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थों में इस तरह के नैतिक उपदेश पुष्कल रूप में सङ्कलित है। महाभारत तो नीतिवचनों का खान ही है। यहीं से नितान्त लोकप्रिय विदुरनीति[1] का उद्भव हुआ है। यहाँ गृहस्थ जीवन के लिए आवश्यक चार वस्तुओं का घर में होना आवश्यक कहा गया है-वृद्ध दूर के संबन्धी, विपन्न कुलीन व्यक्ति, दरिद्रमित्र तथा सन्तानरहित बहिन। सुरक्षा की दृष्टि से सन्तानहीन बहिन को अपने परिवार में रखने का निर्देश दिया गया है।

**चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्य धर्मे।**
**वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या।।**

केवल भोजनाच्छादन पर निर्भर इन चारों के रहने से घर की सुरक्षा एवं गृहकार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है। वेतन के बिना भृत्यत्व का निर्वाह इन सबों से स्वतः ही संभव होगा।

आरोग्य, ऋण से ग्रस्त नहीं रहना, अप्रवास, सज्जनों के साथ उठना-बैठना, आश्रितों का पालन और भयरहितवास जीवलोक के सुख कहे गये हैं-

**आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।**
**स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।**

इसी तरह कहा गया है कि मनुष्यों को निम्नोक्त छह गुणों का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए-सत्य, दान, अनालस्य, अनसूया, क्षमा और धैर्य।

**षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्या कदाचन।**
**सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः।।**

रामायण, भागवत तथा अन्य पुराणों के साथ बौद्ध तथा जैन साहित्यों में भी नीतिवचनों की भरमार है। सुभाषितसंग्रह तथा अन्योक्तिपरक काव्यों में भी नीतिवचन

---

१. महाभारत उद्योगपर्व ३३ से ४० अध्याय।

उपलब्ध होते हैं, किन्तु प्राचीनकाल से ही स्वतन्त्र रूप से भी नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणयन की परम्परा रही है, जो आज हमलोगों के समक्ष विद्यमान हैं।

प्रो. लुडविक् स्टर्नवाख महाशय का कहना है कि भारतीय मनीषियों ने मानव-प्रकृति की दुर्बलताओं को समझकर उन पर विजय पाने तथा जीवन की जटिल परिस्थितियों से मुक्ति हेतु धैर्यपूर्वक सदासार परिपालन का सही निर्देश दिया है। भारतीय चिन्तकों का यह दृढ विश्वास रहा है कि मनुष्य का वर्तमान जीवन इसके पूर्वजन्मार्जित कर्मों का फल है और वर्तमान कर्म ही उसके भविष्यद् जीवन के निर्माण में सहायक होगा। फलतः अग्रिम जीवन में शुभ फलों की प्राप्ति हेतु वर्तमान जीवन में नीतिपूर्ण आचरण आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु नीतिशास्त्र का उद्भव हुआ जो सूक्ति, सुभाषित, छन्दोबद्ध नीतिवाक्य तथा लोकोक्तियों के रूप में यथाक्रम विकसित होता रहा है।

अनुष्टुप् छन्दों में अधिकतर निबद्ध नीतिवचन दीर्घकाल से लोककण्ठों में सुरक्षित रहे हैं। आरम्भ में वे लिपिबद्ध होकर किसी एक ग्रन्थ में सङ्कलित नहीं हो पाये थे। अवसर-विशेष में प्रसङ्ग आने पर संबद्ध सूक्तियाँ विद्वानों के द्वारा कुशलतापूर्वक उल्लिखित होती रही हैं। नीतिवचनों में केवल हितकर, सुन्दर तथा विवेकपूर्ण विचार ही नहीं अपितु उनकी अभिव्यक्ति भी आकर्षक, स्पष्ट और हृदयग्राही होती रही है। जीवन के विविध मार्मिक प्रसङ्गों को लेकर सटीक शब्दों में कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश, सूक्ष्म विचार, व्यङ्ग्य-विनोद तथा विविध प्रकार की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति यहाँ दर्शनीय है। अतएव सार्वभौम सत्य के निदर्शक ये नीतिवचन सर्वत्र समानरूप से सर्वदा समादृत होते रहे हैं। बौद्ध विद्वानों के अनुसार सुन्दर शब्दों में वर्णित वे उपदेश नीतिवचन हैं, जिनमें धर्म का वर्णन है अधर्म का नहीं। सत्य का अभिधान है असत्य का नहीं। अतएव धम्मपद तथा बोधिचर्यावतार आदि नीतिशास्त्र में परिगणित किये जा सकते हैं। जैन धर्मावलम्बियों का स्थानाङ्ग भी इसी कोटिका है।

यद्यपि लोक-कण्ठों में विद्यमान इन नीतिवचनों के मूल रचयिता का परिचय उपलब्ध नहीं है तथापि आज हम लोगों के समक्ष विद्यमान इस नीतिशास्त्र के रचयिता के रूप में प्राचीन दो प्रमुख विद्वानों का नाम आदर के साथ लिया जाता रहा है। इनमें प्रथमतः उल्लेखनीय हैं कालजयी राजनीतिवेत्ता चाणक्य और अपर नाम है भर्तृहरि, जिनका नीति आदि शतकत्रय अधिक लोकप्रिय हुआ।

नीतिशास्त्र के सबसे प्राचीन तथा स्वतन्त्र ग्रन्थ चाणक्यनीतिदर्पण में यद्यपि मनुस्मृति, महाभारत तथा मार्कण्डेयपुराण आदि के पद्य भी उपलब्ध होते हैं तथापि महान् राजनीतिवेत्ता कालजयी पुरुष चाणक्य को इस नीतिदर्पण के रचयिता कहना शायद समाजसुधारक के रूप में भी इनकी ख्यापि को प्रमाणित करता है। शताब्दियों से सांसारिक ज्ञान एवं दूरदृष्टि के लिए चाणक्यनीति विख्यात रही है। कामन्दक के नीतिसार में चाणक्य

के प्रति जो सम्मान दिखाया गया है इससे स्पष्ट है कि उस समय में व्यवहार तथा नीति के क्षेत्र में चाणक्य सर्वाधिक प्रतिष्ठित रहे हैं। इनके नीतिवाक्य मुक्तक पद्य की तरह अपने में सर्वथा परिपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए दो एक पद्य यहाँ उद्धृत हैं -यथा उद्योग करने पर दारिद्र्य नहीं रहता, जप करने वालों को पाप नहीं होता, मौन रहने पर कलह नहीं होता और जागते रहने पर भय नहीं होता है -

**उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम्।**
**मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरतो भयम्।।**

शुष्कमांस, वृद्धा स्त्री, उदयकालिक सूर्य, पुराना दही, प्रातः काल की रतिक्रीडा तथा निद्रा ये छह सद्यः प्राण हरण करने वाले होते हैं -

**शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।**
**प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्।।**

यहीं कहा गया है कि संसार के ताप से जले हुए लोगों के लिए तीन विश्रामस्थल हैं, पुत्र, पत्नी तथा सज्जनों का समागम।

**संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः।**
**अपत्यं च कलत्रं च सतां सङ्गतिरेव च।।**

विदुरनीति में जैसे मनुष्य के छह गुण बताए गये हैं उसी तरह यहाँ कल्याणकामी मानव को छह दोषों से बचने के लिए कहा गया है-निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता। इनसे लोगों को सदेव बचना चाहिए-

**षड्दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।।**
**निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।।**

यद्यपि कहीं-कहीं एक ही तथ्य को विभिन्न दृष्टियों से यहाँ प्रस्तुत किया गया है तथापि उनमें पुनरुक्ति दोष की प्रतीति नहीं होती।

अनेक विद्वानों का कहना है कि चाणक्य ने कुछ ही नीतिवाक्यों की रचना की थी। पश्चात् उसको आधार मानकर नीतिपद्य या नीतिवाक्य लिखने की एक परम्परा चल पड़ी, जिसका निंवाह समय-समय पर विद्वान् रचनाकारों के द्वारा होता रहा है और उन पद्यों या वाक्यों के साथ चाणक्य का नाम जुड़ता रहा है। फलतः नीतिपरक रचनाओं का एक संग्रह है चाणक्यनीति, जिसका रचयिता अकेला चाणक्य नहीं अपितु भारतीय जीवन के आदर्श को परखने वाले अनेक कुशाग्रबुद्धि विद्वान् हुए हैं। लोकजीवन की व्यवस्था के

अभिन्न अङ्ग की तरह मान्य यह चाणक्यनीतिसंग्रह सर्वत्र भारत में पाठ्य के रूप में समादृत हुआ। फलतः इसके असंख्य हस्तलेख यत्र-तत्र उपलब्ध होते रहे हैं। इस संग्रह की प्रतिलिपि के समय विद्वानों ने अपनी रुचि से पाठ का परिवर्तन-परिवर्धन या संशोधन भी किया है जिससे मूलपाठ को पहचानना ही पश्चात् असंभव हो गया।

खृष्टीय बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ओक्रेस्लर महाशय ने चाणक्यनीति पर अपना शोध निबन्ध प्रस्तुत कर विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्होंने सत्रह हस्तलेखों के आधार पर इसका प्रामाणिक संस्करण भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया। पश्चात् इस शताब्दी के चतुर्थ चरण में लुडविक स्टर्नवाख महाशय ने तीन सौ से अधिक मातृकाओं का संग्रह एवं परीक्षण कर तथा क्रेस्लर साहब के संस्करण की सहायता से छह पाठों में विभक्त कर चाणक्यनीतिसंग्रह का प्रामाणिक संस्करण विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर से प्रस्तुत किया है। प्रो. स्टर्नवाख महाशय का दीर्घकाल-साध्य परिश्रम, अनुसन्धान बुद्धि, धैर्य तथा भारतीय विद्या के प्रति अनुराग सर्वथा श्लाघनीय है। इन्होंने अपने इस दीर्घकाल-साध्य परिशीलन को चाणक्यनीतिशाखा-सम्प्रदाय नाम से अभिहित किया है। इस ग्रन्थ के दो पाठ वृद्ध चाणक्य नाम से, एक चाणक्यनीतिशास्त्र नाम से, एक चाणक्यसारसंग्रह नाम से, एक लघुचाणक्य नाम से तथा अन्तिम चाणक्य राजनीतिशास्त्र नाम से क्रमशः प्रकाशित हुए हैं। इन सभी पाठों के आधार पर इस ग्रन्थ के मूलपाठ के निर्णय का प्रयास भी यहाँ किया गया है।

१. चाणक्यनीतिदर्पण नाम से प्रसिद्ध वृद्ध चाणक्य का प्रथम या अलङ्कृत पाठ में तीन सौ बयालिस श्लोक संकलित हैं, जो सत्रह अध्यायों में विभक्त हैं।

२. इसके दूसरे या सामान्य पाठ में केवल आठ अध्याय तथा १०६ से १७३ पद्य संकलित हैं। यह प्रथम पाठ का एक तरह से संक्षिप्त रूप है। दोनों ही पाठों में भूमिका के रूप में आरम्भ में तीन पद्य कहे गये हैं, जहाँ शैली में कोई भेद नहीं प्रतीत होता है।

३. इसका तीसरा पाठ चाणक्यनीतिशास्त्र नाम से परिचित है। चाणक्यशतक भी इसी का नामान्तर है। यहाँ आरम्भ के दो पद्यों में इसका गुणगान इस प्रकार किया गया है। यह ग्रन्थ नानाशास्त्रों से उद्धृत राजनीतिका समुच्चय है तथा सभी शास्त्रों के बीच यहाँ निहित है। चाणक्य द्वारा कहे गये इस मूलसूत्र के ज्ञान से मूर्ख भी विद्वान् बन जाता है।

नाना शास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।
सर्वबीजमिदं शास्त्रं चाणक्यं सारसंग्रहम्।।
मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण मूर्खो भवति पण्डितः।।

इस पाठ में अनुष्टुप्छन्द में निबद्ध केवल एक सौ आठ पद्य विद्यमान हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य बलदेव उपाध्याय का[1] कहना है कि चाणक्यनीतिका यही मूलपाठ रहा होगा, अतः इसे प्राचीनतम तथा प्रथमपाठ मानना चाहिए। अष्टोत्तरशत की संख्या भारतीय अवधारणा में माङ्गलिक मानी गयी है, संभव है इसी वासना से लेखक ने इसे यहाँ अपनाया होगा।

४. चतुर्थ पाठ का नाम चाणक्यसारसंग्रह है। भारत के पूर्वोत्तरक्षेत्र तथा नेपाल में इस पाठ का अधिक प्रचार पाया जाता है। इसमें अनुष्टुप् छन्द के तीन सौ श्लोक संगृहीत हैं, जो शतकत्रय में यथाक्रम विभक्त हैं। यहाँ मंगल के चार पद्य उपलब्ध हैं, दो वृद्धचाणक्य के मंगल पद्य से मिलते जुलते हैं, तीसरा पद्य भिन्न प्रकार का है और चौथा चाणक्यनीतिशास्त्र के दूसरे पद्य के समान है। इसमें लोकनीति के साथ राजनीति के भी विस्तृत उपदेश दिये गये हैं। इसके अध्ययन से कार्य-अकार्य, शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म आदि के साथ विनय का ज्ञान भी सुलभतया संभव है। यहाँ अन्तिम पद्य में सारचतुष्टय की शिक्षा के समय काशीवास का महत्त्व ख्यापित किया गया है। इस असार संसार में चार वस्तुएँ ही सार रूप में विद्यमान हैं, काशी में वास, सज्जनों की सङ्गति, गङ्गाजल और भगवान् शिव की सेवा।

**असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।**
**काश्यां वासः सतां सङ्गः गङ्गाम्भः शम्भुसेवनम्।।**

आचार्य बलदेव उपाध्याय का कहना है कि इस संग्रह का संग्राहक निश्चय ही कोई काशीवासी अथवा काशी के प्रति निष्ठावान् व्यक्ति रहा होगा, क्योंकि उक्त सारचतुष्टय काशी में ही सुलभ है।

५. इसका पञ्चम पाठ लघुचाणक्य नाम से प्रसिद्ध है। यह भारत की अपेक्षा युरोप में गत शताब्दी से ही अधिक लोकप्रिय रहा है। तिरासी से सन्तानवे तक पद्य यहाँ संकलित हैं, जो आठ अध्यायों में विभक्त हैं और प्रत्येक अध्याय में दश से तेरह तक पद्य विद्यमान हैं। कुछ विद्वानों की दृष्टि में सबसे अधिक उपयोगी यही संग्रह है। गेलेनोस नामक युनानी संस्कृतज्ञ ने इसके मूल संस्कृत से युनानी भाषा में अनुवाद कर सृष्टीय उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही इसे प्रकाशित किया था जो क्रमशः अन्य अनुवादों के माध्यम से सम्पूर्ण युरोप में लोक-प्रिय हुआ। यहाँ भी वृद्धचाणक्य के आरम्भ में उपलब्ध तीन मङ्गल पद्य अविकल रूप से सुरक्षित हैं।

६. सर्वाधिक विशाल संग्रह इसका षष्ठ पाठ चाणक्यराजनीतिशास्त्र नाम से प्रसिद्ध है। आठ अध्यायों में विभक्त पाँच सौ चौतिस श्लोकों के इस संग्रह में तीन सौ सन्तानवे

---

१. द्रष्टव्य **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. २९६ (आ. बलदेव उपा.)

पद्य केवल यहीं उपलब्ध हैं अन्य पाँच पाठों में नहीं। चूँकि चतुर्थ और पञ्चम अध्यायों में वर्णित विषयों का सम्बन्ध मुख्यरूप से राजनीति से है, अतः राजनीतिशास्त्र इसका नामकरण अन्वर्थक है। यहाँ चतुर्थ अध्याय में राज तथा इसके व्यवहार का उपदेश है और पञ्चम अध्याय में राजा के सेवक, मन्त्री, पुरोहित तथा सेनापतिआदि के कर्तव्य का वर्णन और कर वसूल करने की प्रणाली आदि निर्दिष्ट हैं।

यह पाठ यद्यपि भारत में बहुत प्रचारित नहीं हो पाया तथापि हजारों वर्ष पूर्व भारत से बाहर इसकी लोकप्रियता का प्रमाण तिब्बती तन्जूर में किया गया सृष्टीय नवमशतक का अनुवाद है। चूँकि प्रसिद्ध कादम्बरी के पद्य-अकारणाविष्कृतवैरदारुणात् आदि पद्य यहाँ उद्धृत हैं अतः इसका समय सृष्टीय सप्तम शतक के पश्चात् ही मानना होगा किन्तु क्रमशः खृष्टीय दशमशतक में यह अपने चरम उत्कर्ष पर विद्यमान था। इस समय तक इसके तिब्बती अनुवाद का भी पूरा प्रचार एवं आदर हो चुका था। ऐतिहासिकों का मानना है कि सुभाषित संग्रहों में तथा गरुडपुराण की बृहस्पतिसंहिता में इसी पाठ से पद्यों का संग्रह किया गया है। इससे इस पाठ का महत्त्व भारत में भी कुछ कम नहीं प्रतीत होता है। प्रो. लुडविक स्टर्नवाख महाशय ने उपर्युक्त इन छह पाठों के आधार पर चाणक्यनीति के मूलरूप का अनुसन्धानपूर्वक संघटन बड़े परिश्रम तथा विवेक से किया है। इनके अनुसार चाणक्यनीति के मूलग्रन्थ में ११९६ श्लोक हैं, जबकि चाणक्य के नाम से सुभाषितसंग्रहों में विकीर्ण पद्यों की संख्या दो सहस्र से भी अधिक हैं - ऐसा आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने इतिहास में कहा है।

अभिप्राय यह है कि चाणक्यनीति भारतीय साहित्य का एक विशिष्ट ग्रन्थरत्न है, जिसका प्रचार मानव जीवन के सुधार के लिए तथा राजाओं को नीतिशिक्षा के लिए भारत तथा भारत से बाहर भी व्यापक रूप में दीर्घकाल से होता रहा है इसी से इसकी लोकप्रियता आँकी जा सकती है। चाणक्यनीति के मूल एवं उपबृंहण की समस्या आज भी पूर्णतः समाहित नहीं हो सकी है, न तो इसके वास्तविक प्रणेता के प्रसङ्ग में इदमित्थंतया कुछ कहा जा सकता है।

## भारत से बाहर चाणक्यनीति का प्रसार

भारतीय संस्कृति के द्वीपान्तर में प्रवेश तथा प्रसार के साथ नीतिवचन तथा सुभाषितों का भी प्रवेश तथा प्रसार हुआ है। बृहत्तर भारत के देशों में ये सुभाषित या नीतिवचन इतनी सुन्दरता से प्रविष्ट हो गये हैं कि वहाँ के निवासी अपने ज्ञानवर्धन हेतु निरन्तर इनका आश्रय लेकर जीवन को सुखमय तथा शुभमय बनाते रहे हैं। इन नीतिमयी सूक्तियों की लोकप्रियता बृहत्तर भारत के समस्त देशवासियों में देखी जाती है। तिब्बती, मंगोली, मंचुरियन, नेपाली, सिंघली, वरमी, सियामी, चाम रूमेर, जाबा तथा बाली निवासियों में

इनका व्यापक प्रचार देखा जाता है। पहले ही कहा जा चुका है कि तिब्बती के प्रख्यात ग्रन्थ समुच्चयतन्जूर में चाणक्यनीतिमयी सुक्तियाँ उपलब्ध हैं। मसुराक्ष नामक विद्वान् का नीतिशास्त्र चाणक्यराजनीतिशास्त्र का सम्पूर्णतः अनुवाद है। विमलप्रश्नोत्तररत्नमाला, सुभाषितरत्ननिधि तथा शेखदौगबू नामक ग्रन्थों में भी नीतिपरक सूक्तियाँ संगृहीत हैं। इस मूल संस्कृत के तिब्बती अनुवाद का अनुवाद मंगोल, पश्चिमी मंगोल तथा मनचूरिया की भाषा में भी किया गया है। इस तरह चाणक्यनीति चीन के रास्ते अन्य देशों के विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं में भी प्राप्त है, जिससे इस भाषा के लोग भी चाणक्य की उदात्तनीतियों से पूर्ण परिचित हो सके। सिंघली साहित्य भी चाणक्यनीतियों से परिचय रखता है। सम्पूर्ण चाणक्यनीतिशास्त्र सिंघली साहित्य में उपलब्ध है। दो बहुमूल्य भारतीय नीतिपरक ग्रन्थ सिंघली साहित्य में उपलब्ध हैं व्यासकारय और प्रत्ययशतकय। चाणक्यनीति तथा भर्तृहरिशतक के पद्य यहाँ व्यासकारय मे संकलित हुए है तथा प्रत्ययशतकय में भी चाणक्यनीति, पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश के पद्य अधिकतर मिलते हैं। सिंघली भाषा में उपलब्ध सुभाषित संस्कृत मूलक ही पाये जाते हैं जो तमिल भाषा के माध्यम से वहाँ तक पहुँच पाये हैं।

वर्मा में भी चाणक्यनीति खूब लोकप्रिय हुई। ये सूक्तियाँ वरमीभाषा में पालिसाहित्य के लोकनीतिनामक ग्रन्थ से संगृहीत हैं। लोकनीति का वर्मी अनुवाद नीति में चाणक्यनीतिशास्त्र सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध है। वर्मा की लोकनीति नामक पालिग्रन्थ थाईलैण्ड, चाम तथा ख्मेर की संस्कृति में भी प्रविष्ट है। थाईदेशवासियों में चाणक्यनीति का तीसरा पाठ पूर्ण लोकप्रिय है। चम्पा, कम्बुज, लाओस तथा मलय देश में भी पालि लोकनीति प्रचलित रही है। प्राचीन जाबा साहित्य में ये नीतियाँ मूल संस्कृत से सीधे आयी हैं, किन्तु अन्य देशों में इस चाणक्यनीति का प्रवेश पालि भाषा के माध्यम से हुआ है। भारत के पश्चिम में भी फारस देशवासियों ने चाणक्यनीतिशास्त्र का फारसी में अनुवाद किया है तथा स्पेन के एक विद्वान् ने खृष्टीय द्वादश या त्रयोदश शतक में इसका अरबी अनुवाद प्रस्तुत किया था। फलतः चाणक्यनीति की यह भ्रमणकथा इसकी उपादेयता, व्यावहारिकता तथा लोकप्रियता का साक्षात् उदाहरण मानी जा सकती है।

पहले ही कहा जा चुका है कि महान् राजनीतिवेत्ता चाणक्य के बाद नीतिग्रन्थों के रचयिताओं में दूसरा नाम भर्तृहरि का उल्लेख योग्य है। विविधता, विशदता, सरलता तथा आलङ्कारिक कल्पना आदि पर पूरा अधिकार रखनेवाला इस कवि ने संस्कृत जैसी नियमबद्ध भाषा में अपनी कृति-शतकत्रय, नीति, शृङ्गार तथा वैराग्यशतक-का प्रणयन कर प्राचीन भारतीय साहित्यकारों की प्रथम पंक्ति में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है। वाक्यपदीय के रचयिता वैयाकरण भर्तृहरि से भिन्न इस शतकत्रय के प्रणेता भर्तृहरिका समय डॉ. डी.डी. कौशाम्बी महाशय ने खृष्टीय प्रथमशतक युक्ति तथा प्रमाणों के बल पर

निर्धारित किया है, जो ऐतिहासिकों को भी मान्य है। यद्यपि इनकी कृति में नीति से अधिक नीतिबोधक उपदेश लम्बे छन्दों में उपलब्ध हैं तथापि चाणक्यनीति की तरह की यह कृति भी पर्याप्त लोकप्रिय हुई तथा नैतिक शिक्षा इससे भी मिलती ही रही है। दो सौ से भी अधिक उपलब्ध संस्करण इसकी लोकप्रियता का साक्षात् प्रमाण है, उनमें प्रो. डी. डी. कौशाम्बी का सामीक्षिक संस्करण विद्वानों में अधिक समादृत हुआ। इन्होंने ३७७ मातृकाओं के आधार पर पूर्ण परिश्रम एवं विवेक से अपना संस्करण प्रस्तुत किया है। यद्यपि शतकत्रय नामकरण के आधार पर इनमें तीन सौ पद्य ही अपेक्षित हैं तथापि इसका लगभग तीन गुना अधिक पद्य सम्पादन के समय सम्पादक को उपलब्ध हुए थे, जिनमें केवल दो सौ ही ऐसे पद्य थे, जो सभी मातृकाओं में समान रूप से उपलब्ध थे। भर्तृहरि ही शायद पहले कवि हैं जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी में ही यूरोप के विद्वानों के बीच प्रसिद्धि पायी। उस समय पद्मनाभनामक पण्डित ने अब्राहमरोजर को इस शतकत्रय का अभिप्राय समझाया था।[1]

भर्तृहरि के नाम से निर्दिष्ट कुछ और कृतियाँ मिलती हैं। इनमें ८४ पद्यो में निबद्ध 'विटवृत्त'[2] नामक कृति में विट, धूर्त आदि से बचने के लिए सांसारिक उपदेश दिये गए हैं।

'विज्ञानशतक'[3] १०३ मुक्तक पद्यों में विरचित है। 'राहतकाव्य' तथा 'रामायण'[4] में २२ पद्य हैं। किन्तु विटवृत्तादि उपर्युक्त रचनाएँ शतकत्रयादि के प्रणेता भर्तृहरि के नहीं है।

महाकवि शिल्हण का 'शान्तिशतक' भूर्तृहरिके वैराग्यशतक का पूर्णतः अनुसरण करता है। इसके चार परिच्छेदों में विभिन्न छन्दों में विरचित १०४ श्लोक हैं। K. Schonfeld ने सर्वप्रथम आलोचना के साथ १९१० ई. में इसका सम्पादन किया था। उन्होंने इसे दो श्रेणियों में विभक्त किया है। वे इसके १०४ श्लोकों को भौतिक मानते हैं और १८ श्लोक शिल्हण-कृत होने में सन्देह करते हैं। १८१७ ई. से लेकर आजतक शान्तिशतक के १५ से अधिक संस्करण हो चुके हैं। इससे इसकी लोकप्रियता प्रमाणित होती है।

शान्तिशतक के अनेक श्लोक भर्तृहरि के वैराग्यशतक[5] से लिए गए हैं, या उनके आधार पर लिखे गए हैं। इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष के नागानन्द,[6] बिल्हण-काव्य[7] तथा

---

१. द्रष्टव्य **History of Indian Litrature** वाल्यूम ४ भाग। पृ. ५०-५१

२. एम.एस. मद्रास MSS Library. No. /D ११६८३ द्र. Ludwik Stirnbach कृत Gnomic And Didactic Peotry

३. **भर्तृहरि-शतकादित्रय** के साथ १८६७ में नागपुर से प्रकाशित। द्र. वही पृ. ५४

४. वही पृ. ५४

५. प्र. वही पृ. ५५ फुटनोट संख्या- २७८ तथा २७९

६. प्र. वही पृ. ५५ फुटनोट संख्या- २७८ तथा २७९

७. **शान्तिशतक** श्लोक संख्या ॥, ५ = बिल्हन काव्य ५३

हितोपदेश[1] से भी कतिपय नीति-श्लोक लिए गए हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शान्तिशतक एक संकलनात्मक कृति है। यह शिल्हण की स्वतन्त्र रचना है।

शिल्हण काश्मीर के निवासी थे। यह इनके नाम से ही स्पष्ट है। इनके शिल्हण, शिलहण, सिल्हण, सिहलण के साथ बिल्हण नाम भी मिलते हैं। लक्ष्मण भट्ट-आङ्कोलकर अपनी पद्यरचनामें शान्तिशतक से गृहीत पद्योंको बिल्हणविरचित बतलाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि शिल्हण और बिल्हण एकही व्यक्ति हैं। इनके कतिपय पद्य सदुक्तिकर्णामृत (१२०५) में संगृहीत हैं।[2] अतः इनका समय बारहवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है।

इसी प्रसङ्ग में उन परवर्ती कृतियों का भी उल्लेख करना समुचित है जो भर्तृहरि के शतकत्रय के आदर्शपर विरचित हैं। इनमें धनदराजकृत शतकत्रय-शृङ्गारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक[3] में क्रमशः १०३, १०३ तथा १०८ श्लोक हैं। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर धनदराज के शतकत्रय में वह हृदयस्पर्शी भाव-गाम्भीर्य नहीं है जो भर्तृहरि के शतकत्रय में मिलते हैं।

धनदराज के पिता का नाम देहल था। १४३४ ई. में इन्होंने अपने शतकत्रय की रचना की थी।

जनार्दनभट्ट ने भी उसी आदर्श पर शृङ्गारशतक तथा वैराग्यशतक की रचना की थी। इनके प्रत्येक शतक में १०१ श्लोक हैं। इन्होंने शृङ्गारशतक को अत्यधिक सरस और मांसल बनाने का प्रयास किया है।[4]

कवि नरहरि-विरचित 'शृङ्गारशतक' में ११५ श्लोक हैं। यह भी काव्यमाला के खण्ड १२ में प्रकाशित है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में नरहरि नाम के अनेक व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त शृङ्गारशतक किस नरहरि की रचना है यह इदमित्थंतया कहना कठिन है।

व्याकरण, दर्शन तथा साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नारायणदीक्षित के सुपुत्र परम विश्रुत अप्पय दीक्षित ने २०१ श्लोकात्मक 'वैराग्यशतक'[5] की भी रचना की थी। ये पण्डितराज जगन्नाथके समकालीन थे। इनका समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और १७वीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। वैराग्यशतक भक्ति और वैराग्य से ओत-प्रोत उच्च कोटि की रचना है।

---

१. **शान्तिशतक** ॥, २३ = **हितोपदेश** ४, ८७
२. Ludwik Sternbach के अनुसार शिल्हण का समय ११३० से १२०५ के बीच मानना उचित है। वही पृ. ५५
३. **काव्यमाला** त्रयोदश गुच्छक द्र. वही पृ. ५६
४. **काव्यमाला** गुच्छक ११ और १३। वही पृ. ५६
५. **काव्यमाला** प्रथम गुच्छक, पृ. ६१-६६

भर्तृहरि के शतकत्रय के प्रतिरूप प्राकृतभाषा में चार सौ गाथाओं का एक संग्रह है। इसे वैरोचन नामक एक बौद्ध दार्शनिक ने 'रसिअपज्जसन' शीर्षक से संकलित किया था।[1]

पण्डितराज जगन्नाथ का 'भागिनीविलास' भी बहुत कुछ शतकत्रय के ही आदर्श पर विरचित है। इसमें चार विलास हैं। नीति और अन्योक्तिपरक प्रास्ताविक विलास में १२६, द्वितीय शृङ्गार विलास में १८३, तृतीय करुणा विलास में २६ और अन्तिम शान्त विलास में ४६ श्लोक हैं।[2]

भामिनीविलास के पद्य पण्डितराज के कवि-कर्मकौशल के चूड़ान्त निदर्शन हैं। उनके जीवन के विभिन्न अनुभवों के दर्पण हैं। अपनी प्रियतमा भामिनी के मनोभावों का अभिव्यञ्जन जो उन्होंने शृङ्गार विलास[3] में किया है उसमें भावाभिव्यक्ति की पराकाष्ठा है।

आन्ध्र प्रदेशीय मुगुज ग्राम वास्तव्य पेरु भट्टात्मज पण्डितराज जगन्नाथ (१६वीं शताब्दी) तैलङ्ग ब्राह्मण थे। वे अनेक शास्त्रों के विज्ञाता, प्रणेता तथा विशिष्ट विवेकी आलोचक थे।

जैनाचार्य अमितगति (द्वितीय) द्वारा संकलित ३२ अध्यायों में विभक्त एक विशिष्ट कृति है -

'सुभाषितरत्नसन्दोह'[4] । इसमें ९२२ श्लोक हैं। १०वीं-११वीं शताब्दी में इसका संकलन हुआ था। इसमें जैनधर्म के नियम, उपदेश, आचरण आदिका एक-एक अध्यायमें वर्णन किया गया है। एक अध्याय में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है, जो पूर्व-पूर्व प्रयुक्त छन्दों से भिन्न है।

सुभाषित-संग्रहों की तालिका में एक संग्रह है 'शतकावली'[5]। इसमें अमरुशतक, शान्तिशतक, सूर्यशतक, भर्तृहरि-शतक आदि के श्लोक संकलित हैं। नीत्युपदेशात्मक पद्यों के प्रसङ्ग में 'अमरुशतक' के भी पद्य संगृहीत है, इससे सिद्ध होता है कि शृङ्गार प्रधान होने पर भी इसकी गणना नीत्युपदेशात्मक कृतियों में भी होती है। इसके अनेक पद्य उपदेशपरक हैं ही। निम्नलिखित पद्य में द्रष्टव्य है जो भावी प्रोषित-पतिका अपने जीवन को उपदेश दे रही हैं।

---

१. **जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी**, बंगाल, १९१०, पृ. १६७-१७८।

२. खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, मुम्बई, १९६३ ई. **भामिनीविलास** के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं, जिनमें श्लोक-संख्या भिन्न-भिन्न है।

३. **भामिनीविलास**, द्वितीय विलास, १५-२७, ९२।

४. जैनिष्टिक लिटरेचर, एल. स्टर्नबाख, (**महावीर और उनकी शिक्षा**) Mahavir and his Teaching स्मृति ग्रन्थ, मुम्बई १९७४ ई.

५. बङ्गाक्षर में कलकता से प्रकाशित, १८५० ई. द्र.। History of Indian Litrature Vol.-IV, P. ३३

प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखै रस्रै रजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमें सर्वे समं प्रस्थिता-गन्तव्ये
सति जीवित ! प्रिय सुहृत्सार्थः किमु त्यज्यसे।।

प्रियतम के जाने पर मेरे प्राण! तुम्हे जाना ही है तो फिर अपने जाते हुए इन मित्रों का साथ क्यों छोड़ते हो? इस मार्मिक उपदेश को सहृदय भलीभाँति जानते हैं।

लिखन्नासते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो
निराहाराः सख्यः सतत रुदितोच्छून नयनाः।
परित्यक्तं सर्वं हसित पठितं पञ्जर-शुकै-
स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने ! मानमधुना।।

यहाँ मानिनी नायिका को शीघ्र मान छोड़ने का कितना सुन्दर उपदेश है। काव्य प्रकाश में इसे उत्तम काव्य का उदाहरण माना गया है।

इस पर अर्जुनवर्मदेव (१३वी शताब्दी) की 'रसिकसञ्जीवनी' नामकी और वेम भूपाल की 'शृङ्गारदीपिका' नामकी टीका अति प्रसिद्ध है।

'कुट्टनी-मत'[1] कविवर दामोदर गुप्त की सरस मनोरम उपदेशात्मक काव्य की अनूठी रचना है। ये काश्मीरनरेश जयापीड (७७६-८१३ ई.) के प्रधान अमात्य थे। तत्कालीन काश्मीर का राजनैतिक इतिहास समाज की विशृङ्खल तथा अनियन्त्रित परिस्थिति को बतलाता है। राजाओं, राजकुमारों और दरबारियों का इतना चारित्रिक पतन हो चुका था कि वे वेश्याओं, कुट्टनियों से ही घिरे रहते थे। दामोदर गुप्त ने बहुत नजदीक से उनके चरित्रों को परखा था। 'राजा कालस्य कारणम्' इसके अनुसार सामाजिक जीवन भी इससे प्रभावित हो गया था।

इसी सामाजिक पृष्ठभूमि में कुट्टनीमत की रचना हुई थी। समाजके परिष्कार तथा परिशोधन के लिए इस उपदेशात्मक काव्य को प्रस्तुत किया गया था, जो काव्य-पक्ष से भी अत्यन्त भव्य, आवर्जक तथा रोचक है। १०५६ आर्याओं में गुम्फित यह काव्य अपनी मधुरता के लिए संस्कृत काव्यके इतिहासमें अति प्रसिद्ध है।

'विकराला' नामकी कुट्टनी के वर्णन में[2] उसकी कुरूपता प्रत्यक्ष नाचने लगती है।

---

१. **काव्यमाला** तृतीय गुच्छक। प. मनसुख राम त्रिपाठी कृत संस्कृत व्याख्या सहित मुम्बई से प्रकाशित। अत्रिदेव विद्यालंकार कृत हिन्दी अनुवाद के साथ १९६१ में काशी से प्रकाशित।

२. द्र. आ. बलदेव उपाध्याय का **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. ४००-४०१

कामि-जनों से धन ऐंठने के लिए जो वह वेश्याओं, गणिकाओं को विस्तारसे शिक्षा देती है, उसमें वह कामशास्त्र का सम्पूर्ण सार बतला देती है।

प्रसिद्ध 'आर्यासप्तशती' के रचनाकार गोवर्धनाचार्य (११वी शती) से तीन सौ वर्ष पूर्व ही दामोदरगुप्त ने प्रसादमयी सरस मनोहर आर्याओं की रचना से आर्या के प्रथम परिष्कारक महाकवि के रूप में अपने को सुप्रतिष्ठित कर लिया था।

अपनी आर्याओं की प्रशस्ति में गोवर्धनाचार्य की प्रसिद्ध उक्ति में किञ्चित् परिवर्तन करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने जो कविवर दामोदरगुप्त के सम्बन्ध में कहा है वह सर्वथा सत्य है -

"मसृण-पद-रीति-गतयः सज्जन-हृदयाभिसारिकाः सुरसाः।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा दामोदरस्यार्याः।।"[1]

अतएव आचार्य मम्मट तथा रुय्यकने अपने लक्षण-ग्रन्थों में और वल्लभदेव तथा शार्ङ्गधरने अपने सुभाषित-संग्रहों में इनकी आर्याओं को उद्धृत किया है।

आचार्य मम्मट ने, जहाँ शब्दालंकार रसाभिव्यञ्जन में उपकारक होता है उसे स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने के लिए "कुट्टनीमत-की निम्नलिखित आर्या को उदाहृत किया है-

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला।।[2]

यहाँ विरहिणी मालती की मनोदशा का वर्णन है। अनङ्गतप्ता वह बाला दिन-रात अपनी सखियों से कहती रहती है-ए सखि ! कपूर को हटाओ, मौक्तिक हारको दूरही रखो, कमल और कमल-नालों का क्या प्रयोजन ? इन सबों से शरीर का ताप शान्त होने वाला नहीं। यहाँ रेफ और लकार के मञ्जुल प्रयोग से निष्पन्न शब्दानुप्रास विप्रलम्भ शृङ्गार के अभिव्यञ्जन नें परमोपकारक है।

वेश्याओं की तुलना चुम्बक के साथ करते हुए कवि ने कितना सुन्दर और सटीक वर्णन किया है-

परमार्थकठोरा अपि विषयगतं लोहकं मनुष्यं च।
चुम्बकपाषाणशिला रूपाजीवाश्च कर्षन्ति।।[3]

---

१. **संस्कृत साहित्य का इतिहास** पृ. ४०१
२. **कुट्टनीमत**, आर्या १०३ **काव्यप्रकाश**, अष्टमोल्लास, कारिका ३६ पर उदाहृत।
३. **कुट्टनीमत**, आर्या ३२०

जैसे परमार्थ कठोरा-अत्यन्त कठोर होनेवाला चुम्बक पत्थर विषयगत-अपनी पहुँचमें आए हुए लोहे को खींच लेता है, वैसे ही परमार्थकठोरा-परिणाम में पीड़ा देने वाली रूपसे जीविका प्राप्त करने वाली वेश्याएँ विषयगत-काम-विषय में आसक्तजनों को निश्चयही खींच लेती हैं।

कवि की प्रकृत रचना में शास्त्रीय विषय को भी सरलता से व्यक्त करने का चमत्कार देखा जा सकता है। व्याकरण से राजा की उपमा में विच्छिति द्रष्टव्य है -

**तत्रापि वृद्धियोगस्तस्मिन्नपि पुरुष-गुण-गणख्यातिः।**
**परिभाषा तत्रापि व्याकरणान्नातिरिच्यसे तेन।।**[1]

वृद्धि, पुरुष, गुण, गण, ख्याति, परिभाषा से मण्डित व्याकरण के समान राजा के कोश में जो वृद्धि हो रही है उससे राज-पुरुषों के विविध गुण सर्वत्र विख्यात होते हैं। इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्य से 'कुट्टनीमत' महिमा-मण्डित है।

इस तरह सरस सुन्दर साहित्यिक रचना के माध्यम से तत्कालीन समाज के दुर्गुणो को स्पष्ट प्रदर्शित करते हुए उनके दुष्परिणामों को बतलाकर कविवर दामोदरगुप्त ने उनसे विरत होने का इसमें सदुपदेश दिया है।

'औचित्यविचारचर्चा' की रचना से औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक रूप में बहुचर्चित काश्मीरी विद्वान् मनीषी क्षेमेन्द्र कवि (१०१०-१०७०) अपनी व्यङ्ग्यात्मक रचना के लिए भी अति प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने 'कविकण्ठाभरण' में विद्वानों को अच्छे कवि होने के लिए जो उपदेश दिए हैं वे वस्तुतः कवियों के कण्ठाभरण हैं। इन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के गुण-दोषों का ऐसा मार्मिक व्यङ्ग्यात्मक चित्र दिखलाया है, जिसमें तत्कालीन समाज का रूप स्पष्ट दीखता है और इसमें समाज-सुधार का मार्ग प्रशस्त होता है।

क्षेमेन्द्र की रचानाओं को साधारणतः १ उपदेशात्मक, २ व्यङ्ग्यनिष्ठ उपदेशात्मक, ३ काव्यात्मक, ४ काव्यशास्त्र-छन्दः शास्त्रपरक तथा ५ सामान्यकोटिक इन पाँच वर्गों में विभक्त करते हैं। प्रकृत में प्रथम और द्वितीय कोटिक कृतियों की ही चर्चा की जाती है। चारुचर्या-शतक, चतुर्वर्ग-संग्रह तथा आंशिक रूपसे कविकण्ठाभरण ये सभी शुद्ध उपदेशात्मक हैं।

कलाविलास, दर्पदलन, देशोपदेश, नर्ममाला, सेव्य-सेवकोपदेश, समयमातृका इन कृतियों में कवि ने व्यङ्ग्यके माध्यम से उपदेश दिया है।

---

१. वही आर्या ७८२
२. **काव्यमाला** द्वितीय खण्ड पृ. १२८-३८ **क्षेमेन्द्र लघुकाव्य-संग्रह** में पुनर्मुद्रित (पृ. १३५-१४४), गुप्ता प्रेस, कलकता (१९०७-१९१०-१९६६) कई अन्य संस्करण भी इसके हुए हैं।

इनमें चारुचर्या[१] अनुष्टुप् छन्द में रचित १०० श्लोकों का संग्रह है। इसमें प्रधानतया धर्म और अर्थ का प्रतिपादन है और व्यावहारिक जीवन में उन्हें लाने का उपदेश है, श्लोक के पूर्वार्द्ध में नीतिमूलक सदुक्ति है और उत्तरार्द्ध में उसके सम्पोषक पौराणिक उदाहरण हैं। इसके पद्य बाद के सुभाषित-संग्रहों में अनेकत्र संगृहीत हैं। द्वाद्विवेद की 'नीतिमञ्जरी' तो चारुचर्या के आदर्श पर ही निर्मित है।

'चतुर्वर्ग-संग्रह'[१] चार परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम में २७, द्वितीय में २५, तृतीयमें २५ और चतुर्थ परिच्छेद में २१ श्लोक हैं। इनमें क्रमशः धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का प्रतिपादन है और जीवनोपयोगी उपदेश हैं।

'कलाविलास'[२] में दश सर्ग हैं, जिनमें क्रमशः ६६, ८६, ७६, ४०, ४६, ३३, २६, २६, ७३ तथा ४३ आर्याछन्द में रचित सुललित श्लोक हैं। इस कृति में क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन समाज का यही चित्र दिखलाकर उन कुरीति और दुःस्थितियों से बचने का उपदेश दिया है।

'कलाविलास' में मूलदेवनामक एक व्यक्ति अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के साथ वार्तालापक्रम में विभिन्न प्रकार के प्रतारण, लोभ, कामासक्त जनों की दुःस्थिति, नारी-चरित्र, कायस्थों के सन्दिग्ध चरित्र, मद्यपों की विभिन्न दुरवस्था, नर्तक, वैतालिक, गायक, अभिनेता, स्वर्णकार आदि के विशेष चरित्रों का सजीव वर्णन है और अन्त में युवजनों को उनसे बचने का सदुपदेश है। इन्होंने विभिन्न उदाहरणों द्वारा अपने कथ्य का समर्थन किया है। कवि ने इस कृति में अपने वैदुष्य, ज्ञान तथा विषयानुकूल उच्च कोटिक संस्कृत भाषा का प्रदर्शन किया है।

'दर्पदलन'[३] क्षेमेन्द्रका एक दूसरा व्यंग्यप्रधान उपेदशात्मक काव्य है, जो सात विचारों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ८२, ११३, १५४, ७५, ४५, ५४, तथा ७३ श्लोक विभिन्न छन्दों में निबद्ध हैं। यह मुख्यतः उपदेशात्मक कृति है। प्रत्येक विचार में एक-एक सूक्ति के आधार पर उसका व्यङ्ग्यात्मक कथानक से निरूपण किया गया है, जिससे उच्चवंश, धन, प्रभुत्व, ज्ञान, सौन्दर्य, वीरता, दान, तप आदि के आधार पर होनेवाले दर्पका दलन होता है।

'देशोपदेश'[४] आठ उपदेशों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः २४, ३६, ४८, ३४, २८,

---

१. **काव्यमाला**, खण्ड ५, पृ. ७५-८८ **'क्षेमेन्द्र-लघुकाव्य-संग्रह'** में पुजर्मुद्रित, पृ. ११६-१३४

२. **काव्यमाला**, प्रथम खण्ड, पृ. ३४-७६, **'क्षेमेन्द्र-लघुकाव्यसंग्रह'** में पुनर्मुद्रित, पृ. २१६-७१ R.Schmidt द्वारा इसका जर्मन में अनुवाद हुआ है। द्र. एस.जी.डी.एल. पृ. ७७

३. **काव्यमाला** गुच्छक ७ में प्रकाशित, पृ. ६६-११८ **क्षे.ल.का. संग्रह** में पुनर्मुद्रित। इसका भी R. S chmidt द्वारा जर्मन में अनुवाद हुआ है। द. वही पृ. ७८

४. काश्मीर संस्कृत सीरिज, सं. ४० में प्रकाशित, श्रीनगर १६२४

२५, ३१ तथा ५२ श्लोक विभिन्न छन्दों में गुम्फित हैं। इसमें ठग, कृपण, वारवनिता, धूर्त, विट, काश्मीर में आकर अध्ययन करने वाले गौड़ छात्र, वृद्ध के साथ युवती का विवाह, कायस्थ, कवि, असंयत पत्नी, व्यापारी, धूर्त तपस्वी, वैयाकरण, रसायनवेत्ता, छद्म-वैद्य आदिपर व्यङ्ग्यात्मक उपहास किया गया है। फलतः उनसे सावधान रहने का सदुपदेश दिया गया है।

यों तो देशोपदेश के सभी स्थल हास्य-व्यङ्ग्य से भरे पड़े हैं, कुछ स्थलों में क्षेमेन्द्र ने अत्यन्त तीखे व्यङ्ग्य-बाणों से प्रहार किया है :-

कृपण के घर किसी सगे-सम्बन्धी या अतिथि के आ जाने पर वह अपनी स्त्री से बनावटी कलह कर लेता है और समस्त परिवार उपवास रख लेता है, जिससे अतिथि भी उपवास करने के लिए मजबूर हो जाता है। (द्वितीय उपदेश/१८) वह बहुत पुराने अन्न का भी विक्रय नहीं करता और दुर्भिक्ष पड़ने की कामना करता रहता है कि उस समय अधिक दाम लेकर विक्री करेगा (२/३३)। तृतीय में वेश्या के विविध चरित्रों का यथार्थ वर्णन है। चतुर्थ में कुट्टनी का कलुषित चरित्र चित्रित है। इसपर दामोदरगुप्त के 'कुट्टनीमत' का पूर्ण प्रभाव है। इसी से सम्बद्ध विट का चरित्र पाँचवें में वर्णित है। छठे उपदेश में उन गौड़ देशीय छात्रों का सजीव वर्णन है जो विद्याध्ययन के लिए कश्मीर आते थे, परन्तु भोजन तथा वार-वनिताओं के साथ रमण में लिप्त होकर ही अध्ययन को चरितार्थ करते थे। वे काश्मीरी लिपि को कतई नहीं जानते, पर वे उसी लिपि में लिखे भाष्य, न्याय, मीमांसा आदि ग्रन्थों का अध्ययन शुरू कर देते-

**अलिपिज्ञोऽहंकार-स्तब्धो, विप्रतिपत्तये।**
**गौडः करोति प्रारम्भं भाष्ये तर्के प्रभाकरे।।[1]**

दम्भके भार दवा हुआ वह गौड़ छात्र अपने को परस्पर्श से बचाता है और अपनी चादर अपने बगल में ही दबाये रहता है,[2] किन्तु छिपकर कुत्सित कर्मों में लिप्त रहता है। इसमें छात्रों के निन्दनीय कुकृत्यों का सजीव वर्णन किया गया है।

सप्तम उपदेश में समाज में प्रचलित अनमेल विवाह पर तीखा व्यङ्ग्य-बाण छोड़ा गया है। एक अत्यन्त रुग्ण वृद्ध करोड़पति सेठ की नई नवेली दुलहिन को लक्ष्य कर क्षेमेन्द्र ने बड़ा ही मनोरञ्जक विवरण प्रस्तुत किया है। कन्या के वरण-कालमें वह वृद्ध ज्वर का

---

१. **देशोपदेश** ६।८।
२. स्पर्शं परिहरन् याति गौडः कक्षाकृताम्बलः।
कुञ्चितेनैव पार्श्वेन दम्भ-भार-भरादिव।। वही ६।८।
३. कृताऽरुचिः पृथुश्वास-तमोदृष्टि विरागवान्।
कन्याया वरणे वृद्धो मूर्तो ज्वर इवागतः।। वही

जीता-जागता स्वरूप सा लोगों में अरुचि उत्पन्न करने वाला, जोर-जोर से खाँसने, धुँधली दृष्टिवाला दीख रहा था,[१] परन्तु कन्या का पिता अपनी पुत्री को मधुर शब्दों में उसके गुणों का वर्णन करता था। ऐसे विवाह के परिणाम स्वरूप उस वृद्धपति के जीते ही वधू की केलि-लीलाएँ होने लगती थीं। अन्तिम उपदेश में वैद्य, भट्ट, कवि, बनिया, गुरु, कायस्थ आदि पात्रों का मार्मिक चित्रण है जो तत्कालीन समाज का स्वच्छ दर्पण हैं।

कविवर क्षेमेन्द्रने हास्यव्यपदेशयुक्ति द्वारा सामाजिक सुधार करने का इसमें स्तुत्य प्रयास किया है। हास से लज्जित होकर व्यक्ति दुष्कर्म में प्रवृत्त नहीं होता है -

> **हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्त्तते।**
> **जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः।।**[१]

## नर्ममाला

नर्ममाला[२] एक प्रकार से देशोपदेश की पूरक कृति है। इसमें भी व्यङ्ग्यात्मक ही उपदेश दिये गये हैं। देशोपदेश की तरह इसके व्यङ्ग्य, वैसे चुभने लायक न होने पर भी, अपने उद्देश्य में सफल हैं, नर्ममाला में तीन परिहास हैं, जिनमें प्रथम में १४८, द्वितीय में १४५ और तृतीय में ११४ श्लोक हैं। क्षेमेन्द्र ने इस कृति में राजकीय प्रशासन, कायस्थ अधिकारी, कर-ग्रहीता अधिकारी, गृह-कृत्याधिपति (गृहमन्त्री), परिपालक (राज्यपाल), चाक्रिक (खुफिया पुलिस), लेखकोपाध्याय (हिसाब-किताब करने वाला), गञ्जदिविर (अर्थमन्त्री), ग्रामदिविर (पटवारी), गुरु, वैद्य, देवज्ञ आदि के बड़ाही स्वाभाविक तथा रोजक चित्र प्रस्तुत किये हैं, जो तत्कालीन कुव्यवस्थाओं को भलीभाँति दर्शाते हैं। करग्रहीता जब गाँवो में कर वसूलने जाता है तो वहाँ लूट-खसोट करने लगता है। लगता है कि वहाँ कोई चढ़ाई करने आ गया है। कायस्थ अपने कूटलेख और स्याही तथा कलम के प्रभाव से जो समाजका उत्पीड़न करता है उसका निम्नलिखित पद्यमें चित्र द्रष्टव्य है :-

> **अहो भगवती कार्य-सर्वसिद्धिप्रदा मसी।**
> **अहो प्रबलवान् कोऽपि कलमः कमलाश्रयः।।**[३]

---

१. **देशोपदेश** के साथ काश्मीर संस्कृत सीरिज में प्रकाशित तथा **क्षेमेन्द्र लघु काव्य-संग्रह** में पुनमुद्रित ३०७-३४६

२. **देशोपदेश** के साथ काश्मीर संस्कृत सीरिज में प्रकाशित तथा **क्षेमेन्द्र लघु काव्य-संग्रह** में पुनर्मुद्रित ३०७-३४६

३. **नर्ममाला**, १/१३०।

४. अपि सुजन-विनोदायोम्भिता हास्य-सिद्धयै।
कथयति फलभूतं सर्वलोकोपदेशम्।। वही ३/११४

लोकोपदेश के लिए हास्यापदेशक एक विशिष्ट प्रकार के काव्य की रचना क्षेमेन्द्रने कुशलता से की है।[१]

'सेव्यसेव्यकोपदेश'[१] भी इसी श्रेणी की रचना है। इसमें विभिन्न छन्दों में गुम्फित ६१२ श्लोक हैं, जिनमें सेव्य और सेवक के सम्बन्ध और कर्तव्य पर अच्छा प्रकाश डाला गया है तथा दोनों के समुचित कर्तव्यों का उपदेश दिया गया है।

व्यङ्ग्य के माध्यम से उपदेशात्मक काव्य रचने की शृङ्खला में आचार्य क्षेमेन्द्र की अन्तिम कड़ी है 'समयमातृका'[२]। यह शृङ्गार-प्रधान काव्य है। इसमें आठ समय (विभाग) हैं, जिनमें क्रमशः ५२, १०८, ३७, १३४, ९०, ३६, ५६ तथा १२६ श्लोक हैं जो अनुष्टुप् तथा आर्यामें निबद्ध हैं। इसपर 'कुट्टनीमत' का स्पष्ट प्रभाव है।

एक कुट्टनी नयी वाराङ्गना को अपने मायाजाल में ग्राहक को फसाकर रखने और अपने व्यवसाय में समृद्ध होने का उपदेश करती है। वह यह भी कहती है कि प्रमदा तभी तक किसी पुरुष की दासी है जबतक उसके हाथ रत्नों से भरे हैं। ज्योंहि उसका हाथ रिक्त हो जाता, वह उसके लिए कठोर और दुर्लभ हो जाती है।[३]

क्षेमेन्द्र ने इस कृतिमें काश्मीर के तत्कालीन रईसों के वास्तविक जीवन का सही चित्रण किया है और वारवनिताओं के माया-पाश से बचने का व्यङ्ग्यात्मक उपदेश दिया है।

इस प्रकार की अपनी रचनाओं के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए क्षेमेन्द्र ने ठीक ही कहा है-

**अपि सुजन-विनोदायोम्भिता हास्य-सिद्ध्यै।**
**कथयति फलभूतं सर्वलोकोपदेशम्।।**[४]

भोजविरचित 'चारुचर्या'[५] में १३५ मुक्तक श्लोक हैं, जिनमें दैनिक आचरण, सदाचार और आह्निक कृत्यों का निर्देश है। यह ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है।

दक्षिणामूर्ति-लिखित 'लोकोक्तिमुक्तावली'[६] में भक्तिप्रधान नीत्युपदेशात्मक ८४ श्लोक हैं। विभिन्न छन्दों में रचित यह ६ पद्धतियों में विभक्त है। इस रचना की यह

---

१. **काव्यमाला**, २ गुच्छक, पृ. ७९-८५, **क्षे.ल. का. सं.** में पुनर्मुद्रित।
२. **काव्यमाला**, ३ गुच्छक, पृ. ३२-११६।
३. **समयमातृका** ८/११५।
४. **नर्ममाला** ३/११४
५. डा. वी. राघवन द्वारा सम्पादित उनके **मलयमारुत** २ में तिरुपति से १९७१ ई. में प्रथम बार प्रकाशित।
६. **काव्यमाला**, गुच्छक ११, पृ. ७८-९१।

विशेषता है कि प्रत्येक श्लोक के पूर्वार्द्ध में जिस सद्धर्म का उल्लेख किया गया है उत्तरार्द्ध में उसका समर्थन किया गया है। दक्षिणामूर्ति का जीवनकाल १४५० से १६०० ई. के बीच माना जाता है।

नीत्युपदेशपरक घटकर्पर की कृति 'नीतिसार'[1] २१ मुक्तक श्लोकों का एक संग्रह है। इसमें शूकर और सिंह के सम्वाद रूप में नीति तथा उपदेशों का प्रतिपादन है। इसके अनेक नीति-वचन महाभारत, चाणक्यनीतिदर्पण, हितोपदेश तथा धर्मविवेक से गृहीत हैं।

घटकर्पर अपने 'घटकर्परकाव्य'[2] या यमक-काव्य के लिए अतिप्रसिद्ध हैं। इसमें एक विरहिणी नायिका के मनोभाव का आर्याछन्द में रचित २२ श्लोकों में मनोरम वर्णन है। मेघदूत की तरह इसमें भी मेघ को दूत बनाकर नायिका अपने प्रियतम के पास सन्देश भेजती है। यमककाव्य की रचना में कवि अपने को अद्वितीय मानता है। उसका कहना है कि यदि कोई उसे यमक-काव्य की रचना में पराजित करेगा तो वह उसके यहाँ घटकर्पर से पानी भरने का काम करेगा। प्रायः इसी 'घटकर्पर' शब्द-प्रयोग के कारण उसका नाम ही घटकर्पर हो गया।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह घटकर्पर विक्रमादित्य के नवरत्नों में अन्यतम घटकर्पर से भिन्न है या अभिन्न। इस लघुकाव्य पर सात से अधिक विद्वानों की टीकाएँ हैं। इसका जर्मन, फ्रैंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है।[3]

गोवर्धनाचार्य बंगाल के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन की सभा के सम्मान्य कवि थे। एकमात्र 'आर्यासप्तशती'[4] की रचना से ही ये अमर हैं। आर्याछन्द में निबद्ध इसके पद्य सरस, मधुर और शृङ्गार-रस से सराबोर हैं, जिनमें नायक और नायिका के मनोभावेंका हृदयावर्जक वर्णन के साथ उपदेश भी समाहित है। शृङ्गार रसके मधुर सुन्दर वर्णन करने में गोवर्धन का जोड़ा नहीं है,[5] यह जयदेव कवि का कहना यथार्थ है।

नायक के प्रति हृदय से अनुरक्त एक नायिका अपने अनुराग को मुखसे प्रकट करने में असमर्थ है। दूसरी ओर वाक्पटु नायक केवल मुख से ही अनुराग व्यक्त करता है। इस प्रकृत विषय को कविने गुञ्जा (जो पूर्णतः अनुरक्त है, केवल मुख से कृष्ण है) और शुक (जो केवल मुख से लाल है और पूर्णतः हरित है) के अनुराग-लालिमा से तुलना कर चमत्कारपूर्ण बना दिया है -

---

१. **काव्य-संग्रह**, ५०४-६, कलकत्ता १८४७, J.Haelurlin द्वारा संकलित।
२. जे. बी. चौधरी द्वारा संपादित **दूतकाव्य-संग्रह** ६, कलकत्ता १९५३
३. द्र.सु.नो. डा.लि. पृ. ६२।
४. **काव्यमाला**, प्रथम गुच्छक। एस. मुखर्जी द्वारा सम्पादित, ढाका; १९२१ ई.
५. शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनै राचार्यगोवर्धनस्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः।

**सा सर्वथैव रक्ता रागं गुञ्जेव न तु मुखे वहति।**
**वचनपटोस्तव रागः केवलमास्ये शुकस्येव।।**

अधोलिखित आर्या में अपभ्रंश भाषा के साथ नायिका की तुलना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। नायक के विरह में नायिका में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। अब उसका न तो वह स्वाभाविक वर्ण है, न रूप है, न संस्कार है और न वह स्वभाव है। वह उस अपभ्रंश भाषा के समान हो गई है जिसमें प्रकृत-संस्कृत-भाषा की तरह न तो सवर्ण होता है, न रूप होता है, न संस्कार होता है और न उसमें प्रकृति-संस्कृत की धातु आदि रहती है।

**न सवर्णो न च रूपं न संस्क्रिया कापि नैव सा प्रकृतिः।**
**बाला त्वद्विरहादपि जातापभ्रंश भाषेव।।**

गुमानीपन्त की नीत्युपदेशात्मक दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। १. 'गुमानी-नीति'[1] में ७१ पद्य हैं, जिनमें तीन चरण संस्कृत में और एक चरण लोकोक्तिरूप हिन्दी अथवा कुमौनी में है। रामायण, महाभारत आदि पर आधारित सभी पद्य नीतिपरक हैं। २. 'उपदेशशतक'[2] में १०२ मुक्तक पद्य हैं। सभी आर्या छन्द में गुम्फित हैं। इसमें भी उसी शैली में पद्य के एक भाग में प्रामाणिक वचनों के आधार पर उसका समर्थन किया गया है। गुमानी कवि (१९वीं शती, इसका जन्म १७९० ई. में हुआ था) संस्कृत, हिन्दी, कुमौनी भाषाओं में निपुण थे और इन्होंने इन तीनों भाषाओं में रचनाएँ की हैं।

महाराज लक्ष्मणसेन (१२वीं शती) के सभासद हलायुध की एक सुन्दर रचना है 'धर्मविवेक',[3] इसमें विविध छन्दों में विरचित २० श्लोक है। इसमें धर्म, नीति आदि विषयक उपयोगी उपदेश दिये गए हैं। ये दशम शताब्दी के वैयाकरण हलायुध से भिन्न हैं।

काश्मीरी विद्वान् कवि जल्हण विरचित 'मुग्धोपदेश'[4] में शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध ६६ श्लोक हैं, जिनमें वारवनिता के वाग्जाल से बचने का उपदेश दिया गया है। यह 'कुट्टनीमत से पूर्ण प्रभावित है। जल्हण का समय बारहवीं शताब्दी है, अतः ये 'सूक्ति-मुक्तावली' कार जल्हण (१३वीं शती) से भिन्न हैं। सूक्तिमुक्तावली की रचना १२५८ ई. में हुयी थी।

---

१. **इण्डियन एन्टोक्वेरी** १९०६ पृ. १७७।
२. **काव्यमाला** गुच्छक २, पृ. २०-२८
३. तत्त्वविवेक प्रेस, मुम्बई, १९२०। **काव्यसंग्रह**, जीवानन्द विद्यासागर द्वारा संकलित।
४. **काव्यमाला**, अष्टम गुच्छक, पृ. १२५-३५

कल्यलक्ष्मीनृसिंह कृत 'कविकौमुदी'[1] में विभिन्न छन्दों में विरचित १४७ श्लोक हैं। प्रथम शतक अंश में १०१ और द्वितीय अंशमें ४६ पद्य हैं। कवि कल्यलक्ष्मीनृसिंह अहोबलसुधी के शिष्य थे। इनका समय १९वीं शती है।

कृष्णवल्लभ (१९वी शती) विरचित 'काव्यभूषण-शतक'[2] विभिन्न छन्दों में निबद्ध १०३ श्लोकों का संग्रह है। यह शृङ्गार-प्रधान है।

कुसुमदेवकृत 'दृष्टान्तशतक'[3] या 'दृष्टान्तकलिका' नीत्युपदेशात्मक १९९ श्लोकों का संग्रह है। यह १५वीं शताब्दी की रचना है। वल्लभदेवकी सुभाषितावली में दृष्टान्त-शतक के कतिपय श्लोक संगृहीत हैं।

अन्योक्ति रूप में विरचित 'अन्यापदेशशतक'[4] ११० श्लोकों का संग्रह है। इसके लेखक मधुसूदन मिथिलानिवासी पद्मनाभ के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम सुभद्रा था। प्रायः सुपद्मव्याकरण के प्रणेता पद्मनाभदत्तमिश्र (१४वीं शताब्दी) से इनके पिता पद्मनाभ अभिन्न थे। इस तरह अन्यापदेशशतक का रचना-काल १४वीं शती ठहरता है।

भक्तिप्रधान उपदेशात्मक १८ श्लोकों का एक संग्रह 'मोहमुद्गर'[5] नाम से सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, विदेशों में भी प्रसिद्ध है। अनुश्रुति के आधार पर यह शंकराचार्य की रचना मानी जाती है। इसमें संसारकी नश्वरता, जीवन की क्षण-भङ्गुरता के प्रतिपादन के साथ धन, बल, यौवन आदि पर गर्व नहीं करने का उपदेश[6] दिया गया है। इसका अंग्रेजी, फ्रेञ्च, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं में तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

अज्ञातकर्तृक २६ श्लोकों के संग्रह 'मूर्खशतक'[7] में १०० मूर्खो का वर्णन किया गया है। मूर्खों के परिचय द्वारा लेखक ने उनसे सावधान रहने का उपदेश दिया है।

नीलकण्ठ दीक्षित (१७वीं सदी का पूर्वार्द्ध) जो 'नीलकण्ठचम्पू' तथा 'शिवलीलार्णव' महाकाव्य की विशिष्ट रचना से संस्कृत साहित्य में महामनीषी के रूप में अतिविश्रुत हैं, नीति और उपदेशात्मक अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों के द्वारा भी संस्कृत जगत् में लब्ध-प्रतिष्ठ हैं। इनकी इस कोटिकी रचनाओं में -

---

१. के. कृष्णमूर्ति द्वारा सम्पादित तथा अनूदित, कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़., १९६५ ई.

२. काव्यमाला, गुच्छक ६, पृ. ३१-४६।

३. नवविभाकर प्रेस, कलकता, १९१६ ई.

४. काव्यमाला, नवम गुच्छक, पृ. ६४-७६।

५. काव्य-संग्रह, २६५-८/ इसके ४० से अधिक विभिन्न संस्करण हो गए हैं।

६. मा कुरु धन-बल-यौवनगर्वम् हरति निमेषात् कालः सर्वम्। श्लोक ३।

७. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित **एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल** खण्ड-७ की विवरणात्मक संस्कृत पाण्डुलिपि-सूची में संगृहीत, कलकता १९३४ ई.।

१. 'अन्यापदेशशतक'[1] में १०१ श्लोक,
२. 'कलिविडम्बन'[2] में १०२ श्लोक,
३. 'सभारञ्जनशतक'[3] में १०५ श्लोक,
४. 'शान्तिविलास'[4] में ५१ श्लोक और
५. 'वैराग्यशतक'[5] में १०१ श्लोक हैं।

इनमें प्रथम शार्दूलविक्रीडित छन्द में, द्वितीय और तृतीय अनुष्टुप् में, चतुर्थ मन्दाक्रान्ता में तथा पञ्चम उपजाति और आर्याछन्दों में विरचित हैं।

परमविश्रुत अप्पयदीक्षित के अनुज आच्चान दीक्षित के पौत्र, नारायण दीक्षित के पुत्र नीलकण्ठदीक्षित ऐसे बहुश्रुत विद्वान् थे, जिन्होंने व्याकरण, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि शास्त्रीय विषयों पर अनेक उत्कृष्ट रचनाओं के अतिरिक्त शिवलीलार्णव महाकाव्य, नलचरित नाटक, नीलकण्ठ-विजयचम्पू, चण्डीरहस्य, मुकुन्दविलास आदि अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की।

अन्यापदेशिक में अन्योक्ति द्वारा सदाचरण पर महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये गये हैं। कलिविडम्बन में सामाजिक विभिन्न कदाचारों पर व्यङ्ग्य-प्रहार है। सभारञ्जनशतक में सदुक्तियों के संग्रह द्वारा नीतियों का उपदेश है। शान्तिविलास और वैराग्य-शतक में जैसा कि नाम से ही सूचित है, जागतिक नश्वरता के साथ चिरशान्ति के लिए वैराग्यमार्ग का उपदेश है।

अपने शास्त्रीय पाण्डित्य और कवि-कर्म-कौशल के लिए अतिप्रसिद्ध रससिद्ध कवि पण्डितराजजगन्नाथ (जीवनकाल १५९०-१६६५ ई. के आसपास) रसगङ्गाधर, भामिनीविलास, आसफविलास, जगदाभरण, प्राणाभरण आदि विशिष्ट कृतियों के कारण विश्व-विश्रुत हैं ही, साथ ही नीत्युपदेशात्मक कृति 'अश्वधाटी'[6] की रचना से भी इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। मत्तेभ छन्द में निबद्ध ७० मुक्तक पद्यों की यह अपूर्व कृति है, जिसमें नीति और भक्ति का सुन्दर मार्मिक वर्णन है।

पञ्चरत्न, षड्रत्न, सप्तरत्न, अष्टरत्न तथा नवरत्न क्रमशः ५, ६, ८, ९ श्लोकों

१. काव्यमाला, गुच्छक ६, पृ. १४३-१५८।
२. वही गुच्छक ५, पृ. १३२-१४२।
३. वही गुच्छक ४, पृ. १८६-९८।
४. वही गुच्छक ६, पृ. १२-२०।
५. वही प्रथम गुच्छक, पृ. ९१-९६। ये सभी कृतियाँ P.S. Filliozat द्वारा Institut Eranaca. d' Indologic Pondichery १९६७ में सानुवाद प्रकाशित।
६. निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई १८७८ ई.। कुछ लोग अश्वधाटी को भामिनीविलासकार जगन्नाथ की रचना में सन्देह करते हैं।

के संग्रह[1] हैं, जिनमें नीति और उपदेशों का सुन्दर वर्णन है। इन रत्नों के प्रणेता का नाम अज्ञात है। सुभाषितमुक्तावली और सुभाषितहारावली में भी इनके अनेक पद्य संगृहीत हैं। इनमें नवरत्न अधिक चर्चित है। यह श्रीलङ्का के संस्कृत साहित्य में भी उल्लिखित है।[2]

अज्ञातकर्तृक 'पूर्वचातकाष्टक' तथा 'उत्तरचातकाष्टक' विभिन्न छन्दों में निबद्ध उपदेशात्मक आठ-आठ पद्योंका मनोहर लघुकाव्य है। इसका जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं में सानुवाद प्रकाशन[3] हो चुका है। इसमें मेघोन्मुख पिपासु चातक पक्षी का बहुत सुन्दर कलात्मक ढंग से वर्णन किया गया है और इस व्याख्या से स्वाभिमान की रक्षा का उपदेश दिया गया है।

राक्षसकवि-विरचित 'कविराक्षासाय'[4] उपदेशात्मक पद्यों का एक संग्रह है। यह दक्षिण भारत में अधिक प्रसिद्ध है। कविका परिचय सर्वथा अज्ञात है। उपर्युक्त संग्रह का प्रथम श्लोक अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द में उद्धृत है। इससे निश्चित होता है कि कवि १६वीं शताब्दी से पूर्व के हैं।

सदुक्तिकर्णामृत (पद्य संख्या ४५०) तथा शार्ङ्गधर-पद्धति (३०१०-११) में राक्षस-प्रणीत पद्य इस राक्षस कवि के नहीं है, क्योंकि ये पद्य उपदेशात्मक नहीं हैं।

कवि रामचन्द्र-विरवित 'रसिकरञ्जन'[5] विभिन्न छन्दों में निबद्ध नीत्युपदेशात्मक १३० पद्यों का मनोरम लघुकाव्य है। इसका प्रत्येक पद्य द्व्यर्थक है। इसमें भक्ति और शृङ्गार का चमत्कृत मञ्जुल वर्णन है। रसिकरञ्जन के रचयिता रामचन्द्र लक्ष्मण भट्ट के पुत्र थे। १५२४ ई. में अयोध्या में इसकी रचना हुई थी। यह व्याख्या के साथ प्रकाशित है।

शम्भु कवि-विरचित 'अन्योक्तिमुक्तालता' २६ शार्दूलविक्रीडित तथा मन्दाक्रान्ता छन्दों में गुम्फित अन्योक्तिपरक १०८ श्लोकों का एक संग्रह है। इसका प्रत्येक श्लोक द्व्यर्थक है।

शम्भु कवि काश्मीर के राजा हर्षदेव (११वीं शताब्दी) के सभापण्डित थे। इन्होंने अपने राजा की प्रशस्ति में शार्दूलविक्रीडित छन्द में ७५ श्लोकात्मक 'राजेन्द्रकर्णपूर'[6] नामक

---

१. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित वही पूर्वोक्त पाण्डुलिपि-सूची, कलकत्ता १६३४ ई.।

२. द्र.सु.नो.डा.लि. पृ. ६७

३. के. एस. एच. २३७-६, २४०। के. एसजी, ३२७-३३०।

४. के. सी. चटर्जी द्वारा सम्पादित तथा वाइ. महालिङ्ग शास्त्री द्वारा अनूदित, **कलकता ओरियन्टल जर्नल** में प्रकाशित

५. के. सी. चटर्जी द्वारा सम्पादित तथा वाइ. महालिङ्ग शास्त्री द्वारा अनूदित, **कलकता ओरियन्टल जर्नल** में प्रकाशित

६. **काव्यमाला**, प्रथम गुच्छक, पृ. २२-३४

काव्यकी रचना भी की थी। इसके अनेक पद्य वल्लभदेव की सुभाषितावली में संगृहीत हैं। इनके पद्य सारगर्भित तथा मनोहर हैं।

शंकर-विरचित 'शतश्लोकी'[1] स्रग्धरा छन्द में निबद्ध १०१ श्लोकों का एक संग्रह है। इसमें वेदान्त के सिद्धान्त का निरूपण है। यह आदि शंकराचार्य की रचना है अथवा किसी अन्य शंकराचार्य की यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

श्री कुरुनारायण कवि-प्रणीत 'सुदर्शनशतक'[2] भी नीत्युपदेशात्मक १०१ श्लोकों का संग्रह है। स्रग्धरा छन्द में गुम्फित इसके पद्य हृदयावर्जक हैं।

अज्ञातकर्तृक 'शृङ्गारज्ञान-निर्णय'[3] रम्भा और शुक के सम्वाद रूप में विरचित ३२ श्लोकों का संग्रह है। इसमें रम्भा की उक्ति में शृङ्गार और शुक की प्रत्युक्ति में ईश्वरीय तत्त्वबोधक चैतन्य का सुन्दर प्रतिपादन है।

'वानराष्टक'[4] तथा 'वानर्यष्टक' आठ-आठ श्लोकों का वानर और वानरी के परस्पर सम्वाद रूप में किसी अज्ञात नामक कवि द्वारा विभिन्न छन्दों में विरचित नीत्युपदेशात्मक सूक्तिसंग्रह है।

वञ्चनाथ-विरचित 'महिषशतक'[5] या 'वञ्चेश्वर-महिष-शतक' १०० श्लोकों का संग्रह है, जिसमें दुर्जनों से परिवेष्टित एक महिषात्मक राजा का वर्णन है, जो विद्वज्जनों का तिरस्कार और मूर्खजनों का सत्कार करता है। वञ्चनाथ प्रायः वही कृष्ण कवि हैं, जिनके पिता तञ्जोर के राजा सहाजी (१६८४-१७१०) के उच्च पदाधिकारी थे। लेखक के पौत्र ने 'महिषशतक' पर 'श्लेषार्थचन्द्रिका' नामकी व्याख्या लिखी थी।

वररुचि-रचित 'नीतिरत्न' १५ श्लोकों का एक संग्रह है। इसमें विभिन्न छन्दों के पद्यों में नीति का उपदेश दिया गया है। 'नीतिरत्न' के श्लोक चूँकि चाणक्य के नीतिग्रन्थ,[6] हितोपदेश[7] तथा परम्परागत श्लोकों से संगृहीत हैं, अतः यह प्रसिद्ध वररुचि की रचना नहीं है, उनकी प्रतिष्ठा में उनके नाम से सम्बद्ध कर दिया गया है। प्राचीन काल से बहुचर्चित-

---

१. **सेलेक्ट वर्क्स ऑफ श्रीशंकर**, मद्रास १९११ ई. श्रीरङ्गम १९१० तथा इलायाद १९१४ में प्रकाशित।
२. **काव्यमाला**, गुच्छक ८, पृ. १-५१।
३. **द्र.सु.नो.डा.लि.** पृ. ६० और ६६।
४. वही पृ. ६९
५. सरस्वती निलय प्रेस, मद्रास (१८७५ ई.) से शंकर गुरुकुल सीरिज १४ में व्याख्या के साथ प्रकाशित।
६. श्लोक संख्या ३, ४, ६, १०, १२ तथा १४।
७. श्लोकाङ्क-४ तथा १४

"काकः कृष्णः पिकः कृष्णः एतयोः कियदन्तरम् ?
मधुमासे समायाते काकः काकः पिकः पिकः।।"

यह 'नीतिरत्न' का तेरहवाँ श्लोक है। वेदान्तदेशिक या वेङ्कटनाथ देशिक-विरचित 'सुभाषितनीवी'[1] जो बारह-बारह पद्यों की १२ पद्धतियों में विभक्त है, गर्व, सेना, दया, शान्ति, आदि विषयों से सम्बद्ध विभिन्न छन्दों में निबद्ध एक उपदेशात्मक कृति है जिसमें १४४ पद्य हैं। इसमें इनका 'वैराग्यपञ्चक'[2] पाँच पद्यों का वैराग्यपरक व्यवहार- वर्णनात्मक रचना है। इनमें कतिपय पद्य द्वयर्थक हैं, जो वेदान्तदेशिक के वैदुष्य और काव्य-कौशल को भलीभाँति अभिव्यक्त करते हैं। वेदान्तदेशिक का समय १२६८ से १३७६ के बीच माना जाता है।

वेतालभट्ट-कृत 'नीतिप्रदीप'[3] नीत्युपदेशपरक १६ सुन्दर काव्यात्मक पद्यों का एक लघु संकलन है। इसके पद्य चाणक्यनीति, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश आदि के नीत्युपदेशों पर आधारित हैं।

विश्वेश्वर-विरचित 'अन्योक्तिशतक'[4] शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा छन्दों में निबद्ध १०५ पद्यों की अन्योक्तिपरक एक सुन्दर रचना है। इसके उपदेशात्मक पद्य मनोहर एवं व्यावहारिक हैं। इस प्रकार के नीत्युपदेशात्मक पद्यों का प्रसङ्गानुकूल उपयोग बल्लाल-प्रणीत 'भोजप्रबन्ध'[5] में भी किया गया है।

नीत्युपदेशात्मक कृतियों में उपर्युक्त कुछ विशिष्ट रचनाओं की चर्चा की गयी है। इनके अतिरिक्त अनेक इस कोटिकी रचनाएँ संस्कृत पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित हैं। इनमें कतिपय कृतियों की जानकारी यहाँ दी जा रही है।

चक्रकविकृत 'चित्ररत्नाकर'[6] में हास्यपरक उपदेशात्मक पद्यों का संग्रह है।

माधवकृत "जडवृत्त"[7] अपूर्ण है। यह मुक्तक शैली में रचित पद्यों का एक संग्रह है। इसमें जड़ व्यक्ति द्वारा ग्राम्य तरीकों से प्रदर्शित प्रेम का वर्णन है।

---

१. **काव्यमाला**, अष्टम गुच्छक, पृ. १५१-६८।

२. वही।

३. **काव्यसंग्रह** ५२६-२८। काव्यसंग्रह जीवानन्दविद्यासागर संकलित १, ३६६-७७। **संस्कृत काव्य संग्रह**-दीनानाथन्यायरत्न, कलकता, १८६९ ई.।

४. **काव्यमाला**, पञ्चम गुच्छक, पृ. १०१-१६।

५. डॉ. जयमन्तमिश्र द्वारा सम्पादित सानुवाद प्रकाशित, सरस्वतीप्रकाशन, दरभंगा १९५५।

६. आड्यार पुस्तकालय संस्कृत पाण्डुलिपि संख्या ५१२-४

७. डी. सी.-२०, ११९७० द्र. सुभा.नो.डाइ.लिट. पृ. ७१

अज्ञात नामक कविद्वारा विरचित 'कुचशतक'[1], जिसमें कामिनी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन है। यह उपदेशात्मक काव्य में इसलिए आता है कि इसमें बतलाया गया है कि शारीरिक सौन्दर्य मात्र पर लट्टू होकर व्यक्ति को नैतिक कर्तव्य से च्युत नहीं होना चाहिए।

अज्ञातकर्तक 'कुशोपदेश'[2] तीन अष्टकों में विभक्त है। इसमें सांसारिक व्यावहारिक ज्ञान का वर्णन है।

'लक्ष्मी-सरस्वतीविवाद'[3] ११० पद्यों का संग्रह है। इसमें लक्ष्मी और सरस्वती के परस्पर वादरूप में उनके अपने-अपने वैशिष्ट्यों का वर्णन है और अन्त में लक्ष्मी की विजय दिखलाई गई है।

अज्ञातनामक व्यक्ति द्वारा संगृहीत 'मदनमुख-चपेटिका'[4] में १०० श्लोक हैं। इसमें एक युवती और एक संन्यासी के परस्पर आलापों का मनोरम वर्णन है, जिसमें युवती के आकर्षक वचनों का विरागी द्वारा तिरस्कार दिखलाया गया है। यह १८८० ई. की रचना है।

कवि कङ्कनरचित 'मृगाङ्कशतक'[5] १०० पद्यों का एक संग्रह है; जिसमें प्रेमभाव के संचारक चन्द्रमा की प्रशस्ति है।

अज्ञातनामा कवि द्वारा विरचित 'नीतिदीपिका'[6] एक खण्डित संग्रह है।

वङ्गप्रान्तीय पूर्वस्थल के निवासी कृष्णमोहन कविविरचित 'नीतिशतक'[7] १०८ मुक्तक श्लोकों का संग्रह है जिसमें चार संग्रह हैं। इनमें प्रथम संग्रह (सर्ग) के ३२ श्लोकों में बाल्य-जीवन, द्वितीय सर्ग के २६ श्लोकों में युव-जीवन, तृतीय सर्ग के २८ श्लोकों में परिपक्व गृहस्थ-जीवन तथा अन्तिम सर्ग के २६ श्लोकों में वार्धक्य-जीवन का सजीव वर्णन है।

अज्ञातकर्तृक 'परनारी-रति-निषेध-पञ्चक'[8] एक लघु संग्रह है, जिसमें नामानुरूप परनारी-संसर्ग का निषेध किया गया है।

कामराज दीक्षित के आत्मज व्रजनराजदीक्षित-विरचित 'रसिक जन-रञ्जन'[9]

---

१. डी.सी.-२० ११६३६
२. यह व्याख्या के साथ है एच.सी.-७, ५४६६
३. एच.सी.-७, ५५१५
४. एच.सी.-७, ५५२०
५. डी.सी.-२०, ११६८१
६. डी.सी.-७, ५५१०
७. एच.सी.-७, ५५०८
८. एच.सी.-७, ५५२१
९. डी.सी.-२०, ११६८२

शतकत्रय, इसी कोटि की रचना है। इसमें वनिता सौन्दर्य-मोह का अच्छा वर्णन है।

रामचन्द्रगमीकृत 'सिद्धान्तसुधातटिनी'[1] एक अपूर्ण कृति है। इसमें पति और पत्नी के परिसम्वाद रूपमें वर्णन किया गया है।

अज्ञातकर्तृक एक संग्रह 'स्तनपञ्चक'[2] भी इसी कोटिकी कृति में आता है। इसमें नारी के एक अङ्ग-विशेष का पाँच श्लोकों में वर्णन है।

एलेश्वर नगर के महोपाध्याय के वंशज पेद्दिभट्ट द्वारा संगृहीत एक अपूर्ण कृति है 'सूक्तिवारिधि'[3], जिसमें नीति और सदाचार का वर्णन है।

धीरेश्वर-विरचित 'विद्यामञ्जरी'[4] दो अध्यायों में विभक्त १०० पद्यों का संग्रह है। इसमें विद्याकी महिमा वर्णित है। यह १८१४ ई. की रचना है।

विद्या और सुन्दर इन दो प्रेमियों के परिसम्वाद रूप में वर्णित चौर कवि की रचना 'विद्या-सुन्दर'[5] ५५ पद्यों का एक सुन्दर संग्रह है।

अज्ञातकर्तृक 'विबुधोपदेश'[6] में संस्कृतज्ञों को विविध उपदेश दिए गए हैं। लक्ष्मीधरके तनुज पं. विश्वेश्वर-विरचित 'विश्वेश्वरार्या-शतक'[7] आर्याछन्द में १०० श्लोकों का संग्रह है। इसमें नारी के गुण और सौन्दर्य का मनोरम वर्णन है। इसपर विश्वेश्वरार्यासप्तशती नामकी व्याख्या की गई है।

उपर्युक्त उपदेशात्मक इन लघु कृतियों के अतिरिक्त लुडविक स्टर्नबाख महोदयने निम्नलिखित कुछ और अप्रसिद्ध उपदेशात्मक रचनाओं का तथा अन्योक्तिपरक पद्यों के संग्रहों और प्रहेलिकाओं का उल्लेख किया है -

**(क) उपदेशात्मक -**

१. देवराज की आर्यामञ्जरी,
२. रामचन्द्र, सीताराम तथा विश्वनाथ की आर्याविज्ञप्ति,
३. साहिब्राम की नीतिकल्पलता तथा कविकण्ठाभरण,
४. शम्भुराज की नीतिमञ्जरी,
५. सदानन्द की नीतिमाला तथा नीतिसार, नीतिशास्त्र-समुच्चय,

---

१. एच.सी.-७, ५५११
२. डी.सी.-२०, ११९६१
३. एच.सी.-२०१२१४३
४. एच.सी.-७, ५५१८
५. एच.सी.-७, ५११४
६. एच.सी.-७, ५५१२
७. डी.सी.-२०, १९८४-५

६. श्रीनिवासाचार्य, सुन्दराचार्य, वेङ्कटराय तथा एक और अज्ञातकर्तृकनीतिशतक,
७. अप्पा वाजपेयीकृत नीतिसुमावली,
८. हरिदास तथा सुब्रह्मण्यकृत शान्तिविलास,
९. पद्मानन्द, शंकराचार्य तथा सोमनाथकृत वैराग्यशतक,
१०. व्रजराज शुक्ल-विरचित नीतिविलास तथा पञ्चतन्त्र-संग्रह।

**(ख) अन्योक्तिपरक संग्रह-**

१. एकनाथ काश्यपीकृत अन्यापदेशशतक,
२. गणपतिशास्त्रीकृत अन्यापदेशशतक,
३. गीर्वाणेन्द्रकृत अन्यापदेशशतक,
४. घनश्यामकृत अन्यापदेशशतक,
५. जगन्नाथकृत अन्यापदेशशतक,
६. अज्ञातकर्तृक अन्यापदेशशतक,
७. आच्चान दीक्षितविरचित अन्योक्तिमाला,[1]
८. लक्ष्मीनृसिंह-विरचित अन्योक्तिमाला,[2]
९. हरिकृष्णकृत अन्योक्तिसंग्रहाध्याय,
१०. भट्टवीरकृत अन्योक्तिशतक,
११. दर्शन विजयमणिकृत अन्योक्तिशतक,
१२. सोमनाथकृत अन्योक्तिशतक
१३. न्यायवाचस्पति रुद्रक-विरचित भावविलास,
१४. गणपतिशास्त्रीकृत अन्यापदेशपञ्चाशत,
१५. अज्ञातकर्तृक अन्यापदेशपद्धति,[3] एल. स्टर्नबाख महोदय ने इस प्रसङ्ग में महासुभाषित-संग्रह की भूमिका में और सूचनाएँ दी हैं।[4]
१६. कविमयूरकृत मयूराष्टक,[5]
१७. उत्प्रेक्षावल्लभ (शिवदास १४वीं शती) कृत भिक्षाटनकाव्य, जो ४० पद्धतियों में विभक्त हैं, शिवचरित से सम्बन्ध रखता है।

---

१. द्र. लुडविक स्टर्नबाखकृत **सुभा.** मो. डाइ. लिट. पृ. ७२
२. डॉ. के. कृष्णमूर्ति द्वारा यह सम्पादित तथा प्रकाशित है।
३. द्र. वही पृ. ७२
४. एल. स्टर्नबाख द्वारा सम्पादित **महासुभाषितसंग्रह** की भूमिका, वो.-१, दिल्ली १९७२
५. जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी, न्यू हवेन, ३१, पृ. ३४३-३४४ में G.B. Quackenbcs का लेख- **'मयूर के संस्कृत पद्य"**।

(ग) प्रहेलिका-

संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रहेलिकारूप काव्य को रसानुभूति में बाधक होने के कारण अधम काव्य में परिगणित किया गया है। प्रहेलिकारूप अलंकार भी रस-परिपन्थी होने से अलंकार कोटि में मान्य नहीं है-रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका। किन्तु आलोचकों ने उपदेशात्मक काव्यमें प्रहेलिका को परिगृहीत किया है। किसी विषय को प्रत्यक्षतः अभिधासे नहीं स्पष्ट कर परोक्षतः व्यञ्जना द्वारा व्यक्त करने से काव्य में एक चमत्कार का अनुभव होता है। इसीलिए आनन्दवर्धन आदि ध्वनिवादी आचार्य ध्वन्यमान अर्थ को अधिक महत्त्व देते हैं। कहने की इसी व्यङ्ग्यात्मक शैली में एक कलात्मक रचना है-प्रहेलिका।[1] यह चतुष्षष्टि कलाओं में एक स्वतन्त्र कला रूप मानी जाती है, प्रहेलिका द्वारा भी परोक्षरूप से उपदेश दिया जाता है, अतः इसे उपदेशात्मक काव्य-परिवार का भी अङ्ग माना जाता है।

ब्रह्म और अध्यात्मविषयक रहस्य तथा कूटात्मक वर्णन एवं ब्रह्मोद्यकथा वैदिक वाङ्मय में भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद की वाजसनेयिसंहिता, तैत्तिरीय संहिता, अथर्ववेद, शतपथ-ब्राह्मण, ऐतरेय-ब्राह्मण, कौषितकि-ब्राह्मण, तैत्रिरीय-ब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद्, आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र, आश्वलायन-श्रौतसूत्र, कात्यायन-श्रौतसूत्र, लाट्यायन-श्रौतसूत्र, सांख्यायन-श्रौतसूत्र, वैतान-सूत्र आदि में कूटात्मक-रहस्यात्मक उपदेश मिलते हैं। महाभारत, बौद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य आदि में भी उपदेशात्मक ऐसे वचन भरे पड़े हैं।[2] सुभाषितसंग्रहों में अनेक कूटात्मक उपदेश संगृहीत हैं। काव्य-शास्त्रमें प्रहेलिका के अनेक भेद-प्रभेद किए गए हैं।[3]

प्रहेलिकाओं के अनेक संकलन मिलते हैं। इनमें धर्मदासकृत "विदग्धमुखमण्डन"[4] अति प्रसिद्ध है। इसके अनेक श्लोक शार्ङ्गधरपद्धति में तथा जल्हण-विरचित सूक्ति-मुक्तावली में संगृहीत हैं। इसीसे यह भी निश्चित होता है कि विदग्धमुखमण्डनकार धर्मदास १२५० ई. के पूर्व ही विद्यमान थे। जिनप्रभ सूरि ने इस पर एक टीका लिखी है। १२९३ से १३९३ के बीच जिनप्रभ सूरि का कार्यकाल ज्ञात है। इससे भी धर्मदास का १२५० ई. से पूर्व का होना सिद्ध होता है।

---

१. प्रहेलिका एक पारिभाषिक शब्द है। विदग्धमुखमण्डन में उसकी निम्नलिखित परिभाषा दी गई है-
व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात्। यत्र बाह्यान्तरावर्थौ कथ्येते सा प्रहेलिका।
इसमें प्रतिपादय अर्थ को गुप्त रखकर किसी अन्य अर्थको बतलाया जाता है। इसके आर्थी और शाब्दी दो प्रभेद होते हैं। 'विदग्धमुखमण्डन' में इसका उदाहरण दिया गया है-तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः। गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ?। इसका उत्तर है-किञ्चित ऊन (खाली) जलपूर्ण घट।)

२. द्र. **सुभा.** नो. डा. लि. पृ. ७३

३. **काव्यादर्श** ३, ९८-१२३।

४. **काव्य-संग्रह**, २६९-३११, Haeberlin द्वारा संकलित, कलकता १८४७ ई। ताराचन्द्र की विद्वन्मन्थरा के साथ संस्कृत प्रेस, बनारस से भी १८६६ ई. में प्रकाशित।

प्रहेलिका, आलाप, अन्तरालाप आदिरूपमें विरचित 'विदग्धमुखमण्डन' धर्मदास के कवि-कर्म-कौशल का चूडान्त निदर्शन है। काव्यकला की दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है। यह चार अध्यायों में विभक्त है। कुल २२० श्लोक हैं। प्रहेलिका का अर्थ समझना कठिन है, इसलिए इस पर अनेक व्याख्याएँ की गई हैं।

नागराज या नागनाथ-रचित 'भावशतक'[१] प्रहेलिकात्मक पद्यों का एक दूसरा प्रसिद्ध संग्रह है। इसमें विभिन्न छन्दों में रचित मुख्यतः संस्कृत में आनुषङ्गिकतया प्राकृत में भी कूटात्मक कुल १०२ पद्य हैं।

इसी श्रेणी की रचनामें निम्नलिखित कृतियाँ भी आती हैं -

१. अज्ञातकर्तृक 'समस्यादीप'[१] में १७५ श्लोक हैं, जिसमें ७६ श्लोकों में समस्यात्मक पङ्क्तियाँ हैं।
२. अज्ञातकर्तृक 'सीताविनोदकाव्य'[२] में १२० पद्य हैं। इसमें श्रीराम के वियोगमें सीता के मनोभावों का सुन्दर वर्णन है।
३. कवि काशीनाथ-विरचित 'दृष्टकूटार्णव'[३] इसी कोटि की कृति है।
४. हिमकरशर्मा-लिखित 'संसार-विहारकाव्य'[४], 'प्रहेलिकापहुति कूटाख्यान'[५] तथा लक्ष्मीनारायण-विरचित 'समस्यापूर्ति'[६] आदि प्रहेलिकारूप उपदेशात्मक काव्य हैं। इनमें अनेक प्रहेलिकाओं के अर्थ स्वयं लेखक ने अथवा उनके व्याख्याकारों ने स्पष्ट किए हैं।

नीत्युपदेशात्मक काव्यके पूर्वोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत वाङ्मय में नीति और उपदेश को अनेक पद्धतियों से व्यक्त किया गया है। कहीं तो कवि ने अपने प्रतिपाद्य विषय को अभिव्यक्त करने के लिए शृङ्गारात्मक शैली को अपनाया है तो कहीं शान्ति और वैराग्य मार्ग के द्वारा अपने विचारों को प्रकट किया है। कहीं तो रामयण, महाभारत, पुराण, महाकाव्य आदि में प्रतिपादित नीत्युपदेशपरक वचनों को संकलित कर

---

५. **काव्यमाला**, चतुर्थगुच्छक, पृ. ४६-६४ तथा **ग्रन्थ-रत्न-माला**, खण्ड १ मुम्बई १८९७
१. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित **संस्कृत पाण्डुलिपि**, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल,-५५३४
२. वही-७, ५५४१
३. वही-७, ५५३२
४. वही-७, ५५३६
५. वही-७, ५५४२
६. वही-७, ५५३६

उनका संग्रह किया है और अनेक मनीषियों ने नीति और उपदेशविषयक स्वतन्त्र रचनाएँ की हैं। इन स्वतन्त्र रचनाओं में भी विभिन्न शैलियों को अपनाया है। कहीं पति-पत्नी के परस्पर सम्वाद रूपमें, जैसे रामचन्द्रागमी की 'सिद्धान्त-सुधातटिनी' में, कहीं दो प्रेमियों के बीच पारस्परिक आलापमें, जैसे चोर कवि-कृत 'विद्यासुन्दर' में, 'रम्भा-शुक सम्वाद' में, कहीं एक युवती के साथ एक परिव्राजक के वार्तालाप में, जैसे 'मदनमुखचपेटिका' में, कहीं दो पशुओं के बीच जैसे शूकर और सिंह के सम्वादरूप घटकर्पर के 'नीतिसार' में, कहीं शिव-पार्वती के परिसम्वाद में नीत्युपदेशात्मक काव्य लिखे गए हैं।

उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त उपदेशात्मक वर्णन अन्योक्तिशैली में और प्रहेलिका के रूपमें भी दिया गया है। किसी विषयको प्रत्यक्षतः नहीं कहकर परोक्ष रूप से कहने में एक विशिष्ट चमत्कार आ जाता है। अतः कवियों ने इन शैलियों में अभीष्ट विषयों का निरूपण किया है। उपदेशात्मक काव्य में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का निर्देश/उपदेश रहता है, इसलिए शृङ्गार और वैराग्य के द्वारा भी वह व्यक्त किया जाता है। अतएव नीत्युपदेशात्मक संस्कृत काव्य किसी एक शैली में आबद्ध नहीं है।

# अभिलेखीय साहित्य

## संकेत-सूची

| | | |
|---|---|---|
| १. | अष्टा. | अष्टाध्यायी |
| २. | ऑ.स.ई. | आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया |
| ३. | ऑ.स.ई., ऐ.रि.-ऑर्केलाजिकल | सर्वे ऑफ इण्डिया, ऐनूअल रिपोर्ट |
| ४. | ऐ. आई. | ऐंसियेन्ट इंडिया |
| ५. | ए. एस. आई. ए. आर. | आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया-ऐनूअल रिपोर्ट |
| ६. | एस. आई. | सेलेक्टेड इन्सक्रिप्शन्स |
| ७. | इ.एच. बी. एस. | अर्ली हिस्ट्री ऑफ, वैष्णव सेक्ट |
| ८. | ई. ऐं. | इंडियन ऐण्टीक्वेरी |
| ९. | इं. का. | इंडियन कल्चर |
| १०. | इं. स्ट. | इंडियन स्टडीज |
| ११. | इं.हि. क्वा. | इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली |
| १२. | ए.इ. यू. | दि एज. ऑफ इम्पिरियल यूनीटी |
| १३. | ए.इ. | एपिग्राफिका इंडिका |
| १४. | ऐ. अ. | ऐहोल अभिलेख |
| १५. | ऐ. ने. | ऐन्सियेन्ट नेपाल |
| १६. | ऐ.भ. ओ. रि. इं. | ऐन्नाल्स भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट |
| १७. | क.हि.इ. | ए. कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया |
| १८. | कॉ. इं. इं. | कार्बन्सं इन्सक्रिपसमं इन्डिकारम्। |
| १९. | का.प्र. | काव्यप्रकाश |
| २०. | काव्या. | काव्यादर्श (दण्डी) |
| २१. | क.स्त. अ. | कहाऊँ स्तम्भ अभिलेख |
| २१क. | गि.अ. | गिरनार अभिलेख |
| २२. | गु.सा. | गुप्त-साम्राज्य |
| २३. | गु. सा.इ. | गुप्त-साम्राज्य का इतिहास |
| २४. | खा. हा. अ. | खाखेल का हाथीगुफा अभिलेख |
| २५. | खों. क. नि. शि. | खोपाली कर-निर्धारण शिलालेख |

| | | |
|---|---|---|
| २६. | खो. ता. अ. | खोह ताम्रपट्ट-अभिलेख |
| २७. | चै. | चैप्टर |
| २८. | छ.स्त. ले. | छंगूनारायण स्तम्भ-लेख |
| २६. | ज.ए.सो.बं. | जरनल ऑफ ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल। |
| ३०. | ज.गं.ना. रि.इं. | जरनल गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टिच्यूट। |
| ३१. | जन. | जनवरी |
| ३२. | ज.न्यू.सो.इं. | जरनल न्यू मिशमेटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया |
| ३३. | ज.प्रो. ए.सो.बं. | जनरल एण्ड प्रोसीडिङ् ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (न्यू सीरिज) |
| ३४. | ज.ब.ब्रा. रो. ए.सो. | जरनल बॉम्बे ब्रांच ऑफ रोआएल एशियेटिक सोसायटी, मुंबई। |
| ३५. | ज.बि. ओ. रि.एस. | जनरल बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी |
| ३६. | जी.आर. | जोली रेग्मी |
| ३७. | जू.प्र. अ. | जूनागढ़ प्रस्तर अभिलेख |
| ३८. | जे.बी. बी. आर.एस. | जरनल बॉम्बे ब्रान्च ऑफ रोएल एशियेटिक सोसायटी। |
| ३६. | त.ता. अ. | ततिक का तक्षशिला ताम्रपट-अभिलेख |
| ४०. | तुल. | तुलनीय |
| ४१. | द्वि.ले. | द्वितीय लेख |
| ४२. | दे.अ. | देवपाराअभिलेख |
| ४३. | द्र. | द्रष्टव्य |
| ४४. | न.शृ. | नवीन शृंखला |
| ४५. | ना.गु. अ. | नागन्निका का नानाघाट का गुहा अभिलेख |
| | ४५ (क) नासि. गु.अ. (शा.) | नास्तिक गुहा अभिलेख (शातकर्णि) |
| ४६ | ना.प्रा. प. | नागरी प्रचारिणी पत्रिका |
| ४७. | ने. इं. गु. के. | नेपालिज इंस्क्रिप्शन्स इन गुप्त कैरेक्टर |
| ४८. | ने.सं. अ. हि. अ. | नेपाली संस्कृत अभिलेखों का हिन्दी अनुवाद |
| ४६. | न्यू. इं. ऐं. | न्यू इंडियन ऐण्टीक्वेरी |
| ५०. | प. | पद्य |
| ५१. | पत. महा. | पतंजलि महाभाष्य |

| | | |
|---|---|---|
| ५२. | परि. | परिशिष्ट |
| ५३. | पा.टि. | पाद-टिप्पणी |
| ५४. | पी.एफ.इ. | प्रीपेरा टू दि फस्ट एडीशन |
| ५५. | बे.अ. | बेह्वा अभिलेख |
| ५६. | पं. | पंक्ति |
| ५७. | प्र. | प्रथम |
| ५८. | प्र.स्त.ले. | प्रयाग स्तम्भ लेख |
| ५९. | प्रा.भा. अ.सं. | प्राचीन भारतीय अभिलेख -संग्रह |
| ६०. | प्रा. भा. अ. | प्राचीन भारतीय अभिलेख |
| ६१. | प्रो. ए.एस. आर. | प्रोसिडिङ्गस्आर्केलोजिकल सर्वे एण्ड रिपोर्ट |
| ६२. | पु. ना.गु. अ. | पुलुमावि नासिक गुहाअभिलेख |
| ६३. | पृ. | पृष्ठ |
| ६४. | प्रा.भा. अ. | प्राचीन भारतीय अभिलेख |
| ६५. | प्रा.भा.अ.सं. | प्राचीन भारतीय अभिलेख-संग्रह |
| ६६. | बि. स्त. अभि. | बिलसड-स्तम्भ -अभिलेख |
| ६७. | बी.इ. एफ. इ. ओ. (B.E.F.E.O.) | बुलेटिन डि १ इकोले फ्रेकैसे डी एक्ट्रीम (Bulletin de I Ecole Francai Sed' Extreme Orient.) ओरियण्ट |
| ६८. | बु.गु. सा.बु.प्र.अ. | बुद्धगुप्त-कालीन सारनाथ बुद्ध-प्रतिमा-अभिलेख। |
| ६९. | बे. ग. अ. | (हेलियोदोरस का) बेस-नगर गरुड़-स्तम्भ |
| ७०. | बृ.सं. | बृहत्संहिता |
| ७१. | भा. | भाग |
| ७२. | भा. अ. | भारतीय अभिलेख |
| ७३. | मि.मु. ले. | मिटारी मुद्रा-लेख |
| ७४. | मि. स्त. अ. | मिटारी स्तम्भ अभिलेख |
| ७५. | भी.प.प्र.नि. शि. | भीमसेन पंचापराकी-प्रवेश-निषेधाज्ञा-शिलालेख |
| ७६. | मनु. | मनुस्मृति |
| ७७. | म.बं. | महाबंरा |
| ७८. | म.शि. | मन्दसौर शिलालेख |
| ७९. | माल. | मालविकाग्निमित्र |

| | | |
|---|---|---|
| ८० | मि. ग्वा.अ. | मिहिरकुल ग्वालियर अभिलेख |
| ८१. | मि.ता.अ. | मिदनापुर ताम्रपट्ट-अभिलेख |
| ८२. | मु.रा. | मुद्राराक्षस |
| ८३. | मे.अ. | मेबोन अभिलेख |
| ८४. | मे.लौ. स्त. | मेहरौली लौह-स्तम्भ |
| ८५. | वाराव- | वारावदत्ता |
| ८६. | ये. ला. त्रय.शि. | यँगाहिटिं लागन्टीले त्र्यग्रहार शिलालेख |
| ८७. | शि.मि.अ. | शिनकोट मिनेन्द्र कालीन अभिलेख |
| ८८. | से.इं. | सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शन्स |
| ८६ | रो.क.इ. | सेकेक्टेड कम्बोडियन इन्सक्रिप्शन्स |
| ६० | सं. श.को. | संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ |
| ६१ | स्त. | स्तम्भ |
| ६२ | ह.अ. | हड़ाहा अभिलेख |
| ६३ | ह.च. | हर्षचरित |

# अभिलेखीय गद्य

ऐतिहासिक शोध सामग्री के रूप में प्राचीन भारतीय अभिलेखों का विशेष महत्त्व है। भारतीय इतिहास को स्वरूप प्रदान करने में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा है। अतः उन सभी विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर कक्षाओं में, जहाँ संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व का अध्ययन-अध्यापन होता है, इसे पाठ्यक्रम में विशेष स्थान है।

अठ्ठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी-शासन के अनेक अधिकारियों का ध्यान यत्र-तत्र देश में बिखरी हुई प्राचीन वस्तुओं की ओर गया और उनकी कलात्मकता के प्रति आकृष्ट होकर उनका संग्रह करना आरम्भ किया। इसी क्रम में उन लोगों में इस देश के इतिहास, कला तथा पुरातन वस्तुओं के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

पुरातात्त्विक सामग्री का संकलन करते समय इन लोगों की दृष्टि में पत्थर, ताम्रपत्र आदि पर लिखे अनेक अभिलेख आए और उनमें लिखित तथ्यों की स्वाभाविक जिज्ञासा भी उत्पन्न हुई।

आरम्भ में इन अभिलेखों को पढ़ने में सबसे बड़ी कठिनाई यह आई कि वे अभिलेख ऐसी लिपियों में लिखे थे, जिनका स्वरूप देश में प्रचलित लिपियों से सर्वथा भिन्न था और इन प्राचीन कालीन लिपियों को जानने-समझने वाले इस देश में बहुत कम लोग थे।

१६वीं शताब्दी में जब पुर्तगाली बम्बई के तटीय प्रदेशों में अधिकार कर एलिफेन्टा स्थित लयम में पहुँचे तो उन्हें वहाँ एक अभिलेख मिला। सम्भवतः यूरोपीय विद्वानों द्वारा देखा जाने वाला यह प्राचीनतम भारतीय अभिलेख था। परन्तु, इसे पढ़ने वाला एक भी व्यक्ति नहीं मिल सका।

यह अभिलेख अशोक के अभिलेखों से लगभग एक हजार वर्ष बाद का यानी आठवीं नवीं शताब्दी की लिपि में था। पुनः कठिनाई आने पर भी यूरोपीय विद्वानों ने स्वयं इन्हें पढ़ने का प्रयास किया।

१७८५ ई. में चार्ल्स विल्किन्स ने पहले पहल दीनाजपुर (बंगाल) जिले के बदल नामक स्थान से प्राप्त एक पालकालीन स्तम्भ अभिलेख पढ़ने में सफलता प्राप्त की। उसके बाद राधाकान्त शर्मा ने चौहान नरेश बीसलदेव की एक प्रशस्ति का पाठोद्धार किया। धीरे-धीरे और भी राजपूत नरेशों के अभिलेख पढ़े गये। ये सब लेख अधिक पुराने नहीं थे तथा उनकी लिपि देवनागरी लिपि से अधिक निकट थी। अतः इनके पढ़ने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। इन अभिलेखों के पाठोद्धार से पूर्ववर्ती लिपियों के पाठोद्धार का मार्ग प्रशस्त हो गया।

१८३४ ई. में ट्रायर एवं मिल ने मिलकर समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के पढ़ने का प्रयास किया। तदनन्तर स्कन्दगुप्त का भितरी स्तंभलेख पढ़ा गया। १८३७-३८ ई. आते-आते प्रिंसेथ ने पूर्णरूप से गुप्तलिपि के सम्पूर्ण अक्षरों को पहचान लिया।

गुप्तकाल से पूर्व की लिपि के पाठोद्धार की दिशा में प्रगति का आरम्भ १८३६ ई. में उस समय हुआ जब लेसेन (Lassan) ने भारतीय यवन-नरेश अगथुक्लेस (Agathokles) के द्विभाषिक सिक्कों पर यूनानी लिपि की सहायता से उसके नाम की ब्राह्मी लिपि में भी अंकित होने का अनुमान प्रस्तुत किया। इस सूत्र से ज्ञात चार-पाँच अक्षरों तथा सांची की वेदिका के स्तम्भों पर अंकित दान-लेखों में अन्त में समान रूप से अङ्कित अक्षर-द्वय को दानं अनुमान कर और गुप्तकालीन लिपियों की सहायता लेकर प्रिंसेथ ने अशोककालीन लेखों का तुलनात्मक अध्ययन किया और इस प्रकार अशोककालीन ब्राह्मीलिपि के वर्षों को पहचानने में उन्होंने सफलता प्राप्त की। इन प्रयासों के फलस्वरूप तीसरी शताब्दी ई.पू. से १२वीं शताब्दी ई. तक लिपियों का परिचय मिला और ज्ञात हुआ कि वे सब ब्राह्मी नामक एक प्राचीन लिपि से निकली हुई हैं। उसके बाद समय-समय पर आवश्यक संशोधन-परिवर्तन कर विद्वानों ने विभिन्न कालों के लिपि-स्वरूपों को स्थिरकर भारतीय लिपियों के क्रमिक विकास पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार के इतिहास प्रस्तुत करने वालों में ब्युहलर (Buhler) का नाम सादर लिया जाता है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय लिपियों की जानकारी प्राप्त होने के बाद भारतीय अभिलेखों की दिशा में अधिक प्रगति हुई। फलतः प्राचीन अभिलेखों के पठन-पाठन, सम्पादन और प्रकाशन में गति आई। कनिंघम ने अधिक अभिलेख पढ़े और प्रकाशित भी किए। जेम्स वर्गेस ने १८७२ ई. से प्रकाशित की जानेवाली 'इण्डियन ऐण्टीक्वेरी' ऐशियेटिक सोसाइटी की लंदन एवं कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में अधिक संख्या में अभिलेख प्रकाशित हुए। उनके मूल अनुवाद तथा लियोग्राफ प्रकाशित करने वाले तत्कालीन विद्वानों में ब्युहलर, फ्लीट, एंगलिड्, राइस, भण्डारकर, और भगवान् लाल इन्द्रजी के नाम उल्लेखनीय हैं।

कनिंघम ने इस प्रकार प्रकाश में आये अभिलेखों का काल-क्रम से प्रकाशित करने की एक योजना बनाई थी। उस योजना के अन्तर्गत १८७७ ई. में कार्पस् इन्सक्रिपशनम् इण्डिकोरम् के प्रथम खण्ड के रूप में अशोक के अभिलेख प्रकाशित किए गए। १८८१ ई. में एक अभिलेखकी सर्वेक्षण-संस्थान की स्थापना हुई और १८८३ ई. में फ्लीट (Fleet) इस योजना के अंतर्गत इस कार्य को बढ़ाने के लिए नियुक्त किए गये। उन्होंने 'कार्पस् इन्सक्रिपशनम् इण्डिकोरम्' वाली योजना के अन्तर्गत गुप्तवंश से सम्बद्ध तथा तत्कालीन अभिलेखों का संकलन प्रस्तुत किया। १८८६ में मद्रास सरकार ने ई. हुल्श को अपना अभिलेखक नियुक्त किया। उन्होंने १८६० ई. में दक्षिण भारतीय-अभिलेख-ग्रन्थ के रूप

में प्रकाशित किया। पश्चात् भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाले अभिलेखों के प्रकाशनार्थ 'एपिग्राफिका इण्डिका' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका के अतिरिक्त अन्य इतिहास संबंधी पत्रिकाओं में भी समय-समय पर अभिलेख प्रकाशित होते रहते हैं। इस प्रकार कतिपय हजार की संख्या में अभिलेख अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। पुनरपि बहुत से अभिलेख अभी भी अप्रकाशित हैं।

कनिंघम की योजना के अन्तर्गत अशोक तथा गुप्तकालीन अभिलेख तो विगत शताब्दी में ही प्रकाशित हो गये थे। इधर इसके अन्तर्गत १६१६ में स्टेनेकोनी ने खरोष्ठी अभिलेखों को प्रकाशित किया। १६५५ में वी. वी. मीराशी ने 'कलचुरी-चेदि-सम्वत्' से सम्बद्ध अभिलेखों का सम्पादन किया है। हिन्दी में अभिलेखों का प्रकाशन धीमी गति से होने लगा है। पुनरपि अशोक के लेखों को श्री जनार्दन मिश्र (ज्ञानमण्डल, काशी) श्री गौरी शंङ्कर हीराचन्द्र ओझा (नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी) और श्री राजबली-पाण्डेय (ज्ञानमण्डल, काशी) ने अपने-अपने ढंग से सम्पादित कर प्रकाशित किया है। गुप्तकालीन शिलालेखों से सम्बद्ध स्व. डॉ. वासुदेव उपाध्याय का कार्य भी प्रशंसनीय है।

प्राचीन अभिलेख शिलाखण्ड, शिलापट्ट, स्तम्भ, स्तूप, गुफाभित्ति, ताम्रपत्र, सिक्का एवं मुहरों पर अंकित मिलते हैं। प्राचीन भारतीय अभिलेख नाना विषयों से संबंद्ध हैं। डॉ. दिनेश चन्द्र सरकार ने उन्हें धर्मलेख, प्रशस्ति, दान एवं विविध-चारवर्गों में विभाजित किया है। डा. राजबली पाण्डेय ने उन्हें भागद्वय में विभाजित किया है। पुनः राजकीय अभिलेख धर्मशास्त्रीय आधार पर इस प्रकार विभाजित किए गए हैं-शासन, जयपत्र, आज्ञापत्र और प्रज्ञापत्र।

इन अभिलेखों का महत्त्व हमारी दृष्टि से इस कारण है कि उनसे हमें प्राचीन इतिहास से सम्बधित अनेक ऐसी जानकारी प्राप्त होती है जो अन्य सूत्रों से आज अनुपलब्ध है। इनसे प्राप्त जानकारी अन्य सूत्रों से प्राप्त जानकारी की अपेक्षा अधिक विश्वस्त और प्रामाणिक मानी जा सकती हैं। यह जानकारी विशेषतः निम्नलिखित दिशाओं में प्राप्त होती है-

क. भौगोलिक परिचय

ख. राजवंशीय परिचय

ग. सामाजिक एवं धार्मिक परिचय

घ. आर्थिक (स्थितीय) परिचय, एवं

ङ. साहित्य परिचय।

प्राचीनतम अभिलेखों के रूप में अशोक के अभिलेखों की गणना की जाती है। उनकी भाषा को लोगों ने मागधी-पालि होने का अनुमान किया है। प्राकृत का प्रयोग सातवाहन वंशी नरेशों के लेखों में मुख्य रूप से मिलता है। पश्चिम क्षत्रपों के अभिलेखों में प्राकृत

संस्कृत की ओर झुकती हुई दिखाई देती है। चौथी शताब्दी के पश्चात् प्रायः सभी शिलालेख संस्कृत में ही लिखे जाते रहे।

अभिलेखो के लिखने के लिए जिन सामग्रियों का उपयोग हुआ है, उनको उपकरण और आधार सामग्री के रूप में वर्ग-द्वय में बांट सकते हैं। उपकरण के रूप में लेखनी और स्याही प्रधान है। लेखनी में कलम, कूंची, खुरचकर लिखने की शलाका, पत्थर टॉकने वाली छेनी आदि सभी आ सकते हैं। स्याही एवं रंग का प्रयोग प्राचीन अभिलेखों में बहुत ही कम हुआ है। अजन्ता के भित्ति-चित्रों में कहीं-कहीं इस प्रकार के लेख देखने में आये हैं। वैसे स्याही का प्रयोग पुस्तक आदि के लिखने के लिए ही किया जाता रहा है।

आधार सामग्री के रूप में अभिलेखों के लिए धातु एवं शिलाफलक ही प्रधान रहे हैं। कहीं-कहीं उनके लिए काठ का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। पर ऐसे लेखों की संख्या बहुत ही कम है। एकाध काष्ठ के यूप-स्तम्भ भी अभिलेख-युक्त मिले हैं। मुहरों की छाप के लिए मिट्टी का प्रयोग होता रहा ह। अतः मिट्टी, पत्थर, हड्डी और हाथी-दांत के बनाए जाते थे।

## प्राकृत-भाषा में प्राप्य अभिलेख

इस वर्ग के शिलालेखों को वर्ग-द्वय में विभाजित किया गया है-

क. पालि में लिखित अभिलेख और

ख. प्राकृत भाषा में लिखित अभिलेख

पालिभाषा में लिखित अभिलेख-बुद्धघोष ने बौद्धत्रिपिटक या बुद्धवचन के सामान्य अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग किया है। (इसे मागधी भी कहा गया है।) मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाओं के इस आरम्भिक काल में प्रियदर्शी अशोक के शिलालेखों और सिक्कों पर उत्कीर्ण बोलियों का भी अर्न्तभाव होता है। ये लेख ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों में भारतवर्ष में और लंका में उपलब्ध हुए हैं। सम्राट् अशोक के बाद भी स्तम्भों आदि के ऊपर ८०० वर्षो तक इस प्रकार के लेख उत्कीर्ण होते रहे।

**प्राकृत शिलालेख**-प्राकृत के शिलालेखों में राजा खारवेल का हाथी गुंफा का शिलालेख अत्यन्त प्राचीन है। यह पालि से मिलता-जुलता है और इसवीसन् के पूर्व लगभग प्रथम शताब्दी के अन्त में ब्राह्मीलिपि में भुवनेश्वर के पास उदयगिरि नामक पहाड़ी में उत्कीर्ण किया गया था। इस शिलालेख में खारवेल के राज्यों के १३ वर्षो का वर्णन है।

वासिष्ठी पुत्र पुलमावि का नासिक ग्रुप का एक दूसरा शिलालेख है, जो ई. सन् १४९ में नासिक में उत्कीर्ण किया गया है।

संस्कृत-भाषागत प्राचीन अभिलेख प्राप्य नहीं हैं। चौथी शताब्दी के बाद प्रायः सभी अभिलेख संस्कृत में ही लिखे जाते रहे। उनमें रुद्रदामन्, मेहरौली, मन्दसोर, ऐहोल एवं देवपारा-शिलालेख महत्त्वपूर्ण हैं।

**अभिलेखों का महत्त्व**-सम्भवतः ऐतिहासिक महत्त्व के जितने अभिलेख भारतवर्ष में मिलते हैं, उतने विश्व के किसी भी अन्य देश में उपलब्ध नहीं हैं और न कोई दूसरा ऐसा देश है, जिसमें प्राचीन इतिहास का पुनर्निर्माण अभिलेखों पर इतना अधिक निर्भर है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य स्रोतो में पुरातत्त्व का अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान है। पुरातत्त्व के क्षेत्र में अभिलेख, मुद्राएँ, प्राचीन स्मारक एवं उत्खनन के क्रम में उपलब्ध इतर वस्तुएँ भी परिगणित की जाती हैं। उपर्युक्त सभी वस्तुओं में अभिलेख का सर्वाधिक महत्त्व है। इसका कारण भी स्पष्ट है। मुद्राओं से देश-विदेश के किसी राजा का नाम और तत्कालीन आर्थिक स्थिति का पता चलता है। परन्तु मुद्राओं से देश-विशेष का क्रम-बद्ध इतिहास प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। ठीक इसके विपरीत अभिलेखों की सहायता से क्रमबद्ध इतिहास एवं संस्कृति पर पूर्ण प्रकाश डाला जा सकता है। अभिलेखों के बिना अशोक महान् एक अस्पष्ट पुराकथा से अधिक नहीं रह जाते, महाशक्तिमान् गुप्तवंश के विषय में शायद ही कोई जानकारी शेष बचती। हर्ष और उत्तर भारत पर तुर्कों की विजय के बीच में शासन करने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण राजवंशों के इतिहास के विषय में हमलोग पूर्णतः अनभिज्ञ रह जाते। जहाँ बहुत सी अन्य प्राचीन समस्याओं के लिए अभिलेख इतिहास के स्रोतों के रूप में केवल गौण महत्त्व का ही है, भारतीय इतिहास के लिए वे प्राथमिक महत्त्व के साधन हैं।

प्रस्तर-खण्डों पर उत्कीर्ण लेख एक और दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रमाणित होते हैं। काष्ठफलक, भोजपत्र या ताम्रपत्र पर अंकित लेख चिरस्थायी नहीं हो सकते, परन्तु प्रस्तरखण्ड पर उत्कीर्ण लेख बहुकालपर्यन्त अपरिवर्तित अवस्था में ज्यों के त्यों रहते हैं।

अभिलेख प्राचीन वाङ्मय में उल्लिखित तथ्यों की प्रामाणिकता उपस्थित करते हैं। इतना ही नहीं, यत्र-तत्र अज्ञात इतिहास एवं तत्कालीन संस्कृति की एक झलक भी प्रस्तुत करते हैं। जहाँ साहित्य से इतिहास का ज्ञान स्पष्ट नहीं हो पाता, वहाँ अभिलेख की सहायता से इतिहास का निर्माण किया जाता है।

अभिलेखों के अध्ययन से भाषा का भी ज्ञान हो जाता है। कतिपय विद्वान् गुप्तकाल को संस्कृत-भाषा का स्वर्णिम युग मानते हैं। इस समय संस्कृत-वाङ्मय में पुनर्जागरण हुआ और पालि एवं प्राकृत भाषाद्वय पर संस्कृत ने अपना प्रभुत्व जमा लिया[1]। यही कारण है कि गुप्तनरेशों ने संस्कृत-भाषा में ही अपने अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाया। यत्र-तत्र इन

---

१. **गु. सा.**, परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ. ५०७

शिलालेखों पर पालि एवं प्राकृत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। मथुरा के चन्द्रगुप्त द्वितीय का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है, जिसकी संस्कृत भाषा प्राकृत से किञ्चित् प्रभावित प्रतीत होती है।[1]

अभिलेखों के अध्ययन में हम संस्कृत-प्राकृत साहित्य के कतिपय कवियों को जानने में समर्थ हो सके हैं। इन कवियों का नाम अन्यत्र नहीं मिलता है। इनमें प्रयाग प्रशस्तिकार हरिषेण, मंदसौर-प्रशस्ति के रचयिता वत्सभट्टि, मालवा-नरेश यशोवर्धन की मंदसोर प्रशस्ति के लेखक वासुल, हरहा प्रशस्तिकार ईशान वर्मा, गोविन्दपुर (गया, विहार) के लेख में चर्चित कवि श्रीधरदास एवं हरिकेलि नाटककार विग्रहराज उल्लेखनीय हैं। गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त के समकालीन शाब-नामक एक कवि का उल्लेख भी अभिलेखों में मिलता है। सच पूछा जाय तो इन लेखों के उल्लेख के बिना संस्कृत-वाङ्मय का इतिहास अधूरा ही रह जायेगा।[2]

लिपि एवं भाषा की सहायता से हम अभिलेख के काल का निर्णय कर पाते हैं। अभिलेखीय भाषा के ज्ञान के अभाव में हम कैसे कह पाते कि प्रयाग-प्रशस्ति, जो प्रयाग में मिली, अशोक-कालीन है। सर्वप्रथम उस पर सम्राट् अशोक के अभिलेख उत्कीर्ण हुए एवं गुप्तकाल में पुनः उस पर समुद्रगुप्त की दिग्विजय-गाथा अंकित हुई।

अभिलेखों के आधार पर प्रस्तुत खण्डों पर उत्कीर्ण प्रतिमाओं का परिज्ञान होता है। कतिपय अभिलेख ऐसे भी मिले हैं, जिनमें उनकी तिथि एवं तत्कालीन शासक का नाम अनिर्दिष्ट रहते हैं। परन्तु लिपि की सहायता से हम सहज ही उनका तिथि-निर्धारण कर लेते हैं। सांची एवं गया के प्रतिमालेख इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये दोनों अभिलेख गुप्तकालीन माने जाते हैं।[3] अभिलेखों से किसी भी राजवंश की उन्नति-अवनति पर भी प्रकाश पड़ता है। साथ ही ये अभिलेख नृप-विशेष की वंशावली का भी परिचय प्रस्तुत करते हैं। गुप्तकालीन अभिलेख इसके उत्तम उदाहरण हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में उसकी सम्पूर्ण वंशावली चित्रित है।

अभिलेखों में यत्र-तत्र राजधानी एवं नगरों का भी उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त-प्रथम के मंदसोर-अभिलेख में लाट और दशपुर नामक तत्कालीन प्रमुख व्यावसायिक नगर-द्वय का उल्लेख है।

किसी भी देश की आर्थिक स्थिति का भी अभिलेखों से समुचित परिज्ञान होता है। भूमिदान से सम्बद्ध शासन की सहायता से, कर-व्यवस्था का पर्याप्त ज्ञान होता है। साथ

---

१. गु.सा.इ.-डा. वासुदेव उपाध्याय

२. का. इ. इ., भा. ३, ४०२७६

३. भा. अभि., पृ. ८

ही, राजस्व से सम्बद्ध विभिन्न राजकीय अधिकारियों की चर्चा भी दानपत्रों में उपलब्ध होती है। कृषि संबंधी राजकीय सहायता की ओर भी ये अभिलेख संकेत करते हैं। रुद्रदामन् के अभिलेख से यह स्पष्ट है कि उस समय राज्य की तरफ से सिंचाई की एक अच्छी व्यवस्था की गयी थी।

इतना ही नही ये अभिलेख भारतवर्ष की धार्मिक अवस्था पर भी प्रकाश डालते हैं। अभिलेखों में मन्दिर-निर्माण, मूर्तिस्थापना, तड़ाग निर्माण-आदि की भी बहुत चर्चा मिलती है। अभिलेखों के मङ्गलश्लोकों में विभिन्न देवताओं का भी उल्लेख मिलता है। बेसनगर गरुड़स्तम्भ-अभिलेख से पता चलता है कि यूनानी राजदूत हेलियो देरस भागवत था। शककालीन अभिलेखों से यह पता चलता है कि उन लोगों ने भारतीय संस्कृति को स्वीकार कर लिया था।

भाषा-विशेष के विकास एवं कला-निर्धारण में भी अभिलेखों से पर्याप्त सहायता मिलती हैं। शकसंवत् ७२ का गिरनार अभिलेख संस्कृत गद्य-काव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। ५५६ शकसंवत् का ऐहोल शिलालेख में कालिदास के साथ-साथ भारवि की भी चर्चा की गयी है। अतः इन दोनों कवियों की उत्तरकालीन सीमा सहज ही निर्धारित हो जाती है। महाभारत का उल्लेख भी गुप्तसंवत् २१४ के शर्वनाथ अखोह ताम्र-पट्ट अभिलेख में मिलता है। यहाँ यह 'शतसाहस्रीसंहिता' के रूप में उल्लिखित है। अतः हम सहज ही कह सकते हैं कि गुप्तसंवत् २१४ (५३३-३४ ई.) तक महाभारत जैसे-विशालकाय धर्मग्रन्थ का कलेवर लिपिबद्ध हो चुका था।

**अभिलेखीय विभिन्न भाषाएँ एवं संवत्**-मध्य-भारतीय आर्य-भाषाओं की दो भाषाओं-पालि एवं प्राकृत का प्रयोग अभिलेखों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है। पालि ही बौद्ध धर्मग्रन्थ एवं सम्राट् अशोक के धर्मलेखों की भाषा मानी जाती है। आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व मगध में जो भाषा प्रयुक्त होती थी, उसे लोग मागधी के नाम से पुकारते थे। दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने के कारण भगवान् बुद्ध ने अपने धार्मिक उपदेशों में इसका प्रयोग किया और आगे चलकर सम्राट् अशोक ने अपने धर्मलेखों में भी इसे ही प्रयुक्त किया।[1] मागधी में 'र' की जगह सदा 'ल' का ही प्रयोग होता है। अतः हम वहाँ 'राजा' के स्थान में लाजा शब्द पाते हैं।

अशोक के उपरान्त यही भाषा पालि के नाम से विख्यात हुई। पालि शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग बुद्धघोष (पंचम शताब्दी) के ग्रंथ में उपलब्ध होता है। यहाँ इसका प्रयोग अर्थद्वय में किया गया है। (क) बुद्धवचन या (ख) त्रिपिटक। बुद्धघोष के गुरु ने उन्हें बुद्ध-कथाओं

---

१. प्रा. भा. अभि., पृ. १४५

को सिंहली से मागधी भाषा में रूपान्तरित करने का आदेश दिया था। जिस भाषा में सिंहली कथाएँ अनूदित हुई, वह पालि भाषा है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मागधी ही पालि थी। संस्कृत शब्द 'पंक्ति' का पर्याय पालि है। भाषा-विज्ञान की सहायता से हम इसका अर्थ ग्रंथ की उन पंक्तियों से करते हैं जिसमें भगवान् बुद्ध के मौलिक वचन संरक्षित है।

पालि के पश्चात् अभिलेखों के क्षेत्रों में प्राकृत भाषाओं का प्रयोग होने लगा। मौर्येतर काल में बेसनगर गरुड-स्तम्भ-लेख एवं शुंगवंशीय नरेश धनदेव का अयोध्या अभिलेख प्राकृत में ही है। सबसे विचित्र बात तो यह प्रतीत होती है कि शुंगवंशीय पुष्यमित्र इसी अवधि में शासन करता था एवं संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाभाष्यकार पतंजलि उसके समकालीन थे। परन्तु संस्कृत का रंचमात्र भी प्रभाव एतद्‌युगीन-अभिलेखीय भाषा पर परिलक्षित नहीं होता।

सातवाहन-वंशीय लेख और मुद्रालेख प्राकृत में ही प्राप्त होते हैं। नासिक, कन्हेरी एवं कार्ले से प्राप्त प्रशस्तियों की भाषा प्राकृत ही है। उनमें 'रु' और 'स' के प्रयोग के साथ-साथ 'अ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग परिलक्षित होता है।[2] वहाँ 'ग्राम' के स्थान पर ग्रामों उपलब्ध होता है। नासिक लेख में प्राकृत-भाषाओं में 'सातवाहन कुलयस प्रतिथापन करस' प्राप्य है।[3] यह उक्ति गौतमीपुत्र शातकर्णि से सम्बद्ध है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सातवाहन राजाओं के सभी सिक्कों के मुद्रालेख प्राकृत भाषा में ही हैं।[4]

आंध्र-प्रदेश, मध्यदेश, मैसूर, पूर्वीघाट एवं सोपारा के क्षेत्रों के सभी मुद्रा-लेख प्राकृत में उत्कीर्ण हैं। इतना ही नहीं सातवाहन-वंशीय 'हाल' नामक नरेश ने लोकविश्रुत प्राकृत-ग्रंथ 'गाहा सत्तसई' की रचना प्राकृत-भाषा में ही की।

यह तो लोकविदित है कि सातवाहन-नृपति वैदिक धर्मावलम्बी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया। परन्तु उनके शासन-काल में केवल प्राकृत का ही प्रयोग होता था। इसवी सन् की दूसरी शताब्दी में रामायण और महाभारत जैसे संस्कृत के अनुपम ग्रन्थों का पठन-पाठन अवश्य होता था। यही कारण है कि गौतमी-पुत्र शातकर्णि की उपमा राम, भीम, अर्जुन आदि से की गयी है। विद्वज्जनों का अनुमान है कि इसवी सन् की प्रथम शताब्दी से एक प्रकार की मिश्रित भाषा (संस्कृत + प्राकृत) का प्रचार हो रहा था और

---

१. म.वं, परि. ३७.
कता सिंहाल मीसाय सीहलेसु पवत्तति।
तं तत्थ गन्त्वा सुत्वात्वं मागधानां पवसति।

२. कार्लो लेख रजो वसिष्ठीपुतस सामिसिरि, (राज्ञः वासिष्ठीपुत्रस्य स्वामिश्री)

३. संस्कृत-रूप सातवाहन-कुलयशः प्रतिष्ठाय करस्य।

४. रञो गोतमी पुतस सिरी यत्र सातकनिसि।

वह धनदेव के अयोध्यालेख से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। सामान्य जनता में संस्कृत का प्रचार-प्रसार ईसवी सन् के बाद अधिक होने लगा। और इसी के फलस्वरूप १५० ई. का महाक्षत्रप रुद्रदामन् का एक संस्कृत-गद्य में उत्कीर्ण जूनागढ़ का अभिलेख प्राप्त होता है। इस प्रकार संस्कृत का प्रभाव उत्तरोत्तर इस क्षेत्र में बढ़ने लगा।

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर ईसवी सन् की कतिपय शताब्दीपर्यन्त पालि का प्रयोग भी संस्कृत के साथ परिलक्षित होता है। ईसवी सन् की तृतीय शताब्दी से प्रायः सर्वत्र राजकीय अभिलेख संस्कृत-भाषा में ही उत्कीर्ण होने लगे और यह क्रम गुप्तकाल में पूर्णतः अग्रसारित होता रहा।

चतुर्थ शताब्दी में हरिषेण ने गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति की रचना संस्कृत में की। यह चम्पू-काव्य का प्रथम उदाहरण माना जा सकता है। गुप्त साम्राज्य के सर्वविधलेख, अभिलेख, मुद्रालेख एवं प्रशस्तियाँ संस्कृत-भाषा में ही लिखी गयीं। इसी प्रकार उत्तर-गुप्त-युगीन समस्त अभिलेख एवं प्रशस्तियाँ संस्कृत-भाषा में ही अंकित हुईं। दक्षिण-भारत में वाकाटक, चालुक्य, राष्ट्रकूट और चोलवंशी अभिलेख भी संस्कृत में ही उत्कीर्ण हुए। इस प्रकार ईसवी सन् की तृतीय शताब्दी से लेकर द्वादश शताब्दीपर्यन्त भारतवर्ष में प्रशस्ति और ताम्रपत्र भी संस्कृत में ही अंकित हुए। सबसे अधिक विस्मयकारी तो यह बात प्रतीत होती है कि गुप्तयुगीन मुद्रालेख संस्कृत-भाषा में ही है और वह भी पद्यात्मक। उदाहरणार्थ हम समुद्रगुप्त की दण्डधारी एवं कुमारगुप्त प्रथम के अश्वारोही मुद्रा पर उपगीति-छन्दोबद्ध यह पंक्ति मिलती है। **"समर-शत-वितत-विजयो जित-रिपुरजितो दिवं जयति।"**[1] इसी प्रकार चन्द्रगुप्त-द्वितीय का सिंहनिहंता-प्रकार की मुद्राओं पर वंशस्थ-छन्दरचित निम्नलिखित लेख उपलब्ध होता है-**"नरेन्द्रचन्दः प्रथितरयो रणे जयत्यजेयो भुविसिंह-विक्रमः"**। कुमार-गुप्त-प्रथम के खण्ड्ग, निहन्ता-प्रकार के सिक्कों में श्लिष्ट शब्द प्रयुक्त हैं एवं मुद्रालेख पद्यात्मक भी है। इसी तरह रजत के सिक्कों पर छन्दोबद्ध लेख अंकित है-

**"विजितावनिरवनिपतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति"**। इस प्रकार के लेख मध्य भारत एवं मध्य देश में प्रायः दो सौ वर्षों तक अंकित होते रहे। तोरभाण, मौखरि, हर्षवर्धन और कलचूरी रजत-सिक्कों पर लेख उपलब्ध होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वसामान्य जनता के लिए संस्कृत सहज ही बोधगम्य थी। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संस्कृत के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग से प्राकृत का प्रयोग साहित्य या अभिलेख से पूर्णतः समाप्त हो गया। प्राकृत-विहीन संस्कृत-रूपक की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भरत-मुनि-विरचित नाट्य-शास्त्र एवं रुद्रटप्रणीतकाव्यालङ्कार में प्राकृत के प्रयोग का

१. भा.प्रा. अभि., पृ. १५०

विधान मिलता है। तत्कालीन बृहत्तर-भारत की खोतानी में भारतीय प्राकृत के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। बाद में इतना ही नहीं बौद्धों और जैनियों ने भी संस्कृत के विकास में पर्याप्त योगदान किया है। संस्कृत-भाषा यवनों की भी ऋणी है। मुहम्मद गजनी के सिक्के पर संस्कृत-भाषा के ही लेख अंकित हैं।

हम ऊपर देख चुके हैं कि भारतीय नृपगण के द्वारा प्रायः बारहवीं शताब्दी तक अभिलेखों में संस्कृत का प्रयोग होता रहा। परंतु यहाँ भी ध्यातव्य है कि यत्र-तत्र संस्कृत-मिश्रित प्रान्तीय भाषाएँ भी लेखों में दृष्टिगोचर होने लगी थीं। द्वितीय शताब्दी के सातवाहन-नरेशों के रजत-मुद्रा-लेख में प्राकृत तथा तमिल-मिश्रित शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सातकर्णि-नरेश के सिक्कों के अग्रभाग में प्राकृत-भाषा में "रजो वासिठी पुतस सातकपिस" (राज्ञः वासिष्ठीपुत्रस्य सातकर्णेः) उत्कीर्ण है। परन्तु, पृष्ठ भाग में अंकित लेख द्राविड़ भाषा में है-अरहणस वहिट्ठि माकणस तिरू हातकणिस। यहाँ अरहण और माकण द्रविड़ -भाषीय शब्द हैं। इनका अर्थ क्रमशः राजा और पुत्र है। तिरू सिरि (श्री) का पर्याय है। हात का अर्थ सात होता है। वहिट्ठि वासिष्ठि का प्राकृत रूप है। षष्ठ शताब्दी से संस्कृत-तमिल-मिश्रित लेख पल्लव-नरेशों के शासनकाल में दृष्टिगोचर होने लगे। प्रान्तीय भाषाओं-मराठी एवं हिन्दी आदि में भी मध्ययुग से लेख अंकित होने लगे[1]।

**संवत्**-भारतीय अभिलेखों में उल्लिखित प्राचीनतम संवत् विक्रम संवत् है। जैन ग्रन्थों में महावीर के निर्वाण से सम्बद्ध एक संवत् का भी उल्लेख है। श्वेताम्बर लेखक सूरी ने 'विचारश्रेणी' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि महावीर संवत् और विक्रम संवत् में ४७० वर्षों का अन्तर है। दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि महावीर संवत् का आरम्भ ४७० + ५६ = ५२६ ई. पू. में हुआ। नेमिचंद्राचार्य ने भी इस संवत् की ओर निर्देश किया है। उनके अनुसार महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्षो के बाद शक संवत् का प्रचलन हुआ। इस प्रकार ६०५-७८ ई. = ५२७ ई. पू. में महावीर का निर्वाण हुआ था।

प्राचीन भारतवर्ष में ईसा पूर्व सदी में एक संवत् प्रचलित हुआ जिसका संस्थापक विवादास्पद माना जाता है। साहित्य एवं प्रशस्तियों के प्रमाण पर ऐसा माना जाता है कि ई. पू. ५७ वर्ष में एक संवत् का प्रचलन हुआ, जिसके एक दो नहीं तीन-तीन नाम प्राप्त होते हैं। क. कृत संवत् ख. मालव संवत्, ग. विक्रम संवत्।

राजपूताना एवं मध्य भारत के लेखों में कृत संवत् की चर्चा की गयी है। श्री मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते (मंदसोर लेख नरवर्मन् वर्ष-४६१) षष्ठ शताब्दी में मन्दसोर शिलालेख में मालव-संवत् का उल्लेख मिलता है।

नवम शताब्दी के उपरान्त लेखों में विक्रमसंवत् का उल्लेख मिलता है। पाल, प्रतिहार, परमार, चेदि एवं चहमान लेखों में केवल संवत् का प्रयोग उपलब्ध होता है।

---

१. भा. प्रा. अ. १५१

प्रायः समस्त गुप्तकालीन लेखों में एक पृथक् संवत् का उल्लेख है, जिसे लोग गुप्त संवत् कहते है। ११ वीं शताब्दी में अभिलेख में भी इस संवत् का उल्लेख किया है।

गुप्त-वंश के प्रथम एवं द्वितीय राजे नरेश गुप्त और घटोत्कच थे। ये सामान्य सामन्त के रूप में शासन-कार्य संभालते थे। इस वंश का तृतीय राजा प्रथम चन्द्रगुप्त था, जिसने अपने राज्य का विस्तार किया एवं सर्वप्रथम 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की और संभवतः इसी के उपलक्ष्य में गुप्तसंवत् की स्थापना उसने की। ऐतिहासिकों की दृढ़ धारणा है कि गुप्तकाल का शुभारंभ ई. सं. ३१६-२० में हुआ है। वह संवत् प्रायः ६०० वर्षो तक चलता रहा और गुप्तवंश के विनाश होने पर काठियाबाड़ में वलभी संवत् के नाम से विख्यात हो गया।

उत्तर भारत के सुप्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्द्धन ने भी एक गणना का श्रीगणेश किया, जो हर्ष-संवत् के नाम से प्रसिद्ध है। इस संवत् के साथ हर्ष का नाम संयुक्त नहीं पाया जाता। उसके ताम्रपत्र-लेखों में तिथियाँ उल्लिखित हैं। बांसखेराताम्रपत्र में संवत् २०+२ कार्तिक वदी' इस प्रकार उल्लिखित है। (ए.ड. भा. ०४ पृ. २०८) नेपाल में भी ७वीं शताब्दी में हर्षसंवत् का प्रचलन था।

**मौर्यकालः सम्राट् अशोक के अभिलेख**-शिलाखण्डों एवं स्तम्भों पर उत्कीर्ण सम्राट् अशोक के अभिलेख अद्यावधि-ज्ञात भारतीय आर्यभाषा का प्राचीनतम लेख है। भारतीय साहित्य एवं इतिहास की नहीं वरन् विश्व-संस्कृत और इतिहास की यह अमूल्य सम्पदा है। पालि का अभिलेख-साहित्य ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी तक उपलब्ध होता है।

अशोक के अभिलेख पूर्व में उड़ीसा से लेकर पश्चिम में काठियावाड़ तक एवं उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में उड़ीसा तक पाये जाते हैं। अभी तक प्रायः २०० से अधिक अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं।

अशोक के अभिलेख इस प्रकार वर्गीकृत हैं :-

क. चतुर्दश शिलालेख,

ख. सप्त स्तम्भलेख,

ग. कलिंग के स्फुट अभिलेखद्वय,

घ. लघुशिलालेख-द्वय एवं भाब्रू शिलालेख,

ड. लघुस्तम्भ-लेख और

च. गुहालेख

---

१. भा. प्रा.अ. पृ. १६३

आधार-सामग्री के आधार पर इन्हें हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

क. शिलालेख ख. स्तम्भलेख और ग. गुहालेख।

क. चतुर्दश शिलालेख इन निम्नलिखित आठ स्थानों में मिलते हैं।

१. गिरनार (जूनागढ़ के निकट, गुजरात राज्य)

२. कालसी (देहरादून मण्डल, उत्तर प्रदेश)

३. धौली (पुरी मण्डल, उड़ीसा)

४. जौगढ़ (गंजाम मण्डल, उड़ीसा)

५. शाहबाजगढ़ी (पेशावर मण्डल, पाकिस्तान)

६. मनसेहरा (हजारा मण्डल, पाकिस्तान)

७. सोपारा (ठाणा मण्डल, महाराष्ट्र) और

८. एरर्गुडि (कुरनूल मण्डल, आन्ध्रप्रदेश)

ख. सप्त-स्तम्भलेख निम्नलिखित छः स्थानों में मिलते हैं-

१. दिल्ली (दिल्ली-टोपरा एक अन्य भी लेख मिलता है),

२. मेरठ,

३. इलाहाबाद,

४. लौरिया-अरेराज,

५. लौरिया नन्दनगढ़, और

६. रामपुरवा,

ग. कलिंग के स्फुट अभिलेख-द्वय धौली एवं जौगढ़ में मिलते हैं।

घ. लघुशिलालेख-द्वय और भाब्रू शिलालेख-लघुशिलालेख-द्वय के दो संस्करण प्राप्त होते हैं-उत्तरी एवं दक्षिणी। उत्तरी संस्करण इन चार स्थानों में उपलब्ध है-सहसराम (बिहार), रूपनाथ (मध्यप्रदेश), वैराट (राजस्थान) और गुर्जरा (मध्यप्रदेश)। दक्षिणी संस्करण निम्नलिखित आठ स्थानों पर प्राप्त होते हैं-ब्रह्मगिरि, सिद्धापुर, जटिंगरामेश्वर (यें तीनों कर्नाटक में हैं), मास्की (आन्धप्रदेश), और राजुलमण्डगिरि (आन्ध्रप्रदेश)। भाब्रू शिलालेख जयपुर के निकट प्राप्त हुआ है।

ङ. लघुस्तम्भलेख-ये चार लेख सारनाथ, कौशाम्बी, सांची, इलाहाबाद, रुम्मिनदेई और निगलीवा में उपलब्ध है।

च. गुहालेख-गया के निकट बराबर की पहाड़ियाँ हैं। इनका प्राचीन नाम खालितक और प्रवरगिरि है। इसका उच्चतम शिखर सिद्धेश्वर के नाम से जाना जाता है। इसमें उत्कीर्ण चार गुफाओं में से तीन को अशोक ने श्रमणों को दान-रूप प्रदान किया था।

शिलालेखों के शाहबाजगढ़ी तथा मानसेहरा संस्करण खरोष्ठी में लिखित है, शेष शिलालेख ब्राह्मी लिपि में हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेशों से अशोक के तक्षशिला

एरेमाइक लेख, पुले दारून्त एरेमाइक प्रस्तरलेख और शार-ए-कुना द्विभाषी शिलालेख प्राप्त हुए हैं। प्रथम दो एरेमाइक भाषा में अंकित है और अन्तिम यूनानी एरेमाइक भाषा-द्वय में।

अशोक के विशाल साम्राज्य में संस्कृत के अतिरिक्त विभिन्न प्राकृतों का भी व्यवहार होता था। ये वैदिक भाषा से ही विकसित हुई थीं। इन प्राकृतों में मागधी सर्वप्रमुख प्राकृत थी, जिसका केन्द्र मगध था। सम्राट् अशोक के अधिकांश अभिलेखों (तक्षशिला, पुलेदारून्त एवं सार-ए-कुना लेखों को छोड़कर) में यही भाषा प्रयुक्त हुई है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इस मागधी पर स्थान-विशेष की बोली का अल्प प्रभाव भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यही कारण है कि एक ही लेख के स्थान-विशेष में प्राप्त संस्करण में अल्प पाठ-भेद प्राप्त होते हैं। इस भेद के फलस्वरूप कतिपय विद्वान् अशोक के शिलालेख में व्यवहृत प्राकृत का चार रूप स्वीकार करते हैं-क. मध्यप्रदेशीय मागधी (इसमें बैराठ, दिल्ली-टोपरा, सारनाथ आदि एवं कलिंग में प्राप्त लेख सम्मिलित हैं। ख. पश्चिमोत्तरीय प्राकृत-इसमें शाहबाजगढ़ी एवं मानसेहरा लेख परिगृहीत है। ग. महाराष्ट्रीय या पश्चिमी प्राकृत-इसमें सोपारा और गिरनार लेख की गणना होती है। घ. दक्षिणात्य प्राकृत-इसके अन्तर्गत दक्षिणी सभी लेख हैं। रूपभेद की अल्पता के कारण यह मागधी प्राकृत बोधगम्य थी। प्रतिरूप के रूप में हम यहाँ अशोक के प्रथम शिलालेख) (गिरनार संस्करण) से उद्‌धृत कर रहे हैं-

इयं धर्मलिपि देवानं प्रियेन प्रियदसिना राजा लेखापिता। इधन किं चि जीवं आरभित्या प्रजूहितव्यं। न च समाजो कर्तव्यो। बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानं प्रियो प्रियदसि राजा। अस्ति पि तु एकचा समाना साधुमतां देवानं प्रियस प्रियदसिनो राजो। पुरा महानसम्हि देवानं प्रियस प्रियदासिनो राजोः अनुदिवसं बहूनि प्राणेसतहस्रानि आरम्भिसु सूपाथाय। से अज यदा अयं धर्मलिपी लिखिता ती एव प्राणा आरम्भे सूपाथाय द्वो मोरा एको सोपि मगो न ध्रुवो। एते पि त्री प्राना पछा नं आरभिसरे।[1]

पाद-टिप्पणी पांचवीं पंक्ति में राजा शब्द के पूर्व एक अन्य 'र' उत्कीर्ण कर काट दिया गया है। सातवीं पंक्ति में 'महानसम्हि' 'मोहान सेम्हि' जैसा प्रतीत होता है। सेना, बुहलर एवं सरकार ने बारहवीं पंक्ति में 'ध्रुवो' पाठ के स्थान में 'धुवो' स्वीकार किया है।

सम्राट् अशोक के अभिलेखों के अध्ययन-क्रम में धर्म-लिपि एवं 'देवानं प्रिय' ये पद-द्वय अतिशय दृष्टिगोचर होते हैं। अतः इनकी समीक्षा भी अत्यावश्यक प्रतीत होती है।

क. धर्मलिपी का अर्थ धर्म से सम्बद्ध लेख होता है। कने ने इसका अनुवाद rightiousness किया है। बूहलर ने इसका religious edict, हूल्ज ने 'moral script, सेना ने मात्र 'edict'.

---

१. मणीन्द्र मोहन बोस-**इ.हि.क्वा** ४, १९२८, पृ. ११०-२३, एन. जी. मजुमदार, समाज, **इ.ऐ.**, ४७, १९१८, पृ. १-२३

डॉ. भण्डारकर ने 'धर्म-शासन' अर्थ किया है। भण्डारकर ने यह भी उल्लेख किया है कि मात्र, चतुर्दश शिलालेखों एवं सप्त स्तंभ लेखों के लिए सम्राट् अशोक ने 'धर्मलिपि' का प्रयोग किया है। लघु शिलालेखों को वह धंम सावन धर्म-श्रावण के नाम से अभिहित किया है।[1]

ख. देवानं प्रिय का संस्कृत रूपान्तर "देवानां प्रियः" होता है, जिसका अर्थ है, देवताओं का प्रिय, उनका दुलारा। सम्राट् अशोक ने इसे अपनी सम्मान-बोधक उपाधि के रूप में धारण किया था।

प्रायः सभी लेखों में विशेषतः स्तम्भ लेखों में "देवानं प्रिय प्रियदर्शि (राजा)" का उल्लेख मिलता है। कतिपय ऐसे भी अभिलेख हैं, जहाँ "देवानं पियो (पियस)" का ही उल्लेख मात्र है।

उपर्युक्त अभिलेखों में प्रयुक्त मात्र "देवानं पियो" शब्दों से कुछ समस्या उठ खड़ी हो गयी थी कि सम्राट् का वास्तविक नाम क्या था ? जब गज्जर लेख में "देवानं पियदसि असोक राजस" तथा मासिकलेख में प्रयुक्त "देवानं पियस असोकस" वाक्यखण्ड देखा गया तो समस्या का समाधान हो गया। अधिकांश लेखों में "देवानं पिय पियदसि" वाक्यखंड लाजा, रय, रज, रजो (राजा) शब्दों के साथ प्रयुक्त हुआ है। अन्य संस्करणगत 'लाजाने' राजानः शब्द की जगह प्रयुक्त किया गया है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि राजा का नाम 'अशोक' था और पूर्व-प्रयुक्त शब्द-द्वय उसकी उपाधिमात्र है।

ईसवी सन् के पूर्व में इसका प्रयोग इसलिए होता था कि लोगों की यह बद्धमूल धारणा थी कि राजा देवताओं का प्रिय होता है।

कालान्तर में राजा को लोग ईश्वर का ही रूप मानने लगे।[2] डा. भण्डारकर ने भी इस बात की पुष्टि की है कि बरुआ का कथन है कि इस उपाधि का प्रयोग इस कारण से किया जाता था कि राज्याभिषेक के समय पुरोहितों के द्वारा देवताओं का आह्वान किया जाता था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजागण देवों की कृपा के अधिकारी होते थे और देवगण उनकी रक्षा करते थे। अतः उन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद Hisgefted majesty किया है।[3]

कालान्तर में तृतीय शताब्दी ई. पू. में प्रसिद्ध यह उपाधि सामान्यतः राजाओं के निमित्त प्रयुक्त होती थी। स्वयं सम्राट् अशोक ने इसे आठवें शिलालेख के कालसी,

१. प्रा. भा. अ. सं. पृ. ३२
२. प्रा. भा. अ. सं., पृ. ३३
३. १. ह.च., पृ. ६४ सौजन्यपरतन्त्रा चेयं देवानां बुधस्यातिभद्रता कारयति कथाम्। टीका-देवानां पूज्यानां युष्माकमित्यर्थः अतिभद्रता अतिशयेन शिष्टाचारः बुधस्य विद्वज्जनस्य भवत इत्यर्थः।

साहबाजगढ़ी और मानसेहरा संस्करणों में अपने पूर्ववर्ती नरपतियों के लिए प्रयुक्त किया है।

बाणभट्ट-विरचित 'हर्षचरितम्' के प्रथम उच्छ्वास में इस षष्ठ्यन्त पद का प्रयोग सावित्री ने सरस्वती के भाविपति दधीचि के लिए किया है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि दधीचि न तो नृपति है और न वृद्धपुरुष। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि अलुक् समासवाले ऐसे प्रयोग सामान्य व्यक्ति के लिए भी व्यवहृत होते थे और इसका अर्थ "पूज्य" ही होता था।

ई. पू. तृतीय शताब्दी में प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन ने पाणिनि के सूत्र "षष्ठ्या आक्रोशे"[1] पर देवानां प्रिय इति च मूर्खे वार्तिक प्रस्तुत करते हुए इस (देवानां प्रियः) का अर्थ मूर्ख माना है। परन्तु, 'देवप्रिय' समस्त पद का अर्थ इससे भिन्न "देवताओं का प्रिय" ही होगा।

संम्भवतः बौद्धधर्म के प्रति सनातन धर्म की असहिष्णुता के फलस्वरूप ही इस (देवानां प्रियः) का यह अर्थ उपस्थित हुआ।

## मौर्यकाल-अशोकेतर अभिलेखः

## पिप्रहवा बौद्ध पात्र अभिलेख

यह अभिलेख उत्तर प्रदेश के बस्ती मण्डल के उत्तरी पूर्वी सीमा पर नेपाल राज्य से प्रायः आधा मील दक्षिण दिशा में अवस्थित पिप्रहवा नामक स्थान से उपलब्ध हुआ है।

इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है। इसकी लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी है। यह एक मृत्पात्र की गर्दन पर अंकित है। कतिपय विद्वान् इसे पद्य मानते हैं। टॉमस ने इसे पद्य में आर्या छन्द ढूढ़ने का प्रयास किया है, परन्तु फ्लीट ने इसे उपगीति अथवा उद्गीति छन्द में निबद्ध माना है।

सुकिति भतिनं स-भगिनिकनं-स-पुतः दलनः इयं सलिल निधने बुधस भगतवे सकि (यानं) (११ + ) (भगवान् बुद्ध के शरीर का यह पात्र सुकीर्ति के भाइयों ने अपनी बहन, पुत्र, स्त्री एवं प्रियजन के साथ प्रतिष्ठापित किया।)

भगवान् बुद्ध के अवशेषों की स्थापना का उल्लेख ही इस लघु अभिलेख का उद्देश्य प्रतीत होता है।

इसका समय डॉ. सरकार ने तीसरी शताब्दी ई. पू. माना है। इस अभिलेख का महत्त्व कतिपय कारणों से है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि भारतवर्ष में उपलब्ध

---

१. अष्टा. ६.३.८१ पर वार्तिक-देवानां प्रिय इति च मूर्खे। अन्यत्र देवप्रियः।

ऐतिहासिक कालीन अभिलेखों में यह प्राचीनतम है। इस लेख में दीर्घस्वरों के अभाव से इसे कुछ विद्वान् प्राङ्मौर्य-युगीन मानते हैं। डॉ. सरकार के अनुसार यह विशेषता प्रायः सभी प्राचीन अभिलेखों में मिलती है।

१९६७-६८ में डब्ल्यू.सी. पेपो ने इस स्तूप की खुदाई की थी और पुनः १९७२ में के.एम. श्रीवास्तव ने खुदाई की।[1]

सम्राट् अशोक के अभिलेखों के अतिरिक्त पालि अभिलेख प्रचुर मात्रा में हमें उपलब्ध हैं। ये पुराने भी हैं और इनकी परम्परा अर्वाचीन काल तक अविच्छिन्न है। तृतीय एवं द्वितीय शताब्दी ई.पू. से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी पर्यन्त पालि-अभिलेख उपलब्ध हैं। यह ठीक है कि ये साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, पुनरपि पालि-साहित्य के विकास के दृष्टिकोण से कम महत्त्व के नहीं है। स्थानाभाव के कारण हम यहाँ निम्नलिखित सात मुख्य अभिलेखों का ही संक्षेपतः उल्लेख करना उचित समझते हैं-

१. सांची के अभिलेखः-सांची के स्तूप तीसरी-दूसरी शताब्दी ई.पू. के माने जाते हैं। इस स्तूप की पाषाण वेष्टनियों पर अनेक बौद्ध कथायें चित्ररूप में अंकित हैं। ये जातक-कथा से बहुत मिलते-जुलते हैं। इन वेष्टनियों पर जो अभिलेख प्राप्त हैं, वे भारतीय पुरातत्त्व के अनमोल रत्न हैं। साथ ही ये पालि त्रिपिटक की प्राचीनता और प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए ठोस प्रमाण-स्वरूप हैं।

२. सारनाथ के कनिष्क-कालीन अभिलेख-सारनाथ संग्रहालय में बोधिसत्व की एक लम्बी मूर्ति सुरक्षित है। इस पर तीन अभिलेख उत्कीर्ण हैं। ये महाराज कनिष्क के शासन-काल के तृतीय वर्ष में उत्कीर्ण हुए थे। इनका विषय भगवान् बुद्ध का धम्म-चक्क-प्रवत्तन है। वाराणसी में बुद्ध के चार आर्य-सत्यों का उपदेश दिया गया था। वे ही यहाँ पर शब्दरूप में वर्णित हैं-चत्तारि मानि भिक्खवे अरिय सच्चानि।

इससे प्रमाणित होता है कि ईसवी सन् के आरंभ में पालि भाषा में वर्णित बुद्ध के वचन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाण स्वरूप माने जाने लगे।

३. मौगन (बरमा) के स्वर्णपत्र-लेख-द्वय,

४. मब्ज़ा (प्रोमबरमा) का पंचम-षष्ठ शताब्दी स्वर्ण-पत्र-लेख,

५. मब्जा के बोबोगी पैगोडा में उपलब्ध भग्न पाषाण-लेख,

६. पगान (बरपा) का १४४२ ई. का अभिलेख और

---

१. संदर्भ-ब्यूलर, जे. आर.ए. एस., १८९८, पृ. ३८७ प्र. ब्लौख, वही १८९९, पृ. ४२ अ.। फ्लीट, वही, १९८५, पृ.६७६, अ, टॉमस, वही, १९०६, पृ. ४५२ अ. १९०७, पृ.१०५ अ, लूडर्स, स्टडीज, इन इण्डियन एपिग्राफी. २, पृ. १४० अ.

७. रमण्य देश (पेगू-बरमा के नृप धमूमचेति का सन् १४७६ ई. का विख्यात कल्याणी अभिलेख।)

**अशोकीय अभिलेखों का महत्त्वः**-अशोकीय अभिलेख भारतवर्ष के प्राचीनतम तथा अतिशय महत्त्वपूर्ण लेख माने जाते हैं। इसकी महत्ता निम्नलिखित दृष्टियों से है-सम्राट् अशोक के अभिलेखों से सम्राट् के व्यक्तिगत जीवन एवं परिवार से सम्बद्ध प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि उनके कतिपय भाई-बहन थे और कम-से कम दो रानियाँ थीं। उसने राज्यारोहण के आठवें वर्ष में कलिंग पर चढ़ाई की और उसे जीत लिया। युद्ध की विभीषिका से संतप्त होकर वह बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। उसके साम्राज्य की सीमा उत्तर में कालसीन एवं नेपाल की तराई, दक्षिण में ब्रह्म-गिरि-सिद्धपुर आदि स्थान; पूर्व में कलिंग, पश्चिम में जूनागढ़ एवं उत्तर-पश्चिम में कन्धार तक फैली हुई थी।

अशोक के अभिलेखों से उसके प्रशासन पर भी प्रकाश पड़ता है। वह सार्वभौम सम्राट् था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। राजकुमारगण 'वायसराय' के रूप में नियुक्त होते थे।

प्रशासन एवं न्याय-व्यवस्था के क्षेत्र में उन्होंने कुछ अभिनव प्रयोग किये। महामात्र,[1] धर्म-महामात्र,[2] राजक[3] स्त्र्यध्यक्ष महामात्र,[4] ब्रजभूमिक,[5] अन्तः महामात्र,[6] युक्त,[7] प्रादेशिक[8] का पर्याप्त परिचय अशोक के 'अभिलेख' में उपलब्ध होता है। कर-व्यवस्था से सम्बद्ध अत्यल्प चर्चा मिलती है। परन्तु रुम्मिनदेई स्तम्भलेख में 'बलि' नामक कर में छूट देने का उल्लेख अवश्य ही मिलता है।

वह अपनी प्रजा को अपनी सन्तान ही समझता था। प्रजा के कल्याणार्थ कतिपय योजनाएँ उसने चलाई। मनुष्यों एवं पशुओं की चिकित्सा की व्यवस्था भी की गयी। सड़कों के किनारे सघन वृक्ष लगाए गए, जलाशयों का निर्माण किया गया, आम्रकुंज लगाए गये, आधे-आधे कोस पर कूप निर्मित किए गये। ये सभी कार्य धर्मार्थ ही सम्पन्न हुए। जन-साधारण में उसने धर्म के जिस रूप का प्रचार और प्रसार किया था, उसे स्वीकार करने में जन-साधारण को कोई हिचक नहीं थी। धर्म-प्रचारार्थ पूरे साम्राज्य की शक्ति उसने लगा

---

१. द्रष्टव्य, षष्ठ शि. ले. एवं अन्य कतिपय लेख
२. द्रष्टव्य, चतुर्थ स्त. ले.
३. द्रष्टव्य, सप्त स्त. ले.
४. द्रष्टव्य, द्वादश शि.ले.
५. द्रष्ट. त्रयोदश शि. ले.
६. द्र. तृतीय शि.ले.
७. द्र. वही.
८. द्र. वही.

दी। धर्म-प्रचार के निमित्त उसने सभी उपायों का अवलम्बन किया। बौद्ध-संघों के वर्तमान मतभेद के दूरीकरणार्थ प्रयत्न किया। उसने एक समागम का आयोजन किया जिसके फलस्वरूप सभी लोभी एवं श्रद्धाविहीन भिक्षुओं को संघ से बहिष्कृत करवा दिया। पुनः तीसरी संगीति का आयोजन किया गया। सम्राट् ने कतिपय बौद्ध ग्रन्थों के प्रचार के लिए अथक प्रयास भी किया। साथ ही उसने भगवान् बुद्ध के देहावशेषों पर स्तूप भी निर्मित करवाए। बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भारत के विभिन्न प्रदेशों के अतिरिक्त विदेशों में भी भारतीय धर्म-प्रचारक भेजे गये। अशोक के ऐसे भी अभिलेख हैं जिनमें मिश्र एवं पश्चिम एशिया के यूनानी राज्य एवं उनके शासकों का उल्लेख मिलता है। अशोक के अभिलेख के अतिरिक्त और दूसरे भारतीय अभिलेख में इस वैशिष्ट्य का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है।

**लिप्यात्मक, भाषात्मक एवं साहित्यिक महत्त्व**-सम्राट् अशोक के अभिलेखों से तत्कालीन लिपि, भाषा एवं साहित्य पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अशोक-कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेशीय अभिलेखों में यूनानी, एरेमाइक और खरोष्ठी लिपियों का प्रयोग किया गया है। शाहबाज़गढ़ी एवं मानसेरा अभिलेख खरोष्ठी लिपि में अंकित प्राचीनतम लेख माने जाते हैं। अवशिष्ट सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मीलिपि ही प्रयुक्त हुई।

सम्राट् अशोक के अभिलेखों का साहित्यिक महत्त्व भी कम नहीं है। इन अभिलेखों से अशोक के काल में बौद्धत्रिपिटक की विकासावस्था पर प्रकाश पड़ता है।[1] अभिलेखीय भाषा पर पालित्रिपिटक की भाषा और वाक्य-विन्यास आदि का गम्भीर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[2] तत्कालीन अभिलेख बौद्ध धर्मेतर साहित्य के अध्ययनार्थ महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं।[3] अवध्य पशुओं की सूची बौधायन एवं वासिष्ठ-धर्मसूत्र से मिलती-जुलती है।[4] अशोक की 'देवानं प्रिय': उपाधि तो ब्राह्मण-साहित्य की ही देन है।

अशोक के अभिलेखों की शैली गद्य के इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। ये सरल, सुबोध एवं पूर्णतः स्वाभाविक हैं। ये सर्वविध अलङ्करणों से मुक्त हैं एवं जीवन के गाम्भीर्यपूर्ण पक्षों और अनुभवों पर अधिश्रित होने के फलस्वरूप उसी महिमा से मण्डित है जिसे हम उपनिषदों के उपदेश में पाते हैं। ये सम्राट् अशोक की निष्कपटता एवं उत्साह

---

१. प्रा.भा. अ. सं. पृ. ६१ पिटक शब्द उसके लेखों में पूर्णतः अज्ञात है। इससे लगता है कि अशोक के समय तक 'पिटक' और उसके अन्तर्गत 'निकाय'-साहित्य अपने वर्तमान रूप में अस्तित्व में नहीं आये थे।

२. द्रष्टव्य, बरुआ, अशोक एण्ड हिज़ इन्स्क्रिप्शन्स्-२ पृ. ३४० अ.

३. १. उदाहरणार्थ उसके द्वारा प्रयुक्त 'परिस्रवे', 'अपरिस्रवे' १०वाँ शि. ले तथा "असिनवे" (२ स्त. ले.) शब्द बौद्ध न होकर जैन-साहित्य से लिए गये लगते हैं। (प्रा.भा. अ. सं., पृ. १३८ से उद्धृत)

४. स्त. ले. ५

को व्यक्त करते हैं। यह कल्पना युक्ति-संगत प्रतीत होती है कि सम्राट् ने स्वयं ही इसका प्रारूप बनाया होगा। इसका कारण यह है कि इसमें राजसभासद एवं लिपिक की अभ्यास-जनित चाटुकारिता का कोई संकेत नहीं मिलता।

कतिपय विद्वानों की धारणा है कि अशोक के अभिलेखों और डेरियस महान् (Darius, the Great) के प्रसिद्ध प्रस्तरलेख की शैली में अत्यधिक साम्य परिलक्षित होता है।

**शिलालेखों का भाषा-वैज्ञानिक महत्त्व**-प्राच्य बोली गंगा-यमुना के मैदान के स्तम्भों और कालसी तथा उड़ीसा के शिलोत्कीर्ण धर्मादिशों में केवल अल्प रूपान्तरों के साथ पायी जाती है। यहाँ 'र' के स्थान में 'ल' पाया जाता है। अकारान्त पुल्लिङ्ग और नपुंसक संज्ञाओं की प्रथमा विभक्ति के एक वचन के रूप मागधी के समान ए-कारान्त होते हैं। यहाँ 'स' मिलता, 'श' नहीं (साथ ही कालसी के शिलालेख में 'ष' भी दिखाई पड़ता है।) लूडर्स की धारणा है कि यह अशोक की राजसभा की भाषा थी और इसका प्रभाव पश्चिमोत्तर प्रदेश के अन्य शिलालेख की बोली पर भी परिलक्षित होता है।

गिरनार के अभिलेख की बोली में प्रथमा एकवचन में ओ-कारान्त रूप और नपु. में अं वाले रूप मिलते हैं। साथ ही 'र' और 'स' ध्वनियाँ भी पायी जाती हैं (प्रिये, जने की जगह प्रियो, जनों और मूल की जगह मूलं)। इसकी विशेषताएँ पालि जैसी हैं। ऐसी कल्पना की जाती है कि यह उज्जैन की भाषा के अधिक निकट है।

भारत के दक्षिण भाग के अभिलेख प्राच्य धर्मादिशों की अपेक्षा प्रतीच्य से अधिक साम्य रखते हैं, परन्तु इनकी कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं।

पश्चिमोत्तर धर्मादिश प्राच्य एवं प्रतीच्य दोनों से भिन्न है। मानसेहरा में शाहबाजगढ़ी की तुलना में मागधीत्व (magadhism) अधिक है। दोनों में ही र, श, स पाए जाते हैं। शाहबाजगढ़ी में अकारान्त (पु.) प्रथमा एकवचन में ओ, नपुंसक लिंग में अं की बहुलता है, जबकि मानसेहरा में इन स्थानों में र-ही पाया जाता है। दोनों में ही र के साथ अनेक वर्णों का संयोग प्रायः वर्ण-विपयर्य (Metathesis) के रूप में मिलते हैं। पियदसि की जगह प्रियद्रसि, भूतप्रुव = गिर-भूतपूर्वं = धौलि हूतपुलवा, शाह-त्रयो = गिरः त्री, शाह. म्रुगो, मान. म्रिगे = गिर. मगो = प्राच्य मिगे।

अन्तिम उदाहरण प्रातीच्य एवं प्राच्य अभिलेखों की एक भिन्नता का उदाहरण है। शाहबाजगढ़ी में 'क्ष' मिलता है, जैसे क्षमितविय, लेकिन गिरनार में छमितवे, और प्राच्य में खमितवे मिलते हैं। प्राच्य और पश्चिमोत्तर दोनों में प्रिय के 'प्र' जैसे संयुक्ताक्षर पहले संस्कृतत्व (Sanskriticism) समझे जाते थे। परन्तु ये प्राचीन ध्वनिविज्ञान के अवशेष हैं और ये आज भी पश्चिमी प्रदेश की आधुनिक बोलियों में वर्तमान है-जैसे लहँदा त्रे (तीन) और सिन्धी त्रण्।

पश्चिमोत्तर अभिलेखों के रूपों की तुलना अन्य धर्मदिशों के साथ करते समय यह नहीं भूलना: चाहिए कि खरोष्ठी में ह्रस्व और दीर्घ स्वर में कोई भिन्नता प्रतीत नहीं होती। साथ ही अशोक के अभिलेखों की न खरोष्ठी और न ब्राह्मी में ही द्वित्व-प्राप्त व्यंजन मिलते हैं। इस प्रकार चक्वाके मिलता है, न कि चक्कवाके, चक्खुदानें नहीं मिलता है, बल्कि चखुदाने। बैराट-बाभ्रा अभिलेख में पाये जाने वाले लाघुल (पालि राहुल) और अधिगिच्य (पालिअधिकृत्य) रूप दूसरे अभिलेखों में नहीं मिलते। ये बोद्ध धर्म-ग्रन्थों की एक प्राचीनतर भाषा की ओर संकेत करते हैं। प्रियदसि, सर्व, प्रासादे और अभिप्रेंत रूपों, को, जिन्हें हुलत्श ने इस अभिलेख में खोज निकाला है, उस बोली के लिए जिसमें सर्वत्र र का ल आदेश हो जाता है, विलक्षण प्रतीत होता है। यहाँ निश्चित रूप से स्वीकार करना चाहिए कि ये सभी संयुक्त 'र' लघुरेखिका (Small dash) के अवबोध पर आश्रित है और यह कहीं भी सुस्पष्ट नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोकीय अभिलेख तो तत्कालीन भारत का स्पष्ट भाषायी ज्ञानचित्र हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

## मौर्यकाल: अशोकेतर अभिलेख

## सोहगौरा कांस्यपात्र-अभिलेख

प्रस्तुत अभिलेख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर मण्डल की बांसगाँव तहसील के सोहगौरा गाँव से प्राप्त हुआ था। सम्प्रति यह कलकता की एशियेटिक सोयायटी की शोभावृद्धि कर रहा है। यह प्राकृत भाषा में अंकित है। लेख में कोई तिथि निर्दिष्ट नहीं हैं परंतु इनमें प्रयुक्त लिपि ३री ई. पूर्व. की ब्राह्मी लिपि है।

अभिलेख में दो तिमञ्जिले कोष्ठागारों की चर्चा की गयी है। ये आपत्ति-काल में व्यवहार में लाये जायेंगे। जिस पात्र पर यह लेख उत्कीर्ण है, उसे कतिपय विद्वान् न ताम्र का मानते हैं, और कुछ कांस्य का। इससे प्रमाणित होता है कि ई. पू. तीसरी शताब्दी में भारतीय धातु-विद्या अधिक समुन्नत थी।

इस अभिलेख से निम्नलिखित बातों पर प्रकाश पड़ता है। (क) तीसरी शताब्दी में गोरखपुर की बांसगाँव तहसील श्रावस्ती के महामात्रों के अधीन थी।

(ख) मौर्यकाल में दुर्भिक्ष आदि के समय प्रशासन की ओर से प्रजा के हित के लिए सम्पादित कार्यों का परिचय मिलता है।

(ग) आज के समान ही मौर्यकाल में भी पूर्वी उत्तर प्रदेश को दुर्भिक्ष एवं बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों के चपेट में आना पड़ता था।[1]

## उत्तर भारतः शुंगकालीन अभिलेख

## होलियोदोरेस का बेसनगर गरुड़-स्तम्भ-अभिलेख

यह अभिलेख मध्यप्रदेश के भिलसा (प्राचीन विदिशा) मण्डल के बेसनगर गाँव में स्थित गरुड़-स्तम्भ पर अंकित है। इसे होलियोदोरेस, जो यूनानी नरेश अंतलिकित के राजदूत के रूप में शुंगराज भागभद्र के पास आया था, ने भागभद्र शासन-काल के चौदहवें वर्ष में उत्कीर्ण करवाया था। इसकी भाषा प्राकृत है जिस पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। इसकी लिपि ई.पू. द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्ध की ब्राह्मी लिपि है। अभिलेख दो खंडो में है, प्रथम में सात पंक्तियाँ हैं, एवं द्वितीय में मात्र दो। इसका लेखक अज्ञात नामा है।

अभिलेख से विदिशा एवं इंडो-ग्रीक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इतना ही नहीं, यह धार्मिक इतिहास विशेषतः वैष्णव धर्म के इतिहास के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण प्रमाणित होता है। इस अभिलेख की भाषा पर यूनानी भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणस्वरूप, भागभद्र के लिए प्रयुक्त 'त्रातार'[2] उपाधि यूनानी सोट्रेस (Sotres) का विकृत रूप प्रतीत होता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि भारतीय नृपों का अभीतक सम्बन्ध 'राजन्' उपाधि से था। 'महाराज' और 'राजातिराज' उपाधियाँ यवनों और शकों ने ही सर्वप्रथम व्यवहृत किया है।[3]

## भरहुत बौद्ध स्तम्भ-लेख

प्रस्तुत लेख. मध्यप्रदेश के भरहुत नामक प्रसिद्ध बौद्ध स्थल से उपलब्ध हुआ। भरहुत के इतर नाम भारहुत, बरहुत एवं भड़ौत भी है। यह भूतपूर्व नागौदराज्य के अंतर्गत

---

१. संदर्भ-फ्लीट, **जे. आर. ए.एस.** १९०७, पृ. ५१ अ., जायसवाल, **ई. आइ.** २२, पृ. २, सरकार, **सं. इ.**, पृ. ८२ ब्युलर, **आइ. ए.**, १८९६, पृ. २६१, बरुआ, **ए.बी. ओ. आर. आई.**, ११ पृ. ३२ अ., लूईस, सूची सं. ६३७, पाण्डेय, **ए.ब., हि. लि. इ.**, पृ. २१

२. कोसी पु (ति) स मागभाद्रसत्रातारसं......

३. संदर्भ-फोगल-**एस.एस. आई.ए. आर.**, १९०८-९० पृ. १२६, रैप्सन, **ए.इ.**, पृ. १३३-३४ और १५७ डी. आर. भण्डारकर **जे.बी. बी. आर. एस.** २३ पृ. १०४, रामचौधरी **इ. एच. बी.एस.** पृ. ६६ सरकार **एस. आइ.**, पृ. ८८-८९

था। यहाँ शुंगकालीन स्तूपावशेष प्राप्त हुए हैं। इसी स्तूप के पूर्वी तोरणस्तम्भ पर यह लेख प्राकृत भाषा में अंकित है। इसकी लिपि ई.पू. प्रथम शताब्दी की ब्राह्मी है।[1]

इस लेख से यह स्पष्टतः पता चलता है कि ई.पू. द्वितीय या प्रथम शताब्दी में विदिशा शुंगो के आधिपत्य में था। साथ ही इस लेख से भरहुत स्तूप के समय पर भी प्रकाश पड़ता है।

## धनदेव का अयोध्या-पाषाण-लेख

उत्तर प्रदेश के फैजाबाद मण्डल में लोकविश्रुत अयोध्या नगरी है। इससे प्रायः १ किलोमीटर की दूरी पर राघोपली नामक भवन में स्थित बाबा संत बख्श की समाधि है। इसकी पूर्वी द्वार-ललाट पर यह अभिलेख अंकित है। अनुमान है कि इसके मूलस्थान का अभी तक पता नहीं चला है। इसकी लिपि उत्तरी क्षत्रपों के अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि से मिलती-जुलती ब्राह्मी है। इसका समय प्रथम शताब्दी ई. पू. माना जाता है। इसकी भाषा, प्राकृत से प्रभावित संस्कृत है। कतिपय विद्वानों की धारणा है कि यह अभी तक प्राप्त संस्कृत अभिलेखों से प्राचीनतम है।[2]

इस अभिलेख का वर्ण्य विषय है-कौशिकी-पुत्र धनदेव के द्वारा फल्गुदेव (संभवतः अपने पूज्य पिता) की समाधि का निर्माण करवाना।

इस अभिलेख से यह पता चलता है कि वहाँ का शासक पुष्यमित्र का सम्बन्धी था। संभवतः पुष्यमित्र शुंगवंशीय ही था। लेख से एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है कि पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ-द्वय का सम्पादन किया था। इसकी चर्चा कालिदास-कृत मालविकाग्निमित्र[3] और पातंजल महाभाष्य में[4] भी हुई है।[5]

## उदाक के प्रभोसा गुहालेख

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद मण्डल में कौशाम्बी के समीप प्रभोसा ग्राम की पहाड़ी की एक गुफा के बाहर और भीतर यह लेख उत्कीर्ण है। लेख की भाषा प्राकृत जो संस्कृत

---

१. कनिंघम, **स्तूप ऑफ भरहुत,** पृ. १२८ अ. मित्र, **आर.एल.पी.एस.एस.आर.,** १८८०, पृ. ५८ अ., हूल्त्ज़, **आ.ए.,** १४, पृ. १३८ अ., पृ. २२७, सरकार, **सं. इ.,** पृ. ८७-८१, पाण्डेय, **हि. लि. इ.** पृ. ४३

२. **भा. अ.,** पृ. ६३

३. **माल.,** अं. ५ "सेनापतिर्यज्ञतुरंग रक्षणे नियुक्तो भर्तृदारको वसुमित्रः"।

४. **पत. महा.** (३.२.१२३) "इह पुष्यमित्रं याजयामः।"

५. (संदर्भ-जगन्नाथदास रत्नाकर, ना. प्र.-५, भाग-१, पृ. ८८-गौरीशंकर हीराचंद ओझा, वही पृ. २०१

५. अ काशीप्रसाद जायसवाल **ज.नि. उ.रि. सो.,** १०, पृ. ३०२ १३,२४ ए. बैनर्जी शास्त्री-**मौडर्न रिव्यू,** जन. १९२५, पृ. ५८, एन.जी. मजुमदार, **ऐ.म. ओ. रि.इ.,** ७, (खण्ड १-२ पृ. १६०-६३, सरकार, **सं. इ.,** पृ. ६४-६५)

से प्रभावित है। इसकी लिपि ईसा पूर्व द्वितीय या प्रथम शताब्दी की ब्राह्मी है। प्रथम लेख में जो गुहा के बाहर अंकित है, आठ पंक्तियाँ हैं एवं दूसरा लेख, जो गुहा के भीतर है, केवल तीन पंक्तियों का है।

फ्यूरर, जायसवाल एवं रैप्सन ने इस का समय ई. पूर्व द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्ध माना है।

ये उदाक नामक राजा के शासन-काल के हैं एवं इनमें आषाढ़सेन नामक किसी अन्य राजा के द्वारा एक गुहा-निर्माण की चर्चा की गयी है।

सर्वप्रथम हॉर्नले ने ज. प्रो. ए. सो. बं. में पहली बार १८८७ ई. में छापा था। अहिच्छत्र और कौशाम्बी के तात्कालिक इतिहास के विचार से यह लेख महत्त्वपूर्ण है। ऐसा भी हो सकता है कि इन दोनों प्रदेशों के राजवंशों में पारिवारिक संबंध भी हो।[1]

## उत्तर भारतः यूनानियों का अभिलेख

### १. शिनकोट (बजौर) में मिनेन्द्रकालीन अभिलेख

उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रदेश (वर्तमान-कालीन पाकिस्तान) के पार पंचकोरा-स्वात नदी-द्वय का संगम है। यहाँ से प्रायः ३० किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की ओर बजौर (अफगानिस्तान) जन-जाति क्षेत्र के अन्तर्गत शिनकोट नामक गांव में ये अभिलेख उपलब्ध हुए। लेखद्वय एक मंजूषा पर अंकित है। दोनों की लिपि में कुछ अन्तर है। एक के अक्षर कुछ बड़े हैं तो दूसरे के छोटे। इनकी लिपि खरोष्ठी है एवं भाषा प्राकृत।

अभिलेख का वर्ण्य-विषय शाक्य मुनि महात्मा बुद्ध के पार्थिव अवशेषों का प्रतिष्ठापन है। इनमें से प्रथम अभिलेख यवननरेश मिनेण्डर (संस्कृत-मिलिन्द) के शासन-काल में अंकित कराया गया था। इनमें वियकमित्र (वीर्यमित्र) नामक एक अन्य राजा की चर्चा है, जो मिनेण्डर के अधीन था।

श्री एन. जी. मजुमदार ने इन लेखों को सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इनके अनुसार प्रथम अभिलेख ई. पू. २री शताब्दी एवं द्वितीय अभिलेख ई. पू. प्रथम शताब्दी का है।

---

१. संदर्भ-हॉर्नले, **ज.प्रो. ए. सो.बं.** (न.श्रृ.), मार्च, १८८७, पृ. १०५, र. फ्यूरर, **ए.इ.** २, पृ. २४०, सरकार, **सं. इ.**, पृ. ८८.

अभिलेख से यह पता चलता है कि मिनेन्द्र के शासनकाल में उत्तरी सीमा प्रदेश में बौद्धधर्म प्रतिष्ठित था एवं ब्राह्मणों की तरह बौद्ध धर्मावलम्बी भी पितरों[1] को श्राद्धकर्म सम्पादित करते थे।[2]

**मेरिडर्ख थियोडोरस का स्वात अभिलेख**-पाकिस्तान की स्वात घाटी में स्थित पठानों के एक ग्राम से यह अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह सेलावड्की (Steatic) अस्थिमंजूषा में था। अभी यह लाहौर संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है। यह प्राकृत भाषा में है एवं इसकी लिपि खरोष्ठी है।

अभिलेख से पता चलता है कि थियोडोरस ने भगवान् बुद्ध के पार्थिव अवशेषों का प्रतिष्ठापन किया था। स्टेन कोनो इसका समय दूसरी शताब्दी ई. पूर्व. एवं सरकार ने प्रथम शताब्दी ई. पू. माना है।[3]

## उत्तर भारतः प्राचीन शक पह्लव अभिलेख
## शोडासकालीन मथुरा पाषाण-फलक-लेख

उत्तर प्रदेश की मथुरा नगरी में कड्काली टीला से फ्यूरर ने १८६०-६१ में एक पाषाण-फलक (३'२" ' ३'८") प्राप्त किया था। इस पाषाणफलक पर यह अभिलेख अंकित है। कंकाली एक योगिनी थी। उसी के नाम पर यह टीला प्रसिद्ध है। यह एक जैन अभिलेख है। इसमें जैनभिक्षु-शिष्या अमोहिनी एवं उसके सुपुत्रों-पालघोष, प्रौष्ठघोष, घनघोष द्वारा आर्यवती (= आयागपट नाम की पूजा शिला) की प्रतिष्ठापना का वर्णन है। यह गद्य में है। इसकी भाषा प्राकृत है जो संस्कृत से प्रभावित है एवं पालि के सदृश प्रतीत होती है। इसकी लिपि प्रथम शताब्दी के प्रारंभ की ब्राह्मी है।

इसमें एक तिथि भी अंकित है जो स्वामी शोडास के ५२वें वर्ष का है, परंतु संवत् की कहीं भी चर्चा नहीं है। कनिंघम ने शोडास को ई. पूर्व ८०-७० का माना है। आजकल प्रायः उसके द्वारा प्रयुक्त संवत् को विक्रम संवत् ही मानकर इस लेख को १५ ई. का माना जाता है।

---

१. द्वि. ले.-स शरिजात्रि काल-ट्रेन श्यग्रो न पिंडोय के मि पित्रि ग्रिणयति।
[ तत् शीर्यते कारमतः शग्रोश्राद्धः पित्रि पितरः ग्रिणयति ग्राहयति]।

२. एन. जी. मजुमदार, ए. इ., २४, पृ. १. प्र., सरकार, वही २६, पृ. ३१८, स्टेन कोनो, न्यू. इ. ए. जन. १६४०, पृ. ६३६-४८, ए. इ. २७, पृ.५२ अ., सरकार, सं. इ., पृ. १०२-३

३. F.W. Thomas, Fest Schrift Ernst windisch, Leipzig, १६१४, P. ३६२. स्टेनकोनो, की. इ इ., मा. १, पृ. १, सरकार, सं. इ. पृ.।।।

यह अभिलेख सर्वप्रथम व्यूलर के द्वारा 'एपिग्राफिका इण्डिका' अंक-२ में प्रकाशित किया था।[1]

## पतिक का तक्षशिला ताम्रपट्ट अभिलेख
## वर्ष-७८

तक्षशिला (वर्तमान पाकिस्तान में स्थित) के पूर्वोत्तर में स्थित थुपकिया गाँव से प्राप्त ताम्रपट्ट (१४" ' ३") पर यह अभिलेख अंकित है। आज-कल यह रोयाल एशिएटिक सोसायटी, कलकत्ता के पुस्तकालय की शोभा वृद्धि कर रहा है। इसकी भाषा प्राकृत है एवं शककालीन खरोष्ठी लिपि में इसकी मात्र ५ पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

इसका उद्देश्य महाक्षत्रप पतिक के द्वारा भगवान् बुद्ध की अस्थियों पर स्तूप एवं विहार के निर्माण का उल्लेख करना है।

इस अभिलेख से बौद्धधर्म के प्रति शकराजाओं की निष्ठा का प्रमाण मिलता है। इस अभिलेख में महाराज महान् भोग की चर्चा की गई है। इसे सिक्कों से परिज्ञात मोघ से अभिन्न मानते हैं। इस अभिलेख में 'क्षिहरात'[2] शब्द शकों की किसी भाषा या वंश का नाम है। वंश के रूप में इसका प्रयोग सातवाहन-नरेश पुलुमावि के नासिक अभिलेख में मिलता है।

**गोण्डोपर्नीस का तख्ते बाही अभिलेख**-शासन वर्ष २६, संवत् १०३, (४६ ई.) पाकिस्तान में पेशावर खण्ड के यूसुफजई प्रदेश के मर्दान नगर से प्रायः १२ कि.मी. पश्चिम की ओर तख्ते बाही गाँव है। इसी के नाम पर इस अभिलेख का नामकरण किया गया है, परंतु मूल स्थान शंकाग्रस्त है। यह अभिलेख १७" X १४ १/२" प्रस्तर-खण्ड पर अंकित है एवं सम्प्रति लाहौर संग्रहालय की शोभावृद्धि कर रहा है। सर्वप्रथम जनरल कनिंघम ने लिखा था कि यह प्रस्तरखण्ड डॉ. बेलो को शहबाजगढ़ी (शहबाजगढ़ी मर्दान से ६१/२ मी. पूर्व की ओर हैं) में प्राप्त हुआ था एवं हारग्रीबूज ने इसका समर्थन भी किया था। पीछे चलकर, कनिंघम ने इस अभिलेख का उल्लेख तख्ते बाही के नाम से किया और उस समय से यह अभिलेख इसी नाम से लोकविश्रुत हो गया।

इस लेख के प्रस्तर को ढूंढ़ निकालने का श्रेय डॉ. बेलो को है और इस लेख को विद्वन्मण्डली में पहुँचाने का श्रेय डॉ. लिटनर को मिलता है। अभिलेख मात्र छः पंक्तियों का है। तीसरी एवं पाँचवीं पंक्तियाँ अधिक क्षत हैं। यह प्राकृत भाषा में है और इसकी लिपि खरोष्ठी है।

---

१. व्यूलर, **ए.इ.**, २, पृ. १६६, ६, पृ. २४३, सरकार, **सं. इ.**, पृ. १२०, लूडर्स, सूची, सं. ५६, पाण्डे, हि. लि. इ., पृ. ६८, ६६.

२. पतिकाया तक्षशिलाताम्रपत्र अभिलेख....महरयस महंतस सौ गस....

इसमें दो तिथियाँ उल्लिखित हैं, पहली तिथि गोन्दोपर्निज (बुदुब्हर) के शासन-काल की है, जो द्वितीय संवत् की है। अभिलेख का उद्देश्य बलस्वामी बोयन का माता-पिता के सम्मान में वासगृह का दान है।

प्रस्तुत अभिलेख में एक सुप्रसिद्ध पह्लवराज बुदुब्हर का उल्लेख है। यह दक्षिण अफगानिस्तान के पह्लवदेशीय शासक था। उसका राज्य सिन्धुघाटी तक विस्तृत था। ईसाई अनुश्रुति के अनुसार यह भारत और पार्थिया के सन्त थॉमस का समकालीन था। इसके बहुत से सिक्के पाये जाते हैं और इसके आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि यह जय (Azes) का उत्तराधिकारी था।

एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें बुदुब्हर के राजवर्ष के साथ ही एक दूसरे संवत्सर का भी उल्लेख है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह शोडसकालीन अभिलेख के संवत् एवं पतिक के तक्षशिला अभिलेख के संवत् ७८ के क्रम में ही था।

अभिलेख की पंचम पंक्ति में प्रयुक्त 'एर्झुर्ण' शब्द विचारणीय है। स्टेन कोनो ने इसे एक खोतानी शब्द माना है। इसका अर्थ 'कुमार' होता है। 'एर्झुर्ण' एक शक शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'श्वेत'/अवेस्ता का 'एरेज़त' (Erezata) एवं संस्कृत का 'रजत' शब्द एक ही शब्द के दो रूप प्रतीत होते हैं। संभवतः दक्षिण अमेरिका के 'अर्जेण्टाइना' देश का नाम भी इसी शब्द से संबंध रखता है।[1] पंच-पाण्डवों का शिरोमणि अर्जुन का नाम भी इससे संबद्ध किया जा सकता है। राजा के प्रभायुक्त एवं सुदर्शन होने की कल्पना की जाती है। अतः राजा या (राजकुमार) के लिए यह शब्द प्रयुक्त होने लगा।[2]

## तक्षशिला रजतपट्ट अभिलेख
## वर्ष १३६ (७९ ई.)

तक्षशिला (पाकिस्तान में अवस्थित) की खुदाई में धर्म-राजिकस्तूप के पश्चिम "चीर" नामक टीले में शैलखड़ी के मंजूषा में एक रजतपट्ट पर यह लेख उत्कीर्ण है। इस लेख की भाषा प्राकृत है एवं यह खरोष्ठी लिपि में है। लेख में मात्र पाँच पंक्तियाँ हैं।

लेख का उद्देश्य नवाचल नगर के इन्तप्रिय के पुत्र वाहलिक के द्वारा धर्म-राजिक स्तूप में शाक्यमुनि बुद्ध के अवशेषों को प्रतिष्ठापित करना है। यह १३६ वें वर्ष (=७९) ई. में लिखवाया गया था।

---

१. प्रा.भा. अभिलेखः-पृ. २०८

२. संदर्भ-डायसन, ज.रो. ए. सो., १८७५, पृ. ३७५-७६, १८७७, पृ. १४४-४५, कनिंघम, आ.सो.इ., ५, १८७५, पृ. ५८-५९, सेनार्ट, ज.ए., १८९०, पृ. १४४-४५, स्टेनकोनो, ए.इ., १८, पृ. २८२, कौ. इ.इ., II , भा. I , पृ. ६२, सरकार, सं. इ. पृ. १२५

शाक्यमुनि के अस्थि-अवशेष की प्रतिष्ठा की चर्चा के फलस्वरूप इस अभिलेख का धार्मिक महत्त्व तो है ही, साथ ही इसमें बोधिसत्त्वगृह का उल्लेख विचारणीय प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अस्थि-अवशेष स्तूप में तो प्रतिष्ठित होते ही थे, इसके अतिरिक्त कक्ष-सदृश किसी वास्तु में भी स्थापित किए जाते थे।[1] अभिलेख की प्रथम पंक्ति के आरम्भ में "अयस अषढस मसस" में 'अयस' पद को लेकर विवाद जैसा है, परंतु अभी तक कुछ निश्चित अर्थ सामने नहीं आ सका है। मार्सल तथा सरकार ने 'आयस' को 'आयका' (अजेज का) अर्थ माना है। सर्वप्रथम मार्सल ने इसे 'रोयाल एशियाटिक सोसायटी' के जर्नल में १६१४ में प्रकाशित किया था।[2]

### उत्तर भारतः कनिष्क सम्वत् के कुषाण अभिलेख

### प्रथम कनिष्क के शासनकाल के सारनाथ बौद्ध मूर्ति-लेख संवत् ३ (८१ ई.)

वाराणसी के निकट सारनाथ से प्राप्त बोधिसत्त्व की मूर्ति के छत्रस्तम्भ पर यह लेख उत्कीर्ण है।

इसकी लिपि प्रारम्भिक गुप्तकालीन लिपि से किंचित् साम्य रखने वाली कुषाण ब्राह्मी है। यह संस्कृत से प्रभावित प्राकृत भाषा में है।

यष्टि पर अंकित लेख दस पंक्तियों का है। शेष लेख क्रमशः दो और तीन पंक्तियों का हैं। इसमें कनिष्क के शासन-काल के तीसरे वर्ष का उल्लेख किया गया है। इस संवत्सर का उल्लेख अभिलेखों में ६६वें वर्षपर्यन्त चलता रहा है। अभिलेख के आधार पर ऐतिहासिकों की धारणा है कि कनिष्क के राज्य की सीमा बनारस तक थी। अभिलेख का उद्देश्य बल नामधारी भिक्षु के द्वारा बोधिसत्त्व की मूर्ति के दान का उल्लेख करना है।[3]

बौद्धधर्म एवं कला की दृष्टि से ये लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है।

## प्रथम कनिष्क का सूई-विहार ताम्रपत्र-लेख वर्ष-११ (८६ ई.)

पाकिस्तान-स्थित बहावलपुर से २५ कि.मी. दक्षिण-पश्चिम की ओर सूई विहार नाम वाले भग्नस्तूप से उपलब्ध ताम्रपट्ट पर यह अभिलेख अंकित है। सम्प्रति यह एशियेटिक सोसायटी, कलकत्ता की शोभावृद्धि कर रहा है।

---

१. इस तक्षशिला तदपुवए बोसि (धि) सत्व-गहमि महरजस रजन्ति रजस देवपुत्रस खुषपम अरोग-दक्षिणए।

२. संदर्भ-स्टेन कोनो-ए.इ., १४, पृ. १८४, कौ. इ. इ. २ भा. १, पृ. ७०, सरकार, सं.इ. पृ. १२३, साधुराम, १५, २, भा. १, पृ. ४५-५२

३. सन्दर्भ-फोगेल ए. ई. पृ. १७३-१७४; पाण्डेय, हि.लि.ई. पृ. ६६

इसकी भाषा प्राकृत से प्रभावित संस्कृत है एवं इसकी लिपि खरोष्ठी है। **अभिलेख का प्रयोजन**-उपासिका विहार स्वामिनी, जो बलजय की माता थी, के द्वारा नागदत्त की यष्टि की स्थापना का उल्लेख करना है।[1]

'सूई' शब्द सम्भवतः सूची का ही अपभ्रंश है। सूची का अर्थ सूचक (अर्थात् स्तम्भ) है। सूची और विहार होने के कारण इसका नाम 'सूई विहार' पड़ा है।

प्रस्तुत अभिलेख का कोई विशेष ऐतिहासिक महत्त्व नहीं प्रतीत होता। लेख से यह स्पष्ट होता है कि उपासिका बल नन्दि-कुटुम्बिनी को भिक्षु नागदत्त ने धार्मिक उपदेश दिया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उनकी पुण्य-स्मृति में यह स्तम्भ स्थापित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक गुरुओं की स्मृति में स्तम्भ स्थापित किए जाते थे।

## प्रथम कनिष्क का जेडा अभिलेख
## वर्ष-११

पाकिस्तान के रावलपिण्डी मण्डल के उण्ड के समीप जेडा गाँव है। अभिलेख की भाषा संस्कृत से प्रभावित प्राकृत है एवं यह खरोष्ठी में लिपिबद्ध है। प्रथम कनिष्क के शासनकाल के ११वें वर्ष में यह अंकित हुआ था। लेख का उद्देश्य कूप-खनन एवं प्रपा-निर्माण का उल्लेख करना है।[2]

### कनिष्क कालीन सेत-महेत प्रतिमा अभिलेख

उत्तर प्रदेश के गोण्डा-बहराइच की सीमा पर सेत-महेत (प्राचीन श्रावस्ती) की प्रतिमा तथा छत्र पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है। इसमें मात्र तीन पंक्तियाँ हैं। इसकी भाषा प्राकृत से प्रभावित संस्कृत है एवं लिपि प्रारंभिक कुषाण कालिक ब्राह्मी लेख में तिथि अंकित थी, परन्तु सम्प्रति कुछ मिट चुका है। केवल १९वाँ दिवस ही पठनीय है। इसका उद्देश्य कनिष्क के शासन काल में भिक्षु बल के द्वारा बोधिसत्व की प्रतिमा, उनके छत्र एवं दण्ड की स्थापना का उल्लेख करना है।

प्रस्तुत लेख यत्र-तत्र क्षत-विक्षत है। यह छंदोबद्ध है। प्रतिपाद में १२ अक्षर होने का अनुमान किया जाता है। लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि सेत-महेत के भग्नावशेष ही प्राचीन श्रावस्ती है। यहाँ सर्वास्तिवादी आचार्यों की चर्चा की गयी है। संभवतः इस सम्प्रदाय की शिक्षा के निमित्त उस समय समुचित व्यवस्था की गयी थी।

---

१. संदर्भ डाउसन, ज. रो. ए. सो., १८७०, पृ. ४७७, अ. हार्नले, इ. ए., १०, पृ. ३२४ अ, इन्द्र जी आई. ए., ११, पृ. १२४ अ., कोनो, कॉर्पस, २, भा-१, पृ. १४१, सरकार, स.इ., पृ. १३६

२. संदर्भ-कनिंघम, आ.स.इ., १८७५, पृ.५७. सेनार्ट, ज.ए., ८, पृ. १३५, ब्यूलर, ज. रो. ए.सो., १८४४, पृ.५३५, स्टेन कोनो, ए. इ. १६, पृ.१, कौ. इ.इ., भा.१, पृ. १४२, सरकार, सं.इ., पृ. १४.

इस अभिलेख से कोसल एवं सारनाथ में उपलब्ध तात्कालिक बुद्धिमूर्ति-अभिलेखों का अर्थ एवं महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।[1]

**हुविष्क का मथुरा-प्रस्तर अभिलेख शक-संवत्-२८ (= १०६ ई.)**

उत्तर प्रदेश के मथुरा-स्थित चौरासी-जैन-मन्दिर के समीप लाल कुएँ से उपलब्ध एक स्तम्भ पर यह लेख अंकित है। १६२६ में यह मथुरा-संग्रहालय में लाया गया। इसकी भाषा संस्कृत से प्रभावित प्राकृत है एवं यह ब्राह्मी में लिपि-बद्ध है।

इसका उद्देश्य सरुकमाल-पुत्र खरासलेर-पति-वकनपति के द्वारा पुण्यशाला में ब्रह्म-भोजादि के निमित्त एक श्रेणी को स्थायी दान दिए जाने का उल्लेख करना है।

यह लेख हुविष्क के शासनकाल का प्रथम लेख है। यह उसके शासन-काल के २८ वें वर्ष (ई. १०६) में अंकित हुआ था। एक दूसरा अभिलेख सांची से उपलब्ध हुआ है जिसमें वशिष्क का नाम आता है। इस अभिलेख-द्वय के आधार पर ऐसा अनुमान किया जाता है कि कनिष्क संवत् का प्रारम्भ कार्तिक महीना से होता है।

अभिलेख में हुविष्क के लिए "देवपुत्र शाहि"[2] का प्रयोग हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस अभिलेख के समय तक वह राज्यारूढ़ नहीं हो सका था।

## उत्तर-भारत परवर्ती कुषाण-युगीन कुषाणेतर अभिलेख

## १. मौखरी महासेनापति बल के पुत्रों के तीन बड़वा पाषाण यूपलेख कृत सं. २९५ (= २३८ ई.)

राजस्थान के भूतपूर्व कोटा राज्य में अवस्थित बड़वा ग्राम नान्दसा से. ७० मी. पूर्व की ओर के निकट थम्बतोरण नामक स्थान से प्रस्तुत यूपस्तम्भ-लेखत्रय प्राप्त हुआ है। इन पर एक ही तिथि उल्लिखित है-कृतसम्वत् २९५। लेख की भाषा प्राकृत से प्रभावित संस्कृत है एवं इनकी लिपि ब्राह्मी है। यह लिपि नान्दसा लेख की लिपि के समान ही है। डॉ. अल्तेकर ने इन लेखों को ई. आई. के २३ वें अंक, पृ. ५२ में प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत लेख-त्रय का उद्देश्य मौखरी-जाति के महासेनापति बल के पुत्र-त्रय द्वारा एक-एक यूथ की स्थापना और त्रिरात्र यज्ञ में ब्राह्मणों को एक-एक सहस्र गौ दक्षिणा के रूप में प्रदान करने का उल्लेख करना है।

१. संदर्भ-ब्लॉख ए.इ. ८, पृ. १८० प्र., सरकार, सं.इ. पृ. १४५, छत्र-दण्ड लेख ए. ५०, ६, पृ. २६१, सरकार, सं. इ., ६८ पृ. ई. आई. सरकार

२. पंक्ति ६-१०, य यत्र पुण्य तं देवपुत्रस्य षाहिस्य हुविष्कस्य।

प्रस्तुत अभिलेख मौखरि-वंशीय क्षत्रियों का प्राचीनतम लेख है। हरारा अभिलेख के अनुसार ये अश्वपति के शत-पुत्रों के वंशज हैं। महाभारत में मालवों के विषय में ऐसी ही कथा मिलती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ये मालववंशीय ही हैं।[1]

## पश्चिमी भारत शक-त्रयों के अभिलेख

## नहपान के काल का तिथि-विहीन नासिक गुहा-लेख

महाराष्ट्र के नासिक नगर से दक्षिण-पश्चिम में आठ किलोमीटर की दूरी पर पाण्डुलेपा की गुहासंख्या १० से क्षहरातनरेश नहपान के शासनकाल के कतिपय अभिलेख प्राप्त हुए हैं। एक लेख में ४१, ४२, एवं ४५ तिथियों का उल्लेख मिलता है। एक दूसरे लेख में मात्र २ पंक्तियाँ हैं। प्रस्तुत गद्य-लेख भी इसी गुहा से उपलब्ध हुआ है। इसमें तिथि का कोई निर्देश नहीं हैं, परंतु यह है बड़ा ही महत्त्वपूर्ण। इसकी भाषा प्राकृत से प्रभावित संस्कृत है एवं लिपि ब्राह्मी है।

## २८-नहपानकालीन कार्ले गुहालेख

प्रस्तुत लेख पूर्ण मण्डल के कार्ले की चैत्य-गुहा के मध्य द्वार के ऊपर दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। यह तिथि-विहीन है। यह पाँच पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि में अंकित है। इसकी भाषा प्राकृत है। इसके अक्षर सुस्पष्ट नहीं है।

नहपान के जामाता उषवदत्त के द्वारा भिक्षुओं को करजिक नाम के गाँव के दान का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

चतुर्थ पंक्ति में 'बलरकेसु' पद है। डॉ. सरकार के अनुसार यह कार्ले का दूसरा नाम है। परन्तु, इन्द्रजी की धारणा है कि यह एलोरा है।

यह एक अतिरुचिकर तथ्य है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि ने क्षहरातों को उखाड़ फेंका था, लेकिन करजिक गाँव को बलूरथ में रहने वाले भिक्षुओं को पुनः दान में दे दिया था।[2]

इनकी भाषा प्राकृत है जो संस्कृत से प्रभावित है एवं इनकी लिपि ब्राह्मी है। यहाँ तीसरे लेख (जो कि मदन की पत्नी की स्मृति में अंकित है।) की चर्चा की जा रही है।

इस लेख से यह पता चलता है कि कार्दम-वंश के राजा चष्टन एवं उसके पौत्र रुद्रदामन्, १३० में सह-शासक थे। इसके बाद रुद्रदामन् के शासन की तिथि शक-संवत् ७२ = १५० ई. आती है।

---

१. संदर्भ-अल्तेकर, **ए. इ.**, पृ. ५२, सरकार सं. इ.,

२. संदर्भ-बर्गेस तथा भगवान् लाल इन्द्रजी, **केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया,** पृ. ३३, रोनार्ट, ए. ई. ७. पृ. ५७, सरकार, **सं.ई.**, पृ. १७१-७२ बर्गेस तथा ब्यूलर, **आँ. स.वे. इं.** ४, पृ. १०१

इस अभिलेख से कच्छ में यष्टि-स्थापन -प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है।[1] **कलिंग एवं आन्ध्रः महामेघवाहनों और उनके पड़ोसियों के लेख ३१-खारवेल का हाथिगुम्फा-अभिलेखः**

मौर्येतर युग के अभिलेखों में खारवेल का हाथिगुम्फा अभिलेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें कलिंग (उड़ीसा) के नरेश खारवेल के शासन-काल के १३ वर्षों के क्रियाकलापों का वर्णन मिलता है। पुरी मण्डल के भुवनेश्वर मन्दिर से ३ मील पश्चिम की ओर अवस्थित उदयगिरि खण्डगिरि नाम से प्रसिद्ध पहाड़ियों में कतिपय जैन गुफाएँ हैं। इन्हीं गुफाओं में एक गुफा हाथिगुम्फा के नाम से विख्यात है। इसी गुफा में प्रस्तुत अभिलेख अंकित है। डॉ. काशी-प्रसाद जायसवाल एवं आर.डी. बनर्जी का अनुमान है कि यह लिपि द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ की मानी जाती है।

इसका उद्देश्य नहपान के जामाता उषबदत्त के द्वारा भिक्षुओं के निवासार्थ गुहा-निर्माण एवं उनके भरण-पोषणार्थ श्रेणियों में धन के दान का उल्लेख करना है। इस अभिलेख का सम्पादन हार्नले, भाण्डारकर, सेना आदि कतिपय विद्वानों ने किया है।

यह अभिलेख क्षहरात वंशीय शक-नरेशों के इतिहास के साथ ही साथ तत्कालीन पश्चिमी भारत एवं पश्चिमी दक्षिणापथ के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि नहपान के राज्य की उत्तरी सीमा पुष्कर तीर्थ से दक्षिण गोवर्धन तक रही होगी। नहपान के शासन-काल में शकों का पर्याप्त आर्यीकरण भी हो गया था एवं वे हिन्दू नरेशवत् गो-ब्राह्मण-तीर्थ के प्रति श्रद्धालु हो चुके थे। इतना ही नहीं, इस अभिलेख से तात्कालिक राजस्थान की राजनैतिक अवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस लेख से यह भी पता चलता है कि मालवा की जनता स्वतंत्रताप्रिय थी।[2]

**चष्टन (?) कालीन अन्धौ पाषाण-यष्टि -लेख**

**(शक) संवत् ११ = ८९ ई.**

कार्दमक-वंशीय महाक्षत्रप चष्टन का प्रस्तुत अभिलेख विगत वर्षों के अन्वेषण की उपलब्धि मानी जाती है। यह गुजरात के कच्छ-प्रदेशीय खावड़ा से २४ कि.मी.दूर दक्षिण-पूर्व में अवस्थित अन्धौ नाम के एक उजड़े गाँव में प्राप्त हुआ था। इस स्थान से चष्टन के ५२ वें वर्ष के चार और भी अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। प्रस्तुत अभिलेख खण्डित है। इसमें टूटी-फूटी मात्र ४ पक्तियाँ हैं।

---

१. संदर्भ रारवालदास बनर्जी, ए.इ. १६, पृ. १९, बनर्जी आर.डी. ए.ई. १६ पृ. २३ अ., सरकार, सं.ई., पृ. १७३-७५

२. संदर्भ-ब्यूलर, आ. स. बोध. आई., ४, पृ. ९९ अ. इन्द्रजी, बाम्बेगजेटियर, १६, पृ. ५६९ अ., हार्नले, आई. ऐ., १२ पृ. २७अ०, सेनार्ट, ए. इ., ८ लूडस २ २ स. सं., ११३१ सरकार, सं. इ., पृ. १६७ अ.पाण्डेय, हि. लि. इ. पृ. ५८ अ.

यह अभिलेख गद्य में है। यह प्राकृत भाषा में है एवं लिपि ब्राह्मी है। इसकी लिपि एवं नहपान के अभिलेखों की लिपि में अधिक साम्य है। इसका उद्देश्य सामोतिक-पुत्र के शासन-काल के ११वें वर्ष में एक यष्टि-स्थापना का उल्लेख करना ही है। संभवतः चष्टन ही सामोतिक-पुत्र है।

प्रस्तुत अभिलेख शक-कुषाण इतिहास से लिए अतिमहत्वपूर्ण है। शोभना गोखले के अनुसार शंकसंवत् का प्रवर्तक प्रथम कनिष्क था और उसने चष्टन को एक गवर्नर के रूप में नियुक्त किया था।[1]

**चष्टन और प्रथम रुद्रदामा के काल का अन्धौपाषाण यष्टि -लेख**

**(शक) संवत् ५२=१३० ई.**

अन्धौ से उपलब्ध ४ यष्टि अभिलेख ये हैं।

क. प्रथम तीन अभिलेखों को मदन नाम के एक व्यक्ति ने क्रमशः अपनी बहन, भ्राता एवं पत्नी की यष्टियाँ स्थापित करवाते समय उत्कीर्ण कराया था एवं

ख. चतुर्थ त्रेष्टदत्त नामक व्यक्ति ने अपनी पुत्री की यष्टि की स्थापना के समय अंकित करवाया था। ये सभी चष्टन और रुद्रदामा के शासन-काल के ५२वें वर्ष के फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को उत्कीर्ण कराये गये थे।

इनकी भाषा प्राकृत है जो संस्कृत से प्रभावित है एवं इनकी लिपि ब्राह्मी है। यहाँ तीसरे लेख (जो मदन की पत्नी की स्मृति में अंकित है) की चर्चा की जा सकती है।

इस लेख से यह पता चलता है कि कार्दमकवंश के राजा चष्टन एवं उसके पौत्र रुद्रदामन् १३० ई. में सह-शासक थे। इसके बाद रुद्रदामन् के शासन की तिथि शकसंवत् ७२= १५० ई. आती है। इस अभिलेख से कच्छ में यष्टि-स्थापन-प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है।[2]

## नहपानकालीन कार्ले गुहालेख

प्रस्तुत लेख पूर्ण मण्डल के कार्ले का चैत्य-गुहा के मध्यद्वार के ऊपर दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। यह तिथिरहित है। यह पांच पंक्यिों में ब्राह्मी लिपि में अंकित हैं। इसकी भाषा प्राकृत है। इसके अक्षर सुस्पष्ट नहीं है।

नहपान के जमाता उषवदत्त के द्वारा भिक्षुओं को करजिक नाम के गाँव के दान का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

---

१. संदर्भ-आर. डी. बनर्जी ए.इ., १६ पृ. २३ अ., सरकार, सं. इ., पृ. १७३-७५ राखाल बनर्जी, ए.इ., १६, पृ. १६

२. संदर्भ-शोभना गोखले, ज.-ऐ.इ.हि., २, पृ. १०४-११

चतुर्थ पंक्ति में "बलूरकेसु" पद है। डॉ. सरकार के अनुसार यह कार्ले का दूसरा नाम है। परंतु, इन्द्रजी की धारणा है कि यह ऐलोरा है।[1]

यह एक अतिरुचिकर तथ्य है गौतमीपुत्र शातकर्णि ने क्षहरातों को उखाड़ फेंका था, लेकिन करजिक गाँव वलूरथ में रहने वाले भिक्षुओं को पुनः दान में दे दिया था। (चष्टन कालीन अन्धौ-पाषाण-यष्टि लेख)

**कलिंग एवं आन्ध्र : महामेघवाहनों और उनके पड़ोसियों के लेख**

१. खारबल का हाथिगुम्फा अभिलेख-मौर्येत्तर युग के अभिलेखों में खारवेल का हाथिगुम्फा अभिलेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें कलिंग (उड़ीसा) के नरेश खारवेल के शासनकाल के १३ वर्षों के क्रियाकलापों का वर्णन मिलता है। पुरी मण्डल के भुवनेश्वर मन्दिर से ३ मील पश्चिम की ओर अवस्थित उदयगिरि खण्डगिरि नाम से प्रसिद्ध पहाड़ियों में कतिपय जैन गुफाएँ हैं। इन्हीं गुफाओं में एक गुफा हाथिगुम्फा के नाम से विख्यात है। इसी गुफा में प्रस्तुत अभिलेख अंकित है। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल एवं आर. डी. बनर्जी का अनुमान है कि-

इसी गुफा में निवास करते हुए भगवान् महावीर ने कलिंग में जैनधर्म का प्रचार किया। प्रस्तुत लेख में १७ गद्यात्मक पंक्तियाँ हैं। इनमें प्रथम छः पंक्तियाँ प्रायः पूर्णतः एवं अन्त की चार पंक्तियाँ बहुत कुछ पठनीय हैं परन्तु शेष ७ पंक्तियाँ अपाठ्य ही हैं।

इसकी भाषा पालि का अनुकरण करती हुई प्राकृत भाषा है एवं इसकी लिपि ब्राह्मी है। लेख में कोई निश्चित तिथि नहीं पायी जाती है। अधिकांश विद्वान् इसे ई.पू. प्रथम शताब्दी के अंतिम दशक की रचना मानते हैं। लेखक का नाम भी अनिर्दिष्ट है। डॉ. जायसवाल की धारणा है कि लेखक कोई उच्चपदस्थ वयोवृद्ध रहा होगा, जिसने खारवेल को एक बालक के रूप में क्रीडामग्न देखा हो।

इस लेख का आरम्भ जैन अर्हतों की स्तुति से होती है एवं नरेश के शासनकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की तालिका प्रस्तुत करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य प्रतीत होता है। इस दृष्टि से इसकी तुलना समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति से की जा सकती है।

खारवेल १६ वर्ष की आयु में युवराज बना एवं प्रशासन की व्यावहारिक बातों की जानकारी प्राप्त की। चौबीसवें वर्ष में महाराज पद पर अभिषिक्त हुआ। उसका एकाधिक विवाह हुआ था। उसकी पटरानी का उल्लेख इस अभिलेख में मिलता है।

खारवेल ने अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही अपनी राजधानी, जो वायु-प्रकोप से विध्वस्त-सी हो गयी थी, का पुनर्निर्माण करवाया। दूसरे वर्ष में शातकर्णि को तिरस्कृत

---

१. बर्गेस तथा भगवान लाल इन्द्रजी-Cava temples of western India पृ. ३३ बर्गेस तथा ब्युलर, **आ.स.वे. इ.**, ४, पृ. १०१, सेनार्ट, **ए.इ.** ७, पृ ५७ सरकार, **सं.इ.**, पृ. १७१.

करते हुए यह पश्चिम की ओर बढ़ा एवं इसने असिक नगर (कृष्णवेना के तट पर) को त्रस्त कर दिया। तीसरे वर्ष में इसने प्रजा को विविध प्रकार से रंजित करने का प्रयास किया, चौथे वर्ष में विद्याधराधिवास पर आक्रमण एवं भोजकों तथा रठिकों का दमन किया; पांचवें वर्ष में नन्दराज द्वारा उद्घाटित नहर को खारवेल अपनी राजधानी में ले आया। छठे वर्ष में कर को मुक्त कर इसने प्रजा को अनुगृहीत किया, सातवें वर्ष का वर्णन स्पष्ट नहीं मालूम होता है। आठवें वर्ष में इसने गोरथगिरि (बराबर की पहाड़ियाँ) एवं राजगृह पर आक्रमण किया जिससे भयभीत होकर यवनराज मथुरा की ओर पलायित हो गया। इस वर्ष में ब्राह्मणों को प्रचुर दान दिया एवं महाविजय-प्रासाद का निर्माण किया। दसवें वर्ष में इसने भारत (गंगा की उपत्यका का कोई भाग) पर भी आक्रमण किया। ग्यारहवें वर्ष में इसने पिथुण्ड नगर (संभवतः बन्दरगाह) का विध्वंश एवं कालीहद का विनाश कर दिया। बारहवें वर्ष में उत्तरापथ-नरेशों को भयभीत किया एवं मगधनरेश बहसतिमित (संभवतः पुष्यमित्र शुंग) को पराजित कर जिन-मूर्ति को वापस ले आया। इतना ही नहीं, इसने मगध, अंग और पाण्ड्य-नरेशों की सम्पत्ति पर भी अधिकार कर लिया। तेरहवें वर्ष में इसने कुमारी पर्वत (आधुनिक उदयगिरि) पर जैन अर्हतों के लिए गुफा निर्माण करवाया। इस अभिलेख से यह भी पता चलता है कि खारवेल ने किसी भवन का निर्माण भी किया था। लेख में खारवेल की उपाधियों एवं उसकी महानता का भी सुन्दर वर्णन है।

खारवेल एक जैन मतावलम्बी नृप था।[1] उसने धर्मराजा एवं भिखुराजा उपाधियाँ धारण की थी।[2] वह सभी धर्मो को आदर की भावना से देखता था।[3]

शब्द-विन्यास से रचयिता की कुशलता का परिचय मिलता है। शब्द नपे-तुले हैं, यह सूत्र-शैली की स्मृति दिलाता है। भाषा सरल है। सहज ही अर्थावबोध हो जाता है। एकाध स्थलों पर बृहत्समस्त-पद भी हैं। एक समस्त पद तो १६ पदों का है। यह प्राकृत गद्य की प्रकृति के विपरीत प्रतीत होती है।

शब्दालङ्कार में अनुप्रास की छटा प्रशंसनीय है-प्रथम पंक्तियों में ही 'ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन' वाक्य-खण्ड में अनुप्रास की मनोहारिता हृदयावर्जक प्रतीत होती है। अनुप्रास का निम्नलिखित उदाहरण भी दर्शनीय है-"(पं.) दरस वासानि सिरि (कडार) सरीरवुता कीडिता कुमार कीडिका" यहाँ 'स' और 'क' की आवृति हुई है।[4] अर्थालंकारों में उपमा के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। महाराज खारवेल की उपमा महाराज पृथु से दी गयी

---

१. पं. १५ सकत समणसं सुविहितानं च सव दिसानं......
२. पं. १६....... खेम-राजा स वढ़ राजा सभिखुराजा धर्म राजा .....
३. पं. १७ गुणविसेस कुसलो सव पाखंड पूजको सव दे (वाय) तन सकारः कारको .... महाविजयो राजा खारवेल सिरि।।
४. दूसरी पंक्ति

है-"संपुंर्ण चतुवीसति वसो तदानि वधमान-सेसयो वेनाभिविजयाततिये,........" (वह अभिविजय में वेनपुत्र के समान था।)[1] इस उपमा के आधार पर खारवेल महाराज के चरित्र में निखार आ जाता है।[2]

## दक्षिणभारतः सातवाहनों के अभिलेख

## नागन्निका का नानाघाट का गुहालेख

प्रस्तुत अभिलेख नानाघाट (महाराष्ट्र के पुणे के निकट कोंकण से जुन्नार की ओर जाने वाला दर्रा) की एक गुहा में उपलब्ध हुआ है। यह लेख बहुचर्चित है। बीस पंक्तियों के इस लेख की भाषा प्राकृत है एवं इसकी लिपि ब्राह्मी है।

यह लेख गद्यमय है। इसे सर्वप्रथम इन्द्रजी ने पढ़ा था एवं इसका सम्पादन ब्युलर ने किया। किसी अज्ञातनामा रानी, जिसकी वेदश्री एवं शक्तिश्री दो पुत्रियाँ थीं, के अपने पति के साथ सम्पादित यज्ञों का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है। रानी एवं उसके पति का नाम दुर्भाग्य से मिट गया है।

ब्युलर का कथन है कि यह रानी नागन्निका ही थी, एवं उसका पति प्रथम शातकर्णि था। इस नरेश का नाम नागन्निका के नाम के साथ नानाघाट-मूर्तिनाम-अभिलेखों में भी प्राप्त होता है। इसका समय शताब्दी ई. पू. का अन्तिम दशक माना जाता है।[3]

इस अभिलेख से सातवाहन-नरेश के प्रारम्भिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। सातवाहन वंश के इतिहास में नागन्निका की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। प्रथम सातवाहन के राज्यकाल में यज्ञों का पुनरुद्धार हुआ। लेख से सातवाहन-साम्राज्य के विकास और प्रसार की सूचना भी मिलती है। यह प्रथम लेख है जिसमें एक सातवाहन नरपति को 'दक्षिण पथपति' की उपाधि से सम्मानित किया गया है। एवं उसके चक्र को अप्रतिहत निर्दिष्ट किया गया है।[4]

प्रस्तुत अभिलेख से प्रारम्भिक सातवाहन नरेश के परिवार के सदस्यों का जो परिचय मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इससे तत्कालीन हिन्दूधर्म पर भी प्रकाश पड़ता है। पौराणिक हिन्दूधर्म के चतुर्व्यूहवाद एवं लोकपाल-कल्पना के विकास की भी जानकारी होती है। इसी समय यज्ञों का पुनरुद्धार भी हुआ। सातवाहन-वंश के इतिहास में नागन्निका की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस लेख से उसका व्यक्तित्व तो स्पष्टतः उभरता ही है, साथ-साथ

---

१. वही
२. संदर्भ-प्रिंसेप, ज. ए. सो. बं., ६, पृ. १०७५-६, कनिंघम, कॉ. इं. इं, १, पृ. २७ अ. ९८-१०१, १३२ अ
३. द्रष्ट. प्रा. भा. अ. सं., पृ. ४२०
४. पं. २ .... वीरस सूरस अप्रतिहत-चकस दखि (न.प)ठ (पतिनो)......

यह भी पता चलता है कि इस युग में एक आदर्श विधवा रानी को प्रजा किस रूप में देखती थी।[1]

## गौतमीपुत्र शातकर्णि का नासिक गुहालेख

## वर्ष-१८

प्रस्तुत अभिलेख सुविख्यात सातवाहन नृपति गौतमीपुत्र शातकर्णि (प्रायः १०६-३० ई. पू.) का है। यह महाराष्ट्र के नासिक नगर से दक्षिण-पश्चिम की ओर ८ कि.मी. की दूरी पर स्थित पाण्डुलेणा की तृतीय गुहा की छत के नीचे उत्कीर्ण है। इसकी भाषा प्राकृत है एवं इसकी लिपि ब्राह्मी (द्वितीय ई. पूर्व की) है। यह गद्य में है एवं कुल ६ पंक्तियाँ इसमें हैं।

यह गौतमी-पुत्र शातकर्णि के शासन-काल के १८वें वर्ष में अंकित किया गया था। शातकर्णि नहपान का जामाता एवं नासिक-प्रदेश का गवर्नर था।

अभिलेख का उद्देश्य उषवदत्त द्वारा पूर्वोपभुक्ता करबड़ी ग्राम के क्षेत्र का शातकर्णि द्वारा भिक्षुओं को दान के रूप में देने का उल्लेख करना है।[2]

शातकर्णि का एक दूसरा भी गुहालेख मिलता है जो उसके शासन काल के २४ वें वर्ष में लिखा गया था और पूर्वलिखित लेख से मात्र एक स्वस्तिक चिह्न द्वारा अलग किया गया है। पूर्वलेखवत् यह भी गद्यमय है। इसकी भाषा भी प्राकृत है एवं लिपि ब्राह्मी (दूसरी शती ई. के प्रारम्भ की) है।

प्रस्तुत अभिलेख ७ पंक्तियों का है।

सुप्रसिद्ध सातवाहन-नरपति गौतमीपुत्र शातकर्णि के लेख-द्वय से यह पता चलता है कि सातवाहनवंशीय इतिहास के लिए ईसवी सन् की प्रथम शती अवनति एवं अन्धकार का सूचक है। इसका कारण भी स्पष्ट है। यह समय क्षहरात शकों के लिए उत्कर्ष का समय था। नहपान उसका नेता था। दूसरी शताब्दी के आरम्भ में गौतमीपुत्र शातकर्णि ने अपने कुल की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की। उसने अपने शासन-काल के १८ वें वर्ष में अपनी शक्तिशाली सेना के स्कन्धावार से ही राजाज्ञा-पत्र निर्गत किया था। यहाँ ऐसी भूमि के दान का उल्लेख है, जिस पर नहपान के जामाता एवं नासिक के गवर्नर उषवदत्त का अधिकार

---

१. संदर्भ-ब्युलहर **आ. स. वे. इ.** वर्ड ५, पृ. ६० आ., ८६, लूडर्स, सूची सं. ११२, रैप्सन, कैटेलॉग, भू.पृ. ४५-४६, सरकार, **इ. हि. क्वा.** ७, पृ. ४१२, **सं. इ.**, पृ.१६२ अ, मिराशी, **ज. न्यू. सो.इ,** १४, पृ. २६ अ.

२. संदर्भ ब्युलर, आ. स. के. इ., ४, पृ. १०४ अ., सेनार्ट, ए. इ., ८, पृ. ७१, लूडर्स, सूची सं. ११२५, सरकार, सं. इ., पृ. १६७, पाण्डेय, हि. लि.ई., पृ. ५०-५१, द्रष्ट. ए.इ.यू. एवं **कॉ. हि. इ.**, २ के सम्बद्ध अंश।

था। अतः यह अनुमान किया जाता है कि नहपान के शासनकाल का अन्तिम वर्ष गौतमीपुत्र शातकर्णि के १८ वें वर्ष के समीप ही रहा होगा।

इन लेखों से सातवाहन-कालीन भूमि-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। ये भारत के प्रथम अभिलेख हैं जिनमें राजाओं के द्वारा संघ को भूमिदान देने से सम्बद्ध शर्तों का उल्लेख मिलता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भूपति इस प्रकार भूमिदान के समय अपने किन-किन विशेषाधिकारों का परित्याग करते थे।

इन अभिलेखों से सातवाहन-शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। यहाँ अमात्य, महास्वामी, प्रतिहार आदि पदाधिकारियों की चर्चा है। यहाँ भूमिदान की घोषणा से लेकर राजाज्ञा के कार्यान्वयन और दानपत्र के लेखन तक की समस्त प्रक्रिया की एक झाँकी मिलती है।

## वासिष्ठी-पुत्र पुलुमावि का नासिक गुहा अभिलेख
## वर्ष-१६

प्रस्तुत अभिलेख महाराष्ट्र के नासिक नगर के दक्षिण-पश्चिम की ओर ८ कि.मी. की दूरी पर पाण्डुलेणा की तीसरी गुहा के प्रवेश-द्वार के ऊपर अंकित है। यह सुविख्यात सातवाहन-नृप गौतमीपुत्र शातकर्णि के पुत्र वासिष्ठी-पुत्र पुलुमावि के शासनकाल के १६ वें वर्ष में उत्कीर्ण करवाया गया था।[1]

अभिलेख का उद्देश्य गौतमीपुत्र शातकर्णि की माता और पुलुमावि की पितामही गौतमी-वलसिरी के द्वारा गुहा-निर्माण एवं भदावनीय भिक्षुसंघ को एक गुहा-दान एवं पुलुमावि द्वारा पिसाजिपदक (पिशावीपद्रक) ग्राम के दानस्वरूप दिए जाने की चर्चा करना है।

लेख की भाषा प्राकृत है। इसकी लिपि ब्राह्मी है, जो दूसरी शताब्दी में मध्य उत्तर-दक्षिणापथ में प्रचलित थी। इसमें गद्य में ११ पंक्तियाँ हैं। वहाँ पुलुमावि के शासनकाल के १६ वें वर्ष का उल्लेख किया गया है। प्रायः १३० ई. में हुआ था। अतः इसकी तिथि १४६ ई. होनी चाहिए।

---

१. संदर्भ-व्युलर, आ.एस. वे. इ. ४ पृ. १८० इन्द्रा बाम्बे गजेटियर, १०, पृ. ५५६, सेनार्ट, एं. ५०८, पृ. ६०, लूडर्स, सूचीसं. ११२३, पाण्डेय, दि. लि. इ., ५२ अ. सरकार, सं. इ., पृ. २०२-२०३, १. द्रष्ट. पं. ३-५ सतानि वे २०० एत अम्ह-लेख निवतण-सतानि वे २०० इमेट पर्वाजतान तेकिरसिण वितराम एतस चस खेतस परिहार वितराम अथावेंसं अनो. अलोणखवादकं अखसविर्नायकं सवजात परिहारिक च एतेहि नं परिहारेहि परिहढि। एते चस श्वेत-परिहारे च एक निबधापेहि। अवियेन प्राणति अभयेन सिवगुतेन छतो, महासाभियेह उयरखिता दता पटिका सवछो १८ वासपरव दिवसे १ तापसेन

यह नासिक अभिलेख अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यही एक मात्र अभिलेख है जिससे सातवाहनों की उत्पत्ति पर प्रकाश पड़ता है। वे जाति के ब्राह्मण (अप्रतिम ब्राह्मण) थे। गौतमीपुत्र शातकर्णि के शासनकाल के पुनर्निर्माण की दृष्टि से भी इसका महत्त्व है। इसे सातवाहन-कुल के यश को प्रतिष्ठापित-कर्ता एवं शकयवन-पल्लव-निसूदन ही नहीं, बल्कि क्षहरात-वंश का समूलनाशक भी निर्दिष्ट किया गया है। प्रस्तुत अभिलेख से उसके राज्य की सीमा भी निर्दिष्ट हो जाती है। उसका राज्य उत्तर में मालवा तथा काठियावाड़ से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक, पश्चिम में कोंकण से पूर्व में बरार राज्य तक फैला हुआ था। विन्ध्य के दक्षिण में स्थित समस्त भूखण्ड का वह एकमात्र स्वामी था। तीनों समुद्रों के जल के पान का अधिकारी उसकी सेना थी। सम्भवतः वह एक चक्रवर्ती राजा था।

इस लेख से उसके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश पड़ता है। वह अतिसुन्दर और सुदर्शन था। उसका मुख विकसित कमल सदृश था। चाल हस्ति की चाल जैसी मनोहर थी, भुजाएँ नागराज के समान मांसल, दीर्घ एवं स्थूल थीं। वह पूर्णतः निर्भीक था एवं शरणागतों के अभयदानार्थ सदैव तत्पर रहता था। इतना ही नहीं वह सदाचारी भी था। वह धर्मशास्त्र के अनुसार ही अपनी प्रजा से कर लेता था। वह एक सफल योद्धा था एवं राम, अर्जुन और भीम के समान पराक्रमी था।

डॉ. आर. वी. भण्डारकर एवं उनके पुत्र डी. आर. भण्डारकर का अनुमान है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि एवं उसके सुपुत्र पुलुमावि ने कतिपय वर्षों तक सहशासन किया था। कतिपय विद्वान् इसका विरोध भी करते हैं।

प्रस्तुत अभिलेख साहित्यिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। अभिलेख में यत्र-तत्र पद-शय्या बड़ी ही मनोहारिणी प्रतीत होती है।[1]

यहाँ शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों की ही स्थिति पायी जाती है। शब्दालङ्कार में अनुप्रास की छटा प्रशंसनीय है।

पियदसनस वरवारण-विक्रम चारु-विकमस......।[2] इस पंक्ति में 'व' की चार बार आवृति हुई है। अतः यह वृत्त्यनुप्रास का सुन्दर उदाहरण है।

'वर' और 'वार' में व्यंजन-संघ की एक ही बार आवृति हुई है। अतः यहाँ छेकानुप्रास भी प्रशस्त हो जाता है। निम्नलिखित पंक्ति में यमक का भी अच्छा उदाहरण मिल जाता है-दिवस-कर (क) र विपोषित कमल-विमल-सदिस-वदनस......[3]

१. केसवार्जुन-भीमसेन-तुरण-परकमस छण-धनुसव-समाज कारकस्य...

२. ना. गु. ले. प. ७-८

३. वही, प. ६

दिवस-कर-कर में यमक की प्रतीति हो जाती है। इसी प्रकार 'कमल', विमल के 'मल-मल' में भी 'यमक' की कल्पना हो जाती है।

अर्थालङ्कार में उपमा का साम्राज्य परिलक्षित होता है। ऊपर निर्दिष्ट 'कमल-विमल. ....' में एक अतिसुन्दर उपमा मिलती है। पुलुमावि का मुख सूर्य की रश्मियों से विकसित कमल के समान था। यह उपमा सहज ही हृदयावर्जक प्रतीत होती है।

पुलुमावि के शरीर का वर्णन करते हुए यहाँ कहा गया है कि वह राकेश के समान सुन्दर और प्रियदर्शन था; उसकी चाल गजराज की चाल की तरह सुन्दर थी। भुजाएँ नागराज की कुण्डली के समान मांसल, सुडौल, स्थूल, दीर्घ और दर्शनीय थीं-पटिपु (+) प -चंद-मउल-ससिरीक-पियदसनस वर-वारण-विक्रम-चारु-विकमस भुजगपति-भोग-पीन -वाट विपुल-दीध-सुद (र,) भुजस.....।[1] उपर्युक्त पंक्तियों में मालोपमा का एक सुन्दर उदाहरण मिलता है।

आगे पुलुमावि के गुणों की प्रशंसा में कहा गया है कि वह वेदादि शास्त्रों का आधार था, सुत्पुरुषों का आश्रय था, यह लक्ष्मी की शरण था, वह सदाचारों का उत्पत्ति स्थल था।. ...आगमन (नि) लयस सुपरिसानं असयस सिरी (ये) अधिठानस उपचारान पभवस....।[2] यह परिसंख्या अलङ्कार का एक मनोरम उदाहरण है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाणभट्ट ने इस अभिलेख को देखा हो और इससे अनुप्राणित होकर इस अलंकार का प्रयोग कादम्बरी में किया हो।

ऊपर निर्दिष्ट "दिवसकर (क) र-विपोषित-कमल-विमल-सदिस-वदनस" में उपमा और यमक के तिल-तण्डुल-न्याय से सहस्थिति के फलस्वरूप यहाँ संसृष्टि अलंकार भी हो जाता है।

जब पुलुमावि युद्धभूमि में गजवर की पीठ पर चढ़कर जाता था, तो गगनतल में प्रविष्ट करता था। दूसरे शब्दों में हम ऐसा कह सकते हैं कि गजवर की पीठ पर बैठने से गगन की ऊँचाई को स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता था-....जितरिपु-सघस नागवर-तथा गगनतल-भमिविगाढस....।[3]

यहाँ अतिशयोक्ति की छटा परिलक्षित होती है। प्रायः छोटे-छोटे समस्त पद मिलते हैं, परन्तु दीर्घ समस्त पद भी यत्र-तत्र दिखायी पड़ते हैं। एक समस्त पद तो ११ पदों का है, लेकिन अर्थ-प्रतीति में उससे किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।

---

१. वही. पृ. ८ उपमा के अन्य उदाहरण
२. पं. १६-२०
३. पं. २६-२७

## संस्कृत-अभिलेख

गिरिनार शिलालेख संस्कृत भाषा का प्रथम अति महत्त्वपूर्ण शिलालेख है। इसके पूर्ववर्ती प्रायः सभी अभिलेख पालि या प्राकृत में उत्कीर्ण हैं। सातवाहन राजा प्राकृत के बड़े ही प्रेमी थे। काव्यमीमांसा के अनुसार वे अपने अन्तःपुर में भी प्राकृत का ही व्यवहार करते थे। इसके पूर्व के पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि उनके अभिलेखों की भाषा प्राकृत ही है। अतः उनके शासन काल में गाहासत्तसई जैसी प्रसिद्ध और लोकप्रिय पुस्तक की रचना भी प्राकृत भाषा में ही की गयी। प्रस्तुत अभिलेख के पूर्ववर्ती लेखों में मात्र अयोध्या से प्राप्त एक लेख संस्कृत-भाषा में उत्कीर्ण है। परन्तु, यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि यह एक प्रशस्ति नहीं है। यह तो पंक्तिद्वयात्मक एक अभिलेख मात्र है।[1]

संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास के सभी प्रेमी इस तथ्य से अवगत हैं कि वैदिक साहित्य के बाद रामायण, महाभारत, पुराणों का काल आता है। पुनः श्रेण्य काव्य (Classical Literature) का युग सामने आता है। व्याकरण के त्रिमुनियों ने संस्कृत-भाषा के रूप का स्थिरीकरण कर दिया था। त्रिमुनि में अर्वाचीनतम मुनि का समय ई. पूर्व १५० माना जाता है। संस्कृत-साहित्य के कवि-सम्राट् कालिदास का समय ई. पू. प्रथम शताब्दी माना जाता है। इसके पूर्व महाकवि भास आ चुके थे। सम्भवतः इनका समय ई. पू. तीसरी शताब्दी माना जाता है। कालिदास के परवर्ती कवि अश्वघोष थे, जिनका समय ईसवीसन् की प्रथम शताब्दी माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत वाङ्मय की इन रचनाओं की एक लम्बी परम्परा ई. पू. तीसरी शताब्दी से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। पुनरपि अभिलेख साहित्य से संस्कृत-भाषा प्रायः पृथक् एवं अछूती सी प्रतीत होती है। सर्वतोभावेन संस्कृत-भाषा में कोई प्राचीनतम अभिलेख यदि प्राप्त होता है, तो वह गिरिनार का अभिलेख ही है, जिसका समय १५० ई. स. माना जाता है।

इसका कारण भी स्पष्ट है। भारतवर्ष एक विशाल देश है। इसके विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के लोग पाये जाते हैं। उन्हें संस्कृत की तुलना में प्राकृत भाषा अधिक सरल एवं सुबोध प्रतीत होती थी। अतः तत्तत् प्रदेशों के राजागण ने जिन अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाया, उनकी भाषा प्राकृत ही रखी गयी, जिससे लोग उसे सहज ही समझ सकें। उसमें उसकी रुचि हो, इन शिलालेखों से उन्हें स्वत्व की प्रतीति हो।

---

१. को सलिलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः।
पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण धन.....''।।
धर्म-राज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं तम्

इतना ही नहीं, हम सभी अच्छी तरह जानते हैं कि प्राकृत की बात तो सर्वथा पृथक् है, यहाँ तक कि संस्कृत रूपकों में भी राजा (नायक) और मंत्री (ब्राह्मण) को छोड़कर शेष पात्र यहाँ तक कि नायिका (रानी) भी कथोपकथन में प्राकृत का ही प्रयोग करती है।

यहाँ एक बात और ध्यातव्य है कि प्रारम्भिक काल की बात तो हम छोड़ ही दें, यहाँ तक कि दसवीं शताब्दी तक संस्कृत प्राकृत में कोई विशेष पार्थक्य नहीं माना जाता था। ये एक ही सिक्के के दो पहलू माने जाते थे। एक संस्कृतज्ञ प्राकृत को अच्छी तरह समझता था और एक प्राकृत-भाषी संस्कृत-भाषा से सम्यक् रूप से परिचित होता था। यदि ऐसी बात नहीं होती, तो महालोचक मम्मट भट्ट काव्यप्रकाश जैसे लोक-विश्रुत संस्कृत-काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में ध्वनि-काव्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्राकृत के श्लोक को कथमपि उद्धृत नहीं करते-भम धम्मिअ वीसद्धो सो सुपाओ अज्ज मारिओ तेप। गोव्डानः कच्छ कुडड्ग वासिणा दरिअ सीहेण।। इसके अतिरिक्त और भी कतिपय प्राकृत पद्य काव्यप्रकाश में उद्धृत किये गये हैं।[1]

यदि संस्कृत और प्राकृत भाषा के अर्थ-बोध में विशेष पार्थक्य होता तो मम्मट अपनी अमर कृति में प्राकृत पद्यों को कदापि उद्धृत नहीं करते।

गुप्त-वंशीय नरेश संस्कृत प्रेमी थे। अतः गुप्तसाम्राज्य की स्थापना के साथ ही संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में सहसा वृद्धि हो गयी और अभिलेखों में सतत प्रयुक्त प्राकृत-भाषा को निष्कासित कर संस्कृत ने यहाँ अपना सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित कर लिया। प्रथम कुमारगुप्त के समय का मन्दसोर-शिलालेख, समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति और अनेकानेक रचनाएँ दृष्टिगोचर होने लगीं।

इस दृष्टिकोण से रुद्रदामा का प्रस्तुत गिरिनार अभिलेख संस्कृत-वाङ्मय के विकास के अध्ययन के हेतु विशेष महत्त्व का प्रतीत होता है।

## रुद्रदामन् का गिरिनार अभिलेख

गुजरात के जूनागढ से प्रायः २ किलोमीटर की दूरी पर पूर्व गिरिनार नामक पहाड़ी की एक शिला के पश्चिमी मुख पर ऊपर की ओर कार्दमवंशीय प्रथम रुद्रदामा नामधारी शकराज का यह लेख अंकित है। इसी शिला पर सम्राट् अशोक के १४ शिला-प्रज्ञापन एवं गुप्त-सम्राट् स्कन्दगुप्त के भी लेख-द्वय उत्कीर्ण हैं। गिरिनार जूनागढ़ का प्राचीन नाम है। बाद में इसका रूप परिवर्तन होकर 'गिरिनार' हो गया है।

---

१. का. प्र. प. उ.

प्रस्तुत अभिलेख छोटी-बड़ी बीस पंक्तियों में है। यह गद्य में है। लेख कुछ क्षतिग्रस्त है, मात्र अन्तिम चार पंक्तियाँ पूर्णतः पठनीय हैं।

लेख की भाषा संस्कृत है, यत्र-तत्र प्राकृत का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इसकी लिपि पश्चिमोत्तर प्रदेश की कुषाण-कालीन ब्राह्मी है। यह लिपि मौर्योत्तरकाल में मथुरा, तक्षशिला और सुराष्ट्र में विकसित हुई।

लेख का उद्देश्य क्षत्रप रुद्रदामा द्वारा सुदर्शन नामक झील के बाँध के पुनर्निर्माण का वर्णन करना है। जैसा कि प्रस्तुत अभिलेख में निर्दिष्ट है मौर्यनरपति चन्द्रगुप्त के गवर्नर पुष्यगुप्त ने गिरनार के निकट जनकल्याण के निमित्त सुदर्शन नामक एक झील खुदवायी। बाद में अशोक-महान् के राज्यकाल में तुषास्फ नामक यवनराज ने इससे कई नहरें बनवाई। तत्पश्चात् रुद्रदामा के कार्यकाल में नदियों की बाढ़ से झील का बांध टूट गया। मंत्रियों के विरोध करने पर भी रुद्रदामा ने प्रजा के हितार्थ अपने निजी कोष से प्रचुर धन-राशि लगाकर बांध का पुनर्निर्माण करवाया। पहलव गवर्नर सुविशाख ने बांध-पुनर्निर्माण के कार्य-भार को स्वीकार किया।

इस अभिलेख में कोई भी तिथि अंकित नहीं है। बांध रुद्रदामा के ७२ वें वर्ष में टूटा था। यह शकसंवत् था। अतः बांध टूटने की तिथि १५० ई. होनी चाहिए। बांध का पुनर्निर्माण अल्प समय के भीतर ही (अनतिमहता कालेन) हुआ। अतः उपर्युक्त तिथि १५५ ई. के समीप होगा।

प्रस्तुत अभिलेख कतिपय दृष्टियों से अतिमहत्त्वपूर्ण है। इससे पश्चिमोत्तर भारत के चष्टन-वंशीय शकनृपों से सम्बद्ध बहुत सी बातों का ज्ञान होता है। शकराजे साधारणतया 'क्षत्रप' और 'महाक्षत्रप' उपाधि धारण करते थे, जो फारसी में 'क्षथ्रयावन' के रूप में प्रयुक्त होता है। सम्भवतः यह संस्कृत शब्द का रूपान्तर हो। इन उपाधियों से अलंकृत नृपवंश मथुरा, तक्षशिला, महाराष्ट्र एवं मालवा-सुराष्ट्र में पाये जाते हैं।

रुद्रदामा का कुषाणों के साथ सम्बन्ध था। रुद्रदामा का प्रस्तुत अभिलेख शक-सातवाहन-संघर्ष के एक अवस्था-विशेष का उल्लेख करता है। रुद्रदामा ने सम्भवतः गौतमीपुत्र शातकर्णि को दो बार युद्ध में पराजित किया था। राजनैतिक महत्त्व की कुछ बातें भी इस अभिलेख से स्पष्ट हो जाती हैं :-

१. यहाँ यौधेय-शक-संघर्ष का वर्णन मिलता है। २. पश्चिम भारत पर अशोक के काल तक मौर्यों का अधिकार था। मौर्य जनकल्याणार्थ सिंचाई की व्यवस्था के पक्षधर थे। ३. सुराष्ट्र में विदेशियों का विशिष्ट प्रभाव था। ४. साथ ही इस लेख से रुद्रदामा के राज्य की सीमा एवं भारत के तात्कालिक भूगोल का सम्यक् परिचय भी मिल जाता है।

प्रस्तुत लेख का केवल राजनैतिक महत्त्व ही नहीं है। उसका प्रशासनिक एवं सामाजिक महत्त्व भी है। सम्भवः प्राचीन भारत के गुप्तयुग-पर्यन्त के लेखों में यह एक ऐसा अभिलेख है, जिसमें स्वयंवर-प्रथा के प्रचलन का उल्लेख हुआ। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि रुद्रदामा जैसे विदेशी राजाओं का प्रायः पूर्णरूपेण आर्यीकरण हो चुका था। ये संस्कृत-भाषा के संरक्षक भी थे और भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से गर्वान्वित भी होते थे। एक स्थान पर हाथ उठाकर न्याय करने का उल्लेख हुआ है। यह बात मनुसम्मत है।[1] इस लेख से रुद्रदामा की शासन-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। अभिलेख के मति-सचिव, कर्म-सचिव, नगर, निगम, जनपद, और जानपद, अनेक प्रशस्तकर (बलि, शुल्क एवं भाग) और अनेक प्रशस्तकर (कर, विष्टि तथा प्रणय) की चर्चा भी है। अन्ततः आनर्त एवं सुराष्ट्र के गवर्नर विशाख के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक अच्छे गवर्नर में किन-किन गुणों की अपेक्षा की जाती है।

प्रस्तुत अभिलेख से रुद्रदामा के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी लोककल्याण की भावना। बांध के टूट जाने पर वह उद्विग्न हो जाता है और उसे बंधवाने के लिए उनसे कोई अतिरिक्त कर नहीं लेता है। वह एक उदार शासक था एवं उसने अपने मंत्रिमंडल को अपने अभिमत को व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिया था। वह लोकप्रिय था। वह एक कुशल सेनानी और योद्धा भी था। उसने यौधेय और शातकर्णि को पराजित किया था। वह संग्राम के अतिरिक्त मानव-वध का पूर्ण विरोधी था। उसे संगीत के साथ-साथ शास्त्रों में भी रुचि थी। वह संस्कृत का संरक्षक था। काव्यशास्त्र का अनुपम ज्ञाता और गद्य-पद्य रचना में दक्ष था। न्यायप्रिय राजा के रूप में उसकी ख्याति फैली हुई थी।[2] वह एक सुदर्शन तथा नृपोचित गुणों से विशिष्ट व्यक्ति प्रतिभासित होता है।[3]

गिरिनार अभिलेख साहित्यिक दृष्टि से भी अति महत्त्व का है। इसे संस्कृत भाषा का प्रथम महत्त्वपूर्ण शिलालेख होने का गौरव प्राप्त है। हम सभी जानते हैं कि रामायण और महाभारत के बाद काव्यों का काल आता है। मैक्समूलर भास की रचनाओं से अपरिचित थे। अतः उन्होंने इस मत की स्थापना की कि अश्वघोष से लेकर पाँचवी शताब्दी तक का काल संस्कृत-साहित्य के इतिहास में 'अन्धकारमय युग' है। ब्युलर ने इस मत का खण्डन किया है और उन्होंने उदाहरणस्वरूप प्रथम कुमारगुप्त के समय की मन्दसौर-प्रशस्ति, समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति तथा रुद्रदामा की जूनागढ़ (गिरिनार) प्रशस्ति की ओर संकेत किया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि मैक्समूलर के द्वारा प्रतिपादित अन्धकारमय युग में

१. मनु. ८.२
२. पं. १२-१३ यथार्थहस्तोच्छ्रयार्जितोर्जित-धर्मानुरागेण।
३. परलक्षण-व्यञ्जनैरुपेत-कान्तमूर्तिना...।

उत्तर भारतवर्ष में राज-सभाओं में काव्य-कला का अविच्छिन्न रूप से उत्तरोत्तर विकास हो रहा था।

इस दृष्टि से गिरिनार अभिलेख का एक अपना पृथक् महत्त्व है। यह प्रशस्ति एक उत्तम गद्यकाव्य का उदाहरण है। यह श्रेण्य-काव्य-परम्परा की प्रारंभिक कड़ियों में से एक कड़ी प्रतीत होती है। इसका लेखक इस नियम से परिचित प्रतीत होता है कि ओजगुण से युक्त समास-बहुलता ही गद्य का जीवन है (ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्)। बाद में, दण्डी ने इसी विशेषता को प्रतिपादित किया था। प्रस्तुत रचना में छोटे-छोटे समस्त पदों का अधिक प्रयोग हुआ है। अतः इसे हम वैदर्भी रीति का उदाहरण मान सकते हैं।

## गुप्तकालीन अभिलेख

## ३६. समुद्रगुप्त का प्रयाग-स्तम्भ-लेख

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद के किले में अवस्थित उस प्रस्तर स्तम्भ पर, जिस पर सम्राट् अशोक का अभिलेख उत्कीर्ण है, यह लेख अंकित है। मूलतः यह कौशाम्बी में था, परंतु मुगल-सम्राट् अकबर महान् ने वहाँ से लाकर इसकी स्थापना अपने किले में की।

प्रशस्ति के लेखक कुशल कवि हरिषेण हैं, जो समुद्रगुप्त के संधिविग्रहिक भी थे। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है और इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है।

इस अभिलेख का उद्देश्य समुद्रगुप्त की वंशावली के साथ उसके महान् व्यक्तित्व एवं यज्ञ का उल्लेख करना है। यहाँ उसकी दिग्विजय का सविस्तर वर्णन भी मिलता है।

प्रशस्ति में इसके रचना-काल का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना ई. स. ३५० के समीप हुई होगी।

प्रशस्ति के आरम्भ में आठ पद्य हैं और अन्त में भी एक पद्य है। दोनों के बीच एक बड़ा गद्य-खण्ड है। आरंभ के पद्य-द्वय प्रायः नहीं के बराबर ही हैं। पुनरपि उनसे पता चलता है कि समुद्रगुप्त को अपने पिता के जीवनकाल में ही कतिपय युद्धों का सामना करना पड़ा था और उसने अनेक शत्रुओं को अच्छी तरह पराजित कर दिया था। तृतीय पद्य से उसके शास्त्र और ललित कलाओं की शिक्षा पर प्रकाश पड़ता है। चतुर्थ श्लोक से यह पता चलता है कि समुद्रगुप्त से प्रसन्न होकर पिता ने आशीर्वाद प्रदान करते हुए उसे अपना युवराज उद्घोषित कर दिया[1]। समस्त पदों से गौडी रीति की छटा भी परिलक्षित होती है। उदाहरण स्वरूप सुवर्णसिकता एवं पलाशिनी नदीद्वय के जलप्लावन के वर्णन में यह वैशिष्ट्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है।[2]

१. प्र.स्त. ले. प. ४ यः पित्राभिहितो निरीक्ष्य निखिलां पाह्येवमुर्वीमिति।।

२. पं. ५-७ सुवर्णसिकता-पलाशिनी-प्रभृतीनां.....शिखर-तरु-तटाट्टालकोपत (ल्प)..द्वार शरणोच्छ्रय -विध्वंसिना युगनिधन-सदृश-परम-घोरवेगेन वायुना....

कवि अलङ्कारों के द्विविध भेद शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार से पूर्णतः अवगत है। शब्दालङ्कारोंमें अनुप्रास का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। समान ध्वनिवाले पदांश, पद एवं वर्णों की आवृत्ति प्रायः परिलक्षित होती है। एक स्थल पर तो पद में एक ध्वनि वाले स्वरों और व्यंजनों की आवृति बड़ी ही निपुणता के साथ की गयी है।[1]

अर्थालङ्कारों में उपमा का वर्णन स्थलत्रय में परिलक्षित होता है।[2] एक उत्प्रेक्षा का उदाहरण भी दिखाई पड़ता है। अत्यधिक वर्षा के फलस्वरूप जलप्लावन से पृथ्वी मानो समुद्र बन गयी थी।[3] 'अतिभृशं दुर्दशनम्' में श्लेषालङ्कार के निमित्त विफल प्रयत्न किया गया है।[4]

इसी अभिलेख का 'स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्त शब्द-समयोदारालंकृत-गद्य-पद्य-काव्य-प्रवीणेन' ६ पं. १४ वाक्य-खण्ड अतिमहत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। संस्कृत-काव्य के विकास के इतिहास पर यह प्रकाश डालता है। इससे पता चलता है कि दूसरी शताब्दी के मध्य तक उत्तम-काव्य की विशेषताओं के लिए मानदण्डों का स्थिरीकरण हो चुका था जिसका उल्लेख दण्डी के 'काव्यादर्श' में हुआ है। साथ ही हम ऐसा भी अनुमान करते हैं कि उस समय वैदर्भी रीति में लिखित काव्यों की रचना हो रही थी। उस युग में संस्कृत काव्य इतना विकसित हो चुका था कि विदेशी शक-राज भी उससे अति प्रभावित थे। इतना ही नहीं वे भी गद्य-पद्य-विधान में अपनी प्रवीणता का भी निदर्शन करते थे।

गिरिनार अभिलेख की भाषा साधारणतया प्रवाहमयी है, परन्तु यत्र-तत्र प्राकृत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके वर्ण-विन्यास में ल>ळ का प्रयोग मिलता है, प्रणाली, पाली एवं पाल के स्थान में क्रमशः प्रणाली पाली एवं पाल का प्रयोग दिखाई पड़ता है। पंक्ति ७ में 'विशदुत्तराणि' के बदले 'धीशदुत्तराणि पाठ है। ऐसे प्रयोग रामायण, महाभारत एवं पुराणों में पाये जाते हैं। इसी प्रकार इसकी १२वीं पंक्ति में 'नीर्व्याजमवजीत्यावजीत्य' पाठ प्राकृत-प्रभाव का ही उदाहरण माना जा सकता है। इसके स्थान में शुद्ध पाठ 'निर्व्याजमवजि त्यावजित्य' होगा। यह क्षति-पूर्ति-नियम (Law of mora) के फलस्वरूप होता है। इसी तरह 'विषयाणां पतिना'' वाक्य-खंड (पंक्ति ११) पाणिनि की दृष्टि से चिन्त्य है। इसके स्थान पर 'पत्या' होना चाहिए। इसी प्रकार पंक्ति १० में 'अन्यत्र ग्रामेषु' की जगह 'अन्यत्र ग्रामेभ्यः' पाठ अपेक्षित है। पंक्ति १० में ''प्रत्याख्यातारम्भम्'' के बदले, ''प्रत्याख्यातारम्भे'' ही शिष्ट प्रयोग माना जायगा।

पाँचवीं पक्ति में ''पर्जन्येन एकार्पवभूतायामिव पृथिव्याम् कृतायाम्'' इस वाक्य खण्ड में अलंकार की छटा दर्शनीय है।

---

१. समग्राणां.....विषयाणाम् पं. ११ अविधेयानां यौधेयानाम् (पं १२) प्रभृतीनां नदीनां (पं. ६) गद्यपद्य (पं. १४, पौरजानपदं पं. १५, पौरजानपदजनानुग्रहार्थम् (पं. १-२)

२. (क) पर्वतपादप्रतिस्पर्धि...(पं १-२) (ख) मरुधन्वकाल्पक (पं. ८), (ग) युगनिधन-सदृशं....(पं. ७)

३. पं. ५ पर्ज्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायाम्...।

४. पं. ८

प्रस्तुत अभिलेख में बहुत ही कम क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। मात्र तीन क्रियाएँ ही प्रयुक्त हुई हैं-'आसीत्' का दो बार प्रयोग ७वीं एवं आठवीं पंक्तियों में एवं 'वर्तते' का एक बार प्रयोग इसी पंक्ति में हुआ है। आगे के श्लोक-द्वय (५-६) यत्र-तत्र अपठनीय हैं। उनमें किसी युद्ध का संकेत मिलता है, जिसमें उसके शत्रु पराजित भी हुए और उससे क्षमा-याचना भी कर ली।

समुद्रगुप्त अपने भ्राताओं में अनुपम वीर था। वह उच्च कोटि का विद्वान् भी था। इतना ही नहीं वह एक योग्य शासक भी था। अतः युवराज पद पर प्रतिष्ठित हुआ था। अतः भ्रातृगण उससे युद्ध करने के लिए तत्पर हो गए। पिता के निधन के उपरान्त समुद्रगुप्त भारतीय सम्राटों की परम्परा के अनुसार दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। पद्य ७-८ और गद्यांश में उसके विजय-अभियान का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस क्रम में उसने विशेष रूप से तीन युद्ध किए-(क) सर्वप्रथम उसने ई. स. ३४४ के आसपास उत्तर भारत में एक सामान्य युद्ध किया। इस युद्ध में उसने अहिच्छत्र नरेश अच्युतनाग, मथुरानरेश नागसेन और पद्मावती-नरेश गणपति नाग को पराजित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीनों नागवंशी नरेश ही थे।

(ख) इसके बाद उसने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया और कौशलनरेश महेन्द्र, महाकालान्तर का व्याघ्रराज, करेल-राज, मण्टराज, पिष्टपुर-नरेश महेन्द्र, कोट्टरराज स्वामिदत्त, एरण्डपल्लीया दमन, कांची-नरेश विष्णुगोप, अवमुक्त-स्वामी नीलराज, वेङ्गी-नरेश हस्तिवर्मन, पाल्लकराज उग्रसेन, देवराष्ट्राधिप कुबेर एवं कुस्थलपुरेश धनंजय को पराजित कर दिया। इन द्वादशनरेशों के मुखिया केरल-नरेश मण्टराज और कांची नरेश विष्णुगोप थे। इन राजाओं के राज्यों का गुप्तसाम्राज्य में विलय नहीं किया गया; बल्कि उनके शासकों को लौटा दिया गया।[1]

(ग) दक्षिण भारत से लौटने पर उत्तर भारत के संगठित नरेशों के साथ उसे पुनः युद्ध करना पड़ा। संगठित राजाओं की नामावलि यह है-रुद्रदेव, मातिल नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दी एवं बलवर्मन।

यह युद्ध कहाँ हुआ, इसका कोई भी संकेत नहीं मिलता है। परन्तु, ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वह युद्धस्थल कौशाम्बी ही रहा होगा। अतः उसकी स्मृति में पहले से वहाँ वर्तमान अशोक सम्राट् के स्तम्भ पर ही उसने (समुद्रगुप्त ने) अपनी प्रशस्ति उत्कीर्ण करा दी।

---

१. प्र.स्त. ले. पृ. २०, सर्वदक्षिणपथराजग्रहण-मोक्षानुग्रहजनित-प्रतापोन्मिश्रितमहाभाग्यस्य......।

मध्य भारत के सभी आटविक[1] नृपों को सेवकीभूत किया एवं सीमाप्रदेश[2] के राजाओं और गणराज्यों[3] को कर-प्रदान करने के लिए विवश किया। इन विजयों के फलस्वरूप सुदूरवर्ती नृपगण ने भी उससे मैत्री का सम्बन्ध जोड़ा।[4] इस प्रकार दिग्दिगन्त में उसकी विजयपताका फहराने लगी।

समुद्रगुप्त पराक्रमी तो था ही, साथ ही वह सरस्वती और लक्ष्मी का वास्तविक उपासक था। वह 'कविराज' की उपाधि से मण्डित था।[5] वह शास्त्रज्ञ भी था[6] इतना ही नहीं, वह निपुण वीणावादक भी था।[7]

**साहित्यिक विशेषता**-इस अभिलेख के पद्यों की भाषा सरल एवं स्वाभाविक है। समासों का सर्वथा अभाव है। यहाँ वैदर्भी रीति की रमणीयता प्रशंसनीय है। 'आरंभ' के आठ पद्यों के उपरान्त गद्य में लिखित एक दीर्घ वाक्य है और पुनः अन्त में एक पद्य है। वस्तुतः यह प्रशस्ति एक ही वाक्य में समाप्त हो जाती है। गद्य भाषा में दीर्घ समास परिलक्षित होते हैं। विषयानुकूल शब्द-योजना है। एक समस्त पद तो १२० अक्षरों का है। दीर्घ समास होने पर भी दुर्बोधता नहीं आ पायी है। ऐसे स्थलों पर ओजगुण की प्रधानता के कारण गौडी रीति की झलक दिखाई पड़ती है।

अलङ्कारों में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार की कमनीयता परिलक्षित होती है। जहाँ तक शब्दालङ्कार की बात है, अनुप्रास[8] और श्लेष[9] का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। अर्थालङ्कार के क्षेत्र में उपमा के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।[10] रूपक के उदाहरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।[11]

---

१. प्र.स्त. ले. पृ. २१ "परिचारीकृत सर्वाटविकराज्यस्य......"
२. वही पृ. २२ ये सीमावर्ती राज्य ५ थे-समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपुर।
(समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्तृपुरादि नृपतिभिः.......)
३. वही पृ. २२-२३ गणराज्य नौ थे-मालवा, आर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, आर्जुन, सनकानीक, काक और खरपरिक। मालवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जुन-सनकानीक-काक-खरपरिकादिभिश्च सर्वकरदानाज्ञाकरण-प्रणामागमनपरितोषित....शासनस्य
४. वही पृ. २३-२४ उसकी अधीनता में रहकर गर्व का अनुभव करने वाले विदेशी नरेश ये थे- कुषाण-वंशज दैवपुत्र शाहिशाहानुशाह, २. शक मुरुण्ड, एवं ३. सिंहल तथा अन्य द्वीपवासी राजा। दैवपुत्र-षाहि-शाहानुशाहि-शकमुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च सर्वद्वीपवासिभिरात्मनिवेदन-कन्योपायन-दान. ..सेवाकृत-बाहुवीर्यप्रसर-धरणि-बन्धस्य-पृथिव्यामप्रतिरथस्य....
५. वही. पृ. २७...... अनेककाव्यक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य...।
६. वही पृ. १ ... अनेककाव्याक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य...।
७. वही पृ. २७ ... निशित-विदग्धमति-गान्धर्व-ललितै व्रीडित-त्रिदशपतिगुरुतुम्बुरु नारदादे...
८. प्र. स्त. प. १-४ स्नेहव्याकुलितेन वाष्पगुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा....
९. वही पृ. २५ साध्वसाधूदय-प्रलय हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य....
१०. वही, पद्य ८ धर्मप्राचीर बन्धः शशिकर-शुचयः कीर्तयः सप्रताना वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम..... तार्थम्। अध्येयः सूक्तमार्गः कविमति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं को नु स्याद्योऽऽस्मिन् स्याद्गुणमतिविदुषां ध्यानपात्रं य एकः।। और प. ६ में भी
११. द्र. प. टि. ३/५

हरिषेण ने यहाँ स्रग्धरा जैसे बड़े छन्द का भी प्रयोग किया है।[1] इसके अतिरिक्त शार्दूलविक्रीडित[2], मन्दाक्रान्ता[3] एवं पृथिवी[4] छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हरिषेण के इस गद्य से ही आगे चलकर सुबन्धु और बाणभट्ट ने प्रेरणा प्राप्त की। कवि की वर्णना-शक्ति अनुपम है, जिसकी प्रतीति हमें समुद्रगुप्त के कीर्ति-वर्णन में होती है। सम्राट् की कीर्ति को कवि ने एक नारी के रूप में चित्रित किया है। समस्त विश्व का आलिङ्गन करने के बाद भी पृथिवी पर उसे रहने के लिए स्थानाभाव हो गया। अतः स्तम्भ के मार्ग से वह ऊपर की ओर देवलोक को प्रस्थान करती है। वहाँ इसकी तुलना स्वर्गगङ्गा से की गयी है[5]।

विद्वानों की धारणा है कि वासवदत्ता, दशकुमारचरित और कादम्बरी में राजाओं के वर्णन पर इस अभिलेख के सम्राट् चन्द्रगुप्त के वर्णन की छाप है। इससे यह प्रमाणित होता है कि चतुर्थ शताब्दी में Court Poetry की परम्परा स्थापित हो चुकी थी।

जहाँ तक कृत्रिमता की बात है वह दीर्घ समस्त पद के प्रयोग में ही सीमित है। यह अभिलेख चम्पूकाव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है।[6]

## ३७. समुद्रगुप्तकालीन एरण स्तम्भ-अभिलेख

मध्य-प्रदेश के सागर मण्डल के अन्तर्गत एरण (एरिकिण) गाँव के सुविख्यात जीर्ण-शीर्ण वराह-मन्दिर के निकटवर्ती एक चतुर्भुजी स्तम्भ-खण्ड पर यह अभिलेख अंकित है। आजकल यह इण्डियन म्यूजियम में सुरक्षित है।

**लिपि**-मध्यभारतीय ब्राह्मी लिपि में यह अंकित है। इस लिपि का अपर नाम 'बौक्स हेडेड' है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है।

किसी अधिकारी या राज्यपाल के द्वारा एरण में वराहमन्दिर के निर्माण का उल्लेख एवं तत्कालीन सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रशंसा करना ही इसका उद्देश्य प्रतीत होता है। अभिलेख में तिथि का कोई निर्देश नहीं है। अभिलेख के ७ श्लोक वसन्ततिलका में निबद्ध

---

१. प. ८
२. पा. टि.-१
३. पद्य-६
४. पद्य-९
५. पुनासि भुवन-त्रयं नु पशुपतेर्जटान्तर्गुहा निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डु-गाङ्गं पयः।।
६. काव्या. गद्य-पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।

संदर्भ-फ्लीट **कॉ. इ. इ.** ३, सं.-१; सरकार **से इं.**, पृ. २६२; पाण्डेय, **हि. भि.** पृ. ७२; छाबड़ा, **इं. हि. क्वा.**, २४, पृ. १०४-१३; राघवन, **ज.ओ.रि.** मद्रास, १६ पृ. ५९-६२; साधुराम **वी. इं. ज.**, ३, भा. १, पृ. १०५-६; दिसकलकर, **से.स.इ.** पृ. २५-४३

हैं। ऊपर के भाग के टूट जाने से प्रथम छः पंक्तियाँ नष्ट हो गयी हैं। २०-२२ वीं (तीन पंक्तियाँ) भी क्षतिग्रस्त हैं। अभिलेख की भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है।[1]

## ३८. चन्द्रगुप्त (द्वितीय)-कालीन मथुरा-स्तम्भ-अभिलेख

उत्तर प्रदेश की मथुरापुरी की प्रसिद्ध चण्डूल-मण्डूल वाटिका में अवस्थित स्तम्भ पर यह अभिलेख मध्य ब्राह्मी लिपि में अंकित है। इसकी भाषा संस्कृत अवश्य ही है, परन्तु यत्र-तत्र प्राकृत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

इसका उद्देश्य पाशुपत आचार्य उदित के द्वारा अपने गुरुद्वय उपमित-विमल एवं कपिल-विमल की उपमितेश्वर एवं कपिलेश्वर नामक प्रतिमाद्वय की स्थापना का उल्लेख करना है। इसका समय ६१ गुप्तसंवत् = ३७० ई.स. है। सरल संस्कृत गद्य में यह अभिलेख प्रस्तुत किया गया है। इसमें कुल १७ पंक्तियाँ हैं।[2]

## ३९. चन्द्रगुप्त-द्वितीय-कालीन उदयगिरिगुहा-अभिलेख

मध्य-प्रदेश के अन्तर्गत विदिशा के समीप उदयगिरि की 'तवा' गुहा के पीछे की दिवाल पर यह अभिलेख अंकित है। इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है, जो सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ-लेख से न्यूनाधिक समानता रखती है एवं यह संस्कृत भाषा में है। अभिलेख का समय ४०१ ई. है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के सकल-पृथिवी-जयार्थ अभियान के अन्तर्गत मंत्री के साथ-साथ वीरसेन के द्वारा भगवान् शम्भु की गुफा के निर्माण की स्मृति दिलाना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है। वह पाटलिपुत्र का निवासी था एवं शब्दार्थ-न्याय-लोकज्ञ कवि था।

सभी पद्य अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं। अभिलेख संस्कृत में है। इसमें मात्र पाँच वाक्य हैं। अभिलेख की भाषा आडम्बरहीन और सरल है।

## ४०. चन्द्रगुप्त (द्वितीय) कालीन सांची स्तूप प्राचीर अभिलेख

मध्यप्रदेश के विख्यात सांची-स्तूप के पूर्वीद्वार के बाहर दायीं ओर की भित्ति पर यह अभिलेख अंकित है।

इसकी लिपि दक्षिण-ब्राह्मी है जो मन्दसौर अभिलेख की लिपि से किंचित् साम्य रखती है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसका समय गुप्तसंवत् ९३ = ४१२ ई. स. है।

---

१. संदर्भ-फ्लीट, **का.इ. इं.** ३, सं. २; सरकार **सं., इ.**, पृ. २६८, पाण्डेय **हि. लि. ई.**, पृ. ७६ मिराशी, **इ.ऐ.**, तृतीय सीरिज १,३, १९६४, पृ. १७४-७६

२. श्री भण्डारकर ए.इ. २१, पृ.-८; डी.बी. दिसकलकर, **ऐ.भ.ओ.रि.ई.**, १८, पृ. १६६; सरकार **सं. ई.**, पृ. २७७; हि. क्वा, १८, पृ. २७२; पाण्डेय, **हि. लि. इ.**, पृ. ७८

चन्द्रगुप्त द्वितीय के अधिकारी आम्रकार्ददव ने काकनाद वोट-महाविहार के आर्य संघ को ईश्वर-वासक गांव एवं २५ दिनारों को दान-स्वरूप दिया था। इस बात का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

अभिलेख संस्कृत गद्य में है। कुल चार की वाक्य हैं, जिसमें प्रथम वाक्य ६६ पदों का एक लम्बा वाक्य है।[1]

## ४१. महाराज चन्द्र का मेहरौली लौह-स्तम्भ-अभिलेख

दिल्ली से नौ मील दक्षिण की ओर मेहरौली नामक एक गाँव है। वहाँ कुतुबमीनार के समीप स्थित एक लौह-स्तम्भ है, जिस पर शार्दूलविकीडित छन्द में निब्द्ध तीन पद्यों का प्रस्तुत लघु अभिलेख उत्कीर्ण है।

लेख की लिपि ईसवी सन् की पाँचवी शताब्दी के आरम्भ की ब्राह्मी लिपि है। प्रिंसेप ने इसे तीसरी चौथी शताब्दी के मध्यकाल की लिपि माना है। इसकी भाषा संस्कृत है।

लेख का उद्देश्य राजा चन्द्र द्वारा विष्णुपद पहाड़ी पर विष्णु-मंदिर के सामने ध्वज के रूप में स्तम्भ की स्थापना का उल्लेख करना है। स्तम्भ में उल्लिखित नृप की वीरता एवं उसकी विजयों का वर्णन किया गया है।

अभिलेख में न तिथि का निर्देश है और न उल्लिखित नृप-चन्द्र के जीवन से सम्बद्ध बातों की चर्चा है। अभिलेख से मात्र इतना ही पता चलता है कि किसी चन्द्र नामक नृप ने बंगाल में अपने शत्रुओं को वक्षस्थल से पीछे ढकेल दिया, सिन्धु नदी की सात धाराओं को पार कर ब्राह्लीकों को भी वशीभूत किया और अपनी भुजाओं से पृथ्वी पर एकाधिपत्य स्थापित कर उसका भोग अनेक वर्षपर्यन्त किया। इस अभिलेख की तिथि पंचम शताब्दी मानी जाती है।

अभिलेख में चर्चित 'चन्द्र' नामक् नृप के विषय में ऐतिहासिकों में मतभेद है। कतिपय ऐतिहासिक इसे गुप्त-सम्राट् चन्द्रगुप्त-प्रथम मानते हैं। इस मत के समर्थक फ्लीट और डॉ. कृष्ण-स्वामी आयंगर हैं।

विन्सेन्ट स्मिथ और डॉ. सरकार प्रभृति ऐतिहासिक 'चन्द्र' शब्द से गुप्तवंशीय सम्राट् चन्दगुप्त-द्वितीय को निर्दिष्ट मानते हैं। मेरी भी धारणा है कि प्रस्तुत अभिलेख में प्रयुक्त 'चन्द्र' शब्द गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त-द्वितीय की ओर ही संकेत करता है, क्योंकि वह एक विशाल साम्राज्य का शासक था।[2]

---

१. प्रिंसेप, ज. ए. सो. ६, पृ. ४५१; फ्लीट का. इं. इं., सं. ०६; सरकार पृ. २८०।
२. मे. लौ. स्त., म. ३. सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ....

अनिर्दिष्टनामा कवि छन्द-शास्त्र का एक निष्पात पंडित प्रतीत होता है। श्लोक-त्रय १६ अक्षर वाले शार्दूलविक्रीडित जैसे दीर्घकाय छन्द में निबद्ध है। पद्य में रूपक[1], उत्प्रेक्षा[2], उपमा[3] की छटा मनोहारिणी है। वह कविकर्म में निपुण प्रतीत होता है।

तृतीय पद्य के अंतिम चरण में प्रयुक्त 'प्रान्शु' शब्द चिन्त्य प्रतीत होता है। बाह्लीक शब्द यहाँ 'बाह्लिक' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सम्भवतः यह छन्दोनुरोध से प्रयुक्त किया गया है।

'धावेन' शब्द भी विचारणीय है। इसका एक अर्थ 'पवित्र विचार वाला' बताया जाता है। यहाँ यह धातव्य है कि पंजाब में 'धवन' एक उपाधि भी है।[4]

## कुमारगुप्त-प्रथमकालीन बिलसड स्तम्भ-अभिलेख
## गुप्तसंवत्-९६

उत्तर प्रदेश के एटा मण्डल के अन्तर्गत बिलसड नामक गाँव से प्राप्त एक स्तम्भ पर यह लेख उत्कीर्ण है। इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है। इस अभिलेख की एक विशेषता यह है कि इस वर्ग के इतर अभिलेखों की तुलना में इसकी मात्राएँ अधिक लम्बी परिलक्षित होती हैं।

अभिलेख संस्कृत भाषा में है। एकाध स्थलों में प्राकृत का प्रभाव भी स्पष्टरूपेण दृष्टिगत होता है। इसका समय ४१५-१६ ई. सन् माना जाता है।

भगवान् कार्तिकेय के मन्दिर में ध्रुवशर्मा नामक व्यक्ति के द्वारा प्रतोली, धर्म-सत्र-निर्माण एवं प्रस्तुत अभिलेखांकित विशिष्ट स्तम्भ की स्थापना का वर्णन ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

अभिलेख की प्रथम चार पंक्तियों के नष्टांश के पाठ का पुनर्निर्माण सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रयागस्तम्भ एवं स्कन्दगुप्त के भिटारी स्तम्भाभिलेख की सहायता से किया गया है। अष्टम, नवम, द्वादश एवं त्रयोदश पंक्तियों के कुछ अंश भी नष्ट हैं।

अभिलेख में गुप्तवंशीय श्रीगुप्त, श्रीघटोत्कच, श्रीचन्द्रगुप्त-प्रथम, लिच्छवि दौहित्र समुद्रगुप्त, महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त-द्वितीय, ध्रुवदेवी और महाराजाधिराज कुमारगुप्त का उल्लेख मिलता है।

---

१. वही १. वीर्यानिलै : .....
२. वही म. २. खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपते.....
३. वही म. ३. समग्रचन्द्रसदृशी वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
४. वही-तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना धावेन विष्णौ मतिं... फ्लीट, **कॉ. इ.इं.**, ३, सं ३२; डी. आर. भण्डारकर, **ज.ब.ब्रां. रो.ए.सो.** १०, पृ. ३६; सरकार, **से इं.** पृ. पाण्डेय **हि, इ.** पृ ८०; दिसकलकर, **से.इं.** पृ. १७-२२

१३ पंक्तियों के इस गद्य-पद्यमय अभिलेख में रूपक[1] एवं उपमा[2] स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

अन्त में पद-द्वय मिलते हैं, जिनमें प्रथम पद्य स्रग्धरा छन्द में है और द्वितीय शार्दूलविक्रीडित छन्द में।

अभिलेख की भाषा सरल एवं स्वाभाविक है।[3]

## ४३. कुमारगुप्त-प्रथम का मन्दसौर-अभिलेख
## मालव संवत् ५२६

मध्यप्रदेश के मन्दसौर नगर (प्राचीन ग्वालियर राज्य) मे शिवना नदी के एक घाट के मंदिर की भित्ति में संलग्न प्रस्तर खण्ड पर यह अभिलेख अंकित है। यह प्रस्तर-खण्ड उस मन्दिर से विस्थापित कर वर्तमान स्थान पर स्थिरीकृत है।

इस अभिलेख की लिपि दक्षिण ब्राह्मी है। यह पंचम शताब्दीय पश्चिम मालवा लिपि का उत्कृष्ट रूप माना जाता है। इसकी भाषा संस्कृत है।

प्रस्तुत अभिलेख का उद्देश्य लाट प्रदेश के दशपुर (मन्दसौर) रेशमी बुनकरों के आकर निवास, उनके द्वारा सूर्य-मन्दिर का निर्माण आगे चलकर इसी मन्दिर के जीर्णोद्धार का वर्णन करना है।

इसका समय मालव संवत् ४९५ और ५२९ ४३६ और ४७६ ई.सं. है। ४४ पद्यों का यह अभिलेख वत्सभट्टि के द्वारा विरचित है। इस अभिलेख में कुमारगुप्त प्रथम का उल्लेख मिलता है।[4] कुमारगुप्त ने राजा विश्वकर्मा को राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया।[5] उसके बाद उसका आत्मज बन्धुवर्मा राजा हुआ।[6] इसके सुचारु शासन के फलस्वरूप ही ही पट्टवायश्रेणी राजाज्ञा से भगवान् भानु के भव्य भवन का निर्माण कर सकी।[7] जहाँ तक ऐतिहासिक तथ्यों का प्रश्न है, प्रस्तुत अभिलेखों में उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कोई विशेष ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

साहित्यिक दृष्टि से यह अभिलेख अतिमहत्त्वपूर्ण है। अभिलेख वैदर्भी रीति का एक सुन्दर उदाहरण है। कवि ने अभिलेख को संवारने और सजाने का अथक प्रयास किया है।[8]

---

१. **वि. स्तू. अभि.** पं. १० स्वर्ग-सोपान (ख) पाश
२. वही, कोबेरच्छन्दाबिम्बां स्फटिकमणिदलाभास-गौरां प्रतोलीम्।
३. संदर्भ-कनिंघम, **आ.स.इ.**, २, पृ. १६ फ्लीट **को. इ.इ.**, ३, सं. १० ; सरकार, **सं. ई.**, पृ. २९५;
४. **म.शि.** पं. २३ कुमारगुप्त ...प्रशस्ति
५. वही प. २४ रणेषु यः पार्थसमानकर्मा बभूव गोप्तां नृप विश्ववर्मा।।
६. वही पं. २६ तस्यात्मजः....बन्ध्वर्तिहर्ता नृपबन्धुवर्मा द्विड् (दृ) प्त पक्ष क्षपणैकदक्षः
७. वही पं. २९, तस्मिन्नेव....बन्धुवर्मण्युदारे.... श्रेणी भूतैर्भवनमतुलं कारितं दिनकरस्य
८. **म.शि.** प. ३३

जहाँ तक अलङ्कारों का प्रश्न है, शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार दोनों का मनोरम प्रयोग परिलक्षित होता है। शब्दालङ्कार में अनुप्रास का विशेष प्रयोग हुआ है।[1]

अर्थालङ्कार में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अधिकांशतः प्रयुक्त हुए हैं। निम्नलिखित पद्य में उपमा की छटा प्रशंसनीय है-

**चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।**
**तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र।।१०।।**

इस पद्य पर कालिदासकृत 'मेघदूत' के उत्तरमेघ के प्रथम पद्य की स्पष्ट छाप दिखायी पड़ती है।

अधोलिखित पद्य साङ्गरूपक का एक मनोरम उदाहरण है-

**चतुःसमुद्रान्तविलोलमेखलां सुमेरुकैलासबृहत्पयोधराम्।**
**वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति।।२३।।**

इसी प्रकार निम्नलिखित पद्य में कविकल्पित उत्प्रेक्षा की कमनीयता सहज ही प्रशंसनीय है-

**अत्युन्नतमवदातं नभः स्पृशन्निव मनोहरैः शिखरैः।**
**शशिभान्वोरभ्युदयेष्वमलमयूरवायतनमभूतम् ।।३८।।**

यहाँ मन्दिर मन्दिर नहीं है, बल्कि शशि-रवि के उदयकालीन रश्मिपुंज का विश्रामस्थल हो।

कवि की छान्दस निपुणता विशेष रूप से अवलोकनीय है। यहाँ कुल बारह छन्दों- शार्दूलविक्रीडित पद्य-२, (वसन्ततिलका) प. ३, ५-६, ११, १४, १८, २०, २२, २५, २७, ३०-३२, ४० (आर्या) ४, १३, २१, ३३, ३८-३९), उपेन्द्रवज्रा (७-९, २४), उपजाति (१०, १२, २८), द्रुतविलम्बित (१५) हरिणी (१६), इन्द्रवज्रा (१७, २६) मालिनी (१९, ४३), वंशस्थ (२३), मन्दाक्रान्ता (२६) और श्लोक (३४-३७, ४४) का प्रयोग किया गया है। संभवतः वसन्ततिलका कवि का सर्वप्रिय छन्द है, जिसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।

पद्य-द्वय ३३ और ३९ में आर्या छन्द में यतिभङ्ग दोषभी दृष्टिगोचर होता है।[2] कालिदास के अतिरिक्त प्रस्तुत अभिलेख पर वासवदत्ता और बृहत्संहिता की छाप भी

---

१. वही, प. ६, ७, १९, २५ ३३ आदि
२. द्र. से. इ. पृ. ३००

परिलक्षित होती है।[1] कवि की वर्णन शैली प्रभावोत्पादक है। शिशिर का वर्णन (पं. ४-१३) कालिदास के ऋतुसंहार से साम्य रखता है।

यह स्रग्धरा छन्द में निबद्ध तीन पद्यों का है। भाषा सरल है एवं स्वाभाविक है। प्रथम पंक्ति में अष्टपदों का एक समस्त-पद है। छेकानुप्रास[2], वृत्त्यनुप्रास[3] एवं श्रुत्यनुप्रास[4] के एक-दो उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। यत्र-तत्र उपमा[5] और रूपक[6] स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। अभिलेख का द्वितीय पंक्ति में प्रयुक्त 'वंश' (व्रन्श) शब्द[7] उत्कीर्णकर्ता के प्रमादवश हो गया है।'

## स्कन्दगुप्त का जूनागढ़- प्रस्तराभिलेख
## गुप्त-संवत् १३६-१३८

प्रस्तुत अभिलेख गुजरात स्थित जूनागढ़ पर्वत पर उत्कीर्ण है। स्कन्दगुप्त के अभिलेखों में इसका स्थान विशिष्ट है क्योंकि इसमें उसके शासन-काल की प्रधान घटनाओं की ओर संकेत मिलता है। इसी शिला पर सम्राट् अशोक के १४ अभिलेख एवं रुद्रदामन् का अभिलेख भी अंकित है। नयी दिल्ली के संग्रहालय के मुख्यद्वार के सामने यह स्थापित है।

अभिलेख की लिपि दक्षिणवर्ग की ब्राह्मी है। फ्लीट ने इसका नाम पंचम शताब्दीय सौराष्ट्री अथवा काठियावाड़ी दिया है। इसके अक्षर रुद्रदामन् के अभिलेखाक्षरों के विकसित रूप माने जाते हैं।

स्कन्दगुप्त के द्वारा सुराष्ट्र के गोप्ता के रूप में पर्णदत्त की नियुक्ति एवं उसके पुत्र चक्रपालित के द्वारा सुदर्शन झील के भग्न बांध का संस्कार एवं एक विष्णु-मन्दिर के

---

१. म. शि., प. १३-रहसि कुचशालिनीभ्यां प्रीतिरतिभ्यां स्मराङ्गमिव।।
तुल. वासव.-रेवया प्रियतमयेव प्रसारितवीचिहस्तयोरुपगूढः। बृ.सं.-रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयोपगूढम्।
संदर्भ-फ्लीट **का. इं.इं.**, ३, सं. ८१, अ.; सरकार **से.इं.** पृ. २६६; पाण्डेय, **हि.लि. इं.**, पृ. ८४, जगन्नाथ **ज. इं., हि.**, १८, पृ. ११८ ; दशरथपाण्डेय **इं.क.** ६, पृ. ११०; दिसक्लकर, **से.सं. दू.** पृ. ६१-७७

२. **क. स्त. अ.**, पं. १० श्रेयोऽत्यर्थं भूतभूत्यै पथि...।

३. वही पं. पुण्यस्कन्धं स चक्रे जगदिदमखिलं....।

४. वही पं. १२, शैलस्तम्भ : सुचारु गिरिवर...।

५. वही पं. ३, राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशत-पतेः स्कन्दगुप्तस्य...

६. वही पं. ५ ख्यातेऽस्मिन् ग्रामरत्ने कुकुभ इति...।

७. वही पं. २, गुप्तानां वंशजस्य...।
संदर्भ-फ्लीट का. इं.इं., ३, सं. १५; सरकार सं. इं., पृ. ३१६; पाण्डेय, हि. स्मि. क्वा. २२, पृ. २६८।

निर्माणका उल्लेख ही इस अभिलेख का उद्देश्य प्रतीत होता है। अभिलेख का समय १३६-१३८ गुप्त स. माना जाता है।

प्रस्तुत अभिलेख में ३६ पद्य हैं, जिनमें ६ पद्य (२४, २५, ३०, ३१, ३२, ३५, ३६, ३८, ३६) यत्र-तत्र खण्डित हैं। मंगलाचरण में विष्णु की जय मनायी गयी है। तत्पश्चात् कुमारगुप्तात्मज राजाधिराज स्कन्दगुप्त का वर्णन मिलता है। स्कन्दगुप्त ने मान और अहंकार से युक्त सर्प-सदृश दुर्दम्य राजाओं को अपने वश में किया था। वह राजकीय गुणों का भण्डार स्वरूप था। उसकी सम्पत्ति विपुल थी। पिता के देहावसान के बाद वह चतुःसमुद्र मेखलायुक्त पृथिवी का एकाधिपति हुआ। उसके गुणों से वशीभूत होकर राजलक्ष्मी ने उसके अन्य भाइयों का परित्याग कर उसे ही पति के रूप में वंरण कर लिया था। शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के हेतु उसने सभी प्रदेशों में राज्यपालों की नियुक्ति की और इसी प्रकार सुराष्ट्र के लिए सर्वगुणसम्पन्न शासक की खोज करने लगा और अन्ततः पर्णदत्त को सुराष्ट्र के राज्यपाल के पद पर नियुक्त कर निश्चिन्त हो गया। स्कन्दगुप्त सुराष्ट्र के शासक के लिए विशेष चिन्तित था। ऐसी संभावना की जा सकती है कि भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित यह प्रदेश है जिधर से प्रायः हूण-आक्रमण से देश त्रस्त होता रहा होगा। कालान्तर में पर्णदत्त ने विश्व के सभी गुणवान् पुरुषों के लिए उपमान-स्वरूप चक्रपालित नामक अपने पुत्र को स्वराष्ट्र का राज्यपाल नियुक्त किया। चक्रपालित यथासम्भव धर्म, अर्थ और काम का सेवन कर ही रहा था कि एक दिन वर्षा-ऋतु में अनवरत घनघोर वर्षा हुई, जिसके फलस्वरूप गुप्तवंश के १३६वें वर्ष के भाद्रपद की षष्ठी की रात में सुदर्शन झील अकस्मात् टूट गयी और जलाधिक्य के कारण वह विशाल सागरवत् दिखायी पड़ने लगी। पितृभक्त चक्रपालित ने नृप एवं नगर के कल्याणार्थ दो महीने के अथक प्रयास से ज्येष्ठ-कृष्ण प्रतिपद को अगणित सम्पत्ति को व्यय कर सुदर्शन झील को सदा के लिए प्रतिसंस्कृत कर दिया। झील की बांध के प्रतिसंस्कार का समय ४५६ ई. माना जाता है।

इस अभिलेख का कवि अज्ञात है। काव्य की दृष्टि से इसका वैशिष्ट्य प्रतीत होता है। काव्य में प्रवाह अवश्य ही है। कवि की छन्दो-योजना दर्शनीय है। ३६ पद्यों के इस अभिलेख में इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मालिनी, वसन्ततिलका, उपजाति एवं आर्या-छः छन्द प्रयुक्त हैं। उपजाति का प्रयोग सर्वाधिक (चौदह पद्यों में) हुआ है।

जहाँ तक अलंकारों की बात है, शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों ही उपलब्ध होते हैं। शब्दालंकार के अन्तर्गत अनुप्रास की छटा सर्वत्र दिखायी पड़ती है-ष्णु-ष्णु, त्या-त्या, क्त-क्त, स्म-स्म, एषु-एषु, आन्-आन्।[1]

१. जू.प्र. पृ. ३, पृ. ६, पृ. ११

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त[1] के भी उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। जिस प्रकार पश्चिम दिशा में वरुण को नियुक्त कर देवगण संतुष्ट हो गए, उसी प्रकार पर्णदत्त को पश्चिम दिशा का शासक नियुक्त कर राजाधिराज स्कन्दगुप्त कृतकृत्य हो गए-

**नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां, स्वस्था यथा नोन्मनसो बभूवुः।**
**पूर्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाऽभूत्।।३।।**

प्रस्तुत उपमा अति रमणीय प्रतीत होती है-

रूपक का भी एक उदाहरण देखा जा सकता है-

**तदनु जयति शश्वत् श्रीपरिक्षिप्त-वक्षाः**
**स्वभुजजनित-वीर्यो राजराजाधिराजः।।**
**नरपति भुजगानां मानदर्पोत्फणानां**
**प्रतिकृतिगरुडा (ज्ञां) निर्विषी (०) चावकर्ता।।२।।**

राजा, राज-मस्तक और प्रतिकार पर क्रमशः सर्प, फण एवं गरुडाज्ञा का क्रमशः आरोप है। निम्नलिखित उत्प्रेक्षा की प्रशंसा किए बिना कोई भी प्राठक नहीं रह सकता-

**अवेक्ष्य वर्षागमणं महोद्गमं महोदधेरूर्जयता प्रियेप्सुना।**
**अनेकतीरान्तजपुष्प-शोभितो नदीमयो हस्त इव प्रसारितः।।२६।।**

असके अतिरिक्त अनन्वय[2] का भी उदाहरण मिलता है।

यत्र-तत्र समासगत दोष,[3] और वाक्यगत दोष[4] भी दृष्टिगोचर होते है।

यदा-कदा एक-दो समस्त-पद भी दिखायी पड़ते हैं। सरल लघुकाव्य पद-विन्यास से व्यक्त प्रसादगुण की छटा से वेदर्भी रीति की प्रतीति होती है।

अभिलेख के अन्त में कवि ने 'इति सुदर्शनतटाकसंसकार-ग्रन्थ रचना समाप्त' लिखा है। ३६ पद्य के कलेवर-विशिष्ट अभिलेख को कवि ने ग्रन्थ की संज्ञा दी है। संदर्भ-फ्लीट, का.इं.इं., ३, संख्या-१३; सरकार, से.इं., पृ. ३२१; पाण्डेय, हि.भि.इं., पृ. ६६, उपेन्द्रठाकुर, इ.हि.भ्वा., ३७, पृ. २७६-८६; जगन्नाथ, इं.हि.क्वा., २२, पृ. ११२; ए.म. ओ.रि.इ. (१६६८), स्वर्ण-जयन्ती खण्ड, पृ. ३२५-२७; दशरथ शर्मा, ग.इ.हि., ४३, भा. १, पृ. २१६-२५।

---

१. वही, पृ. २५
२. जू.प्र. पृ. १, पृ. १६
३. नैकानहोरात्रगणान् स्वमत्या ....
४. वही क २३ संरंज्यां च प्रकृतीर्बभूव..

## स्कन्दगुप्त का भितरी-स्तम्भ-अभिलेख

उत्तर प्रदेश के गाजीपुर मण्डल में सयीदपुर (सैदपुर) के निकट भितरी गाँव के बाहर एक स्तम्भ पर प्रस्तुत लेख अंकित है।

यह उत्तरी ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं जो चन्द्रगुप्त-द्वितीय के मथुरा अभिलेख के समान परिलक्षित होती है।

अभिलेख का उद्देश्य स्कन्दगुप्त (४५५-६७ ई. सं.) के द्वारा भगवान् शाङ्गीं (विष्णु) की मूर्त्ति और प्रस्तुत स्तम्भ की स्थापना का उल्लेख करना है। साथ ही, इस मन्दिर के निमित्त भितरी गाँव के दान की चर्चा भी आवश्यक प्रतीत होती है।

अभिलेख के आरम्भ में पाँच पंक्तियों में गुप्तवंशीय नृपों-श्रीगुप्त से लेकर कुमारगुप्त पर्यन्त का नामतः उल्लेख है। तदुपरान्त स्कन्दगुप्त का सुललित वर्णन आरम्भ होता है जो बारहवीं पंक्ति तक चलता है। पंक्ति १४, १६ एवं १७ में यत्र-तत्र कतिपय अक्षर विलुप्त हो गए हैं। प्रथम पाँच पंक्तियाँ गद्य-पद्य हैं।

पञ्चम पंक्ति के बाद १२ पद्य हैं जो विभिन्न छन्दों में निबद्ध हैं।[१], पंचम पंक्ति के अभिलेख की भाषा प्रांजल है। समस्त-पद मिलते हैं, परन्तु छोटे-छोटे। सबसे बड़ा समस्तपद 'महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्य' १४ अक्षरों का है ![२] शब्दालङ्कार में अनुप्रास (वृत्ति तथा छंद)[३] एवं यमक[४] दृष्टिगोचर होते हैं। अर्थालङ्कार में मात्र उपमा की रमणीयता प्रशंसनीय है।[५] संदर्भ-फ्लीट, का.इं.इं., ३, संख्या-१३; सरकार, से.इं., पृ. ३२१; पाण्डेय, हि.भि. इं., पृ. ६६, उपेन्द्रठाकुर, इ.हि.क्वा., ३७, पृ. २७६-८६; जगन्नाथ, इं.हि.क्वा., २२, पृ. ११२; ए.म.ओ.रि.इ. (१९६८), स्वर्ण-गायत्री खण्ड, पृ. ३२५-२७; दशरथ शर्मा, ग.इ.हि., ४३, भा. १, पृ. २१६-२५।

## सकन्दगुप्तकालीन कहाऊँ-स्तम्भ-अभिलेख

## गुप्तसंवत् १४१

उत्तरप्रदेश के गोरखपुर मण्डलान्तर्गत कहाऊँ (या कहवें) गाँव के समीप उत्तर दिशा में अवस्थित स्तम्भ पर यह लेख अंकित है। इसकी लिपि भी उत्तर ब्राह्मी है। यह समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ अभिलेख की लिपि से मिलती-जुलती है।

---

१. (भि.स्त., पुष्पिताग्रा (प. १) मालिनी (२-६), शार्दूलविक्रीडित (पं. ७-८), श्लोक (९-१२)
२. वही, पं. ६
३. वही, क प्रथित-पृथुमति-स्वभाव-शक्तः पृथुयशसः पृथिवीपतिः पृथु-श्री। (वृत्यनुप्रास) ख) पं. ७ .... पितृ-परिगत-पाद-पद्मवर्ती .... (छेकानुप्रास)
४. वही, पं. ६-विनय-बल-सुनीतै विक्रमेण क्रमेण .....
५. वही, पा.टि. ३(ख) और पृ. ६ जितमिति परितोषान्मातरं सास्रनेत्रां हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः।

मद्र नामक व्यक्ति के द्वारा पंच आदिकर्त्ता जैन तीर्थङ्करों की मूर्तियों एवं प्रस्तुत स्तम्भ की स्थापना का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है। अभिलेख का समय ४६० ई. सं. है।

यह स्रग्धरा छन्द में निबद्ध तीन पद्यों का है। भाषा सरल एवं स्वाभाविक है। प्रथम पंक्ति में अष्टपदों का एक समस्त पद है। छेकानुप्रास,[1] वृत्यनुप्रास[2] एवं श्रुत्यनुप्रास[3] के एक-दो उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। यत्र-तत्र उपमा[4] (वही, पं. राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप-शत-पतेः स्कन्दगुप्तस्य) और रूपक[5] स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। अभिलेख की द्वितीय पंक्ति में प्रयुक्त 'वन्श' (वंश) राजवंशज शब्द चिन्त्य है। सन्दर्भ-फ्लीट का.इं. इं., ३, सं. ७५, सरकार, से.ई., पृ. ३१६; पाण्डेय, हि.लि.इ., पृ. ६२, इ.हि.क्वा., २४, पृ. २६८।

## कुमारगुप्त-द्वितीय का भितरी-मुद्रालेख

उत्तर प्रदेश के गाजीपुर मण्डल के भितरी ग्राम में एक भवन की नींव की खुदाई के क्रम में उपलब्ध एक मुद्रा पर यह अभिलेख अंकित है।

इसकी लिपि पंचम-षष्ठ शताब्दी की उत्तरी ब्राह्मी लिपि है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसका समय ४७३ ई. सं. है।

आरम्भ से लेकर कुमारगुप्त-द्वितीय तक के गुप्तवंश की वंशावली का उल्लेख ही मुद्रालेख का उद्देश्य है।

अभिलेख-पत्र आठ पंक्तियों का है। सभी पंक्तियाँ प्रायः समान लम्बाई की हैं। वंशारंभ महाराज श्रीगुप्त से होता है। इसके बाद महाराज घटोत्कच, चन्द्रगुप्त-प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त-द्वितीय, कुमारगुप्त, पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त एवं परम भागवत[6] कुमार-गुप्त-द्वितीय का उल्लेख मिलता है।

प्रायः सभी राजाओं की रानियों के नाम भी उल्लिखित हैं। सच पूछा जाय तो यह मुद्रालेख-मात्र नहीं है, वरन् गुप्तसाम्राज्य का एक लघु इतिहास ही है। संदर्भ-गुप्त, आ. स.इ.ऐ.रि., १९१४-१५, पृ. १२४-२५; सरकार सं.इ., पृ. ३३१, पाण्डेय, हि.लि.इ, पृ. १०३; इ.हि.क्वा. १६, पृ. ११९ अ. और पृ. २७२।

---

१. क. स्त. ७५०, पृ. १०, श्रेयोऽत्यर्थं भूतभूत्यै पथि ....।
२. वही, पृ. ९ पुण्यस्कन्धं स चक्रे जगदिदमखिलं ....।
३. वही, पं. १२ शैलस्तम्भः सुचारुर्गिरिवर ....।
४. वही ५ ख्यातेऽस्मि ग्रामरत्ने ककुभ इति ....।
५. **भि.मु.लखे.** पं. ३ (देव्या) मु (त्प) न्न परमभागवतो महाराजाधिराज श्रीकुमार (ा) गुप्तः।
६. **से.ई.**, पृ. ३३१ पा.टि. १.

## बुद्धगुप्त-कालीन सारनाथ बौद्ध-प्रतिमा अभिलेख
## गुप्त संवत् १५७ (= ४७६ ए.डी.)

उत्तरप्रदेश के काशीनगर के निकट सुप्रसिद्ध बोद्धतीर्थ स्थल सारनाथ से उपलब्ध एक बुद्धमूर्त्ति के नीचे यह अभिलेख उत्कीर्ण है। इसकी लिपि ब्राह्मी है।

अभिलेख का उद्देश्य भिक्षु अभयमित्र के द्वारा भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति की स्थापना का उल्लेख करना है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है, जो सरल एवं रोचक प्रतीत होती है।

बोद्ध परम्परा के अनुसार बुद्धगुप्त उस क्षेत्र, जिसके अन्तर्गत नालन्दा भी सम्मिलित था, का शासक था। भ्रान्ति के फलस्वरूप बुद्ध को बुध और शक्रादित्य को महेन्द्रादित्य (कुमारगुप्त-प्रथम) मान लिया गया। इस प्रकार बुधगुप्त कुमारगुप्त-प्रथम का आत्मज माना गया। परन्तु, इधर कतिपय प्रमाण ऐसे मिले हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि बुधगुप्त पुरुगुप्त का पुत्र और कुमारगुप्त प्रथम का पौत्र था।[1]

अभिलेख का कलेवर मात्र पद्य-चतुष्टय का है। ये पद्य अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं। ये अनुप्रास[2] चित्रवि (न्या) स-चित्रिताम्।।) की छटा से भी आप्लावित है। संदर्भ-गुप्त, आ. स.इ.ऐ.रि, १९१४-१५, पृ. १२४-२५; सरकार सं.इ., पृ. ३३१, पाण्डेय, हि.लि.इ, पृ. १०३; इ.हि.क्वा. १६, पृ. ११६ अ. और पृ. २७२।

## गुप्तराजाओं के समकालीन एवं अधीनस्थ उत्तरभारतीय राजाओं के अभिलेख
### (क) मध्यभारत के हूण-राज का शिलालेख ४८ मिहिरकुल का ग्वालियर अभिलेख शासनवर्ष-१५ (प्रायः ५१५-४५ ए.डी.)

मध्यप्रदेश के ग्वालियर के दुर्ग में निर्मित सूर्य-मन्दिर की भित्ति में संलग्न एक प्रस्तरखण्ड पर यह अभिलेख अंकित है। सम्प्रति यह इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता में संरक्षित है।

इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है, जो तोरमाण के एरण अभिलेख से साम्य रखती है। इसकी भाषा संस्कृत है। मातृचेट नामक एक व्यक्ति के द्वारा गोप पहाड़ी पर (जहाँ वर्त्तमान दुर्ग अवस्थित है) एक सूर्यमन्दिर के निर्माण का उल्लेख करना ही प्रस्तुत अभिलेख का उद्देश्य है। अभिलेख का समय मिहिरकुल के शासनकाल का १५वाँ वर्ष है।

अभिलेख में कुल १३ पद्य हैं। ये मालिनी (१.२), आर्या (३-१२), और शार्दूलविक्रीडित (१३) छन्दों में निबद्ध हैं। पद्य, २, ४, १०, और १२ के कुछ अंश लुप्त हो गए हैं। ऐसा

१. बु.गु.सा.बु.प्र.प्र. क १, गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे। शतं समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति।। ख) प. ३ इमामुद्दण्ड-सच्छत्र-पद्मास (न) विभूषितां ताम् (देवपुत्रवतोदिव्यां)

२. मि.ग्वा.अ., प. २, भवन-भवन-दीपः शर्वरी-नाश-हेतुः।

प्रतीत होता है कि कवि को आर्या छन्द अधिक रुचिकर प्रतीत होता था। अभिलेख की भाषा सरल और प्रवाहमयी है। अलङ्कारों में शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार दोनों ही दृष्टिगोचर होते हैं। शब्दालङ्कार में अनुप्रास की छटा सर्वत्र दिखाई पड़ती है।[1] अर्थालङ्कार में उपमा[2] और रूपक[3] भी इसकी शोभा-वृद्धि कर रहे हैं।

लघु समस्त-पद प्रायः प्रत्येक पाद में है। पुनरपि अर्थ-प्रतीति में कोई कठिनाई नहीं होती। पद्य ६ में तो पूर्वार्ध में ६ पदों का एक समस्त-पद है।[3] राजेन्द्र लाल मिश्र ज.ए. सो.हं. ३०, पृ. २६७; फ्लीट, कॉ.इं.इं., ३, सं. ३७; सरकार, से.इ.,पृ. ४२४; पाण्डेय हि.लि.ड., पृ. १३६।

**मध्य-प्रदेश के देशज राजाओं के अभिलेख**

**१. उत्तरी क्षेत्र**

**परिव्राजक वंश**

**४६. महाराज संक्षोभ का खोह-ताम्रपट्ट अभिलेख**

गुप्त संवत् २०६ (= ५२६ ए.डी.)

मध्यप्रदेश के सतना-मण्डल के खोह गाँव की निकटवर्ती घाटी से उपलब्ध ताम्रपट्ट-द्वय पर यह अभिलेख अंकित है। इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है एवं इसकी भाषा संस्कृत है।

अभिलेख का उद्देश्य छोड्डुगोमी नामधारी एक व्यक्ति की विज्ञप्ति पर महाराज संक्षोभ के द्वारा ओपाणि गाँव में अवस्थित देवी-मन्दिर के निमित्त ग्रामार्ध के दान का उल्लेख करना है।

पूर्ववर्ती नौगढ़ राज्य में ही खोह गाँव स्थित है। महाराज संक्षोभ परम वैष्णव थे।[4] प्रथम ताम्रपट्ट में १२ गद्य-पंक्तियाँ हैं एवं दूसरे पट्ट में ५ गद्य-पंक्तियाँ हैं। आरम्भ में ८ पंक्तियों (४-११) में महाराज संक्षोभ के वंशादि का वर्णन है। तत्पश्चात् उनके प्रथम दान की चर्चा है। इसके उपरान्त चार पद्य मिलते हैं, जो श्लोक (पद्य १-३) एवं उपजाति (पद्य-४) में निबद्ध हैं।

पद्यों का विषय धर्मशास्त्रीय है। यहाँ भूमिदान की महत्ता तो निर्दिष्ट की ही गयी है, परन्तु भूमिदान की अपेक्षा उसका परिपालन अधिक श्रेयस्कर[5] होता है, यह भी बताया गया है। इसी क्रम में व्यास, युधिष्ठिर और सगर का नामोल्लेख मिलता है।

---

१. वही क प. ११ ये कारयन्ति भानोश्चन्द्रांशु-सम-प्रभं गृहप्रवरम्। (ख) प. १३ यावच्चोशंस नील-नीरद-निभे विष्णु र्विभर्त्युज्ज्वलांश्रीः ...।

२. वही, प. ६ शशिरश्मिहास-विकसित-कुमुदोत्पल-गन्ध-शीतलामोदे ...।

३. वही, द्र.पा.टि. ३

४. खो. ता. अ., पं. १ ओम् नमो भगवते वासुदेवाय।

५. वही पं. १६ "महीम्महिमता (ं) श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो (ऽ) नु-पालनः (नम्)

गद्य-पद्य की भाषा सरल है। छोटे-छोटे समस्त पद मिलते हैं। अर्थाभिव्यक्ति में काठिन्य की प्रतीति नहीं होती है। संदर्भ :- फ्लीट, कॉ.इं.इं., ३, सं. २५; सरकार, से. इं., पृ. ३६४, पाण्डेय, हि.लि.इं. पृ. १०६ २) **दशपुर (मंदसोर) के औलिकर-वंशीय-नृप**

**५०. यशोधर्मन् का मन्दसौर प्रस्तर-अभिलेख मालव-संवत् ५८९ (= ५३२ ए.डी.)**

मध्यप्रदेश के मन्दसोर दुर्ग के पूर्वी द्वार के समीप कूप में संलग्न चतुष्कोण प्रस्तर-खण्ड पर यह अभिलेख अंकित है।

इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है। यह यशोधर्मन् के मन्दासौर स्तम्भ-अभिलेख की लिपि से बहुत साम्य रखता है। इसकी भाषा संस्कृत है।

इस अभिलेख का उद्देश्य अमात्य धर्मघोष के अनुज दक्ष के द्वारा एक कूप-निर्माण का उल्लेख करना है। अभिलेख में यशोधर्मन् का इतर नाम विष्णुवर्धन् भी है। अभिलेख का समय ५३२ ई. सं. है।

मालवा का शासक यशोधर्मन् औलिकर-वंशीय था। उसका उपनाम विष्णुधर्मन् था। उसने राजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की। उसने राज्य की देखभाल के लिए कतिपय शासकों को नियुक्त किया था। उसके पूर्ववर्ती राजाओं का एक प्रिय सेवक षष्ठिदत्त था, जिसके तीन प्रपौत्र-भवद्दोष, अभयदत्त, दोषकुम्भ थे। अभयदत्त राजा यशोधर्मन् के प्रतिनिधि के रूप में परियात्र से लेकर सिन्धु नदी पर्यन्त के क्षेत्र का शासन करता था। पीछे चलकर उसने अपने भतीजे, दोषकुम्भ के पुत्र, धर्मदोष को राज्य का भार सौंप दिया। इसी धर्मदोष के अनुज 'दक्ष' ने एक 'निर्दोष' नामक कूप का निर्माण मालवसंवत् ५८९ के बीत जाने पर करवाया और स्वर्गवासी अपने चाचा अभयदत्त की पावनस्मृति में कूप का विशाल एवं रमणीक जगत बनवाया। यहीं पर यह अभिलेख कूप-लेख के नाम से प्रसिद्ध है। प्रशस्ति के लेखक का नाम गोविन्द है।

यह तो सर्वविदित घटना है कि गुप्तकाल में भारतवर्ष पर हूणों और शकों का आक्रमण सतत होता रहा और उन लोगों ने गुप्तसाम्राज्य की शक्ति पर अत्यधिक आघात भी पहुँचाया, लेकिन स्कन्दगुप्त के भुजबल के सामने उन्हें वापस लौटना ही पड़ा। पुनः पाँचवी शताब्दी के अन्त में 'तोरमाण' ने गुप्तसाम्राज्य पर विशाल आक्रमण किया और गुप्तसाम्राज्य को कुचलकर मध्यभारत तक अपना अधिकार कर लिया। इस अभिलेख के ५-६ पद्यों में ऐसा उल्लेख है कि यशोधर्मन् ने संग्राम में भूमण्डल को जीत लिया था। यह संभवतः तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल पर यशोधर्मन् की विजय की ओर संकेत करता है।

## ५१. गुप्तोत्तर-कालीन अभिलेख ईश्वरवर्मन् का जौनपुर अभिलेख

उत्तरप्रदेश के जौनपुर नगर के जामामस्जिद के दक्षिण द्वार के ऊपर एक प्रस्तरखण्ड पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है। यह उत्तरी ब्राह्मी लिपि में अंकित है। इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है। एकाध स्थलों पर प्राकृत का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

अभिलेख का उद्देश्य मौखरि-नरेश ईश्वरवर्मन् का वर्णन करना ही है। प्रसंगतः धारा नगरी, आन्ध्रकुल, सुराष्ट्र प्रदेश और रैवतक पर्वत का नाम भी दिखायी पड़ता है।

अभिलेख की भाषा प्रवाहपूर्ण है। यहाँ छः पदों का एक समस्त-पद भी उपलब्ध होता है,[1] पुनरपि अर्थाभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। अनुप्रास की छटा भी प्रशंसनीय है।[2] अनुप्रास के अतिरिक्त यमक अलङ्कार भी सहज ही सुशोभित हो रहा है।[3] षष्ठ पंक्ति में पादान्त में "सिंहसन" की जगह "सिंहासनम्" पाठ उचित प्रतीत होता है।[4]

अभिलेख में कुल २८ पद्य हैं। प्रथम श्लोक-चतुष्टय में भगवान् शङ्कर की बड़ी मनोहारिणी स्तुति है। कवि की छन्दो-योजना प्रशंसनीय है। अभिलेख में-पुष्पिताग्रा (प.-१), शिखरिणी (प. २, २३), मालिनी (प. ५, ११, १३, १७, १८, २०, २१, २२, २६, २८), उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा-४, १२), वसन्ततिलका (६, ७) स्रग्धरा (८, १०, २७), शार्दूलविक्रीडित (९), इन्द्रवज्रा (१०), श्लोक (१४-१६), आर्या (२१), तथा मन्दाक्रान्ता (२५)-कुल ११ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। ग्यारह पद्यों में मालिनी का प्रयोग हुआ है। संभवतः यह कवि का अत्यधिक प्रिय छन्द रहा हो।

अलङ्कार के क्षेत्र में अनुप्रास और उपमा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। जिस प्रकार हिमालय पर्वत से गङ्गा का उन्नत और नम्र प्रवाह एवं चन्द्रमा से रेवा नदी का जलसमूह निःसरित हुआ, उसी प्रकार अतिशय महिमामण्डित षष्ठिदत्त से नागर व्यापारियों के विशुद्ध कुल का प्रसार हुआ-

> **हिमवत इव गाङ्गस्तुङ्ग-नम्रः प्रवाहः**
> **शशभृत इव रेवा-वारि-राशि प्रथीयान्। (१)**
> **परमभिगमनीयः शुद्धिमानन्ववायो**
> **यत उदित-गिरिम्णस्तायते नैगमानाम् ।। (२)**

भगवद्दोष का वर्णन कवि ने अनुप्रास-यमक-मिश्रित उपमा के सहारे बड़े ही रुचिकर ढ़ंग से किया है-

> **बहु-नय-विधि-वेधा गह्वरे (ऽ) प्यर्थ-मार्गे**
> **विदुर इव विदूरं प्रेक्षया प्रेक्षमाणः।**
> **वचन-रचन-बन्धे संस्कृत-प्राकृते यः**
> **कविभिरुदितरागं गीयते गीरभिज्ञः।। (१७)**

---

१. जो. अ. पं. ५ ...(कृ) पानुराग-शमित क्रूरागमोपद्रवैः
२. वही, ६ अधिष्ठितं क्षितिभुजां सिंहेन सिंहासनम्।
३. वही, पा.टि. २
४. वही, विन्ध्याद्रेः प्रतिरन्ध्रमन्ध्रपतिना ....

अभिलेख की भाषा प्रवाहमयी है। कवि की वर्णना-शक्ति अनुपम है। श्लोकद्वय में ही मधुमास का बड़ा ही रोचक वर्णन उपस्थित किया गया है। भावानुकूल पद-योजना भी कम प्रशंसनीय नहीं है। यत्र-तत्र पुनरुक्ति-दोष दृष्टिगोचर होता है। पुनरपि कवि कवि-कर्म से सुपरिचित प्रतीत होता है। संदर्भ-फ्लीट, कॉ.इं.इं., ३, सं. ३५, कीलहॉर्न, इं.ऐं., १८, पृ. २२०; २०, पृ. १८८; सरकार, सं.इं., पृ. ४११; पाण्डेय, हि.लि.इं., पृ. १३१; दिसकलकर, सं.सं.इं. पृ. ८४-६५।

## ईशानवर्मन् का हड़ाहा अभिलेख
## विक्रम संवत् ६११ (= ५५४)

उत्तर प्रदेश के बाराबंकी मण्डल में हड़ाहा के समीप एक गाँव से उपलब्ध शिलाखण्ड पर यह अभिलेख अंकित है। आजकल यह लखनऊ संग्रहालय की शोभा-वृद्धि कर रहा है। इसकी लिपि षष्ठ शताब्दीय उत्तरी ब्राह्मी है एवं इसकी भाषा संस्कृत है।

मौखरि-नृप ईशानवर्मन् के सुपुत्र सूर्यवर्मा के द्वारा वन-स्थित एक प्राचीन शिवालय के जीर्णोद्धार का उल्लेख करना ही प्रस्तुत शिलालेख का उद्देश्य है।

कुमारशान्ति के पुत्र रविशान्ति ने इस अभिलेख की रचना की एवं मिहिरवर्मा ने इसे उत्कीर्ण किया।

इसका समय वि.सं. ६११ (=५५४ ई. सं.) है।

अभिलेख का कलेवर २३ ललित पद्यों का है। प्रारम्भ में पद्य-द्वय में भगवान् महादेव की बहुत ही सुन्दर स्तुति है। उसके बाद मौखरि-नरेश हरिवर्मा का उल्लेख मिलता है। उनके बाद उनका पुत्र आदित्य वर्मा राजा हुए। आदित्य वर्मा का पुत्र ईश्वर वर्मा हुआ। ये इन्द्रवत् पराक्रमी थे। ययाति के समान ये यशस्वी थे। इनका पुत्र ईशान वर्मा हुआ और ईशान वर्मा का सुपूत्र सूर्य वर्मा हुआ। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यह अभिलेख मौखरिवंश का एक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करता है।

साहित्यिक दृष्टि से यह अभिलेख अतिमहत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। अनुप्रास की छटा तो प्रायः प्रति पद्य में दृष्टिगोचर होती है। प्रथम पद्य के प्रथम चरण में ही श्रुत्यनुप्रास की मधुर ध्वनि श्रुतिगोचर होती है।

लोकाविष्कृति-संक्षय-स्थिति कृतां यःकारणं वेधसाम्
ध्वस्त-ध्वान्तवयाः परस्त-रजसो ध्यायन्ति यं योगिनः।
यस्यार्द्ध-स्थित-योषितोऽपि हृदये नास्थायि चेतोभुवा
भूतात्मा त्रिपुरान्तकः सः जयति श्रेयःप्रसूतिर्भवः।।१।।

श्रुत्यनुप्रास के अतिरिक्त यहाँ छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास की शोभा भी दर्शनीय है। अर्थालङ्कारों में उपमा के कतिपय सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उदाहरण-स्वरूप यह पद्य-

तस्मात् पयोधेरिव शीत-रश्मि रादित्यवर्मा बभूव।
वर्णाश्रमाचार-विधि-प्रणीतो यं प्राप्य साफल्यमियाय धाता।।६।।

देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मालोपमा का यह उदाहरण भी हृदयावर्जक प्रतीत होता है-

तस्मात् सूर्य इवोदयाद्रि-शिरसो धातुर्गरुत्वानिव
क्षीरोदादिव तर्जितेन्दु-किरणः कान्तप्रभः कौस्तुभः।
भूतानामुदपद्यत स्थितिकरः स्थेष्ठं महिम्नः पदं
राजन्राजकमण्डलाम्बर-शशी श्रीशानवर्मा नृपः।।११।।

विषयानुरूप कवि की शैली बदलती रहती है। निम्नलिखित पद्य में सूर्य वर्मा की वीरता का वर्णन बड़ा ही रोचक प्रतीत होता है।

ज्याघात-व्रण-रूढि-कर्कश-भुजा व्याकृष्टशार्ङ्ग-च्युता-
न्यात्यावाध्य पतत्रिणो रणमुखे प्राणान्मुव्न्द्विषः।
यस्मिन् शासति च क्षितिं क्षितिपतौ जातेव भूयस्त्रयी
तेन ध्वस्त-कलि-प्रवृत्ति-तिमिरः श्रीसूर्यवर्म्मा (ऽ) जनि ।। ६।।

वर्ण्य-वस्तु के अनुरूप यहाँ ओज-गुण-विशिष्ट गौड़ी रीति है। रूपक के अतिरिक्त ऊपर के पद्य में 'कलि-प्रवृत्ति-तिमिर' में रूपकालङ्कार की उपस्थिति की प्रतीति भी होती है। इस प्रकार यहाँ संसृष्टि अलङ्कार की शोभा भी प्रस्फुटित हो जाती है। कवि की उत्प्रेक्षा भी बड़ी ही मनोहारिणी प्रतीत होती है-

यो बालेन्दु-सकान्ति कृत्स्न-भुवन-प्रेयो दधद्यौवनम्
शान्तः शास्त्रविचारणाहित-मनाः पारङ्कलानाङ्गतः।
लक्ष्मी-कीर्त्ति-सरस्वती-प्रभृतयो यं स्पर्धयेवाश्रिता
लोके कामित-कामि-भाव-रसिकः कान्ताजनो भूयसा।। ७।।

पद-शय्या भी रमणीय है। इनके अतिरिक्त संदेहालङ्कार की अवस्थिति भी यहाँ दिखायी पड़ती है।[1]

---

१. ह.अ., प.-७ हुतभुजि मख-मध्यासङ्गिनि ध्वान्तनीलम्
वियति पवन-जन्म-भ्रान्ति-विक्षेप-भूयः।
मुखरयति समन्तादुत्पतद्धूम-जालम्
शिखिकुलमुरुमेधाशङ्कि यस्य प्रसक्तम्।।

कवि का छन्दःशास्त्रीय कौशल भी सहज ही अनुमेय है। २३ पद्यों वाले इस अभिलेख में शार्दूलविक्रीडित (प. १, २, ४, ८, १०-१४, १६-१६) उपगीति २ (प. ३), उपजाति (प. १५), इन्द्रवज्रा (प. ६), मालिनी (प. ७), स्रग्धरा (प. ६, २२), द्रुतविलम्बित (प. १५), वसन्ततिलका (प. २०), अनुष्टुप् (प. २१, २३)- नव छन्दों का प्रयोग हुआ है।

शार्दूलविक्रीडित के साथ-साथ स्रग्धरा जैसे विशालकाय छन्द भी प्रयुक्त है। शार्दूलविक्रीडित का सर्वाधिक प्रयोग (१३ बार) हुआ है। अतः यह कवि का अतिप्रिय छन्द प्रतीत होता है। नृपान्तर के साथ ही प्रायः छन्द में भी परिवर्तन हो जाता है। संदर्भ-हीरानन्द शास्त्री, ए. इं., पृ. ११०-२०; सरकार, सं. इं., पृ. ३८५; दिसकलकर से.सं.ई., पृ. ६६-१०५; दशरथशर्मा, ज.प्रे.रि., मद्रास, ६, १६३५, पृ. ७८-प्र.; जट.पू.सां.इं., २७, भा. १, १६६५, पृ. १०३।

## ५३. शर्ववर्मन् का असीरगढ़ मुद्रा-अभिलेख

यह अभिलेख मूलतः एक मुद्रा पर उत्कीर्ण था जो आज लुप्त हो चुकी है। इसकी प्रतिकृति मध्यप्रदेश के बरहानपुर नगरी से प्रायः १७ किलोमीटर पूर्वोत्तर दिशा में स्थित असीरगढ़-किला में महाराजसिन्धिया की एक पेटिका से उपलब्ध हुयी थी।

इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है जिसकी मात्राएँ लम्बी और लहरिया हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। प्रस्तुत अभिलेख का उद्देश्य मौखरि-नरेश राजा शर्ववर्मन् की वंशावली का उल्लेख करना है।

**इसका समय**-शर्ववर्मन् के वंश का आरम्भ महाराज हरिवर्मा से होता है। इसकी धर्मपत्नी जयस्वामिनि-भट्टारिका देवी से इनके पुत्र श्रीमहाराजादित्य वर्मा हुए। इनकी पत्नी का नाम हर्षगुप्ताभट्टारिका देवी था, जिनसे इनके पुत्र श्रीमहाराजेश्वर वर्मा उत्पन्न हुए। इनकी सहधर्मिणी उपगुप्ता भट्टारिका देवी से महाराजाधिराज श्रीशानवर्मा का जन्म हुआ। इसकी धर्मपत्नी लक्ष्मीवती भट्टारिका थी, जिनकी कोख से परम तेजस्वी परम माहेश्वर महाराजाधिराज श्री शर्ववर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

प्रस्तुत अभिलेख मात्र सात गद्य पंक्तियों का है। काव्यगत सौन्दर्य का अभाव यहाँ प्रतीत नहीं होता। अनुप्रास के द्विविध-भेद-वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं।[1] अर्थालङ्कार के क्षेत्र में एक सुन्दर उपमा-"चक्रधर-इव प्रजानामार्तिहरः श्रीमहाराज हरिवर्मा।[2] की आभा से अभिलेख आलोकित सा प्रतीत होता है। संदर्भ-प्रिंसेप, ज.ए.सो.बं., ५, पृ. ४८२; विलसन, ज.रो.र.सो., ३, पृ. ३७७; फ्लीट, कॉ.इं.इं. ३, सं. ४७.

---

१. अ.मु., पं. २

२. अ.मु., पं. २

## ५४. अनन्तवर्मन् का बराबर-गुहा अभिलेख

बिहार प्रदेश के गया नगर से प्रायः २२ किलोमीटर पूर्वोत्तर की ओर पनारी गाँव के समीप बराबर पहाड़ी की लोमश ऋषि की गुफा के प्रवेश-द्वार पर यह अभिलेख अंकित है।

इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है। इसकी भाषा संस्कृत है। मौखरि-नृप अनन्तवर्मा के द्वारा बराबर (प्रवरगिरि) की गुफा में भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति की स्थापना एवं स्वकीय पिता श्रीशार्दूल-वर्मा का यशोगान ही इस अभिलेख का उद्देश्य है। यहाँ इस अभिलेख के समय का निर्देश नहीं किया गया है।

यह अभिलेख गद्यमय है। इसमें कुल छः पंक्तियाँ हैं। भाषा सरल है। छोटे-छोटे समस्त-पद भी मिलते हैं। एक समस्त-पद तो सप्त पदों[1] का समूह हैं, परन्तु अर्थप्रतीति में कोई कठिनाई नहीं होती।

शब्दालङ्कार में अनुप्रास[2] और यमक[3] परिलक्षित होते हैं। अर्थालङ्कार में मात्र दो उदाहरण उपमा का दृष्टिगोचर होता है-"कान्ताचित्त-हरःस्मरप्रतिसमः पाता व बभूव क्षितेः"।[4] शार्दूल देखने में साक्षात् कामदेव सदृश ही था। उपमा के अतिरिक्त एक रोचक उत्प्रेक्षा भी मिलती है-लोके यश (:) स्वं रचितुमिव मुदाचीकरत्कान्तिमत्सः।[5]

लघुकाय होने पर भी इस अभिलेख में साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव प्रतीत नहीं होता। संदर्भ-प्रिंसेप, ज.ए.सो.बं., ६, पृ. ६७४; भगवानलाल जी इन्द्रजी, इं.ऐं., १३, पृ. ४२८, नो. ५५३, फ्लीट, कॉ. इं.इं., ३, सं. ४८.।

## ५५. हर्षवर्धन का मधुवन ताम्र-पट्ट अभिलेख
### हर्ष-संवत्-२५

उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ के मधुवन गाँव से उपलब्ध एक ताम्रपट्ट पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है। इसकी लिपि पश्चिमोत्तरी ब्राह्मी है एवं इसकी भाषा संस्कृत है। महाराज हर्षवर्धन के द्वारा श्रावस्ती भुक्ति के कुण्डधानी विषयक सोमकुण्ड गाँव का कूटदान-पत्र के फलस्वरूप भोगनेवाले वामरथ्य नामधारी ब्राह्मण से इसे आक्षिप्तकर वातस्वामी एवं शिवदेव स्वामी नाम वाले ब्राह्मण-द्वय को दान के रूप में समर्पित करने का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

---

१. ब.गु.अ., पं. ६, तत्वाकर्ण-विकृष्ट-शाङ्‌र्ग-शरधि-व्यस्तशरोत्त(न्त) न्विहः ....।
२. वही, पं. १, श्रीशार्दूलस्ययोऽभूज्जनहृदयहरोऽनन्तवर्मा सुपुत्रः (।)
३. वही. पं. २ कृष्णस्याकृष्णकीर्तिः ...।
४. न.गु. ५०
५. वही, पं. २

ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभिलेख हरिषेण के 'समुद्रगुप्त का प्रयाग-स्तम्भ-अभिलेख' के अनुकरण पर 'चम्पू' शैली में विरचित है। आरम्भ में ६ गद्य पंक्तियाँ हैं। इसी पंक्ति के अन्त से ही एक पद्य का आरम्भ हो जाता है। पुनः ७वीं पंक्ति के अन्त से ही गद्य-पंक्तियाँ पुनः आरम्भ हो जाती हैं और १५वीं पंक्ति-पर्यन्त ये चलती रहती हैं। इसके बाद दो पद्य हैं। अंत में भी एक गद्य-पंक्ति है, जिसमें अभिलेख की तिथि दी हुई है।[1]

महाराज हर्षवर्धन के पुनीत वंश का शुभारम्भ महाराज श्रीनरवर्धन से होता है। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती वजिणी देवी थी। इनके गर्भ से परमादित्यभक्त महाराज श्रीराज्यवर्द्धन उत्पन्न हुए। इनकी भार्या श्री अप्सरा देवी थी, जिनकी दक्षिणकुक्षि से परमसूर्योपासक श्रीमदादित्यवर्द्धन का जन्म हुआ। इनका पाणिग्रहण सौभाग्यवती श्रीमहासेनगुप्ता के साथ हुआ, जिन्होंने प्रभाकरवर्द्धन नामक कुलदीपक को उत्पन्न किया। ये वर्णाश्रमधर्म के व्यवस्थापक थे। इनके प्रताप और अनुराग से सभी राजा वशवर्ती थे। इनकी कीर्ति चतुस्समुद्र के उस पार तक फैली हुई थी। ये पिता के समान ही आदित्यभक्त थे। इनकी पत्नी श्रीयशोमती थी। इनसे परमसौगत, प्रजा के हित में रत, कुबेर, वरुण, इन्द्रादि लोकपालों के तेज से समन्वित, परम वीर राज्यवर्द्धन का जन्म हुआ। जिसप्रकार दुष्ट घोड़े को कशाप्रहार से वश में किया जाता है, उसी प्रकार इन्होंने देवगुप्तादि दुष्ट नृपों को अपने वश में किया। इनका अनुज हर्षवर्धन था जो शिव का परमभक्त था एवं भगवान् शिव के समान सभी जीवों पर दया की भावना रखता था।

इस प्रकार यह अभिलेख एक प्रकार से महाराज हर्षवर्धन की वंशावली ही है। गद्य की भाषा सरल ही है। अल्पकाय समस्त पद मिलते हैं। एक स्थान में तो दस पदों का एक समस्त-पद परिलक्षित होता है, परन्तु अर्थप्रतीति सुगमता के साथ हो जाती है।[2]

यत्र-तत्र कुछ अलङ्कार भी दृष्टिगोचर होते हैं। शब्दालङ्कार में अनुप्रास[3] और यमक[4] की शोभा मनोहारिणी प्रतीत होती है। अर्थालङ्कार में उपमा की छटा भी यत्र-तत्र दिखायी पड़ती है।[5] जिसप्रकार दुष्ट अश्व को वशीभूत करने के लिए कशाभिघात की आवश्यकता होती है उसी प्रकार राजवर्द्धन ने देवगुप्तादि को युद्ध में परास्त कर वशीभूत किया-''परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीराज्यवर्द्धनः। राजानो युधि दुष्ट-वाजिन-इव

---

१. म.ता.प.अ., पं. ५-सत्पथोपार्जितानेक-द्रविण-भूमिप्रदान-सम्प्रीणितार्थिहृदयो ...।
२. म. ता. प. अ., पं. ५-सत्पथोपार्जितानेक-द्रविण-भूमिप्रदान-सम्प्रीणितार्थि-हृदयः ......।
३. वही, पं. ८, तस्यानुजस्तत् पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्व्व-सत्वानुकम्पी परम-भट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीहर्षः ....।
४. वही, पं. ३ ...वर्णाश्रम-व्यवस्थापन-प्रवृत्त-चक्र एक-चक्र-रथ इव प्रजानामार्तिहरः।
५. वही, क पं. ६, श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः ..। ख) द्र.पा. टि. ३ (ग) पद्य-२ ''लक्ष्म्यास्तडित्सलिल-बुदबुद-चंचलायाः ....।

श्रीदेवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहार-विमुखाः सर्वे समं संयताः।।'' (पं. ६७)।

वस्तुतः उपमा बहुत ही सटीक है। अभिलेख में पद्य-गद्य हैं। प्रथम पद्य शार्दूलविक्रीडित में निबद्ध है एवं द्वितीय और तृतीय पद्य क्रमशः वसन्ततिलका एवं अनुष्टुप् में हैं। शत्रुवशीकरण कठिन कार्य है। अतः शार्दूलविक्रीडित जैसे विशाल छन्द का प्रयोग किया है। हर्षवर्धन की कुल-प्रशंसा के लिए वसन्ततिलका भी उपयुक्त ही है।

इस अभिलेख को सामन्तमाहेश्वरगुप्त की आज्ञा से 'गज्जर' ने उत्कीर्ण किया। ऐतिहासक निर्देशों एवं साहित्यिक सौन्दर्य-दोनों ही दृष्टियों से अभिलेख-साहित्य में इस ताम्रपट्ट का एक पृथक् महत्व है।

## ५६. शशाङ्ककालीन मिदनापुर-ताम्रपट्ट अभिलेख

बंगाल के मिदनापुर मण्डल के समाहर्ता बी.आर. सेन को १९३७ में किसी व्यक्ति ने ताम्रपट्ट-द्वय पर अंकित यह अभिलेख दिया। इस अभिलेख का प्राप्ति-स्थान अज्ञात है।

इसकी लिपि षष्ठ-शताब्दीय पूर्वोत्तरी ब्राह्मी है। यह संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है। इस अभिलेख का उद्देश्य प्रथम पट्ट के अनुसार राजा शशाङ्क के अधीन दण्डभुक्ति तथा उत्कल के शासक सोमदत्त के द्वारा भट्टेश्वर नामक ब्राह्मण को महाकुम्भारपद्रक गाँव के दान (प्रथम पट्ट) एवं द्वितीय पट्ट के उल्लेखानुसार दाम्यस्वामी नामक ब्राह्मण को कुम्भारपद्रक गाँव की कुछ भूमि के दान का उल्लेख करना है।

इसका समय ६१९ ई. स. के आसपास का है। प्रथम पट्ट में कुल १५ पंक्तियाँ हैं। १४वीं पंक्ति के आरम्भ के कतिपय अक्षर एवं १५वीं पंक्ति के आरम्भ में और अन्तिम पद के पूर्व भी कुछ अक्षर नष्ट हो गए हैं।

प्रथम पट्ट में ११ पद्य हैं। इसकी भाषा सरल है। छोटे-छोटे समस्त पद हैं। एक समस्त पद तो अष्ट पदों का समूह है।[1]

शब्दालङ्कार में अनुप्रास की छटा यत्र-तत्र परिलक्षित होती है-विष्णोः पोत्राग्र-विक्षेप-क्षणभा (वित-साध्वसां) साम् (शेषा)-शेषशिरो-मध्य-मध्यासीन-महातनुं (नुम्)।। १।। और श्रीशशाङ्के मही पाति चतुर्जलधि-मेखलां (लाम्)।।२।।

श्रुत्यनुप्रास[2] एवं छेकानुप्रास[3] के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। एक स्थल पर तो यमकालङ्कार का प्रयोग सर्वथा अभिनव और मनोहर प्रतीत होता है-

---

१. मि.ता.अ., प्र. पट्ट, प. १ ... शेषा ।। -शेष-शिरोमध्यासीन-महातन्न

२. मि.वही. ३. प्र. पट्ट, पं. ३, तस्य पादन (ख-ज्योत्स्ना)-विभूषित-शिरोमणी

३. वही पं. ८, तया नित्यं यः पूज्यैः पूज्यते द्विजैः।।

**यस्य गाम्भीर्य-लावण्य-व (ब) छु-रत्नतया (ऽ) नया (१)**
**न समः क्षारकालुष्य-व्यालोपयतप्रोदधि (:)।। (३) (द्वि.पं.)**

महाराज शशाङ्क में गाम्भीर्य, सौन्दर्य (लवणस्य भावः लावण्यम्) और बहुरत्नता को देख कर उदधि लाज से गड़ जाता है और उसका क्षारकालुष्य (= लावण्य) कम जाता है।

यमक के अतिरिक्त यहाँ व्यतिरेक की प्रतीति भी होती है। अतः यहाँ संकरालङ्कार की अवस्थिति भी हो जाती है। अर्थाङ्कार में उपमा का एक सुन्दर उदाहरण भी परिलक्षित होता है-तस्य पाद-न (ख-ज्योत्सना)-विभूषित-शिरोमणौ।

श्रीमान्-महाप्रति (ती) हारे शुभ-कीर्त्तौ विचक्षणे।। (प. ४), (टि.प.) यहाँ पद-नख-ज्योत्स्ना का विग्रह यदि हम "पद-नखः चन्द्र इव" करें और "चन्द्र" पद का लोप कर दें, तो यहाँ उपमालङ्कार हो सकता है। यदि "पद-नख" एवं "चन्द्रः" ऐसा विग्रह करें, तो यहाँ रूपक भी हो सकता है। "अलङ्कार-द्वय की स्थिति के फलस्वरूप यहाँ संदेह-सङ्कर अलङ्कार भी हो जाता है।

प्रथम पट्ट में ११ पद्य एवं द्वितीय पट्ट में १० पद्य हैं। ये सभी अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं। प्रथम पट्ट के पद्य १० के द्वितीय पाद में अष्टाक्षर के स्थान में सप्ताक्षर ही है एवं चतुर्थ पाद में अष्टाक्षर के स्थान में १० अक्षर हैं। अतः छान्दस दोष हो जाता है। इसी प्रकार द्वितीय पट्ट के षष्ठ पद्य के तीसरे पद्य में अष्टाक्षर के स्थान में सप्ताक्षर ही है। इसके अतिरिक्त पद्य नव में चार पादों के स्थान में दो ही पाद प्राप्य हैं। रामायण, महाभारत एवं पुराणों में ऐसे उदाहरण अत्यधिक मिलते हैं। संदर्भ- रमेशचन्द्र मजुमदार, ज.रो.ए.सो.कं. (ले.), २, १६४५, पृ. १-६। **५७. पुलकेशी-द्वितीय का ऐहोल अभिलेख शक-संवत्-(६३४ ई. स.) ५५६** कर्णाटकप्रदेश के बीजापुर मण्डल के ऐहोल गाँव के मेगुटि मन्दिर की पूर्ववर्ती-दिवाल पर यह अभिलेख अंकित है।

इसकी लिपि दक्षिणी ब्राह्मी (बाक्सनुमा) है और इसकी भाषा संस्कृत है। चालुक्य-नरेश पुलकेशी-द्वितीय की राजसभा के कवि रविकीर्त्ति के द्वारा स्वकीय आश्रयदाता की वीर गाथाओं का वर्णन, उनकी वंश-प्रशस्ति एवं जैन-मन्दिर के निर्माण का उल्लेख करना ही प्रस्तुत अभिलेख का उद्देश्य है।

अभिलेख का समय ६३४ ई. स. है। जैन मन्दिर के निर्माण के वर्णन-क्रम में चालुक्य-वंशीय नृप पुलकेशी-द्वितीय एवं उसके कुल का भव्य वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है। पुलकेशी-द्वितीय का ही अपर नाम सत्याश्रय था। इस वंश के अनेक नृपों की उपाधि 'पृथिवीवल्लभ' थी।

इसी वंश में जयसिंह वल्लभ नामक अतिपराक्रमी राजा उत्पन्न हुआ। उसके बाद उसका पुत्र रणराग राजा हुआ। उसके शरीर की विशालता को देखकर लोग उसे देवता

ही समझते थे। रणराग का सुपुत्र पुलकेशी-प्रथम हुआ। इसने वातापी में अपनी राजधानी बनायी। वह धर्म, अर्थ और काम के सम्पादन में अद्वितीय था। उसका आत्मज कीर्तिवर्मा हुआ, जिसने मौर्य और कदम्बवंशीय नृपों को हरा दिया। इसी कीर्तिवर्मा के पञ्चत्त्व को प्राप्त करने पर उसका अनुज मङ्गलेश राज्यारूढ़ हुआ। इसकी राज्यसीमा पूर्व समुद्र-तट से लेकर पश्चिम समुद्र-तट तक था। इसने कटच्छुरि-वंशीय राजा को परास्त कर उसके कुल की ललना का पाणिग्रहण किया। पुनः उसने रेवती-द्वीप पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। मंगलेश अपने पुत्र का राज्याभिषेक करना चाहता था, परन्तु कीर्तिवर्मा का आत्मज पुलकेशी-द्वितीय को यह बात अच्छी न लगी। मंत्र और उत्साह-शक्ति के प्रयोग से उसने मंगलेश का पूर्णतः विनाश कर दिया। इस समय आक्रमण का अच्छा अवसर देख कर राज्य के शत्रु आप्यायिक और गोविन्द ने भीमरथी नदी के उत्तरी भाग को अपने अधीन करने के लिए विशाल हस्ति-सेना का प्रयोग किया, परन्तु पुलकेशी के सामने उन्हें मुँह की खानी पड़ी। आप्यायिक भाग गया और इसने उससे मित्रता कर ली। इसके उपरान्त पुलकेशी ने वरदा नदी के तटवर्ती दुर्ग को ले लिया। पुनः उसने गंग और आलुपवंशीय राजाओं को भी पराजित किया। उसने अपने सेनापति-द्वय दण्डचण्ड को भेज कर कोंकण-प्रदेश के शासक मौर्य-वंशीय नृप को भी परास्त कर दिया। उसकी वीरता के सामने लाट, मालव और गुर्जर देश के राजा भी उसके अधीन हो गए। उत्तर भारत के सम्राट् हर्षवर्धन को भी हर्ष-रहित कर दिया। उसके शासन-काल में नर्मदा नदी के सुन्दर तटों से शोभायमान विन्ध्यपर्वतीय उर्वर प्रदेश की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल रही थी।

सम्यक् प्रवृद्ध शक्तित्रय के फलस्वरूप ६६ सहस्र गाँवों में फैले हुए तीनों महाराष्ट्र प्रदेशों को भी जीत लिया। इतना ही नहीं, दूसरे राजाओं के मद को दूर करने वाले कोशल और कलिंगदेशीय नृप भी उसकी समृद्ध सेना से भयभीत हो गए। इसने दुर्गा की नगरी 'पिष्टपुर' को भी जीत कर कुनाल नामक झील पर आक्रमण कर उसे भी अपने अधीन कर लिया। पुनः मौल आदि छः प्रकार के सैनिकों की सहायता से पल्लवनरेश महेन्द्रवर्मन् को परास्त कर उसे कांची-नगरी के भीतर ही रहने के लिए विवश कर दिया। अन्ततः कावेरी नदी को पार कर उसने चोल, केरल और पाण्ड्य राजाओं से भेंट की और वे उसके मित्र बन गए। कलियुग में शकसंवत् के ५५६ वें वर्ष बीत जाने पर पुलकेशी की सहायता से रविकीर्ति ने प्रस्तर का एक जैन-मन्दिर निर्मित करवाया। प्रशस्तिकार भी स्वयं रविकीर्ति ही है।

साहित्यिक दृष्टि से यह अभिलेख अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें कालिदास और भारवि-सदृश दो विख्यात कवियों की चर्चा की गयी है। इससे इनकी तिथि-निर्धारण

---

१. इ.च., प्र. ३०, प. ८

की अन्तिम सीमा निश्चित हो जाती है। ये दोनों कवि ६३४ ई.सं. पर्यन्त लब्ध-प्रतिष्ठ हो चुके थे।

हर्षचरित में दाक्षिणात्यों की उत्प्रेक्षा की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है[1] और वस्तुतः रविकीर्ति की उत्प्रेक्षाएँ प्रशंसनीय भी हैं। इनकी कविता पर कालिदास और भारवि की छाया स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

ऐतिहासिक और भौगोलिक नामों से यह अभिलेख भरा पड़ा है। ये काव्य-प्रवाह के अवरोधक जैसे प्रतीत होते हैं।

शब्दालङ्कारों में कवि की रुचि स्पष्ट प्रतीत होती है ! अनुप्रास और यमक यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। अर्थालङ्कार के क्षेत्र में रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा उल्लेखनीय हैं।

कवि की शैली तो वैदर्भी ही है, परन्तु पुलकेशी के युद्ध-वर्णन के क्रम में वीर रस के पाक के हेतु ओजगुण-विशिष्ट गौडी-रीति अपेक्षित ही है। संस्कृत-साहित्य में अन्त्यानुप्रास की परिपाटी कम दिखायी पड़ती है, परन्तु यहाँ प्रस्तुत पद्य में-

**गृहिणां स्वस्वगुणैस्त्रिवर्गतुङ्गा, विहितान्यक्षितिपाल-मानभङ्गाः।**
**अभवन्नुपजातभीतिलिङ्गा यदनीकेन सकोशलाः कलिङ्गाः।।२६।।**

में बहुत ही रुचिकर अन्त्यानुप्रास दिखाई पड़ता है।[1]

इसी प्रकार यमक के भी बड़े सुन्दर उदाहरण यत्र-तत्र मिलते हैं -

**रण-पराक्रम-लब्ध-जय-श्रिया, सपदि ये विरुग्णमशेषतः।**
**नृपति-गन्धगजेन महौजसा, पृथुकदम्ब-कदम्ब-कदम्बकम्।।१०।।**

मेरे विचार से इस अभिलेख के २८वें पद्य में कुनाल झील का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि आहत मनुष्यों के खून रूपी अंगराग से उस झील का रक्ताभ जल मेघयुक्त सायंकालीन लालिमा से रञ्जित आकाशवत् प्रतीत हो रहा है -

**सन्नद्ध-वारण-घटा-स्थगितान्तरालं, मानायुधक्षत-वरक्षतजाङ्गरागम्।**
**आसीज्जलं यदवमर्दितमभ्रगर्भं कौनालम्बरमिवोर्जितसान्ध्यरागम्।।२८।।**

कोई भी सहृदय इस पद्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। मङ्गलेश कटच्छुरि-वंश की जय के बाद 'रेवती' द्वीप को चारो ओर से घेर लेता है। समुद्र के जल में उसकी सेना का प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो मंगलेश की आज्ञा से ही वरुण की सेना उपस्थित हो गयी हो-

---

१. ऐ.अ., पं. २७, ३५

**पुनरपि च जिघृक्षोस्सैन्यमाक्रान्तसालं, रुचिरबहु-पताकं रेवतीद्वीपसात्रु।**
**सपदि महद्वदन्वत्तोयसंक्रान्तबिम्बं वरुणबलनिवादागतं यस्य वाचा।।१३।।**

कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है। शङ्कर के समान कान्तिवाले पुलकेशी ने पश्चिम सागर की प्रसिद्ध नगरी को जीतने के लिए मदमस्त हस्ति-सेना की आकृतिवाली असंख्य नौकाओं से उस पर आक्रमण कर दिया, तब जलद-सेना से व्याप्त नील कमलवत् नीला नभमण्डल समुद्रवत् और सागर आकाशकल्प परिलक्षित होने लगा-

**जलदपटलोनीकाकीर्णं नवोत्पलमेचकं**
**जलनिधिरिव व्योम व्योम्नः समोऽभवदम्बुधिः।। २१।।**

यह पद्य उपमेयोपमा का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रतीत होता है।

विरोधाभास के भी एक-दो उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं -

**नल-मौर्य-कदम्बकाल-रात्रिस्तनयस्तस्य बभूव कीर्तिवर्मा।**
**परदार-निवृत्त-चित्तवृत्तेरपि धीर्यस्य रिपुश्रियानुकृष्टा।। ६।।**

पुलकेशि-पुत्र कीर्तिवर्मा परस्त्रीपराङ्मुख होकर भी शत्रुकी राजलक्ष्मी की ओर आकृष्ट हो जाता है।

अभिलेख के इस महत्त्वपूर्ण पद्य में उपमा और रूपक दोनों के उदाहरण एक साथ ही मिल जाते हैं-

**रण-पराक्रम-लब्ध-जयश्रिया, सपदि येन विरुग्णमशेषतः।**
**नृपतिगन्धगजेन महौजसा, पृथु-कदम्ब-कदम्ब-कदम्बकम्।।१०।।**

रविकीर्ति ने अपनी प्रशस्ति में कालिदास एवं भारवि के केवल नामोल्लेख ही नहीं, वरन् उनके काव्यगत पद और अर्थ का भी अनुहरण किया है-

शिलालेख रघुवंश किरातार्जुनीयम्

६ वपुः प्रकर्षात् ३/४२ ३/२

१ वीत जरा मरण जन्मनो-वीतजन्म जरसाम् ५/१२

१० पृथुकदम्ब-पृथु-कदम्ब-कदम्बकम् ५/६

इस प्रशस्ति में कुल पद्य ३७ हैं और कवि ने कुल १७ छन्दों[1], का प्रयोग किया है। छन्द-परिवर्तन से नृपों के परिवर्तन की ओर संकेत होता है।

---

१. आर्या (प. १-४, ७, ३७ शार्दूलविक्रीजित (प. ५, २६, ३२), उपजाति) इन्द्र. + उपे.; ६०६, २६), रथोद्धता (४. ८), मालभारिणी (प. ६), भुगङ्गप्रयात (प. १०), वसन्ततिलका (प. ११, १४, २८, ३५), वंशस्थ (प.-१२), मालिनी (प. १३, १५, २३, २४, २५), स्रग्धरा (प. १६), मन्दाक्रान्ता (प. १७), (प. १८), इन्द्रवज्रा (प. १६), अनुष्टुप् (प. २०, २२, २७, ३१, ३३, ३४, ३६), हरिणी (प. २१), प्रहर्षिणी (प. ३०)

रविकीर्ति अपनी प्रशंसा में चाहे जो भी कहें, उनमें न विलक्षण कालिदासीय उपमा की छटा है और न भारवि के समान अलौकिक अर्थगौरव ही। संदभ-फ्लीट, इं.ऐं. ५, पृ. ६७ अ., पृ. २३७ अ.; ऑ.स.वे.इं., ३, पृ. १२६ अ.; कील्हॉर्न, एं.इं. ६, पृ. १-१२ अ.; दिसकलकर, से.से.इं., पृ. १३७-५८

## ५८. महेन्द्रपाल का पेहवा अभिलेख

हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र मण्डल के पेहवा नगरस्थ एक भवन की भित्ति में संलग्न प्रस्तर-खण्ड पर यह अभिलेख अंकित है।

इसकी लिपि नवमी-दसमी-शताब्दीय देवनागरी है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है।

तोमरवंशीय नरेश जज्जुक के पुत्र त्रय-गोग्ग, पूर्णराज एवं देवराज के द्वारा विष्णु के तीन मन्दिरों के निर्माण एवं उसके संपोषण के निमित्त यक्षपालक, जेज्जर और पाटल नामक ग्रामत्रय के दान का उल्लेख ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

प्रस्तुत अभिलेख २७ पद्यों का है। २, ४, ७, २६ और २७ पद्यों में कुछ अक्षर विनष्ट हो गए हैं। अभिलेख का आरम्भ माधव के नमस्कार से होता है। इसके बाद शाङ्र्गी (= विष्णु) की बड़ी ही मनोरम स्तुति शार्दूलविक्रीडित छन्द में की गयी है-

**याते यामवती-पतौ-शि (ख) रिषु क्षा (मे) षु सर्वात्मना**
**ध्वस्ते ध्वान्त-रिपौ जने विघटिते स्रस्ते च तारागणे।**
**भ्रष्टे भूवलये गतेषु च तथा रत्नाकरेषुवेकता-**
**मेको यस्स्वपिति प्रधान-पुरुषः पायात्स वः शाङ्र्गभृत्।।१।।**

प्रस्तुत पद्य में वृत्यनुप्रास[1], छेकानुप्रास[2] और श्रुत्यनुप्रास[3] की छटा प्रशंसनीय प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त एक यमक का भी सुन्दर उदाहरण दिखायी पड़ता है। ४ अर्थालङ्कार में उपमा और रूपक के पर्याप्त उदाहरण इतस्ततः परिलक्षित होते हैं। राजा महेन्द्रपाल की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है-**सश्श्रीमाञ्जयति महेन्द्रपालदेवः शान्तश्शशधर-सुन्दरः शरण्यः।।**

राजा महेन्द्रपाल चन्द्रमा के समान गौर एवं सुन्दर थे। यहाँ कवि ने मात्र एक शब्द 'शशधर' के प्रयोग से राजा के शारीरिक सौन्दर्य का बोध कराने में समर्थ हो जाता है।

नृप वज्रट के यहाँ चन्द्रमा के समान एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम मङ्गला था और वह भगवान् शङ्कर की कान्ता गिरिजा के समान प्रतीत होती थी-

**तस्य स्फुरदिन्दुरुचिः शौरेरिवजलधिकन्यका जाता।**
**नाम्ना मङ्गलदेवी जाया गिरिजेव गिरिशस्य।।१०।।**

एक मालोपमा की सुषमा का अवलोकन भी अप्रासंगिक प्रतीत नहीं होता है- पोत-(स्संसार-सिं) धौ सुरपथगमने स्यन्दनस्साधु-(वर्ग .......तवह्ने-प्रलय-जलधरस्सम्पततूसान्द धारः। नाना-व्याधि-प्रव (ब) न्ध-प्रचुरतम पङ्क-विध्वंस-भानु-र्नीरञ्चैततूसमन्ता (द्) घ्रतु दुरित-(गणं चारू) (सा) रस्वतं वः।। ४।।

विष्णु ही संसार-सिन्धु को पार करने वाली नौका के समान हैं, सुरपथ पर ले जाने वाले रथ के समान है, साधु-वर्ग को पीड़ित करने वाले ............ रूपी अग्नि के लिए मेघ की धारासम्पात-वृष्टि के समान हैं, नाना व्याधि-रूपी घोर अन्धकार के लिए विनाशक सूर्य के समान है।

तोमर-वंश में अपूर्व चरित वाला 'जाउल' नामक एक राजा हुआ था। वह साधु चरित का था एवं दुर्वृत्त-रूपी पर्वत के लिए वज्र का प्रहार ही था।

**आसीत्तोमर-तुङ्ग-वंश-ति (लकश्चण्ड-प्र) तापोज्य (ज्ज्व) लो**
**राजा रंजित-साधुवृत्त-(हृदयो दु) र्वृत्त-शैलाशनिः।।६।।**

यहाँ दुर्वृत्त-शैलाशनिः में रूपक अलङ्कार है। इस अलङ्कार से दुर्वृत्त लोगों की शक्ति और नृप में उस शक्ति के प्रतिरोध की क्षमता व्यक्त होती है।

नृप जाउल की कीर्ति के वर्णन-क्रम में कवि ने समस्त-पदों का प्रयोग किया है, जिससे इस वर्णन में उसके गौरव की प्रतीति होती है-

**प्रतिदिश (ममरा) णां मन्दिराण्युच्छिताग्र**
**स्थगित-शशधराणि स्फारमारोपितानि।**
**जगति वितत-भासा येन दूरं विभान्ति**
**स्व-यश इव निरोद्धुं शङ्कवो दिङ्निखाताः।। ८।।**

यहाँ 'स्वयश इव निरोद्धुम्' में उत्प्रेक्षा की भी प्रतीति हो जाती है। कवि छन्दःशास्त्र में कुशल प्रतीत होता है। २७ पद्यों के इस अभिलेख में उसने १२ छन्दों का प्रयोग किया है।[1] एक ओर उसने ६ अक्षरों के छन्द विद्युल्लेखा का प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर विशालकाय छन्द स्रग्धरा का भी व्यवहार किया है। अनुष्टुप् का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। इसमें पाँच पद्य निबद्ध हैं।

---

१. शार्दूलविक्रीडित (प.-१, ६, ७, ६), मन्दाक्रान्ता (प. २, २०), वसन्ततिलका (प. ३, १२, २३), स्रग्धरा (प. ४), प्रहर्षिणी (प. ५, १४, १८), मालिनी (प. ८, २६), आर्या (प. १०), शालिनी (प. ११), अनुष्टुप् (प. १३, २१, २२, २४, २७), द्रुतविलम्बित (प. १७), पृथिवी (प. १५, १६) और विद्युल्लेखा (प. २५)

कवि कालिदास के मेघदूत से अच्छी तरह परिचित प्रतीत होता है।[1]

इस सरस और ललित प्रशस्ति को विनयी भट्टराम के सुपुत्र ने लिखा। इसके सूत्रधार 'दुर्लभादित्य' उपाधि-धारी धीमान्त 'बालादित्य' थे। संदर्भः-ब्यूलर, ए.इं., १, पृ. २४२।

## ५६. विग्रहराज देहली स्तम्भलेख

शाकम्भरी (साम्भर) के अधिपति श्रीमान् आवेल्लदेव थे। इनके पुत्र दिल्ली के चाहमान-तिलक विग्रहराज थे। इनका इतर नाम 'वीशलदेव' था। हिमालय की उपत्यका में टोपरा (हरियाणा) में सम्राट् अशोक के एक स्तम्भ पर विग्रहराज ने प्रस्तुत अभिलेख को उत्कीर्ण कराया था। १५वीं शताब्दी में दिल्ली के शासक फिरोजखाँ ने उपर्युक्त स्तम्भ को वहाँ से स्थान्तरित करवा दिया, जो अभी फीरोजशाह तुगलक के कोटला नामक स्थान को सुशोभित कर रहा है।

इसकी लिपि बारहवीं शताब्दी की देवनागरी है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है। इसका समय विक्रमसंवत् १२२० (= ११६३ ई.सं.) है।

विग्रहराज की वीरता, उनकी यशःख्याति और उनके राज्य की सीमा का उल्लेख करना ही इस अभिलेख का उद्देश्य है।

विग्रहराज की विजययात्रा के क्रम में रिपुयुवतियों के नयनों में अश्रुकण परिलक्षित होते थे और शत्रुओं के दांतों के नीचे तृण दृष्टिगोचर होते थे। इस समय अनाचार मार्ग के साथ ही शत्रुओं के हृदय भी शून्य हो जाता था। ललनाओं के मानस-मन्दिर में केवल उनका ही निवास था, जिसने युद्ध में नहीं, बल्कि तीर्थ-यात्रा के क्रम में ही हिमालय और विन्ध्यपर्वत के बीच का भू-भाग जीत लिया था। म्लेच्छों का समूल नाश कर उन्होंने आर्यावर्त को वस्तुतः आर्यावर्त बना दिया और वहाँ के राजाओं को कर देने के लिए भी विवश कर दिया। शेष पंजाब आदि प्रदेशों को अधिकृत करने के लिए उन्होंने अपने पुत्रों को प्रयत्नशील होने का आदेश दिया।

विक्रमसंवत् १२२० (= ११६३) वैशाख-पूर्णिमा, दिन गुरुवार को विग्रहराज के आदेशानुसार 'श्रीतिलकराज' नामक ज्योतिषी के सामने गौड़वंशीय कायस्थ माहवपुत्र 'श्रीपति' ने इस अभिलेख को लिखा। इस समय राजपुत्र 'श्री-सल्लक्षणपाल' विग्रहराज के महामंत्री थे।

विग्रहराज सम्राट् हर्षवर्द्धन के बाद उत्तर भारत का चौहानवंशीय शासक था। पृथ्वीराज इसी वंश के अन्तिम हिन्दू राजा थे।

---

१. पै.अ.,प. १७ .... स्निग्ध-च्छायस्तरुरिव ....। तुल., मे.दू., प. १ ... स्निग्धछायातरुषु ....।

पद्य-चतुष्टय के कलेवर वाले इस लघु अभिलेख में साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव नहीं है। शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार के क्षेत्र में अनुप्रास और अर्थापत्ति की गरिमा प्रशंसनीय है। प्रथम पद्य में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है-

**ओं अम्भो नाम रिपुप्रियानयनयोः प्रत्यर्थिदन्तान्तरे**
**प्रत्यक्षणि तृणानि, वैभवमिलत्काष्ठं यशस्तावकम्।**

अब हम अर्थापत्ति का एक उदाहरण देखें-

**लीलामन्दिर सोदरेषु भवतु स्वान्तेषु वामभ्रुवाम्**
**शत्रूणां तु न विग्रहक्षितिपते न्याय्योऽत्र वासस्तव।**

**शङ्का वा पुरुषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारांनिधे**
**र्निमिथ्यापहृतश्रियः किमु भवान् क्रोडे न निद्रायितः।।२।।**

यहाँ "किमु न निद्रायितः" का अर्थ "ओम् निद्रायितः" हुआ। कवि छन्दोशास्त्र में भी निपुण प्रतीत होता है। पद्य ३ स्रग्धरा छन्द में है, शेष शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध हैं। कवि शार्दूलविक्रीडित एवं स्रग्धरा जैसे पुष्टकलेवर वाले छन्दों में भी सिद्धहस्त है, इस बात की पुष्टि होती है।

भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। छोटे-छोटे समस्त-पद मिलते हैं। अर्थावबोध सहज ही हो जाता है। सन्दर्भः-राधाकान्त शर्मा, अ.स.इ.ऐ.रि.१, पृ. ३७६-८२; कोलब्रुक, एं.रि., ७, पृ. १७६-८१; कैप्टन विल्फोर्ड, ऐ.रि. ६, पृ. १७८-७६; कीलहॉर्न, इ.ऐ. १६, पृ. २१५

## पूर्वमध्यकालीन अभिलेख

## ६०. विजयसेन का देवपारा अभिलेख

बंगाल के राजशाही मण्डल में देवपारा है। इस अभिलेख की लिपि देवनागरी है एवं इसकी भाषा संस्कृत है। सेन-वंशीय नृप विजयसेन के द्वारा शिव-मन्दिर के निर्माण के साथ-साथ सेन-वंश का वर्णन ही इस अभिलेख का उद्देश्य है। यहाँ शिव को प्रद्युम्नेश्वर के नाम से अभिहित किया गया है।

अभिलेख का समय १२वीं शताब्दी है। वीरसेन एक चन्द्रवंशीय नरेश थे। ये मूलतः दाक्षिणात्य थे। इनकी कीर्ति चतुर्दिशा में व्याप्त थी। यह सेन-वंश 'ब्रह्म-क्षत्रिय वंश' के नाम से जाना जाता था। डॉ. आर.डी. भण्डारकर के अनुसार ये ब्राह्मण थे जिन्होंने अपने ब्राह्मणोचित कर्म को छोड़ कर क्षत्रिय का कर्म-करना आरम्भ कर दिया था।

ये चन्द्रवंशीय नृप मूलतः कर्णाट प्रदेश के शासक थे। माधाई नगर के ताम्रपत्र में इनका उल्लेख कर्णाट-क्षत्रिय के रूप में किया गया है। इस वंश का कुलभूषण सामन्तसेन था, जिसका जन्म 'नईहाटी' दानपत्र के अनुसार राढ़ेशीय राज-वंश में हुआ था। डॉ. आर. सी. मजुमदार की धारणा है कि इनका मूलस्थान "धरवार" मण्डल (कर्णाट-प्रदेश) था।

सामन्तसेन का पुत्र हेमन्तसेन हुआ। पुत्र के कंधे पर राज्य-भार सौंप कर सामन्तसेन गंगा-तट पर आश्रम में निवास करने लगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि हेमन्तसेन ही वंगप्रदेश का प्रथम सेन-वंशी नृप था। इसकी पत्नी महारानी यशोदेवी थी। वह अतिसुन्दरी थी और इनके चरण-कमल मित्र और शत्रुओं की स्त्रियों के मस्तक पर सुशोभित होते थे। बैरकपुर के दानपत्र में भी हेमन्तसेन को ही 'महाराजाधिराज' की उपाधि सर्व प्रथम मिलती है।

हेमन्तसेन और यशोमती का पुत्र विजयसेन हुआ, जिसकी राज्य-सीमा चतुःसमुद्र से बनती थी। यह दाशरथि राम और अर्जुन के समान वीर था। इससे सम्बद्ध अभिलेख-द्वय उपलब्ध हैं। बैरकपुर-दानपत्र के अनुसार इसकी पत्नी विलासदेवी थीं जिन्होंने ही प्रद्युम्नेश्वर-मन्दिर और उसके सामने एक तालाब खुदवाया, जिसका वर्णन इस अभिलेख में किया गया है।

विजयसेन का पुत्र वल्लालसेन था, जिसकी धर्मपत्नी रामदेवी चालुक्यवंशीय ललना थी। इसका भी 'नई-हाटी दानपत्र' उपलब्ध हुआ है। वल्लालसेन का सुप्रसिद्ध पुत्र 'लक्ष्मणसेन' हुआ, जिसका विवाह 'चन्द्रादेवी' के साथ सम्पन्न हुआ। इन्होंने लक्ष्मण संवत् का श्रीगणेश किया। इससे सम्बद्ध भी कतिपय लेख उपलब्ध हुए हैं। इनकी राज्य-सभा की शोभा जयदेव, उमापतिधर, धोयी, गोवर्द्धन, शरण आदि कवियों से होती थी। लक्ष्मणसेन के भी पुत्र-द्वय थे- विश्वरूपसेन और केशवसेन। ये ही सेनवंशीय अन्तिम राजे थे। मुसलमानों के आक्रमण से सेन-वंश छिन्न-भिन्न हो गया।

प्रशस्ति में विजयसेन-पर्यन्त ही वर्णन मिलता है। विजयसेन ने कामरूप के नृप को भगा दिया एवं कलिङ्ग को शीघ्र ही जीत लिया।

सर्वप्रथम मेटकाफ ने इस अभिलेख को १८६५ ई. सं. में पाया। यह अभी कलकत्ता-संग्रहालय की शोभा-वृद्धि कर रहा है। इन्होंने इसका सम्पादन ए.सो. बंगाल में किया है और कीलहॉर्न ने एपिग्राफिका-इण्डिका में किया। डॉ. नोनी गोपाल मजुमदार ने इसे 'इन्सक्रिप्सन्स् ऑफ बंगाल' में प्रकाशित किया।

देवपारा-शिलालेख के कवि उमापतिधर हैं। प्रस्तुत प्रशस्ति में इन्होंने सेनवंश के नृप-त्रय-सामन्तसेन, हेमन्तसेन और विजयसेन का ही वर्णन किया है। परन्तु 'मेरुतुङ्ग' कृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अनुसार उमापति लक्ष्मणसेन की राजसभा को भी सुशोभित करते थे। 'गीतगोविन्द' के रचयिता 'जयदेव' ने भी इन्हें लक्ष्मणसेन की राजसभा का एक देदीप्यमान रत्न के रूप में उल्लेख किया है-

**गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।**
**कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च।।**

इसकी पुष्टि भागवतपुराण की 'भावार्थ-दीपिनी टीका' की वैष्णवतोषिणी टीका से भी होती है। यहाँ उमापति का स्पष्टतः उल्लेख है-'श्रीजयदेव सहचरेण महाराजलक्ष्मणसेन-मन्त्रिवरोमापतिधरेण।'[1] सूक्तिकर्णामृत, सुभाषितमुक्तावली, एवं शाङ्र्गधर-पद्धति में भी इनके कतिपय पद्य संगृहीत हैं।

प्रशस्ति के अन्त में कवि ने अपने विषय में "एषा कवेःपद-पदार्थ-विचार-शुद्ध-बुद्धेरुमापति-धरस्य कृतिः प्रशस्तिः[1]" लिखा है। कवि उमापतिधर की बुद्धि पद-पदार्थ के अध्ययन से विशुद्ध हो गयी थी। इससे यह स्फुट होता है कि उमापतिधर शब्दकवि हैं। शब्द-क्रीड़ा ही इनकी विशेषता है। हर्षचरित की भूमिका में बाणभट्ट ने लिखा है कि गौडदेशीय कवि की विशेषता अक्षरडम्बरता है।[3] गीतगोविन्दकार जयदेव ने उमापतिधर के विषय में लिखा है- "वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः।" कवि किसी भी बात को एक नये ढंग से कहते हैं। उक्ति-वैचित्र्य ही इनका वैशिष्ट्य है।

जयदेव की उक्ति की टीका करते हुए नारायण ने लिखा है-"उमापतिधरो नाम कविः वाचो वचनानि पल्लवयति विस्तारयति, न तु गुणान्।" दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उमापतिधर की कृति की विशेषता शब्द-विस्तार ही है।

उमापति के काव्य में दो विशेषताएँ स्पष्ट हैं-(क) शब्द का विस्तार, (ख) दीर्घ समस्तपदों का व्यवहार। इनके प्रचुर उदाहरण यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। प्रथम पद्य की प्रथम एवं द्वितीय पंक्तियाँ ही उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती हैं-

**वक्षोंशुकाहरण-साध्वस-कृष्ट-मौलि-माल्य-च्छटाहत-रतालय-दीपभासः।** इसमें १३ पद समस्त हैं।

प्रायः प्रत्येक पद्य में समस्त-पद दिखायी पड़ते हैं। इन दीर्घ समस्त-पदों के साथ-साथ सरल लघु शब्दों का प्रयोग बड़ा ही रुचिकर प्रतीत होता है -

**गणयतु गणशः को भूपतींस्ताननेने**
**प्रतिदिन-रणभाजा ये जिता वा हता वा।**
**इस जगति विशेहे स्वस्य वंशस्य पूर्व्वः**
**पुरुष इति सुधांशौ केवलं राज-शब्दः।।१६।।**

---

१. सं.श.कौ., परि., पृ. ८०
२. दे.अ., पृ. ३५
३. ह.च., प. ८ ... गौडेष्वक्षरडम्बरः।।

मन्दिर के सुवर्ण-कलश का वर्णन कवि इतनी सरलता के साथ कर सकता है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

शब्द-प्रयोग में ये बड़े ही कुशल प्रतीत होते हैं। एक भी शब्द को हम उनके स्थान से हटा नहीं सकते।

समस्त-पदों से काव्य-प्रवाह बाधित नहीं होता। जहाँ तक शब्दालङ्कार की बात है, प्रायः प्रत्येक पद्य में अनुप्रास की छटा परिलक्षित होती है-

**वंशे तस्यामर-स्त्री-वितत-रत-कला-साक्षिणो दाक्षिणात्य-**
**क्षोणीन्द्रैर्वीरसेन-प्रभृतिभिरभितः कीर्तिमद्भिर्बभूव।।४।।**

यहाँ वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रासगत सौन्दर्य परिलक्षित होता है। अर्थालङ्कार में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के साथ-साथ विभावना[1], भ्रान्तिमान[2] प्रर्यायोक्ति और प्रतीप[3] के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। उपमा का एक उदाहरण देखा जा सकता है-

**यत्सिंहासनमीश्वरस्य कनकप्रायं जटामण्डलं**
**गङ्गा-शीकर-मंजरी-परिकरैर्यच्चामर-प्रकिया।**
**श्वेतोत्फुल्ल-फणांचलः शिव-शिरः सन्दानदामोरग-**
**श्छत्रं यस्य जयत्यसावचरमो राजा सुधा-दीधितिः।।२।।**

गङ्गायाः शीकरमंजर्यः परिकराः इव तैः यत् चामर-प्रक्रिया-गङ्गा के जल-बिन्दु किङ्कर के समान जहाँ चँवर डुलाने का काम कर रहे हों-ऐसा विग्रह करने पर उपमा अलङ्कार हो जाता है और यह उपमा सर्वथा कवि-जगत् में नूतन और रमणीय प्रतीत होती है। पुनः धवल फूले हुए सर्पों के फण ही जहाँ आंचल हो (श्वेताः फुल्लाः फणाः एवं अंचलः यत्र) विग्रह करने से रूपक की प्रतीति हो जाती है। कनक-प्राय (मानो सोने के बने हैं।)-में उत्प्रेक्षा परिलक्षित होती है। इस प्रकार एक ही पद्य में अलंङ्कार-त्रय की सत्ता दृष्टिगत होती है। सबकी एकत्र स्थिति से संसृष्टि अलङ्कार भी यहाँ हो जाता है। कवि का अलङ्कार-कौशल भी अतिशय प्रशंसनीय प्रतीत होता है।

प्रस्तुत अभिलेख में समालङ्कार का भी निम्नलिखित उदाहरण बहुत ही रोचक प्रतीत होता है-

---

१. दे.अ., प. १७
२. वही, १२; २ (क), वही ५
३. वही, २८

प्रत्यर्थि-व्यय-केलि-कर्मणि पुरः स्मेरं मुखं विभ्रतो-
रेतस्यैतदसेश्य कोशलमभूद्दाने द्वयोरद्भुतम्।
शत्रोः कोऽपि दधेऽवसादमपरः सख्युः प्रसादंव्यधा-
देको हारमुपाजहार सुहृदामन्यः प्रहारं द्विषाम्।।१३।।

शत्रुओं को अवसाद की प्राप्ति हुई तो सखा को प्रसादागम हुआ, मित्रों को एकावली की प्राप्ति हुई, तो अरि-वर्ग को प्रहार।

कवि-विरचित पद-शय्या सहज ही प्रशंसनीय प्रतीत होती है -

दुर्वृत्तानामयमरि-कुलाकीर्ण कर्णाट-लक्ष्मी-
लुण्टाकानां कदनमतनोत्तादृगेकाङ्गवीरः।
यस्मादद्याप्यविहत-वसा-मांस-भेद-सुभिक्षां
हृष्यत्पौरस्त्यजति न दिशं दक्षिणां प्रे (त)-भर्त्ता।।८।।

यहाँ नृप सामन्तसेन की वीरता समस्त पदों के द्वारा व्यञ्जित होती है। कवि उमापतिधर छन्दःशास्त्र में भी अतिनिपुण हैं। ३६ पद्यों के कलेवर वाले इस अभिलेख में छन्दों-स्रग्धरा (कु. १४ पद्य), शार्दूलविक्रीडित (७ पद्य), वसन्ततिलका (७ प.), पृथ्वी (३ प.), मन्दाक्रान्ता (२ प.), उपजाति (२ प.), शिखरिणी (१ प.), मालिनी (१ पद्य) और इन्द्रवज्रा (१ प.) का प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का सर्वप्रिय छन्द स्रग्धरा ही है। राज-परिवर्तन के साथ-साथ छन्द-परिवर्तन भी परिलक्षित होता है। संदर्भः- कीलहॉर्न, ए.इं., १, पृ. ३०५।

## ६१. नेपाली संस्कृत-अभिलेख

नेपाल भारतवर्ष के उत्तर में है। यह भारत का निकटतम पड़ोसी देश है। भारत से इसका सम्बन्ध घनिष्ठ है। प्राचीन काल में भारतीय शासक ही वहाँ भी शासन करते थे। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त ने नेपाल पर अपना अधिकार कर लिया था। तीसरी शताब्दी से लिच्छवी लोगों का नेपाल पर अधिकार था।

नेपाल के लिच्छवी वंशीय नृपों के द्वारा सन् ४६३ ई. से ७४४ ई. के बीच प्रायः ८९ अभिलेख उत्कीर्ण कराए गये, जो पंचम शताब्दी से अष्टम शताब्दी के मध्यभाग पर्यन्त भारत और नेपाल के सुहृद् सांस्कृतिक संबंधो को प्रकाशमान करते हैं। इन अभिलेखों में ३ स्तम्भ लेख हैं, प्रथम, द्वितीय एवं उनसठवाँ। एक तामपत्र अभिलेख है अरसठवाँ और शेष पच्चासी शिलालेख हैं।

ये सभी अभिलेख दिग्विजय, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक घटनाओं की स्मृति में उत्कीर्ण हुए थे। इनके रचनाकार राजकवियों ने स्वरचित प्रशस्तियों में

साहित्यिक सौन्दर्य के गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। फलतः ये साहित्यिक कृति के रूप में हमारे सामने उभर कर प्रस्तुत हुए हैं।[1]

इन नवासी अभिलेखों में केवल सत्रह अभिलेखों को छोड़कर शेष खण्डित रूप में उपलब्ध हैं। इन अभिलेखों में १० अभिलेख पद्यबद्ध हैं। उन्चास अभिलेख गद्यात्मक हैं और तीस अभिलेख चम्पूकाव्यात्मक हैं। इनमें ६५ अलंकार है तथा १४३ पद्यों में १३ छन्द प्रयुक्त हैं। मात्रिक छन्द में मात्र आर्या ही प्रयुक्त है।[2]

शिलालेख की एक झलक इस बात की पुष्टि कर देती है कि संस्कृत-साहित्य की परम्परा नेपाली-संस्कृत-साहित्य में अक्षुण्ण है।

सन् ४६४ ई. में उत्कीर्ण राजामानदेव का प्रशस्ति-स्तम्भ-लेख उपलब्ध होता है। इसमें १६ शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध एक अत्युत्कृष्ट संस्कृत-काव्य का दर्शन होता है, जो काव्यगुणों के निकषोपल पर अति-मधुर एवं पुष्ट रचना प्रमाणित होता है। यह भाव, भाषा एवं काव्यकला की साक्षात् त्रिवेणी रही है।

पति की मृत्यु के बाद पत्नी की क्या दुर्दशा होती है, यह सहज ही अनुमेय है। मानदेव की विधवा माँ संसार से विमुख हो पति का अनुगमन करने के लिए तत्पर है। परन्तु अपने लाडले मानदेव के मुखकमल से आविर्भूत अश्रुकणों से क्लिन्न जाल में फंस खिन्न विहगी के समान स्थिर हो जाती है -

**किं भौगैर्मम किं हि जीवितसुखैस्त्वद्विप्रयोगे सति**
**प्राणन् पूर्व्वमहंजहानि परतस्त्वं यास्यसीतो दिवम्।**
**इत्येवं मुखपङ्कजान्तरगतै र्नेत्राम्बुमिश्रै र्दृढं**
**वाक्-पाशै र्विहगीव पाशवशगा बद्धा ततस्तस्थुषी।।१०।।**[3]

निम्नलिखित पद्य उल्लेखालङ्कार का उत्कृष्ट उदाहरण है-

**पुत्रेऽप्यूर्जित-सत्त्व-विक्रम-धृतिः क्षान्तः प्रजावत्सलः**
**कर्ता नैव विकत्थनः स्मितकथः पूर्व्वाभिभाषी सदा।**
**तेजस्वी न च गर्व्वितो न च परां लौकज्ञतान्नाश्रितः**
**दीनानाथ सुहृत् प्रियातिथिजनः प्रत्यर्थिना माननुत्।।१२।।**

---

१. The object that prompted the engraving of these insuriptions was generally the recording of some pious donation of village or the building of temple or even that of describing the exploits of a king. In all these cases, it is therefore futile to expect any flashes of literary merit in these compositions recorded in inscriptions. But some time, when a court-poet sets himself to the task of extolling the virtues and exploits of his patron king and his ancestors, the result is sometimes recorded in the excellent specimens of Sanskrit Kavya or artificial poetry. These prasatis very often contain .... but also words and phrases similar to those found in the standard classical poetry of the Masters of Sanskrit literature. Diskalkar, D.B./ Selections from Sanskrit Inscriptions. PP. 9.

२. **नेपाली संस्कृत-अभिलेखों का हिन्दी अनुवाद**, पृ. ८

३. १. आर. नोली, **ने.ई.शु.कै.सं.** १, १०. (न.सं.अ.हि.अ. से उद्धृत)

गण्डकी नदी की विशालता, भयानक भँवर महातरंगों से तरङ्गायित चंचल धारा का साधु वर्णन अल्पसमस्त-पदों और तद्रसानुकूल वर्णों के प्रयोग से व्यक्त होता है-

अद्यैव प्रियमातुलोर विभवक्षोभार्णव-स्पर्धिनाम्
भीमावर्त्ततरङ्गचंचलजलं त्वं गण्डकीमुत्तर।
सन्नद्धै र्व्वर वाजितैजर-शतैरन्धेभि तीर्त्वा नदीं
त्वत्सेनामिति निश्चयान्नरपतिरुतीर्य प्रतिवस्तदा।।१८।।

इस पद्य की तुलना विशाखदत्त के मुद्राराक्षस के पद्य-विशेष के साथ की जा सकती है।[1]

अभिलेख का अन्तिम पद्य अति सरल प्रतीत होता है एवं प्रसाद गुणयुक्त है-जित्वा मल्लपुरीं ततस्तु शनकैरम्याजगाम स्वकं देशं, प्रीतमनास्तदा खलु .... प्रादाद् द्विजेभ्यो धनम्। राज्ञी राज्यवती च साध्यमतिना प्रोक्तां दृढं सूनु (ना), भक्त्याम्ब त्वमपि प्रसन्न-हृदया दानं प्रयच्छस्व तत्।।१६।।

प्रस्तुत काव्यात्मक शैली के अवलोकन से यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि ऐसी शैली की परम्परा का विकास कतिपय शताब्दियों से होता आ रहा होगा।

राजा मानदेव की सभा के प्रसिद्ध कवि अनुपरम थे। उनका 'द्वैपायन स्तोत्र-अभिलेख एवं राजा जयदेव के सभाकवि बुद्धकीर्ति की रचना पशुपति-राजवंश-प्रशस्ति-अभिलेख संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं।

४० अभिलेखों के १४१ पद्यों में चौदह छन्द प्रयुक्त हुए हैं-अनुष्टुप् शार्दूल, मालिनी, वशस्थ, मन्दाक्रान्ता, प्रहर्षिणी, शिखरिणी, आर्या, उपगीति, रुचिरा, मंजुभाषिणी, स्रग्धरा, उपजाति और वसन्ततिलका।

इन अभिलेखों का एक और भी वैशिष्ट्य है। परवर्ती कवियों ने स्मरण, परिणाम, उल्लेख, प्रतिवस्तूपमा, विनोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, असंगति, अन्योन्य, सम, प्रसम अधिक अत्युक्ति, विशेष, कारणमाला, पर्याय परिसंख्या, विकस्वर, उत्तर आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है।[2]

श्रृंगार को छोड़कर शेष आठ रस का वर्णन यहाँ उपलब्ध होता है। साथ ही परवर्ती वात्सल्य और भक्ति की चर्चा भी मिलती है।

अभिलेखों में यत्र-तत्र दिग्विजय, प्राकृतिक सीमा एवं मार्मिक स्थलों के वर्णन रुचिकर शब्दचित्र के उदाहरण प्रतीत होते है। भव्य-वैशिष्ट्य के सफल पारखी डी.आर. रिग्मी ने महाकविबुद्धकीर्ति के साथ-साथ राजदेव-द्वितीय को भी एक महान् कवि की संज्ञा दी है।

१. मु.रा., २.२३ सभी सव
२. नं.सं.अ.हि.अ., पृ. ६

बाणभट्ट, सुबन्धु आदि के वाग्वैचित्र्य, कविकल्पना एवं प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन उनकी अलंकृत काव्यशैली में परिलक्षित होता है। ऐसा वर्णन राजा जयदेव-द्वितीय के पशुपति-राजवंश-प्रशस्ति-अभिलेख में पाया जाता है-

**नालीनालीकमेतन्न खलु समुहितो राजतो राजतोऽहं**
**पद्मपद्मासनाब्जं कथमनुहरतो मानवा मानवा ये।**
**पृथ्व्याम् पृथ्व्यान्न मादृग्भवति हृतजगन्मानसेवाः**
**भास्वान् भास्वान् विशेषं जनयति न हि मे वा सरो वासरो वा।।**[1]

अर्थात् रजतकमल कहता है-निश्चय ही मैं कमल हूँ, यह मिथ्या नहीं है, किन्तु मैं वह कमल नहीं हूँ जो सरोवर में विकसित होता हुआ शोभित हो रहा है, अपितु मैं राजा द्वारा समर्पित किया गया, शोभायमान रजतकमल हूँ। हे मानवो! लक्ष्मी और ब्रह्माजी के कमल मेरी तुलना कैसे कर सकते हैं ?[2] क्योंकि मेरी जैसी नवीनता उनमे नहीं है। वे तो पुराने हैं। दूसरी बात यह है कि मैं मानवी (मानवकृत) हूँ, किन्तु वे अमानवी (दैवी) हैं। इस विस्तीर्ण पृथ्वी पर मेरे जैसा कमल न तो जगत् के किसी मनुष्य के हृदय में है, न ही किसी सरोवर में है। मुझ-चमकते हुए दिव्य कमल में सूर्य या दिन अथवा सरोवर ने ही कोई विशेष परिवर्तन या विकार उत्पन्न किया है, अर्थात् सूर्य, दिन एवं सरोवर के बिना भी मैं सदैव देदीप्यमान (विकसित) रहता हूँ।

## गद्यकाव्य

गद्यकाव्य की दृष्टि से नेपाली अभिलेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। संस्कृत-गद्य-साहित्य के संवर्धन में इनका योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। राजाशिवदेव प्रथम के अभिलेखों की गद्य-शैली उत्कलिकाप्राय ही है। सीमा-निर्धारण या मुनियों द्वारा राजाज्ञा-प्रसारण आदि का विवरण, नेपाल के अभिलेखों में समास-विरहित मुक्तक गद्य-शैली में है। इसका एक उदाहरण-१. ओऽम् स्वस्ति मानगृहात् सु ................ गा ................. कल्याणो निरुपगगुण

२. ......................... (भ) ट्टारक ..... महाराज-श्रीशिवदेवः कुशली
३. ................... (दिवसांते) नः प्रधानपुरस्सरान् ग्रामकुटम्बिनः फु-
४. शिलामाभाष्य सम (ज्ञा) पन्नति विदिराग् भवतु भवतां यथायाने-
५. (न) ......... प्रणत .... ञ्च ......... चरणयुगलेन प्रख्याता ...........

---

१. आर., नोली, **नेइ.गु.कै. सं, हा,** प. २३
२. ने.सं.अ.हि.अ., पृ.६

१४. राजाज्ञा सम्यक् पालनीयेति समाज्ञापना दूतकश्चात्र

१५. रामशीणवार्त्त।[1] संवत् १०६ वैशाखमासे शुक्ल दिवा दशम्याम्

परन्तु राजा नरेन्द्रदेव तथा राजा जयदेव-द्वितीय के अभिलेख में उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक गद्य-शैली-द्वय का मिश्रित रूप मिलता है। राजा जयदेव-द्वितीय के "नवसल नारायण अजीविका-शिलालेख में मुक्तक गद्य-शैली का प्रयोग अतिरुचिकर प्रतीत होता है-

व्यवहार-परिनिष्ठित-जातं द्रव्यस्य जपग्रपरंचालिकेन दातव्यम्। वस्तु द्रव्यं न प्रयच्छेत् स्वस्थानवास्तव्य स्यान्यस्थानीयस्य च धारणकस्यात्रैव रौधोपरौधो भवेत्।

कतिपय नेपाली अभिलेखों[2] से उदत्त चरित्र एवं दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए दीर्घसमासात्मक कोमलकान्त पदों का प्रयोग किया गया है। राजा नरेन्द्र-देव के अमात्य प्रियजीव को "यैगाहिटि लागनटोले त्र्यगुहार शिलालेख" में राजा के उदात्त चरित्र का चित्रण उत्कलिकाप्राय शैली में ही है।[3] राजा भीमार्जुनदेव के लागन टोलेकर दण्डमुक्ति शिलालेख पर महाकवि-हरिषेण-विरचित "इलाहाबाद समुद्रगुप्तप्रशस्ति का स्तंभलेख" की छाप पूर्णतः परिलक्षित होती है। भावों के अनुरूप कोमल एवं ओजपूर्ण पदों का प्रयोग निम्नलिखित गद्य-खण्ड में दिखायी पड़ता है-

वो यथानेन स्वगुण-मभि-मयूखालोक-ध्वस्ताज्ञान-तिमिरेण भगवद्-भवपाद-पङ्कज-प्रणामानुष्ठान-तात्पर्योपात्तायतिहित श्रेयसा स्वभुज-युग-वलोत्खाताखिल-चारिवर्गेण श्री-महासामन्तांशु-वर्मणा मां विज्ञाप्य मदनुज्ञातेन सता युष्माकं सर्वाधिकरणाप्रवेशेन प्रसादः कृतः।[4]

अतः हम ऐसा कह सकते हैं कि नेपाली संस्कृत-अभिलेखों का काव्यात्मक सौन्दर्य भारतवर्ष के हरिषेण, वत्सभट्टि, वासुल प्रभृति के अभिलेखों से किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते।

## ६२. बृहत्तर भारत और भारतीय अभिलेख

भारतीय व्यापारियों के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार मध्य एशिया, पूर्वी द्वीप-समूह, चीन और जापान तक हो गया।

भारतीय वाङ्मय के आधार पर हमें यह पता चलता है कि सुमात्रा (=सुवर्ण द्वीप) में सर्वप्रथम ईश्वर-वर्मा का शुभागमन हुआ और वहाँ भारतीय उपनिवेश बनाया गया। वहाँ

---

१. नै.सं.अ.हि.अ., पृ. ४१-६२ भी.प.प्रा.लि.शि.-२३
२. वही पृ. १२
३. वही पृ. १५४, पं.-१-२ यैं ला. य.शि.
४. आर.नोली. नै. ई. गु.कै., १, सं. ३१, ५-७ (खो.क.नि.शि.)

के अभिलेख में उस देश को सुवर्णभूमि या सुवर्ण-द्वीप कहते हैं। सभी अभिलेख संस्कृत में हैं और उनकी लिपि पाँचवी शताब्दीय भारतीय लिपि से मिलती-जुलती हैं। लेखों के आधार पर यह पता चलता है कि श्रीविजय नामक स्थान तत्कालीन संस्कृत विद्या का केन्द्र बन गया। सुमात्रा में हिन्दू-धर्म और महायान का विशेषतः प्रचार था।

मलय के संस्कृत लेखों से बोद्ध धर्म के प्रचार का विवरण मिलता है। ये सभी पंचम शताब्दीय गुप्त-लिपि में उत्कीर्ण हैं।

जावा में प्राप्त संस्कृत-लेखों से जावा पर संस्कृत का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। पंचम शताब्दी से वहाँ संस्कृत में लेख भी उत्कीर्ण हुए एवं उनकी लिपि उत्तर भारत की है। षोडश महादान की चर्चा भारतीय अभिलेखों में मिलती है। जावा का शैलेन्द्रवंशीय इतिहास वहाँ के अभिलेखों में ही संरक्षित है।

भारत के प्राचीन अभिलेखों से सुवर्णभूमि (=सुमात्रा) से वर्मा और मलाया का भी बोध होता है। वर्मा के लेख और मलाया की प्रशस्तियाँ चतुर्थ और पंचम शताब्दीय संस्कृत-भाषा में लिखित हैं, जिनमें दान का वर्णन किया गया है।

बोर्नियो में चतुर्थ शताब्दी से ही भारतीय उपनिवेश स्थापित होते थे। संस्कृत-लेख-मूर्तियों की आधार-शिला किंवा स्तम्भ पर उत्कीर्ण हुए। एक यूप-प्रशस्ति में वहाँ के मूलवर्मन् नामक राजा के धार्मिक कृत्यों का उल्लेख उपलब्ध होता है।

बालि द्वीप से भी संस्कृत-भाषा के लेख प्राप्त हुए हैं। उनमें धर्मादमन नामक एक राजा का विशेषः उल्लेख मिलता है।

हिन्द-चीन (इण्डोचाइना) के विभिन्न प्रदेश-चम्पा (अनाम), कम्बोज (कम्बोडिया) आदि से जो भी लेख मिले हैं, सबकी भाषा संस्कृत ही है। अनाम की प्रशस्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत वहाँ की राजभाषा के पद पर आसीन थी और उसकी लिपि ब्राह्मी थी। चम्पा में प्राप्त एक चतुर्थ शताब्दीय शिलालेख में नरबलि का उल्लेख भी मिलता है। दक्षिणी चम्पा से उपलब्ध एक संस्कृत-लेख में मारवंशी नृपों का उल्लेख छन्दोब्द्ध पद्यों में किया गया है।[1]

## कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख

कम्बोडिया का प्राचीन नाम 'कम्बोज' है। वहाँ के संस्कृत अभिलेख से बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ता है। उन प्रशस्तियों में दान का विवरण, दानग्राही ब्राह्मणों की विद्या, रामायण, महाभारत, हिन्दूशास्त्र और बौद्ध-ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। नवीं शताब्दी की प्रशस्तियों में भारतीय षड्दर्शन की भी चर्चा है।

---

१. प्रा.भा. अ., पृ. २१६-२२१

८वीं शताब्दी से १०वीं शताब्दी के मध्य वहाँ संस्कृत भाषा की अतिशय वृद्धि हुई और अधिकाधिक अभिलेख संस्कृत में उत्कीर्ण हुए। एक लेख में कम्बोजनृप यशोवर्मन् के द्वारा महाभाष्य पर लिखित एक टीका का भी निर्देश है।[1] डॉ. एम.के. शरण के अनुसार तो कतिपय कम्बोजीय अभिलेखों के पद्य भारतीय अभिलेखों के पद्यों से भी अच्छे प्रतीत होते हैं।[2] कम्बोज में अभी तक १४८ संस्कृत के अभिलेख मिले हैं। यहाँ मेवीन अभिलेख पर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

यह सुन्दर अभिलेख कई भागों में भग्न हो चुका है, एक भाग तो लुप्त भी हो गया है। इसका पता सर्वप्रथम एम. मार्शल (M. Marchal) ने १६२२ के अक्टूबर महीने में लगाया। अंगकोरथॉम के निकट 'मेवोन' के स्मारक में उत्खनन के क्रम में यह मिला। बाहर प्राचीर के इ-गोपुर की ओर जानेवाले मुख्यमार्ग में यह पाया गया था। इसे पुनः उसी के पास खड़ा करके स्थापित कर दिया गया।

इस अभिलेख में कुल २१८ पद्य हैं, जो संस्कृत भाषा में विरचित हैं। इसका समय ८७४ शकसंवत् ( = ६५२ ई. स.) है। अभिलेख में माघमास के शुक्लपक्ष के प्रतिपद का निर्देश है। यह नृप राजेन्द्रवर्मन् की प्रशंसा में उत्कीर्ण है एवं उनके कतिपय धार्मिक कार्यों का उल्लेख यहाँ किया गया है। सिद्धशिवपुर में स्थित लिङ्गसिद्धेश्वर के लिए दान और साथ ही वहाँ शिवलिङ्ग एवं पार्वती के मूर्ति-द्वय की स्थापना का विशेषतः उल्लेख ही इस अभिलेख का उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त कई मूर्तियों-शिव-पार्वती, विष्णु, ब्रह्मा और अष्ट शिवलिङ्ग की स्थापना की भी चर्चा इसमें है।

अभिलेख के आरम्भ में भगवान् शङ्कर की स्तुति की गयी है। इसके उपरान्त राजेन्द्रवर्मन्-द्वितीय की वंशावली का उल्लेख मिलता है। इनके वंश के पूर्वपुरुष सोमा कौण्डिन्य- वंशीय थे, जिनका प्रातःस्मरणीय नाम बालादित्य था। वे अनिन्दितपुर-निवासी थे। उन्होंने रणभूमि में शत्रुओं की पत्नियों को वैधव्य प्रदान किया और स्वर्ग द्वार-पुर जो इन्द्रपुरी की शोभा से ईर्ष्या करती थी, में एक शिवलिङ्ग की स्थापना की और उसकी पूजा के निमित्त अत्यधिक सम्पत्ति दान-स्वरूप दिया।

ब्रह्म-क्षत्रियवंश की उसकी भागिनेयी थी, जिसका नाम सरस्वती था। उसका पाणिग्रहण ब्राह्मणों में श्रेष्ठ विश्वरूप के साथ हुआ। इन दोनों से भुवन के लिए हितकारी, जन्मतः पवित्र, अपरा लक्ष्मी के समान महेन्द्रदेवी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। इसका

१. वही, पृ. २२३

२. से. कम्बो. इ. पृ. ७, Some of these Sanskrit inscriptions exced the best compositions at home, and my visit to the country fo South-East Asia served as an incentive to write this...

विवाह ....पुराधीश के पुत्र राजा महेन्द्र वर्मा के साथ सम्पन्न हुआ। जिस प्रकार कश्यप ने अदिति के गर्भ से सूर्य को उत्पन्न किया, उसी प्रकार महेन्द्रदेवी के गर्भ से महेन्द्र वर्मा ने एक पुत्र को उत्पन्न किया,[1] जिसका नाम राजेन्द्र वर्मा पड़ा। यह बालक अवर्णनीय तेज से सम्पन्न था। इसी राजा की वीरता, विद्या एवं शासन-कुशलता का वर्णन पूरी प्रशस्ति में किया गया है। इसका शासनकाल ९४४ ई. स. से ९६८ ई. सं. है।

२१८ पद्यों का यह प्रस्तुत शिलालेख एक लघुकाय काव्य के सदृश प्रतीत होता है। इसके ५१ पद्य क्षतिग्रस्त हैं। इसका पद्य-चतुष्टय पूर्णतः अपठनीय है[2]। कतिपय पद्यों का पूर्वार्ध क्षतिग्रस्त है, तो अन्यों का उत्तरार्ध ही पूर्णतः क्षत है। किसी-किसी पद्य का एक पाद अपठनीय है, तो दूसरों के पादत्रय ही। पद्य-विशेष के आरम्भ में ही एक-दो पद्य अपठनीय हैं, तो अन्य द्वित्रा पद्यों के अन्तिम एक-दो पद ही लुप्त हैं[3]।

यह अभिलेख साहित्यिक-सौन्दर्य की एक गुहा जैसा प्रतीत होता है। अलङ्कार के क्षेत्र में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों ही उपलब्ध होते हैं। शब्दालङ्कार में अनुप्रास की छटा सर्वत्र परिलक्षित होती है। वृत्त, छेक, श्रुति एवं अन्त्यानुप्रास के उदाहरण यत्र-तत्र मिलते हैं-

**दिवःपृथिव्योरपि गीयमानज्जिष्णोर्यशोप्यर्ज्जितवीर्य्यसम्पत्।**
**कर्णासुखं श्रोत्रसुखस्य शङ्के, यस्योपमार्हं यशसो न जातम्।। ९०।।**

इस पद्य के प्रथम पाद में व-व की आवृत्ति से वृत्यनुप्रास, तृतीय पाद में सुख-सुख की आवृत्ति से छेकानुप्रास एवं द्वितीय पाद में ज्, य्, श, ष, स, की उपस्थिति से श्रुत्यनुप्रास के उदाहरण भी उपलब्ध हो जाते है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित पद्य में यमक का उदाहरण भी दृष्टिगत होता है-

**आसाद्यशक्तिं विबुधोपनीतां माहेश्वरीं वानमयीममोघाम्।**
**कुमारभावे विजितारिवर्गो यो दीपयामास महेन्द्रलक्ष्मीम्।।२०।।**

यहाँ कुमार शब्द से शिव-पुत्र स्कन्द और साथ ही महेन्द्रवर्मन् के पुत्र राजेन्द्रवर्मा का भी बोध होता है।

पूर्वार्ध में अन्त्यानुप्रास भी है। अर्थालङ्कार के क्षेत्र में सुन्दर-सुन्दर उपमाएँ इतस्ततः बिखरी हुई मिलती हैं। यहाँ उपमा के एक-दो उदाहरणों की समीक्षा की जा सकती है-

---

१. मे.अ.प. १३ देव्यान्तस्यामदित्यान्दिवसकर इवोत्पादितः कश्यपेन
श्रीमद्राजेन्द्रवर्म्मावनिपतिरभवत्तेजसा भास्करो यः।।१३।।

२. वही, प.सं. ४८, ५०, ५२, और ५४ (४ पद्य)

३. मे.अ., प.सं. १०८, १८६ और १६१ (= ३ पद्य १)

**दुग्धाम्बुराशेरिव पूर्णचन्द्रश्चण्डांशुरत्नादिव चित्रभानुः।**
**शुद्धान्वयाद् यो नितरां विशुद्धः प्रादुर्बभूवाखिलभूपवन्द्यः।।१४।।**

जैसे क्षीरसागर से राकेश एवं सूर्य से अग्नि का प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार परम पवित्र ब्रह्म-क्षत्रिय वंश में सभी नृपों से बन्द्य परमविशुद्ध महेन्द्रवर्मा का जन्म हुआ।

राकेश से नृप के लावण्य और 'चण्डांशुरत्न' से उसके असह्य तेज का बोध होता है।

दिन-प्रतिदिन महेन्द्रवर्मा की अनिंद्य सुन्दरता बढ़ती जा रही थी। सौन्दर्य-वृद्धि में कदापि कमी नहीं आयी। सतत प्रवर्धमान लावण्य के फलस्वरूप उसने चन्द्रमा की सुन्दरता का उपहास भी किया।

**विवर्द्धमानोऽन्वहमिद्धकान्तिर्वपुर्विशेषेण मनोहरेण।**
**यस्सर्व्वपक्षोदयमादधानस्तिरश्चकारैव हिमांशुलक्ष्मीम्।।१७।।**

यहाँ व्यतिरेकालङ्कार व्यंग्य होता है

निम्नलिखित पद्य में रूपकालङ्कार अतीव रुचिकर प्रतीत होता है-

**शिष्टोपदिष्टं प्रतिपद्य सद्यःक्षेत्रं यमुत्कृष्टमकृष्टपच्यम्।**
**श्रद्धाम्भसा सिक्तमरुक्षदुच्चैः शास्त्रस्य चास्त्रस्य बीजमग्र्यम्।।२२।।**

नृप महेन्द्रवर्मा में बोये गए शात्र-अस्त्र के पुष्ट बीज श्रद्धारूपी जल के सिंचन से प्रचुर फलदायक हुए। पद्-शय्या भी मनोहारिणी प्रतीत होती है।

नृप राजेन्द्रवर्मा में असंख्य गुण कूट-कूट कर भरे थे, जिसकी प्रशंसा हजारों मुख से की जाती थी। उनकी संभावना एक ऐसे भाष्य के रूप में की जाती है, जिसकी टीका करने में विद्वान् भी असमर्थ हो जाते थे -

**सहस्रमुखसंकीर्त्यं गम्भीरं गुणविस्तरम्।**
**यस्य भाष्यमिव प्राप्य व्याख्या खिन्नापि धीमताम्।।२००।।**

यहाँ कवि पतञ्जलिकृत-महाभाष्य की ओर संकेत कर रहा है। प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा का गौरव सहज ही प्रतीत हो रहा है।

राजा की कीर्तिरूपी क्षीर-सागर इस भुवन को आप्लावित कर रहा था। पृथ्वी ने जलमग्न होने के भय से छाया के रूप में चन्द्र का आश्रय ले लिया-

**भुवनाभुवनाप्लावनोद्वेले यत्कीर्त्तिक्षीरसागरे।**
**छायाव्याजेन भूर्भीत्या नूनमिन्दुमुपाश्रिता।।१०६।।**

'कीर्तिक्षीरसागर' में रूपक है और 'नूनम्' की उपस्थिति से उत्प्रेक्षा-अलङ्कार हो जाता है। पुनः अलङ्कार-द्वय नीर-क्षीर-न्याय से उपस्थित है। अतः यहाँ 'सङ्कर' अलङ्कार हो जाता है।

राजा राजेन्द्रवर्मा के द्वारा सम्पादित लाखों यज्ञों के धूम से सभी दिशाएँ आच्छन्न हो गयीं। इनसे भगवान् भास्कर की किरणें भी बाधित होने लगीं। इतना ही नहीं, उसने इसके साथ-साथ स्वर्ग और इन्द्र के यश को भी धूमिल बना दिया -

**लक्षाध्वरोत्थैः स्थगयद्भिराशा धूमैर्निरुद्धार्ककराकरैर्य्यः।**
**दिवञ्च शातक्रतवीञ्च कीर्तिं मलीमसत्वं युगपन्निनाय।। ६२।।**

यहाँ सह (युगपत्) के बल पर सहोक्ति अलङ्कार हो जाता है। वह राजा सदाचारी था। अतः वह परस्त्री-विमुख भी था। पुनरपि संग्रामभूमि में वह शत्रुस्त्री के साथ आनन्द-विभोर हो पाणिग्रहण-समारोह सम्पन्न करता था -

**परस्त्रीविमुखो योऽपि सदाचारविपक्षयाः।**
**केनापूयाजो परस्त्रीणां पाणिग्रहविधिं व्यधाद।।१५५।।**

प्रस्तुत पद्य विरोधाभास का बहुत ही सुन्दर उदाहरण प्रतीत होता है। कोई नृप उस राजेन्द्रवर्मा के कुछ गुणों की समता कर सकता था। परन्तु वह इसकी महिमा को चुराने में सर्वथा समर्थ नहीं हो सकता था। ठीक उसी प्रकार, जैसे मयूर नाचता भी है, उसके कण्ठ भी नीले होते हैं। परन्तु वह भगवान् शंकर कदापि नहीं हो सकता -

**अन्योऽपि सन् केनचिद्देवतुल्यो गुणेन नो यन्महिमानमाप।**
**नृत्तव्रतो याति हि नीलकण्ठो न तावतैवेश्वरतां मयूरः।। ६८।।**

उक्ति-वैचित्र्य सहज ही मनोहारी प्रतीत होता है। कवि छन्दःशास्त्र में भी निपुण प्रतीत होता है। इस अभिलेख में इन्होंने ५ छन्दों-शार्दूलविक्रीडित रा-४, व-१०, १२७, वसन्ततिलका (५-७), स्रग्धरा (८, ११, १३, २, ८, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति (१४-१०४, २०६-२१७), श्लोक (१०५-२०५) का प्रयोग किया है। सर्वाधिक उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा) का ही प्रयोग हुआ है। संभवतः यह उनका सर्वाधिकप्रिय छन्द रहा है।

कवि का शब्द-भाण्डार, काव्यशास्त्र[1] एवं व्याकरण[2]-सम्बन्धी ज्ञान भी प्रशंसनीय प्रतीत होता है।

---

१. **मे.अ.** क प. २१६- न धर्म्महितोः पुनरुक्तदोषः।
ख प. ७३, ........ संव्यश्नुते शब्दगुणानुबन्धम् ......।।

२. वही प. १४३ विभक्तिप्रकृतीनां यः सप्तधा विदधत् पदे।
तद्धितार्थपरश्चासीदागमाख्यातकृत्यवित्।।

वस्तुतः भारत से सुदूर कम्बोज देश में विरचित यह अभिलेख भारतवर्ष विरचित कतिपय अभिलेखों से भी अच्छा प्रतीत होता है। संदर्भ-बी.इ. एफ. इ. ओ., टोम २५, १६२५. पृ. ३०६-५२; सं.क.इ., पृ. ३६-३७।

पालि, प्राकृत और संस्कृत अभिलेखों पर दृष्टिपात करने के उपरान्त यह प्रतीत होता है कि ये अभिलेख मात्र अभिलेख ही नहीं हैं, जिनसे भारतवर्ष के विभिन्न नृपों के जीवन-चरित और उनके क्रिया-कलापों पर प्रकाश पड़ता है। ये अभिलेख, विशेषतः संस्कृत के अभिलेख ही, संस्कृत-वाङ्मय के अनूठे रत्न हैं। समुद्रगुप्त का प्रयागस्तम्भ अभिलेख, मन्दसौर अभिलेख (पट्टवायश्रेणी), यशोधर्मन्-कालीन मन्दसौर अभिलेख, ईशानवर्मन् का हड़ाहा-अभिलेख, और विजयसेन का देवपाराअभिलेख तो संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास-गगन में देदीप्यमान नक्षत्र हैं। इनके अभाव में वस्तुतः संस्कृत-वाङ्मय का इतिहास-गगन पूर्णतः तो नहीं, परन्तु आंशिकरूप से तमसाछन्न अवश्य ही हो जाता।

यही बात कम्बोज-देशीय मेहोन अभिलेख के विषय में भी चरितार्थ होती है। सच पूछा जाय तो यह संस्कृत-काव्य के समग्र गुणों से विभूषित एक लघुकाव्य है। जिस प्रकार हमारे सभी धार्मिक कृत्यों के अन्त में होमादि का विधान है, इसके अभाव में ये अनुष्ठान अपूर्ण होने के फलस्वरूप फलद नहीं होते; उसी प्रकार अभिलेख-साहित्य के बिना हमारा संस्कृत-वाङ्मय सर्वथा अपुष्ठ और अंग-विहीन ही रह जाता[1]।

---

१. 5.I, P.F.E.PP IX-X.-"inscriptions in Sanskrit and Prakrit constitute an important branch of Indian literature. No study of Classical Sanskrit and Prakrit can be complete without a knowledge of the enormous mass of literary material, both in prose and verse, embodied in inscriptions. In epigraphic records, references are quite abundent to various aspects of Indian life and thought. Their study is therefore not only indispensable to the student of political history, but also to all who are interested in India's contribution to the civilization of the world. Students of the history of Indian philosophy, literature, law, society, geography, etc., have all got to supplement their knowledge by a study of epigraphic literature. Attention may, by way of illustration be invited to (1) the mention of Sankaracharya in a Cambodian record and (2) of Kalidasa and Bharavi in a Deccan epigraph of 634 A.D., (3) the reference to a Mahesvara Sect in a Mathura inscription of 380 A.D., (4) to the system of trial by ordeal in a Vishnukund in record, (5) to the Brahmana ancestry of the Kadambas who later on ranked as Kshatriyas, (6) the help offered by epigraphy in the identification of Sravasti, etc.

Cont......

## संदर्भ-ग्रन्थों की सूची

१. अभिलेखमाला-सम्पा. पं. रमाकान्त झा, एम.ए. और पं. हरिहर झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
२. अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, बी.ए. स्मिथ, चतुर्थ संस्करण, ऑक्सफोर्ड, १९६७
३. अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट
४. अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ-पाणिनि, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस
५. इंस्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक, भाग-१-२, ए.सी. ऊलना, पंजाब यूनिवर्सिटी, १९२४
६. इंस्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक-बेणीमाधव बरुआ, कलकत्ता-१९४६
७. इंस्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक (प्रियदर्शि-प्रशस्तयः) (संस्कृत-अंगरेजी-अनुवाद के साथ) -संपादक-पं. रामावतार शर्मा, पटना-१९१५
८. ए कम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-कलकत्ता, १९३७
९. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, ए.बी.कीथ,-ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५३
१०. ऐन इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत-ए.सी. ऊलर, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६६
११. कॉर्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडिकेरल, फ्लीट, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी
१२. काव्यप्रकाश-मम्मट-संपादक-डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस-१.

Cont..........

There are many epigraphs which are excellent pieces of Kavya and can stand comparison with the best products of the celebrated masters of Classical Sanskrit and Prakrit. Their superiority to extant literary tradition as sources of political and institutional history has been demonstrated by scholars since the days of Colebrooke and happily needs no further emphasis. Unlike a large number of literary works, most of the inscriptions can be assigned to a definite date or epoch. Unlike most literary works, again, the epigraphic records can be more easily grouped geographically and are thus the best test for the regional classification of the ritis of poetical composition as expounded by rhetoricians and also of a similar grouping of the Prakrit dialects preferred by grammarians. A considerable number of epigraphs were composed by poets attached to the courts of kings, and there is no doubt that the merits of their published works secured royal favour for them. But, in the majority of cases, all other works of the poets are lost and their claim for a glorious place in the history of Indian Literature in eloquently advanced only by particular epigraphic kavyas that have survived. ...... Harish, Saba-Virasena, Vasula, Keshava, Vatsabhatti, Kubja and numerous unnamed authors, whose works have been quoted in the following pages, were poets who claim recognition; but the only specimens of their composition survive in inscriptions.

१३. काव्यादर्श-दण्डिन्-अंग्रेजी अनु.-एस.के. बेलबलकर-ओरियण्टल बुक सप्लाई, पुणे-१६२४
१४. गुप्त अभिलेख-डॉ. वासुदेव उपाध्याय-बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना
१५. गुप्तवंशीय अभिलेखों का धार्मिक अध्ययन-सुमन्त गुप्ता, अज्य बुक सर्विस, नयी दिल्ली, १६८१
१६. गुप्त साम्राज्य-डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त-विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
१७. गुप्त साम्राज्य का इतिहास-भाग-१-२, डॉ. वासुदेव उपाध्याय, इण्डियन प्रेस लि, इलाहाबाद।
१८. छन्दोमंजरी-गंगादास-प्रका.-जयकृष्ण दास हरिदास गुप्त- चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस सिटी, १६४०.
१६. नेपाली संस्कृत अभिलेखों का हिन्दी अनुवाद-डॉ. कृष्णदेव अग्रवाल 'अरविन्द' ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १६८५
२०. पालिसाहित्य का इतिहास-डॉ. भरत सिंह उपाध्याय-हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १६७२
२१. प्राकृत साहित्य का इतिहास-डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
२२. प्राचीन अभिलेख माला-सम्पा. पं. भवदत्त शास्त्री और के.पी. परब काव्यमाला सीरिज, बम्बई-१६०३
२३. प्राचीन भारत-डॉ. राजबली पाण्डेय-नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी।
२४. प्राचीन भारतीय अभिलेख-डॉ. वासुदेव उपाध्याय, प्रज्ञा प्रकाशन, पटना।
२५. प्राचीन भारतीय अभिलेख-संग्रह-डॉ. श्रीराम गोपाल-राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर-१६८२.
२६. भारतीय अभिलेख-एस.एस. राणा-भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली-१६७८
२७. भारतीय अभिलेख संग्रह-फ्लीट-(अनु. जी.पी. मिश्र) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
२८. महाभाष्य-पतंजलि।
२६. मालविकाग्निमित्रम्-कालिदास
३०. मुद्राराक्स-विशाखदत्त-सम्पा.-डॉ. सत्यव्रत सिंह-चौखम्बा संस्कृत सीरिज-आफिस, वाराणसी-१, १६६८
३१. मिड्ल इण्डो आर्यन रीडर-खंड-१-२-डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ. सुकुमार सेन-कलकत्ता यूनिवर्सिटी-१६७०.
३२. मेघदूत-कालिदास-सम्पा.-एम.आर. काले, बम्बई।
३३. वासवदत्ता-सुबन्धु।
३४. विजयसेन-प्रशस्ति-इंस्क्रिशन्स ऑफ बंगाल-सं.-३

३५. श्रीहर्षचरितम्-बाणभट्ट-सम्पा.-जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता-१६३६.
३६. साहित्यदर्पण-कविराज विश्वनाथ चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी।
३७. सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शन्स-डॉ. डी.सी. सरकार, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १६६५
३८. सेलेक्ट कम्बोडियन इंस्क्रिप्शन्स-डॉ. महेश कुमार राणा-एस.एस. पब्लिकेशन्स, १६५-डी.-कमला नगर, दिल्ली-१६८१.
३६. सेलेक्शन्स फ्राम इंस्क्रिशन्स-डी.बी. दिसकलकर -१६७०
४०. संस्कृतशब्दार्थकौस्तुभ
४१. संस्कृत साहित्य का इतिहास (पंचम संस्करण)-पं. बलदेव उपाध्याय-शारदा मन्दिर, बनारस-१६५०
४२. संस्कृत साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास-डॉ. सूर्यकानत-ओरिएण्ट एण्ड लॉगमेन -नयी दिल्ली-१६७२
४३. हर्षचरित-अंगरेजी अनुवाद-कावेल थामसन-निर्णयसागर, प्रेस, बम्बई।
४४. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-खं-२, विण्टरनित्ज, मोतीलाल बनारसी दास-वाराणसी, रिप्रिण्ट-१६८०
४५. हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इंस्क्रिशन्स-राजबली पाण्डेय-चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

# सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची


| | ग्रन्थ | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक वर्ष |
|---|---|---|---|
| १. | अग्निपुराण | महर्षि व्यास | आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी। |
| २. | अथर्ववेद, | | |
| ३. | अनिरुद्धचम्पू | देवराज | सरस्वती भवन, वाराणसी |
| ४. | अन्यापदेशशतक | मधुसूदन | काव्यमाला गुच्छक-८ |
| ५. | अन्योक्तिशतक | विश्वेश्वर | काव्यमाला गुच्छक-५ |
| ६. | अभिनवभारतचम्पू | अभिनव कालिदास | लेविस लाइस कैटलाग (२४६) |
| ७. | अमरकोषरामाश्रमी टीका | अमर सिंह | चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी |
| ८. | अमरुकशतक-टीका | अर्जुनदेव | |
| ९. | अमोघराघवचम्पू | दिवाकर | ट्रिएनियल कैटलाग, मद्रास V-६३६५ |
| १०. | अलङ्कारसर्वस्व | आचार्य रुय्यक | चौखम्बा प्रकाशन |
| ११. | अवन्तिसुन्दरीकथा | दण्डी | |
| १२. | अवदानकल्पलता | | |
| १३. | अवदानशतक | | |
| १४. | अष्टाङ्गसंग्रह | वाग्भट्ट | |
| १५. | अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ | पाणिनि | चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस वाराणसी |
| १६. | आचार्यदिग्विजयचम्पू | वल्ली सहाय | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग |
| १७. | आचार्यविजयचम्पू | वेदान्ताचार्य | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास सं. १२३६५ |

| ग्रन्थ | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | वर्ष |
| --- | --- | --- | --- |
| १८. | आनन्दकन्दचम्पू | मित्रमिश्र | गोपीनाथ कविराज, वाराणसी १६३१ ई. |
| १६. | आनन्दरङ्गविजयचम्पू | श्रीनिवास कवि | डा. वी. राघवन, मद्रास |
| २०. | आनन्दवृन्दावनचम्पू | परमानन्द दास (कवि कर्णपूर) | बंगलिपि में वृन्दावन से देवनागरी लिपि में वाराणसी से |
| २१. | आर्यासप्तशती | गोवर्धनाचार्य | काव्यमाला गुच्छक-१ |
| २२. | इण्डियन एन्टिक्वेरी | - | - - |
| २३. | उत्तरचम्पू | भगवन्त कवि | तञ्जोर कैटलाग VI ४०२८ |
| २४. | उत्तररामचरित | भवभूति | चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी |
| २५. | उत्तररामचरितचम्पू | वेङ्कटाध्वरि | गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई |
| २६. | उदयसुन्दरीकथाचम्पू | सोड्ढल | गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज सं. ६६, १६२० ई. |
| २७. | उन्मादवासवदत्ता | शक्तिभद्र | - - |
| २८. | उपदेशशतक | गुमानीपन्त | काव्यमाला गुच्छक-२ |
| २६. | ऋग्वेदसंहिता (सायण भाष्य) | मैक्समूलर | चौखम्बा प्रकाशन १६६६ ई. |
| ३०. | ए न्यू हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर | कृष्ण चैतन्य | एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई |
| ३१. | ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर | ए.बी. कीथ | आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६५३ ई. |
| ३२. | ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर | दासगुप्ता | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३३. | ऐन इण्ट्रोडक्सन टु प्राकृत | ए.सी. ऊलर | भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी १९६६ ई. |
| ३४. | औचित्यविचारचर्चा | क्षेमन्द्र | |
| ३५. | कठोपनिषद् | - | गीताप्रेस गोरखपुर |
| ३६. | कथासरित्सागर | सोमदेव | विहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना |
| ३७. | कन्ट्रिब्यूशन आफ विहार टु संस्कृत लिट्रेचर | डॉ. सुरेश चन्द्र बनर्जी | |
| ३८. | कलाविलास | क्षेमेन्द्र | काव्यमाला, प्रथम खण्ड |
| ३९. | कल्याणवल्लीकल्याण | रामानुजदेशिक | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास २१/८२७५ |
| ४०. | कविकौमुदी | सं. के. कृष्णमूर्ति | कर्नाटक विश्वविद्यालय धाड़वाड़ |
| ४१. | कविराक्षासाय | राक्षस कवि | सं. के.सी. चटर्जी, कलकत्ता आरियण्टल जर्नल |
| ४२. | काकुत्स्थविजयचम्पू | वल्लीसहाय | इण्डिया आफिस कैटलाग ४०३८/२६२४ |
| ४३. | कादम्बरी | बाणभट्ट | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी |
| ४४. | कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन | डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल | |
| ४५. | काव्यप्रकाश | मम्मट | सं. डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा, वाराणसी |
| ४६. | काव्यभूषणशतक | कृष्णवल्लभ | काव्यमाला गुच्छक-६ |
| ४७. | काव्यमीमांसा | राजशेखर | सं. डॉ. गङ्गासागर राय |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४८. | काव्यादर्श | दण्डी | चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी |
| ४६. | काव्यानुशासन | हेमचन्द्र | |
| ५०. | काव्यालङ्कार | भामह | |
| ५१. | काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति | वामन | |
| ५२. | कुट्टनीमत | दामोदर गुप्त | |
| ५३. | कुमारपालप्रतिबोध | सोमप्रभसूरि | |
| ५४. | कुमारभार्गवीयचम्पू | भानुदत्त मिश्र | मिथिला संस्कृत विद्यापीठ दरभंगा १६८८ ई. |
| ५५. | कुवलयमालाकथा | उद्योतन सूरि | |
| ५६. | क्षत्रचूडामणि | वादीभ सिंह | |
| ५७. | गङ्गालहरी | पण्डितराज जगन्नाथ | |
| ५८. | गङ्गावतरण-प्रबन्ध | शङ्कर दीक्षित | इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैटलाग ४०४१/११४ डी |
| ५६. | गद्यचिन्तामणि | वादीभ सिंह | |
| ६०. | | सं. टी.एस कुप्पुस्वामी | वाणी विलास प्रेस श्रीरङ्गम् १६१६ ई. |
| ६१. | गुणेश्वरचरितचम्पू | कविशेखर बदरीनाथ झा | वाराणसी |
| ६२. | गुमानीनीति | गुमानी पन्त | इण्डियन एन्टिक्वेरी १६०६ ई. |
| ६३. | गोदावरीपरिणयचम्पू | वेदाधिनाथ भट्टाचार्य केशवनाथ | |
| ६४. | गोपालचम्पू | जीवराज | बंगलालिपि में वृन्दावन से |
| ६५. | गौडवहो | वाक्पतिराज | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६६. | चण्डीशतक | बाणभट्ट | |
| ६७. | चतुर्वर्गसंग्रह | क्षेमेन्द्र | काव्यमाला-खण्ड ५ |
| ६८. | चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन | डॉ. छविनाथ त्रिपाठी | |
| ६९. | चम्पूरामायण-युद्धकाण्ड | लक्ष्मण सूरि | चौखम्बा विद्याभवन |
| ७०. | चाणक्यनीतिदर्पण | कौटिल्य | वाराणसी |
| ७१. | चाणक्यनीतिशास्त्र | कौटिल्य | वाराणसी |
| ७२. | जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी | | |
| ७३. | जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी बंगाल | | |
| ७४. | जातकमाला, आर्यशूर | मिथिला रिसर्च इन्सुटिट्यूट, दरभंगा | |
| ७५. | जानराजचम्पू | कृष्णदत्त उपाध्याय | सं. डॉ. जगन्नाथ पाठक गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद |
| ७६. | जैन साहित्य का इतिहास | | नाथूराम प्रेमी |
| ७७. | तत्त्वगुणादर्शचम्पू | अण्णाचार्य | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग |
| ७८. | तन्त्राख्यायिका | | मद्रास सं. १२३३३ |
| ७९. | तरङ्गवती | | |
| ८०. | तिलकमञ्जरी | | धनपाल |
| ८१. | तिलकमञ्जरी-कथोद्धार | | पं. पद्मसागर शारदापीठ प्रदीप १९७२ ई. |
| ८२. | तिलकमञ्जरीसार | पं. लक्ष्मीधर | हेमचन्द्र सभा पटना १९१९ ई. |
| ८३. | तीर्थयात्राचम्पू | समरपुङ्गव | निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९३६ ई. |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८४. | त्रिपुरविजयचम्पू | नृसिंहाचार्य | तञ्जोर, कैटलाग सं. ४०३६ |
| ८५. | दर्पदलन | क्षेमेन्द्र | काव्यमाला गुच्छक-७ |
| ८६. | दशकुमारचरित | दण्डी | चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी |
| ८७. | दशरूपक | धनञ्जय | सं. डा. भोलाशङ्कर व्यास, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी |
| ८८. | दशवैकालिकसूत्र | | |
| ८९. | दि ओरिजिनल नेम आफ दि गाथासप्तशती | डा. वा.वि. मिराशी | |
| ९०. | दिव्यावदान | सं. पी.एल. वैद्य | मिथिलारिसर्च इन्स्टिट्यूट, दरभंगा |
| ९१. | दृष्टान्तशतक | कुसुमदेव | नवविकास प्रेस कलकत्ता १९१६ ई. |
| ९२. | द्विसन्धानमहाकाव्य | दण्डी | |
| ९३. | देशोपदेश | क्षेमेन्द्र | काश्मीर संस्कृत सिरीज सं. ४०, श्रीनगर १९२४ ई. |
| ९४. | द्रौपदीपरिणयचम्पू | चक्रकवि | वाणी विलास प्रेस, श्रीरङ्ग |
| ९५. | धर्मविवेक | हलायुध | तत्त्वविवेक प्रेस, बम्बई, १९२० ई. |
| ९६. | धुत्ताक्खान (धूर्ताख्यान) | हरिभद्रसूरि | |
| ९७. | ध्वन्यालोक | आनन्दवर्धन | चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी |
| ९८. | नर्ममाला | क्षेमेन्द्र | काश्मीर संस्कृत सिरीज |
| ९९. | नलचम्पू | त्रिविक्रमभट्ट | निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३१ ई. |

१००. नवरत्नावलीयम् पं. शिवप्रसाद द्विवेदी

१०१. नाट्यशास्त्र भरतमुनि

१०२. नामसंग्रहमाला अप्पयदीक्षित

१०३. नीतिकथा का उद्गम एवं विकास पी.एन. कवठेकर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

१०४. नीतिप्रदीप, वेतालभट्ट, संस्कृत काव्यसंग्रह, कलकत्ता १९६९ ई.

१०५. नीतिरत्न, वररुचि,

१०६. नीतिसार, घटकर्पर, काव्यसंग्रह, कलकत्ता १९४७ ई.

१०७. नीलकण्ठचम्पू, नीलकण्ठदीक्षित, मनोरमा प्रेस, मद्रास १९४१ ई.

१०८. नृगमोक्षचम्पू, नारायणभट्ट, डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, मद्रास, सं. १२३१६

१०९. नृसिंहचम्पू, दैवज्ञ सूर्य, सं. डा. सूर्यकान्त, जालन्धर

११०. नृसिंहचम्पू, केशवभट्ट, कृष्णाजी गणपत प्रेस, बम्बई, १९०९

१११. न्यायवार्तिक उधोतकर

११२. न्यायसूत्रभाष्य, वात्स्यायन

११३. न्यू कैटलोगस कैटलोगोरम आफ दि युनिवर्सिटी मद्रास

११४. पञ्चतन्त्र, विष्णुशर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

११५. पार्वतीपरिणय, बाणभट्ट, सं. कृष्णमाचारी, वाणीविलास

११६. पारिजातहरणचम्पू, शेषकृष्ण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६ ई.

| | | | |
|---|---|---|---|
| ११७. | पुराणपरिशीलन, | म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी | बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना |
| ११८. | पुराणविमर्श, | आचार्य बलदेव उपाध्याय | चौखम्भाविद्याभवन, वाराणसी |
| ११६. | पुरुदेवचम्पू, | अर्हदास | |
| १२०. | पुरुषपरीक्षा, | मैथिलकोकिल विद्यापति, | पटना विश्वविद्यालय, पटना |
| १२१. | प्रमाणसमुच्चय, | दिङ्नागाचार्य | |
| १२२. | प्राकृतभाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | डा. नेमिचन्द्र शास्त्री | तारा पब्लिकेशन, वाराणसी |
| १२३. | प्राचीन भारतीय इतिहास, | विण्टरनित्ज, | मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली |
| १२४. | बाणासुरविजयचम्पू, | वेङ्कटाचार्य | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास सं. १२३१६ |
| १२५. | बृहत्कथा, | गुणाढ्य, | |
| १२६. | बृहत्कथामञ्जरी, | क्षेमेन्द्र, | निर्णयसागर प्रेस, बम्बई |
| १२७. | बृहद्देवता, | शौनक, | चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी |
| १२८. | बौद्धसंगत्यलंकार, | धर्मकीर्ति | |
| १२६. | भक्तामरस्तोत्र, | मानतुङ्ग | |
| १३०. | भरतेश्वराभ्युदयचम्पू, | आशाधर | |
| १३१. | भागवतचम्पू, | चिदम्बर, | तञ्जोर कैटलाग VII ४०६७ |
| १३२. | भागवतचम्पू, | राजनाथ, | तञ्जोर कैटलाग VII ४०६६-७० |
| १३३. | भागवतचम्पू, | अभिनव कालिदास, | गोपाल नारायण कम्पनी, कालबादेवी बम्बई १६२६ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १३४. | भामिनीविलास, | पण्डितराज जगन्नाथ | |
| १३५. | भारतचम्पू, | अनन्तभट्ट, | चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९५७ ई. |
| १३६. | भारतचम्पूतिलक, | लक्ष्मणसूरि, | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास, सं. १२३३२ |
| १३७. | भावशतक, | नागराज, | काव्यमाला गुच्छक ४ बम्बई, १८८७ ई. |
| १३८. | भोजप्रबन्ध, | वल्लाल, | सं. डा. जयमन्त मिश्र सरस्वती प्रकाशन, दरभंगा १९५५ ई. |
| १३९. | भोसलवंशावलीचम्पू, | वेङ्कटेश, | तञ्जोर कैटलाग, सं. ४२४० |
| १४०. | भैष्मीपरिणयचम्पू, | रत्नखेट श्रीनिवासमखी, | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, मद्रास, सं. १२३३३ |
| १४१. | मत्स्यावतारप्रबन्ध, | नारायण भट्ट | |
| १४२. | मदालसाचम्पू, | त्रिविक्रमभट्ट, | सं. जे.बी. मोदक, पूना १८९२ |
| १४३. | मद्रकन्यापरिणयचम्पू, | गङ्गाधर, | डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, मद्रास, सं. १२३३४ |
| १४४. | मन्दारमञ्जरी, | विश्वेश्वर पाण्डेय, | सं. तारादत्तपन्त, पर्वतीय पुस्तक प्रकाशन मण्डल, वाराणसी |
| १४५. | मनुस्मृति, | मनु, | सं. डा. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी |
| १४६. | महाभारत, | महर्षि व्यास, | भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना |
| १४७. | महाभाष्य, | महर्षि पतञ्जलि | |
| १४८. | माधवचम्पू, | चिरञ्जीव भट्टाचार्य, | कलकत्ता |

१४६. मुग्धोपदेश, जल्हण, काव्यमाला गुच्छक-८

१५०. मूर्खशतक, अज्ञातकर्तृक, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, खण्ड-७, कलकत्ता १६३४ ई.

१५१. मोहमुद्गर, शंकराचार्य, काव्यसंग्रह, २६५-८

१५२. रघुवंश, कालिदास,

१५३. रसिकरञ्जन, रामचन्द्र, सं. के.सी.चटर्जी, कलकत्ता ओरियण्टल जर्नल

१५४. राघवपाण्डवीय, कविराज

१५५. राजसूयप्रबन्ध, नारायण, संस्कृतसाहित्य परिषद् पत्रिका, सं. XVI १०

१५६. राजेन्द्रकर्णपूर, शम्भुकवि, काव्यमालागुच्छक-१

१५७. राधामाधवविलासचम्पू, जयराम पिण्ड्ये

१५८. रामचन्द्रचम्पू, विश्वनाथ सिंह, आर.एल. मित्र कैटलाग वाल्यूम १ सं. ७३

१५६. रामानुजचम्पू, रामानुजाचार्य, मद्रास, १६४२ ई.

१६०. रामायणचम्पू, भोजराज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १६५६, १६७६ संस्करण

१६१. रुक्मिणीपरिणयचम्पू, अम्मल, मैसूर कैटलाग सं. २७०

१६२. यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता

१६३. यतिराजविजयचम्पू, अहोबल सूरि, डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑफ संस्कृत मैन्यु. मद्रास, सं. १२३३८

१६४. यशस्तिलकचम्पू, सोमप्रभ सूरि, सं. म.म. शिवदत्त तथा वासुदेवशास्त्री पणशीकर निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६१६ ई.

१६५. लक्ष्मीसहस्र, वेङ्कटाध्वरि

१६६. वक्रोक्तिजीवित, आचार्य कुन्तक, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

१६७. वरदाम्बिकापरिणयचम्पू, तिरुमलाम्बा, सं. डा. लक्ष्मणस्वरूप, लाहौर

१६८. वसुदेवहिण्डी

१६९. वात्स्यायनभाष्य, वात्स्यायन

१७०. वाल्मीकि रामायण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

१७१. वासवदत्ता, सुबन्धु

१७२. विक्रमाङ्कदेवचरित, बिल्हण

१७३. विक्रमोर्वशीय, कालिदास

१७४. विटवृत्त, भर्तृहरि

१७५. विदग्धमुखमण्डन, धर्मदास, काव्यसंग्रह २६९-३११

१७६. विदुरनीति, महाभारत उद्योगपर्व, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

१७७. विरूपाक्षवसन्तोत्सवचम्पू, अहोवल सूरि, सं. आर.एस. पञ्चमुखी, मद्रास

१७८. विश्वगुणादर्शचम्पू, वेङ्कटाध्वरि, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९२३ ई.

१७९. वीरभद्रचम्पू, पद्मनाभ मिश्र

१८०. वेङ्कटेशचम्पू, धर्मराजकवि, तञ्जोर कैटलाग सं. ४१५८

१८१. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, भट्टोतिदीक्षित

१८२. वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, विश्वेश्वर पाण्डेय, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१८३. शतकावली, बंगलाक्षर, कलकत्ता १८५० ई.

१८४. शतकत्रय, धनदराज

१८५. शतपथब्राह्मण -

१८६. शतश्लोकी, शंकर, सेलेक्टैड वर्क्स आफ शंकर, मद्रास, १६११ ई.

१८७. शिवचरितचम्पू, कविवादिशेखर, डिस्क्रिप्टिव कैटलाग मद्रास, सं. १२३१८

१८८. शिवराजविजय, पं. अम्बिकादत्त व्यास, कृष्णकुमार व्यास पुस्तकालय वाराणसी १६६६ ई.

१८६. शिवविलासचम्पू, तञ्जोर, कैटलाग सं. ४१६०

१६०. शृङ्गारप्रकाश, भोजराज

१६१. शृङ्गारभूषणभाण, वामन भट्ट बाण

१६२. श्रीकण्ठचरित, मङ्खकवि

१६३. श्रीकृष्णविलासचम्पू, नरसिंह सूरि, डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, मद्रास सं. १२२२

१६४. श्रीनिवासविलासचम्पू, वेङ्कटाध्वरि, गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई

१६५. संस्कृतवाङ्मयकोष, डा. वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता

१६६. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय

१६७. सस्कृत साहित्य का इतिहास, एस. के. दे, कलकत्ता

१६८. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा प्रकाशन, वाराणसी

१६६. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए.बी. कीथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

२००. संस्कृतसुकविसमीक्षा, आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा प्रकाशन, वाराणसी

२०१. समयमातृका, क्षेमेन्द्र, काव्यमाला गुच्छक-३

२०२. समराइच्चकहा, हरिभद्र सूरि

२०३. समस्यादीप, अज्ञातकर्तृक सं. हरप्रसाद शास्त्री संस्कृत पाण्डुलिपि, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल-५५३४

२०४. सरस्वतीकण्ठाभरण, भोजराज

२०५. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

२०६. सुभाषितरत्नसंदोह, अमितगति, स्मृतिग्रन्थ, बम्बई

२०७. सुभाषितावलि, सं. डा. पिटर्सन, एडुकेशन सोसाइटी प्रेस, बम्बई, १८८६ ई.

२०८. सुलोचनामाधवचम्पू, धर्मदत्त झा प्रसिद्ध बच्चा झा

२०९. सेव्यसेवकोपदेश, क्षेमेन्द्र, काव्यमाला गुच्छक-२

२१०. हर्षचरित, बाणभट्ट, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

२११. हर्षचरित की भूमिका, पी.वी. काणे

२१२. हस्तगिरिचम्पू, वेङ्कटाध्वरि, मैसूर १९०८ ई.

२१३. हितोपदेश, नारायण पण्डित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

२१४. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर, विण्टरनित्ज

२१५. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर, एम. कृष्णमाचारी

२१६. हिस्ट्री ऑफ तिरहुत, श्याम नारायण सिंह

# ग्रन्थानुक्रमणिका

स



ह

# नामानुक्रमणिका